कांग्रेस सचमुच भारतीय जनता में लोकप्रिय होना चाहती है तो भी इस प्रकार की नीति की स्पष्ट घोषणा उसे तत्काल कर देनी चाहिये और यदि उसी का शासन रहा तो उसे क्रियात्मक रूप देने में जरा भी विलम्ब न करना चाहिये।

माननीय श्री सम्पूर्णानन्द जी का प्रशंसनीय कार्य—

जहां हमें केन्द्रीय शासन से यह शिकायत है कि वह संस्कृत शिक्षा की ओर उपेक्षा का प्रदर्शन करती रही है वहां यह हर्ष की बात है कि उत्तर प्रदेश तथा बिहार की सरकारों ने संस्कृत शिक्षण को पर्याप्त प्रोत्साहन दिया है तथा कुछ कक्षाओं में उसके अध्ययन को अनिवार्य कर दिया है जिसके लिये दीवान हाल आर्यसमाज के अवसर पर आयोजित संस्कृत सम्मेलन में तथा अन्यत्र उनका उचित अभिनन्दन किया गया है। उत्तरप्रदेश के शिक्षामन्त्री माननीय श्री सम्पूर्णानन्द जी स्वयं संस्कृत के विद्वान और मर्मज्ञ हैं अतः संस्कृत शिक्षण को वे विशेष प्रोत्साहन दे रहे हैं। हम इस टिप्पणी के द्वारा उनके जिस कार्य का अभिनन्दन करना चाहते हैं वह निम्न पत्र व्यवहार से स्वयं स्पष्ट हो जाएगा। ६-११-५१ को हम ने सार्वदेशिक सभा के स० मन्त्री के रूप में उनको निम्नपत्र लिखा

"श्रीयुत मान्य महोदय जी! सादर नमस्ते इस पत्र के द्वारा आपका ध्यान एक पुस्तक के सम्बन्ध में आकृष्ट करना चाहता हूं जो उत्तरप्रदेश के राजकीय शिक्षा विभाग द्वारा स्वीकृत है। इस का नाम 'सामाजिक विषय (श्री दयाप्रकाश रस्तोगी कृत) भाग १ है जो कक्षा ३ में पढ़ाई जाती है। इस पुस्तक के षष्ठ पाठ का शीर्षक "हमारे पूर्वज और उनका समाज" है, जिस में अनेक भ्रमजनक बातें विद्यमान हैं। पाठ का प्रारम्भ 'हमारे देश का नाम पहले हिन्दुस्तान था अब भारत है?' इस वाक्य से होता है। जैसे कि आप जानते हैं यह अशुद्ध है कि हमारे देश का हिन्दुस्तान यह नाम भारत की अपेक्षा पुराना है। आगे जाकर पृ० १४ में लिखा है कि "आर्य लोग सोचा करते कि सूर्य, चन्द्र और अग्नि ज्योतिष्मान् हैं। इसलिये इनको प्रसन्न करने के लिये वे हवन और यज्ञ किया करते थे। वे भगवान् को प्रसन्न रखने के लिये जानवरों की बलि भी देते थे।

आर्यों के अनुसार हवन और यज्ञ मुख्यतया जल वायु शुद्धि के लिये किये जाते हैं। उनके विषय में यह लिखना कि वे सूर्य चन्द्र और अग्नि को प्रसन्न करने के लिये किये जाते थे सर्वथा अशुद्ध है। भगवान् को प्रसन्न रखने के लिये वैदिक आर्य जानवरों की बलि देते थे यह बात तो और भी अधिक अशुद्ध और भ्रान्ति पूर्ण है। आप तो स्वयं जानते हैं कि वेदों के सैकड़ों मन्त्रों में यज्ञ के लिये अध्वर शब्द का प्रयोग है।

अग्ने यं यज्ञमध्वरं विश्वतः परिभूरसि। स इद् देवेषु गच्छति"

"राजन्तमध्वराणां गोपामृतस्य दीदिविम्। वर्धमानं स्वेदमे"।

इत्यादि मन्त्र ऋग्वेद के प्रथम मण्डल के प्रथम सूक्त में आये हैं ऐसे ही अन्य सैंकड़ों मन्त्र हैं जिन में यज्ञ को अध्वर के नाम से पुकारा गया

है जिसका अर्थ ध्वरतिहिंसा कर्मा तत्प्रतिषेधः इस निरुक्त के वचनानुसार हिंसा रहित कर्म है।

श्री पं० सातवलेकर जी द्वारा संपादित "वैदिक यज्ञ संस्था" श्री प्रो० विश्वनाथ जी विद्यालङ्कार कृत वैदिक पशु यज्ञ मीमांसा तथा मेरी "बौद्ध मत और वैदिक धर्म" इत्यादि पुस्तकों में इस विषय पर विस्तृत विवेचन किया गया है।

इस विषय में यदि किसी का कुछ मतभेद भी हो तो भी आप इस से सहमत होंगे कि ऐसे विवादास्पद विषयों का पाठ्य पुस्तकों में एक निश्चित घटना के रूप में उल्लेख सर्वथा अनुचित और भ्रमजनक है। अतः निवेदन है कि उपर्युक्त वाक्यों को इस पाठ से निकलवा कर अनुगृहीत करें। अगले संस्करण में इस प्रकार के शब्द न रहने पावें इस प्रकार का आदेश दिलानें की कृपा करें। आशा है आप इस आवश्यक विषय की ओर ध्यान देकर यथोचित कार्यवाही शीघ्र करवाने की कृपा करेंगे जिस से असत्य का निराकरण हो और आर्यों का असन्तोष दूर हो।"

इस पर २३ नवम्बर को माननीय श्री सम्पूर्णानन्द जी ने निम्न उत्तर मेरे नाम भेजने की कृपा की—

प्रियमहाशय, आपका दिनाङ्क ६ नवम्बर का पत्र संख्या ३५६२ मिला। मैं ने "सामाजिक विषय।" भाग १ मंगवा कर देखा। मैं आपसे इस बात में सहमत हूँ कि लेखक का यह कहना कि इस देश का नाम पहले हिन्दुस्तान था अब भारत हो गया है सर्वथा असत्य है। यज्ञों के विषय में मेरा आप से कुछ मत वैषम्य है परन्तु यह भी मैं मानता हूं कि छोटे बच्चों की पाठ्य पुस्तकों में विवादास्पद विषय नहीं आने चाहियें। शिक्षा विभाग को आगे के संस्करण के लिये आदेश भेजा जा रहा है। आपने जो कष्ट किया उसकेलिए धन्यवाद। भवदीय

सम्पूर्णा नंद

पत्र में निर्दिष्ट मत वैषम्य को भी पत्र व्यवहार तथा यथा सम्भव भेंट द्वारा दूर करने का यत्न किया जाएगा।

सुप्रसिद्ध कलाकार का देहावसानः—

हमारे पाठकों ने इस समाचार को बड़े दुःख के साथ सुना होगा कि भारत के जगद्विख्यात कलाकार, स्वर्गीय कवीन्द्र रवीन्द्रनाथ ठाकुर के भतीजे श्री अवनीन्द्र नाथ ठाकुर का गत ५ दिसम्बर की रात्रि ८१ वर्ष की आयु में देहावसान हो गया है। श्री अवनीन्द्रनाथ के भारतीय शैली की आधुनिक चित्रकला का पिता कहा जा सकता है क्योंकि उन से पूर्व प्रायः सभी कलाकार पाश्चात्य शैली का ही अनुसरण करना अपना कर्त्तव्य समझते थे। श्री अवनीन्द्र ने भी पहले ऐसा ही किया और इटली के एक सुप्रसिद्ध चित्रकार को अपना गुरु बनाया और कुछ समय वे एक अंग्रेज चित्रकार चार्ल्स पामर की देख रेख में भी काम करते रहे किन्तु धीरे २ उनकी पाश्चात्य शैली से अरुचि हो गई जिसका कारण बतलाते हुए उन्होंने कहा कि "यूरोपीय चित्र शैली में एक ऐसी संकीर्णता है जो मुझे कभी नहीं भाई।" इसके पश्चात् उन्होंने सम्पूर्णतया भारतीय शैली को अपनाया और कला के क्षेत्र में अद्भुत ख्याति प्राप्त की। श्री नन्दलाल बोस, यामिनी

राय, देवीप्रसाद राय चौधरी आदि प्रसिद्ध चित्रकार उनके ही शिष्य थे। उन्होंने अपनी कलाकारता से विदेशों में भी भारत का नाम उज्ज्वल किया था। इसके साथ वे अच्छे साहित्यकार भी थे। वे कुछ समय श्री डाक्टर रवीन्द्रनाथ ठाकुर के देहावसान के पश्चात् शान्ति निकेतन के आचार्य का काम भी करते रहे थे। ऐसे एक महान् कलाकार के निधन से भारत को सांस्कृतिक दृष्टि से बड़ी हानि पहुँची है। हम उनके शोक सन्तप्त परिवार तथा इष्टमित्रों से समवेदना प्रकाशित करते हैं।

नई देहली में विचारक सम्मेलनः—

१४ से २० दिसम्बर तक नई देहली में संयुक्तराष्ट्रीय शिक्षा विज्ञान संस्कृति संघटन (यूनेस्को) के तत्त्वावधान में 'मानवस्वरूप की कल्पना और प्राच्य और पाश्चात्य शिक्षादर्शन, पर एक सम्मेलन भारत के शिक्षा मन्त्री मौलाना अबुल कलाम आजाद की अध्यक्षता में हुआ जिसका उद्घाटन भारत के सुप्रसिद्ध दार्शनिक श्री डाक्टर राधाकृष्णन् (राजदूत रूस) ने किया और अधिकतर वही देश विदेशों से समागत विद्वान् विचारकों का मार्ग प्रदर्शन करते रहे। इस सम्मेलन का आयोजन इस उद्देश्य से किया गया था कि विचारक लोग मिलकर इस विषय में विचार करें कि इस विक्षुब्ध संसार में विवेक और व्यवस्था से कार्य करने की प्रवृत्तियां किस प्रकार उत्पन्न की जा सकती है। मौलाना आजाद का भाषण गम्भीर और महत्त्वपूर्ण था (कहा जाता है वह उनके किसी सुयोग्य मन्त्री का तैयार किया हुआ था) उन्होंने अपने भाषण में यह आशा प्रकट की कि सम्मेलन आध्यात्मिक और भौतिक उन्नतियों पर बल देने वाली दो भिन्न मानवीय विचार धाराओं में सामंजस्य स्थापित करने में सफल होगा। उन्होंने यह भी कहा कि विज्ञान को मानव की समृद्धि शान्ति और उन्नति का साधन तभी बनाया जा सकता है जब कि पश्चिम की सफलताओं का पूर्व की भावना वा आध्यात्मिकता से उपयोग किया जाए। उन के भाषण में अधिकतर अद्वैत वेदान्त और सूफ़ी विचार धारा को लेकर विचार प्रकट किये गये थे। इसी विषय पर बोलते हुए यूनेस्को के सांस्कृतिक विभाग के अध्यक्ष श्री टौमस ने चेतावनी दी कि यदि सभ्यता को कायम रखना है तो मनुष्यको मानवीय सम्बन्धों मेंसुधार और सामाञ्जस्य की ओर विशेष ध्यान देना होगा। यह एक बड़ी चुनौती है और हमें इसका उत्तर देना ही होगा। मास्को स्थित राज दूत डाक्टर राधाकृष्णन्ने अपने विद्वत्तापूर्ण अत्युत्तम उद्घाटन भाषण में 'उदारतापूर्ण विवेक'की अपील करते हुए कहा कि आज संसार को सहिष्णुता, दया भावना और सद्भावना की आवश्यकता है। उन्होंने कहा कि शान्ति युद्ध न होने से ही स्थापित नहीं होती बल्कि उसके लिये विभिन्न जातियों और संस्कृतियों को मानने वाले लोगों के मध्य भ्रातृत्व भावना का होना भी आवश्यक है। ऐसी परिस्थितियां उत्पन्न की जानी चाहियें जिससे कोई भी व्यक्ति संसार के किसी भी भाग में जाकर अपने को एकाकी न समझे बल्कि सभी जगह अपने घर जैसा वातावरण अनुभव करे।

इस सम्मेलन में दिये गये भाषणों का सार यह था कि मानव के शुद्ध स्वरूप की विजय के लिये यह आवश्यक है कि मानवीय आदर्शों में सामंजस्य स्थापित किया जाए और संसार के राष्ट्रों का एक संयुक्त समाज हो जो यह स्वीकार करे कि प्रगति एक ऐसे मानवीय कार्यक्रम को अपनाने से हो सकती है जिस में सभी को राजनैतिक स्वतन्त्रता तथा आर्थिक और सामाजिक न्याय प्राप्त हो।" (अमेरिकनरिपोर्टर १९ दिस० ५१) हम इस प्रकार के सम्मेलन को महत्वपूर्ण समझते हुए इस का स्वागत करते हैं। हमें भी इस सम्मेलन के बृहदधिवेशन में निमन्त्रित रूप में सम्मिलित होने और सम्मेलन के प्रतिष्ठित अनेक प्रतिनिधियों से मिल कर उन से विचार विमर्श करने और उन्हें "Vedic culture,land marks in Swami Dayanand's teachings, Glory of the Vedas, Fountain Head of Religion, Vedic Dharma and Arya Samaj." आदि आर्य साहित्य की भेंट करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ जिन में से निम्न महानुभावों का नाम विशेष उल्लेखनीय है।

(१) डा० राधाकृष्णन् (२) बड़ौदा यूनिवर्सिटी के प्रो० वाइसचान्सलर प्रो० ए० आर वाडिया नामक पारसी विद्वान् (३) सागर विश्वविद्यालय के प्रो० रास बिहारी दास-जिनसे संस्कृत में अनेक विषयों पर आलाप हुआ (४) जर्मनी के डा० हैल्मुथ वान ग्लैसनप भारतीय सभ्यता के जर्मन विश्वविद्यालय में प्रोफेसर जो अच्छे संस्कृतज्ञ हैं और जिन से संस्कृत में भी आलाप हुआ और मान्य पं० गङ्गा प्रसाद जी उपाध्याय कृत'आर्योदय काव्यम्' भी जिन्हें Vedic culture आदि के साथ भेंट किया गया (५) अमेरिका सैन्टफोर्ड युनिवर्सिटि कैलिफोर्निया के प्रोफेसर और शिक्षा प्रसार निधि के अध्यक्ष प्रो० क्लैरेन्स फौस्ट (६) इटली के प्रोफेसर पिसेनल्ली (७) फ्रान्स के विद्वान् आन्द्रे रूसो इत्यादि। इनके अतिरिक्त मौलाना अबुल कलाम आजाद, श्रीमती विजयलक्ष्मी पण्डिता आदि को भी वैदिक कल्चर, Glory of the Vedas आदि की प्रतियां भेंट की गईं। प्रो० वाडिया से वैदिक धर्म और पारसी मत, आत्मा की अमरता, पुनर्जन्म, आदि विषयों पर पर्याप्त लम्बी बात चीत हुई। इस प्रकार इस सम्मेलनार्थ दूर २ देशों से समागत विद्वानों को वैदिक धर्म और संस्कृत से परिचित कराने का प्रयत्न किया गया जो लाभ दायक ही सिद्ध होगा। प्रो० वाडिया, डा० राधा कृष्णन् जी, प्रो०फोस्ट आदि सब महानुभावों ने इस भेंट पर बड़ी प्रसन्नता प्रकट की और मौलाना आजाद आदि ने भी बहुत धन्यवाद दिया। हम पत्र व्यवहार और भेंट द्वारा इस सम्पर्क को स्थायी बनाने का यत्न करेंगे।

एक नितान्त अनुचित और अन्याय-पूर्ण मांग :—

लखनऊ में अलीगढ़ मुस्लिम युनिवर्सिटी के उपाध्यक्ष डा० जाकिरहुसैन की अध्यक्षता में २३ दिस० को जो उर्दू सम्मेलन हुआ उस में एक प्रस्ताव द्वारा यह मांग की गई है कि उत्तर-प्रदेश में उर्दू को सरकारी भाषा के रूप में स्वीकार किया जाए। मौलाना हिफजुर रहमान ने इस प्रस्ताव को प्रस्तुत करते हुए उर्दू के पक्षपातियों से अपील की कि वे लाखों की संख्या में हस्ताक्षर संग्रह करके भेजें ताकि अंजुमने

तरक्किये उर्दू के द्वारा भारत के राष्ट्रपति के नाम इस सम्बन्ध में आवेदन पत्र भेजा जाए। समाचार है कि इस आन्दोलन के संचालक ३१ मार्च १६५२ तक २० लाख हस्ताक्षर एकत्रित कराने का विचार रखते हैं।

हम इस मांग को नितान्त अनुचित, अन्याय-पूर्ण और साम्प्रदायिकता सूचक समझते हैं। हमें आश्चर्य है कि डा० जाकिर हुसैन जैसे राष्ट्रीय समझे जाने वाले मुसलमान कैसे ऐसी साम्प्रदायिक, अराष्ट्रीय मांग का समर्थन करते हैं? क्या इस प्रकार की मांग प्रस्तुत करके ये तथ'-कथित राष्ट्रीयता वादी मुसलमान अपने लिये लोगों के मन में सन्देह उत्पन्न कर देने के लिये उत्तरदायी नहीं बनते? मान्य राष्ट्रपति महोदय से भी हमारा सानुरोध निवेदन है कि वे ऐसी साम्प्रदायिकता सूचक, अन्यायपूर्ण अनुचित मांग को स्वीकृत करने से सर्वथा इन्कार करदें। क्या मुसलमान भाइयों के अन्दर कोई सच्चे राष्ट्रीयतावादी भारत देशभक्त नेता नहीं रहे जो ऐसी अनुचित मांग के विरुद्ध प्रबल आन्दोलन करने और अपने भाइयों को मार्ग भ्रष्ट होने से बचाने का साहस रखते हों?

एक 'आर्य' द्वारा अत्यन्त असंगत पुस्तक निर्माण का दुस्साहसः—

हमारे पास श्री नाथूलाल जी गुप्त ने जो शिवपुरी (मध्य भारत) आर्य समाज के मन्त्री और अपने पीछे वैदिक धर्म विशारद की पदवी लगाते हैं एक पुस्तक समालोचनार्थ भेजी है जिस पर लिखा है "आर्य समाज में क्रान्ति करने वाली नई खोज अर्थात् त्रैतवाद संशोधन एवं पुरुषार्थ वाद"

आद्योपान्त इस ५४ पृष्ठों की पुस्तिका को पढ़ने के पश्चात् हम इस परिणाम पर पहुंचे हैं कि इसके लेखक को संस्कृत का तो क्या, आर्य भाषा व हिन्दी का भी अच्छा ज्ञान नहीं। पुस्तिका में बीसों स्थानों पर अन्तः करण के स्थान पर अन्तः कर्ण, सान्त के स्थान पर शांत, दृढ़ के स्थान पर द्रढ़, विषय के स्थान पर विशय, द्वितीय, तृतीय के स्थान पर द्वितिय, त्रितिय, दृष्टि के स्थान पर द्रष्टि, पृथक् के स्थान पर प्रथक इत्यादि सैकड़ों अशुद्धियां हैं जो छापे की नहीं किन्तु लेखक के अपने लेख की हैं यह उनके हस्तलेखादि के आधार पर कहा जा सकता है। श्लोक, मन्त्रादि इधर उधर से उठाकर बहुत ही अशुद्ध रूप में इकट्ठे कर दिये गये हैं। नितान्त अयुक्त तर्क के आधार पर यह दिखाने का यत्न किया गया है कि ब्रह्म, जीवात्मा और प्रकृति को नित्य मानने का सिद्धान्त वेदादि शास्त्र और महर्षि दयानन्द के सिद्धान्त के प्रतिकूल है, जीवात्मा स्वरूप से नित्य नहीं, वह पैदा होता तथा मरता है तथा पुनर्जन्म का सिद्धान्त भी सत्यार्थ प्रकाशादि में धूर्त लेखकों ने पीछे से प्रक्षिप्त किया है। पुस्तिका के प्रारम्भ में ही लिखा है 'इस आर्य समाज का विशुद्ध वायु मंडल सामाजिक अकर्मण्यता और नास्तिकता के कारण विशाक्त हो रहा है। इसका मूल कारण एक मात्र वेद विरोधी त्रैतवाद कथित जीव को स्वरूप से नित्य मानना है,, क्योंकि जीव को स्वरूप से नित्य मानने के कारण ही प्रारब्धवाद की अकर्मण्यता व नास्तिकवादि दुर्गुण उत्पन्न हो रहे हैं जो वेद तथा महर्षि दयानन्द के मन्तव्य

के विरुद्ध होते हुए आर्य समाज को सब प्रकार से रसातल की ओर ले जा रहे हैं। इत्यादि लेखक ने वस्तुतः अपनी नितान्त अयोग्यता और महर्षि के लेखों तथा "द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया" आदि वेद मंत्रों के अर्थ समझने में असमर्थता, साथ ही मन्दबुद्धिता का प्रत्येक पृष्ठ पर परिचय दिया और अपने को सर्वथा उपहासास्पद बना दिया है अतः उनकी पुस्तक लिखने के दुस्साहस को हम नितान्त अनुचित और निन्दनीय समझते हैं।

ऐसे व्यक्ति का जिसका पुनर्जन्म तथा जीवात्मा की नित्यता जैसे मुख्य वैदिक सिद्धान्तों में भी विश्वास न हो (जिनका महर्षि ने सप्रमाण सत्यार्थ प्रकाशादि में प्रतिपादन किया है) आर्य समाज का सदस्य बने रहने का भी अधिकार नहीं है, मन्त्री बनना तो सर्वथा नियम विरुद्ध है। हम आशा करते हैं कि ऐसे अयोग्य व्यक्ति सर्वथा असङ्गत पुस्तक लिखने का दुस्साहस करके जनता में भ्रम फैलाने का निंदनीय कार्य न करेंगे तथा आर्य जनता भी उनकी बात व लेख पर कोई ध्यान न देगी। यदि वे सत्य के जिज्ञासु हों तो गम्भीर विद्वानों के चरणों में बैठकर विषय को समझने का उन्हें यत्न करना चाहिये न कि पुस्तक प्रकाशन द्वारा भ्रम वृद्धि।

ध० दे०

नव वर्ष की २ उत्तम दैनन्दिनियाँ

(१) वैदिक डायरी—सन् १९५२ प्रकाशक—श्री मानकचन्द्र जी एम. एस. सी. मन्त्री आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब जालन्धर शहर मूल्य ॥।≡)

(२) आर्य डायरी १९५२ प्रकाशक—म० राजपाल एन्ड सन्स नई सड़क दिल्ली मूल्य १)

इन दोनों डायरियों में प्रत्येक पृष्ठ पर वैदिक सुभाषित अर्थ सहित दिये गये हैं। तथा आर्य पर्व सूची, आर्यों के नित्य कर्म, आत्मोन्नति के प्रमुख साधन। ब्राह्ममुहूर्त में प्रातः, स्नान, सोते समय आदि के मन्त्र अर्थ सहित भी दे दिये गए हैं। स्वास्थ्य के नियम, योगासनों के लाभ आर्य समाज के विस्तारादि पर भी प्रकाश डालागया है। दोनों दैनन्दिनियां उत्तम हैं।

English Publications of Sarvadeshik Sabha.

1. Agnihotra (Bound) (Dr. Satya Prakash D. Sc.) 2/8/-
2. Kenopanishat (Translation by Pt. Ganga Prasad ji, M. A.) -/4/-
3. The Principles & Bye-laws of the Aryasamaj -/1/6
4. Aryasamaj & International Aryan League (By Pt. Ganga Prasad ji Upadhyaya M. A.) -/1/-
5. Voice of Arya Varta (T. L. Vasvani) -/2/-
6. Truth & Vedas (Rai Sahib Thakur Datt Dhawan) -/6/-
7. Truth Bed Rocks of Aryan Culture (Rai Sahib Thakur Datt Dhawan) -/8/-
8. Vedic Teachings & Ideals (Dhareshwar B. A. Atma) 1/4/-
9. Vedic Culture (Pt. Ganga Prasad Upadhyaya M. A.) 3/8/-
10. Aryasamaj & Theosophical Society (B. Shyam Sundarlal B. A. LL. B.) -/3/-
11. Glimpses of Dayanand (by Chamupati M. A.) 1/8/-
12. A Case of Satyarth Prakash in Sind (S. Chandra) 1/8/-
13. In Defence of Satyarth Prakash (Prof: Sudhakar M. A.) -/2/-
14. We and our Critics -/1/6
15. Universality of Satyarth Prakash -/1/-
16. Rishi Dayanand & Satyarth Prakash (Pt. Dharma Deva ji Vidyavachaspati) -/8/-
17. Landmarks of Swami Dayanand (Pt. Ganga Prasadji Upadhyaya M. A.) 1/-/-
18. Scope & Mission of Aryasamaj (Pt. Ganga Prasad ji Upadhyaya M. A.) 1/4/-
19. Superstition ,, 1/4/-
20. I & my God ,, 1/4/-
21. Swami Dayanand's contribution to Hindu Solidarity 1/4/-
22. Worship ,, 1/4/-
23. Marriage & married life 1/4/-
24. Political Science (By Rishi-Dayanand) Royal Edition 2/8/- Ordinary Edition -/8/-
25. The Light of Truth 6/-/-
26. Life After death (Pt. Ganga Prasad Upadhyaya M. A.) 1/4/-
27. Elementary Teachings of Hindusim ,, -/8/-
28. Kathopanishad (By Pt. Ganga Parshad Rtd. Chief Judge) 1/4/-

Can be had from:—

Sarvadeshik Arya Pratinidhi Sabha, Delhi.

सार्वदेशिक

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा देहली का उच्चकोटि का मासिक मुख पत्र वार्षिक शुल्क ५)

सार्वदेशिक विज्ञापन दर—

स्थान	एक-मास	तीन मास	छः मास	एक वर्ष
पूरा पृष्ठ	१५ रु०	४० रु०	६० रु०	१०० रु०
आधा पृष्ठ	१० रु०	२५ रु०	४० रु०	६० रु०
चौथाई पृष्ठ	६ रु०	१५ रु०	२५ रु०	४० रु०
एक पृष्ठ का आठवां	४ रु०	१० रु०	१५ रु०	२० रु०

व्यवस्थापक—"सार्वदेशिक" पत्र देहली

बौद्धमत और वैदिक धर्म

(लेखक—श्री पं० गङ्गाप्रसाद जी एम० ए०, कार्य निवृत्त मुख्य न्यायाधीश जयपुर)

+

इस नाम की एक पुस्तक श्री पं० धर्मदेव वि० वा० जी ने जो ग्रन्थकर्त्ता हैं, मुझ को समालोचना के अभिप्राय से दी थी। मैंने ध्यान-पूर्वक पुस्तक को पढ़ा, मुझ को वह आर्य्यों तथा सब हिन्दुओं के लिये ऐसी उपयोगी प्रतीत हुई कि साधारण समालोचना के स्थान में मैंने एक लेख के रूप में अपने विचार प्रकट करना उचित समझा।

(२) सब लोग जानते हैं कि श्री माननीय डा० अम्बेदकर ने जो भारत सरकार के Law Member विधान सचिव थे कुछ समय हुआ बौद्ध मत ग्रहण कर लिया। उसी समय अपने भाषण में उन्होंने कहा था कि भारत की दलित जातियों वा शूद्रों को बौद्धमत ग्रहण कर लेना चाहिये, उस के पीछे एक लेख में जो गत मई मास के महाबोधी पत्र में प्रकाशित हुआ तथा अपने अन्य भाषणों में उन्होंने सब हिन्दुओं को इसी प्रकार की सलाह दी।

(३) गत सितम्बर मास के "सार्वदेशिक" पत्र की सम्पादकीय टिप्पणी में योग्य सम्पादक महोदय ने ३६६ पृष्ठ पर श्री रजनी कान्त शास्त्री बी० ए० बी० एल साहित्य सरस्वती विद्या निधि की लिखी हुई "हिन्दू जाति का उत्थान व पतन" नामक एक पुस्तक की जिसको उन्होंने "विचारोत्तेजक किन्तु भ्रम जनक" पुस्तक बतलाया है और जिसके लेखक की योग्यता की प्रशंसा की है आलोचना करते हुए अन्त में ये शब्द लिखे हैं—"उपसंहार में लेखक ने दलितों तथा वैश्यों, शूद्रों को हिन्दू धर्म का परित्याग करके बौद्धमत ग्रहण करने का परामर्श दिया है जिसे हम नितान्त अनुचित और हानि कारक समझते हैं।" श्री रजनीकान्त शास्त्री जी ने स्वयं बौद्धमत ग्रहण कर लिया है ऐसा पूर्वोक्त आलोचना से प्रतीत नहीं होता।

बौद्धमत का भारतवर्ष में लगभग ११ वीं वा १२ सदी में अन्त हो चुका था। अब हाल में लंकानिवासी श्री धर्म पाल जी के उद्योग से उसके प्रचार का फिर प्रारम्भ हुआ। सारनाथ (काशी) में जहां म० गौतमबुद्ध ने अपने धर्म का प्रथम प्रचार किया था अब एक उनका अच्छा आश्रम बन गया है जहां श्री राहुल सांकृत्यायन आदि कई प्रसिद्ध बौद्ध विद्वान रहते हैं। एक पत्र भी वहां से प्रकाशित होता है। भारतीयों ने बाहर से आये हुए अन्य मत वालों को भी अपने देश में आश्रय दिया, बौद्धों के प्रचार में बाधा डालने या विरोध करने का तो प्रश्न ही नहीं हो सकता। परन्तु यदि बौद्धों की संख्या में वृद्धि होगी तो वह विशेषकर हिन्दू जनता में से ही होगी। आर्य समाज अपने प्रारम्भ काल से हिन्दू समाज का संरक्षक रहा है। इस लिये हिन्दू समाज की रक्षा के भाव से यह प्रश्न

विचार योग्य ही है। जैसा मैंने ऊपर संकेत किया इस विचार से पूर्वोक्त पुस्तक बहुत उपयोगी है, और उसका प्रकाशन समयानुकूल है। मैं संक्षेप से उसकी कुछ समालोचना करूंगा।

(४) यह पुस्तक ८ अध्यायों में विभक्त है। पहले अध्याय में बौद्ध कर्त्तव्य शास्त्र की मुख्य शिक्षाएं (जो वास्तव में बौद्ध धर्म के मूलतत्व हैं) बड़े निष्पक्ष भाव से बौद्ध शास्त्रों के ही शब्दों में लिखी गई है। अर्थात उनके आर्य सत्य आर्य अष्टांगिक मार्ग, ३८ मंगलकार्य, पञ्चशील, एकादश शील, ब्रह्म विहार भावना, और गृहस्थों के कर्तव्य वा उनकी ६ पूजाएं।

(५) इनके विषय में ग्रन्थकर्त्ता ने दूसरे अध्याय में स्पष्ट लिखा है कि इन में से बहुत सी शिक्षाएं अच्छी हैं, परन्तु निष्पक्षपात दृष्टि से विचार करने पर स्पष्ट ज्ञात होता है कि इन का अधिकतर आधार योगदर्शन पर है यद्यपि कुछ अंश मनुस्मृति और भगवद् गीता से भी अद्भुत समानता रखते हैं। यह ऐसा प्रश्न है जिस पर योरपीय विद्वान् भी ग्रन्थकर्ता से सहमत हैं। तो भी पुस्तक में इस को सिद्ध करने के लिए पर्य्याप्त सामग्री दी गई है। यह अच्छा है कि लेखक ने शिक्षाओं की समानता दिखलाने में अधिकतर प्रमाण वेदों, योगदर्शन, व मनुस्मृति से दिये हैं, जिनके बौद्धमत से प्राचीनतर होने में कोई सन्देह नहीं करता। गीता के विषय में कुछ बौद्ध तथा अन्य विद्वानों की ऐसी कल्पना है कि वह बौद्ध धर्म की स्थापना के बाद बौद्ध शिक्षा के प्रतिवाद रूप से (जवाब के तौर) लिखी गई थी। इस विचार का आंशिक समर्थन कुछ इन बातों से होता है कि म० बुद्ध ने आत्मा व ब्रह्म के अस्तित्व को स्पष्ट नहीं माना, गीता में दोनों के अस्तित्व व गुणों का वर्णन ही प्रबलरूप से किया गया है निर्वाण शब्द (मोक्ष के अर्थ में) म० बुद्ध ने ही प्रयुक्त किया। उनके पूर्व के उपनिषदों में यह शब्द नहीं मिलता, गीता में यह बहुत बार आया है परन्तु प्रायः ब्रह्म शब्द के साथ "ब्रह्मनिर्वाण" के रूप में आता है। यह विषय विचारणीय है। यदि संभव हुआ तो इस पर मैं कभी पीछे अपने विचार प्रकट करूंगा।

(६) तीसरे व चौथे अध्याय में लेखक ने यह सिद्ध किया है कि म० बुद्ध एक आर्य सुधारक थे। इस विषय पर योरुपीय विद्वानों का मत लेखक से पूर्णतया सहमत है। मैंने भी अपने Fountainhead of Religion के (जिसका हिन्दी अनुवाद "धर्म का आदि स्रोत" है) अध्याय ३ में इस विषय पर कुछ प्रकाश डाला है।

वास्तव में जब म० बुद्ध का जन्म हुआ तो वैदिक धर्म में दो बड़े दोष आ गये थे, एक वर्णव्यवस्था के स्थान में जन्मगत जाति भेद और दूसरा यज्ञों में पशुओं की बलि, जाति भेद का म० बुद्ध ने बड़े प्रबल शब्दों में खण्डन किया है जैसा लेखक ने धम्मपद, सुत्त निपात, आश्वलायन सुत्त आदि के प्रमाणों से दिखलाया है। वेद और प्राचीन वैदिक शास्त्रों का भी यही मत है इस बात को लेखक ने अच्छे प्रमाणों से सिद्ध किया है। मैंने इस विषय पर Caste System नामक पुस्तक अंगरेजी में लिखा था जिसका हिन्दी अनुवाद जाति भेद नाम से प्रकाशित हो चुका है। उसमें इस विषय के सब

अंगों पर अच्छी तरह प्रकाश डाला गया है।

(७) यज्ञ के विषय पर स्वयं महात्मा बुद्ध ने बड़े स्पष्ट शब्दों में कहा है कि पूर्व ऋषियों व ब्राह्मणों ने अहिंसा से यज्ञों का ही विधान किया है। ब्राह्मण धाम्मिक सुत्त में ऐसे ब्राह्मणों के तप व त्याग मय जीवन की प्रशंसा करके म० बुद्ध ने कहा है कि पीछे समय के ब्राह्मणों ने लाभ और स्वार्थ से झूठे मन्त्र रच कर हिंसात्मक यज्ञों का प्रचार किया। स्वयं म० बुद्ध का ऐसा कथन होने पर बौद्धों के विरोध में इस बात के अधिक प्रमाण देने की आवश्यकता नहीं रहती कि वैदिक यज्ञ हिंसा रहित होते थे। तो भी लेखक ने इस के लिये कुछ प्रमाण वेदों से दिये हैं।

(८) पांचवे व छटे अध्याय में यह प्रश्न उठाया गया है कि क्या म० बुद्ध नास्तिक थे। पाणिनीय अष्टाध्यायी में नास्तिक का लक्षण "अस्ति नास्ति दिष्टं मतिः" सूत्र से यह किया है कि जो पुनर्जन्म व परलोक आदि को न माने, म० बुद्ध ने दोनों को स्पष्ट रूप से माना है। यह प्रश्न हो सकता है कि क्या म० बुद्ध अनीश्वर वादी थे? ब्रह्म के विषय में म० बुद्ध का यह प्रसिद्ध वचन है—"ब्रह्म भूतो अतितुलो मारसेनप्पमद्दनो। सब्बऽमित्ते वसीकत्वा मोदामि अकुतोभयो," अर्थात् मैं ब्रह्म पद को प्राप्त हो गया। मार (कामदेव) की सेना को मैं ने नष्ट कर दिया। मैं अब काम क्रोध आदि सब शत्रुओं को वश में करके आनन्द का भोग करता हूं। बौद्ध साहित्य में निर्वाण, ब्रह्म, अमृतपद आदि शब्द एकार्थ वाचक आते हैं, उपनिषदों में भी ब्रह्म, व अमृत शब्द मोक्ष के अर्थ में बहुत प्रयुक्त हुआ है। (क्रमशः)

भारत में आदर्श आर्य राज्य

(लेखक—श्री डा० सूर्यदेव शर्मा सि० शास्त्री, साहित्यालंकार, एम० ए० डी० लिट्, अजमेर)

भारत वर्ष संसार का सिरमौर देश रहा है। सभ्यता, संस्कृति कला कौशल, विद्या, शिक्षा, दर्शन, विज्ञान, गणित, ज्योतिष सब की जन्मस्थली हमारी प्यारी भारत भूमि ही रही है। ऐसा कोई विधान और विज्ञान नहीं जिसमें भारत संसार का मुकुट मणि न रहा हो। संसार के मानव समाज के लिये आचार—व्यवहार का आदर्श उपस्थित करने का श्रेय भी भारत भूमि को ही है, जैसा कि मनु महाराज ने भी लिखा है :—

एतद्देश प्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्व मानवाः ॥

(अर्थ) इस देश के द्विज अग्र जन्मा,
विप्र वर विद्वान् थे।
विज्ञान, दर्शन शास्त्र में वे,
अद्वितीय महान थे ॥
संसार के गुरु थे इन्हीं के,
पास सब आते रहे।
चारित्र शिक्षा विश्व के,
मानव यहीं पाते रहे ॥

जब भारत सब बातों में संसार का गुरु और आदर्श शिक्षक रहा तब हम यह कैसे मान सकते हैं कि भारत में कभी आदर्श राज्य की स्थापना न हुई हो। एक बार नहीं अनेक बार हम भारत में प्राचीन काल में ऐसे राज्यों का अथवा शासन व्यवस्थाओं का इतिहास पढ़ते हैं जो संसार के सम्मुख आदर्श उपस्थित करने वाले रहे हैं। सब प्रकार की सम्पत्ति, समृद्धि, प्रतिष्ठा और गौरव को धारण करने वाली हमारी मातृभूमि रही है। जैसा कि अथर्व वेद के पृथ्वी सूक्त में छठे मन्त्र में मातृ-भूमि का आदर्श उपस्थित किया गया है वह हमारी भारत भूमि में सब प्रकार से घटित होता है:—

"विश्वम्भरा वसुधानी प्रतिष्ठा हिरण्यवक्षा
जगतो निवेशनी ॥
वैश्वानरं बिभ्रती भूमिरग्निमिन्द्रवृषभा
द्रविणे नो दधातु ॥"

अर्थात् विश्व भर का पोषण करने वाली, रत्नों को धारण करने वाली, सब पदार्थों को आश्रय देने वाली, सुवर्ण आदि की खान रखने वाली, सब स्थावर जंगम जीवों या पदार्थों को स्थान देने वाली, सब प्रकार के मनुष्यों से युक्त, राष्ट्र की उन्नति में सहायक हमारी मातृ भूमि, हमारे नेता, ज्ञानी वीर पुरुषों तथा हमको सब प्रकार की ऐश्वर्य देने वाली हो।

ऐसी आदर्श भारत भूमि में आदर्श राज्य स्थापित होना और रहना ही चाहिये। तभी तो उपनिषत् काल में राजा अश्वपति, महाजक आदि तेजस्वी ऋषियों के सम्मुख गर्व के साथ

यह घोषणा करने में समर्थ हुए थेः—
"न मे स्तेनो जनपदे न कदर्यो न मद्यपो।
नानाहिताग्निर्नाविद्वान्, न स्वैरी स्वैरिणी कुतः ॥"

अर्थात् मेरे समस्त राष्ट्र में कहीं पर भी आप को चोर, कृपण शराबी, अग्निहोत्र न करने वाला, अशिक्षित और व्यभिचारी पुरुष नहीं मिलेंगे. तो व्यभिचारिणी स्त्री कहां मिल सकती है ?

जिस रामराज्य की घोषणा महात्मा गान्धी और हमारी कांग्रेसी सरकार आरम्भ से करती रही और जिसके लक्ष्य तक कभी नहीं पहुँच सकी, वह रामराज्य कैसा था ? सुनियेः—

"कामी वा न कदर्यो वा नृशंसः पुरुषः क्वचित्।
द्रष्टुं शक्यमयोध्यायां नाविद्वान्न च नास्तिकः ॥"

अर्थात् अयोध्या में तथा रामराज्य में न कोई कामी था, न कंजूस, न अपढ़, न निर्दयी और न कोई ईश्वर और वेद का विरोधी नास्तिक था, न कोई अधर्मी, न चोर न नीच और न भ्रष्टाचारी कोई था। तभी तो महात्मा तुलसीदास ने भी रामराज्य का वर्णन करते हुये लिखा हैः—

"दैविक दैहिक भौतिक तापा।
रामराज्य नहीं काहूं व्यापा॥"

इसी प्रकार महाराजा युधिष्ठिर के राज्य का वर्णन करते हुये महर्षि व्यास ने महाभारत में लिखा हैः—

"न बालो म्रियते कश्चिन्न च व्याधिर्जनाधिपं।
न च स्त्रियं प्रजानाति कश्चिदप्राप्तयौवनः॥"

अर्थात् राजा युधिष्ठिर के राज्य में माता पिता के सामने कोई बालक न मरता था, न कोई रोग किसी को होता था, और युवावस्था होने तक कोई युवक स्त्री को जानता भी न था। यही कारण है कि श्री शुकदेव जी, धनुर्धर अर्जुन आदि तत्कालीन ब्रह्मचर्य की परीक्षा में पूरे उतरते थे। महाराज विक्रमादित्य और उनसे पूर्व सम्राट् अशोक और चन्द्रगुप्त मौर्य के काल में जो विदेशी यात्री भारत में आये उन्होंने स्पष्ट लिखा है किः—

(१) भारत में लोग मकानों में ताला लगाना जानते ही नहीं क्योंकि यहां कोई किसी की चोरी करता ही न था।

(२) भारत में जेल खाने नहीं थे क्योंकि किसी पुरुष को कोई अपराध न करने के कारण जेल की सजा देने की आवश्यकता ही नहीं पड़ती थी।

(३) भारतीय लोग दस्तावेज लिखना नहीं जानते। उनका वचन ही दस्तावेज हैं वे कभी झूठ बोलते ही नहीं थे।

(४) भारत में किसी के द्वार पर यदि कोई यात्री पानी मांगता था तो उसे दूध का कटोरा मिलता था क्योंकि यहां घी, दूध की नदियां बहती थी।

भारत में आदर्श राज्य के जो दृष्टान्त ऊपर दिये गये हैं उनकी तुलना क्या संसार का कोई राष्ट्र कर सकता है ? हमारे हृदय को महती वेदना होती है जब हम देखते हैं कि हमारे देश में स्वतन्त्रता प्राप्त होने के बाद भी हम अपने प्राचीन आदर्श आर्य राज्य की स्थापना अभी तक नहीं कर सके हैं। कहां वह अश्वपति और रामराज्य का ऊंचा

(शेष पृष्ठ ५१२ पर)

राष्ट्रीय चरित्र

लेखक—श्री रघुनाथ प्रसाद पाठक

राजनैतिक स्वतन्त्रता के उपयोग और रक्षण के लिए देश वासियों में नागरिकता और राष्ट्रीय चरित्र का होना इस समय की सबसे बड़ी आवश्यकता है। राष्ट्रीय चरित्र का अभिप्राय वह आचरण होता है जिससे शत्रु और मित्र सबकी दृष्टि में देश का गौरव बढ़े। स्वतन्त्र राष्ट्रों के इतिहास राष्ट्रीय चरित्र की महत्ता का प्रतिपादन करने वाली विविध ज्वलन्त घटनाओं से परिपूर्ण हैं। गत महासमर में जर्मन बम वर्षा के भीषण संकट में इंग्लैड के निवासियों ने जिस साहस और राष्ट्रीय चरित्र का परिचय दिया था वह इतिहास की अनूठी वस्तु बन गई है। इंग्लैंड देश वासियों के राष्ट्रीय चरित्र के बल पर ही युद्ध के भंवर में फंसी हुई राष्ट्रीय नौका को मि० चर्चिल पार लगा सके थे। गत महा समर के कारण इंग्लैंड आदि जिन देशों की अर्थ व्यवस्था अस्त व्यस्त हो गई थी वहां के शासनों ने जनता के सहयोग से अपनी अर्थ व्यवस्था लगभग ठीक करली हैं। उसका अधिकांश श्रेय प्रजा के राष्ट्रीय चरित्र को है। यद्यपि आज जापान दुर्भाग्य और दुर्दशा में ग्रस्त है उसका भाग्य नक्षत्र अस्त हुआ देख पड़ता है, तथापि उसने राष्ट्रीय चरित्र की जो लम्बी परम्परा कायम की हुई है वह बड़ी विशद और गौरव पूर्ण है। जापानी आत्म हत्या (हाराकीरी) करके अपने को मिटा देना पसन्द करता है परन्तु शत्रु के हाथ में पड़कर अपमानित होना बर्दाश्त नहीं करता। गत युद्ध में जापानी हाराकीरी की अनेक घटनायें प्रकाश में आईं। जिन में कदाचित सबसे अधिक रोमांचकारिणी वह घटना थी जब जापान की कुछ नव युवतियों ने जापानी कैदियों से भरे हुए शत्रु के जलपोत पर हवाई जहाज गिराकर उसे डुबा दिया था। जापानियों के राष्ट्रीय चरित्र की महत्ता का दिग्दर्शन कराने के लिए हम यहां दो उदाहरण और प्रस्तुत करते हैं।

कई वर्ष हुए एक भारतीय सज्जन अपने दो मित्रों के साथ जापान की सैर के लिए गए। जापान के एक नगर में घूमते हुए उन्होंने एक दूकान से दो आने में एक सेब क्रय किया। दूकान से कुछ दूर जाने पर ६,१० वर्ष का एक बच्चा दौड़ता हुआ उनके पास आया और दो आने देकर वह सेब उनसे लेने लगा। बच्चे की यह धृष्टता उन लोगों को बुरी लगी और उन्होंने झिड़क कर कहा 'हटो दूकान से जाकर खरीदो'। परन्तु लड़का न हटा और सेब को क्रय करने का आग्रह करता रहा। जब बच्चा समझाने बुझाने पर भी न हटा और रोने लगा तब

एक सज्जन ने उसके हठ का कारण पूछा। लड़के ने कहा, "इस सेब का नियत मूल्य छः पैसा है परन्तु दूकानदार ने आप लोगों को अनजान समझकर आपसे दो आने ले लिये हैं। जब आप को इस दूकानदार की बेईमानी ज्ञात होगी आप कहेंगे जापानी बेईमान होते हैं। इससे मेरे देश का अपमान होगा जिसे मैं सहन नहीं कर सकता।" फलतः उन भारतीयों को वह सेब बच्चे के हाथ बेचना पड़ा।

इन सज्जनों को जापान में यह जानकर बड़ा आश्चर्य हुआ था कि यदि किसी व्यक्ति की जापान की बस आदि में भूल से कोई वस्तु छूट जाय और उसके स्वामीका पताज्ञात हो तो उस वस्तु को पुलिस उसके पास पहुँचा देती है। इसकी सत्यता की जांच के लिये एक सज्जन बस में सवार हुए और कुछ दूर यात्रा करने के पश्चात् बस से उतर पड़े। उतरते समय जान बूझ कर उन्होंने अपना बटुआ बस की सीट पर छोड़ दिया जिसमें ५०) के करैंसी नोट थे और साथ ही उसमें उनके पते की चिट भी थी। ७,८ घंटे के उपरान्त पुलिस के दो कर्मचारी उनके निवास स्थान पर गए और बड़ी शिष्टता के साथ उनका बटुआ उन्हें दे दिया। वे लोग जिस सज्जन के यहां ठहरे हुए थे उनके सामने ५०) गिनवाकर उसका प्रमाण पत्र भी प्राप्त कर लिया। हमारे भारतीय सज्जन जापान के नागरिकों और विशेषतः पुलीस कर्मचारियों की इस ईमानदारी से बड़े प्रभावित हुए, और पुलिस कर्मचारियों को १०) पारितोषिक देने लगे। परन्तु उन्होंने स्वीकार न किया। बहुत आग्रह करने पर उन पुलिस कर्मचारियों ने वे १०) जापान के सार्वजनिक निर्धन फंड में दान दिला दिए।

हममें राष्ट्रीय चरित्र की बड़ी भारी कमी है इसी लिये ब्रिटिश शासन और महायुद्ध के अभिशापों के चिन्ह स्वरूप चोर बाजार, भ्रष्टाचार, चरित्रहीनता, रिशवतखोरी, आदि स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद भी सरकार और जनता दोनों के लिये सिर दर्द बने हुए हैं। इसी लिये राष्ट्रोत्थान और राष्ट्रीय पुनरुज्जीवन की योजनाएं खटाई में पड़ती जा रही हैं। अतएव राष्ट्रोन्नति के लिये हममें जितनी जल्दी राष्ट्रीय चरित्र का विकास हो जाय उतना ही अच्छा है।

इस समय हमारी सरकार अर्थ संकट से पार होने का प्रयत्न कर रही है और उसके सामने यह समस्या एक बहुत बड़ी और महत्व पूर्ण राष्ट्रीय समस्या बनी हुई है। परन्तु हमारी चरित्रहीनता के कारण उसका हल होने ही नहीं पाता। इस अर्थ संकट की आंशिक उत्तरदायिता उस पर हो सकती है परन्तु इसकी मुख्य उत्तर दायिता तो ब्रिटिश शासन और प्रजा पर ही है। निस्संदेह अंग्रेजों के भारत छोड़ने से पूर्व युद्धकाल से ही वर्तमान मंहगाई और वस्तुओं की तेजी से प्रजा पीड़ित और क्लान्त चली आती है। स्वार्थी व्यापारी और रिश्वतखोर राज्य कर्मचारी तभी से देश वासियों की परेशानियों, मानसिक वेदनाओं, चिन्ताओं कष्टों और देश हित के साथ खिलवाड़ करते आ रहे हैं। परन्तु अब तो उनकी यह खिलवाड़ राष्ट्रीय आपत्ति बन गई है। प्रजा के कष्ट और असन्तोष में कमी होने के स्थान में वृद्धि हो रही है। हममें स्वराज्य के उपभोग

की योग्यता न थी। नैतिक, मानसिक, सामाजिक और आर्थिक दिवालिया के रूप में अंग्रेजों द्वारा हमारा छोड़ा जाना हमारे लिये एक चेलैन्ज था। इसका सामना करने में हम वस्तुतः अयोग्य सिद्ध हुए हैं। ऐसा प्रतीत होने लगा है कि जिन पर शासन की उत्तरदायिता आई थी उनमें शासन को संभालने और उसका सम्यक् संचालन करने की कोई बड़ी भारी कमी थी। यही कारण है वे उपर्युक्त चेलैन्ज का मुकाबला करने में किंकर्त्तव्य विमूढ़ बनते जा रहे हैं। भ्रष्टाचार और चरित्र हीनता के लिये व्यापारी वर्ग राजवर्ग को और राजवर्ग व्यापारी वर्ग को दोष देता है। परन्तु दोनों ही दोषी हैं। अवस्था को ठीक करने के लिये शासन की परम शुद्धि की आवश्यकता है। उसे अधिक से अधिक शुद्ध और कठोर बना कर ऐसी अवस्थाएं उत्पन्न करनी होंगी जिनमें समाज विरोधी आचरण का अन्त हो जाय समाज विरोधी आचरण के तत्वों को सिर उठाने का अवसर प्राप्त न हो, और प्रत्येक के लिये भलाई करना सुगम और बुराई करना कठिन हो जाय। इसके लिये राजसत्ता को इस प्रकार सुव्यवस्थित करना होगा कि जिस पर बुरों का आधिपत्य न होकर अच्छों का आधिपत्य हो।

धन लोलुपों, चरित्रहीनों और विलासियों के लिये इतिहास की एक चेतावनी है। जिन व्यक्तियों और जातियों ने अपने परिश्रम और ईमानदारी से कमाए हुए धन को अपने और दूसरों के लिये देन न बनाया जिन्होंने अपने व्यक्ति और समष्टिगत चरित्र से अपने को और अपने साथ समाज को ऊंचा न उठाया और जिन्होंने त्याग को अपनाकर अपने और दूसरों के मनुष्यत्व को विलासिता की विषमिश्रित मीठी गोलियों के घातक विष से न बचाया वे स्वयं नष्ट हो गए। हम भारतवासियों और विशेषतः राज्याधिकारियों को इस पर विशेष ध्यान देकर इससे शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये।

राष्ट्रीय चरित्र के निर्माण का कार्य प्रारम्भ करते हुए हमें सबसे पूर्व मिश्रित संस्कृति के दुष्प्रभावों को मिटाना होगा। भारतवर्ष पर पाश्चात्य संस्कृति के निकृष्ट तत्वों का गुलाम देशों की अनुकरणशीलता के सदृश बहुत बड़ा चारित्रिक दुष्प्रभाव पड़ा है। समस्त रोग का मूल यही है। इसके लिये समाज संशोधकों ने अपना पूरा २ यत्न किया है अब हमारी राष्ट्रीय सरकार की भी बारी है। प्रथम पग के रूप में सरकार को बालकों की शिक्षा में आमूल चूल परिवर्तन और समाज में स्वस्थ वातावरण उत्पन्न करने का आर्थिक योजना आदि के क्रियान्वित करने के साथ २ आयोजन करना होगा तभी हम चरित्र निर्माण के कार्य में ठीक गति में प्रगति कर सकेंगें।

भारत में आदर्श आर्य राज्य

पृष्ठ ५०६ का शेष

आदर्श और कहां आजकल की भ्रष्टाचारिता, चोरबाजारी कुनबा परवरी, चार सौ बीस करने की आदत, अन्न और वस्त्र की कमी, चोर डकैती, और व्यभिचार के नित नये बढ़ते हुये अपराध? क्या यही हमारी स्वतन्त्रता का वरदान है? क्या कभी हम प्राचीन आदर्श आर्य राज्य को प्राप्त न कर सकेंगे? अवश्य कर सकेंगे यदि हम अपनी भारतीय संस्कृति और धर्म को न छोड़ बैठें।

वीरो ! उठो !!

(रच०—'कवि' शान्ति वीर आर्य "वीर" सम्भल)

भारत के वीरो ! उठो ।
निद्रा की वेला त्याग चलो अब, मां के सुपूतो ! उठो ॥

विश्व विजेता आर्य तुम्हीं हो, भारत के प्राणाधार,
जननी को है गर्व तुम्हीं पर, तुम पर ही अधिकार,
मात की आशा पूरी करने, भारत दुलारो ! उठो ॥
ऐ नौ निहालो ! उठो ।
निद्रा की वेला त्याग चलो अब, मां के सुपूतो ! उठो ॥
भारत के वीरो ! उठो ॥ १ ॥

आज तुम्हारी संस्कृति देखो, कैसी विपद् में पड़ी,
आज यवन दल के त्रासों से, सर्वत्र त्राहि मची,
धर्म की रक्षा करने हेतु, जाति के प्राणो ! उठो ॥
ऐ ! नौ जवानो ! उठो !
निद्रा की वेला त्याग चलो अब, मां के सुपूतो ! उठो ॥
भारत के वीरो ! उठो ॥ २ ॥

प्राचीन गौरव के संस्थापन, के अवलम्ब तुम्हीं,
मातृभूमि की मर्यादा के, हो स्तम्भ तुम्हीं,
'पाकिस्तान' बना भारत में, सिंहों के लालो ! उठो ॥
ऐ नौजवानो ! उठो !
निद्रा की वेला त्याग चलो अब, मां के सुपूतो ! उठो ॥
भारत के वीरो ! उठो ॥ ३ ॥

भय कैसा है, कैसा आलस्य, कैसा है सोच विचार,
"वीर" मही अम्बर कंपा दो, 'ओ३म्' ध्वजा कर धार,
प्रिय 'सत्यार्थ-प्रकाश' बचाओ, ऋषि के कुमारो ! उठो ॥
आर्य कुमारो ! उठो !
निद्रा की वेला त्याग चलो अब, मां के सुपूतो ! उठो ॥
भारत के वीरो ! उठो ॥ ४ ॥

विचार-दर्शन

[लेखक आचार्य वैद्यनाथ जी शास्त्री एम० ए० नासिक]

'वाद' वे शक्तिशाली साबुन के बुलबुले हैं जिनसे विज्ञान के प्रौढ विद्वान् ही अपना मनोविनोद कर सकते हैं। सर्वसाधारण तो उन में से केवल विचारों की शृङ्खला का ही चयन कर सकता है। वास्तव में मनुष्य का मस्तिष्क ही विचार का पुंज है। वह विचारवान् प्राणी होने से प्रत्येक क्षण इसके क्षेत्र में विचरता है। प्रत्येक मनुष्य के विचार में कुछ न कुछ आकर्षण होता है। किसी में अधिक मात्रा में तो किसी में न्यून। जिसके विचार में जितना ही आकर्षण होता है, वह उतना ही अधिक प्रभाव उत्पन्न कर सकता है और अधिक मात्रा में व्यक्तियों को अपनी ओर आकृष्ट कर सकता है। लेखक अध्यापक, संपादक, वक्ता, नेता और कनवेसर्स आदि में इस विशेष गुण की आवश्यकता है। इनके विचार में जितना ही आकर्षण होगा उतना ही ये अपने कार्य में अधिक सफल होंगे। संसार में किसी में या विचार शक्ति विकसित हो जाती है और किसी में नहीं परन्तु संभावना प्रत्येक में इसके विकास के लिये प्रतिक्षण विद्यमान है। जिस प्रकार विविध विज्ञानों का अध्ययन करना आवश्यक और रुचिकर है उसी प्रकार विचारों का अध्ययन भी। विचार वस्तुतः मानव में एक आकर्षक अयस्कांत है। इसे ही व्यक्तिगत आकर्षण के नाम से भी व्यवहार में लाया जाता है। यह आकर्षण मनुष्य के चैतन्य के साथ निहित है। यह प्रत्येक क्षण में मनुष्य के मस्तिष्क से निकलती है और दूसरे प्रभावित होते रहते हैं। मानव मस्तिष्क इसकी तरंगें उत्पन्न करता है जो सदा प्रवाहित होती हैं। इन तरंग प्रवाहों का बलाबल इनके साधन और करण के बलाबल के अनुरूप ही होता है। प्रभावित किये जाने वाले मानवों का मस्तिष्क एक प्रकार का दुर्ग है। उस दुर्ग में शक्तिशाली विचार तरंगों की धारा ही प्रवेश पाती है। निर्बल धारायें प्रवेश न पाकर वापस आ जाती हैं। मनुष्य जो भी विचार उत्पन्न करता है वह ध्वनि की तरंगें अवश्य उत्पन्न करता है चाहे वह कितना ही सशक्त अन्यथा अशक्त क्यों न हों। उसकी परिधि में जो भी आवेगा किसी न किसी रूप में न्यून अथवा अधिक अवश्य प्रभावित होगा। स्थिर जल पर किसी ढेले को फेंकने पर जिस प्रकार वीचियों की तरंगें पैदा होती हैं, उसी प्रकार विचारों का भी होता है। यही कारण है कि एक मनुष्य के विचार से दूसरा प्रभाव में आता है। मनुष्य के विचार दूसरे को ही प्रभावित करते हैं ऐसा नहीं, वे स्वयं पर भी प्रभाव डालते हैं। मनुष्य अपने हृदय में जैसा सोचता है वैसा ही वह बनता है जैसा वह मन से सोचता है वैसा ही वाणी से व्यवहार करता है। जैसा व्यवहार

करता है वैसा ही कर्म करता है और जिस प्रकार के कर्म हैं,तदनुरूप ही वह बनता है। यह उक्ति ठीक ही है कि मनुष्य अपने मनोविचारों की उपज है। मनुष्य का मस्तिष्क भी दो प्रकार का होता है। बाह्यज्ञान प्रधान और आभ्यन्तर ज्ञान प्रधान। इनके कार्य भी दो तरह के होते हैं—सक्रिय और प्रतिक्रिय। पहले प्रकार के मस्तिक को विश्राम लेने की आवश्यकता पड़ती है। परन्तु दूसरे प्रकार का मस्तिष्क निरंतर कार्य करने के स्वभाव वाला है। वह थकता नहीं। पहले का कार्य आत्मा की प्रेरणा से होता है और नाड़ियों को बहुत परिश्रम करना पड़ता है। दूसरे को ऐसा नहीं करना पड़ता। वह सदा एक सा ही परिश्रम करता है। पहले के विचार स्वतन्त्र होते हैं जबकि दूसरे के विचार पहले के परतन्त्र होते हैं। मनुष्य जो कुछ सम्मति दूसरे को देता है, वह भी एक निश्चित विचार का रूप है। सम्मति की भी तीन श्रेणियां है। किसी सम्मति का कायम करना, किसी सम्मति का आचरण करना और किसी संमति का प्रकट करना। जहाँतक संमति के कायम करने और आचरण में लाने का सम्बन्ध है। मनुष्य अधिकांशतः उनमें स्वतन्त्र है। वह जैसी सम्मति बनाना चाहे अथवा उसी पर आचरण करना चाहे या न करना चाहे कर सकता है। परन्तु सम्मति के प्रकट करने में उसे परतंत्रता है क्यों कि उसका प्रभाव समाज पर पड़ा करता है। प्रत्येक व्यक्ति एक समाज का अङ्ग है। उसे कोई ऐसी सम्मति नहीं दी जा सकती जो समाज के लिये किसी भी हालत में हानिकर हो यह परतंत्रता ही वास्तव में विधान के रूप में परिवर्त्तित हो गयी। हर क्षेत्र के विधान दो प्रकार के है शास्त्रीय और राजकीय। सत्य बोलना चाहिए झूठ नहीं, और ऐसा सत्य नहीं बोलना चाहिए जो अप्रिय हो इत्यादि शास्त्रीय विधान इसी रहस्य पर आधारित हैं। मनुष्य किसी अन्याय के प्रति अपनी सम्मति प्रकट कर सकता है,यह उसका मानवीय अधिकार है परन्तु यदि उसकी इस सम्मति के प्रकटीकरण से समाज में अशांति फलती हो, समाज की व्यवस्था भंग होती हो तो वह ऐसी संमति नहीं प्रकट कर सकता यह राजकीय विधान क क्षेत्र है। आज अवैध भाषणों आदि पर जितना प्रतिबन्ध लगाया जाता है वह इसी नियम पर आधारित है। यदि विचार को स्वतन्त्रता को नियंत्रित न किया गया होता तो कोई भी मनुष्य संसार में शांति का जीवन नहीं व्यतीत कर सकता था। प्रत्येक की स्वतन्त्रता का परिणाम विशाल मानव परिवार के लिये हानि का विषय बन जाता। विचार को किस प्रकार प्रकट करना चाहिये इसके दो रूप हो गये। उनमें से प्रथम ने शिष्टता का रूप धारण किया जिससे कर्तव्य आदि के विचार उठे। दूसरे ने विचार को प्रकट करने की निपुणता का स्वरूप अपनाया। यह एक कला के रूप में विकसित हो गया। इसीसे साहित्य काव्य आदि की भावनाएँ बनी। विचारों के प्रकट करने में यदि वैचित्री न आती तो कला और साहित्य का प्रसार न होता। भावात्मक दृष्टि से ही विचारों का मूल्य है ऐसा नहीं। इसका दार्शनिक अंचल भी है। विचारों को विशृङ्खलित न रहने दिया जावे और संक्षेप में नियमित-रूप से कोई विचार प्रकट किया जा सके—इस महान् अन्वेषण ने मानव मस्तिष्क को एक विज्ञान की तरफ प्रेरित

किया। वह विज्ञान विचारों का विशुद्ध विज्ञान कहा जाता है। उसे ही आज हम तर्कशास्त्र के नाम से पुकारते हैं।

अंकगणित जहां काल का सन्निकृष्ट विज्ञान है, रेखागणित विशुद्ध देश का सन्निकृष्ट विज्ञान है, वहां तर्क विचारों का विशुद्ध विज्ञान है। भाषा भी एक प्रकार का विचार ही है। वाह्य विचारों का नाम भाषा और आन्तरिक विचारों का नाम विचार है। भाषा वाह्य विचार है और विचार आभ्यन्तरीय भाषा है। यदि मनुष्य को अपने विचार को इसी पर व्यक्त करने की आवश्यकता न होती तो भाषा की आवश्यकता ही न पड़ती। मानव चेतना में जहां विचार हैं वहां भाषा भी है। विचार मनुष्य को दूसरे से भी मिलता है और अपने मन में भी उसका उद्भव होता है। परन्तु जहां विचार को हम अपने स्वयं से बाहर की ओर ले जाते हैं वहां हम भाषा के क्षेत्र में पहुँच जाते हैं। भाषा और विचार की समस्या आदिम मनुष्यों में कैसी समन्वय खावे, इसके लिये ही वास्तव में संप्रदायों को ईश्वर प्रेरणा और इलहाम पर बल देना पड़ा। यदि आदिम मनुष्य को विचार परमेश्वर से प्राप्त होते है तो भाषा तो विचार का ही रूप है, वह भी उसी प्रेरणा से प्राप्त हुई होगी। यह विचार प्राय: सभी "धर्मों" में पाया जाता है। ज्ञान अनुभव और आन्तरिक स्वाभाविक प्रज्ञा का फल है। यह ज्ञान भी विचार के रूप में ही मनुष्य में विद्यमान है। बिना विचार के ज्ञान का होना देखा नहीं जाता। कोई भी अनुभूति जब तक विचार के रूप में नहीं पहुँच जाती, ज्ञान का रूप नहीं धारण कर पाती है। अनुभव को विचार की अवस्था तक पहुँचने में कई स्थितियों से गुजरना पड़ता है। इस लिये ज्ञान भाषा और विचार परस्पर ओतप्रोत हैं। विचारों के आदान प्रदान से भी परस्पर हम सभी का परिज्ञान होता रहता है। पूर्व से ही कोई भावना या धारणा बना रखना इस विचार विनिमय के मार्ग में बहुत बाधक है। इससे मनुष्य दूसरे के विचार की परिधि में आने से ही हटता फिरता है और हृदय में दूसरे के विचार को ग्रहण करने की जो इच्छा है, जिसे जिज्ञासा भी कहा जा सकता है, समाप्त हो जाती है। विचार में जहां आकर्षण है वहां ग्रहण करने वाले की यह ग्रहण न करने की पूर्व निश्चित धारणा उसकी प्रतिरोधक है। शिक्षा और संप्रदाय के क्षेत्र में यही धारणा अत्यन्त बाधक है। जिज्ञासा के अभाव से शिष्य में सीखने की भावना जाती रहती है। अजिज्ञासु व्यक्ति कभी भी किसी चीज़ की शिक्षा ग्रहण करने में समर्थ नहीं हो सकता। यही हाल सत्य की खोज के विषय का भी है। जो अपनी एक पूर्व धारणा बना चुका है वह सत्य के ढूंढने का आदी नहीं। पूर्व निश्चित धारणा खोज की विरोधी है। साहित्य के क्षेत्र में विचार का समन्वय सहृदयता से करना पड़ता है सहृदय में ही कवि कर्म और साहित्यिक कर्म का अभ्युदय होता है। प्रत्यक्ष संसार को देखते सभी हैं, सभी अनुभव करत हैं और विचार सृजन करते हैं परन्तु कलात्मक कृति का उद्‌भव सहृदय में ही होता है। साहित्यदर्शन के विशारदों ने सहृदयता को बहुत उच्च स्थान दिया। असहृदय में जगत् के निरीक्षण करने

पर भी रसाविर्भाव नहीं हो पाता। और न व्यंजनावृत्ति ही जागरूक होती है। यही कारण है कि विचार के साथ सहृदयता परमावश्यक है। जरन्मीमांसक और तर्क कर्कश नैयायिकों में इसी लिए रसावबोधाभाव दर्शाया गया है। कार्यकारण विवेचना का दर्शन जगत् को क्षणिक और दुःखमय बतलाता है परन्तु काव्य दर्शन का पथिक कवि उसे सौन्दर्यमय और आनन्दमय रूप में दिखलाता है। उसकी सौन्दर्यानुभूति से उत्पन्न विचार लोगों को विश्व का दर्शन एक दूसरे ही रूप में कराते हैं। उपनिषदों का यह विचार ठीक ही है कि आदित्य की प्रतिष्ठा नेत्रों से है और नेत्र रूपों में प्रतिष्ठित हैं। रूपों का प्रतिष्ठान हृदय में है। संसार के रूप और सौन्दर्य को मनुष्य हृदय से देखता है और उसकी अभिव्यक्ति भी हृदय से ही करता है।

सम्प्रदाय और आर्य समाज !

[लेखकः-वैदिक अनुसंधान विद्वान् श्री शिवपूजन सिह जी'पथिक'सिद्धान्तशास्त्री, साहित्यालंकार कानपुर]

सम्प्रति भारतवर्ष में शैव, शाक्त, गाणपत्य, वैष्णव, रामानन्द, रामानुज, कबीरपन्थी, उदासी, सिक्ख, प्रभृति अनेकों सम्प्रदाय हैं। सम्प्रदाय एक व्यक्ति विशेष द्वारा प्रचलित होता है जिनके सिद्धान्त को मानना उनके अनुयायी के लिए अत्यन्त आवश्यक है। धर्म किसी व्यक्ति विशेष द्वारा प्रचलित नहीं होता है यथा वैदिक धर्म।

कतिपय व्यक्ति भ्रमवश "आर्यसमाज" को सम्प्रदाय लिखते + व मानते हैं। आर्य-समाज, महर्षि दयानन्द जी महाराज द्वारा स्थापित एक महान् क्रान्तिकारी सुधारक संस्था है जो सनातनधर्म में घुसी हुई बुराइयों को दूर कर वेदानुकूल धर्म का प्रचार करता है। अमेरिकावासी योगी 'एण्ड्रो जेकसन डेविस' लिखता है:—"I behold a fire that is universal, the fire of infinite love, which burneth to destory all hate, which dissolveth all things to their purification.

The spirit of man is on fire with the lightening of infinite progression. Only the sparks there of ascend into the heavens, lambient flames, here and there appear in the inspirations of orators, poets, writers of scriptures. To restore primitive Aryan religion to its first pure state was the fire in the furnace called, "Arya Samaj" which started and burnt brightly in the bosom of that inspired son of God in India, Dayanand Sarswati, from him the fire of inspiration was transferred to many noble inflaming souls in the land of eastern dreams........ Hindoos and Muslims ran together to extinguish the consuming fire which was flaming on all sides, with a fierceness that was never dreamed of by the first Kindler Dayanand. And Christians,

---

+ गुजरात विद्यापीठ के आचार्य श्री कालेलकर जी ने "गुजराती नवजीवन" के अङ्क में लिखा था :—

"आर्यसमाज जैसे जोशीले सम्प्रदाय.........." [११|१०|२१]

श्री महेशप्रसाद त्रिवेदी एम-ए.; एम-एस-सी.; तथा महेन्द्रसिंह पमार, एम-ए.; एल-एल-बी. ने अपनी पुस्तक "एटैक्टस बुक आफ जनरल नालेज "[जून १९५१ ई० प्रेम बुक डिपो, हास्पिटल रोड, आगरा द्वारा प्रकाशित] के पृष्ठ १२६ में लिखा है—"वर्तमान समय में सनातन धर्म और आर्यसमाज हिन्दू धर्म के दो प्रमुख सम्प्रदाय हैं।.........इस सम्प्रदाय के अनुयायी भारत में बहुत हैं।"

too, whose alter fire and sacred candles were originally lighted with dreamy east, joined Muslims and Hindoos in their efforts to extinguish the newlight of Asia. But the heavenly fire increased and propagated it self."

भावार्थ—"महर्षि दयानन्द जी के हृदय में सर्व पापदाहक और पावित्र्य प्रसारक आग प्रदीप्त हुई। उस पावक का भट्टीरूप निकेतन वह आर्यसमाज है जो पुरातन आर्य धर्म को उसके वास्तविक स्वरूप में फैलाना चाहता है। उस अग्नि को बुझाने के लिए ईसाई मुसलमान और हिन्दुओं ने बहुत प्रयत्न किए किन्तु उस सर्व भक्षी अग्नि को कोई बुझा न सके। वह अग्नि सारी ईर्षा एवं द्वेष को जला कर प्रत्येक वस्तु को उसके पवित्र स्वरूप में प्रकट कर रही है। उस पूर्वखण्ड एशिया का नूतन प्रकाश आर्यसमाज जो स्वर्गीय अग्नि है, वह दिन २ वृद्धिगत होकर अधिकाधिक प्रसारित हो रही है।"

यहां आर्य समाज को लेखकने "All consuming fire, purifying,and universal fire के जो विशेषण दिए हैं, वे सर्वथा योग्य हैं उस सर्वभक्षी अग्नि में सब सम्प्रदाय भस्मसात् होने के लिए ही हैं। यदि आर्य समाज को उससे आलोचक वर्ग उपर्युक्त दृष्टि से देखने का सच्चा प्रयत्न कर देखें, तो शायद कोई भी आर्य समाज को 'सम्प्रदाय' कहने का साहस न करेगा। आर्यसमाज और प्रचलित अर्थ में योजित 'सम्प्रदाय' का तो शाश्वत विरोध है।

आर्य समाज को सम्प्रदाय कहने वाले लोग उसे किस अर्थ में सम्प्रदाय कहते हैं यह समझ में नहीं आता। सम्प्रदाय का एक अर्थ रूढ़ि, रीति-रिवाज होता है, दूसरा प्रचलित अर्थ जो आजकल प्राय: किया जाता है वह यह है कि पन्थ विशेषधर्म का संकुचित रूप। आंग्ल भाषा में उसे Sect भी कह सकते हैं। यदि इसी अर्थ में आर्य समाज को चित्रित करने का प्रयत्न किया गया हो, तो आलोचक वर्ग आर्य समाज के मूल सिद्धान्तों के समझने में भूल करते हैं।

आर्य समाज की स्थापना का मूल उद्देश्य ही इस प्रकार के कथित विभिन्न मत, पन्थ और धार्मिक दायरे एवं सम्प्रदाय, जो देश, धर्म, राष्ट्र की अवनति के मुख्य कारण हैं, उनको मिटाकर एक सार्वभौम वेदोपदिष्ट वैदिक धर्म को प्रचलित करने का है।

संस्कृत कोषकारों में अधिकतर प्रामाणिक कोषकार श्री वामन शिवराम आप्टे अपने "संस्कृत अङ्गरेजी शब्द कोष" में "सम्प्रदाय" शब्द के अर्थ इस प्रकार देते हैं:—Traditon, traditional doctrine, traditional handling down of instruction. 2. A religious doctrine inculcating the worship of one peculiar deity. 3. An established custom, usage."

अब सम्प्रदाय शब्द के दिये हुए उपर्युक्त अर्थों में से प्रथम अर्थ Tradition या Traditional doctrine अथवा Traditional handling down of instruction इसे आर्यसमाज के साथ घटा कर देखें। घटाने पर ज्ञात होता है कि आर्य

समाज की अपनी कोई Tradition न है और नहीं आर्य समाज को किसी पुराणादि की ट्रेडीशन है। और कोई Traditional doctrine भी नहीं है, क्योंकि वह मानव की कृति होती है और आर्य समाज तो केवल ईश्वर प्रणीत वेदों को ही निर्भ्रान्त मानता है। अतः उसे ट्रैडेशन के साथ कोई तात्पर्य नहीं है। अपितु ट्रेडीशन की तरह कितनी ही अन्ध "वैधव्यजीवन यापन, समुद्रयात्रा-निषेध, मृतक श्राद्धादि रूढ़ियों का आर्यसमाज प्रबल विरोधी है।

दूसरा अर्थ "A religious doctrine inculcating the worship of one peculiar deity." देव विशेष की पूजा की आज्ञा देने वाला धार्मिक मन्तव्य। आर्य समाज को एक निराकार, सर्व व्यापक, सृष्टिकर्त्ता परम पिता परमात्मा को छोड़ कर अन्य देवी देवताओं की पूजा या पीर पैगम्बर अथवा खुदा के पुत्र की अर्चना करने की या सिखने की आवश्यकता ही नहीं है। किसी प्रकार के अवतारों की या मानवों की पूजा का तो वह कट्टर विरोधी है।

तीसरा अर्थ "An established custom, usage" स्थापित लोकाचार या रूढ़ि-आर्य समाज इसका भी पक्षपाती नहीं है। अतः कोषकार के दिए हुए 'सम्प्रदाय' शब्द के अर्थों में से कोई भी अर्थ आर्य समाज पर लागू नहीं होता है।

आर्य समाज न तो सम्प्रदाय है और न धर्म; वरन् वह वैदिक धर्म का पथ-प्रदर्शक है क्योंकि आर्य समाज का अपना भी एक धर्म है, जिसे विद्वान् वैदिक धर्म या वेदों का धर्म कहते हैं।

जब आर्य समाज स्वयं अपनी दृष्टि से धर्म नहीं है और कोषकार की दृष्टि में भी सम्प्रदाय नहीं है; फिर भी आलोचक वर्ग क्या समझ कर आर्य समाज को सम्प्रदाय कहते हैं? सम्प्रदाय की यह भी एक प्रणाली होती है कि उसका एक गुरु होना चाहिए और उस गुरु के मत या सिद्धान्त विरुद्ध उस सम्प्रदाय में रहने वालों से कुछ नहीं हो सकता। इस दृष्टि से भी आर्य समाज को सम्प्रदाय नहीं कह सकते। कतिपय लोग कह सकते हैं कि ऋषि दयानन्द जी आर्य समाज के गुरु हैं। परन्तु लाहौर आर्य समाज ने ऋषि दयानन्द जी को गुरु मानकर सम्मानित करने की इच्छा प्रदर्शित की तब ऋषि ने उस समय अस्वीकार करते हुए कहा था कि—"मैं स्वयं गुरु नहीं हूं और मुझ में गुरु होने की योग्यता भी नहीं है। यदि यह समय कपिल और कणाद का होता, तो मैं उनके गुरुकुल का एक शिष्य होता। गुरु तो केवल योगशास्त्र के कथनानुसार केवल परमेश्वर ही हैं क्योंकि "स पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात्"=जो पूर्व के पूर्व्यों का भी गुरु है और जिसे काल विनष्ट नहीं कर सकता है वह गुरु है अर्थात् परमात्मा।"

देखिए पौराणिक विद्वान्, श्री पं० किशोरी दास जो वाजपेयी शास्त्री, लिखते हैं :—"बंगाल में "ब्रह्म समाज" की स्थापना के अनन्तर आर्य समाज का जन्म हुआ। इसके प्रवर्त्तक स्वामी दयानन्द सरस्वती संस्कृत के विद्वान् थे और समाज की गिरी हुई दशा को ठीक करने के

लिए चिन्तित थे। समाज सुधार की भावना से उन्होंने आर्य समाज को जन्म दिया। इस संस्था के द्वारा देश में नव चेतना का संचार हुआ है। इसमें सन्देह नहीं ※

यदि आर्यसमाज सम्प्रदाय होता तो इस पर प्रहार करने वाले श्री वाजपेयी जी सम्प्रदाय लिखने से कभी न चूकते। उन्होंने तो स्पष्ट "संस्था" लिखा है। हिन्दी विश्वकोषकार श्री नगेन्द्रनाथवसु 'प्राच्य विद्यामहार्णव' ने भूल से आर्य समाज को "सम्प्रदाय विशेष"+ लिखा है।

आर्य समाज सम्प्रदाय है या नहीं इसका निर्णय अन्य कोई न करें तो उससे पूर्व आर्य समाज के संस्थापक ही स्वयं निर्णय करें तो अधिक न्यायोचित होगा, क्योंकि अन्य विद्वानों की अपेक्षा आर्य समाज को उसके संस्थापक अच्छी तरह समझ सकते हैं, यह स्पष्ट है। अतः महर्षि दयानन्द जी की सम्मति देखिए-"यद्यपि आजकल बहुत से विद्वान् प्रत्येक मतों में हैं। वे पक्षपात छोड़ सर्वतन्त्र सिद्धान्त, अर्थात् जो जो बातें सब के अनुकूल, सब में सत्य हैं उनका ग्रहण और दूसरे से विरुद्ध बातें हैं, उनका त्याग कर परस्पर प्रीति से वर्त्तें वर्तावें तो जगत् का पूर्ण हित होवे।"

"यद्यपि मैं आर्यावर्त देश में उत्पन्न हुआ और बसता हूँ तथापि जैसे इस देश के मत मतान्तरों की झूठी बातों का पक्षपात न कर यथा तथ्य प्रकाश करता हूँ वैसे ही दूसरे देशस्थ वा मतोन्नति वालों के साथ भी वर्तता हुं, जैसा स्वदेश वालों के साथ मनुष्योन्नति के विषय में वर्तता हूँ वैसा विदेशियों के साथ भी।" (सत्यार्थ प्र० भूमिका)

सम्प्रदायत्वा मत शब्द से ऋषि को कितनी चिढ़ थी सो निम्न उदाहरण से स्पष्ट होता है--

"बहुत से हठी, दुराग्रही मनुष्य होते हैं कि जो वक्ता के अभिप्राय के विरुद्ध कल्पना किया करते. विशेष कर मत वाले लोग। क्योंकि मत के आग्रह से उनकी बुद्धि अन्धकार में फंस के नष्ट हो जाती है।"।

(सत्यार्थ प्र० भूमिका)

आर्य समाज को किसी बात में कभी मिथ्या दुराग्रह नहीं है। यह सत्य की प्रतीति होते ही सदा उसको ग्रहण करता आया है। सम्प्रदाय शब्द में सत्य की अपेक्षा मताग्रह या दुराग्रह को विशेष स्थान होता है, और आर्य समाज का चौथा नियम है—"सत्य ग्रहण करने और असत्य के छोड़ने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिए।"

वर्तमान काल में गिने जाने वाले धर्मों में से ऐसा कौन सा धर्म है जो कि इस नियम का पालन करता है?

अतएव आर्य समाज को सम्प्रदाय कहना उचित नहीं है।

※ "ब्राह्मण, सावधान!" पुस्तक पृष्ठ ३४ [सन् १९४६ ई० में हिमालय एजेन्सी, कनखल (हरिद्वार) द्वारा प्रकाशित]

+ "हिन्दी विश्वकोष"। द्वितीयभाग पृष्ठ ६८३, [सन् १९१५ ई० कलकत्ता संस्करण]

स्वामी श्रद्धानन्दो विजयतेतराम्

तपसा ब्रह्मचर्येण, धाम्ना लोकातिशायिना ।
अप्रधृष्यो मनुष्याणामादित्य इव यो ऽभवत् ॥ १ ॥
विश्वासभूमिरार्याणां, भयकृद् भारतद्रुहाम् ।
दीनानां गतिहीनानां, यः शरण्यो महानभूत् ॥ २ ॥
महावैराग्यवांश्चापि प्रणवे यस्तु रागवान् ।
आस्तिकः श्रद्धानश्च न निराशः कदाप्यभूत् ॥ ३ ॥
निर्माता नवराष्ट्रस्य रक्षिता चार्यसंस्कृतेः ।
यस्य नामापि संस्मृत्य, महाप्राणो भवेज्जनः ॥ ४ ॥
ऋषिकल्पं तमाचार्यं, श्रद्धानन्दं दृढव्रतम् ।
परिव्राजं महात्मानं, प्रणमामः सहस्रशः ॥ ५ ॥
अनुसर्तुं तमेवार्यं यथा च प्रयतेमहि ।
तथा दिशतु नो मार्गं भगवान् जगदीश्वरः ॥ ६ ॥

जनमेजयः विद्यालङ्कारः शास्त्री, एम. ए. कानपुर ।

गौरवशाली संस्कृत वाङ्मय

भारत के राष्ट्रपति डा० राजेन्द्रप्रसाद जी

(दरभंगा में 'संस्कृत वाङ्मय अनुसंधान प्रतिष्ठान' का उद्घाटन भाषण)

—:०:—

संस्कृत वाङ्मय भारत की ही नहीं सारी मनुष्य जाति की अमूल्य निधि है। उसकी प्राचीनता, उसकी व्यापकता, उसकी विशदता, उसका सौन्दर्य और मधुरता सभी कुछ इसी प्रकार का है जिससे न केवल मानव की आजतक की संस्कृति का सारा इतिहास ज्योतिर्मय हो उठता है वरन् मानव का हृदय आनन्दसे विभोर हो जाता है। मानव-जाति के सांस्कृतिक विकास का चित्र तो संस्कृत वाङ्मय की सहायता के बिना बनाया नहीं जा सकता। संसार की किसी जाति के पास इतना प्राचीन साहित्य नहीं है जितना हम भारतीयों के पास है। इसी साहित्य के आधार को रेखांकित किया जा सकता है।

संसार का ऐसा कोई देश नहीं जहां किसी न किसी रूप में संस्कृत साहित्य न पहुंचा हो, चीन से लेकर आयर तक और स्कैन्ड-नेविया से लेकर स्वर्णद्वीप माला तक भारतीय वाङ्मय का प्रभाव फैला; एशिया के चीन, तिब्बत आदि देशों में ही संस्कृत की ज्योति प्रचण्ड हुई हो यह बात नहीं है मध्य पूर्व और योरप के देशों के सांस्कृतिक सामाजिक जीवन पर भी संस्कृत साहित्य का व्यापक प्रभाव पड़ा था। जर्मन विद्वान् विण्टरनिट्ज ने लिखा है "अपनी प्राचीनता, विशाल भाग में अपने विस्तार, अपनी विशदता और समृद्धि, कला की उत्कृष्टता और सबसे अधिक संस्कृति के इतिहास की दृष्टि से संस्कृत के महान् मूल और प्राचीन वाङ्मय का अध्ययन रुचि पूर्वक करना चाहिए।

यदि हम अपनी संस्कृति के प्रभात को समझना चाहते हैं तो हमें भारत की शरण लेनी चाहिये। जर्मन और योरप के अन्य साहित्यों पर भारतीय साहित्य का बहुत प्रभाव है। योरपीय वर्णनात्मक साहित्य का बहुत कुछ आधार भारत का कथा साहित्य ही है'।

मानव संस्कृति को समझने जानने और प्राचीन आत्मा को पहचानने के लिये ही नहीं वरन् कला के सर्वोत्कृष्ट रूप से आनन्द विभोर होने के लिये भी संसार भर के लिये संस्कृत वाङ्मय का अध्ययन आवश्यक है। जीवन का ऐसा कोई पहलू नहीं, मानव अभिव्यक्ति की ऐसी कोई रीति नहीं, कला का ऐसा कोई रूप नहीं, जिस में संस्कृत वाङ्मय पूर्णता को न पहुँचा हो। समाज और व्यक्ति, राजा और रंक, नागरिक और ग्रामीण, मानव और पशु पक्षी, सभ्य और असभ्य, चेतन और जड़

आत्मा और परमात्मा सभी के सम्बन्ध में वर्णन इस वाङ्मय में हृदय स्पर्शी और अनूठे ढङ्ग से किया गया है। मानव हृदय का ऐसा कोई प्रकोष्ठ नहीं जो उसकी दृष्टि से छिपा रह गया हो या जिसके अन्तर्गत की बात अत्यन्त कौशल से व्यक्त न की गयी हो। प्रकृति का ऐसा कोई स्वरूप नही जिसका सुन्दर और सही चित्र वहाँ मौजूद न हो। समाज का ऐसा कोई पहलू नहीं जिसकी व्याख्या और उस के अन्तर्गत में काम करने वाले आदर्शों, वेदनाओं और व्यसनों का हूबहू चित्र वहाँ न हों, और मानव जाति के भविष्य और भाग्य से सम्बन्ध रखने वाला ऐसा प्रश्न नहीं जिसका विचार पूर्ण और यथोचित उत्तर वहां मौजूद न हो। पशु पक्षियों के जीवन का सूक्ष्म और सही वर्णन और मानव जीवन में उनके महत्त्व की वैसी व्याख्या और उनके प्रति सद्भावना तो संसार की किसी अन्य जाति के साहित्य में पायी ही नही जाती है।

उसमें विद्वानों और वयस्कों के लिये सामग्री है तो जन साधारण और बालकों के लिये भी सामग्री भरी पड़ी है। गन्धर्वों, यक्षों असुरों और निशाचरों की अद्भुत सृष्टि और चमत्कारिक शक्ति और कृत्यों का वहाँ ऐसा और इतना काफी वर्णन है कि औद्भुत्य से प्रसन्न होने वाली बालक जाति को अपनी चाहना को पूरा करने की अनन्त सामग्री मिल जाती है। स्मृति में सहज ही घर कर लेने वाली ऐसी उक्तियाँ हैं जिनमें जीवन का ज्ञान भरा है और जिनके सुनने और मन में डाल लेने से ही साधारण जन भी ज्ञानवान् बन जाते हैं, और ऐसी कथाएं हैं जिनके सुनने मात्र से ही अपढ़ भी पण्डित बन जाते हैं।

इन व्यावहारिक उपयोगिताओं के अतिरिक्त कला की दृष्टि से भी उसमें चमत्कार भरा है जो अन्यत्र शायद ही उपलब्ध हो सके। घट में समुद्र भरने की कहावत यदि कहीं ठीक अर्थों में पूरी हुई है तो संस्कृत वाङ्मय में ही। अर्थ और शब्द साम्य जितना संस्कृत वाङ्मय में मिलता है वह किसी अन्य साहित्य में नहीं मिलता। अलंकारों की शोभा और शब्द साम्य जितना संस्कृत वाङ्मय में मिलता है वह किसी अन्य साहित्य में नहीं मिलता। यदि अलंकारों की शोभा और शब्द व्यंजना का उत्कृष्ट चमत्कार कहीं देखा जासकता है तो वह भी संस्कृत वाङ्मय में। विचार की सूक्ष्मता और दर्पण सम चित्रण देखना हो तो वह भी अन्यत्र ऐसा नहीं मिलेगा जैसा संस्कृत वाङ्मय में। थोड़े शब्दों में यह कहा जा सकता है कि संस्कृत वाङ्मय ही ऐसा वाङ्मय है जिसमें शब्दों की सर्वोत्तम व्यञ्जना हुई है। क्या गद्य, क्या पद्य, क्या नाटक और क्या गीत काव्य सभी में तो संस्कृत लेखक सिद्धहस्त रहे हैं। विण्टरनिट्ज ने एक स्थल पर लिखा है 'भारतीय साहित्य में वह सभी कुछ है जो साहित्य शब्द के व्यापकतम अर्थ में निहित है अर्थात् पद्यात्मक, पारलौकिक और ऐहिक काव्य, महाकाव्य, गीत काव्य, नाटक और नीति काव्य और साथ ही वर्णनात्मक और वैज्ञानिक गद्य।'

ईसा पूर्व १५०० से लेकर ईसा पश्चात् १००० तक संस्कृत वाङ्मय का कोष अमूल्य ग्रन्थ रत्नों से भरपूर हो चुका था। परा विद्या

में उपनिषदों जैसे ग्रन्थ महा काव्यों में रामायण और महाभारत जैसी उच्च कोटि की रचनाएं, भास कवि के प्रसिद्ध नाटक ईसा से कई शताब्दियों पूर्व हमारे वाङ्मय के अंग बन चुके थे। इन उच्च कोटि के आदर्श ग्रन्थों के समान हृदय स्पर्शी और रस मय ग्रन्थ संसार के अन्य किसी साहित्य में नहीं है।

संस्कृत साहित्य की अपेक्षाकृत इस उत्कृष्टता का कारण कुछ सीमा तक संस्कृत भाषा की अपनी प्रकृति जन्य विशिष्टता है। उसका व्याकरण और शब्द भण्डार कुछ ऐसा है कि शब्दों की व्यञ्जना इतनी खूबी और अर्थ भरे ढंग से हो सकती है जितनी कि संसार की किसी भी अन्य भाषा में चाहे वह प्राचीन हो अथवा अर्वाचीन नहीं हो सकती। समास-पद्धति के कारण घट में सागर भरा जा सकता है जबकि अन्य भाषाओं में यह उस सीमा तक न कभी सम्भव हुआ है और न हो सकता है।

भारत विशाल देश है। उसमें हर प्रकार की जलवायु और अनेक प्रकार के प्राकृतिक दृश्य कनेक जातियों के फूल पौधे, पशु पक्षी, और विभिन्न रूप रंग और रिवाजों वाली जातियां पायी जाती हैं। अतः इस सतरंगी पृष्ठ भूमि पर भारत के कलाकार यदि अनेक प्रकार के सुन्दर शब्द चित्र बना सके तो यह कुछ अस्वाभाविक बात नहीं थी।

सारे संस्कृत वाङ्मय में हमें कोई ट्रेजडी या दुःखान्त काव्य या नाटक नहीं मिलता यह हमारे साहित्य की विशेषता है। यह बात नहीं कि काव्य के नायक को हर प्रकार की यातनाएं न सहनी पड़ती हों। हाँ इन सबका उपयोग सफलता की सोपान के रूप में दिखलाया गया है। नल-दमयन्ती, हरिश्चन्द्र शैव्या, सत्यवान्-सावित्री इत्यादि प्रसिद्ध कथाओं के सभी नायक विपत्ति सागर को पार कर अन्त में सफलता और सुख को प्राप्त कर लेते हैं। इसी विश्वास के कारण हमारा सारा साहित्य क्षणिक वेदनाओं को अमृतत्व प्रदान करने वाला शब्द-चित्र मात्र न होकर व्यक्ति और जगत् के चिर-कल्याण की साधना में परिणत हो गया है। कला के उद्देश्य के बारे में हमारे साहित्यकों का यह विचार न था कि वह लेखक या पाठकों के मनोरंजन का ही साधन है वरन साथ ही वे यह भी मानते थे कि कला चारों पुरुषार्थों का भी साधन है। इसी धारणा के कारण हमारे महाकाव्यों के सम्बन्धमें यह विश्वास परम्परासे चला आया है कि उनके पठन-पाठन से मनुष्य की मुक्ति हो सकती है। यही कारण है कि सम्पूर्ण भारतीय वाङ्मय में अन्ततोगत्वा धर्म और सत्य की विजय दिखाई गई हैं। इस आधारभूत आदर्श के कारण ही संस्कृत वाङ्मय का महत्त्व कहीं अधिक बढ़ जाता है। मानव का पशुत्व से देवत्व पद प्राप्त करना ही कवि की साधना का ध्येय हो सकता है क्योंकि उसी में उसका अपना आध्यात्मिक कल्याण निहित है। इसी कल्याण भावना के आदर्श रूप में संस्कृत वाङ्मय में नायक-नायिका की जीवनधारा की दिशा निर्माण में परमेश्वर और देवगण प्रकृति, और उसकी प्रेरक शक्तियां सभी भाग लेती हैं।

(शेष पृष्ठ ५२८ पर)

ब्रह्मपारायण यज्ञों की शास्त्रीयता

२

(लेखक—पं० धर्मदेव विद्या वाचस्पति देहली।)

'सार्वदेशिक, के गत अङ्क में इस विषय का प्रथम लेख प्रकाशित हुआ था किन्तु खेद है कि उस में कुछ छापे की अशुद्धियों के अतिरिक्त हस्त-लिखित प्रति के दो पृष्ठ छपने से रह गए थे जिन को लिख कर मैं अन्य शास्त्रीय प्रमाण प्रस्तुत करना चाहता हूं।

यः समिधाय आहुती यो वेदेन ददाशमर्तो अग्नये। यो नमसा स्वध्वरः॥ ऋग्वेद ८।१९।५

इस मंत्र को उद्धृत करके और उसका संस्कृत में अर्थ ऋग्वेद कल्पद्रुम से उद्धृत करते हुए मैं ने लिखा था इस मन्त्र से स्वतन्त्र संहिता होम (ब्रह्म पारायण यज्ञ) का विधान प्रतीत होता है। अर्थ स्पष्ट है कि जो मनुष्य पलाशादि की समिधा घी आदि की आहुति तथा वेद (इस के बाद का २ पृष्ठों का लेख छूट गया था जो आगे लिखा जाता है) संहिता अर्थात् संहितान्तर्गत सब मन्त्रों से हवन द्वारा अग्नि की परिचर्या करता है उस को क्या फल मिलता है इसका वर्णन अगले मन्त्र में है:—

तस्येदर्वन्तो रंहयन्त आशवस्तस्य द्युम्नितम यशः। न तमंहो देवकृतं कुतश्चन न मर्त्यकृतं नशत्॥ ऋ० ८।१९।६

अर्थात् उसके शीघ्र गामी अश्वादि शत्रुओं पर विजयी होते हैं। उसे (द्युम्नितम यशः) दीप्ततमा कीर्तिः—अत्यन्त चमकती हुई कीर्ति प्राप्त होती है। उसे देव कृत—अपनी इन्द्रियों की कुप्रवृत्ति के द्वारा अथवा अन्य मनुष्यों के कुसङ्ग से पाप नहीं प्राप्त होता क्यों कि वेद द्वारा यज्ञ और वैदिक शिक्षाओं के मनन से उस का जीवन पवित्र और तेजोमय हो जाता है। इस पर ऋग्वेद कल्पद्रुमकार ने टिप्पणी की है कि "अतः पाप क्षय कामेनापि संहिता होमो विधेय इति यावत्। अतः जो पापोंका नाश करना अथवा उनसे निवृत्त होना चाहता है उसे भी संहिता होम अथवा ब्रह्म पारायण यज्ञ करना चाहिये।

इस प्रसङ्ग में वहां शांख्यायन गृह्यसूत्र अ० ४ ख० ५ का सू० ६८५ 'अक्षत सक्तूनां धानानां च दधि घृतमिश्राणां प्रत्यृचं वेदेन जुहुयात्" अर्थात् वेद की प्रत्येक ऋचासे यज्ञ करे इत्यादि को उद्धृत किया गया है जिस का मैं आगे उल्लेख करूंगा।

सुप्रसिद्ध आर्य विद्वान् पं० शिवशङ्कर जी काव्यतीर्थने अपने ऋग्वेद भाष्यमें 'यः समिधाय आहुती यो वेदेन'का प्रायः ऊपर उद्धृत समान ही अर्थ किया है। उसका शीर्षक उन्हों ने अग्नि होत्र विधानं करोति। ऐसा करते हुए 'यः मनुष्यः परमात्मानमुद्दिश्य भौतिकाग्नये चन्दन पलाशादिना इंधनेन सेवते यः आहुतिभिर्घृतादीनां सेवते यः वेदाध्ययनेन सेवते इत्यादि लिखा है और

अगले मन्त्र 'तस्येदर्वन्त आशवः। की व्याख्या करते हुए तस्य पूर्वोक्तस्य अग्नि होत्रादि कर्म कर्तुः पुरुषस्यै व शीघ्रगामिनौः अश्वावेग कुर्वन्ति' इत्यादि लिखा है जिस का विस्तार भय से सम्पूर्ण अर्थ लिखने की आवश्यकता है।

(ऋग्वेद कल्पद्रुमादि विषयक ऊपर उद्धृत लेख निर्णय सागर प्रेस बम्बई से प्रकाशित 'ऋक् संहिता' की भूमिका पृ० ३-४ में पाया जाता है।

ऋ० १०। ११४। ६ में मन्त्र आया है।

यज्ञं विमाय कवयो मनीष ऋक् सामाभ्यां प्ररथं वर्तयन्ति ॥

इसके भाष्य में श्री सायणाचार्य ने लिखा है:— (कवयः) (मनीषा) मनीषया बुद्धया एवं (यज्ञम्) (विमाय) निर्माय (रथम्) रमन्त्यत्रेति रथो यज्ञः तं रथं-यज्ञं (ऋक सामाभ्याम्) (प्रवर्तयन्ति) प्रकर्षेण सम्पादयन्ति ॥

अर्थात् बुद्धिमान् लोग बुद्धि से यज्ञ का निर्माण करके उस का ऋग्वेद और सामवेद द्वारा उत्तमता से सम्पादन करते हैं।

श्री पं० जयदेव जी शर्मा विद्यालङ्कार मीमांसा तीर्थ ने इस का अनुवाद करते हुए लिखा है:-

क्रान्त दर्शी बुद्धिमान् जन बुद्धि से ऋग्वेद और सामवेद से यज्ञ का विशेष ज्ञान पूर्वक निर्माण कर के (रथम्) रमणीय सर्व प्रिय यज्ञ को (प्रवर्तयन्ति) करते हैं।

इस मन्त्र द्वारा भी ब्रह्मपारायण यज्ञ का निर्देश स्पष्ट है। यज्ञ की निरुक्ति यास्काचार्य कृत निरुक्त ३। १६। ६ में "यजुरुन्नो भवति" यह की है जिस के भाष्य में दुर्गाचार्य ने ठीक लिखा है कि यजुर्भिः मन्त्रैः संक्लिन्न इव भवति,, अर्थात् जो वेद मन्त्रों से मानो गीला होता है। यहां केवल यजुर्वेद के मन्त्रों से ही तात्पर्य नहीं किन्तु सब वेद मन्त्रों से है इस बात को मुकुन्द शर्मा कृत निरुक्तविवृति में और अधिक स्पष्ट किया गया है। 'यजन्त्येभिरिति यजूंषि सर्वेऽपि ऋग्यजुः सामथर्वाणः' अर्थात् जिनसे यज्ञ किया जाए वे यजूंषि अर्थात् ऋग्वेद, यजुर्वेद, साम और अथर्व वेद के सब मन्त्र कहे जाते हैं। इस प्रकार यज्ञ की इस निरुक्ति व व्युत्पत्ति से भी ब्रह्म पारायण यज्ञ का समर्थन होता है।

महर्षि दयानन्द कृत वेद भाष्य द्वारा समर्थन

महर्षि दयानन्द कृत वेद भाष्य के अनेक स्थलों से भी ब्रह्मपारायण का समर्थन होता है उदाहरणार्थ यजु० २८। ६३ में निम्न मन्त्र है:—

प्रस्तरेण परिधिना स्रुचा वेद्या च बर्हिषा।
ऋचेमं यज्ञं नो नय, स्वर्देवेषु गन्तवे ॥

इस के अनुवाद में महर्षि दयानन्द ने लिखा है, हे विद्वान्! आप जिस में होम किया जाता है उस वेदी तथा होमने का साधन चमसा उत्तम क्रिया (यज्ञ) (बर्हिषा) आसन (परिधिना) जो सब ओर से धारण किया जाए उस यजुर्वेद तथा (ऋचा) स्तुति तथा ऋग्वेदादि से (इमम्) इस पदार्थमय अर्थात् जिस में उत्तम भोजनों के योग्य पदार्थ होमे जाते हैं उस अग्नि होमादि यज्ञ को दिव्य पदार्थ वा विद्वानों में प्राप्त होने के लिये संसार सम्बन्धी सुख हम लोगों को पहुँचाओ। जो मनुष्य धर्म से पाये हुए पदार्थों तथा वेद की रीति से साङ्गोपाङ्ग यज्ञ को सिद्ध करते हैं वे सब प्राणियों के उपकारी होते हैं।।'

मूल संस्कृत भावार्थ में 'ये मनुष्या धर्मेण प्राप्तैर्द्रव्यैर्वेदरीत्या च साङ्गोपाङ्ग यज्ञं साध्नुवन्ति ते सर्वं प्राण्युपकारिणो भवन्ति॥ यजुर्वेद भाष्य २ य खण्ड पृ० १८४७ ये शब्द हैं।

इस मन्त्र से भी महर्षि दयानन्द के भाष्यानुसार ऋग्वेद यजुर्वेद तथा आदि पद से साम वेद और अथर्व वेदके मन्त्रों द्वारा यज्ञ करने का (जिसे ब्रह्मपारायण यज्ञ वा संहिता होम कहा जाता है) निर्देश स्पष्ट है।

इसी प्रकार ऋचो नामास्मि यजूंषि नामास्मि सामानि नामास्मि ये अग्नयः पाञ्चजन्या अस्यां पृथिव्यामधि तेषामसित्वमुत्तमः प्र नो जीवातवे सुव॥ यजु० १८। ६७ तथा रिविदि धा इमं यज्ञम् इमं यज्ञं दिविधाः। स्वाहाग्नये यज्ञियाय शं यजुर्भ्यः॥ यजु० ३८। ११ इत्यादि के महर्षि कृत भाष्य तथा अन्य अनेक मन्त्रों और प्रमाणों से भी ब्रह्मपारायण का समर्थन होता है।

ऋचा यजूंषि नामास्मि के भाष्य में ऋषि दयानन्द के लेख का अनुवाद है कि जो मनुष्य ऋग्वेद को पढ़ते वे ऋग्वेदी जो यजुर्वेद को पढ़ते वे यजुर्वेदी, साम वेद पढ़ते वे साम वेदी और अथर्व वेद पढ़ने वाले अथर्व वेदी होते हैं। जो चारों वेदों को पढ़ते वे चतुर्वेदी होते हैं। जो वेद वित् होवें वे अग्नि होत्रादि यज्ञों से सब मनुष्यों के हित को सिद्ध करें जिस से उनकी उत्ताम कोर्ति होवे और सब प्राणी दीर्घायु होवें। मूल संस्कृत में 'ये वेद विदस्तेऽग्नि होत्रादि यज्ञैः सर्व हितं सम्पादयेयुर्यत उत्तमा कीर्तिः स्यात् सर्वे प्राणिनो दीर्घायुषो भवेयुः॥" ये शब्द हैं जिन से वेदों का अध्ययन और पाठ कर के उनके द्वारा चारों वेदों से यज्ञ कराने की ध्वनि इस मंत्र द्वारा स्पष्ट निकलती है।

दिवि धा इमं यज्ञमिमं यज्ञं दिवि धाः। स्वाहाग्नये यज्ञियाय शं यजुर्भ्यः॥ यजु० ३८। ११

इस मन्त्र के भाष्य में ऋषि दयानन्द ने जो लिखा है उस का अनुवाद इस प्रकार है।

हे स्त्री व पुरुष! तू (यजुर्भ्यः) यज्ञ कराने हारे वा यजुर्वेद के विभागों से (स्वाहा) सत्य क्रिया के साथ (अग्नये यज्ञियाय) यज्ञ कर्म के योग्य अग्नि के लिये (दिवि) सूर्यादि के प्रकाश में (इमं यज्ञं) इस सङ्ग करने योग्य गृहाश्रम व्यवहार के उपयोगी यज्ञ को सुख पूर्वक धारण कर (दिवि) विज्ञान के प्रकाश में (इमं यज्ञं) इस परमार्थ के साधक संन्यास आश्रम के उपयोगी विद्वानों के सङ्ग रूप यज्ञ को सुख पूर्वक धारण कर।

भावार्थ—जो स्त्री पुरुष ब्रह्मचर्य के साथ समग्र विद्या युक्त उत्तम शिक्षा को प्राप्त हो कर वेद रीति से कर्मों का अनुष्ठान करें वे अतुल सुख को प्राप्त हों।

यहां भी वेद रीति से यज्ञादि शुभ कर्मों के अनुष्ठान का भाव स्पष्ट है। इससे वेद द्वारा किये जाने वाले यज्ञ अर्थात् ब्रह्म पारायण यज्ञ की वैदिकता स्पष्टतया ज्ञात होती है। ऋषि दयानन्द के ऊपर उद्धृत तथा अन्य अनेक वचनों से भी उसका समथन होता है अतः इस विषय में सन्देह व्यर्थ है।

(शेष अगले अङ्क में)

(इस पर टिप्पणी 'सम्पादकीय' में देखिये)

(पृष्ठ ५२५ का शेष)

अपनी इन विशिष्टताओं के कारण संस्कृत साहित्य अनेक ऐतिहासिक संक्रान्तियों के पश्चात् आज भी अपना मस्तक ऊँचा किये खड़ा है और संसार के महान् साहित्यों में सर्व प्रथम स्थान रखता है। प्राचीन भारत की इस अमूल्य थाती की रक्षा का दायित्व हमारे ही ऊपर है। उसकी रक्षा और अभिवृद्धि की दिशा में हमें महान् कार्य करना है। आशा है भारतीयता से प्रेम करने वाला प्रत्येक व्यक्ति इस कार्य में अपना सक्रिय सहयोग दे पूर्वजों के ज्ञान का प्रकाश और प्रसार करने में सहयोगी बनेगा।

महिला जगत्

नारी-प्रगति और आर्यसमाज

(लेखिका—श्री पुष्पावती जी बी० ए०, पटियाला)

ऋषि दयानन्द ने जागृति-नाद का शंख फूंका। युग ने परिवर्तन की अंगड़ाई ली और मातृशक्ति नव युग का स्वागत करने को आई। ऋषि की पुकार सत्य थी और सब ने सुनी व सुननी पड़ी। युग २ से शृंखलित मन्द नारी के पदाक्रान्ति के धक्के ने उन्मुक्त कर दिये और वह जीवन के उन्मुक्त क्षेत्र में अपनी शक्तियों का अशेष ले जुट पड़ी। जहां भी गई, सफल हुई, परिणामतः वह समाज के प्रत्येक कोने में उज्जवलता आत्म विश्वास और दृढ़ विजय की रश्मियां बखेरती हुई मुस्कराती हुई खड़ी दृष्ट हो रही है। पर अभी तक तथा कथाचित सफलता का कोई मापदण्ड निश्चित् नहीं हुआ था।

पर ऋषि दयानन्द द्वारा आरब्ध वैदिक क्रान्ति उनके पीछे विशुद्ध आर्यत्व पर आधारित न रह सकी। उनके प्रतिनिधि आर्यसमाज ने उदारतावश पाश्चात्य सभ्यता के पोषकों को भर पूर स्थान दिया। ये महोदय थे अंग्रेजी की छाया में लालित, पालित व परिवर्द्धित। उनके प्रभाव के कारण आर्यसमाज की अपनी मौलिक विचार धाराएं, गवेषणाएं व आकांक्षाएं यदि दब नहीं गईं तो अविकसित अवश्य रह गईं। आज आर्यसमाज क्षेत्र में नारी शिक्षा का स्वरूप बहुत कुछ ऐसे ही महानुभावों के दृष्टि कोण पर निर्मित है।

कुछ लोगों ने जो भारत को योरुप का सर्वांश में प्रतिरूप बनाने के पुण्यभागी बनने के प्रबल उत्सुक थे, नई संस्थाएं स्थापित कीं। किन्हीं योरुपीय संस्थाओं को शाखा रूप में यहां पल्लवित करने में सौभाग्य माना। आर्य सिद्धान्तों से अपना मतभेद स्पष्टतया घोषित करने वाले इन विभिन्न संस्थावादियों ने भी ऋषि-सन्देशको नत मस्तक हो सुना और उसे कार्यान्वित करने का प्रयत्न किया। उनके सभी कार्य व पुरोगम इस तथ्य की घोषणा कर रहे हैं। पर दुर्भाग्य से दृष्टि-भेद के कारण उनकी कार्यप्रणाली भिन्न थी। अतः उनके कार्यों का परिणामतः सर्वांश में न सही अधिकांशों में ही सही—श्रेयस्कर न हो सका। उनके कार्य-क्रम में नारी उत्थान को मुख्य स्थान था। नारी ने प्रगति भी की, पर यह ऐसी प्रगति थी जिससे युग की आत्मा सशंकित हो उठी, समाज की निर्माण शक्तियां विशृंखल हो गईं। इस प्रगति के आधारस्वरूप थे भौतिकवादके मूल भूत सिद्धान्त जिनके शुभ या अशुभ वरदान के रोग से योरुप ग्रस्त एवं त्रस्त है। इस का ऐसा लक्ष्य व ध्येय नहीं है जो शिव संकल्पात्मक मन के उच्चतर प्रदेश से स्फुरित हो। जन साधारण ने इसे अस्वीकार किया। उसने नारी शिक्षाके सिद्धान्तको ही दोषी समझा और बहुतेरों ने अपनी पुत्रियों के शिक्षण द्वार बन्द भी कर दिये।

पर युग निमन्त्रण को नहीं टाल सका है।

और नारी जागरण भी उस निमंत्रण का लघु सा—संक्षिप्त सा उत्तर था, अतः नारी प्रगति अवरुद्ध किये जाने के प्रयत्नों को बलात् परे ढकेल शैल सरित् की नाईं आवेग के साथ यह जागृति प्रस्तुत हुई। सरकारी शिक्षणालयों ने भी इस में योग दिया। योरुप की शीघ्रगामिता की ओर व्यग्रता ने इसे प्रभावित किया, और वहां की चकाचौंध से विस्मित समाज ने भी इस जागृति का स्वागत किया कुछ स्वेच्छा से, कुछ विवशता से। बात क्या एक बारगी सब इसके प्रभाव में आ गए और नारी जागृति का रुख किस ओर है इसकी विवेचना साधारण जन समुदाय—जो कि युगों से अकर्मण्यता के अङ्कमें ही विश्राम समझ अपने सौभाग्य की सराहना का अभ्यस्त हो चुका था, अन्ध विश्वास के धुंधले चश्मे ने जिसकी दृष्टि को कुंठित कर दिया था—करता रहा, पर उस क्षीण ध्वनि का कोई मूल्य नहीं था। कुछ भारतीय स्वातंत्र्य आन्दोलन ने इस विवेचना का स्थान ले लिया।

ऋषि दयानन्द द्वारा प्रारब्ध, पर पश्चिमीय मस्तिष्क से परिवर्द्धित व सम्मानित नारी जागृति का प्रभाव, धार्मिक संस्थाओं पर भी पड़ा और उनके द्वारा संचालित स्त्री शिक्षणालयों एवं संस्थाओं में इसका अप्रतिहत प्रचार हुआ। यद्यपि कुछ दबे कुछ अप्रत्यक्ष रूप में। वहां वेष भूषा में चाहे कुछ सादगी थी, पर मानसिक निर्माण पर ध्यान नहीं दिया गया। अतः भारतीय समाज ने भारतीय नारी की जागृति का सौभाग्य या दुर्भाग्य वश यही स्वरूप समझ लिया व स्वीकार कर लिया है जिसकी एक पुकार थी "आगे बढ़ो" पर किधर ? अनिश्चित दिशा की ओर ! जिसका एक नारा था "बंधन तोड़ो" कैसे बंधन ? मर्यादा के बंधन ? उद्देश्य प्राप्त करो, कौन सा उद्देश्य ? समानाधिकार। क्या है समानाधिकार ? भोगवाद की ओर उच्छृंखलता, अभिमान की स्वतंत्रता। पूछा गया, ईश्वर का इसमें क्या स्थान है ? जागृत नारी गर्व से बोली, ईश्वर की सत्ता में उसे सन्देह है। धर्म को ? यह असत्य कल्पनाओं पर आधारित दंभियों द्वारा निर्मित नियम हैं। मर्यादा ? वह नारी को दासता में आबद्ध करने का बहाना मात्र है। संस्कृति ? जागृत नारी नव संस्कृति का स्वयं निर्माण करेगी। आज यह स्वरूप हीन, लक्षण हीन जागृति हमारे सामने है। इसका महत्व यही है कि जब कोई शिक्षिता किसी आफिस का मुंह ताकने के स्थान पर अपने गृह निर्माण की साधना में लग जाय, तब उसकी शिक्षा व्यर्थ समझी जाती है, वह भी रूढ़िवादियों की श्रेणी में आती है। वह स्वयं भी ऐसा समझती है। गृहिणी, पत्नी एवं माता के स्वरूप में और क्लर्क व धनोपार्जन हित ही अध्यापिका के स्वरूप में क्या सामंजस्य है, यह अनिश्चित है। वेद, ऋचाओं को के द्वारा सन्तान लोरी देने वाली जागृत नारी को देखने के इच्छा वाले ऋषि यदि आज देखते तो ? उत्तर आर्यसमाज पर ही छोड़ती हूँ। यह स्थिति किस सीमा तक कल्याणकर—व अकल्याणकर है इसकी भी विवेचना मैंने यहाँ नहीं करनी है।

मेरे सामने तो प्रश्न उन बहनों का है जो सौभाग्य या दुर्भाग्यवश वेद अथवा धर्मग्रन्थों से आलोक ले विशुद्ध आर्यसंस्कृति द्वारा प्रदर्शित मंगलमय जीवन पथ पर बढ़ना चाहती हैं। इस कथनमें अत्युक्ति नहीं है कि वे प्रायः अपने लिए सर्वत्र द्वार अवरुद्ध पाती है। आध्यात्मिकता की

ओर अभिमुख आर्य संस्कृति के आधार से नारी आगे बढ़े। प्रथम तो ऐसी महिलाओं की संख्या ही अत्यल्प है और जो है भी तो उसके विकास साधन समाज हस्तान्तरित करचुका है। और संस्थाओं की चर्चा मैं यहां नहीं करती। आर्य-समाज ही इस दिशा में आगे आया था। नारी के सच्चे अधिकारों की मीमांसा भी इसके द्वारा ही हो सकेगी। पर अब अवस्था क्या है? आर्यसमाज द्वारा स्थान २ पर स्कूल कालेज खुले हैं जिन में सरकारी पाठ्यक्रम पर ही बल दिया जाता था और है। कोई भी सोच सकता है इस शिक्षा का मूलभूत उद्देश्य क्या था और परिणाम क्या हो सकता था। पर आर्य शिक्षणालयों में यह पाठ्यक्रम चालू किया गया नारियों में आर्यत्वकी प्रतिष्ठा का नाम लेकर! वह आर्यत्व जो प्राणी-मात्र की सर्वाङ्गीन स्वतत्रता का विचार एवं व्यवस्था करता है। पर विद्यालयों की स्थापना के अनन्तर आर्यसमाज ने कभी विचारा भी कि उसके वास्तविक उद्देश्य की पूर्ति कहां तक हो रही है? कन्याओं के साधारण बौद्धिक विकास के अतिरिक्त उनके आत्मिक विकास जो कि मुख्य और दूसरी संस्थाओं से विलक्षण वस्तु थी- की प्रेरणाएं तथा सुविधाएं मिली? क्या आर्य शिक्षणालयों में शिक्षित कन्याएं वेद पर अधिकार पूर्वक कुछ बोल सकती हैं. व बोलने की चेष्टा करती हैं? उन्होंने कितनों को वैदिक धर्म के तत्वों को समझाया है? कौन स्त्रियों को कम्यूनिज्म व सोशलिज्म आदि विभिन्न इज्मों के चंगुल में फंसते देख व्यथित हुई है और उनके मुकाबले पर वैदिक आदर्शों का उन्हें बोध करा उनके उद्धार को अग्रसर हुई हैं? क्या वे भी समानाधिकार का अर्थ हिन्दू कोड का अन्ध विरोध व समर्थनमात्र नहीं समझती हैं? क्या पश्चिमानुगामी बहनों के अनुसरण में ही वे श्रेय नहीं समझती हैं? वर्तमान भारतीय समाज को आर्य नारी का पथ प्रदर्शन मिलना चाहिए था। अति कष्ट के साथ लिखना पड़ता है यह प्रायः नहीं हुआ। होता भी कैसे? उस की शिक्षा दीक्षा इस दृष्टि से की ही नहीं गई। वास्तव में यह आर्य समाज से बड़ी भूल हुई है अनजाने में या परिस्थितियों के वश! वेदामृत के नाम पर उसे क्या पिलाया गया है?

स्त्रीसमाजें भी स्थापित की गईं, पर उनके भी विकास की ओर ध्यान नहीं दिया गया। वहां उन्हें आदर्श पत्नी गृहिणी व माता वीराङ्गना आदि बनने पर उपदेश दिये जाते थे व हैं। यह तो कोई बुरी बात नहीं। पर इन आदर्शों की निष्पत्ति के लिए जिस जागरूक हृदय तथा सन्तुलित मस्तिष्क की आवश्यकता होती है उसकी ओर किसने ध्यान दिया? परिणामतः वे वहां की वहां खड़ी हैं। एक पग भी आगे बढ़ अपने गृहों में आर्यत्व का दीप नहीं जला सकी हैं। इन बुझे दीपकों से भावी सन्तति के हृदय दीप कैसे जलाने की आशा हम करते हैं मुझे समझ नहीं आ रहा! अब जहां २ प्रबन्ध शिक्षिता देवियों के हाथ में है, वहां पश्चिमी विचारधाराओं की प्रधानता नहीं तो छाया अवश्य है। वेद माता का मंगल आशीर्वाद सजग रूप में अभी वहां भी दृष्ट नहीं होता। वे बहनें भी अपनी जीवन प्रगति के लिए प्रेरणा पश्चिमीय मस्तिष्क से ही पाती हैं। प्रश्न तो यह है वेद संदेश मौलिक रूप में हमारी आत्मा को कितना स्पर्श कर सका है। वैदिक आदर्शों ने हमारी जीवन प्रगति को कहां तक अनुचालित

किया है ? आर्यसमाज का कार्य तो आत्माको जागृत कर देना था। जागृत आत्मा शरीर के पौष्टिक तत्त्व स्वयं जुटा लेती है।

तो अब जो कुछेक ऐसी हैं भी जो आर्य आदर्श को लेकर विकसित होना चाहती हैं और जो भावी सन्तति को कुछ अपूर्व देन छोड़ सकती हैं उनके लिए समाज के पास क्या व्यवस्था है ? नारी की आकांक्षाओं व अभिरुचियों का विकास हुआ है और होगा।

यह शुभ है, क्यों कि यह जीवन का लक्षण है। इन के मूल में अन्तर्नाद में कौन सा गीत स्फुरित है, इस पर ध्यान नहीं दिया गया है, पर देना होगा। ऋषि का स्वप्न "कृण्वन्तो विश्वमार्यम्– आदर्श मानव समाज की सत्यता आर्यसंस्कृति के पुनरुद्धार द्वारा ही संभव है और उसकी भी आधार शिला है नारी।

और केवल कुछ मौखिक उपदेश उसकी मनस्तुष्टि नहीं कर सकेंगे। उसकी मानस क्षुधा ठोस वेद ज्ञान से ही शान्त हो सकती है। वह चाहती है जीवन पथ के लिए वेद रूप दृढ़ आलोक स्तम्भ, खद्योत प्रकाश की क्षणिकता को वह जान चुकी है। अब समय की पुकार है कि समाज इस तथ्य को हृदयङ्गम करे और नारी शिक्षा क्षेत्र में क्रान्ति लाए।

शिक्षा पर व्यय तो बहुतेरा होता है पर उस का लाभ कुछ अधिक नहीं हो रहा। लाभ न होने का कारण है उचित पाठ्यक्रम का न होना। आर्यसमाज पाठ्यक्रम के लिए दूसरों का मुंह क्यों ताकें ? ऋषि प्रदर्शित पाठविधि है या नहीं ? यदि है तो क्यों न उसे क्रियान्वित किया जाय ? लड़कों के लिए नौकरी आदि का प्रश्न हो सकता है पर कन्याओं के लिए तो यह अत्यन्त गौण है। और हमारे शिक्षित युवक युवतियों में तो युग निर्माता के गुण आ जाने चाहिए, जो कि शिक्षा से ही प्राप्त होंगे। क्यों न हमारा शिक्षित वर्ग ऐसा समाज निर्माण करे जिसमें ऋषि प्रदर्शित पाठ्यक्रम का ही मान हो और सरकार भी उसे ही मान्यता दे ? इसके लिए घोर आत्मविश्वास की आवश्यकता है ! आर्यसमाज क्यों अपना नेता का स्वरूप छोड़ कर परानुगामी बने ?

यह लेख नारी प्रगति से ही सम्बंधित है, अतः इसी दृष्टि को लेकर मैं पुनः समाज के कर्णधारों और शिक्षा शास्त्रियों का ध्यान इस ओर आकृष्ट करना चहती हूं कि वेद पीयूष की पिपासु आर्य महिलाओं के आत्मिक, व बौद्धिक विकास के लिए समाज के पास क्या व्यवस्था है ? यह प्रश्न अनिवार्य रूपेण विचारणीय है और यदि आज न विचारा गया तो और कटु अनुभव के पश्चात् आर्यसमाज इसे विचारेगा।

(इस लेख में प्रकाशित विचार गम्भीर और महत्वपूर्ण हैं। उन पर अवश्य उचित ध्यान देना चाहिये— सम्पादक सा० दे०

भारतीय इतिहास का समाज शास्त्रीय पक्ष

(Sociological Aspect of Indian History)

[लेखक—श्री प्रो० आत्मानन्द जी विद्यालङ्कार देहली]

१ इतिहास बिना हम मानव जाति को और स्वदेश को ठीक ठीक और पूरी तरह नहीं समझ सकते। हम भारत वासी आजकल अपने देश के जिस इतिहासको पढ़ते हैं उसमें राजाओंकी परम्परा और इतिहास का राजनीतिक पक्ष प्रधान होता है। दूसरे पक्ष—सामाजिक, आर्थिक भौतिक सांस्कृतिक, और सार्वभौमिक पक्ष गौण या अति गौण हो जाते हैं। परिणाम यह होता है कि विद्यार्थी और साधारण भारतीय नागरिक दोनों की दृष्टि अपूर्ण और संकुचित हो जाती है। अपने देश के इतिहास के राजनीतिक पक्ष से भिन्न पक्षों की ओर उस की दृष्टि बहुत कम जाती है। बहुत सी इतिहास की समस्याएँ उसे ठीक समझ नहीं आतीं। सर्वाङ्ग सम्पूर्ण इतिहास पढ़ने में जो रस आना चाहिए वह भी नहीं आता। नेता और नीत, गुरु और शिष्य राजा और प्रजा सभी की दृष्टि, ज्ञान और अनुभूतियों के अपूर्ण रहने से समूची जाति की बुद्धि में ही वामनता और कुण्ठतता आ जाती है। इस लिए इतिहास के अध्यापक, विद्यार्थी, सामान्य जनता और जाति के विचारकों और नेताओं को अपने देश का सर्वाङ्ग सम्पन्न इतिहास पढ़ना चाहिए।

२ राष्ट्रके जीवन के कुछेक विचारणीय और दर्शनीय पक्ष निम्नलिखित हैं—

(अ) हमारी सामाजिक व्यवस्था

(आ) द्युलोक, अन्तरिक्ष और पृथ्वी का अपने भूखण्ड, अपने राष्ट्र पर प्रभाव

(इ) स्वदेश की सप्राण और अप्राण सम्पत्तियां-मानव, पशु, पक्षी, वन, अन्न, शाक, फल, खनिज, नदी, जल पर्वतादि

(ई) स्वराष्ट्र की संस्कृति, सभ्यता, और साहित्य

(उ) अपने महादेश के भिन्न भिन्न खण्डों या इकाइयों का अपना अपना स्वरूप और इतिहास

(ऊ) इन खण्डों या इकाइयों का एकीकरण

(ऋ) इन अङ्गों, या इकाइयों के एकीकरण की सामग्री और सर्वाङ्ग पूर्ण अंगी का स्वरूप और आत्मा

३ भारत में हमारा मानव समाज चिरकाल से वर्णाश्रम व्यवस्था पर आश्रित चला आ रहा है। बुद्धिमानों का निर्णय है कि आरम्भ में यह वर्णाश्रम व्यवस्था गुण-कर्म- स्वभाव पर आश्रित थी। काल प्रवाह में यह जन्माश्रित और लोक परम्पराश्रित हो गई और गुण-कर्म स्वभाव की कसौटी कमज़ोर हो गई। चिरकाल से राज्य शासन के भारतीय न होने से, या शिथिल और प्रताप शून्य होने से सामाजिक

व्यवस्था का व्यवस्थापक और निर्णायक मुख्यत: प्रजावर्ग ही हो गया। यह सच है कि प्रजा अपने में से ही राजा या नेता चुनती है और उस राजा या नेता द्वारा अपने को नियमों और व्यवस्था में बांधती है परन्तु जब नेता नहीं चुन सकती तो काल प्रवाह में अपने अन्दर जन्म परम्परा से व्यवस्था मान लेती है। अव्यवस्था से अधूरी व्यवस्था अच्छी। ऐसी स्थिति, भारत में, सुना जाता है, कुमारिल भट्ट—शंकराचार्य काल से चली आ रही है। इससे पहले इतना कड़ा जन्माश्रित वर्ण विभाग न होता था। आश्रम व्यवस्था में ब्रह्मचर्याश्रम और वानप्रस्थाश्रम लुप्त से हो गये। गृहस्थाश्रम सर्वापहारी आश्रम बन गया। प्राय: सब आश्रम इसी के पेट में समा गये। गृहस्थाश्रम की व्यवस्था स्थान २ की बिरादरियों में प्रचलित नियम करने लगे और बौद्ध व्यवस्था के बाद श्री शंकराचार्य जी के चलाए दशनामी संन्यासी अपने अपने मठों—अखाड़ोंकी व्यवस्थासे संन्यासाश्रमको चलानेलगे। कुमारिल-शंकराचार्य से चली इस परिपाटी को अंग्रेजी राज्य में कुछ धक्का लगा। संस्कारक और सुधारक लोगों ने इसमें परिवर्तन किया। पर परिवर्तन हिंदू जनता के थोड़े से नवशिक्षित लोगों में ही हुआ वह भी मुख्यत: नगरों और उपनगरों में। हिंदू जनता का बड़ा भाग ग्रामों में रहता है। वहाँ वही पुरानी परम्परा जारी है। मुसलमान, ईसाई, सिक्ख, जैन, पारसी आदि की अपनी सामाजिक व्यवस्था है। क्योंकि इन पिछली ११, १२ शताब्दियों में ही हिंदुओं से अलग होकर ये उपवर्ग बने हैं इनमें भारतीय होने से कुछ तो प्रधानजाति—मातृजाति हिंदुओं का प्रभाव है, कुछ अपनी आन्तर व्यवस्था है। अस्पृश्य और दलित जातियां सवर्णों की ही नकल करती है। उपेक्षित और असभ्य जातियों को प्रधान जाति ने स्वयं व्यवस्था देने की चिर-काल से परवाह नहीं की। पाकिस्तान बनने पर मुसलमानों की लगभग ७ करोड़ जनता और हिंदुओं की एक करोड़ जनता अब हमारी व्यवस्था की पहुँच से परे है। इस चित्र को सामने रखकर हम भारत में बसने वाली मुख्य हिंदू जाति की सामाजिक व्यवस्था को देख रहे हैं और कह सकते हैं ऊपर की लगभग १० फीसदी जनता को छोड़ बाकी सारी हिंदू जनता कुमारिल-शंकराचार्य काल से प्रचलित वर्णाश्रम व्यवस्था पर चली आ रही है और उसका आन्तर नियन्त्रण स्थान २ की, गाँव गाँव की बिरादरियां ही करती हैं। मनुस्मृति, याज्ञवल्क्यस्मृति और मध्य काल की अनेक स्मृतियां भी कुछ कुछ मार्ग दर्शन करती हैं। अब प्रश्न होगा कि क्या हम अपना इतिहास लिखते और पढते पढाते समय जाति की इस आन्तर सामाजिक व्यवस्था पर गहरा विचार करते हैं? हमारे हिंदू-मानव समाज की आन्तर व्यवस्था से जाति की उन्नति हुई है या अवनति। हमारे इतिहास में, हमारे उत्थान—पतन के कालों में हमारी सामाजिक व्यवस्था कहाँ तक कारण है। हमारे समय समय पर आये सुधारक लोगों और वर्गों और आन्दोलनों ने उसमें क्या किया? समूची जाति के शरीर, इन्द्रिय, बुद्धि, साहित्य, देशदेशान्तर गमन में इस व्यवस्था ने क्या सुख दुःख, या उन्नति—अवनति दर्शाई? इस प्रकार सामाजिक रचना में जब तक हम गहरा नहीं पैठते, तब तक हम अपने को, अपनी जाति को, आगे आने वाली पीढ़ी को और अपने मित्र और शत्रु देशों को और आधुनिक सभ्य

जगत् को अपने इतिहास का यथार्थ चित्र कैसे दे सकते हैं? इस आन्तर व्यवस्था को अङ्ग्रेजी शासन भी बहुत नहीं बदल सका, । अंग्रेजी राज्य काल को सुधारक वर्ग और आन्दोलन भी बहुत नहीं बदल सके। यह बात हिंदू—कोड—बिल की दशा से स्पष्ट सिद्ध हो जाती है। प्रजा के अन्दर स्वयं परिवर्तन का बल और संघटन नहीं, अपने राज्य को भी हम समाज-सुधार का अवसर नहीं देते। जाति वहीं की वहीं खड़ी है। अपने पिछले इतिहास से सीखना भी नहीं चाहते और इतिहास के सामाजिक पक्ष को विचार की परिधि में भी लाने से हिचकिचाते हैं। इसलिए हमें चाहिये भारतीय समाज की आन्तर रचना के कोई मौलिक सिद्धान्त बनाएँ। अपने उन्नत वैदिक काल की समाज व्यवस्था को ठीक ठीक समझें। अपने इतिहास के सामाजिक पक्ष का अनुशीलन करें। संसार में आधुनिक समाज शास्त्र को भी पढ़ें। उनके व्यावहारिक प्रयोगों को दूसरे प्रगतिशील देशों में देखें और अपनी समाज व्यवस्था को यथाकाल बदलें। अपने इतिहास को राजनीतिक दृष्टि से प्रधानतया पढ़ने और सामाजिक दृष्टि को गौण करने से हम जान बूझ कर भी अपने देश की दासता और पतन के सामाजिक कारणों को टालते रहते हैं। जैसे पिछले लगभग १२०० वर्षों में हम बाहर से आये मुसलमानों को अपने में नहीं पचा सके। हम में से करोड़ों मुसलमान बन गये। लाखों ईसाई बन गये। करोड़ों अछूत उपेक्षित और अस्पृश्य रह गये। पारसी हमारे में पूरे लीन नहीं हुए। सिक्ख पहले सुधारक वर्ग बनकर अब अलग रहना चाहते हैं। अर्थात् सवर्ण हिन्दुओं को छोड़ कर सामाजिक पाकिस्तान हमने गाँव गांव में बना रखा है। वह यदि राजनीतिक पाकिस्तान बनता है तो हम घबड़ाते हैं और अकुलाते हैं परन्तु सब कुछ देखकर भी आन्तर सामाजिक व्यवस्था को फिर भी बदलना नहीं चाहते। बौद्ध काल में सामाजिक नियम और स्मृतियां बौद्ध वैदिक दोनों पर समान लागू थीं। परन्तु पिछले लग-भग १२०० वर्षों में भारत के मुसलमानों और ईसाइयों की सामाजिक व्यवस्था, कानून, भाषा, सभ्यता संस्कृति हम से पर्याप्त भिन्न है। क्या किसी दूसरे राष्ट्र में भी ऐसी स्थिति है? क्या चीन, रूस में मुसलमान और इजिप्ट आदि में ईसाई इतर लोगों से इतने भिन्न हैं जितना हम से मुसलमान, ईसाई और अछूत। इसलिये अब समय आ गया है कि हम अपने इतिहास के सामाजिक पक्ष को अवश्य पढ़ें। पढ़कर मनन करें और अपनी सामाजिक व्यवस्था को बदलें।

समय समय पर भिन्न भिन्न स्मृतियों और निबन्धों की रचना, आन्तर सुधार भक्तिकाल के सन्त, सिक्ख आन्दोलन, विदेशी राज्य, पश्चिमीय सभ्यता, राजाराम मोहनराय, ब्राह्म समाज, दयानन्द सरस्वती, आर्यसमाजादि नेता और संस्थायें गाँधी जी और अछूतोद्धार आन्दोलन आदि ने हिन्दू समाज की आन्तर व्यवस्था को सुधारने का कुछ प्रयत्न किया है परन्तु हमारे विचारों को राष्ट्रीय जीवन के (Sociological) समाज शास्त्रीय पक्ष पर दृष्टिपात करने का स्वभाव पूरी तरह से नहीं आया। अपने इतिहास ग्रन्थों को पढ़कर हम इसी निर्णय पर पहुँचेंगे।

४. इसी प्रकार राष्ट्रीय जीवन में उठती पीढी को वैज्ञानिक आधार पर कैसे तैयार करना

चाहिये। २५ वर्ष से पहले पुरुष और १६ वर्ष से पहले स्त्री को विवाह न करना चाहिये। समूची जाति यदि पीढ़ी बाद पीढी इस नियम का भङ्ग करेगी तो अवश्य पतित और दास बनेगी। ऐसी सन्तति विद्या तथा जाति निर्माण के इतर वैज्ञानिक प्राकृतिक नियमों को हमारे परम्परागत आचार्य, स्मृतियाँ पुराण और नाटक काव्यादि उपेक्षा की दृष्टि से देखते रहे। जाति ने बालविवाह और इतर कुरीतियों को प्राकृतिक नियम और सनातन सामाजिक मर्यादा मानकर पकड़े रखा। जिसका परिणाम हमारी चिरकालीन दासता है और अब भी दूसरे देशों के मुकाबले में और आधुनिक जीवन संग्राम में हमारा पीछे पिछड़ना है। इतनी बड़ी सच्चाई को कि पीढ़ी दरपीढ़ी के बाल-विवाह ने क्षय रोगकी न्यांई हमें,अन्दर ही अन्दर से खा लिया है हम इतिहास में,अपने पतन में पूरा स्थान नहीं देते या इसे केवल सूंघ जाते हैं या राजनीतिक कारणों के मुकाबले में बहुत गौण स्थान देते हैं। बाल-विवाह ने हमारा कैसा नाश किया है और हमारे इतिहास में हमारे पतन और दासता का कारण बना है इसे जरा विस्तार से देखना चाहिये।

सदियों से हम लड़कों का विवाह लगभग १८ वर्ष की आयु में और लड़कियों का विवाह १२ वर्ष की आयु में करते आए हैं। इससे भी छोटी आयु में करते आये हैं। हमने दम्पति को परस्पर मैथुन की भी इस आयु में अनुमति दे रखी है। मानव जाति यहां तक कि समूचे प्राणी जगत् में मैथुन और सन्तानोत्पत्ति के कोई वैज्ञानिक सिद्धांत हैं। उनको हमने प्रत्यक्ष तोड़कर समूची जाति में प्रचलित कर दिया। कम से कम महात्मा बुद्ध से अब तक गृहस्थों में गांव २ में यही प्रचलित है। शारदाऐक्ट के पास होने के समय हमारी जाति की मनोवृत्ति की स्पष्ट परीक्षा हो गई थी। शारदा ऐक्ट हम पर लागू न हो इसलिए बीसियों विवाह उस ऐक्ट के पास होने से पहले ही रचा लिए गए थे मानो कोई बड़ी भारी मुसीबत आने वाली हो और हम उससे बचने के लिए उतावली कर रहे हों। जरा शांति से सोचें। ऐसे बाल विवाहों से उत्पन्न सन्तान शरीर, इन्द्रिय, बुद्धि, और हृदय से कमज़ोर होंगे। शरीर छोटा होगा। इस पर सर्दी, गर्मी, वर्षा, आंधी, बीमारी जल्दी असर करेंगे। बुढ़ापा जल्दी आयगा। ठीक आयुसेपहले काम वासना तृप्त होने से कुछ काल बाद शक्ति न रहेगी। लड़के, लड़की, और सन्तान का यौवन रूप, और लावण्य पूरी विकास न पायगा। इतनी छोटी आयु में उत्पन्न काम वासना जीवन का स्थिर अङ्ग बन जायगी। इस की तृप्ति प्रधान विषय बन जायगा। पत्नी के जल्दी बूढ़ी और अशक्त होने से (उत्तरोत्तर) अगली अगली सन्तान कमजोर होगी। पत्नी, पति के आयु भेद और शक्ति भेद कम होने से लड़कियां अधिक जन्मेंगी। अनेक सन्तानों की अकाल मृत्यु होगी घर घर में विलाप घर कर लेगा। इच्छा शक्ति के कमज़ोर हो जाने से अनचाही सन्तान घर आयगी। स्त्रियों की मृत्यु अधिक होगी। दूसरा विवाह करने पर पुरुष दूसरी स्त्री को तृप्त न कर सकेगा। उनके गृह कलह उत्पन्न होंगे। पुरुष के जल्दी मरने पर दूसरा विवाह करना स्त्री के लिये कठिन होगा। यदि स्त्री निःसन्तान है तो उसके चरित्र की रक्षा कौन करेगा। दुराचार बढ़ेगा।

यदि सन्तान है तो उसका पालन पोषण कौन करे। यदि विधवा की अनेक सन्तान हैं तो उनकी चिन्ता में स्त्री घुलघुलकर मर जायगी। जाति में विधवा और अनाथों की संख्या दिन बदिन बढ़ती जायगी। कई वंश नष्ट हो जाएंगे। अनेक सन्तान पागल, अन्धे लूले लङ्गड़े बहरे गूंगे उत्पन्न होंगे। हर्ष, यौवन, रूप लावण्य की कमी से बाह्य आडम्बर से वे एक दूसरे को प्रसन्न और तृप्त न करेंगे। जातिमें आडम्बर मण्डन प्रेम, अनुकरण स्त्रीवश्यता, अपव्यय, अतिव्यय बढ़ जावेंगे। अतिमैथुन और बालमैथुन से जठराग्नि मन्द पड़ेगी। वस्तु को पचाने और स्वादु बनाने के लिए मिर्च मसाले प्याज आदि उत्तेजक, दीपक वस्तुओं का प्रयोग बढ़ेगा। समूची जाति निस्तेज, भीरु वामन दरिद्र और रोगी हो जायगी। आलसी अकर्मण्य जनता संख्या में अधिक होगी। हमारी स्थिति को हमारे शत्रु झट भांप लेंगे। वे आक्रमण करेंगे। हम अवश्य हारेंगे। मुकाबला करेंगे भी तो देर तक टिक न सकेंगे। दीन, चाटुप्रिय, भीरु आलसी, निद्राशील बने रहेंगे। किसी प्रकार की कला, विद्या, ज्ञान अध्यात्म में नवीन उन्नति सृष्टि खोज न कर सकेंगे। थोड़े से मन्त्रियों पर राज्य का काम और ब्राह्मणों पर विद्या धर्म का काम छोड़ कर वृत्ति के लिए छोटे मोटे कार्य करेंगे। देश देशान्तरों में जाने का साहस न होगा घर और स्त्री आदि से घर बैठे २ ममता बढ़ेगी। आगे आगे यह हानियां दिन दुगनी रात चौगुनी बढ़ेंगी। हम बुद्धि से काम न लेकर बिना समझे रटने और याद करने वाले बन जावेंगे। पति, पत्नी, सन्तान, वंश जाति, देश, और उद्योग उपज, साहित्य, प्रगति, सबका क्षय कर देंगे। संसार में शिकार और समस्या बन जावेंगे। ऊपर गिनाई हानियों और उनके परस्पर क्रिया-प्रतिक्रिया से उत्पन्न हानियां हम पिछले २५०० वर्षों से पारस के राजा Cyrs के समय से, महात्मा बुद्ध के समय से अब तक देख रहे हैं। पर बाल विवाह को और क्षय को अपनी छाती से लगाये बैठे हैं परन्तु अपने ऐतिहासिक और दूसरे वाङ्मय में बाल विवाह की घोर निंदा नहीं करते, इसे पतन के मुख्य कारणों में स्थान नहीं देते, प्रसङ्गवश थोड़ा सा वर्णन कर आगे भागते हैं। इतिहास में प्रजापक्ष, समाजशास्त्रपक्ष को कमजोर कर देने के ये साक्षात् परिणाम हैं।

कहां तो हमारी वैदिक दृष्टि इतनी विशाल थी कि हम वेदमंत्रों में द्युलोक, अन्तरिक्ष लोक, भूलोक को सामने रख कर प्रार्थना और वर्णन करते हैं। और द्यौः शान्तिरन्तरिक्षं शान्ति इत्यादि मन्त्र में पृथ्वी के, देश के, जीवन के और राष्ट्र के विषय में चिन्तन करने का कितना व्यापक विराट्, बाह्य से अन्तर, ज्येष्ठ से कनिष्ठ का क्रम है अर्थात् प्रत्येक राष्ट्र अपने ऊपर द्युलोक, सूर्य, चन्द्रादि, अन्तरिक्ष लोक वृष्टि वायु आदि समूची पृथ्वी आदि के विषय में जानकर अपने देश को समझ सकता है। इसी मन्त्र में द्यौः, अन्तरिक्ष पृथ्वी, आपः (जल) ओषधि बनस्पति' विश्वदेव, ब्रह्म, सर्व...आदि क्रम में बड़े की गोद में छोटे हैं। बड़े पर अगला अगला और समूचा पदार्थ आश्रित है उस पर घना प्रभाव डालता है। बिना इस क्रम के इन वस्तुओं का परस्पर प्रभाव और उस राष्ट्र का गहरा ज्ञान हो ही नहीं सकता। परन्तु हम वामनों ने अपनी दृष्टि सकुचित कर ली है। स्वदेश विज्ञान और इतिहास में हम इस प्रक्रिया

और शैली को नहीं के बराबर स्थान देते हैं। हमारा देश कितने अक्षांश पर किस कटिबन्ध में, सूर्य से कैसे, किस ऋतु में प्रभावित होता है, चन्द्रादि नक्षत्रों से कैसे, वायु वृष्टि, मेघ विद्युत् से कैसे, हमारे देश के भिन्न भिन्न खण्डों का आन्तर वाह्य क्या क्या स्वरूप है, क्यों है, इसका थोड़ा सा स्वरूप हम प्राकृतिक भूगोलादि में बतलाते हैं। अधिक बतलावें, और इतिहास भूगोल, ज्योतिष भूगर्भविद्या, रसायन, भौतिकी और प्राणिशास्त्र को मिलाकर पढ़ावें और पुस्तकें भी ऐसी ही लिखें तो हमारे छात्र, गुरु, सामान्य जनता, नेता और पत्र सम्पादकों के विचार विशाल, व्यापक, दृढ मूल और बहुश्रुत हो जावें। विशेषतया भारत में काश्मीर से लेकर कन्याकुमारी तक और द्वारका से पुरी तक भिन्न २ भाषा जनपदों और इकाईयों का स्वरूप परम्परा और परस्पर भेदाभेद स्पष्ट समझ में आवे। द्युलोक अन्तरिक्षलोक पृथ्वीलोक के खण्डों के अपने २ प्रभाव के कारण वर्ण, आकृति, स्वभाव, अन्न पानी, वेषभूषा, मण्डन, रूप, लावण्य, यौवन, खेलें व्रतपर्व, उत्सव, साहित्य सूचि, कला उद्योग, व्यवसाय उत्थान, पतन आदि की परम्परा और परस्पर भेद स्पष्ट समझ में आने लगे। इतिहास एक शास्त्र बन जावे। इतिहास काव्य सा आनन्द देवे, और शास्त्र सा गम्भीर हो जावे। हम कह सकें "काव्य शास्त्रविनोदेन कालो गच्छति धीमताम्॥

५. स्वदेश की जड़ और सम्पत्तियाँ।

प्रत्येक राष्ट्र अपने अन्दर नानाविध सम्पत्तियां रखता है। गाय, भैंस, भेड़ बकरी, हाथी ऊंट, घोड़ा गधा, पक्षी, सरीसृप, मछलियां, अन्न दाल, शाक फल, कन्दमूल नाना औषधि, नदी, पर्वत, सरोवर, वन उपवन, लोहा तांबा, सोना चांदी आदि धातुएं गन्धक आदि हजारों वस्तुएं राष्ट्र की सम्पत्तियाँ हैं। जनता के अन्न पान वस्त्र औषधादि और पेशा धन्धा इनके कारण बनते हैं। ये शब्दों के सुख दुःख, उदय अस्त, उत्थान-पतन के मूलभूत कारण हैं। प्रत्येक जाति के सम्भव को भी किसी विशेष ढाँचे में ढाल देते हैं सम्पत्तियाँ तो हों पर उनका उपयोग न लें या रक्षा न करें तो समर्थ और विद्वान् राष्ट्र, इन दुर्बल राष्ट्रों पर हमले भी करते हैं या इन सम्पत्तियों के लूटने के लिए गीध की तरह इसे देखते रहते हैं या बगुले की तरह ध्यानावस्थित होकर लूटने की ताक में रहते हैं। यद्यपि इन्हें भूगोल में स्थान मिलता है और भूगोल इतिहास लव-कुश की तरह इकट्ठे रहते हैं फिर भी इतिहास के नाना परिच्छेदों में इनका स्थान स्थान पर वर्णन आते रहना चाहिए जिससे इतिहास के विद्यार्थी को अपनी जाति के उत्थान-पतन के आर्थिक कारणों का ज्ञान यथास्थान, यथाकाल, यथा देश होता जावे।

६ इतिहास में उस राष्ट्र की संस्कृति, सभ्यता और साहित्य का यथादेश, यथाकाल वर्णन उस इतिहास को प्राणमय, स्फूर्तिमय और रसमय बना देता है। केवल युद्धों, राजवंशावलियों, और राजनीतिक स्थितियों के, अस्थिपञ्जर में विद्यार्थी का मन नहीं रमता। यद्यपि आजकल हमारे विस्तृत इतिहासों में संस्कृति आदिको उत्तरोत्तर अधिकस्थान दिया जाता है परन्तु इसे प्रधानता नहीं दी जाती। किसी जाति के,

धर्म, दर्शन, श्रुति स्मृति, कथाख्यान, महापुरुष विधान, काव्य, नाटक, चित्र, संगीत, मूर्तिकला, वास्तु, स्थापत्य, और चतुः षष्टि कलाओं का बीच बीच में वर्णन उस जातिके स्वरूप को हृदय में बैठा देते हैं। इन वस्तुओं में तो राष्ट्र का जीवन प्रतिबिम्बित होता है। यह उनके हर्ष और विनोद की सामग्री है, एक ज्ञान कोश है। दूसरे देश भी उससे सीखते हैं और परस्पर इस सम्पत्ति के विनिमय से राष्ट्रों की उन्नति और भी अधिक होती है। यदि समूचे भूमण्डल के भिन्न २ देश एक दूसरे के पूरक बने तो समस्त संसार के खण्ड एक दूसरे पर आश्रित दीखने लगते हैं और परस्पर सहयोग की भावना को बढ़ाते हैं। इसी महती गुण सम्पत्ति के कारण से जातियां पूर्ण यौवन को पाती और दूसरी जातियों के मुकाबले में अपना मस्तक गर्व से ऊँचा करके चलती हैं। भारत की चिरकालीन दासता में हम इसी सम्पत्ति के इसी विभूति के बल पर दूसरे देशों के सामने कुछ न कुछ आदर पा जाते हैं। इसी के बल पर हमारी संस्कृति के आधुनिक प्रतिनिधि, गान्धी रवीन्द्र राधाकृष्णन, रमण, विवेकानन्द अरविन्द तिलक, ब्रजेन्द्रनाथ, अवनीन्द्र, ओंकार, जगदीश चन्द वसु, सुभाष, रामगोपाल आदि ने हमारे देश का मान विदेशों में बढ़ाया। युवाओं को इस सम्पत्ति से कितना उत्साह मिलता है यह युवाओं के हृदयों से पूछना चाहिए और अपने इतिहास ग्रन्थों में इसे आदरणीय स्थान देना चाहिए। भारत के पुरातन साहित्य, संस्कृति का तो कहना ही क्या? सारा संसार हमारे वेद उपनिषद्, रामायण, महाभारत, स्मृतियां, पंचतन्त्र पाणिनीय व्याकरण, काव्यनाटक साहित्य अलंकार शास्त्र, सांख्य, योग, वेदान्त, आयुर्वेद ज्योतिष आदिपर मुग्ध है। यहां की संस्कृति की गवेषणा और अनुशीलन पर भूमण्डल के मुख्य मुख्य देशों ने पिछले १७० वर्षों में करोड़ों रुपया व्यय कर दिया और अब भी कररहे हैं। वे स्वयं हमारी सम्पत्ति को दिव्य विभूति समझते हैं। हम बड़े अभागे और कृतघ्न होंगे यदि अपने पूर्वज ऋषियों आचार्यों और कवियों कलाविदों की रचनाओं का हम स्वयं आदर न करें और उठती पीढ़ी को उसका सम्पूर्ण ज्ञान न दें।

७ भारत महादेश के भिन्न भिन्न खण्डों और इकाइयों का अपना अपना स्वरूप और इतिहास है। पिछले २५०० वर्षों से हम भारत के जनपदों के रूप में अनेक खण्ड पाते हैं। अपने अन्दर ये स्वतन्त्र इकाइयां भी हैं और मिलकर विशाल भारत वर्ष भी बनाती हैं। कश्मीर, सिन्ध, पंजाब, मध्यदेश, मगध, बंग, आसाम, कलिङ्ग तामिल, तेलगू, कन्नड़, मलयालम, भाषाओं वाले द्रविड़ देश, महाराष्ट्र, गुर्जर-सौराष्ट्र, मालव राजस्थान, विदर्भ आदि स्पष्ट इकाइयां भाषा-जनपदों के रूप में दिखाई देती हैं। भिन्न भिन्न कालों में इनके अपने खण्ड होकर दूसरे खण्डों मे मिलकर नई राजनीतिक इकाइयां भले ही बन गई हैं। ये मूलभूत इकाइयां अपनी पृथक् सत्ता चिरकाल से बनाए रखती हैं। अवसर मिलने पर अपनी उन्नति भी करती हैं। विशेषतया स्वराज्य मिलने पर भारत की ये मूलभूत इकाइयां अपनी स्वतन्त्र सत्ता और उन्नति केलिए कटिबद्ध हो रही हैं। विशेषतया आन्ध्र और महाराष्ट्र आज कल पृथक् प्रदेश बनाने को बद्ध परिकर हैं।

इन मौलिक इकाइयों के वेषभूषा, मुखाकृति, स्वभाव, भाषा साहित्य, अन्नपान, विनोद आदि चिरकाल से अपना एक निश्चित स्वरूप लिए हुए हैं। इन्हें उनकी रक्षा वृद्धि देखकर बड़ा हर्ष होता है। यूं भी इतने महा देश में पूर्ण एक रूपता लानी कठिन है। न यह स्वाभाविक है न राजबल से इस एकरूपता को लाया जा सकता है। सौभाग्य से पहिले ४०, ५० वर्षों से ये इकाइयां अपने इतिहास को तैयार कर रही हैं और जीवन के एक दूसरे पक्षों में विकास कर रही हैं। पिछले स्वतन्त्रता के युद्ध और जागृति ने इन इकाइयों को भारतवर्ष की

अखण्डता का पाठ भी पढ़ा दिया है। अंग्रेजी राज्य ने रेल, तार, मुद्रानीति सेना, विदेश-नीति राजभाषा, प्रबन्ध, न्याय व्यवस्था, एक Law विधान द्वारा शनैः शनैः बड़ी बुद्धिमत्ता से संपूर्ण भारत में राजनीतिक एकता स्थापित करदी है। इन इकाइयों की भाषा-जनपदों की भाषाओं का विकास, विशेषत: गद्य का विकास इसी काल में हुआ है। अब समस्या यह है कि केन्द्र भी ऐसा प्रबल हो कि इन इकाइयों को अपने अन्दर के कार्यों में स्वतंत्रता दे और समस्त भारतवर्ष की आवश्यकता की पूर्ति के लिए इन्हें केन्द्र के आधीन भी बनाये रक्खें। ऐसा सन्तुलन करने से सकल भारतवर्ष भी सुखी रहेगा उस पर हमले भी कम होंगे। और ये भाषा-जनपद रूपी इकाइयां मुक्तहस्त और मुक्तपाद होकर अपना विकास भी कर सकेंगी।

८. इन इकाइयों के एकीकरण की सामग्री और एकाकार भारत का आत्मा

इन इकाइयों में एकीकरण की सामग्री भी विद्यमान है। संस्कृत भाषा,वेद शास्त्रादि धार्मिक पुस्तकें,तीर्थ यात्रा, कुम्भ के मेले,भारतीय संस्कृति सौरचान्द्र संवत्, भौगोलिक एकता, संस्कृतनिष्ठ प्रांतीय भाषाएं, राम कृष्ण आदि महापुरुष, सीता सावित्री आदि श्रेष्ठ नारियां,सकल भारत का इतिहास, दूसरे देशों का इसे एक समझना, पर्व, त्यौहार, आख्यान, उपाख्यान, रामायण महाभारत पुराण, धर्मशास्त्र स्मृतियां, पाणिनीय व्याकरण, भारत के चारों कोनों पर शृंगेरी द्वारका,बदरिकाश्रम में स्थित मठ तीर्थ,हिमालय समान शिष्टाचार, नये सुधारों का, भक्ति आदि आन्दोलनों का बिना राज साहाय्य के चुपके २ फैलना—ये बातें सिद्ध करती हैं कि इन इकाइयों को ये तत्व इकट्ठे किए हुए हैं, माला के मणकों को सूत्र की तरह जोड़ने का कार्य करते हैं। प्रचण्ड, राजाओं ने चाणक्य चन्द्रगुप्त अशोक पुष्यमित्र सात वाहन कनिष्क,गुप्त वंश यशोधर्मन, हर्ष, अल्लाउद्दीन, शेरशाह सूरी, अकबर, और अंग्रेजी शासन ने समय २ पर राजनीतिक दृष्टि से भी इसे एक किया है। यदि आधुनिक भारत में नीति मत्ता है तो यह नीतिमत्ता राजनीतिक दृष्टिसे अबभी इसे एकीकृत कर सकेगी। नवीन जागृति काल में राजा राममोहनराय दयानन्द से अब जवाहर सुभाष तक सैकड़ों व्यक्तियों और बीसियों समाजों और आन्दोलनों ने विशेष तया कांग्रेस ने इस एकीकरण में बहुत कार्य किया है। अब जागी हुई जाति समूचे देश को एक समझती है। इसके शत्रु को अपनी शत्रु समझती है, एक ही झंडे का अभिवादन करती है एक ही राष्ट्र गीत गाती है। अखिल भारतीय नेताओं को देख देख कर प्रफुल्लित होती है। देश के किसी भी खण्ड पर आई दुर्भिक्ष, भूकम्पादि विपत्तियों को अपनी विपत्ति समझ कर दूर करने का प्रयत्न करती है।

९. हमने इस लेख में यह दिखाने का उद्योग किया है कि हमें इतिहास के राजनीतिक और राजवंश पक्ष को गौण करके अपने देश के इतिहास के प्रजा पक्ष और सामाजिक, सांस्कृतिक और भौतिक पक्षों को यथोचित प्रधान स्थान देना चाहिए। यद्यपि आजकल उत्तरोत्तर इस में वृद्धि है। परन्तु बुद्धिपूर्वक और इच्छापूर्वक ऐसा सर्वपक्ष सम्पन्न इतिहास लिखकर हमें जनता देवी का आराधन करना चाहिए। केवल स्कूल कालिजों के लिए इतिहास न हों परन्तु विशाल और शिक्षित साधारण जनता के लिए सर्वाङ्ग सम्पन्न इतिहास होने चाहियें। क्या हमारे पास अपनी भाषाओं में ऐसे इतिहास हैं ?

दान-सूची

सार्वदेशिक आर्यप्रतिनिधि सभा देहली।

१२-११-५१ से १८-१२-१९५१ तक

दान विविध

श्री राजगुरु पं० धुरेन्द्र जी शास्त्री प्रधान सभा को भेंट रूप में प्राप्त

१००१)

३००) श्री सेठ जयनारायण जी पोद्दार ट्रस्ट कलकत्ता

२०१) श्री सेठ जयनारायण रामचन्द्र जी पोद्दार कलकत्ता

५००) श्री सेठ प्रतापसिंह शूरजी वल्लभदास जी बम्बई श्री स्व० सेठ शूर जी वल्लभ दास की स्मृति में

१००१)

३६।≈) श्री बालकृष्ण जी वर्मा ईस्ट कोस्ट ब्रिटिश गायना। (द० अमरीका)

४) एक सज्जन से

१०४१।≈) योग

१६७५) गत योग

२७१६।≈) सर्व योग

दान आर्य समाज स्थापना दिवस

३२) आर्य समाज चौक प्रयाग

३२) योग

१०११।।।=) गत योग

१०४३।।।=) सर्व योग

दान पंजाब पीड़ित सहायतार्थ

१६४०) आर्य समाज दारे सलाम ब्रिटिश ईस्ट अफ्रीका

दान शहीद परिवार सहायतार्थ

७०) आर्य समाज दारे स्लाम ब्रिटिश ईस्ट अफ्रीका

दान दाताओं को धन्यवाद—

ज्ञानचन्द्र आर्य सेवक
मन्त्री
सार्वदेशिक सभा, देहली

दान आर्य वीर दल संगठनार्थ

४०) श्री हरपाल सिंह जी नगर नायक आर्य वीर दल ग्वालियर द्वारा श्री ओम्प्रकाश जी त्यागी प्रधान सेना पति

दान सार्वदेशिक वेद प्रचारनिधि

२५०) श्री ला० रल्ला राम मेलाराम जी नई देहली

११) ,, चौधरी ठाकुर दास जी नई देहली

५) ,, पद्मन पटेल सुनामुडी वालनगीर उड़ीसा

५) ,, हरशरणदास जी मुरादाबाद

६) ,, विविध सज्जनों से

२७७) योग

१२५०।≈) गत प्रयोग

१५२७।≈) सर्व योग

सब दानियों को धन्यवाद। जिन सज्जनों ने इस महत्वपूर्ण निधि के लिये उदार दान भेज कर अपने कर्तव्य का पालन नहीं किया उन्हें तुरन्त भेज देना चाहिये। राजदूतों तथा अन्य प्रतिष्ठित व्यक्तियों को भेंट करने के लिये १५) का दान भी इस निधि का अंग है जिसे शीघ्र भिजवाइये।

धर्मदेव वि० वा०
स० मन्त्री सार्वदेशिक सभा

ग्राहकों से आवश्यक निवेदन

निम्न लिखित ग्राहकों का चन्दा जनवरी ५२ के साथ समाप्त हो रहा है। कृपया वे शीघ्र अपना आगामी वर्ष का चन्दा मनीआर्डर द्वारा सभा कार्यालय में भिजवा दें। अन्यथा आगामी अंक उनकी सेवा में वी० पी० द्वारा भेजा जावेगा। ५ अन्य मित्रों को भी ग्राहक बनवाइये।

ग्राहक सं०	पता
४०	श्री मन्त्री जी आर्य समाज छछरोली पो० बलसिया अम्बाला।
५७	श्री कम्मो जी राम मूर्ति आचार्य मेन रोड जैपुर जि० कोरापेठ
६०	श्री रामसहाय श्याम जी भर्थना जिला इटावा।
७६	श्री आचार्य जी गुरुकुल सूपा वाया नवसारी जि० सूरत
९८	श्री मन्त्री जी आर्य समाज केन्टोन्मेन्ट लखनऊ।
९९	,, ,, ,, मीनापुर पो० पुखराया जिला कानपुर।
१०२	,, ,, ,, गुलावठी जिला बुलन्दशहर
१०५	पं० केशवदेव जी शास्त्री सान्डी जिला हरदोई
१५७	श्री मन्त्री जी आर्य समाज मुरादाबाद
२५५	श्री मन्त्री जी आर्य समाज जमशेदपुर बिहार
२५६	श्री मन्त्री जी आर्य समाज पाली जिला हरदोई
२६१	,, ,, ,, गुरुदासपुर
२६३	,, ,, ,, नई मन्डी मुजफ्फर नगर
२६४	,, ,, ,, फैजाबाद यू०पी०
२६५	श्री रामसिंह जी आर्य पो० स्थान, घन्हरा जिला कांगड़ा
२६७	श्री मन्त्री जी आर्य समाज प्रतापगढ़
२६९	श्री लालकुमार सिंह जी आर्य पृथ्वी गंज जिला प्रतापगढ़
२७०	श्री मन्त्री जी आर्य समाज जलन्धर शहर।
२७१	,, ,, ,, नवा शहर दूवाबा जलन्धर
२७२	,, ,, ,, लखीमपुर यू० पी०
२७३	,, ,, ,, टान्डा जिला फैजाबाद
२८३	,, मन्त्री जी आ० स० जगाधरी
२९२	,, ,, ,, नरवाना पटियाला
२९४	,, ,, ,, रोपड जिला अम्बाला
३७५	श्री अयोध्याप्रसाद महावीरप्रसाद जी गोन्दिया सी० पी०
३७६	श्रीमती मन्त्रिणी जी स्त्री समाज दीवानहाल दिल्ली द्वारा डा० नन्दलाल जी
३७७	श्री छोटेलाल जी मुर्ली मनोहर जी का मन्दिर केसरगंज, अजमेर
३७८	श्री हरिदास जी ३७५ पठानपुरा दिल्ली शाहदरा दिल्ली।
३७९	श्रीमती जानकी देवी जी अहमदाबाद
३८६	श्री मन्त्री जी आर्य समाज फुलडिह जिला गया।
३८८	श्री मन्त्री जी आर्य समाज खड़गपुर बंगाल
५८०	श्री लालाराम जी दिल्ली शाहदरा दिल्ली
५८१	श्री मन्त्री जी आर्य समाज रायकोट जिला लुध्याना
६६२	श्री विशनदास जी आर्य श्री गंगानगर (बीकानेर)
६७८	श्री देवराज जी शर्मा बी० ए० मुजफ्फरनगर
६७९	श्री मन्त्री जी आर्य समाज बकेवर जिला इटावा
६८०	श्री लायब्रेरियन आनन्द स्वरूप लायब्रेरी कानपुर
६८४	श्री मन्त्री जी आर्य समाज सावर अजमेर
८०२	श्री बोधिसिंह जी ध्रुव ठेकेदार कुरासिया कालरी, चिरमिरी मध्यप्रदेश

ओ३म्

आर्य पर्वों की सूची

वर्ष १९५२

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा देहली आर्य समाजों की सूचना के लिए प्रति वर्ष स्वीकृत आर्य पर्वों की सूची प्रकाशित किया करती है। इस वर्ष की सूची निम्न प्रकार है:—

क्र०सं०	नाम पर्व	सौर तिथि	चन्द्र तिथि	अंग्रेजी तिथि
१.	मकर संक्रान्ति	१-१०-२००८	माघ बदी २	१४-१-१९५२
२.	वसन्त पञ्चमी	१८-१०-२००८	माघ सुदी ५	३१-१-१९५२
३.	सीताष्टमी	७-११-२००८	फाल्गुन बदी ८	१८-२-१९५२
४.	दयानन्द जन्म दिवस	१३-११-२००८	,, ,, १४	२४-२-१९५२
५.	लेखराम वीर तृतीया	१७-११-२००८	,, सुदी ३	२८-२-१९५२
६.	वसन्त नव सस्येष्टि (होली)	२९-११-२००८	,, ,, १५	११-३-१९५२
७.	नवसम्वत्सरोत्सव	१४-१२ २००८	चैत्र सुदी १	२६-३-१९५२
८.	आर्य समाज स्थापना दिवस			
९.	राम नवमी	२२-१२-२००८	चैत्र सुदी ९	३-४-१९५२
१०.	हरि तृतीया (तीज)	१०-४-२००९	श्रावण सुदी ३	२५-७-१९५२
११.	श्रावणी उपाकर्म	२१-४-२००९	,, ,, १५	५-८-१९५२
१२.	सत्याग्रह बलिदान स्मारक दिवस			
१३.	कृष्णाष्टमी	२९-४-२००९	भाद्रपद बदी ८	१३-८-१९५२
१४.	विजय दशमी	१३-६-२००९	आश्विन सुदी १०	२८-९-१९५२
१५.	ऋषि दयानन्द निर्वाण दिवस (दीपावली)	२-७-२००९	कार्तिक बदी ३०	१८-१०-१९५२
१६.	श्री श्रद्धानन्द बलिदान दिवस	९-९-२००९		२३-१२-१९५२

ज्ञानचन्द्र आर्यसेवक
मंत्री

नोट—इन पर्वों को उत्साहपूर्वक मनाकर लाभ उठाना चाहिए।

सार्वदेशिक वेद प्रचार निधि

सहायतार्थ प्रतिज्ञा पत्र

(कृपया इसे भर कर स्वयं भेजें और अपने इष्टमित्रों से भिजवाएं)

सेवा में,

श्री मन्त्री जी,

सार्वदेशिक आर्यप्रतिनिधि सभा,

बलिदान भवन, देहली

श्रीयुत मन्त्री जी, नमस्ते !

देश देशान्तरों में सार्वभौम वैदिक धर्म और वैदिक संस्कृति के प्रचार की व्यवस्था के उद्देश्य से स्थापित सार्वदेशिक वेद प्रचार निधि की योजना को मैं अत्यावश्यक और उपयुक्त समझता हूँ और इस पुण्यकार्य की सहायतार्थ ....रु० की राशि तथा/अथवा .... रु० के वार्षिक दान की प्रतिज्ञा करता हूं। यह राशि आप की सेवा में .... भेजी जा रही है।

भवदीय

ह०

नाम—

पूरा पता—

तिथि—

मुद्रक-चतुरसेन द्वारा सार्वदेशिक प्रैस पटौदी हौस से छपकर

श्री रघुनाथ प्रसाद जी पाठक पब्लिशर द्वारा सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा देहली ६ से प्रकाशित

ओ३म्

कृण्वन्तोविश्वमार्यम्

सार्वदेशिक

माघ २००८ वि०
फरवरी १९५२

सम्पादक
श्री पं० धर्मदेव सिद्धान्तालङ्कार विद्यावाचस्पति

मूल्य स्वदेश ५)
विदेश १० शि०
एक प्रति ।)

विषय सूची

ओ३म्

सार्वदेशिक आर्य-प्रतिनिधि सभा देहली का मासिक मुख-पत्र

वर्ष २६ } फरवरी १९५२, माघ २००८ वि० दयानन्दाब्द १२७ } अङ्क १२

ओ३म्

वैदिक प्रार्थना

ओ३म् सखीयतामविता बोधि सखा गृणान इन्द्र स्तुवते वयो धाः । वयं ह्या ते चकृमा सबाध आभिः शमीभिर्महयन्त इन्द्र ॥ ऋ० ४-१७-१८

शब्दार्थ :—(इन्द्र) हे परमेश्वर ! तू (सखीयताम् अविता) मित्र की तरह आचरण करने वालों का रक्षक है (सखा बोधि) तू हमारा मित्र है अतः हमें ज्ञान प्रदान कर (गृणानः) स्तुति किया हुआ तू (स्तुवते) स्तुति करने वाले भक्त को (वयः धाः) श्रेष्ठ ज्ञानादि ऐश्वर्य अथवा उत्तम दीर्घजीवन दे (वयम्) हम (सबाधः) विघ्न बाधाओं अथवा आपत्तियों से युक्त होते हुए और (आभिः शचीभिः) इन शुद्ध बुद्धियों तथा शान्तिदायिनी क्रियाओं से (महयन्तः) तेरी पूजा करते हुए (ते आ चकृम) तेरी पुकार मचाते हैं ॥

विनय—हे परमैश्वर्यसम्पन्न प्रभो ! तुम ही हमारे सच्चे मित्र हो । तुम मित्रवत् हमें पापों से बचाते तथा उत्तम ज्ञान प्रदान करते हुए हमारी रक्षा करते हो । हम उत्तमकर्मों तथा शुद्ध बुद्धि द्वारा तुम्हारी पूजा करते हुए यही प्रार्थना करते हैं कि हम भक्तों को शुद्ध ज्ञान से युक्त करो तथा हमारे जीवन को आदर्श रूप बना दो । विघ्न बाधाओं के उपस्थित होने और आपत्तियों के आने पर हम तुमसे ही रक्षा तथा मार्ग प्रदर्शन के लिये प्रार्थना करते हैं । शुद्ध बुद्धि तथा शान्तिदायक कर्मों द्वारा हम सदा तुम्हारी पूजा करते रहें ऐसी शक्ति हमें प्रदान करो ॥

सम्पादकीय

ऋषिबोधोत्सव (शिवरात्रि) का सन्देशः—

'सार्वदेशिक' के इस अङ्क को ऋषिबोधाङ्क के रूप में निकाला जा रहा है क्योंकि शिवरात्रि का ऋषिबोधोत्सव का पर्व इसी मास में २४ फर्वरी को पड़ेगा। बालकमूलशङ्कर को शिवरात्रि में पिता के आदेशानुसार शिव की पूजा करते हुए चूहों को नैवेद्य खाते तथा शिवलिङ्ग पर मूत्रादि करते देखकर मूर्तिपूजा की असारता का बोध हुआ तथा सच्चे शिव के विषय में जिज्ञासा उत्पन्न हुई। इस लिये आर्य लोग इस पर्व को ऋषिबोधोत्सव के रूप में मनाते हैं। इस पर्व का मुख्य सन्देश वस्तुतः शान्ति के मूल भगवान् (शिव) की सच्ची पूजा तथा मूर्तिपूजादि अवैदिक, साम्प्रदायिकतावर्धक हानिकारक प्रथाओं का त्याग करना और कराना है। महर्षि दयानन्द का इस विषय पर कितना बल था यह सत्यार्थ प्रकाश और ऋग्वेदादिभाष्यभूमिकादि के अतिरिक्त उनके वेद भाष्य से भली भांति स्पष्ट हो जाता है। य एकश्चर्षणीनां वसूनामिरज्यति। इन्द्रः पञ्च क्षितीनाम्॥ ऋ.१।७।६

इसके भावार्थ में ऋषि लिखते हैं:—

यः सर्वाधिष्ठाता सर्वान्तर्यामी व्यापकः सर्वैश्वर्यप्रदो ऽद्वितीयोऽसहायो जगदीश्वरः सर्वजगतो रचको धारक आकर्षणकर्तास्ति स एव सर्वैर्मनुष्यैरिष्टत्वेन सेवनीयोऽस्ति। यः कश्चित्तं विहायान्यमीश्वरभावेनेष्टं मन्यते स भाग्यहीनः सदा दुःखमेव प्राप्नोति॥"

अर्थात् जो उस सबके अधिष्ठाता सर्वान्तर्यामी अनुपम सर्वव्यापक जगदीश्वर को छोड़ कर किसी अन्य को ईश्वर भाव से इष्ट मानना है वह भाग्यहीन सदा दुःख को ही प्राप्त करता है।

"इन्द्रं वो विश्वतस्परि हवामहे जनेभ्यः। अस्माकमस्तु केवलः॥" ऋ. १।७।१०

इसके भावार्थ में महर्षि दयानन्द ने लिखा है:—
"ईश्वरोऽस्मिन् मन्त्रे सर्वजनहितायोपदिशति। हे मनुष्याः ! युष्माभिर्नैव कदाचिन्मां विहायान्य उपास्यदेवो मन्तव्यः। एवं सति यः कश्चिदीश्वरत्वे ऽनेकत्वमाश्रयति स मूढ एव मन्तव्य इति

अर्थात् इस मन्त्र में ईश्वर ने सब मनुष्यों के हित के लिये उपदेश दिया है कि तुम्हें मुझे छोड़ कर किसी को उपास्य देव न मानना चाहिये। ऐसी अवस्था में जो ईश्वर में अनेकता का आश्रय लेता है उसे मूर्ख ही समझना चाहिये।

हिरण्यपाणिमूतये सवितारमुपह्वये। स चेत्ता देवता पदम्॥ ऋ० १।२२।५ के भावार्थ में महर्षि ने लिखा:—मनुष्यैर्यः चिन्मयः सर्वत्र व्यापकः पूज्यतमः प्रीतिविषयः सर्वैश्वर्यप्रदः परमेश्वरोऽस्ति स एव नित्यम् उपास्यः। नैव तद्विषये ऽस्मादन्यः कश्चित्पदार्थ उपासितुमर्होऽस्तीति मन्तव्यम्॥" अर्थात् मनुष्यों को ज्ञानमय सर्वव्यापक पूज्यतम परमेश्वर की ही नित्य उपासना करनी चाहिये। उसके विषय में अन्य कोई पदार्थ उपासना के योग्य नहीं ऐसा मानना चाहिये। इत्यादि सैंकड़ों उद्धरणों को दिया जा सकता है किन्तु विस्तार भय से अभी इतने पर्याप्त हैं। महर्षि के इस सन्देश के दो अंश हैं (१) एक मूर्तिपूजा तथा ईश्वर के स्थान में बहुदेवतावाद का परित्याग तथा (२) सर्वव्यापक सर्वज्ञ आनन्दस्वरूप भग-

वान् की सच्ची पूजा अथवा उपासना। हम समस्त आर्य नरनारियों का ध्यान इन दोनों अंशों की ओर आकृष्ट करना चाहते हैं। यह पर्याप्त नहीं है कि हम मूर्तिपूजादि अवैदिक प्रथाओं का स्वयं परित्याग करें, अपने परिवारों तथा अन्यों से करवाएं—यद्यपि यह भी अत्यावश्यक है किन्तु उसके साथ सच्चिदानन्द स्वरूप भगवान् की सच्ची उपासना का अभ्यास करके शान्ति और आनन्द लाभ करना और करवाना भी हमारा कर्तव्य है। खेद है कि इस दूसरे विधानात्मक कर्तव्य की ओर आर्य नरनारियों का पर्याप्त ध्यान नहीं हैं। बहुत से आर्य ५,७ मिनट बैठकर सन्ध्या के मन्त्रों का उच्चारण कर लेना ही पर्याप्त समझते हैं। इसका उनके जीवन पर कोई विशेष प्रभाव नहीं दिखाई देता। सच्ची उपासना मनुष्य के जीवन को उन्नत करती तथा उसे शान्ति और आनन्द प्राप्त कराती है। यदि आर्य महर्षि दयानन्द के आदेशानुसार इस ओर पर्याप्त ध्यान दें तो उनमें सच्ची आध्यात्मिकता जागरित होगी। तभी वे राग द्वेषादि रहित हो कर समाज राष्ट्र तथा विश्व में शान्ति का प्रसार करने में समर्थ होंगे। सत्संग सन्ध्या और स्वाध्यायादि द्वारा हमें अपने जीवनों को निर्मल बनाते हुए महर्षिके इस सन्देश को दूर २ तक सुनाना चाहिये। इस से सब का कल्याण होगा। यह अत्यन्त दुःख की बात है कि भारत की स्वाधीनता के पश्चात् मूर्ति पूजा का भी अनेक रूपों में विस्तार हो रहा प्रतीत होता है जिस के विरुद्ध प्रेम पूर्वक प्रबल आन्दोलन की आवश्यकता है।

एक पारसी विद्वान् द्वारा वैदिक ईश्वरवाद का प्रतिपादनः—

यह प्रसन्नता की बात है कि विविध मतों के अनेक निष्पक्ष विद्वान् अब इस तथ्य को स्वीकार करने लगे हैं कि वेदों में एक ईश्वर की पूजा का ही शुद्ध रूप में प्रतिपादन किया गया है। पाश्चात्य विद्वानों में से जर्मनी के प्रो० श्लीगल इंगलैण्ड के कोलब्रुक अर्नेस्ट और बुड ब्राऊन तथा रूस के कौन्ट जान्सजर्ना (Bjomsjarne) आदि विद्वानों का नाम इस विषय में विशेष रूप से उल्लेखनीय है जिन के ग्रन्थों से उद्धरण हम समय २ पर 'सार्वदेशिक' में उद्धृत करते है और आगे भी करते रहेंगे। इन दिनों हम सुप्रसिद्ध पारसी विद्वान् फ़रेदून दादाचन जी B. A. LL. B. D. Th की (Philosophy of zoroastrianism and comparative stády of Religions)नामक लगभग ८३० पृष्ठों की पुस्तक को पढ़ने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। आप ने वेद, वैदिक शब्दों की विशेषता तथा वैदिक ईश्वर वाद पर पृ० १०० से १०२ तक इतना अच्छा प्रकाश डाला है कि हम उसे पढ़ कर गद्गद हो गये। हम पाठकों के लाभार्थ उसे सम्पूर्णतया फिर कभी उद्धृत करेंगे। यहां केवल निम्न लिखित शब्दों को उद्धृत करना ही अभी पर्याप्त होगा जिन से महर्षि दयानन्द के विचारों का पूर्ण समर्थन होता है। वेद के विषय में आपने पृष्ठ १०० में लिखा है:—

"The Veda is a book of knowledge, and wisdom of comprising the book of nature, the book of Religion, the book of Prayers, the book of Morals and so on. The word

Veda means wit, wisdom, knowledge and truely the Veda is condensed wit, wisdom and knowledge." (P.100)

अर्थात् वेद ज्ञान और बुद्धिमत्ता की पुस्तक है जिस में प्रकृति, धर्म, प्रार्थना, तथा सदाचारादि विषयक पुस्तकों का समावेश है। वेद का अर्थ ज्ञान विज्ञान तथा बुद्धिमत्ता है और सचमुच वेद में ज्ञान, विज्ञान और बुद्धिमत्ता का निष्कर्ष है।

इसके पश्चात् वेद में प्रयुक्त अग्नि आदि शब्दों के अग्नि तथा परमेश्वर दोनों अर्थ 'अग्नि मीडे पुरोहितम्' आदि सूक्तों में हैं इस बात को दर्शाते हुए लिखा है:—

Monotheism:—

"The Vedas teach nothing but Monotheism of the purest kind, the belief that this universe manifests the love, might, wisdom and glory of God."

अर्थात् वेद सर्वथा शुद्ध रूप में एकेश्वरवाद की शिक्षा देते और बताते हैं कि इस जगत द्वारा परमेश्वर का प्रेम, शक्ति बुद्धिमत्ता और महिमा प्रकट होती है। इत्यादि यह लिखने की आवश्यकता नहीं कि इन शब्दों से महर्षि दयानन्द के वेद विचारों का पूर्णतया समर्थन होता है।

निर्वाचनों में नैतिकपतन के निन्दनीय उदाहरणः—

इन दिनों भारत के प्रायः सभी प्रदेशों में "निर्वाचन ज्वर" जोरों पर रहा। अनेक महारथी पराजित घोषित किये गए जिनमें दलित वर्ग के नेता, भारत के भू० पू० विधि मन्त्री डा० अम्बेडकर, बम्बई के गृहमन्त्री श्री मुरारजी देसाई, मद्रासप्रदेश के प्रधान मन्त्री श्री कुमारस्वामी राजा, आन्ध्र के नेता श्री टी० प्रकाशम् तथा प्रो० रंगा इत्यादि के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। इन पंक्तियों को (२१ जन० के दिन) लिखते हुए अभी अनेक स्थानों के निर्वाचन फल प्रकाशित नहीं हुए और उत्तर प्रदेशादि के निर्वाचन होने शेष हैं अतः उनके सम्बन्ध में अभी टीका टिप्पणी करना उचित न होगा किंतु एक बात का निर्देश किये बिना हम नहीं रह सकते। वह इन निर्वाचनों में जो नैतिक पतन के अनेक उदाहरण देखने में आये उनके सम्बन्ध में हैं। बहुत स्थानों पर यह सुनने में आया कि विभिन्न दलों के प्रतिनिधियों तथा स्वतन्त्र उम्मीदवारों ने निर्वाचन में सफलता प्राप्त करने के लिए रु० को पानी की तरह बहाया; मत दाताओं को अनेक प्रकार के प्रलोभन दिये तथा शराब आदि का भी सेवन कराया। मतदाताओं में से अनेकों ने (जिनमें अनेक शिक्षित व्यक्ति भी दुर्भाग्यवश सम्मिलित हैं) इस प्रकार के प्रलोभनों में आकर अपने अधिकार के प्रयोग में अन्तरात्मा अथवा उत्तरदायिता का कोई विचार न करते हुए अधिक राशि देने वाले के पक्ष में मत दिया, अन्यों के मुख सुनी सुनाई बातों पर विश्वास न करते हुए हम अपने कानों से सुनी एक बात का उल्लेख करने के प्रलोभन का संवरण नहीं कर सकते। १४ जनवरी से देहली में लोक सभा और देहली विधान सभा के लिए निर्वाचन होने वाला था। १३ तारीख को हम अपने एक डा० मित्र के पास बैठे हुए थे। एक सिक्ख सज्जन जो कोट पतलून आदि पहने हुए थे और अच्छे शिक्षित व्यक्ति प्रतीत होते थे आये और डा०

महोदय से हमारे सन्मुख कहने लगे कि आप अधिक रु० दिलाने में हमारी सहायता करें। डा० महोदय ने कहा कि किस रूप में आप सहायता चाहते हैं। वे कहने लगे वोट के सम्बन्ध में। एक स्वतन्त्र उम्मेदवार का नाम लेकर उन्हों ने कहा कि ५०) वह दे रहा है किंतु यदि इस से अधिक कोई और देने को तत्पर हो तो हम उसी को वोट देंगे यह कोई हमारा मामा चाचा थोड़े ही लगता है। हमें उनकी इस बात को सुनकर बड़ा दुःख हुआ और हमने उन से कहा कि आप का इस प्रकार करना बड़ा अनुचित है। अपनी उत्तर दायिता को समझते हुए सुयोग्य व्यक्तियों को ही हमें अपना मत देना चाहिये न कि इस प्रकार इसे सौदे का विषय बना कर। वे कहने लगे—जब हम ऐसी नीचता पर उतर ही आए हैं तो फिर ५० पर ही क्यों रुकें क्यों न हम उसको वोट दें जो इससे अधिक देने को तय्यार हो। हमें उनकी इस निर्लज्जता को देख कर और भी दुःख हुआ और उसे हमने प्रकट भी किया किंतु उन्होंने उसकी कुछ पर्वाह न की। इसी प्रकार के अन्य अनेक घोर-नैतिकपतन के उदाहरण इन दिनों देखने और सुनने में आए। यह अवस्था सर्वथा अवाञ्छनीय और निन्दनीय है। राजनैतिक दलोंने अपने दल के हित को ही प्रमुखता देते हुए मौलिक सिद्धान्तों की भी सर्वथा अवहेलना करते हुए जैसे जोड़ तोड़ किये, एक दूसरे पर जिस प्रकार का कीचड़ उछाला, तथा सदाचार और पवित्र जीवन का ध्यान न रखते हुए धन और प्रभावादि की दृष्टि से कई प्रतिनिधि खड़े किये इन सब बातों से हमारे समान आर्य संस्कृति के प्रेमी ही नहीं, भारत के सभी हितैषियों को बड़ा दुःख हुआ होगा इस बात का हमें निश्चय है। भारतीय संस्कृति की दुहाई देने वालों के विषय में भी जब अनेक स्थानों पर देखने और सुनने में आया कि उन्होंने असत्य के अपप्रचार में कोई संकोच नहीं किया तथा दूसरे दल की महिलाओं पर पत्थर तक फैंकवाए तब लज्जा के मारे हमारा सिर और भी नीचे हो गया। निर्वाचनों का कुछ भी फल हो, आर्यों को अपने प्रिय आर्यावर्त से इस निन्दनीय अनैतिकता और अनाचार को दूर करने का प्रबल प्रयत्न निरन्तर जारी रखना चाहिये। ऐसा ही प्रयत्न दूसरे देशों के आर्यों को पूर्ण सदाचारमय वातावरण बनाने के लिये करना चाहिये। मान्य प्रधानमन्त्री श्री जवाहरलाल जी ने इस बात को स्वीकार करते हुए कि कई स्वार्थी अधिकारलोलुप अवाञ्छनीय व्यक्ति भी कांग्रेस में घुस आए हैं यह विश्वास दिलाया है कि वे निर्वाचनों के पश्चात् उन्हें तथा जातिभेदादि को आचरण में लाने वाले व्यक्तियों को कांग्रेस से पृथक् कर के उसका संशोधन कर देंगे। हम आशा करते हैं कि वे तथा अन्य दलों के नेता इस बात का विशेष ध्यान रखेंगे कि दुराचारी स्वार्थप्रिय व्यक्ति इन संस्थाओं में न रहने पाएं जिससे देश में सदाचार का वातावरण बने तथा यह इस विषय में एक उच्च आदर्श समस्त जगत् के सन्मुख रख सके।

"लोपामुद्रा" में वैदिक सभ्यता का सर्वथा अशुद्ध चित्रण:—

श्री कन्हैय्यालाल जी मुन्शी—वर्तमान खाद्य तथा कृषि मन्त्री भारतसरकार एक सुप्रसिद्ध साहित्यकार हैं। उनकी लिखी हुई पुस्तक 'लोपामुद्रा'

के जो सन् १९४९ में राजकमलप्रकाशन दिल्ली से भारतीय विद्या भवन बम्बई के लिये प्रकाशित हुई है,अनेक अंशों को पढ़ने का हमें पिछले दिनों अवसर प्राप्त हुआ और उन्हें पढ़ कर हमें अत्यन्त दुःख और आश्चर्य हुआ। उस पुस्तक के मुख-पृष्ठ की पीठ पर निम्न शब्द प्रकाशन की ओर से लिखे गये हैं 'आर्यावर्त की महागाथा' के नाम से मुन्शी जी ने तीन खण्डों में वैदिक कालीन आर्य संस्कृति के धुंधले इतिहास को सुस्पष्ट करके उपस्थित किया है। इस में **वैदिक सभ्यता और संस्कृति का बहुत ही सुन्दर और अधिकृत चित्रण है।** यह पुस्तक उसका पहला खण्ड है।...... मुन्शी जी की अन्य सभी कृतियों की तरह यह पुस्तक भी अद्भुत एवम् अतीव रसमय है।" इत्यादि

इस प्रस्तावना को देखते हुए ऐसी आशा करनी चाहिये थी कि इस पुस्तक में आर्यावर्त और वैदिक सभ्यता का प्रामाणिक और श्रेष्ठता प्रदर्शक चित्रण होगा किन्तु भूमिका को पढ़ते ही वह आशा निराशा और दुःख में परिणत होगई। हमारी कल्पित वैदिक उपन्यासादि पढ़ने में रुचि नहीं अतः सम्पूर्ण पुस्तक को तो हम नहीं पढ़ सके किन्तु भूमिका को आद्योपान्त पढ़ने के अतिरिक्त उपन्यास के अनेक अंशों को भी हम पढ़ गये जिनसे यह ज्ञात हुआ कि वैदिक आर्य सभ्यता का लगभग वैसा ही चित्र इस पुस्तक की भूमिका तथा अन्य भागों में खैंचा गया है जैसा प्रायः पाश्चात्य पक्षपात ग्रस्त विद्वान् तथा दास मनोवृत्ति के भारतीय करते रहे हैं। हमें श्री कन्हैयालाल जी मुन्शी जैसे महानुभाव से जो अखिल भारतीय संस्कृति सम्मेलन के प्रधान और ऋषि दयानन्द के भक्त हैं ऐसे अशुद्ध, उपहासजनक चित्रण की आशा न थी इस लिये दुख के साथ आश्चर्य भी हुआ। उनकी भूमिका से वैदिक आर्य सभ्यता के निम्न वर्णन को पाठक पढ़ें तो उनको भी दुःखमय आश्चर्य हुए बिना न रहेगा। श्री मुन्शी जी वैदिक कालीन आर्यजनों के विषय में लिखते हैं "जौ, चावल, तिल, मूंगफली यही उन लोगों का सामान्य आहार था। वे घी दूध भर पेट खाते थे। **मांस भी खाया जाता था और गाय का भी।** (लोपामुद्रा भूमिका पृष्ठ ८) इस प्रकार आर्यों को गोमांस भक्षक बता कर उसी पृष्ठ पर आप लिखते हैं कि गौएं आर्यों को बहुत ही प्रिय थीं। दान और पुरस्कार में गौएं दी जाती थीं।" इत्यादि

क्या यह परस्पर विरोध नहीं? इतने पर ही उनको सन्तोष नहीं होता। पृ० ११ पर वे फिर लिखते हैं:—"अतिथिग्व—या **गोमांस खिलाने वाले की बहुमानास्पद उपाधि थी। प्राण या आत्मा का कोई ख्याल ही न था। ईश्वर की कल्पना नहीं, नाम नहीं, उस की मान्यता नहीं।** स्वदेश की कल्पना नहीं थी। देवता अनेक थे और आर्य लोग जरा २ सी बात में देवता को ऐसा पकड़ कर बैठ जाते थे जैसे वह उन का कोई सगा साथी या मित्र हो। **बीभत्सता या अश्लीलता का कोई विचार नहीं था"** (भूमिका पृ० ११) पृ० १० पर आप

ने वैदिक कालीन आर्यों के समाज का निम्न (प्रकाशक के शब्दों में अधिकृत और सुन्दर) चित्र खींचा है: वे (आर्य) जुआ भी खेलते थे। ऋषि 'सोमरस' पीकर और इतर सर्व साधारण सुरा पीकर नशा करते थे। वर्णाश्रम रहित समाज, थोड़े से गौर-वर्ण आर्य, देशभर में फैले हुए काले रंग के दस्यु, झोंपड़ियों या मिट्टी के घरों में रहना, सिक्कों के बदले गौओं का चलन, विवाह की शिथिलता, प्रायः सम्पूर्ण स्त्री समानता, आहार विहार की पूरी स्वतन्त्रता, राजा दिवोदास जैसे **महान् राजा का भी अतिथियों को गोमांस परोस कर अतिथिग्व की** उपाधि प्राप्त करना- यह सारा चित्र हमारी दृष्टि के आगे घूमने लगता है।" आगे ऋषियों का चित्रण करते हुए आप यह लिखने की धृष्टता करते हैं :—'ऋषि चपटी नाक वाले काले कलूटे दास दासियों से भीख मांगते और भेंट लेते, **सोमरस पीकर नशे में चूर रहते, लोभ और क्रोध का प्रदर्शन करते** और गौएं देने वाले की प्रशंसा करते थे। वे **कभी २ द्वेष से भड़क कर आग बबूला हो** जाते और एक दूसरे पर देवों का क्रोध उतारने का प्रयत्न करते।" (पृ० १०) "युवक युवतियां अपने हाव भावों से एक दूसरे को अपनी ओर आकर्षित करते थे।

ऋषि रूपवती स्त्रियों के आकर्षण के आकर्षण के लिये मन्त्रों की रचना करते थे।"

(भूमिका पृ० ६)

पुस्तक के पृ० ३४ पर आपने दिवोदास राजा के विषय में फिर लिखा है "उसका नाम भी बड़ा विचित्र था 'अतिथिग्व' अर्थात् **अतिथि के लिये गोमांस परोसने वाला**।"

पृ० ६८ पर विश्वरथ (पीछे विश्वामित्र ऋषि) के पिता राजा गाधि की मृत्यु पर आप लिखते हैं "इसके बाद प्रतर्दन एक गौ काटते हैं और उसके चर्म में शव को लपेट कर अग्नि संस्कार करते हैं।" (लोपामुद्रा पृ० ६८) यह है आर्यावर्त की महागाथा में वैदिक आर्य सभ्यता का प्रकाशक के शब्दों में सुन्दर और अधिकृत चित्रण"

हमें यह लिखने में जरा भी संकोच नहीं कि वैदिक आर्य सभ्यता का यह चित्र सर्वथा अशुद्ध, कल्पित, और भ्रान्तिपूर्ण है। स्थानाभाव से इस सम्पादकीय टिप्पणी में इन सब अशुद्ध विचारों की सप्रमाण विस्तृत आलोचना करने का अवकाश नहीं यद्यपि हम ऐसा निस्संकोच कर सकते हैं। उनका वैदिक आर्यों के विषय में यह लिखना कि 'ईश्वर की कल्पना नहीं, नाम नहीं, मान्यता नहीं, कितना असत्य है ? वेदों के सूक्तों के सूक्त ईश्वर विषयक शुद्ध विचारों से भरे हुए हैं 'इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुः—एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्ति' (ऋ० १।१६४।४६) इत्यादि के अनुसार उस एक ही परमेश्वर के इन्द्र मित्र वरुण अग्नि आदि नाम है जिसके विषय में वेद का स्पष्ट उपदेश है कि 'य एक इत् तमु ष्टुहि कृष्टीनां विचर्षणिः' (ऋग्वेद) अर्थात् जो एक सर्वज्ञ परमेश्वर है उसी की हे मनुष्य तू स्तुति कर ! एक इद् राजा जगतो बभूव (ऋ० १०।१२१।४) वह परमेश्वर एक ही सारे जगत् का राजा है इत्यादि

हमारे आश्चर्य का कोई ठिकाना नहीं रहता जब हम यह देखते हैं कि एक ओर तो श्लीगल चार्ल्स कोलमैन, कोलब्रुक, ब्राऊन जैसे पाश्चात्य विद्वानों को यह लिखते पाते हैं कि 'It can not he deuniel that the early Aryans possessed a knowledge of the true God." (Schlegel)

The Almighty, In finite, Eaternal Self existant Being..... is Brahma the One Unknown True Being the Creature, the preserver and Destroyer of the Universe. Under such and innumberable other definitions

is the Deity acknowledged in the Vedas." (Charles Coleman) The Ancient Hindu Religion as founded on the Hindu Scriptures (Vedas) recognises but One God (Colebrook) Vedic Religion recognises but One God." (W. D. Brown)

अर्थात् इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि प्राचीन आर्यों को सच्चे ईश्वर का ज्ञान प्राप्त था (जर्मन विद्वान् श्लीगल) सर्व शक्तिमान्, अनन्त, नित्य, स्वयंभू, जगत का कर्ता, धर्ता और संहर्ता इत्यादि लक्षणयुक्त एक ही परमेश्वर वेदोंमें माना गया है (कोलमैन) वेदों पर आश्रित प्राचीन हिन्दू धर्म एक ही ईश्वर को मानता है (कोलब्रुक) वैदिक धर्म एक ईश्वर को ही स्वीकार करता है (ब्राऊन) और दूसरी ओर भारतीय संस्कृति के प्रेमी होने का दावा करने वाले श्री मुन्शी जी जैसे एक भारतीय विद्वान् को उपर्युक्त भ्रान्ति पूर्ण स्थापना करते हुए पाते हैं।

कहां तो ऋषियों के विषय में निरुक्त उपनिषदादि में यह लेख कि 'साक्षात्कृत धर्माण ऋषयो बभूवुः' और सम्प्राप्यैनम् ऋषयो ज्ञान तृप्ताः कृतात्मानो वीतरागाः प्रशान्ताः (मुण्डकोप०) अर्थात् ऋषि धर्म का साक्षात्कार करने वाले थे और वे परमेश्वरादि को प्राप्त करके राग द्वेषादि रहित, पूर्ण आनन्द की प्राप्ति से कृतकृत्य और सर्वथा शान्त थे इत्यादि वर्णन और कहां श्री मुन्शी जी का यह वर्णन कि वे लोभी लालची, क्रोधी और कामी तथा सोम के नशे में चूर रहने और युवती स्त्रियों के आकर्षण के लिये मन्त्रों की रचना करने वाले थे। वस्तुतः ऐसी अनर्गल बातें लिख कर श्री मुन्शी जी ने वैदिक ऋषियों, आर्यों तथा उन की सभ्यता को विचारशील जनता की दृष्टि में गिरा दिया है चाहे उनका वैसा भाव न हो। वेदों में सैंकड़ों स्थानों पर गौ के लिये अघ्न्या शब्द का प्रयोग है जिस का अर्थ है अहन्तव्या (कभी न मारने योग्य) वेदों का स्पष्ट उपदेश है कि 'मा गामनागाम् अदितिं वधिष्ट' गां मा हिंसीरदितिं विराजम्। अर्थात् गाय की कभी हत्या न करो, इतना ही नहीं 'अन्तकाय गोघातम्' (यजु० ३०।१८ इत्यादि द्वारा गो हत्या करने वाले को मृत्यु दण्ड तक का वेद विधान करते हैं किन्तु श्री मुन्शी जी 'अतिथिग्व का एक सर्वथा कल्पित और असंगत अर्थ करके जिस का सायणादि किसी किसी नवीन भाष्यकार द्वारा भी समर्थन नहीं होता कहते हैं कि "अतिथिग्व अर्थात् अतिथि को गो मांस खिलाने वाले की बहुमानास्पद उपाधि थी।" ऋ. १।५१।६, १।५३।१०, १।१३०।७ में अतिथिग्वाय शब्द आया है जिसका श्री सायणाचार्यादि समस्त भाष्यकारों ने अतिथिभिर्गन्तव्याय पूजार्थम् अतिथीन् गच्छते, यही अर्थ किया है अर्थात् पूजा के लिये अतिथियों के पास जाने वाले अथवा अतिथिपूजक। ऋषि दयानन्द जी ने भी अपने वेदभाष्य में 'अतिथीन् गच्छते। अर्थात् अतिथियों के पास जाने वाले यही अर्थ किया है। सायणाचार्य ने १।५१।६ के भाष्य में ठीक ही लिखा है कि 'अत्रातिथ्युपपदात् गम् धातोर्बाहुलकादौणादिको ड्व प्रत्ययः' अर्थात् अतिथिपूर्वक गम् धातु से ड्व प्रत्यय होकर अतिथिग्व शब्द बनता है। आश्चर्य है कि इसमें अतिथि को गोमांस खिलाने का परोसने का भाव श्री मुन्शी जी ने कहां से निकाल लिया। "यथा मांसं यथा सुरा, यथाक्षा अधिदेवने।" अक्षैर्मा दीव्यः इत्यादि द्वारा वेदों में मांस, शराब, जुआ सब को पाप और निन्दनीय बताया गया है फिर वैदिक आर्यों पर ऐसे आरोप लगाना कितना अनुचित है, हमारा श्री मुन्शी जी से सानुरोध निवेदन है कि वे ऐसी अनर्गल कल्पनाएं करके वैदिक आर्य संस्कृति को कलङ्कित करने का पाप न करें और स्पष्ट यह घोषणा करदें कि उक्त विचार भ्रम से प्रकट किये गये थे अन्यथा उनके ग्रन्थ को सर्वथा अशुद्ध मानकर निष्पक्ष जनता द्वारा तिरस्कार कियाजाए।

सार्वदेशिक सभा पुस्तक भण्डार की उत्तमोत्तम पुस्तकें

क्रम सं०	नाम पुस्तक	लेखक व प्रकाशक	मूल्य
(१)	यम पितृ परिचय	(पं० प्रियरत्न आर्ष)	२)
(२)	ऋग्वेद में देवृकामा	,,	-)
(३)	अथर्ववेदीय चिकित्सा शास्त्र	,,	२)
(४)	आर्य डाइरेक्टरी	(सार्व० सभा)	१।)
(५)	सार्वदेशिक सभा का सत्ताईस वर्षीय कार्य विवरण		अ० २) ,, स० २॥)
(६)	स्त्रियों का वेदाध्ययन अधिकार	(पं० धर्मदेव जी वि० वा०)	१।)
(७)	आर्यसमाज के महाधन	(स्वा० स्वतन्त्रानन्द जी)	२॥.
(८)	श्री नारायण अभिनन्दन ग्रन्थ	(सार्व० सभा)	स० ५)
(९)	आत्म कथा	(श्री नारायण स्वामी जी)	२।)
(१०)	श्री नारायण स्वामी जी की सं० जीवनी	(पं० रघुनाथ प्रसाद जी पाठक)	-)
(११)	आर्य वीर दल बौद्धिक शिक्षण	(पं० इन्द्रजी)	।=)
(१२)	आर्य विवाह ऐक्ट की व्याख्या	(अनुवादक पं० रघुनाथ प्रसाद जी पाठक)	।)
(१३)	आर्य मन्दिर चित्र	(सार्व० सभा)	।)
(१४)	वैदिक ज्योतिष शास्त्र	(पं० प्रियरत्नजी आर्ष)	१।)
(१५)	वैदिक राष्ट्रीयता	(स्वा० ब्रह्ममुनि जी)	।)
(१६)	आर्यसमाज के नियमोपनियम	(सार्व० सभा)	-)॥
(१७)	हमारी राष्ट्रभाषा	(पं० धर्मदेवजी वि० वा०)	।-)
(१८)	स्वराज्य दर्शन	(पं० लक्ष्मीदत्तजी दीक्षित)	स० १)
(१९)	राजधर्म (राज संस्करण)	(महर्षि दयानन्द सरस्वती)	स० २॥)
	,, (साधारण संस्करण)		अ० ॥)
(२०)	योग रहस्य	(श्री नारायण स्वामी जी)	१।)
(२१)	मृत्यु और परलोक	,,	१।)
(२२)	विद्यार्थी जीवन रहस्य	,,	॥=)
(२३)	प्राणायाम विधि	,,	≡)
(२४)	उपनिषदें :—	,,	
	ईश ।≡), केन ॥), कठ ॥), प्रश्न ।=), मुण्डक ।≡), माण्डूक्य ।), ऐतरेय ।), तैत्तिरीय १)		
(२५)	बृहदारण्यकोपनिषद्		४)
(२६)	मातृत्व की ओर	(पं० रघुनाथप्रसाद जी पाठक)	१।)
(२७)	आर्य जीवन गृहस्थ धर्म	,,	॥=)
(२८)	कथामाला	,,	॥।)
(२९)	सन्तति निग्रह	,,	१।)
(३०)	नया संसार	(पं० रघुनाथ प्रसाद पाठक)	≡)
(३१)	आर्यसमाज का परिचय	,,	≡)
(३२)	आर्य शब्द का महत्व	,,	-)॥
(३३)	वैदिक संस्कृति	(पं० गङ्गाप्रसाद उपाध्याय)	२॥)
(३४)	इजहारे हकीकत (उर्दू)	(ला० ज्ञानचन्द जी आर्य)	॥।=)
(३५)	वर्ण व्यवस्था का वैदिक स्वरूप	,,	१॥)
(३६)	आर्यसमाज और उसकी आवश्यकता		१)
(३७)	भूमिका प्रकाश	(पं० द्विजेन्द्रनाथजी शास्त्री)	१॥)
(३८)	एशिया का वैनिस	(स्वा० सदानन्द जी)	॥।)
(३९)	बहिनों की बातें	(पं० सिद्धगोपाल जी)	१)
(४०)	वेदों में दो बड़ी वैज्ञानिक शक्तियां	(पं० प्रियरत्न जी आर्ष)	१)
(४१)	सिंधी सत्यार्थ प्रकाश		२
(४२)	सत्यार्थ प्रकाश की सार्वभौमता		-)
(४३)	,, ,, और उस की रक्षा में		-)
(४४)	,, ,, आन्दोलन का इतिहास		।=)
(४५)	शंकर भाष्यालोचन	पं० गंगाप्रसाद जी उ०	५)
(४६)	जीवात्मा	,,	४(
(४७)	वैदिक मणिमाला	,,	=)
(४८)	हम क्या खायें	,,	१।)
(४९)	आस्तिकवाद	,,	३)
(५०)	भगवत कथा	,,	१
(५१)	सर्व दर्शन संग्रह	,,	१)
(५२)	मनुस्मृति	,,	५)
(५३)	आर्य स्मृति	,,	१॥)
(५४)	कम्यूनिज़म	,,	१॥)
(५५)	आर्योदयकाव्यम् पूर्वार्द्ध उत्तरार्द्ध १॥)		१॥)
(५६)	हमारे घर	(श्री निरंजनलाल जी गोतम)	॥=)
(५७)	भारत में जाति भेद	,,	१)
(५८)	दयानन्द सिद्धान्त भास्कर	(श्री कृष्णचन्द्र जी विरमानी)	२।)
(५९)	भजन भास्कर	(संग्रहकर्त्ता श्री पं० हरीशंकर जी शर्मा)	१॥।)
(६०)	विमान शास्त्र	(पं० प्रियरत्न जी आर्ष)	।=)॥
(६१)	सनातनधर्म व आर्य समाज	(पं० गङ्गाप्रसाद उपाध्याय)	।=)
(६२)	मुक्ति से पुनरावृत्ति	,, ,,	।=)
(६३)	वैदिक ईश वन्दना	(स्वा० ब्रह्ममुनि जी)	।=)॥
(६४)	वैदिक योगामृत	,,	॥=)
(६५)	कर्त्तव्य दर्पण सजिल्द	(श्री नारायण स्वामी)	१॥)
(६६)	आर्यवीरदल शिक्षणशिवर	(ओमप्रकाश पुरुषार्थी)	।=)
(६७)	,, ,, ,, लेखमाला		१।)
(६८)	,, ,, ,, गीतांजलि	(श्री रुद्रदेव शास्त्री)	।=)
(६९)	,, ,, भूमिका		=)

मिलने का पता :—सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, बलिदान भवन, दिल्ली।

तो सत्यार्थ का बोध है; बस और कुछ भी यह नहीं जानता। पर तर्क की प्रखर रश्मियों के सहन की क्षमता या तो जड़ीभूत प्राणी में होती है जिस का उत्तर मृत्युमय मौन होता है; या विकास के सर्वोच्च शिखर पर स्थित आत्मा में जिसका जीवन पुष्प तर्क की उत्कृष्टतम भूमियों से भी ऊपर की भूमि से जीवन-शक्ति ले फलित होता है। वहां तो तर्क का श्रेय इसी में है कि मौन धारण कर ले! यही कारण है कि महापुरुषों के पास जा कर बहुत सी शंकाओं की निवृत्ति स्वयमेव हो जाती है। और साधारण मनुष्य का उत्तर रोष, झुंझलाहट, अन्ध विरोध तथा घृणित षड्यंत्रों के रूप में अभिव्यक्त होता है। यही कारण था कि कबीर जैसे निरीह महात्मा को भी शत्रुओं का सामना करना पड़ा था। पर सन्तयुग के सभी महात्माओं का बौद्धिक एवं आत्मिक विकास पूर्णता की सीमा से कुछ नीचे था यद्यपि साधारणता की कोटि से वे बहुत ऊंचे उठ चुके थे। अतः उनके द्वारा प्रसूत जागृति सर्वाङ्गीण जागृति नहीं थी किसी न किसी रूप में वह एकपक्षी ही रही। परिणामतः पीछे से वह भी मत मतान्तरों की कोटि में परिगणित हुई।

पर ऋषि सर्वाङ्गीण विकास का सन्देश लेकर आए थे। विभिन्न संप्रदायों में समन्वय का भाव भी इसी सन्देश का उत्तरार्ध था। उन्होंने धार्मिक, सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक अर्थात् मनुष्य की आध्यात्मिक तथा भौतिक सभी समस्याओं पर प्रकाश डाला और यथाशक्ति उनके सुलझाने का प्रयत्न भी किया। कई महानुभावों का तो मत है कि सन् सत्तावन के विद्रोह के पीछे भी उस योगी का हाथ था। यह सत्य हो या न हो; पर यह तो निश्चित है कि सामाजिक सुधार और राजनैतिक स्वातंत्र्य की अन्योन्याश्रयिता से ऋषि पूर्णतया अभिज्ञ थे। मत मतान्तरों में पारस्परिक वैमनस्य मानव हृदय और समाज के विकास में कितना बाधक है इसका भी उन्होंने बोध कराया। तभी तो स्थान २ पर उन्होंने कहा है "धर्म में व्याप्त सत्य एक ही है। विभिन्न रूढ़िवाद मनुष्य कल्पित हैं।

कई एक शिक्षित महानुभाव–अशिक्षित अथवा अर्ध शिक्षित तो ऐसा सोचने में क्षम्य हैं—भी कहते सुने जाते हैं कि ऋषि ने तर्क का सीमा से अधिक उपयोग किया। भारतीय समाज में प्रसृत कुतर्क—अश्रद्धा जिसका रूपान्तर है—का उत्तरदायी वे ऋषि को बताते हैं। यह सुन कर अति आश्चर्य होता है। जहां एक ओर वे जीवन-पथ निर्धारण में तर्क की अनिवार्यता स्वीकार करते हैं वहां दूसरी ओर वे ऋषि को इसी के लिए दोषी ठहराते हैं। सदैव जागरूक रहने वाली और सत्यान्वेषात्मिका वृत्ति का नाम ही तो तर्क है। यह ऋषि की कितनी बड़ी देन है। कोई ऋषि को कटुता प्रसार का दोषी ठहराते हैं। पर ऐसा सोचने वाले सभी भूल करते हैं। विचारणीय प्रश्न तो यह है कि क्या ऋषि ने सचमुच द्वेष वश हो कटु सत्य को अपनाया था अथवा उस समय का समाज वृक्ष इतना दुर्बल था कि उसे जागृति के झोंके का सहारा लेना अति कठिन प्रतीत हुआ। ऋषि का तर्क द्वेष प्रेरित नहीं था अपितु बलशाली था और तत्कालीन समाज दुर्बलता के अभिशाप से अभिशप्त था। उसने विरोध और आतंक से

उसका अवरोध करना चाहा वह उस सब को पराजित कर के आगे बढ़ता रहा। इससे निर्बल तर्क असफल हो जाता। ऋषि से पूव के सन्तयुग में उद्भूत जागृति लहर के अस्थायित्व का निर्देश अभी पीछे हुआ है। पर हम देखते हैं कि ऋषि द्वारा प्रज्वलित कान्ति दीप की ज्योति किसी भी प्रयत्न से नहीं बुझी। यद्यपि अब कुछ मन्द सी प्रतीत होती है; पर निकट भविष्य में और भी प्रखर होगी, यह असन्दिग्ध है।

अब प्रश्न है कुतर्क प्रसार का। इसका कारण है आर्ष साहित्य का अनध्ययन। पाश्चात्य शिक्षा ने भी इसमें सहयोग दिया। अर्ध शिक्षित वर्ग भी इसका उत्तरदायी है। यह तो निश्चित है कि योरुप के वैज्ञानिकों एवं विचारकों द्वारा निर्धारित तथा कथित अंतिम निर्णय सभी परीक्षण की कोटि व परिवर्तन की परिधि में हैं। जहां वैदिक धर्म के सिद्धान्त ध्रुव सत्य हैं। वे मन्त्रों के द्रष्टा ऋषियों द्वारा प्रकाशित, मानव बुद्धि से ऊपर के तथ्य हैं। दूसरे पाश्चात्य शिक्षा का उद्देश्य था भारतीयों के हृदयों में ईसाइयत की प्रतिष्ठा। उसकी छाया में परिवर्द्धित मस्तिष्क भारतीय दृष्टिकोण को नहीं अपना सके। शिक्षित समाज ने अपनी शिक्षा के आधार पर ही वैदिक धर्म अथवा भारतीय संस्कृति को—इसका मौलिक अध्ययन किये बिना ही—परखना आरंभ किया और अर्ध-शिक्षित समाज वर्ग ने भी इसी प्रकार अंशतः पढ़कर कुछ सुन सुना कर तर्क का उपयोग किया। उस में से कइयों ने इसे अपनी जीविका का आधार बनाया। परिणाम यह हुआ कि तर्क का जो महान् उद्देश्य था—जो ऋषि की दृष्टि में था कि विभिन्न मतों में सामंजस्य के दर्शन और विशुद्ध वैदिक धर्म का रुचिर प्रसार आलोक प्रसार ओझल हो गया। वेद और वैदिक साहित्य के गंभीर अध्ययन के बिना वैदिक धर्म की सत्यता का भी पूर्ण बोध न हो सका और तर्क कुतर्क में परिवर्तित हो गया। अध्ययन और आचरण के आधार पर तर्क का अवश्यंभावी परिणाम वेद पर सत्य श्रद्धा होनी थी, क्योंकि वैदिक सत्यों में विज्ञान और आत्मानुभूतियों की कसौटी पर कसे जाने की पूर्ण क्षमता है, वे तर्क से डावांडोल होने वाले नहीं हैं। हां कुतर्क के फलस्वरूप मनुष्य उन्हें समझ नहीं सका: न उनकी ओर अभिमुख ही हो सका। और हम कह उठे वेद क्लिष्ट हैं, नीरस हैं; अनुपयोगी हैं आदि आदि। कोई भी विचार-धारा किस प्रकार परिवर्तित रूप में बह निकलती है और कोई साधन कुसाधन बन जाता है, ऋषि से लेकर अब तक का भारतीय जागृति का संक्षिप्त सा इतिहास इसका पर्याप्त उत्तर है।

तर्क का आश्रय कौन सुधारक नहीं लेता है? क्या आज भी हम एक दूसरे की आलोचना नहीं करते हैं? आज विभिन्न संप्रदायवादियों की पारस्परिक आलोचना का आवेग तो कुछ कम हैं। विभिन्न राजनीतिक दलों–जिनके कर्णधार धर्म को वैमनस्य प्रसार का दोषी बताने से कभी नहीं चूकते हैं–के पारस्परिक सम्बन्ध कैसे हैं? और किस बल पर वे एक दूसरे की अनुपयोगिता व त्रुटियों का प्रतिपादन करते हैं, तर्क के बल पर ही तो। यदि यह विचार स्वातंत्र्य है तो क्या धर्म जैसे महान् विषय पर विचार करना विचार स्वातंत्र्य का परिणाम पारस्परिक कटुता क्यों? इसका

कारण हृदय की संकीर्णता नहीं तो क्या है ? इस कथन का अभिप्राय विभिन्न मत और भेदों की विद्यमानता को प्रेरणा देना नहीं है, अपितु यह है कि आज को सुधारक वर्ग ने धार्मिक समस्याओं को सुलझाने का जो उपाय ग्रहण किया है, वह कोई बहुत श्रेयस्कर नहीं है । एक बुराई का सामना करने अथवा दूर करने के स्थान पर उससे मुख मोड़ना व दूसरी बुराई को जन्म देना कहां तक कल्याणकर हो सकता है यह कुछ उद्‌बुद्ध हृदय स्वयं सोच सकता है । इस समय विश्व की सब से बड़ी समस्या है सर्व विध मतभेदों में सामंजस्य की स्थापना । यही दार्शनिक दृष्टिकोण है जो प्रौढ़ावस्था में आध्यात्मिक रूप धारण कर लेता है । युग निर्माता को तो अत्यधिक पर्यवेक्षण व विवेचन की आवश्यकता होती है ऋषि युग-निर्माता थे, इससे कौन इन्कार कर सकता है ?

यदि आज कोई ऐसा पथ दिष्ट हो सके जिसमें सब की उन्नति संभव हो और प्रत्येक को विचार स्वातंत्र्य भी प्राप्त रहे तो क्या बुरा है ? यदि ऋषि ने भारतीय समाज को ही नहीं अपितु संसार भर को एक ऐसा जीवन-पथ दिखाना चाहा तो क्या बुराई की ? उन्होंने तो वेद की सार्वभौमिकता का ही बोध कराया है न कि एकदेशिता का ? यदि आज हम लोग मानते हैं कि वेद मानवमात्र के लिए परम पिता का ज्ञान-दान है तो किसकी अनुकंपा के फलस्वरूप ? क्या आज कोई भी पार्टी, अपनी पार्टी, बहुत हुआ तो देश की सीमा से ऊपर उठ विश्व-हित की घोषणा कर सकी है ? बार २ के शान्ति सम्मेलन व सुरक्षा समितियों की असफलता का कारण यही संकीर्णता नहीं है और यदि ऋषि ने आर्यसमाज का मुख्य उद्देश्य संसार का उपकार निश्चित कर दिया तो क्या बुरा कर दिया ?

साथ ही हमने ऋषि की जीवन-पुस्तक में अप्रत्यक्षतः अभिव्यक्त भावपक्ष की ओर ध्यान नहीं दिया । यहां श्रद्धा सजीव रूप में मौन खड़ी है । उसी की स्निग्ध रश्मियों से ऋषि की तर्क-शक्ति वरदान रूप बन आई । उसके मन में विश्व-प्रेम की गंगा कितने विपुल पर संयमित रूप में प्रवाहित थी; किसने जानने का प्रयत्न किया है ? क्या इतने विस्तृत प्रेम भाव के बिना संभव था कि वे अनेक बार विष दिये जाने पर भी माथे में बल न डालते और घातक को भी प्राण-दान दे पाते ? कभी उस योगी के भी आंसू बहे थे गंगा के शान्त कछार पर, किसी विधवा के रोदन पर और कभी कण्ठावरोध होता था राष्ट्र की पतित अवस्था का ध्यान करके । क्या यह अश्रुपात बिना संवेदन के ही था ? विभिन्न संप्रदायों की आलोचना करते समय उसके अन्तर की वीणा के तार किस प्रकार व्यथा-कंपित होते होंगे ? आखिर एक बार अर्धरात्रि की मूकवेला में मानव जाति के पतन की वेदना ने उसे सोने दिया ही नहीं । कैसी भीषण पीड़ा थी ? कहे की ? लोग वेदों को भूले हुए हैं ।" यह सम्प्रदायता ही उन्हें मृत्यु उनके लिए चाहे इसका अर्थ कुछ भी हो, पर हम लोग तो अभी इस भौतिक परिवर्तन को मृत्यु से ही अभिहित करते हैं—के द्वार पर हंसा सकी और शान्ति के क्षणों में रुला सकी थी । हिमाच्छादित शैल शिखर विहारी तप्त भूमंडल पर उतर पड़ा था परम पिता की असंख्य सन्तानों के आक-

षेण में आबद्ध होकर। यहीं पर उसमें श्रद्धा और तर्क के पूर्ण रूप में दर्शन होते हैं। इन दोनों का समन्वय ही उसे जीवन के सर्वोच्च शिखर तक ले गया था। दैहिक, मानसिक, बौद्धिक तथा आत्मिक विभूतियों की वह सुन्दर झांकी था।

इतना सब कुछ होने पर भी कितने निरीह भाव से वह जग में विचरता रहा! मान अपमान का विचार तो एक ओर रहा, कभी भूल कर भी आत्माभिव्यक्ति की ओर उसका ध्यान नहीं गया। उसके स्वलिखित जीवन के कुछ पन्ने मिलते हैं; पर कहां तक? जहां तक कि वह मुमुक्षु अवस्था में था। पूर्ण परिणति के पश्चात् के जीवन पर उसकी मूकता की कलामय मुद्रा अंकित है। और हम आत्माभिमानियों के लिए इसी कारण उसका जीवन समझना कठिन हो रहा है। वह वेद-वीणा का गायक था। उसका निजपन विश्व हृदय के सुख-दुःख, ह्रास-विकास में एकीभूत हो चुका था। यही कला साधना की सिद्धि है। इसी लिए वह जीवन कला का सर्वश्रेष्ठ कलाकार था न!

आर्यसमाज ने अपने को ऋषि की सन्तान्वत मक्त कार्य किया अवश्य है, पर परिस्थितिवश हो या आवेश वश, वह उसके बताए सर्वांगीण दृष्टिकोण को पूर्णतया ग्रहण नहीं कर सका है। बौद्धिक विकास के क्षेत्र में तो वह अग्रणी रहा है पर जब तक इसके सदस्य वैदिक साहित्य का अध्ययन और आचरण करते रहे। अब उधर भी शिथिलता है। आचरण की प्रौढ़ता से वह दूर है। और बिना आचरण के बल के न मन में, न विचारों में और न फिर वाणी में ही बल आ पाता है। यही कारण है सामंजस्यात्मक दृष्टिकोण को अपनाकर भी वह सफल नहीं हो सका है। कम से कम अन्य मतावलम्बी उस के नेतृत्व को तो स्वीकार करते।

आचरण की दृढ़ता के लिए परंपरागत शुभ संस्कारों की परमावश्यकता होती है। अब आर्य-समाज की तीसरी पीढ़ी तो बीत ही रही है। यदि इस तथ्य की ओर ध्यान दिया जाता तो वर्तमान सन्तान को सभी दृष्टियों से अभी सुदृढ़ होना चाहिए था। पर ऐसा नहीं हुआ। बस यहीं पर हम भयंकर भूल में हैं। बात क्या है? हमें व्यक्ति-निर्माण की ओर अभिमुख होना चाहिए था। हमारा परिश्रम सस्ती संस्था संचालन में व्यय होता रहा। संस्था में आत्म रूप व्यक्तियों के विकास की ओर पर्याप्त ध्यान नहीं दिया गया। अब स्थिति यह है कि आर्य संस्थाओं में पालित परिवर्द्धित व शिक्षित वर्ग की भी प्रायः कोई मौलिक विचारधारा बन ही नहीं पाती। परिस्थितियों का प्रवाह जिधर ले जाय, वे बह जाते हैं।

इस व्यक्ति-निर्माण के कार्य में नारी का कितना बड़ा सहयोग होना चाहिए था, इस दृष्टि से सोचने पर अंधकार ही दृष्ट ही होता है। नारी की उन्नति के सम्बन्ध में ऋषि के कितने विशाल स्वप्न थे यह उनके यजुर्वेद भाष्य के अवलोकन से स्पष्ट हो जाता है। वह सहयोग देने वाली ही नहीं; सहयोग को मंत्रित कर उसका नेतृत्व भी करने की क्षमता रखती है, पर तभी न जब इस दृष्टिकोण से उसका पालन व शिक्षण हो। आज पीड़ित विश्व मातृशक्ति के अमृतमय शीतल वरदान की प्रतीक्षा में है। देखें किस भूमण्डल के किस कोने से किसी आर्य बाला का आह्वान उसे वैदिक ऋषियों द्वारा प्रदर्शित मंगलमय जीवन-पथ की ओर अभिमुख करता है?

महर्षि भक्त

महात्मा नारायण स्वामी जी

(वसन्त पंचमी को उनके जन्मदिवस के उपलक्ष्य में)

(लेखक—श्री रघुनाथ प्रसाद जी पाठक)

स्वर्गीय महात्मा नारायण स्वामी जी का जन्म विक्रम संवत् १६२२ की माघ शुक्ल ५ (वसन्त पंचमी) को अलीगढ़ (उत्तर प्रदेश) जिले में एक साधारण कायस्थ परिवार में हुआ था। इनके पिता का नाम श्री सूर्यप्रसाद था।

इनके पूर्वज जौनपुर जिले में शृंगारपुर ग्राम के निवासी थे जिनमें से कई को बनारस के स्वर्गीय महाराज चेत सिंह के यहां उच्च पदों पर कार्य्य करने की प्रतिष्ठा प्राप्त हुई थी।

स्वामी जी का संन्यास से पूर्व का नाम नारायण प्रसाद था। प्रारंभिक शिक्षा अरबी और फारसी के एक मकतब में हुई। कुछ समय तक अंग्रेजी के एक स्कूल में भी पढ़े। जब ये ८ वीं क्लास में पढ़ते थे तभी इनके पिता की मृत्यु हो जाने से सन् १८८६ में इनकी नियमित पढ़ाई बन्द हो गई।

२३ वर्ष की अवस्था में इनका विवाह हुआ। सन् १८६२ ई० में मुरादाबाद की कलक्टरी में क्लार्क नियत हुए और उन्नति करते २ कलक्टर के रीडर बन गए। इनका वैवाहिक जीवन सुख और गौरव मय तथा सर्विस का जीवन उज्ज्वल था। जिन पदों पर इन्हें कार्य्य करने का अवसर मिला उन पर रिश्वत लेनेके बड़ेबड़े प्रलोभन और अवसर प्राप्त हुए परन्तु इन्होंने आर्य्य होने के नाते कभी रिश्वत न ली। मुरादाबाद में यह प्रसिद्ध था कि इनका बस्ता कभी घर पर न आता था। सर्विसकी इस उज्ज्वलताके लिए वे कलक्टरी में, मुरादाबाद नगर में और उसके आसपास के इलाके में बड़े प्रसिद्ध थे। स्वयं कलक्टर महोदय इनकी ईमानदारी से प्रभावित थे और उन्होंने स्वयं अपनी लेखनी से इनकी सर्विस बुक में ईमानदारी की चर्चा की थी।

१६११ में पत्नी और एक मात्र पुत्र की मृत्यु के कारण इनका गृहस्थ जीवन समाप्त हुआ। १६१२ में सर्विस से त्याग पत्र देकर गुरुकुल वृन्दावन के मुख्याधिष्ठाता के पद पर कार्य्य करने चले गए। उससमय पैंशन का अधिकार प्राप्त करने में केवल १ वर्ष शेष था और तत्कालीन कलक्टर ने इनके लिए तहसील दारी के पद की व्यवस्था करके उसे स्वीकार करने का अनुरोध किया परन्तु गुरुकुल को संभालने के लिए गुरुकुल की स्वामिनी सभा से वचन बद्ध होने के कारण ये कलक्टर के अनुरोध को स्वीकार न कर सके। कुछ मित्रों ने इनके लिए (कार्य्य करने में

असमर्थ) होकर पैंशन प्राप्त करने का 'परामर्श' दिया परन्तु इन्होंने यह असत्याचरण करना उचित न समझा। सर्विस छोड़ते समय इनके पास २०००) अपने जमा थे। उसके लगभग १३) मासिक के सूद से गुरुकुल में अपने भोजन और वस्त्रादि का व्यय चलाया। बाद में संन्यास लेते समय यह रुपया आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तर प्रदेश को साहित्य प्रकाशन के कार्य के लिए दे दिया।

ये मुरादाबाद में आर्य्य समाज में प्रविष्ट हुए थे। आर्य्य समाज की निःस्वार्थ और उज्ज्वल सेवा के कारण मुरादाबाद में इन्होंने सच्चे आर्य्य के रूप में अल्प समय में ही पर्य्याप्त ख्याति प्राप्त करली थी और इनकी सेवाओं और प्रगतियों का क्षेत्र व्यापक होकर प्रान्तीय सभा और सार्वदेशिक सभा तक विस्तृत हो गया था। आर्य्य प्रतिनिधि सभा उत्तर प्रदेश और सार्वदेशिक सभा के साथ इनका सम्बन्ध इन दोनों के जन्म वा शैशव काल से ही चला आता था। जब ये मुरादाबाद में थे तब इन दोनों सभाओं का कार्यालय मुरादाबाद था और ये इनके मन्त्री का कार्य्य करते थे।

आर्य्य समाज का प्रसिद्ध साप्ताहिक आर्य्य मित्र मुरादाबाद से इनकी देखरेख में निकले हुए उर्दू पत्र 'मुहर्रक' का हिन्दी रूपान्तर था।

आर्य्य प्रतिनिधि सभा उत्तर प्रदेश के दृढ़ीकरण में इनका बहुत बड़ा भाग रहा है। उक्त सभा ने इनकी सेवाओं के आदर स्वरूप अपने लखनऊ स्थित मुख्य कार्य्यालय भवन का नाम 'नारायण स्वामी भवन' रखकर इनकी स्मृति को कायम किया है।

१६१७ में गुरुकुल वृन्दावन के कार्य भार से मुक्त होकर स्वर्गीय श्री स्वामी सर्वदानन्द जी महाराज से संन्यास ग्रहण किया और मुंशी नारायण प्रसाद से 'नारायण स्वामी' बन गए। नैनीताल के पर्वत प्रदेश में रामगढ़ स्थान पर 'आश्रम' स्थापित करके एकान्त वास, स्वाध्याय और आत्म चिन्तन की साधना आरंभ की। अज्ञान, अंध विश्वास और कुरीतियों में डूबी हुई पर्वतीय जनता में जागृति उत्पन्न करने का कार्य्य भी आरंभ किया गया। रामगढ़ का नारायण स्वामी हायर सेकैन्डरी स्कूल जो पर्वतीय जनता द्वारा श्री स्वामीजी के नाम पर सन्१६४०में खोला गया था और जो दिन पर दिन उन्नति करता आ रहा है पर्वतीय जनता के प्रति किए गए स्वामी जी के महान् उपकारों का आंशिक प्रतिफल स्वरूप है।

१६२५ में ऋषि दयानन्द का जन्म शताब्दि महोत्सव मथुरा में मनाया गया जिसमें लगभग ४ लाख व्यक्ति सम्मिलित हुए। इस महोत्सव के प्रबन्धका मुख्यतम भार श्री स्वामीजी के ऊपर था। महोत्सव के सुप्रबन्ध से प्रसन्न और स्वामी जी की सेवाओं से उपकृत हुए आर्य्य नरनारियों ने उस अवसर पर स्वामी जी की सेवा में अभिनन्दन पत्र भेंट करके उन्हें अपना भावी नेता स्वीकार किया था।

इस महोत्सव के तत्काल पश्चात् श्री स्वामी जी की शक्ति और पुरुषार्थ सार्वदेशिक आर्य्य प्रतिनिधि सभा(इंटर नैशनल एर्यन लीग)को सुदृढ़ और उन्नत करने में लगीं। १४ वर्ष पर्यन्त सार्व-

देशिक सभा को प्रधान के रूप में स्वामी जी की सेवाएं प्राप्त रहीं। इस अवधि में सार्वदेशिक सभा वास्तविक रूप में आर्य्य जगत् की शिरोमणि सभा बनी और मानी जाने लगी। सभा के वर्त-मान और उन्नत स्वरूप का बड़ा श्रेय स्वामी जी को प्राप्त है।

यद्यपि सभा की नियमित सेवा से स्वामी जी १६३५ में अपने निश्चयानुसार अलग हो गए थे फिर भी उसके पश्चात् अन्त समय तक आर्य्य समाज का नेतृत्व उनके हाथ में सुरक्षित रहा। भीषण अवसरों पर आर्य्य जगत् की आंखें उन्हीं की ओर उठती थीं।

१६३६ मे संसार प्रसिद्ध आर्य्य सत्याग्रह का शुभ संचालन प्रथम सर्वाधिकारी के रूप में उन्हीं को करना पड़ा। उसकी अनुपम सफलता में उनका सबसे बड़ा योग था। १६४६ में जब सिंध के मुस्लिम लीगी मन्त्री मंडल ने सत्यार्थ प्रकाश पर प्रतिबन्ध लगाकर १४ वें समुल्लास सहित उसको अपने पास रखना, बेचना, पढ़ना और उससे प्रवचन करना आदि निषिद्ध उद्घोषित कर दिए और प्रतिबन्ध के निराकरण के सब वैध उपाय असफल रहे तब सार्वदेशिक आर्य्य प्रतिनिधि सभा ने सत्याग्रह का निश्चय करके उसके संचालनका महान् उत्तरदायित्व भी स्वामी जी के ऊपर डाल दिया।

हैदराबाद सत्याग्रहके सर्वाधिकारियोंके रुप में परखे हुए आर्य्य समाज के कतिपय विशिष्ट अग्रणियों के साथ सत्याग्रह के लिए कराची पहुँच कर वहां अपना शिविर जा लगाया। परमात्मा की कृपा से सिंध के वरिष्ठ अधिकारियों में सन्मति का प्रादुर्भाव हुआ और आर्य्य समाज जीवन मरण के संभावित परीक्षण में से बिना बलिदान के सफल निकल आया।

स्वामी जी ने वैदिक सिद्धान्तों और आर्य्य समाज के सम्बन्ध में आर्य्य जगत् को बड़ा मूल्य वान् साहित्य दिया है। उनके मुख्य ग्रन्थ इस प्रकार हैं:—

(१) आत्म दर्शन (२) उपनिषदों की टीकाएं (३) मृत्यु परलोक (४) योग रहस्य (५) कर्म रहस्य (६) गृहस्थ जीवन रहस्य (७) विद्यार्थी जीवन रहस्य (८) प्राणायाम विधि (६) कर्त्तव्य दर्पण (१०) आत्म कथा।

ये सब ग्रन्थ आर्य्य समाज तथा उससे बाहर बहुत लोक प्रिय हैं। परन्तु कुछ ग्रन्थ तो इतने लोक प्रिय हैं कि कभी २ माल की अपेक्षा मांग बढ़ जाती है।

१६४४ में जब स्वामी जी ८० वर्ष के हुए सार्वदेशिक आर्य्य प्रतिनिधि सभा ने सभा तथा आर्य्य समाज के प्रति की गई उनकी प्रशंसनीय सेवाओं के आदर स्वरूप नारायण अभिनन्दन ग्रन्थ के नाम से एक बड़ा ग्रन्थ उनकी सेवा में नारायण आश्रम के रजतजयन्ती महोत्सव के अवसर पर रामगढ़ में भेंट किया।

सार्वदेशिक सभा और आर्य्य प्रतिनिधि सभा उत्तर प्रदेश के अतिरिक्त स्वामी जी आर्य्य समाज की अनेक सभाओं,और संस्थाओंके साथ संस्थापक संरक्षक अधिकारी वा सम्मान्य सदस्य के रूप में सम्बद्ध रहे।

१६४६ में श्री स्वामी जी पर केस का आघात हुआ। बीमारी और अस्वस्थता की इस

अवस्था में भी उन्हें सिंध सत्याग्रह के कार्य में लगना पड़ा जिससे उनका स्वास्थ्य और भी बिगड़ गया और उन्हें चारपाई का सहारा लेना पड़ा। चिकित्सा और सेवा की समुचित व्यवस्था के होते हुए भी दुर्भाग्य से कैंसर असाध्य और घातक सिद्ध हुआ। १५ अक्टूबर १९४७ को अपने परम सरभक्त श्री डा० श्याम स्वरूप जी के निवास स्थान पर बरेली में उनका देहावसान हुआ।

श्री स्वामी जी एक साधारण परिवार में उत्पन्न हुए थे। शिक्षा भी बहुत कम प्राप्त हुई थी फिर भी वे अपने यत्न और अध्यवसाय से महान व्यक्ति बने। स्वाध्याय, सादा नियमित जीवन परिश्रम शीलता, जीवन की शुद्धता इन सब ने उन्हें इतने ऊंचे पद पर जा बिठाया कि अपने समयमें वे केवल आर्यसमाज के आध्यात्मिक नेता ही नहीं अपितु वैधानिक नेता भी माने जाते थे।

मूर्ति-पूजा के प्रबल शत्रु महर्षि दयानन्द

(लेखक—श्री देवेन्द्रनाथ जी मुखोपाध्याय)

हिन्दुओं ने अपनी कल्पना मात्र से अनेक परमेश्वरों को घढ़ लिया है। जिस परमात्मा का वेदादि शास्त्रों में अकाय, अव्रण, अशब्द, अस्पर्श आदि शब्दों से कीर्तन किया गया है; उस परमात्मा में हिन्दू काम, क्रोध, भय क्षुधा, तृष्णा, व्याधि, आलस्य निद्रा, विपत्, पुत्रोत्पादन, विद्वेष, हिंसा, कलह, स्वजनद्रोह, परस्त्री गमन प्रभृति का आरोप करने में अणुमात्र भी सङ्कोच और पाप नहीं मानते। हिन्दुओं ने इन स्वकल्पित तथा नव निर्मित ईश्वरों में से हर एक की नाना प्रकार के उपकरणों के द्वारा पूजा-अर्चन करने और उस पूजा प्रणाली को चिरकाल तक स्थायी रखने के उद्देश्य से एक एक पुराण और उपपुराण की रचना भी कर डाली है। यह निर्भ्रान्त रूप से कहा जा सकता है कि अपनी रुचि और इच्छा के अनुसार नित्य नूतन ईश्वरों की सृष्टि करने की प्रवृत्ति में हिन्दुओं ने अपनी मृत्यु का बीज स्थापित कर दिया है। इसके कारण हिन्दु उत्सन्नता के मार्ग पर जा रहे हैं इसी कारण आज हिन्दू मरणासन्न से शय्या पर पड़े हुए हैं। यही हिन्दुओं की अवनति का प्रधान कारण है। यही भारत के सर्वनाश का प्रधान हेतु है। मूर्ति-पूजा ने भारत के अकल्याण की जो सामग्री एकत्रित की है, उसे लेखनी लिखने में असमर्थ है। मूर्ति-पूजा ने भारत वासियों का जो अनिष्ट किया है उसे प्रकट करने में हमारी अपूर्ण-विकसित भाव प्रकाशक शक्ति अशक्त है। जो धर्म सम्पूर्ण भाव से आन्तरिक वा आध्यात्मिक था उसे सम्पूर्ण रूप से बाह्य किसने बनाया ? मूर्ति-पूजा ने। कामादि शत्रुओं के दमन और वैराग्य के साधन के बदले तिलक और त्रिपुण्ड्र किस ने धारण कराया ? मूर्तिपूजा ने। ईश्वरभक्ति, ईश्वरप्रीति परोपकार और स्वार्थ त्याग के बदले अंग में गोपी चन्दन का लेपन, मुख से गंगा लहरी का उच्चारण, कण्ठ में अनेक प्रकार की मालाओं का धारण किसने सिखाया ? मूर्तिपूजा ने।

संयम शुद्धता, चित्त की एकाग्रता आदि के स्थान पर खाद्य-विशेष का सेवन न करना, प्रातः काल मध्याह्न और सायङ्काल में अलग अलग वस्त्रों के पहनने का आयोजन और तिथि विशेष पर मनुष्य विशेष का मुख देखना तो दूर रहा उसकी छाया तक का स्पर्श न करना यह सब किसने सिखाया ? मूर्तिपूजा ने। हिन्दुओं के चित्त से स्वाधीन चिन्तन की शक्ति किसने हरण की ? मूर्तिपूजा ने। हिन्दुओं के मनोबल वीर्य, उदारता सत्साहस को किसने दूर किया ? मूर्तिपूजा ने।

प्रेम, समवेदना और पर दुःखानुभूति के बदले घोरतर स्वार्थपरता को हिन्दुओं के चरित्र में कौन लाई ? मूर्तिपूजा। हिन्दुओं को मनुष्य अपितु पशुओं से भी अधम किसने बनाया ? मूर्तिपूजा ने। आर्यावर्त्तके सैंकड़ों टुकड़े किसने किए? मूर्तिपूजा ने । आर्यजाति को सैंकड़ों सम्प्रदायों में किसने बांटा ? मूर्तिपूजा ने। इस देश को सैंकड़ों वर्षों से पराधीनता की लोहमयी शृङ्खला में किसने जकड़ रक्खा है ? मूर्तिपूजा ने। कौनसा अनर्थ है जो मूर्तिपूजा द्वारा सम्पादित नहीं हुआ ? सच्ची बात तो यह है कि आप चाहे हाईकोर्ट के न्यायधीश हों, चाहे गवर्नर साहब के प्रधान सचिव, चाहे आप बुद्धि में बृहस्पति के तुल्य हों, चाहे वाग्मिता में सिसरो (Cicero) और गिटे (Goethe) से बढ़ कर। आप अपने देश में पूजित हों अथवा विदेश में, आपकी ख्याति का डङ्का बजा हो, आप सरकारी कानून को पढ़कर सब प्रकार के अकार्य और कुकार्य को आश्रय देने वाले अटर्नी (Attorney) कुल के उज्वल रत्न हों, चाहे मिष्टभाषी, मिथ्योपजीवी, सर्व प्रधान स्मार्त्त (वकील)। परन्तु यदि आप किसी अंश में भी मूर्तिपूजा का समर्थन करेंगे तो हमें यह कहने में अणुमात्र भी संकोच नहीं होगा कि आप किसी अंश में भी भारतवर्ष के मित्र नहीं हो सकते। क्योंकि मूर्तिपूजा भारतवर्ष के सारे अनिष्टों का मूल है।

दयानन्द ने मूर्तिपूजा जैसे प्रबल शत्रु के विरुद्ध प्रचण्ड युद्ध का आयोजन करके न केवल भारत की आचार्यमण्डली में अपने लिए अद्वितीय आसन बना लिया है बल्कि हिन्दुओं के अतिरिक्त समस्त सम्प्रदायों तथा गोरी कही जाने वाली जातियों के लिए अकृत कल्याण के द्वारा खोल दिये हैं। इस देश के प्रायः सभी आचार्यों ने तथा अन्य देशों के सम्प्रदायानुयियायों ने मूर्तिपूजा के साथ सन्धि करली या उसके साथ किसी न किसी प्रकार का समझौता करने की चेष्टा की परन्तु दयानन्द ने समस्त भारत भूमि में अति उज्वल तथा प्रबल भाव से इस बात का प्रचार किया कि जब तक मूर्तिपूजा समूल नष्ट नहीं होगी तब तक भारत भूमि का कोई भी कल्याण साधित न होगा। इस प्रकार दयानन्द ने जैसे अपनी अपूर्वता और विशेषता की रक्षा की है वैसे ही इस देश का भी अशेष उपकार किया है।

शायद यह बात बहुत से लोगों को ज्ञात नहीं होगी कि स्वामी दयानन्द से बहुत से स्थानों में और बहुत बार मूर्तिपूजा का खण्डन छोड़ने के लिये अनुरोध किया गया और उन्हें प्रलोभन तक दिये गये। सन् १८७७ में जब कि वे लाहौर में ठहरे हुए थे और उन्होंने पंजाब में प्रबल आन्दोलन उपस्थित कर रक्खा था तब काश्मीर पति महाराजा रणजीतसिंह ने पंडित मनफूल द्वारा स्वामी जी से अनुरोध किया था कि आप जो कुछ और कार्य कर रहे हैं किये जाएं परन्तु मूर्तिपूजा के विरोध में कुछ न कहें। यदि आप ऐसा करें तो मैं अपना धनागार आपके समर्पण कर दूंगा। परन्तु दयानन्द ने इसका क्या उत्तर दिया ? उन्होंने पं० मनफूल से कहा कि मैं वेदप्रतिपादित ब्रह्म को सन्तुष्ट करूंगा न कि काश्मीर पति को। आप ऐसी बात फिर मेरे सामने न कहिये।

सन् १८६९ ई० में जब कि काशी में महा-

शास्त्रार्थ के कारण चारों ओर महा आन्दोलन हो रहा था काशी का एक प्रसिद्ध पण्डित एक दिन रात्रि के समय ऋषि दयानन्द के पास आया और यह प्रार्थना करने लगा 'यदि आप अन्य सब बातों का खण्डन करें किन्तु एक मूर्तिपूजा का खण्डन न करें तो काशी की समस्त पण्डित मण्डली एकत्रित होकर आपके गले में जयमाल पहनाएगी और आपको हाथी पर सवार करा कर आपकी सवारी सारे नगर में निकालेगी और आपको हिन्दुओं का अन्यतम अवतार मान लेगी।' इस के उत्तर में ऋषि दयानन्द ने कहा 'मैं यह कुछ नहीं चाहता' मैं तो वेदप्रतिपादित सत्य के प्रचार के लिये आया हूँ। पण्डित जी यह सुन कर चुप हो गये और उठ कर चले गये। ऐसा कहा जाता है कि दिल्ली के निकटवर्ती किसी स्थान का एक सेठ छकड़े में १ लाख रुपये भर कर स्वामी जी के पास लाया और विनय पूर्वक उनसे बोला 'महाराज! मैं यह एक लाख रुपया आपकी भेंट करता हूँ आप मूर्तिपूजा के खण्डन की बात जाने दीजिये। इसके सिवाय जो कुछ आप कहना चाहें कहते रहियें, मैं यह लाख रु० आपके कार्यों की सहायतार्थ देता हूँ।'' उस सेठ के इस अनुरोध को देख कर स्वामी जी हँसने लगे और उस सेठ से केवल इतना कहा 'सेठ जी आप यहां से चले जाइये।'

मूर्तिपूजा का प्रतिवाद करने में स्वामी जी इतने निर्भय, इतने साहसी और इतने पराक्रमी पुरुष थे कि जिस देवमन्दिर में जाकर विश्राम करते थे उसी के अन्दर उसी देवमूर्ति का खण्डन करने में उद्यत हो जाते थे।

ओ३म्

महर्षि स्तवः

१
दयाया यः सिंधुर्निगमविहिताचार निरतो
विलुप्तं सद्धर्मं, पुनरपि समुद्धर्तु मनिशम् ।
दिवारात्रं यैते, यतिवरगुणग्रामसहितो
दयानन्दो योगी विमलचरितोऽसौ विजयते ॥

२
यदीयं वैदुष्यं, श्रुति विषयकं लोकविदितं
यदीयं योगित्वं, कलियुगजनेष्वस्त्यनुपमम् ।
हितार्थं सर्वेषाम्, इह निज सुखं योऽपि विजहौ
दयानन्दो योगी, विमल चरितोऽसौ विजयते ॥

३
स्वराज्यं सर्वेभ्यः, परमसुखदं शान्तिजनकं
स्वदेशीयो धार्यः, सकल सुजनैर्वस्त्र निवहः ।
सुराष्ट्रीयान् भावान्, दिशि दिशि दिशन् भीति रहितो
दयानन्दो योगी, विमलचरितोऽसौ विजयते ॥

४
जनाः सर्वे नूनं, भुवनजनितुः पुत्रसदृशाः
अतोऽन्योन्यं स्नेहः, सकलमनुजानां समुचितः ।
न कोऽप्यस्पृश्यो ना, इति विमलभावं प्रचुरयन्
दयानन्दो योगी, विमलचरितोऽसौ विजयते ॥

५
उपास्यो देवेशः, सकलजगतो यो हि जनकः
न तत्तुल्यः कश्चिद्, निखिल गुण सिन्धुर्विभुरजः
इतीमां वेदोक्तां, मनसि शिवपूजामुपदिशन्
दयानन्दो योगी, विमल चरितोऽसौ विजयते ॥

६
य एको लोकेशो, नहि खलु विभोर्जन्ममरणे
स नित्यः कूटस्थो, निखिलभुवने व्याप्तमहिमा ।
तमेवैकं देवं, जगति भजनीयं खलु दिशन्
दयानन्दो योगी, विमलचरितोऽसौ विजयते ॥

७
विषं योऽदान्नीचः, तमपि परिपातुं यतितवान्
न रागद्वेषाभ्यां, कलुषितमना यो यतिवरः ।
तपो घोरं कुर्वन्, सकलमनुजानां हितधिया
दयानन्दो योगी, विमलचरितोऽसौ विजयते ॥

८
य एकाकी लोके, विततमिह पाखण्डनिवहं
प्रयेते संहर्तुं, श्रुतिरविकरैर्द्योतितमनाः ।
सुखं वा दुःखं वा, तृणमिव समस्तं विगणयन्
दयानन्दो योगी, लसतु हृदये मे गुरुवरः ॥

—धर्मदेवोविद्यावाचस्पतिः

स्वामी दयानन्द और आर्यसमाज

लेखक—प्रो० श्रीकृष्ण व्यंकटेश पुणतांबेकर (आक्सफोर्ड) बार ऐट ला भू० पू० अध्यक्ष इतिहास विभाग हिन्दू विश्वविद्यालय काशी।

आर्य समाज के संस्थापक स्वामी दयानन्द सरस्वती (१८२४-१८८३) थे। वे काठियावाड़ के निवासी थे। शिवरात्रिव्रत के समय १४ वर्ष की अवस्था में उनके मन में मूर्तिपूजा विषयक एक शङ्का उत्पन्न हुई। १८४५ ई० में जब उनके घर वालों ने उन पर शादी के लिये जोर डाला तब वे घर छोड़ कर बाहर चले गये और १८४८ ई० में संन्यासी हो गये। उनका वेदों का अध्ययन जारी रहा। उस समय वे सम्पूर्ण भारत में घूमे और स्थान २ पर पण्डितों से वे शास्त्रार्थ करते रहे। १८७५ ई० में बम्बई में और १८७७ ई० में लाहौर में आर्य समाज की स्थापना हुई। १८८३ ई० में स्वामी जी की मृत्यु हो गई। उनकी शिक्षाएं उनके ग्रन्थ 'सत्यार्थ प्रकाश' में मिलती हैं। ऐसा कहा जाता है कि उनके गुरु मथुरा के स्वामी विरजानन्द सरस्वती ने उन्हें आशीर्वाद देकर आज्ञा की थी—पुत्र! जाओ और संसार की सेवा करो। वैदिक ज्ञान का शीघ्रता से लोप हो रहा है। जाओ, उसका उद्धार करो।

स्वामी दयानन्द ने उपर्युक्त आज्ञा का पूर्णतः पालन किया। उन्होंने केवल वेद को स्वतः प्रमाण धर्म ग्रन्थ माना और सबके लिये वेदाध्ययन का द्वार खोल दिया। उन्होंने वेद को सारे राष्ट्र की वस्तु बना दिया और सम्पूर्ण देश तथा विदेशियों से भी सत् एवं नित्य ज्ञान के स्रोत वेद को ग्रहण करने का अनुरोध किया। आर्य समाज विशुद्ध एकेश्वरवाद को मानता है और मूर्तिपूजा का खण्डन करता है।

आर्य समाज के दस सिद्धान्त (नियम)

कुछ ही दिनों में स्वामी दयानन्द के अनुयायियों और सम्मान कर्ताओं का लाहौर एक बड़ा केन्द्र बन गया। यहीं उन्होंने आर्य समाज के निम्नलिखित १० नियम बनाए:—

१. सब सत्य विद्या और जो पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं उन सब का आदिमूल परमेश्वर है।

२. ईश्वर सच्चिदानन्द स्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान्, न्यायकारी दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र और सृष्टिकर्ता है। उसी की उपासना करनी योग्य है।

३. वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है। वेद का पढ़ना पढ़ाना और सुनना सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है।

४. सत्य के ग्रहण करने और असत्य के छोड़ने में सब आर्यों को सर्वदा उद्यत रहना चाहिये।

५. सब काम धर्मानुसार अर्थात सत्य और असत्य को विचार करके करने चाहिये।

६. संसार का उपकार करना इस समाज का मुख्य उद्देश्य है अर्थात् शारीरिक आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना।

७. सबसे प्रीतिपूर्वक धर्मानुसार यथा योग्य बर्तना चाहिये।

८. अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि करनी चाहिये।

६. प्रत्येक को अपनी ही उन्नति से सन्तुष्ट न रहना चाहिये किन्तु सब की उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिये।

१०. सब मनुष्यों को सामाजिक सर्वहितकारी नियम पालने में परतन्त्र रहना चाहिये और प्रत्येक हितकारी नियम में सब स्वतन्त्र रहें।

हिन्दू समाज पर आर्यसमाज का प्रभावः—

आर्य समाज ने उत्तर भारत में बड़ी उन्नति की है। यह दूसरों को अपने में मिलाने वाला धर्म है और सबको आर्य बनाना चाहता है। जिन हिन्दुओं ने इससे सहयोग किया, कट्टर पन कम करके उनके विचारों को इसने बहुत उदार बनाया है। यह जोरों से अपना शैक्षणिक सामाजिक एवं धार्मिक प्रचार कार्य चला रहा है। इसके द्वारा बहुत बड़ी संख्या में गुरुकुल, स्कूल और कालेज चल रहे हैं, जहां लड़के लड़कियां, छूत अछूत सभी शिक्षा पाते हैं। वंशानुगत जाति पांति में आर्य समाज का विश्वास नहीं, पर गुणकर्मानुसार वर्णव्यवस्था को वह मानता है। एक पत्नीविवाह, विवाह की अवस्था में वृद्धि तथा विधवा विवाह इत्यादि कितने ही सामाजिक सुधारों का श्रेय आर्य समाज को है। भारतीय सभ्यता और संस्कृति का प्रचार इसका ध्येय है। यह मानता है कि भारतवर्ष भारतीयों के लिये है और उस पर किसी विदेशी जातिका अधिकार न होना चाहिये।

यह अपनी मातृभूमि में गौरव का अनुभव करता और इस प्रकार की प्रवृत्तिको बढ़ाता है। यह एक बड़ी राष्ट्र विधायक शक्ति है और मुसलमानों तथा ईसाइयों द्वारा हिन्दुओं को अपने धर्म में मिलाने की प्रवृत्ति का विरोधी है। इसने युगों की संचित बुराई और अकर्मण्यता दूर करने का प्रयत्न किया है। हिन्दू संघटन तथा दूसरों को धर्म परिवर्तन द्वारा अपने में मिला लेने की प्रवृत्ति को इससे बड़ी सहायता मिली है। मरते हुए हिन्दू धर्म को इस ने पुनर्जीवित किया है। इन बातों से हिन्दुओं में विदेशी धार्मिक प्रचार के विरुद्ध इस ने एक बलवती शक्ति उत्पन्न कर दी है तथा अनेक प्रतिद्वन्द्वियों को लज्जित किया है। इस प्रकार धर्मपरिवर्तन के कारण भविष्य में हिन्दुओं की संख्या में जो कमी होने वाली थी, उसे इस ने रोक दिया।

साहित्य-समीक्षा

सन्तति निग्रह—

लेखक श्री रघुनाथ प्रसाद पाठक मूल्य १।) प्रकाशक आर्य साहित्य सदन, देहली शाहदरा।

इस समय हमारे देश में आर्थिक तथा भोजन की समस्या के कारण जनता में यह धारणा घर कर रही है कि इस समस्या का हल करने के लिये भारतीयों को विदेशी कृत्रिम उपायों द्वारा सन्तति निरोध करना चाहिये। हमारी सरकार भी इस स्थापना की जाँच पड़ताल किये बिना, अंग्रेज़ियत के जादू से मंत्र मुग्ध हुई इसी बहाव में बह रही है। प्रस्तुत पुस्तक में इस स्थापना का यूरोपियन डाक्टरों तथा वैज्ञानिकों के युक्ति युक्त प्रमाणों से खंडन किया गया है। भारतीय सभ्यता के मानी महात्मा गांधी जी के भी विचार इसमें अंकित किये गये हैं। आर्य जाति में विशेषतया भारतीयों में दिन प्रतिदिन बढ़ती हुई भोगवाद की प्रवृत्ति को रोक कर ब्रह्मचर्य की महत्ता स्थापित करने में यह पुस्तक अवश्य सहायक सिद्ध होगी। लेखक महोदय ने यह ग्रन्थ प्रकाशित कर हिन्दी साहित्य में वृद्धि की है तथा राष्ट्र की विचार धारा में उच्छृंखलवाद को रोकने का प्रशंसनीय यत्न किया है। नव विवाहित वर वधुओं, माता पिताओं संरक्षकों तथा उपदेशकों को यह पुस्तक अवश्य पढ़नी चाहिये।

(आर्य्य) भीमसेन विद्यालंकार

गायत्रीमाता—

लेखकः—आचार्य सत्यभूषण जी बी० ए० एल एल बी वानप्रस्थ रोहतक

प्रकाशक—स्टूडेन्ट्स ऑन शॉप बड़ा बाजार रोहतक मूल्य १।)

इस १५६ पृष्ठ की पुस्तक में श्री सत्यभूषण जी वानप्रस्थ भू० पू० आचार्य गुरुकुल कमालिया ने जो पूज्यपाद महात्मा प्रभु आश्रित जी के एक सुयोग्य शिष्य हैं सात प्रसादों के रूप में गायत्री मन्त्र की भावपूर्ण व्याख्या की है, उसके जप का महत्त्व तथा प्रकार बताया है तथा स्वामी विरजानन्द जी, महर्षि दयानन्द जी, महात्मागान्धी जी, तथा अन्य महात्माओं की सम्मति इस विषय में उद्धृत की है। इसके पढ़ने से साधकों को विशेष लाभ पहुँचेगा। 'चत्वारि शृंगा त्रयो अस्य पादाः। इस मन्त्र की गायत्री परक व्याख्या से अब भी हम सहमत नहीं किन्तु वह गौण विषय है। सम्पूर्णतया यह पुस्तक आस्तिकों के लिये अत्यन्त उपयोगी है। वेदमन्त्रों तथा संस्कृत के उद्धरणों में कई छापे आदि की भूलें रह गई हैं उन्हें आशा है अगले संस्करण में ठीक कर लिया जाएगा।

ध० दे०

हमारी अर्थनीति—

लेखक श्री सन्त राम जी अग्रवाल प्रधान रामराज्यपरिषत् चौक फव्वारा अमृतसर मूल्य ≈)

हम रामराज्यपरिषत् के संस्थापक श्री स्वामी हरिहरानन्द जी करपात्री आदि के बहुत से विचारों से असहमत हैं और उनका खण्डनभी समय२ पर लेख तथा भाषणादि रूप में करते रहे हैं किन्तु

प्रस्तुत पुस्तक में महाभारतादि के आधार पर जो राजनीति तथा अर्थनीति का प्रदर्शन किया गया है उसे हम प्रशंसनीय समझते हैं। लेखक का दृष्टिकोण विशाल तथा उदार है। ऋषि दयानन्द के विषय में लेखक ने ठीक लिखा है "कि इस कमी की पूर्ति ऋषि दयानन्द ने भारतीय शास्त्रों में भी उचित कटौती के साथ भारतीय संस्कृति को फिर से वेद पर आधारित करते हुए की है। उनकी दिखाई हुई योजना से प्राचीन आश्रम व्यवस्था, वर्णव्यवस्था, ब्रह्मचर्य (सतीत्व) पर बल अछूतोद्धार, विधवा विवाह की अनुमति, बाल विवाहादि कुप्रथाओं का निषेध, स्वदेश पूजादि, आगे चल कर कांग्रेस का प्रोग्राम बन गये। सामाजिक तथा धार्मिक जागृति के कार्य क्रम को आर्यसमाज ने हाथ में लिया। कहते हैं ऋषि दयानन्द के जीवन में जिन ३, ४ वर्षों का स्पष्ट विवरण नहीं मिलता, वे तीन वर्ष यही १८५७ की क्रान्ति के वर्ष थे। क्रान्ति से कुछ ही पूर्व वे रियासतों की ओर चले गये थे। इन की आकांक्षा थी इन राजाओं में प्राचीन वीर भावना की एक चिनगारी मात्र ही कहीं मिल जाए और वह चिंगारी अन्त में सुलग हो गई।"

यह अलख एक सन्यासी ने जगाई थी" इत्यादि! प्राचीन राजनीति का दिग्दर्शन इस में संक्षेप से कराया गया है जो उपयोगी है। यदि महाभारतादि के मूल श्लोक भी दिये जाते तो पुस्तक का आकार तो बढ़ जाता पर वह विद्वानों तथा शिक्षित जनता के लिये अधिक उपयोगी बन जाती। ध० दे०

महर्षि दयानन्द और महात्मागान्धी—

लेखक श्री पं० धर्मदेव जी विद्यावाचस्पति

प्रकाशकः - वैदिक साहित्य सदन, लाल दरवाजा सीताराम बाजार देहली मूल्य २)

इस पुस्तक में लेखक ने दोनों महापुरुषों के धार्मिक, सामाजिक, राजनैतिक तथा दार्शनिक विचारों का तुलनात्मक अध्ययन बड़े सुन्दर ढंग से किया है। जैसा कि विद्वान् लेखक के अन्य ग्रन्थों में प्रमाणों का बाहुल्य रहता है वही इस में भी है। भारतके दो महापुरुषों के विचारों में इतनी समता आश्चर्यजनक है। पुस्तक विस्तृताध्ययन स्वाध्यायशीलता और परिश्रम के साथ लिखी गई है। भारतीय जनता पुस्तक को पढ़ कर अपने दो महापुरुषों के विचारों से अवश्य लाभ उठाएगी।

(डा०) सूर्यदेव सिद्धान्तशास्त्री एम० ए० डी० लिट् सम्पादक 'आर्य-मार्तण्ड' अजमेर

श्री मद् वाल्मीकीय रामायण प्रथमखण्ड—

सम्पादक तथा अनुवादक—श्री पं० चन्द्रमणि जी विद्यालङ्कार भू० पू० वेदोपाध्याय गुरुकुल विश्व विद्यालय कांगड़ी

प्रकाशक—प्रतिभा प्रकाशन १३ कचहरी रोड देहरादून मू० ७)

श्री पं० चन्द्रमणि जी विद्यालङ्कार पालीरत्न गुरुकुल विश्व विद्यालय कांगड़ी के एक सुयोग्य स्नातक हैं जो अनेक वर्षों तक वहां वेदोपाध्याय रहे हैं और जो आर्यभाषा में निरुक्त भाष्य, मनुस्मृति, कल्याण पथ तथा अन्य उत्तमग्रन्थ लिख कर अच्छी ख्याति प्राप्त कर चुके हैं। आप को

सन् १९४२ के स्वतन्त्रता संग्राम में भाग लेने के कारण आगरा सैन्ट्रल जेल में नजरबन्द कर दिया गया था। जिस में "बाहर की दुनियां से किसी तरह का सम्बन्ध नहीं रहने दिया था। न पढ़ने को समाचार पत्र और न किसी तरह की बन्धुओं से चिट्ठी पत्री। बस पूरे तौर पर निश्चिन्त एकान्त जीवन था।'

इस एकान्त जीवन से लाभ उठाकर हमारे मान्य वेदोपाध्याय जी ने पांच बार आद्योपान्त वाल्मीकीय रामायण का अध्ययन किया और नोट संगृहीत किये। लेख का कार्य सन् १९४५-४६ में और १९५१ में किया गया और श्री कुंवर कन्हैया लाल जी के अपने पूज्य पिता श्री मुकुन्दलाल जी की स्मृति में उसके प्रकाशन व्यय का सारा भार अपने ऊपर लेने पर उस का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ जिसका प्रथमखण्ड इस समय हमारे सन्मुख है। इस प्रथमखण्ड में बालकाण्ड और अयोध्या-काण्ड के उन अंशों का अविकल अनुवाद है जिन को वास्तविक समझा गया है। प्रक्षिप्त भागों को इस में हटा दिया गया है। मान्य लेखक का विचार दो और खण्डों में शेष काण्डों का अनुवाद देकर चतुर्थखण्ड में वाल्मीकीय रामायण पर आलोचनात्मक निबन्ध प्रकाशित करने का है जिनकी हम उत्सुकतापूर्वक प्रतीक्षा करते हैं। रामायण और महाभारत के प्रेमी सज्जन बहुत हैं किन्तु उनके विशुद्ध संस्करण न होने से बड़ी कठिनाई होती है। जो संस्करण इससे पूर्व निकले हैं वे अत्यन्त संक्षिप्त ही थे। इसलिये हम सर्व-साधारण जनता के लाभार्थ मान्य पण्डित जी के इस यत्न को उपयोगी समझते हैं। महात्मा गान्धी जी का भी यह विचार था कि स्मृतियों तथा अन्य प्राचीन संस्कृत ग्रन्थों के प्रक्षेपरहित शुद्ध संस्करण अनुवाद सहित प्रकाशित होने चाहियें। सुयोग्य लेखक ने यह अनुवाद महात्मागान्धी जी के नाम ही समर्पित किया है। हम आशा करते हैं कि चतुर्थखण्ड में इस विषय पर विस्तृत सप्रमाण विचार किया जाएगा कि वर्तमान रामायण में कौन से अंश और क्यों प्रक्षिप्त माने जाएं।

प्रारम्भ में 'बाल्मीकि श्लोक विज्ञापिनी में अध्यायों के अङ्कों के लिये कहीं २ अंग्रेजी अङ्कों का प्रयोग किया गया है जो हमें अनावश्यक और अनुचित प्रतीत हुआ। आशा है भविष्य में इस भूल को सुधार लिया जाएगा। सम्पूर्णतया बाल्मीकीय रामायण जैसे सुन्दर काव्य का यह शुद्ध-संस्करण बड़ा उपयोगी है जिस के लिये हम मान्य अनुवादक पं० चन्द्रमणि जी का पुनः अभिनन्दन करते हैं और आशा करते हैं कि शेषखण्ड भी शीघ्र प्रकाशित होंगे। ध० दे०

योग और स्वास्थ्य—

लेखक आचार्य भद्रसेन जी संचालक-यौगिक व्यायाम सङ्घ अजमेर

प्रकाशक—पं० ब्रह्मदत्त जी भार्गव मन्त्री यौगिक व्यायामसङ्घ अजमेर मूल्य २॥)

पुस्तक का विषय नाम से ही स्पष्ट है। इस पुस्तक में योगासन, प्राणायाम तथा योगमुद्रादि पर सचित्र उत्तम प्रकाश डाला गया है तथा उनके करने के प्रकार के साथ २ उनके विषय में अपने और अन्य अनेक सज्जनों के अनुभव दिये गये हैं जो बहुत ही प्रभावजनक हैं। अन्त में शरीर

को स्वस्थ तथा बलवान् बनाने के १७ सरल नियमों को बताया गया है जो सभी के लिये अत्यन्त उपयोगी हैं। आसन तथा प्राणायाम करने के लिये जिस प्रकार की सावधानता की आवश्यकता है उस का भी विस्तार से उल्लेख कर दिया गया है। इस प्रकार यह इस विषय की एक प्रामाणिक पुस्तक बन गई है जिससे सबको लाभ उठाना चाहिये॥

आर्य परिवार पत्रिका का दीपावली अंक—

सम्पादक आचार्य भद्रसेन जी संचालक जातिभेद निवारक आर्य परिवार सङ्घ कैसर गंज अजमेर वार्षिक मूल्य १॥)

इस अङ्क का १२ आ०,जा० भे० नि० सङ्घ के सहायकों से वार्षिक १) सदस्यों से १२ आने

'आर्य परिवार पत्रिका' जातिभेद निवारक आर्य परिवार संघ की त्रैमासिक प्रत्रिका है जिस का दीपावली अङ्क इस समय हमारे सम्मुख है। इस में भक्त शिरोमणि दयानन्द-आदिम जातियों में जन्मगत जातिभेद का भयङ्कर रूप, सत्य का प्रकाशक दयानन्द, महर्षि दयानन्द और जातिभेद, दीपावली का शुभ सन्देश इत्यादि विषयों पर आचार्य भद्रसेन जी, पं० गंगाप्रसाद जी का० नि० न्यायाधीश,महात्मा प्रभु आश्रित,श्री धर्मदेव विद्यावाचस्पति श्री चांदकरण जी आदि के विचारपूर्ण स्फूर्तिदायक लेख, श्री प्रकाशचन्द्र जी 'कविरत्न' पन्नालाल जी पीयूष श्री कमलसिंह जी आदि की कविताएं तथा कुमारी विद्यावती जी, श्री सोमदेव 'मधुप' लिखित आदि की कहानियां और एकाङ्की नाटकादि हैं। आर्य परिवार निर्माण विषयक अन्य भी अनेक उपयुक्त सामग्री के अतिरिक्त विवाहार्थी युवक युवतियों की सूची है। इस प्रकार यह अत्यन्त उपयोगिनी पत्रिका है जिसको अपनाकर आर्यजनता को इस अत्यन्त महत्त्वपूर्ण आन्दोलन में जिसकी प्रगति पर आर्यसमाज का भविष्य बहुत कुछ निर्भर है सक्रिय सहयोग देना चाहिये। ध० दे०

ऋषि दयानन्द कृत वेद-भाष्य की विशेषताएं

(लेखक श्री पं० ब्रह्मदत्त जी जिज्ञासु, काशी, अध्यक्ष वेद सम्मेलन मेरठ)

ऋषि की सबसे बड़ी देन—

ऋषि दयानन्द की सब से बड़ी देन संसार को यही है कि उन्होंने वेद शास्त्र का शुद्ध स्वरूप संसारके सामने रखा और साथ ही सब से कठिन समझे जाने वाले वेद को इन्होंने सर्वसाधारण तक पहुँचाने के लिये उनका अर्थ आर्य भाषा में भी किया। इतना ही नहीं, व्याकरण जैसे दुरूह विषयको भी उन्होंने आर्य भाषामें लिखा। अष्टाध्यायी के भाष्य की रचना भी संस्कृत और आर्य भाषा दोनों में की। सन्ध्याके अर्थ तथा व्याख्या-संस्कार विधिकी सब विधियां आर्यभाषामें लिख दीं। ऋषि दयानन्द का यह साहस पूर्ण कार्य भारत के इतिहास में चिरस्थायी रहेगा। पहले पहल तो लोगों ने ऋषि दयानन्द की हंसी उड़ाई कि 'उन्हों ने हिन्दी में लिखा है।" आर्य समाज के बहुत से पुराने विद्वानों ने ऋषि के आर्य भाषा में अपने ग्रन्थों के लिखने के महत्त्व को नहीं समझा। 'संस्कृत में ही रहना चाहिये। ऐसी ध्वनि कभी २ सुनाई देती रही। पर यहसब भ्रान्ति की बात थी। ऋषि से पहले वेद मन्त्रों के पढ़ने और उसके अर्थ करने का द्वार उस समय के पंडितों ने वैश्यों क्षत्रियों तक के लिये बन्द कर रखा था, और स्त्रियों के लिये तो कहना ही क्या ?

संसार को ऋषि दयानन्द की अपूर्व मेधा और तपश्चर्याका लोहा मानना पड़ेगा। अब भारत के स्वतन्त्र हो जाने पर यह वेद ध्वनि जब तक भारत के ग्राम २ में एक २ पुत्र और पुत्री के मुख से न निकले तब तक आर्य समाजकी आवश्यकता बनी रहेगी। सर्व साधारण की वेद के प्रति आस्था हम तभी पैदा कर सकते हैं जब अपने में कार्य-कर्ताओं में, वेद के प्रति उत्कृष्ट भावनाएँ पूर्ण रीति से भरें। हम अपने में भरेंगे तभी दूसरों में भर सकेंगे।

अब हम ऋषि दयानन्दके वेद भाष्य की कुछ मौलिक विशेषताओं का वर्णन करते हैं:—

१—ऋषि दयानन्द का वेद भाष्य वेदापौरुषेयत्व वाद पर आधारित है, इसलिये इसमें कहीं भी इस धारणा के विरुद्ध इतिहासादि तथा अज्ञानमूलक जादू टोनेकी गन्धभी उपलब्ध नहीं होती। यद्यपि सायण ने भी तत्तद् वेदभाष्य की भूमिका में वेदापौरुषेयत्व वाद का समर्थन किया है तथापि वह उसको निभाने में सर्वथा असमर्थ रहा है यह उस के वेदभाष्य से हस्तामलकवत् स्पष्ट है।

२—वेद के समस्त सुबन्त पदों को धातुज मान कर जैसे कि यास्क और पतञ्जलिका सिद्धान्त है प्रकरणादि के अनुसार उनके सभी संभव अर्थों का निरूपण किया गया है। इस लिये निर्वचन

भेद से होने वाले विभिन्न अर्थों का भी इस में निरूपण मिलता है।

३—धातुओं के अनेकार्थत्व के सिद्धान्त को (जो सभी वैय्याकरणों तथा भाष्यकारों का मुख्य सिद्धान्त है) मान कर नाम आख्यात पदों के प्रकरणानुकूल अनेक अर्थ दर्शाए हैं।

४—वेद के अनेक पदों का अर्थ वेद मन्त्रों के ही आधार पर भी दर्शाया है यथा यजुर्वेद १।१३

५—अग्नि शब्द से केवल भौतिक अग्नि का ही ग्रहण नहीं होता अपितु उसके निर्वचन के आधार पर आध्यात्मिक आधिदैविक आदि प्रक्रियाओं में परमेश्वर—विद्वान्, राजा, सभाध्यक्ष, नेता, विद्युत् प्रकाशक, जाठराग्नि तथा भौतिकाग्नि आदि अनेक अर्थ होते हैं। इसी प्रकार वायु, इन्द्र, आदित्य, यम-रुद्र आदि सभी पदोंके विषय में समझना चाहिये। यहां यह भी ध्यान रखना चाहिये कि ये इन्द्र-अग्नि-मरुत्-वायु मित्रादि शब्द जहां भौतिक पदार्थों के वाचक हैं, वहां मुख्य वृत्ति से ये ईश्वर के ही वाचक हैं। यह इस भाष्य की सब से बड़ी विशेषता है, इसी के आधार पर इस भाष्य का वास्तविक रहस्य समझा जा सकता है।

ऋषि दयानन्दकी इस प्रक्रिया पर उनके समकालिक अनेक पंडितों ने आक्षेप किये थे। उनका संक्षिप्त तथा सारगर्भित उत्तर ऋषि दयानन्द ने अपने 'भ्रान्ति निवारण' नामक लघुग्रन्थ में दिया है। वेदार्थ जिज्ञासुओं के लिये यह ग्रन्थ अत्यन्त महत्त्व पूर्ण है।

६—इस भाष्यमें 'बुद्धिपूर्वा वाक्य कृतिर्वेदे' (वैशेषिक ६।१।१) सिद्धान्तको मान कर मन्त्रार्थ दर्शाया गया है, अतः इसमें कोई ऐसी ऊटपटांग बात नहीं है जो अज्ञान मूलक हो।

७—वेद सर्वज्ञ कवि का काव्य है (पश्य देवस्य काव्यं न ममार न जीर्यति) अतः उसमें काव्य के अङ्गभूत अलङ्कारों का होना आवश्यक है। वेद भाष्यकारों में सर्व प्रथम आचार्य दयानन्द ने ही श्लेषादि अलङ्कारों का आश्रय कर के वेदार्थ में बहुविध वैचित्र्य दर्शाया है।

८—"सर्व ज्ञान मयो हि सः" (मनु २।७) के सिद्धान्त को मान कर वेद में सभी विद्याओं के मूल सिद्धान्तों का प्रतिपादन केवल इसी भाष्यमें उपलब्ध होता है।

९—किसी भी भाष्यकार ने वेदमन्त्रों के षड्जादि स्वरों का अर्थात् किस मन्त्र का किस स्वर में गान करना चाहिये इस का उल्लेख नहीं किया पिंगल छन्द के आधार पर इस का निदर्शन सर्व प्रथम ऋषि दयानन्द ने ही अपने भाष्य में ही किया है।

१०—ऋषि दयानन्द ने मन्त्रों के पदार्थ को अन्वय से सर्वथा पृथक् रख कर और पदार्थ में समस्त प्रक्रियाओंमें संगत होने वाले विविध निर्वचनों का निदर्शन करा कर वेदार्थ को सीमित नहीं किया। यह इस भाष्य की बड़ी विशेषता है। साथ ही उस के पदार्थ में ऐसे अनेक पदों के निर्वचन ब्राह्मण तथा निरुक्तादि ग्रन्थों में भी नहीं मिलते इत्यादि, ऋषि दयानन्द के वेद भाष्य की अनेक विशेषताएं हैं जिन का यहाँ पूर्णतया उल्लेख नहीं कर सकते।

भ्रान्ति निवारण

(लेखक—श्री पं० युधिष्ठिर जी मीमांसक, मोती झील, काशी)

शिवपुरी (ग्वालियर) के निवासी श्री नाथूलाल जी गुप्त का "त्रैतवाद संशोधन एवं पुरुषार्थवाद" नामक ट्रैक्ट तथा 'खुली चिट्ठी,'[1] देखी। इन दोनों में मेरे बनाये 'ऋषि दयानन्द के ग्रन्थों का इतिहास,, नामक ग्रन्थ का कई स्थानों में उल्लेख किया है, उससे जिन पाठकों ने मेरा ग्रन्थ स्वय नहीं पढ़ा उन्हें भ्रम हो सकता है। अतः उसके निवारणार्थ यह लेख लिख रहा हूँ।

खुली चिट्ठी के प्रारम्भ में श्री गुप्त जी ने लिखा है:—

"सम्पूर्ण आर्य समाज तथा आर्यप्रतिनिधि सभा के अंतरंग सदस्यों के प्रति महर्षि दयानन्द के ग्रन्थों के इतिहास से स्पष्टतया सिद्ध हो चुका है कि महर्षि के जीवन काल तक उनके जो ग्रन्थ प्रकाशित हुए हैं उन सब में अद्वैतवाद का समर्थन किया गया है। और उनके देहावसान के पश्चात् उन्हीं ग्रन्थों में अद्वैतवाद के अतिरिक्त त्रैतवाद का समावेश किया जाकर अनेक प्रकार की भद्दी एवं भयंकर भूलें की गई हैं।

इसके विषय में मेरा निवेदन है कि मैंने अपने ग्रन्थ में यह कहीं नहीं लिखा है "कि महर्षि के जीवन काल तक जो ग्रन्थ प्रकाशित हुये उन सब में अद्वैतवाद का समर्थन किया गया है और उनके देहावसान के पश्चात् उन्हीं के ग्रन्थों में अद्वैतवाद के अतिरिक्त त्रैतवाद का समावेश किया गया"। मैंने इसके सवर्था विपरीत अपने ग्रन्थ के पृष्ठ ७२ पर आर्याभिविनय के प्रथम संस्करण के (जिसकी भाषा अत्यन्त अशुद्ध है) दो उदाहरण देकर लिखा है—

"इन उदाहरणों में ब्रह्म को जगत् का उपादान कारण और जीव का उत्पन्न होना लिखा है ये दोष लेखक भ्रान्ति आदि किन्हीं कारणों से उत्पन्न हुए होंगे, क्योंकि इस ग्रन्थ से पूर्व महर्षि अद्वैतवाद के खण्डन दो पुस्तकें लिख चुके थे, फिर भला वे ब्रह्म को जगत् का उपादान कारण कैसे लिख

१. जहां तक ज्ञात हुआ है यह चिट्ठी प्रायः अनेक आर्यपत्रों तथा विशिष्ट सभाओं, प्रतिनिधि और सार्वदेशिक सभाओं को भेजी गई है।

सकते थे ? इस प्रकार के समस्त दोष द्वितीय संस्करण में ठीक कर दिये गये हैं।,,

यहां ध्यान रहे कि आर्याभिविनय ऋषि ने सम्वत् १९३२ में लिखी थी और ऋषि ने उससे पूर्व सवत् १९२७ में 'अद्वैतमत खण्डन, और संवत् १९३१ में ,वेदान्तिध्वान्तनिवारण, दो ग्रन्थ अद्वैतवाद के खण्डन में लिखे थे। सवत् १९३२ के बाद सं० १९४० तक (जबतक वे जीवित रहे) के किसी ग्रन्थ में अद्वैतवाद का उल्लेख नहीं पाया जाता है। अतः श्री गुप्त जी का मताभि नवेश में आकर वस्तु स्थिति के विपरीत लिखना सर्वथा अनुचित है। श्री गुप्त जी का यह लिखना कि "महर्षि के जीवन काल में उनके जो ग्रन्थ प्रकाशित हुए हैं उन सब में अद्वैतवाद का समर्थन किया गया है और उनके देहावसान के पश्चात् उन्हीं ग्रन्थों में अद्वैतवाद के अतिरिक्त त्रैतवाद का समावेश किया... ...', सर्वथा मिथ्या है। ऋषि दयानन्द का ऐसा कोई ग्रन्थ नहीं जिसके ऋषि दयानन्द के जीवनाकाल में मुद्रित संस्करण में अद्वैत का निरुपण हो और निर्वाण के बाद किसी संस्करण में उसको हटाकर त्रैतवाद घुसेड़ा गया हो। बिना किसी संस्करण की तुलना दर्शाए श्री गुप्त जी ने ये शब्द कैसे लिखे, हमारी समझ में नहीं आता।

जिस प्रकार श्री गुप्त जी ने खुली चिट्ठी में अपने मत की सिद्धि के लिये मेरे ग्रन्थ को मिथ्या रूप में उद्धत किया है उसी प्रकार "त्रैतवाद संशोधन" नामक ट्रैक्ट में भी वस्तुस्थिति के विपरीत उसका निर्देश किया है। यथाः—

"(ब) इतना ही नहीं इन लेखकों ने वेदाङ्ग-प्रकाश पुस्तकें स्वतन्त्र रूप से लिखकर बिला स्वामीजी के संशोधन कराये स्वामी जी के नाम से प्रकाशित करादीं ...... (अवलोकन हो ग्रन्थों का इतिहास पृष्ट १४२-१४५)।" ट्रैक्ट पृष्ठ ४७।

श्री गुप्त जी का जो लेख है उसका अभिप्राय है—वेदांगप्रकाश के पण्डितों द्वारा लिखे जाने और उनको ऋषि के नाम से छपवाने का महर्षि को निर्वाण पर्यन्त ज्ञान तक न हुआ। पण्डितों ने सब कार्य लिखना और ऋषि के नाम से छपवाना छिपे छिपे किया।

मनुष्य मताभिनिवेश में डूबकर वस्तुस्थिति से विपरीत कहां तक लिख सकता है इसका यह प्रत्यक्ष नमूना है। श्री गुप्त जी ने मेरा सारा ग्रन्थ पढ़ा है। क्या उन्होंने मेरे ग्रन्थ में यह नहीं देखा कि वेदांग प्रकाश के भागों का लेखन और मुद्रण संवत् १९३६ से १९४० तक चलता रहा अर्थात् वेदांग प्रकाश के सब भाग स्वामी जी के जीवन काल में लिखे जाकर छप गये और उन्हें इस बात का पता तक न चला ? और भी इस अवस्था में जबकि ये ग्रन्थ उन्हीं के प्रेस में छपे हों और यन्त्रालय का मैनेजर मुन्शी समर्थदान जैसा ऋषिभक्त व्यक्ति हो, कितने आश्चर्य की बात है। इससे भी महा आश्चर्य की बात यह है कि वेदांग प्रकाशों को चोरी चोरी लिखने और छपवाने वाले पण्डित भीमसेन और पं० ज्वालादत्त को स्वामी जी अन्त तक (सं० १९४०) अपने साथ रखते रहे। पाठक इस परिस्थिति पर स्वयं विचार करें, हम अधिक क्या लिखें।

इस प्रकरण के साथ जहां तक मेरे ग्रन्थ का

सम्बन्ध है वह इतना ही है कि मैंने ऋषि दयानन्द, पं० भीमसेन, पं० ज्वालादत्त और वैदिक यन्त्रालय के तात्कालिक मैनेजर आदि के पत्रों के अक्षरशः उद्धरण देकर दर्शाया है कि वेदांग प्रकाश (उणादि कोष को छोड़ कर) की रचना में श्री स्वामी जी महाराज का विशेष हाथ नहीं था। मैंने इसका प्रतिपादन करके उपसंहार में लिखा है।

इस प्रकार अन्तरंग और वहिरंग प्रमाणों के होते हुए वेदांग प्रकाशों को ऋषिकृत मानना+ सर्वथा अयुक्त है। हाँ, इसमें इतनो सचाई है कि **ये ग्रन्थ ऋषि दयानन्द की प्रेरणा से ही रचे गये हैं और इनमें उनकी सम्मति थी, कुछ विशेष स्थल उनके लिखवाये हुए और शोधे हुए भी हैं।** बस इससे अधिक उनका इन ग्रन्थों के साथ संबन्ध नहीं।

यहां एक बात और ध्यान देने योग्य हैं ऋषि ने अनेक व्यक्तियों को इन के पढ़ने की प्रेरणा की थी..................।" ऋ० द० के ग्रन्थों का इतिहास पृष्ठ १४५, १४६।

अब पाठक महानुभाव श्री गुप्त जी के लेख (जिस की पुष्टि में उन्हों ने मेरे ग्रन्थ को अवलोकन करने के लिए लिखा है) तथा मेरे ग्रन्थ के उपरि अक्षरशः उद्धृत पाठको मिलाकर पढ़े। इसी से पाठकों को श्री गुप्त जी के लेख की वास्तविकता ज्ञात हो जायगी।

इसी प्रकार श्री गुप्त जी ने अपने ट्रैक्ट के पृष्ठ ४५ पर भी अपने मत की पुष्टि में मेरे ग्रन्थ को अवलोकन करने का निर्देश किया है वही भी अन्यथा निर्देश है।

प्रसंगवश 'त्रैतवाद संशोधन' के पृष्ठ ४४ के लेख पर भी कुछ प्रकाश डाल देना अनुचित न होगा। श्री गुप्त जी ने इस स्थान पर सत्यार्थ प्रकाश के नवम समुल्लास में 'मुक्ति से पुनरावृत्ति. प्रकरण को प्रक्षिप्त बताया है और उस के हेतु संख्या ४ में लिखा है कि "सत्यार्थ प्रकाश स्वामी जी की मृत्यु के बाद छपा है अतः उन्हें इस मिलावट का ज्ञान नहीं हो सकता था.................. "इत्यादि।

इस विषय में निवेदन है कि श्री गुप्त जी ने मेरे ग्रन्थ के पृष्ठ २८ से ३६ तक का प्रकरण अवश्य भले प्रकार पढ़ा होगा जिस में मैंने ऋषि दयानन्द और वैदिक यंत्रालय के तात्कालिक प्रबंध कर्त्ता मुंशी समर्थ दान के पत्रों से विस्तारपूवक दर्शाया है कि द्वितीयवार संशोधित सत्यार्थ प्रकाश (जिसे आजकल प्रामाणिक माना जाता है) के १३ वें समुल्लास की प्रेस कापी ऋषि दयानन्द स्वयं अपने जीवन काल में प्रेस में भेज चुके थे और चौदहवें समुल्लास की प्रेस कापी उनके सामने तैयार हो गई थी (रफ कापी तो निर्वाण से १४ मास पूर्व लिखी जा चुकी थी)। इतना ही नहीं २८ अगस्त सन् १८८३ ई० (अर्थात निर्वाण से २ मास पूर्व) तक सत्यार्थ प्रकाश के ३२० पृष्ठ छप चुके थे अर्थात ग्यारहवां समुल्लास लगभग

(शेष पृष्ठ ५८२ पर देखिये)

+ अर्थात् ऋग्वेदादि भाष्यभूमिका, सत्यार्थ प्रकाश आदि के समान इन्हें भी अक्षर शः ऋषि का लिखा हुआ मानना।

ऋषि दयानन्द ने स्त्री जाति को स्वतन्त्रता दिलाई, परन्तु............

(लेखक—पं० ठाकुरदत्त जी शर्म्मा वैद्य, प्रधान आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब)

ऋषि दयानन्द की गम्भीरता और तीव्र बुद्धि को पहुँचने वाला इस समय तो हम को दिखाई नहीं दिया, जहां अन्य अति आवश्यक समस्याओं का हल आप ने उपस्थित किया, वहां हिन्दु समाज के रीति-रिवाजों में दबी हुई स्त्री जाति को बाहिर निकाल कर उसको वास्तविक रूप में उपस्थित कर दिया किसी मत तथा किसी देश में वैसे समानाधिकार नहीं हैं जैसे कि ऋषि दयानन्द स्त्री जाति को देते हैं। इसलाम में पुरुष चार विवाह कर सकता है और जब चाहे तीन बार "तलाक" कह कर स्त्री को छोड़ सकता है। परन्तु स्त्री ऐसा नहीं कर सकती। ईसाइयों में भी स्त्री के वास्ते आज्ञापालन आवश्यक है। पुरुष के वास्ते नहीं। हिन्दुओं के रिवाजों में तो पुरुष चाहे जितने विवाह कर सकता है। परन्तु स्त्री को विधवा होकर भी दूसरे विवाह का अधिकार नहीं। स्त्री पति को दूसरा ईश्वर समझे और यह दूसरा ईश्वर जब चाहे उसे छोड़ देवे।

ऋषि दयानन्द ने दोनों के वास्ते एक ही दर्जा रखा है। यदि पुरुष दूसरा विवाह कर सकता है तो स्त्री भी और यदि स्त्री नहीं कर सकती तो पुरुष भी नहीं कर सकता। विवाह के समय जो प्रतिज्ञायें स्त्री करती है, वही प्रतिज्ञायें पुरुष करता है। दोनों को मित्र बना दिया है, और जहां अधिकारों का प्रश्न आता है वह बराबर दिये हैं। इस भांति ऋषि दयानन्द ने सच्चे अर्थों में स्त्री जाति को स्वतन्त्र किया। अब स्वतन्त्रता का समय है। इस स्वतन्त्रता में पाश्चात्य पुट लगी। अतः यह स्वतन्त्रता भी उल्टा रंग दिखा रही है। पश्चिम में अपने धर्म से मुख मोड़ कर स्त्रियों ने स्वतन्त्रता प्राप्त कर ली वह स्वतन्त्रता आचार दृष्टि से अवनति को साथ लिये हुए है। इसको स्त्रियों ने यूं समझा कि पुरुष मद्य पान करते हैं तो हम भी करेंगी। वह सिगार सिगरेट हर समय पीते हैं। हम भी वैसा धुआं होठों से निकालेंगी। पुरुष स्वतन्त्रता पूर्वक अपनी प्रत्येक इच्छा को पूर्ण करते हैं, हमें भी वैसा ही अधिकार होगा। उधर पुरुषों ने समझा कि स्त्री पुरुष की भोग तृप्ति के लिये है। उसे पुरुष को प्रसन्न रखना चाहिये। उत्तमोत्तम वस्त्र धारण कर और बनाव शृंगार कर उसे क्लबों में जाना चाहिये जहां जो व्यक्ति चाहे उसके साथ गले लग कर नृत्य करे, रमी और ब्रिज के द्वारा जुआ खेलें। सारी स्वतन्त्रता यह है। स्त्री के मान का कुछ मूल्य नहीं रहा, पुरुषों के वस्त्र तो वैसे ही रहे हैं परन्तु स्त्रियों के दिन प्रतिदिन कम हो रहे हैं। उसके

शरीर के अधिक से अधिक अंग नगे इस वास्ते रखे जाते हैं कि देखने वाले उसकी सुन्दरता से आनन्द अनुभव करें और उसकी प्रशंसा करें।

अमरीका के एक पत्र में वहां की एक लेडी ने एक लेख लिखा था वह इतना अच्छा है कि लोग और पाश्चात्य स्वतन्त्रता की उत्सुक स्त्रियां उसे जितना पढ़े व सुनें उतना कम है। उस लेडी का नाम पासिकन है। लेख बड़ा लम्बा है। सारांश उनका यह है कि वह स्त्रियों को सम्बोधित करके कहती हैं कि तुम ने स्वतन्त्रता से क्या प्राप्त किया है, केवल यही कि तुम्हारा मूल्य कम हो गया है अब तुम माननीय व आदरणीय नहीं रहीं। क्लबों में जाकर मदिरा पीकर अपना मान गंवाती हो। बन ठन कर अपने यौवन और सौंदर्य को दूसरों को दिखाती हो। इस पर किसी टिप्पणी की आवश्यकता नहीं। मैं कह रहा था कि आर्य्य समाज के प्रवर्तक ऋषि दयानन्द ने सत्य शास्त्रों के आधार पर स्त्री को स्वतन्त्रता दी। यदि वह हिन्दु समाज की बुद्धि को पलटा न देते तो आज पर्यन्त इन्हें बहुत पीछे पड़ा रहना था। विद्या पढ़ाना बहुत देर से आरम्भ होता। स्वतन्त्रता का विचार ही किसको आता था, मैं केवल यह अपील करना चाहता हूँ कि इसको पश्चिमी स्वतन्त्रता के साथ न मिलाया जाय नहीं तो भारतीय नारी का वास्तविक आभूषण इस की लज्जा और सतीत्व है। वह न रहेगा। मैं स्वतन्त्रता के उत्सुक लड़के व लड़कियों से पूछना चाहता हूँ कि क्या तुम्हारे विचारों की दशा भी इसी ओर नहीं है कि स्त्री अपने सौंदर्य को जनता व स्त्रियों में अच्छे से अच्छे तरीकों द्वारा दिखाये? क्या शीत में भी स्त्रियों को सर्दी नहीं लगती कि इसकी भुजायें कन्धों तक नंगी रखी जायें? क्या साड़ी बान्धते समय यह आवश्यक है कि अपने सिर, गले और छाती के सौंदर्य को स्पष्ट दिखाया जाय? छाती अवश्य उभरी रहे। क्या पर्दा हटाने का अभिप्राय यह है कि इसके साथ ही सादगी को भी फैंक दिया जावे? प्राकृतिक लज्जा को भी उतार फैंका जावे? यदि यह आवश्यक नहीं तो मैं कहूंगा कि अब समाज को पर्दा दूर करने के वास्ते प्रापेगंडा करने की आवश्यकता नहीं। इस को स्त्रियां स्वयं कर लेंगी। अब आर्य्यसमाज बेपर्दगी को दूर करने का प्रयत्न करे।

लोग कहते हैं कि स्त्री तथा पुरुष का दर्जा एक है। इससे दुनिया चल ही नहीं सकती है। स्त्री तथा पुरुष के अधिकार बराबर हैं। यह ठीक है। परन्तु हर समय के कर्तव्य भिन्न होने से इस के काम, इनके दर्जों में अवश्य अन्तर होगा। आर्य्य समाज का एक उपदेशक एक समाज में समान दर्जे पर धुआं धार व्याख्यान देकर जब बैठा तो मैंने उसको संस्कार विधि में से ऋषि दयानन्द के शब्द पढ़ाये जहां कि उन्होंने लिखा है कि जब पति बाहिर से आवे तो पत्नी आगे हो कर स्वागत करे, दोनों परस्पर नमस्ते करें और पत्नी पति के चरण छुये।

वह बड़ा आश्चर्यान्वित हुआ और बोला मैंने कभी इसका विचार ही नहीं किया, न मुझे याद ही है, मैं तो देख रहा हूं कि वक्ता कई विषयों पर श्री स्वामी जी के नियमों के विरुद्ध बोलते हैं। जो लहर चल जावे सब के साथ १०८ स्वामी दयानन्द जी का नाम जोड़ लेते हैं। परन्तु विचार

अपने उपस्थित करते हैं। मेरा अभिप्राय केवल यही है, कि जिस स्वतन्त्रता का अब प्लेटफार्म से और ईसाइयों मुसलमानों से वाद विवाद जीवन के वास्ते स्पष्टीकरण किया जाता है वह स्वामी जी को स्वतन्त्रता नहीं है वह तो स्त्रियों को घर की नौकरानी के स्थान पर गृह पत्नी बनाना चाहते थे। इस घर से निकालना नहीं चाहते थे वह अधिकार के साथ २ प्रत्येक के कर्तव्य नियत करते थे वे जानते थे कि एक मियान में दो तलवारें नहीं समा सकतीं। एक घर में दो राजा नहीं हो सकते, मुझे तो ऐसा प्रतीत होता है, कि गृह राज में स्वामी जी पुरुष को राजा और स्त्री को मन्त्री बनाते थे। राजा को वास्तविक परामर्श देने वाला मन्त्री ही होता है। जो वह चाहता है वही होता है। ग्लेडस्टन विक्टोरिया महारानी को जब कि वह कागजपर हस्ताक्षर न करना चाहती थी, कहा था स्मरण रखिये यह सिंहासन ही प्रधान मन्त्री के कारण है। सब यह देखते हैं कि सारा कार्य मन्त्री करते हैं। परन्तु मान राजा का होता है। इसी वास्ते श्री स्वामी जी ने लिखा कि जब पति बाहर से आवे तो पत्नी उसके चरण छुवे। विवाह समाप्त होने पर कुछ वर वधू को खिलाया जाता है। वहां भी स्वामी जी कहते हैं कि पहले वर को देवे और इसके पश्चात् वधू खावे। स्त्री को श्री स्वामी जी ने घर की रानी लिखा है। राजा की स्त्री होने से वह रानी होती है, और घर का प्रबन्ध करने से वह मन्त्रिणी होती है। वही स्त्री पुरुष का घर में दर्जा है, उसको स्थिर रखना चाहिए। वैसे स्त्री जाति माननीय है। स्त्री जाति को ही हम लोग छोटा समझने लग गए थे। ऋषि दयानन्द जी ने कहा था कि यह मातृशक्ति है इसका मान करो। मनुष्य के वास्ते माता से ऊपर कोई पूजनीय नहीं है। माता का दर्जा पिता से भी बढ़कर है। बहन, लड़की सब देवियां हैं और पूजनीय, मान करने योग्य तथा रक्षा करने योग्य हैं।

अपने उपदेशकों एवं वक्ताओं से भी प्रार्थना है कि वे ऋषि दयानन्द के कथन को समझें और डांवाडोल जाति को सीधे पथ पर लाने का यत्न करें।

(पृष्ठ ५७९ का शेष)

आधा छप गया था (श्री गुप्त जी को चाहिये था कि पहले मेरे प्रमाणों की असत्यता सिद्ध करते और पीछे अपना मत (मुक्ति से पुनरावृत्ति प्रकरण पण्डितों ने प्रक्षिप्त किया है) प्रकट करते श्री गुप्त जी जैसे व्यक्तियों के विचारों के खण्डन के लिये ही मैंने संशोधित सत्यार्थ प्रकाश के लिखे जाने और मुद्रण के प्रकरण को बहुत विस्तार और सुदृढ़ प्रमाणों के अधार पर अपने ग्रन्थ में लिखा है अस्तु।

यदि 'दुर्जन सन्तोष न्याय' से कथंचित् यह मान भी लिया जाये कि सत्यार्थ प्रकाश का यह प्रकरण ऋषि के निर्वाण के बाद छपा तब भी इसे पंडितों का प्रक्षेप नहीं माना जा सकता क्योंकि ऋषि ने अपने निर्वाण से ३॥ साढ़े तीन वर्ष पूर्व ही इस सिद्धांत का उद्घोष कपने संस्कृत वाक्य प्रबोध नामक गून्थ के अन्तिम प्रकरण में कर दिया था ऐसी अवस्था में मुक्ति से पुनरावृति, का सिद्धांत ऋषि का अपना नहीं है, सत्यार्थ प्रकाश में उनकी

(शेष पृष्ठ ५८७ पर देखें)

भारतीय संस्कृति का भारतीय जीवन में स्थान

लेखक—प्रो० आत्मानन्द जी विद्यालंकार

१ यद्यपि भारतीयोंके लिए भारतीय संस्कृति का भारतीय जीवनमें क्या स्थान हो, यह प्रश्न ही नहीं उठना चाहिए, परन्तु हमारे अभागे देश में दासता प्रमाद, आलस्य, अकर्मण्यता और अज्ञान ने हमारे अन्दर ऐसी स्थिति उत्पन्न करदी है कि हम अपनी संस्कृति को पूरी तरह से जानते ही नहीं, या उस के किसी किसी अंश को ही जानते हैं। नये ढंगके लोगों में उस से उपेक्षा या कुछ २ विरोध भी देखा जाता है। मुसलमान उसे घोर घृणा कीदृष्टि से देखते हैं। सिक्ख और ईसाई लोगों को घोर विरोध तो नहीं परन्तु उन में से कोई चुप रहना चाहते हैं। कोई मौका देखते हैं कि जिस ओर हवा बहती होगी हम भी उधर मुड़ जावेंगे। अछूत अपनी समस्याओं के भार से दबे पड़े हैं। जिन्हें इस भारतीय संस्कृति की कुछ चिन्ता है और जो भारतीय संस्कृति में बुद्धिपूर्वक, इच्छापूर्वक संस्कृत है, वे ही कुछ उछल कूद मचा रहे हैं। हां, इस समय देशमें स्वतन्त्रता मिल जाने के बाद यह चर्चा अवश्य है कि भारतीय संस्कृति होनी चाहिये। इसी में सब को रंग जाना चाहिये। इसकी इतर देशों के मुकाबले में एक स्वतन्त्रसत्ता है। चिरकाल से यह भारत में एक महा नदी की तरह अनवरत बह रही रही है इत्यादि इत्यादि।

२ साथ ही यह प्रश्न उठेगा कि भारतीय धर्म ही हो क्यों न नाम दे दें? चिरकाल से साधारण बड़ी भारी जनता इसी नाम से प्यार करती है। धर्म के न होने पर हम एक दूसरे को उलहना देते हैं, क्यों भाई क्या तुम्हारा कोई धर्म-ईमान नहीं? गांव २ में, घर २ में यही शब्द प्रचलित है। यही बड़ी भारी टेक है, आसरा है, शान्ति का धाम है इस लोक-परलोक का साथी है। सच है। परन्तु नई पढ़ी लिखी जनता में पिछले राजनीतिक आन्दोलन ने इस शब्द को बदनाम कर दिया है। कुछ हमारे अपने देशवासी अपने छोटे २ सम्प्रदायों में ऐसे अपने आप को जकड़ लेते हैं कि अपने से भिन्न दूसरे सम्प्रदायों के लोगों को अत्यन्त भिन्न समझते हैं उन से घृणा भी करते हैं और शरारती लोग इतने भिन्न सम्प्रदायों को धर्म के नाम पर परस्पर लड़ा भी देते हैं। कुछ समाचार पत्रों ने संस्कृति नाम को एक धर्म से कुछ हलकी, और. जरा फीके रंग की चीज को प्रसिद्ध कर दिया है हम नगरों और उपनगरों के निवासियों ने इसीको सब से अधिक समानतत्त्व समझ कर इसे अपनाना और इसी की दुहाई देना आरम्भ कर दिया है 'डूबते को तिनके का सहारा'। हम चाहते हैं कि समूची जाति में, समूचे देश में एकीकरण और एकता का कोई सर्वप्रिय, और विशाल और पृथु आधार पर आश्रित, समानतत्व मिल जावे, जिस से हम सारे देश को एक समझें और समझावें और विरोधियों को समझावें। दूसरे देशों को भी समझा सकें कि हमारी भारतीय संस्कृति नाम की अखिलभारतीय एक वस्तु है जिसे प्रायः सारे देश

ने अपना लिया है अब स्वतन्त्रता मिलने पर हम उस के स्वरूप, संग्रह, विकास, उन्नति और प्रसार में सावधान हैं, जागरूक हैं और कटिबद्ध हैं।

३ भारतीय संस्कृति का स्वरूप क्या है? प्रत्येक वस्तु का सर्व सम्मत स्वरूप निश्चय करना कठिन है। इसकी भावना (Spirit), आत्मा तो अनुभव की चीज है जिसे हम परदेश में जाकर स्पष्ट पहचान जाते हैं यहां तक कि पाकिस्तानी मुसलमान भी यदि उस समय द्वेष के आवेश में न हों, हम से गले मिल कर देश के अपनेपन को सामने रखेगा। उसी के आधार पर वह हमारी छाती से लग जायगा। केवल देश भक्ति ही यह तत्त्व नहीं संस्कृति इससे कुछ अधिक है। कुछ अधिक तत्त्व इसमें मिले हैं और कुछ अधिक तत्त्वों को मिलाने की आवश्यकता है। संस्कृति के ये तत्त्व निम्नलिखित हैं। (१) आध्यात्मिकता (२) धर्म प्रेम (३) जीवन के भौतिक और ऐहलौकिक पक्ष से आत्मिक और पारलौकिक पक्ष को बरतर समझना (४) सरलता (५) सब धर्मों का सब सम्प्रदायों का आदर करना (६) आतिथ्य (७) यज्ञ, दान, तप में आदर (८) इष्टदेव के प्रति वन्दना (९) स्त्रियों और कन्याओं के प्रति आदर और दयाभाव (१०) प्रेमावेश में आ जाना (११) चिर काल से आ रही अपनी नाना परम्पराओं से प्रेम (१२) गौ, ब्राह्मण, संन्यासी, तीर्थ, पर्व, त्योहार, लड़की, ससुराल से लेन देन (१३) एक स्थिर भारतीय स्वभाव

४ कोई पूछेगा कि तुमने अच्छे गुण तो दिखा दिये, प्रचलित भारतीय संस्कृति में दोष भी तो हैं। वे हमारे जीवन में ओत प्रोत हैं तभी तो हम चिरकाल तक दास पतित, दुःखी और अवनत रहे। इन्हीं दुर्गुणों को ही तो दूर करने के लिये राम, कृष्ण, बुद्ध, ऋषि दयानन्द और इतने सुधारक, और इतने सम्प्रदाय हमारे इतिहास में उठते रहे हैं। इन्हीं दोषों के कारण ही तो दूसरे देशों के मुकाबले में हम पिछड़े हुए हैं। ठीक है। आत्म प्रशंसा के लिए भले ही हम जोश में भारतीय संस्कृति का शुक्ल पक्ष ले लें परन्तु लेने तो शुक्लपक्ष और कृष्णपक्ष दोनों ही चाहिए। यह बात अब दूर की हो गई कि हमारी भारतीय संस्कृति क्या थी? माना उसका स्वरूप अवश्य जानना चाहिये। परन्तु साधारण जनता को स्पष्ट जान लेना चाहिए कि गुणों को हम दृढ़ता पूर्वक हृदय से लगाये रखेगें, पर आ गये दोषों को दूर करने को भी हम तैयार हैं जैसा कि इग्लैंड, रूस, अमेरिकादि देश अपनी पुरातन संस्कृतियों के शुक्ल पक्ष की तो पूरी रक्षा करते हैं और कृष्णपक्ष को बुद्धि पूर्वक दूर करने का प्रयत्न करते हैं।

५ साधारण जनता को इस भारतीय संस्कृति से प्रेम है। गांवों के मुसलमान, ईसाई अछूत सिख जाट भी इसे स्वभावतः कुछ न कुछ अपनाए हुए हैं। समस्या है कालिजों में पढ़े छात्रों और अध्यापकों की, विदेशों में पढ़े लोगों की, पिछले ५०. वर्ष में भड़काई हुई शहरों की मुसलमान जनता की, कुछ कुछ ईसाइयों की, कभी कभी अकालियों की, उपेक्षित नाग सन्थाल आदि वर्गों की, केन्द्रीय गवर्न्मेंएट की, श्री जवाहर लाल जी तथा इतर मुस्लिम सेवी लोगों की, कुछेक डांवाडोल, संशयवादी लोगों की, कम्यूनिस्टों की इत्यादि इत्यादि। इन वर्गों को भी भारतीय संस्कृति नाम के समान

भारतीय व्यापी तत्त्व में रंगना है। इनके भ्रमों, द्वेषों, संशयों, अज्ञानों विरोधों को दूर करके इन के जीवन में शनैः शनैः साम दान दण्ड भेदादि उपायों से भारतीय संस्कृति के उन तत्त्वों को दृढ़ करना है जो इन में हैं, और उन तत्त्वों को नये सिरे लाना है जो इन में नहीं है या प्रसुप्त से पड़े हैं।

६ अपनी आन्तर कमजोरियों और फूटादि दोषों के कारण हमारे अपने अन्दर हमारे शत्रु उत्पन्न हो जाते हैं। कौरव-पांडवों और यादवोंके काल से हम यह देख रहे हैं। इस जाति का एक मध्यवर्ती ठोस भाग ऐसा रहा है जो जाति के धर्म संस्कृति, जीवन और देश का रक्षक है, उस मां की तरह, जो अपने बच्चे को दूसरे के हाथ जाता देखे गी पर उसका मरना नहीं देख सकती, न कि उस कृत्रिम मां की तरह जो केवल असली मां को दुःख देने के लिये उस बच्चे को छीनने के लिए तैयार है। बौद्धों के समय में भी बौद्ध लोग कभी २ विदेशियों से मिलकर इस देश की मध्यवर्ती प्रधान जनता का उसका वैदिक धर्म और उसके राज्य का नाश करने के लिए, पेटपर देश द्रोह जाति द्रोह, और धर्म द्रोह करते थे। पिछले कालमें मुसलमान ऐसा करते थे। अब मुसलमान, ईसाई उपेक्षित पुरानी जातियां या कोई कोई अछूत भी करने को तैयार हैं। माना दोष मुख्यतया हिन्दू जाति का ही है। क्यों कि हम हिन्दुओं ने अपने अन्दर बाल-विवाह-विलास और ऊंच-नीच आदि कुरीतियोंके कारण अपने अन्दर इतनी कमजोरियां उत्पन्नकरली हैं कि हम समूची जाति को प्रेम के द्वारा और बल और प्रताप के द्वारा अपने वश में नहीं रख सकते। वे लोग अपने हृदयस्थ द्वेष के कारण या बदला लेने के लिये या दूसरों के बहकाने से इसी देश के स्थिर लोगों से, उसके धर्म से, शासन से, संस्कृति से, और स्वदेश से शत्रुता करने लगते हैं जैसा कि पाकिस्तान बनने के समय मुसलमानों ने किया। जो काम जिन्हां ने किया वह दुर्योधन भी ऐसी अवस्थाओं में करता, और कन्नोज का जयचन्द भी करता। ये पेट के फोड़े ऐसे हैं इन्हें न चीरो तो मार देंगे, चीरो तो जानका खतरा है।

७ फिर भी जाति ने जीना तो है और उसीके सच्चे हितैषियों ने ही उस के सर्वस्व की रक्षा करनी है। इस लिए उसके लिए जागरूक रहना ही है, कुछ न कुछ उद्योग करना ही है। पहले देखना चाहिए कि ऊपर तीसरे अनुच्छेद (Paragraph) में गिनाये भारतीय संस्कृति के अंग भारतीय राष्ट्र में कहां कहां हैं। समय आ गया है कि अपनी संस्कृतिसम्पत्ति की हम पड़ताल कर लें। जिन २ ने संकृरति के जिस अंश की रक्षा की है उन्हें उत्साह दे, और उन्हें उस अंश की रक्षा, वृद्धि और प्रसार में प्रवृत्त रक्खें। काम शांति से करें, बहुत वृथा कोलाहल कर के नहीं। अपना राज न रहने पर भी हजार वर्ष से इसकी रक्षा हो रही है। लाखों ने इस के लिए त्याग किया है। वृथा कोलाहल से हम ठन ठन गोपाल ही रह जाते हैं और शत्रु जाग उठते हैं।

८ पहला अंग आध्यात्मिकता है। भारत की सर्व साधारण प्रजा अब भी आध्यात्मिकतासे प्रेम करती है। थोड़े से नये ढंग के लोगोंको छोड़ दीजिये। माना इन के हाथ में शासन, अंग्रेजीप्रेस और यूनिवर्सिटियां हैं। इन्होंने यह भी समझ

लिया है कि असली भारत वर्ष हमी मुट्ठी भर लोग हैं। परन्तु गांधी युग में हम ने देख लिया था कि इनकी बहुत सी 'टैं' कम हो गई थी। देश में वेद, उपनिषद् गीता, रामायण, कुरान, ग्रन्थसाहिब, बाइबिल से अब भी घना प्रेम है। अपने धर्म से करोड़ों को प्राणतुल्य प्रेम है। अपने आत्मा की उन्नता, आध्यात्मिकता को हर कोई चाहता है। हां उसके साथ संकीर्णता और इतर सम्प्रदायों से कुछ २ परायापन ये लोग अवश्य जाहिर करते हैं। तो दोष तो सभी वस्तुओं में आगये हैं। क्या राजनीति, साम्यवाद, प्रेमव्यवहार में दोष नहीं। उन्हें कौन छोड़ता है ? धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष का स्वरूप हम बिगाड़ लेते हैं पर धर्म , अर्थ, काम, मोक्ष की भावना तो जीवित है। यह भावना भारत के अधिकतम अंश में अब भी वर्तमान है इस में किसे संशय होगा ? भारत में घूम कर देखलें। समूचे देश में पैदल घूम आने से भारत के पुराने नेता भी श्री राम चन्द्र, कृष्ण से लेकर शंकर, तुलसीदास, समर्थ रामदास, नानक, चैतन्य, दयानन्द, विवेकानन्द, रवीन्द्र गांधी तक भारत की आत्मा को पहचानते हैं, अनुभव करते है उस की रक्षावृद्धि करते हैं उसमें रम जाते हैं और अपने बाद ऐसी कर्मराशि और ज्ञानराशि छोड़ते हैं जो लोगों के हृदयासन पर स्थिर रूप से बैठती है।

६ इसी प्रकार दूसरे तत्त्वों को देश के गांव गांव में खोज खोज कर जानना चाहिये। अब भी अखिल देश व्यापी विद्या का प्रचार है। निर्वाचन ने जागृति कर दी है। करोड़ों रुपयों की पुस्तकें, पत्र पत्रिकाएं बिकती हैं। हर कोई अपने बच्चों को सुशिक्षित करना चाहता है। शिल्पविद्यालय खुलते जाते हैं। गवर्नमेंट ने इतनी यूनिवर्सिटियां चला रखी हैं। देश देशान्तरों में हजारों विद्यार्थी पढ़ने जाते हैं। देश देशान्तरों के विद्वान यहां के विद्वत्सम्मेलनों में शामिल होते हैं। हमारे यहां के विद्वानों का मान देश देशान्तरों में बढ़ता जाता है। चौसठ कलाओं में जिस जिसका जहां प्रचार है लोग उसे सम्भालने लगे हैं। भारतीय चित्रकला संगीत, नृत्य, मूर्तिकला में जागृति आ गई है। हां अपना तत्त्व कितना रखना, दूसरों से कितना लेना-इसमें अभी निर्णय नहीं हो पाया है परन्तु वस्तु की रक्षा वृद्धि में लोग तत्पर है। यह सर्वतोमुखी संस्कृति में जागृति निरन्तर जारी रहे, ऐसा प्रयत्न करना चाहिये।

संस्कृति के प्रत्येक अंग का भारत में खोजना, दोष निवारण, और एकीकरण करते जाना चाहिये। देश बहुत बड़ा है और मत भेद और विविधता बहुत अधिक है इस लिए लोग समान तत्त्व नहीं देख पाते। परन्तु शान्ति से, प्रेम से अनुभव करने पर इस विविधता में एकता स्पष्ट प्रतीत होने लगती है। इसे दयानन्द ने, विवेकानन्द ने, रामकृष्ण परमहंस ने रवीन्द्र ने, पटेल ने, तिलक ने, श्रद्धानन्द ने, गांधी ने, अवनीन्द्र नाथ ने, विष्णु दिगम्बर ने भाँप लिया था। अब भी साधारण जनता भाँपती है। हां साधारण जनता को भ्रम में लोग डाल देते हैं। इस खतरे से बचना चाहिये।

१० अच्छा साधारण जनता और सर्वश्रेष्ठ नेता तो हाथ में आ गये। बीच की मध्यम श्रेणी की नव शिक्षित जनता से खतरा है। इन्हें अंग्रेजी भाषा, अरबी फारसी प्रेम, कम्यूनिज्म, बड़े बड़े कारखाने, धन कमाने में असफलता, अधूरीशिक्षा,

विदेशी संस्कृति में रंगा जाना आदि अन्दर ही अन्दर कुमार्ग दिखा देते हैं और यह संस्कृति का विरोध करने लगते हैं। अब स्कूलों कालिजों में सब जगह भारतीय संस्कृति की शिक्षा को स्थान देने से ये लोग और विशेषतया इनके बच्चे अगले ५ वर्ष में अपनी संस्कृति का स्थिर अंग बन जावेंगे। सवाल रहा, मुसलमान; ईसाई, अछूत और उपेक्षित लोगों का। हिंदी राजभाषा होने से कुछ कुछ भारतीय संस्कृति इसके द्वारा आयगी। संगीत सबको पुराना ही प्रिय होता जाता है यह भी भारतीय संस्कृति के प्रचार में सहायक होगा। अपनी अपनी भाषा के प्रान्तीय समाचार पत्रों को भी भारतीय संस्कृति के ज्ञान और प्रचार में बुद्धि पूर्वक लग जाना चाहिये। मेलों में इसका प्रचारयोजना पूर्वक करना चाहिए। भिन्न भिन्न सम्प्रदायों के उत्सवों और साप्ताहिक सम्मेलनों को इस ओर अधिक ध्यान देना चाहिए। संस्कृत के अध्यापक अध्यापिकाओं, हिंदी तथा इतर प्रान्तीय भाषाओं के अध्यापक अध्यापिकाओं, इतिहास के अध्यापक अध्यापिकाओं हेडमास्टरों और खेल के मास्टरों को अपने अधीन छात्रों को भारतीय संस्कृति के भिन्न भिन्न अंगों की विशेषता बताते रहना चाहिये। गांव गांव में बैठे पंडित पुरोहितों को, स्थान स्थान घूमते साधुओं को उन के मठों, केन्द्रों और अखाड़ों को भी इस ओर अधिकाधिक ध्यान देना चाहिये। इन सब का जीवन भारतीय संस्कृति के जीवित रहने पर ही आश्रित है। इनके श्रेष्ठ पुरुष इस संस्कृति की रक्षा करते आए हैं

११ पर्याप्त विरोध और उपेक्षा की वर्तमानता में भी भारतीय संस्कृति के विषय में भारत में और विदेशों में प्रेमश्रद्धा, जागृति, उन्नति और रक्षा की भावना विद्यमान है। यह एक सत्य है। यह एक तथ्य है। इस तथ्य की चट्टान पर जो खड़ा हो उसे विरोध की लहरों की बहुत परवाह नहीं करनी चाहिये। अपने प्रिय और अंगीकृत ध्येय में मग्न हो कर अपना कर्तव्य करते जाना चाहिए।

(पृष्ठ ५८२ का शेष)

मृत्यु के पीछे पण्डितों ने घुसेड़ा है-लिखना सत्य की हत्या करना है। क्या सस्कृत वाक्य प्रबोध का प्रथम संस्करण जिसके मुख पृष्ठ पर संस्करण काल सं० १६३६ छपा है और भीतर भूमिका के नीचे फाल्गुन शुक्ला ११ [सं० १६३६] लिखा है भी जाली है? क्या उसे भी पण्डितों ने स्वामी जी के निर्वाण दीपावली सं० १६४० के पश्चात् बना कर उनके नाम से छपवा दिया? और मुद्रण काल सं० १६३६ भी झूठ ही छाप दिया? तथा क्या ऋषि दयानन्द के वे पत्र जिन में संस्कृत वाक्य प्रबोध का उल्लेख है पीछे से संग्रहीताओं ने घड़ लिये। अतः अपने पक्ष की सिद्धि के इस प्रकार बिना सिर पैर की निर्मूल कल्पनाएँ करना न केवल सर्वथा अनुचित ही हैं! अपितु सर्वथा निन्दनीय हैं। जनता तथा अपनी आत्मा को धोका देना है। आशा है श्री गुप्त जी अपने लेख पर पुनः विचार करेंगे? और जो अनुचित (असत्य) लिखा गया है उसे सहर्ष स्वीकार कर के आर्यत्व का परिचय देंगे।

दान-सूची

सार्वदेशिक आर्यप्रतिनिधि सभा देहली।

(१६-१२-१९५१ से २१-१-१९५२ तक)

दान विविध

श्री राजगुरु पं० धुरेन्द्र जी शास्त्री प्रधान सभा को भेंट रूप में थैलियों द्वारा मध्य प्रदेश की समाजों से प्राप्त

११८५)

१०१) आर्य समाज सदर बाजार नागपुर
१०१) ,, इंसापुरी ,,
५१) ,, धरमपेठ ,,
२५) ,, जरीपटका ,,
१५१) ,, सागर ,,
२५१) ,, गंजीपुरा जबलपुर
१०१) ,, गोरखपुर ,,
५१) ,, गन कैरिज फैक्टरी ,,
१०१) ,, रायपुर ,,
१०१) ,, अमरावती ,,
१५१) ,, अकोला ,,

११८५)

१०) आयुष्मती प्रकाशवती जी नागपुर द्वारा सभा प्रधान जी।
९॥) टी० पी० राजेश्वर जी कामटी ,, द्वारा सभा प्रधान जी

१२०४॥) योग
२७१६।≡) गत योग

३९२०॥।≡) सर्व्व योग

दान आर्य समाज स्थापना दिवस

१०) आर्य समाज कांठ (मुरादाबाद)

१०) योग
१०४३॥।) गत योग
१०५३॥।≈) सर्व्व योग

दान सार्वदेशिक वेद प्रचार निधि

२०) श्री ला० रामगोपाल कृष्णदेव जी शालवाले देहली।
२०) ,, देशराज चौधरी जी देहली।
१२) ,, विद्या भूषण किशन जी भोपले हिवर खेड़ रूपराव (हैदराबाद स्टेट)
५) ,, सेवाराम जी चावला देहली
५) ,, गणेशदास जी जवाहर नगर देहली
५) ,, गंडाराम जी पूरनपुर (पीलीभीत)
९।) विविध सज्जनों से

७६।) योग
१५२७।≡) गत योग

१६०३॥≡) सर्व्व योग

सब दानियों को धन्यवाद ! खेद है कि अभी तक देश देशान्तरों में वैदिक धर्म के प्रचार की व्यवस्था के महत्त्व पूर्ण उद्देश्य से आयोजित इस निधि के लिये यह तुच्छ सी राशि ही एकत्रित हुई है जो सचमुच आर्यों के लिये लज्जाजनक बात है। बार २ लिखने पर भी बहुत से आर्यों तथा आर्य समाजों ने इस निधि के लिए अपना दान नहीं भेजा यह दुःख की बात है। अब भी उन्हें अपना उदार दान भेज कर अपने कर्तव्य और सभा के आदेश का पालन अवश्य करना चाहिये।

ज्ञानचन्द, मन्त्री, सार्वदेशिक सभा।

ग्राहकों से आवश्यक निवेदन

निम्न लिखित ग्राहकों का चन्दा फरवरी ५२ के साथ समाप्त होता है। कृपया वे शीघ्र अपना आगामी वर्ष का चन्दा मनीआर्डर द्वारा सभा कार्यालय में भिजवादें अन्यथा आगामी अंक उनकी सेवा में वी० पी० से भेजा-जायगा। कम से कम ५ अन्य मित्रों को भी ग्राहक बनवाइए :—

ग्राहक सं०	पता
४	आर्य समाज उन्नाव
४१	गुरुकुल घासीपुरा
४२	मुन्शी राम स्वरूप जी बरेली
५५	आर्य समाज इटारसी
५६	आर्य समाज किरकी पूना
१०७	बनवारी लाल जी पचेरी वाला साहिबगंज
१०८	आ० स० बहादराबाद
१०९	आर्यवीर अशर्फी प्रसाद जी यादव हसनगंज
११२	आ० स० विष्णुगढ़ बिसाऊ जयपुर स्टेट
११४	,, ,, फगवाड़ा
११५	सरयूप्रसाद जी गुप्त शिवसागर आसाम
११६	श्री० लल्लूलाल जी गुप्त अध्यापक भगवतगढ़
११७	गुरुकुल सोनगढ़
११८	दयाल भीमभाई देसाई गुरुकुल सोनगढ़
१२०	श्री० बोधराज जी विद्यासागर शाहबाद मारकन्डा
१२५	आ० स० मोरवी
१३०	श्री भाईलाल जी तिवारी पुस्त० आ० स० सरदारपुरा जोधपुर
१३६	आ० स० हनमकोंडा
१४४	,, ,, मुजफ्फरनगर
१५०	आ० स० सोनीपत
१५८	,, ,, मवाना कलां
१६२	,, ,, अमरावती
१६५	,, ,, नजीबाबाद
१६६	,, ,, रुड़की
१६८	,, ,, रतलाम
१६९	वाचनालय आ० स० गुलाबसागर जोधपुर
१७४	धर्मराज जी आर्य कांकनहाली बंगलौर
१८३	आ० स० गाजीपुर सिटी
१८९	,, ,, बिश नगर बड़ौदा
१९३	,, ,, कार्कल (S.K.)
१९६	,, ,, मामकोठा भावनगर सौराष्ट्र
२०३	प्रि० डी० ए० वी० कालेज देहरादून
२०५	आ० स० मन्सूरी
२११	श्री राजाराम जी सिद्धान्त शास्त्री जौनपुर
२२०	श्रीकृष्ण जी ग्राम टीकरी पो० नेक (मेरठ)
२५७	श्री काशी शंकर जी ध्रांगध्रा (सौराष्ट्र)
२६६	डी. ए. वी. हाई स्कूल वेयर्डरोड नई देहली
२७५	आ० स० साहिबगंज
२८१	श्री० के वेंकटेश प्रभु प्रधान आ० स० कार्कल

ग्राहक सं०	पता	ग्राहक सं०	पता
२८२	श्री० कैलाशनाथ आर्य आबू रोड	५९९	श्री नन्दलाल हरिशंकर वकील जामनगर
२८७	श्रीमती जी रूपवती जी वर्मा हरदोई	६००	मंत्री वैदिक पुस्तकालय पुनपुन
२८८	आ० स० अजीतमल इटावा	६०५	आ० स० मंगलौर (S. K.)
२९३	,, ,, वाजेपरतापुर वर्द्धमान	६३२	श्री० शरतचन्द्र सत्यव्रत जी तीर्थ येवला (नासिक)
२९६	म० गंगाराम जी आर्य निजामाबाद		
२९७	डी० ए० वी० कालेज लखनऊ	६७६	श्री के० पद्मनाथ शैनाय उजरे (S.K.)
२९९	आ० स० सोलन शिमला	६७७	श्री के० सुवराम शैनाय उदीपी (S.K.)
३००	,, ,, करनाल	६८१	श्री वीरसेन जी आर्य विरहाना लखनऊ
३०२	,, लड्डूघाटी पहाड़गंज देहली	६८२	आर० आर० के० के० हायर सैकेन्डरी स्कूल कुचेसर
३६४	पं० धर्मवीर जी वेदालंकार अहमदाबाद		
३९१	श्री० नाथवलाल जी शुक्ल ग्राम करन-पुरकैमा	६८३	कन्या गुरुकुल हरद्वार
		६८५	मकसूदनलाल जी शर्मा बढी बढिन
३९२	आ० स० बीकानेर	६८६	श्री० विशनलाल जी आ० कुमार सभा नानपारा
३९५	,, ,, मानपुर (गया)		
३९७	श्री स्वामी रामजी शर्मा जबलपुर	६८७	श्री केशवचन्द्र जी गंज मुरादाबाद
४५९	श्री० पोपटलाल जी अहमदाबाद	६९५	श्री ब्रजलाल जी सि० भा० चिड़ावा
४७१	श्री बलवीरसिंह जी भल्ला सब्जी मंडी देहली	७७४	श्री अम्बालाल जी गुप्त करमसद्
५९६	आ० स० अमरोहा		
५९७	,, ,, जामनगर		

व्यवस्थापक 'सार्वदेशिक'

हमारे द्वारा प्रकाशित एवं प्रचारित साहित्य

हमारे द्वारा प्रकाशित साहित्य

आचार्य भगवान्देव जी द्वारा लिखित :—

१—ब्रह्मचर्यामृत [दूसरा संस्करण] =)
२—बाल विवाह से हानियां ,, —)
३—स्वप्नदोष और उसकी चिकित्सा ,, =)
४—व्यायाम का महत्व ,, ≡)
५—पापों की जड़ अर्थात् शराब ,, =)॥
६—हमारा शत्रु अर्थात् तम्बाकू का नशा =)॥
७—नेत्र रक्षा [दूसरा संस्करण] ≡)
८—रामराज्य कैसे हो ? =)॥

स्वा० आत्मानंदजी महाराज द्वारा लिखित :—

९—आदर्श ब्रह्मचारी =)।
१०—कन्या और ब्रह्मचर्य ≡)
११—मनोविज्ञान तथा शिवसंकल्प २।)
१२—वैदिक गीता [पुनः छपेगी]

अन्य लेखकों द्वारा लिखित :—

१३—पूर्वी अफ्रीका एवं मारीशस आदि में भारतीयों का राजनीतिक एवं सांस्कृतिक संघर्ष (ले० स्वा० स्वतन्त्रानन्द जी) २।)
१४—पंजाब की भाषा व लिपि (स्वा० स्वतंत्रा०) —)
१५—कर्तव्य दर्पण (महा० नारायण स्वामी) १।)
१६—वैदिक संध्या पद्धति [भावार्थ सहित] —)
१७— ,, संध्या-हवन पद्धति ≡)
१८— ,, सत्संग पद्धति ।=)
१९—आर्य कुमार गीताञ्जलि [भाग १] ≡)
२०— ,, ,, ,, ,, २ ≡)
२१—स्वा० आत्मानंद जी की जीवनी —)
२२—आर्योद्देश्य रत्न माला (ऋ० दयानन्द) —)
२३—आर्यसमाज की आवश्यकता (डा. सूर्यदेवजी) ।)
२४—महर्षि दयानन्द और उनका कार्य —)
२५—महर्षि दयानन्द और महात्मा गांधी २) (ले० पं० धर्मदेव जी वि० वा०)

हमारे द्वारा प्रचारित साहित्य :—

१—महर्षि दयानन्द [मुक्तक छंदों में] ॥=)
२—ऋ० दयानन्द का संक्षिप्त परिचय —)
३—दयानन्द और वेद (योगी अरविंद) ।)
४—आदर्श सुधारक दयानन्द ॥=)
५—स्वामी दयानन्द और आर्य समाज ।)
६—आर्य समाज के नियमोपनियम =)
७—सत्यार्थ प्रकाश शंका समाधान ।)
८—उपदेश मंजरी (ऋ० दयानन्द) २)
९—गो करुणानिधि ,, ,, =)
१०—Cow Protection ,, ,, =)
११—आर्य जगत् के उज्ज्वल रत्न (धर्मवीरजी) ।=)
१२—बाल शिक्षा (स्वामी दर्शनानन्द) —)।
१३—धर्म शिक्षा ,, ,, —)॥
१४—वेदों की आवश्यकता ,, ,, —)॥
१५—वेद में स्त्रियां (पं० गणेशदत्त जी) १॥)
१६—वैदिक वीर तरंग (पं० जगदेव जी) ।)
१७—संध्या रहस्य (श्री दीनदयालु जी) १)
१८—नमस्ते (पं० सुखदेव जी) =)
१९—प्राणायाम विधि (महा० नारायण स्वा० जी) ।)
२०—कृषि विज्ञान (प्रि० शिवसिंह जी) ॥)
२१—सिख और यज्ञोपवीत (स्वा० स्वतन्त्रानन्द) ≡)
२२—शिवाबावनी (महाकवि भूषण) ॥)
२३—हितैषी की गीता [दोहों में गीता] ॥)

टि०—१) से कम की वी० पी० नहीं भेजी जाती। वी० पी० से आप का अधिक व्यय होगा। अतः १) से कम की पुस्तकों के लिए अवश्य ही, तथा अधिक रुपये की पुस्तकों के लिए, पुस्तकों के मूल्य के अतिरिक्त, जितने रुपये की पुस्तकें मंगानी हों उतने ही आनों में रजिस्ट्री से मगाने के लिए ।=)॥ अन्यथा =) जोड़ कर डाक एवं बंधाई आदि के व्यय के लिये भेजें।

उदाहरण—यदि ३) की पुस्तकें मंगानी हों तो ३)+≡)+।=)॥ अथवा =) कुल यदि रजिस्ट्री से मंगानी हों तो ३॥—)॥ अन्यथा ३।—) भेजें। (२) अन्य प्रकाशकों की पुस्तकें भी आदेश आने पर भेजी जा सकती हैं। (३) पता पूरा एवं स्पष्ट लिखने की कृपा करें। (४) कुछेक पुस्तकों का विवरण साथ दिया जा रहा है। भारतवर्षीय आर्यकुमार परिषद् की धार्मिक परीक्षाओं की पुस्तकें भी हमारे यहां मिलती हैं। **वैदिक साहित्य सदन**, लाल दरवाजा, सीताराम बाजार देहली।

Regd. No. D 159

स्वाध्याय योग्य उत्तम साहित्य

स्व० श्री महात्मा नारायण स्वामी जी कृत कतिपय ग्रन्थ

(१) मृत्यु और परलोक

शरीर, अन्तःकरण तथा जीव का स्वरूप और भेद, जीव और सृष्टि की उत्पत्ति का प्रकार, मृत्यु का स्वरूप तथा बाद की गति, मुक्ति और स्वर्ग, नरकादि का स्वरूप मैस्मरइज्म और रूहों के बुलाने आदि पर रोचक विचार और मुक्ति के साधन आदि विषयों पर नए ढंग पर एक अद्भुत पुस्तक।

बीसवां संस्करण मूल्य १)

(२) योग रहस्य

इस पुस्तक में अनेक रहस्यों को उद्घाटित करते हुए उन विधियों को भी बतलाया गया है जिनसे कोई आदमी जिसे रुचि हो—योग के अभ्यासों को कर सकता है।

पंचम संस्करण मूल्य १)

(३) विद्यार्थी जीवन रहस्य

विद्यार्थियों के लिए उनके मार्ग का सच्चा पथप्रदर्शक उनके जीवन के प्रत्येक पहलू पर शृङ्खलाबद्ध प्रकाश डालने वाले उपदेश

पञ्चम संस्करण मूल्य ॥=)

(४) आत्म कथा

श्री महात्मा नारायण स्वामी जी का स्व लिखित जीवन चरित्र मूल्य २।)

(५) उपनिषद् रहस्य

ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक, माण्डूक्य, ऐतरेय, तैत्तिरीय, बृहदारण्यकोपनिषद् की बहुत सुन्दर खोज-पूर्ण और वैज्ञानिक व्याख्याएँ। मूल्य क्रमशः—

।=), ।, ॥), ।=), ।=), ।), ।),), ४),

(६) प्राणायाम विधि

इस लघु पुस्तक में ऐसी मोटी और स्थूल बातें अंकित हैं जिनके समझने और जिनके अनुकूल कार्य करने में प्राणायाम की विधियों से अनभिज्ञ किसी भी पुरुष को कठिनता न हो और उनमें इन क्रियाओं के करने की रुचि भी पैदा हो जाए।

चतुर्थ संस्करण मूल्य =)

मिलने का पता—

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा

श्रद्धानन्द बलिदान भवन

देहली ६

मुद्रक—चतुरसेन जी द्वारा सार्वदेशिक प्रेस पटौदी हौस से छपकर
श्रीरघुनाथ प्रसाद जी पाठक पब्लिशर द्वारा सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा देहली ६ से प्रकाशित

फाल्गुण २००८ वि०
मार्च १९५२

सम्पादक
श्री पं० धर्मदेव सिद्धान्तालङ्कार विद्यावाचस्पति

मूल्य स्वदेश ५)
विदेश १० शि०
एक प्रति ॥)

विषय सूची

ओ३म्

सार्वदेशिक आर्य-प्रतिनिधि सभा देहली का मासिक मुख-पत्र

वर्ष २६ } मार्च १९५२, फाल्गुन २००८ वि० दयानन्दाब्द १२८ } अङ्क १

ओ३म्

वैदिक प्रार्थना

ओ३म् त्वं नो अग्ने अग्निभिर्ब्रह्म यज्ञं च वर्धय ।
त्वं नो देवतातये रायो दानाय चोदय ।। सामवेद म० १५०३ ।।

शब्दार्थः—(अग्ने) हे ज्ञानस्वरूप परमेश्वर (त्वम्) तू (अग्निभिः) ज्ञानियों के द्वारा (नः) हमारे (ब्रह्म) ज्ञान (यज्ञं च) और यज्ञ भावना को (वर्धय) बढ़ा (त्वम्) तू (नः) हमारे (रायः) धन को (देवतातये) ज्ञानियों की उन्नति अथवा दिव्यगुणों के विस्तार के निमित्त (दानाय) दान देने के लिये (चोदय) प्रेरित कर।

विनय—हे परमेश्वर ! आप सर्वज्ञ होने के कारण सब ज्ञानियों के भी आदि गुरु हैं। आप की कृपा से ही लोगों को सच्चे ज्ञान की प्राप्ति होती है। अतः हमारी आप से यही प्रार्थना है कि हमारे ज्ञान को आप बढ़ाएं। ज्ञानी विद्वान् लोगों की भी सहायता ज्ञान की प्राप्ति और यज्ञ भावना—स्वार्थ त्याग और परोपकार भावना की वृद्धि में हमें सदा प्राप्त होती रहे। आप हमें सदा ऐसी शुभ प्रेरणा करें जिस से अपने सब प्रकार के ऐश्वर्य को हम श्रेष्ठ यज्ञ, वेद प्रचारादि कार्यार्थ दान करते रहें। हम स्वार्थ का परित्याग कर परोपकार में अधिकाधिक प्रवृत्त हों।।

सम्पादकीय

एक जर्मन विद्वान् के संस्कृत के महत्त्व विषयक विचार :—

प्रो० डा० हौल्मुथ वौन ग्लासनप् एक सुप्रसिद्ध जर्मन विद्वान् हैं जो जर्मनी के तुबिंगन् विश्वविद्यालय में भारतीय सभ्यता और तुलनात्मक और धर्म के उपाध्याय हैं। आप नई देहली में १३ से २०दिस० १९५१ तक आयोजित दार्शनिक सम्मेलन में भाग लेने के लिये आये थे और उसके पश्चात् भी वे कुछ समय भारत में ठहरे। हमें भी उनसे मिलने और उन्हे Vedic Culture आदि पुस्तकें भेंट करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था जिसका 'सार्वदेशिक' में संक्षिप्त वृत्तान्त प्रकाशित हो चुका है। उस के पश्चात् देहली विश्वविद्यालय में बौद्धमत के विषय में उनका जो व्याख्यान हुआ उसको सुनने और उन से सभी में तद्विषयक अनेक प्रश्न करने का अवसर हमें प्राप्त हुआ। ये प्रश्न इस विचार के खण्डन में थे कि महात्मा बुद्ध नास्तिक थे। उपस्थित विद्वन्मण्डली ने उन प्रश्नों को जो प्रमाण सहित किये गये थे बहुत पसन्द किया। डा० ग्लासनप् का कन्स्टीट्यूशन् क्लब देहली में जो भाषण जर्मन फिलासफी पर भारतीय विचारों के प्रभाव के सम्बन्ध में हुआ उस में उन्होंने वेद, उपनिषत् तथा अन्य संस्कृत साहित्य के जर्मन फिलासफी पर प्रभाव का बड़ी श्रद्धापूर्वक वर्णन किया और बताया कि शौपनहार, निशे और कैसर लिंग के विचार अधिकतर वेदों और उपनिषदों के अध्ययन से प्रभावित थे। डा० ग्लासनप् ने कहा कि जब तक जर्मन विद्वान् संसार में विद्यमान हैं वे ऋषियों की भाषा-संस्कृत का अध्ययन अवश्य जारी रक्खेंगे। युद्ध के बाद भी उन्होंने बताया कि कम से कम १० विश्व विद्यालय हैं जहां संस्कृत और भारतीय विद्याओं का अध्ययन विशेष रूप से कराया जाता है।

हमें खेद है कि दूसरे देशों के विद्वान् वेदों, उपनिषदों और संस्कृत ग्रन्थों के अनुशीलन में जहां विशेष रुचि दिखा रहे हैं वहां हमारे इस पवित्र आर्यावर्त के युवक उसकी प्रायः उपेक्षा करते हैं और हमारे विद्यालयों और महा विद्यालयों में संस्कृत भाषा और उसके शिक्षकों को वह गौरवास्पद स्थान प्राप्त नहीं है जिसके वे योग्य हैं। इसके लिये निरन्तर आन्दोलन जारी रखना चाहिये कि संस्कृत को अनिवार्य रूप से सब विद्यालयों, महाविद्यालयों में पढ़ाया जाए और उसके शिक्षकों को उचित मान दिया जाए क्योंकि उनके द्वारा ही भारतीय संस्कृति की विशेष रक्षा हुई है। महर्षि दयानन्द जी के महत्त्वपूर्ण सन्देशों में से एक यह है जिस पर दुःख है कि आर्य नर नारियों ने भी अभी पर्याप्त ध्यान नहीं दिया। हम जैसे कि पहले भी लिख चुके हैं आर्यसमाजों और आर्य संस्थाओं को अब संस्कृत के प्रचार में विशेष रूप से तत्पर हो जाना चाहिये।

द० अफ्रीका की सरकार की निन्दनीय नीति और सत्याग्रह :—

हम दक्षिण अफ्रीका के प्रधान मन्त्री डा० मलान को मलिन नीति के सम्बन्ध में इन स्तम्भों में कई बार अपने विचार प्रकट कर चुके हैं किन्तु यह दुःख की बात है कि उसमें न केवल कोई परिवर्तन नहीं हुआ प्रत्युत व उत्तरोत्तर खराब

होती गई है। वर्ण विद्वेष वा रंग भेद के कारण घृणा सूचक तथा पार्थक्यवर्धक विधान वहां बढ़ते जा रहे हैं जिनके विरुद्ध वहां के भारतीयों और अफ्रीकनों में घोर असन्तोष है। वैधानिक उपायों से अपने यत्न में सफलता न देख कर उन्होंने ६ अप्रेल से इन निन्दनीय नियमों के विरुद्ध सत्याग्रह का निश्चय किया है। डा० मलान की धमकियों की पर्वाह न करते हुए अफ्रीकन नैशनल कांग्रेस के प्रधान डा० मौरोका और भारतीय कांग्रेस के प्रधान डा० दादू आदि ने इस सत्याग्रह की स्पष्ट घोषणा कर दी है। हम इस समुचित सत्याग्रह में पूर्ण सफलता चाहते हैं और आशा करते हैं कि डा० मलान तथा उनके साथी अब भी अपनी निन्दनीय नीति में परिवर्तन करके यश के भागी बनेंगे। यह आश्चर्य और दुःख की बात है कि संयुक्त राष्ट्र संघ के आदेशों की भी डा० मलान की सरकार उपेक्षा कर रही है और कई वर्षों से यह मामला लटकता चला आ रहा है। पुनः भारत पाकिस्तान और दक्षिण अफ्रीका के प्रतिनिधियों के बीच एक गोलमेज सम्मेलन का निश्चय किया गया है किन्तु अफ्रीका की सरकार के दुराग्रह को देखते हुए हमें उसमें सफलता की बहुत कम आशा है। यह प्रसन्नता की बात है कि इङ्गलैंड के भू० पू० प्रधान मन्त्री श्री ऐटली की बहिन कुमारी मेरी ऐटली ने अन्य अनेक उदार हृदय व्यक्तियों के सहयोग से एक Racial Unity (जातीय एकता) नामक संस्था को गत ४ फरवरी को स्थापित करके उसके द्वारा जनता में से इस भेद भावना को दूर करने का निश्चय किया है। यदि इस प्रकार की संस्थाओं के प्रयत्न से भी द० अफ्रीका की सरकार के अधिकारियों को सद्बुद्धि आजाए तो बड़े हर्ष की बात होगी।

पाकिस्तान में फिल्मों द्वारा जहाद का अपप्रचार :—

हमें यह जान कर बड़ा खेद हुआ है कि पाकिस्तान में जोशे जहाद नामक एक फिल्म लाहौर इत्यादि में दिखाई जा रही है जिस में भारत के विरुद्ध युद्ध के लिये पाकिस्तानियों को भड़काया जाता है। उसमें एक 'मुजाहिद' लोगों को जहाद (धर्मयुद्ध) का आमन्त्रण देता है क्योंकि उसके अनुसार जिन लोगों पर हम मुसल्मानों ने ६०० से अधिक वर्षों तक शासन किया है और जिनसे हमने यह देश छीना था वे हमारी सीमा पर खड़े हैं।

कहा जाता है कि इस फिल्म में सरदार अब्दुर रब निश्तर खां, अबुलकयूम खां, मलिक फीरोज खान नून और मियां मुमताज दौलताना जैसे प्रभावशाली पाकिस्तानी नेताओं के सन्देश भी हैं जिन में भारत को 'भयङ्कर परिणामों' की घुड़की दी गई है। दौलताना ने अपने सन्देश में 'भारत की अशुभ आंखें निकाल लेने और उन्हें कुचल डालने की धमकी दी है। फिल्म में मुजाहिद पाकिस्तानियों को भड़काते हुए कहता है कि न केवल रावी चनाब बल्कि गङ्गा और यमुना भी हमारी (मुसलमानों की) है क्यों कि हम कासिम, महमूद गजनवी और मुहम्मद गौरी के वारिस हैं जिन्होंने दुश्मन को जीता और कुचला था।"

भारत सरकार ने इस के विरुद्ध पाकिस्तान सरकार को त्र लिखते हुए इसे भारत के विरुद्ध

युद्ध के लिये भड़काने वाली और प्रधान मन्त्रियों के समझौते को भंग करने वाली बतलाया है और मांग की है कि पाकिस्तान सरकार फिल्म निर्माताओं और उसके प्रदर्शन के विरुद्ध कड़ी कार्यवाही करे।

हम पाकिस्तानियों के इस प्रकार के प्रदर्शन की घोर निन्दा करते हैं। इसका एक मात्र परिणाम दोनो देशों के पारस्परिक सम्बन्ध के बिगड़ने के अतिरिक्त और कुछ नहीं हो सकता। एक ओर तो समझौते किये जाएं और दूसरी ओर ऐसा विषवमन करने वालों को प्रोत्साहन दिया जाए इससे अधिक निन्दनीय बात और क्या हो सकती है? भारतीय सरकार ने विरोध पत्र लिख कर अच्छा ही किया है किन्तु उसे इन विषयों में और अधिक उग्रता से काम लेना चाहिये।

भारतीय फिल्मों में उग्र सुधार की आवश्यकता :—

जहां एक ओर पाकिस्तान में फिल्मों द्वारा हिन्दुओं के प्रति घृणा की भावना को जागृत करते हुए मतान्ध मुसलमानों को भारत के साथ युद्ध के लिये भड़काया जा रहा है वहां भारत में प्रायः जिस प्रकार के चलचित्र (सिनेमा) दिखाये जाते और रेडियो आदि पर गीत गाये जाते हैं वे अश्लील, कामुकता वर्धक और सदाचार नाशक हैं जिनके विरुद्ध प्रबल आन्दोलन की आवश्यकता है। इन दिनों अन्तर्राष्ट्रीय चलचित्र पर्व बम्बई, देहली, मद्रास आदि में मनाया जा रहा है। भारत के माननीय प्रधान मन्त्री श्री जवाहरलाल ज़ी ने उसके लिये सन्देश भेजते हुए ठीक ही कहा है कि इन में बहुत सुधार की आवश्यकता है जिससे इन्हें नवभारत के निर्माण में सहायक बनाया जा सके। उन्होंने इस बात का विशेष निर्देश किया कि अपराधितापूर्ण मनोवृत्ति का प्रदर्शन करके उसे प्रोत्साहित न करना चाहिये किन्तु जीवन में कला और सर्वविध सौन्दर्य को प्रोत्साहन मिलना चाहिये। इत्यादि

हमें तो आश्चर्य है कि हमारे प्रधान मन्त्री जी ने वर्तमान फिल्मों के सदाचार विरोधी तथा अनाचारवर्धक अंश का स्पष्ट निर्देश अपने सन्देश में क्यों नहीं किया? इन पंक्तियों को लिखते हुए भारत सरकार द्वारा नियुक्त फिल्म जांच समिति की रिपोर्ट जो सन् १९५१ में प्रकाशित हुई है हमारे सम्मुख है। इस में भी यद्यपि बहुत स्पष्ट शब्दों में वर्तमान सिनेमाओं की इन हानिकारक प्रवृत्तियों का विस्तृत वर्णन नहीं तथापि इनके युवकों के चरित्र पर बुरे प्रभाव को स्वीकार किया गया है। पृ० ४४ पर लिखा है कि Many educationists who appeared before us, expressed them-selves deeply concerned with what they considered deplorable and subversive changes brought about by the cinema in the youth of to day.

(Repart of the film enquiry committee P. 44)

अर्थात् बहुत से शिक्षा वैज्ञानिक जो हमारे सम्मुख साक्षी देने के लिये उपस्थित हुए इस बात से बहुत चिन्तित थे कि सिनेमाओं के द्वारा आज कल के युवकों में कई बड़े शोचनीय विनाशकारी

परिवर्तन हो रहे हैं।

इसी रिपोर्ट के पृ० ६२ पर "Effects of films on children" (बच्चों पर फिल्मों का प्रभाव) इस शीर्षक के नीचे जांच समिति के सदस्यों ने स्वीकार किया है कि

"We are afraid that on the whole, the influence of music and dancing of the average Indian film on children's taste is not healthy or of good quality. Children learn by imitation, and the gestures and language of love scenes, daredevily, roguery and crimes leave impressions which take some time and more powerful and intimate influences to eradicate" (P. 62)

अर्थात् हमें भय है कि सम्पूर्णतया सामान्य भारतीय फिल्म के गीत और नृत्य का बच्चों की रुचि पर प्रभाव अच्छा नहीं होता। बच्चे अनुकरण से सीखते हैं और प्रेम के दृश्यों की चेष्टाएं और भाषा, शैतानी साहस, दुष्टता और अपराध बच्चों पर ऐसा प्रभाव छोड़ देते हैं जिन के दूर करने के लिये अधिक समय तथा अधिक प्रबल तथा घनिष्ठ प्रभाव की आवश्यकता होती है। इसलिये समिति के सदस्यों ने निर्देश दिया है कि किसी चलचित्र को 'यू' प्रमाणपत्र देते हुए इस कार्य के लिये अधिकृत मण्डलों को इस बात का विशेष ध्यान रखना चाहिये कि बच्चों पर इसका क्या प्रभाव पड़ेगा। यदि उनके अन्दर कोई अश्लील और अशिष्ट अंश हों तो उन्हें निकलवा देना चाहिये पर साथ ही 'ए' प्रमाणपत्र देते हुए भी (जिसे १८ से अधिक आयु के व्यक्ति ही देख सकते हैं) जनता पर यह प्रभाव न उत्पन्न करना चाहिये कि उन में अश्लीलता का समावेश हो सकता है।

खेद है कि जांच समिति के इन निर्देशों की ओर भी प्रायः कोई ध्यान नहीं दिया जाता और ऐसे अश्लील गीतादि सिनेमाओं में गाये जाते और अन्य इस प्रकार के दृश्य दिखाये जाते तथा सार्वजनिक स्थानों और चौराहों पर आलिङ्गन चुम्बनादि का ऐसा अनुचित प्रदर्शन किया जाता है जिनका उल्लेख करते हुए भी हमें लज्जा आती है! इन विषयों में तत्काल सुधार होना चाहिये। अश्लील और अशिष्ट गीतों, चित्रों और दृश्यों के प्रदर्शन के विरुद्ध प्रबल आन्दोलन करके उन्हें दूर करवा देना चाहिये अन्यथा ये चलचित्र बच्चों और युवकों के लिये अभिशाप ही सिद्ध होंगे तथा ये अधिकतर उनके नैतिक पतन के लिये उत्तरदायी होंगे।

महायज्ञ विषयक सार्वदेशिक सभा का निश्चयः—

सार्वदेशिक आर्यप्रतिनिधि सभा के गत अन्तरंग सभाधिवेशन में प्रचलित महायज्ञों के नियमन के विषय में निम्न निश्चय किया गया:

"विज्ञापन का विषय संख्या २४ महायज्ञों की प्रचलित परिपाटी को नियमित करने का विषय उपस्थित हो कर निश्चय हुआ कि सार्वजनिक व्यय पर होने वाले स्थानीय, प्रदेशीय तथा सार्वदेशिक महायज्ञ क्रमशः स्थानीय आर्यसमाज, प्रदेशीय आर्यप्रतिनिधि सभा तथा सार्वदेशिक सभा

की अनुमति से होने चाहियें। यदि बिना स्वीकृति प्राप्त किये किसी महायज्ञ के लिये धन संग्रह किया जाए तो ऐसे यज्ञों को रोकने के लिये क्रमशः आर्यसमाज, प्रदेशीय सभा और सार्वदेशिक सभा यथोचित कार्यवाही करें।"

हम विशुद्ध रूप में और पवित्र भावना के साथ महायज्ञों के (जिनमें ब्रह्मपरायण यज्ञ भी सम्मिलित हैं) अनुष्ठान को वैदिक धर्म के प्रचार का एक अत्युत्तम साधन समझते हैं। यदि वेदज्ञ सुयोग्य विद्वानों द्वारा इन यज्ञों को करवाया जाए और वैदिक प्रवचनों की उचित व्यवस्था हो तो जहां उन विद्वानों को वैदिक स्वाध्याय का उत्तम अवसर प्राप्त होगा वहां साधारण जनता को भी उनके प्रवचन से लाभ उठाने का सौभाग्य प्राप्त होगा, जलवायु शुद्धि इत्यादि विषयक लाभ तो होंगे ही किन्तु यतः ऐसा देखने में आया है कि कई व्यक्ति यज्ञ के नाम पर सार्वजनिक रूप से धन संग्रह कर के उसका दुरुपयोग करते हैं और उसका हिसाब किताब भी जनता के सम्मुख नहीं आने पाता, इस प्रकार लोकोपकारक यज्ञ को एक दुकानदारी का रूप दे दिया जाता है इस लिये प्रतिष्ठित सभा को इन को नियन्त्रित करने के लिये उपर्युक्त निश्चय करना पड़ा जिसको हम सर्वथा उचित समझते हैं। महर्षि दयानन्द महायज्ञों के बड़े प्रबल समर्थक थे ये उनके ग्रन्थों और पत्रों से स्पष्ट है। सत्यार्थ प्रकाश के तृतीय समुल्लास में महर्षि ने एक स्थान पर लिखा है कि

'इसलिये आर्यवर शिरोमणि महाशय ऋषि, महर्षि, राजे महाराजे लोग बहुत सा होम करते और कराते थे, जब तक इस होम करने का प्रचार रहा तब तक आर्यावर्त देश रोग से रहित और सुखों से पूरित था, अब भी प्रचार हो तो वैसा ही हो जाए।" संस्कार विधि के यज्ञकुण्ड परिमाण प्रकरण में "जो लक्ष आहुति करनी हो तो चार २ हाथ का चारों ओर समचौरस चौकोर कुण्ड ऊपर और उतना ही गहरा और चतुर्थांश नीचे रहे। २ लक्ष आहुतियों में छः हस्त परिमाण का चौड़ा और समचौरस कुण्ड बनाना इत्यादि" ऐसा महर्षि का लेख है।

ऐसे ही उनके वेद भाष्यादि तथा पत्रों से सैंकड़ों उद्धरण दिये जा सकते हैं किन्तु वैसा करने की यहां आवश्यकता नहीं। यहां हम इतना ही लिखना चाहते है कि जहां महायज्ञों को स्वार्थी व्यक्तियों द्वारा दुरुपयोग से बचाने के लिये नियंत्रण में रखना आवश्यक समझ कर उपर्युक्त निश्चय आवश्यक समझा गया है वहां स्थानीय समाजों तथा प्रतिनिधि सभाओं को इसका विपरीत अर्थ लेकर महायज्ञों के अनुष्ठान पर ऐसे प्रतिबन्ध न लगा देने चाहियें जिनसे विद्वान् तथा जनता उन के लाभों से वंचित हो जाएं।

आर्यपर्वों का शुद्ध रूप में आचरण :—

पर्व पारिवारिक, सामाजिक और राष्ट्रीय उन्नति में सहायक हो सकते हैं यदि उनका शुद्ध भावना के साथ उत्साह पूर्वक अनुष्ठान किया जाएं यह खेद है कि इन में से बहुत से पर्व बहुत ही विकृत रूप में प्रचलित हो गये हैं और इसलिये शिक्षित विचारशील जनता की दृष्टि में उपहासास्पद बन गये हैं। इन में से एक होली का पर्व भी है जो अत्यधिक विकृत रूप ग्रहण कर चुका है। आर्यों को जनता में आन्दोलन करके उसके विकृत

अशिष्ट रूप का जिसमें गन्दी गालियां बकना, चलते फिरतों पर रंग डालना तथा उनके वस्त्र खराब करना, जूतों के हार डालना इत्यादि सम्मिलित हैं दूर कर देना चाहिये। वर्तमान विकृत रूप से भी स्पष्ट है कि प्राचीन काल में इस अवसर पर बड़े बड़े यज्ञ हुआ करते थे क्यों कि ऋतु सन्धि पर बीमारियों के फैलने की अधिक संभावना होती है। महायज्ञों की उचित व्यवस्था ऐसे अवसर पर करना लाभदायक सिद्ध होगा पर अब तो ऐसी शोचनीय अवस्था है कि किसी भले आदमी का अच्छे वस्त्र पहन कर घर से बाहर निकलना ही इन दिनों कठिन हो जाता है। परस्पर प्रेम वृद्धि का इसे साधन बनाना चाहिये। वैर विरोध को भुला कर फिर से प्रेम सम्बन्ध स्थापित करना चाहिये। प्रीतिभोजादि की व्यवस्था की जा सके तो वह और भी उत्तम होगा। इसी प्रकार अन्य पर्वों के विकृतरूप को दूर करके शुद्धरूप में उत्साह पूर्वक अनुष्ठान की ओर आर्य ध्यान दें तो पारिवारिक, सामाजिक और राष्ट्रिय दृष्टि से बड़ा लाभ हो सकता है॥

श्री मुरारजी देसाई का सन्तति निग्रह पर उत्तम वक्तव्यः—

बम्बई के गृह मन्त्री श्री मुरार जी देसाई (जिनके निर्वाचन में परास्त होने का दुःख सभी कांग्रेस के प्रेमियों को है) ने अहमदाबाद में १६ फरवरी को शिशु स्वास्थ्य सदन तथा सन्तति नियमन केन्द्र का उद्घाटन करते हुए यह विचार प्रकट किया कि "मैं सन्तति निग्रह के वैज्ञानिक उपायों के अवलम्बन के विरुद्ध हूँ" क्यों कि उन का परिणाम नैतिक पतन और विनाश है। आप मुझे एक प्रतिक्रियागामी तथा हठी आदमी कह सकते हैं किन्तु मैं यह घोषित करने में संकोच नहीं करता कि मानवीय उन्नति आत्म संयम और अनुशासन के द्वारा ही संभव है। सन्तति निग्रह के तथाकथित वैज्ञानिक उपाय मनुष्यों को सदाचार की दृष्टि से पतित कर रहे हैं और हम उनका अन्ध अनुसरण न करना चाहिये। महात्मा गांधी ने सन्तति निग्रह के लिये कृत्रिम साधनों के अवलम्बन के विषय में जो कुछ कहा था वह अब भी ठीक है। वह विज्ञान, विज्ञान नहीं जो मनुष्य की कामवासना की तृप्ति को प्रोत्साहित करता है। यह बात हमारे प्राचीन तत्त्व ज्ञान वा फ़िलासफी के विरुद्ध है जो त्याग और गुण सम्पादन पर बल देती है।"

हम इससे सर्वथा सहमत हैं। सन्तति नियमन की आवश्यकता से सर्वथा इन्कार नहीं किया जा सकता। स्वयं वेदों में जहां अधिक से अधिक १० सन्तान की आज्ञा है यदि माता पिता सर्वथा स्वस्थ और सन्तान का भली भांति पोषण करने में समथ हों वहां यह भी कहा है कि (बहु प्रजा निॠर्तिमाविवेश। (ऋ. १।१४६।३२) अर्थात् बहुत सन्तान वाले को बड़ा क्लेश उठाना पड़ता है। जिस बात पर श्री मुरार जी ने आक्षेप किया है वह आत्म संयम पूर्वक सन्तति नियमन पर नहीं किन्तु कृत्रिम साधनों से सन्तति निग्रह पर है जिस का अधिकतर परिणाम यह होता है कि स्वच्छन्द भोग की प्रवृत्ति को प्रोत्साहन मिलता और नैतिक पतन होता है। इस नैतिक दृष्टिकोण को हम अत्यन्त महत्त्वपूर्ण समझते हैं। कृत्रिम

साधनों से सन्ततिनिग्रह की प्रबल प्रचारिका मिसेज़ सैंगर के सम्मुख भी कई वर्ष हुए बंगलौर के नैशनल हाई स्कूल में हमने यही आक्षेप रक्खा था जिसका उनके पास कोई सन्तोषजनक उत्तर न था।

अनेक सुप्रसिद्ध भारतीय तथा पाश्चात्य डाक्टरों ने जिन में डा. एस् बी. लाहा सिविल सर्जन (रि.) डा. मैकन (mccann) डा. हैक्टर कौमरेन् F.R C.P डा. मेरी शार्लीव डा. सर रौबर्ट आर्म स्टौंग जोन्स M D. डा. मेरी स्टोप्स आदि का नाम विशेष उल्लेखनीय है सन्तति-निग्रह के कृत्रिम उपकरणादि साधनों को स्वास्थ्य के लिये अत्यन्त हानिकारक बताया है। डा लाहा की Purity, marriage and Birth Control by .Dr. B. Laha L. M. S. तथा मैकन की Contraception,Common Cause of Disease by Dr. mccann आदि पुस्तकें इस विषय में विशेष द्रष्टव्य हैं। डा. सर रौबर्ट आर्म स्ट्रौंग ने तो यहां तक अपने रोगियों के अनुभव के आधार पर लिखा है कि Birth Control leads to lunacy in women. I know from my own practice, it is a fact. अर्थात् सन्ततिनिग्रह स्त्रियों में पागल पन तक उत्पन्न कर देता है यह मैं अपनी प्रैक्टिस के आधार पर कह सकता हूँ। यह एक सचाई है। आर्य भाषा में हमारे सहयोगी श्री रघुनाथप्रसाद जी पाठक की 'सन्ततिनिग्रह' (आर्य साहित्यसदन देहली शाहदरा द्वारा प्रकाशित मू० १) नामक पुस्तक पठनीय है जिस में कृत्रिम साधनों से सन्ततिनिग्रह की हानियों का डाक्टरी प्रमाणों से खण्डन करते हुए ब्रह्मचर्य और आत्म संयम पर बल दिया गया है। क्योंकि इस विषय को आज कल सर्वत्र चर्चा है और हमारी सरकार भी अनेक स्थानों पर सन्ततिनिग्रह केन्द्र खुलवा रही है अतः इस विषय पर कुछ प्रकाश डालना हम ने इस टिप्पणी द्वारा उचित समझा है।

देहली में भारतीय संस्कृति सम्मेलन—

हमें यह जानकर बड़ी प्रसन्नता हुई है कि १, २, ३, मार्च को भारत की राजधानी में सुप्रसिद्ध विद्वान् भगवानदास जी डी०लिट् (काशी) जैसे विद्यावयोवृद्ध जगद्विख्यात विचारक की अध्यक्षता में भारतीय संस्कृति सम्मेलन का चतुर्थ अधिवेशन होने जा रहा है। देश के स्वतन्त्र होने पर भारतीय संस्कृति के विशुद्ध स्वरूप को समझना और उसे क्रियात्मक रूप देना प्रत्येक देशवासी का कर्तव्य हो गया है किन्तु यह दुःख की बात है कि उस के विशुद्ध रूप को बहुत कम लोग जानते हैं और अधिकतर मनघड़न्त हानि-कारक बातें उसके नाम से कह दी जाती हैं। माननीय श्री जवाहर लाल जी नेहरू तथा मौ० अब्दुल कलाम आज़ाद आदि कई अन्य राष्ट्रीय नेता समय २ पर एक मिश्रित संस्कृति की बात जनता के सामने रखते रहते हैं जिससे जनता और भी भ्रम में पड़ जाती है। अतः इस बात की विशेष आवश्यकता है कि भारतीय संस्कृति के वास्तविक स्वरूप पर विद्वान् लोग गम्भीरता से विचार करके उसी का प्रचार करें जिससे सब को लाभ पहुँच सके। हमारा विश्वास है कि शुद्ध भारतीय संस्कृति जिसका आधार वेदों पर है न केवल इस देश में प्रत्युत सारे जगत् में शान्ति स्थापित कर सकती है। हम आशा करते हैं कि डा० भगवान्दास जी की अध्यक्षता में भारतीय संस्कृति सम्मेलन इस महत्वपूर्ण विषय को ऐसे स्पष्ट रूप से निर्धारित कर देगा जिससे फिर सन्देह का कारण न रहे। हम इस सम्मेलन की पूर्ण सफलता के लिये भगवान् से प्रार्थना करते हैं।

२१—२—५२ धर्मदेव वि० वा०

क्रम सं०	नाम पुस्तक	लेखक वा प्रकाशक	मूल्य
(१)	यम पितृ परिचय	(पं० प्रियरत्न आर्ष)	२)
(२)	ऋग्वेद में देवृकामा	,,	-)
(३)	अथर्ववेदीय चिकित्सा शास्त्र	,,	२)
(४)	आर्य डाइरेक्टरी	(सार्व० सभा)	१।)
(५)	सार्वदेशिक सभा का सत्ताईस वर्षीय कार्य विवरण	अ० २) ,, स० २॥)	
(६)	स्त्रियों का वेदाध्ययन अधिकार	(पं० धर्मदेव जी वि० वा०)	१।)
(७)	आर्यसमाज के महाधन	(स्वा० स्वतन्त्रानन्द जी)	२॥
(८)	श्री नारायण अभिनन्दन ग्रन्थ	(सार्व० सभा) स०	५)
(९)	आत्म कथा	(श्री नारायण स्वामी जी)	२।)
(१०)	श्री नारायण स्वामी जी की सं० जीवनी	(पं० रघुनाथ प्रसाद जी पाठक)	-)
(११)	आर्य वीर दल बौद्धिक शिक्षण	(पं० इन्द्रजी)	।=)
(१२)	आर्य विवाह ऐक्ट की व्याख्या	(अनुवादक पं० रघुनाथ प्रसाद जी पाठक)	।)
(१३)	आर्य मन्दिर चित्र	(सार्व० सभा)	।)
(१४)	वैदिक ज्योतिष शास्त्र	(पं० प्रियरत्नजी आर्ष)	१।)
(१५)	वैदिक राष्ट्रीयता	(स्वा० ब्रह्ममुनि जी)	।)
(१६)	आर्यसमाज के नियमोपनियम	(सार्व० सभा)	-)॥
(१७)	हमारी राष्ट्रभाषा	(पं० धर्मदेवजी वि० वा०)	।-)
(१८)	स्वराज्य दर्शन	(पं० लक्ष्मीदत्तजी दीक्षित)	स० १)
(१९)	राजधर्म (राज संस्करण)	(महर्षि दयानन्द सरस्वती)	स० २॥)
	,, (साधारण संस्करण)		अ० ॥)
(२०)	योग रहस्य	(श्री नारायण स्वामी जी)	१।)
(२१)	मृत्यु और परलोक		१।)
(२२)	विद्यार्थी जीवन रहस्य	,,	॥=)
(२३)	प्राणायाम विधि	,,	=)
(२४)	उपनिषदें:—	,,	
	ईश ।=) केन ॥) कठ ॥) प्रश्न ।=)		
	मुण्डक ।=) माण्डूक्य ।) ऐतरेय ।) तैत्तिरीय १)		
(२५)	बृहदारण्यकोपनिषद्		४)
(२६)	मातृत्व की ओर	(पं० रघुनाथप्रसाद जी पाठक)	१।)
(२७)	आर्य जीवन गृहस्थ धर्म	,,	॥=)
(२८)	कथामाला	,,	॥।)
(२९)	सन्तति निग्रह	,,	१।)
(३०)	नया संसार	(पं० रघुनाथ प्रसाद पाठक)	=)
(३१)	आर्यसमाज का परिचय	,,	=)
(३२)	आर्य शब्द का महत्व	,,	-)॥
(३३)	वैदिक संस्कृति	(पं० गङ्गाप्रसाद उपाध्याय)	२॥)
(३४)	इजहारे हकीकत (उर्दू)	(ला० ज्ञानचन्द जी आर्य)	॥।=)
(३५)	वर्ण व्यवस्था का वैदिक स्वरूप	,,	१॥)
(३६)	आर्यसमाज और उसकी आवश्यकता		१)
(३७)	भूमिका प्रकाश	(पं० द्विजेन्द्रनाथजी शास्त्री)	१॥)
(३८)	एशिया का वैनिस	(स्वा० सदानन्द जी)	॥)
(३९)	बहिनों की बातें	(पं० सिद्धगोपाल जी)	१)
(४०)	वेदों में दो बड़ी वैज्ञानिक शक्तियां	(पं० प्रियरत्न जी आर्ष)	१)
(४१)	सिंधी सत्यार्थ प्रकाश		२
(४२)	सत्यार्थ प्रकाश की सार्वभौमता		-)
(४३)	,, ,, और उस की रक्षा में		-)
(४४)	,, ,, आन्दोलन का इतिहास		।=)
(४५)	शंकर भाष्यालोचन	पं० गंगाप्रसाद जी उ०	५)
(४६)	जीवात्मा	,,	४(
(४७)	वैदिक मणिमाला	,,	।=)
(४८)	हम क्या खायें	,,	१।)
(४९)	आस्तिकवाद	,,	३)
(५०)	भगवत कथा	,,	१
(५१)	सर्व दर्शन संग्रह	,,	१)
(५२)	मनुस्मृति	,,	५)
(५३)	आर्य स्मृति	,,	।॥)
(५४)	कम्यूनिजम	,,	१॥)
(५५)	आर्योदयकाव्यम् पूर्वार्द्ध उत्तरार्द्ध	१॥)	१॥)
(५६)	हमारे घर	(श्री निरंजनलाल जी गोतम)	॥=)
(५७)	भारत में जाति भेद	,,	१)
(५८)	दयानन्द सिद्धान्त भास्कर	(श्री कृष्णचन्द्र जी विरमानी)	२।)
(५९)	भजन भास्कर	(संग्रहकर्त्ता श्री पं० हरीशंकर जी शर्मा)	१।।।)
(६०)	विमान शास्त्र	(पं० प्रियरत्न जी आर्ष)	।=)॥
(६१)	सनातनधर्म व आर्य समाज	(पं० गङ्गाप्रसाद उपाध्याय)	।=)
(६२)	मुक्ति से पुनरावृत्ति	,, ,,	।=)
(६३)	वैदिक ईश वन्दना	(स्वा० ब्रह्ममुनि जी)	।=)॥
(६४)	वैदिक योगामृत	,,	॥=)
(६५)	कर्त्तव्य दर्पण सजिल्द	(श्री नारायण स्वामी)	१॥)
(६६)	आर्यवीरदल शिक्षणशिविर	(ओमप्रकाश पुरुषार्थी)	।=)
(६७)	,, ,, ,, लेखमाला	,,	१॥)
(६८)	,, ,, ,, गीतांजलि	(श्री रुद्रदेव शास्त्री)	।=)
(६९)	,, ,, भूमिका		=)

मिलने का पताः—सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, बलिदान भवन, दिल्ली।

English Publications of Sarvadeshik Sabha.

1. Agnihotra (Bound) (Dr. Satya Prakash D. Sc.) 2/8/-
2. Kenopanishat (Translation by Pt. Ganga Prasad ji, M. A.) -/4/-
3. The Principles & Bye-laws of the Aryasamaj -/1/6
4. Aryasamaj & International Aryan League (By Pt. Ganga Prasad ji Upadhyaya M. A.)-/1/-
5. Voice of Arya Varta (T. L. Vasvani) -/2/-
6. Truth & Vedas (Rai Sahib Thakur Datt Dhawan) -/6/-
7. Truth Bed Rocks of Aryan Culture (Rai Sahib Thakur Datt Dhawan) -/8/-
8. Vedic Teachings & Ideals (Dhareshwar B. A. Atma) 1/4/-
9. Vedic Culture (Pt. Ganga Prasad Upadhyaya M. A.) 3/8/-
10. Aryasamaj & Theosophical Society (B. Shyam Sundarlal B. A. LL. B.) -/3/-
11. Glimpses of Dayanand (by Chamupati M. A.) 1/8/-
12. A Case of Satyarth Prakash in Sind (S. Chandra) 1/8/-
13. In Defence of Satyarth Prakash (Prof: Sudhakar M. A.) -/2/-
14. We and our Critics -/1/6
15. Universality of Satyarth Prakash -/1/-
16. Rishi Dayanand & Satyarth Prakash (Pt. Dharma Deva ji Vidyavachaspati) -/8/-
17. Landmarks of Swami Dayanand (Pt. Ganga Prasadji Upadhyaya M. A.) 1/-/-
18. Scope & Mission of Aryasamaj (Pt. Ganga Prasad ji Upadhyaya M. A.) 1/4/-
19. Superstition " 1/4/-
20. I & my God " 1/4/-
21. Swami Dayanand's contribution to Hindu Solidarity 1 4/-
22. Worship " 1/4/-
23. Marriage & married life 1/4/-
24. Political Science (By Rishi-Dayanand) Royal Edition 2/8/- Ordinary Edition -/8/-
25. The Light of Truth 6/-/-
26. Life After death (Pt. Ganga Prasad Upadhyaya M. A.) 1/4/-
27. Elementary Teachings of Hindusim " -/8/-
28. Kathopanishad (By Pt. Ganga Parshad Rtd. Chief Judge) 1/4/-

Can be had from :—

Sarvadeshik Arya Pratinidhi Sabha, Delhi.

सार्वदेशिक

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा देहली का उच्चकोटि का मासिक मुख पत्र वार्षिक शुल्क ५)

सार्वदेशिक विज्ञापन दर—

स्थान	एक मास	तीन मास	छः मास	एक वर्ष
पूरा पृष्ठ	१५ रु०	४० रु०	६० रु०	१०० रु०
आधा पृष्ठ	१० रु०	२५ रु०	४० रु०	६० रु०
चौथाई पृष्ठ	६ रु०	१५ रु०	२५ रु०	४० रु०
एक पृष्ठ का आठवां	४ रु०	१० रु०	१५ रु०	२० रु०

व्यवस्थापक—"सार्वदेशिक" पत्र देहली

सार्वदेशिक सभा [illegible]

क्रम सं० नाम पुस्तक लेखक व: प्रकाशक मूल्य

(१) यम पितृ परिचय (पं० प्रियरत्न आर्ष) २)
(२) ऋग्वेद में देवृकामा ,, -)
(३) अथर्ववेदीय चिकित्सा शास्त्र ,, २)
(४) आर्य डाइरेक्टरी (सार्व० सभा) १)
(५) सार्वदेशिक सभा का सत्ताईस वर्षीय कार्य विवरण अ० २) ,, स० २॥)
(६) स्त्रियों का वेदाध्ययन अधिकार (पं० धर्मदेव जी वि० वा०) १)
(७) आर्यसमाज के महाधन (स्वा० स्वतन्त्रानन्द जी) २॥)
(८) श्री नारायण अभिनन्दन ग्रन्थ (सार्व० सभा) स० ५)
(९) आत्म कथा (श्री नारायण स्वामी जी) २।)
(१०) श्री नारायण स्वामी जी की सं० जीवनी (पं० रघुनाथ प्रसाद जी पाठक) -)
(११) आर्य वीर दल बौद्धिक शिक्षण (पं० इन्द्रजी) ।=)
(१२) आर्य विवाह ऐक्ट की व्याख्या (अनुवादक पं० रघुनाथ प्रसाद जी पाठक) ।)
(१३) आर्य मन्दिर चित्र (सार्व० सभा) ।)
(१४) वैदिक ज्योतिष शास्त्र (पं० प्रियरत्नजी आर्ष) १।)
(१५) वैदिक राष्ट्रीयता (स्वा० ब्रह्ममुनि जी) ।)
(१६) आर्यसमाज के नियमोपनियम (सार्व० सभा) -)॥
(१७) हमारी राष्ट्रभाषा (पं० धर्मदेवजी वि० वा०) ।-)
(१८) स्वराज्य दर्शन (पं० लक्ष्मीदत्तजी दीक्षित) स० १)
(१९) राजधर्म (राज संस्करण) (महर्षि दयानन्द सरस्वती) स० २॥)
,, (साधारण संस्करण) अ० ॥)
(२०) योग रहस्य (श्री नारायण स्वामी जी) १)
(२१) मृत्यु और परलोक १)
(२२) विद्यार्थी जीवन रहस्य ,, ॥=)
(२३) प्राणायाम विधि ,, =)
(२४) उपनिषदें:— ,,
ईश ।=) केन ॥) कठ ॥) प्रश्न ।=)
मुण्डक ।=) माण्डूक्य ।) ऐतरेय ।) तैत्तिरीय १)
(२५) बृहदारण्यकोपनिषद् ४)
(२६) मातृत्व की ओर (पं० रघुनाथप्रसाद जी पाठक) १)
(२७) आर्य जीवन गृहस्थ धर्म ,, ॥=)
(२८) कथामाला ,, ॥)
(२९) सन्तति निग्रह ,, १)
(३०) नया संसार (पं० रघुनाथ प्रसाद पाठक) =)
(३१) आर्यसमाज का परिचय ,, =)
(३२) आर्य शब्द का महत्व ,, -)॥
(३३) वैदिक संस्कृति (पं० गङ्गाप्रसाद उपाध्याय) २॥)
(३४) इजहारे हकीकत (उर्दू) (ला० ज्ञानचन्द जी आर्य) ॥=)
(३५) वर्ण व्यवस्था का वैदिक स्वरूप ,, १॥)
(३६) आर्यसमाज और उसकी आवश्यकता १)
(३७) भूमिका प्रकाश (पं० द्विजेन्द्रनाथजी शास्त्री) १॥)
(३८) एशिया का वैनिस (स्वा० सदानन्द जी) ॥)
(३९) बहिनों की बातें (पं० सिद्धगोपाल जी) १)
(४०) वेदों में दो बड़ी वैज्ञानिक शक्तियां (पं० प्रियरत्न जी आर्ष) १)
(४१) सिंधी सत्यार्थ प्रकाश २
(४२) सत्यार्थ प्रकाश की सार्वभौमता -)
(४३) ,, ,, और उस की रक्षा में -)
(४४) ,, ,, आन्दोलन का इतिहास ।=)
(४५) शंकर भाष्यालोचन पं० गंगाप्रसाद जी उ० ५)
(४६) जीवात्मा , ४)
(४७) वैदिक मणिमाला ,, ।=)
(४८) हम क्या खायें ,, १।)
(४९) आस्तिकवाद ,, ३)
(५०) भगवत कथा ,, १
(५१) सर्व दर्शन संग्रह ,, १)
(५२) मनुस्मृति ,, ५)
(५३) आर्य स्मृति ,, १॥)
(५४) कम्यूनिजम ,, १॥)
(५५) आर्योदयकाव्यम् पूर्वार्द्ध उत्तरार्द्ध १॥) १॥)
(५६) हमारे घर (श्री निरंजनलाल जी गौतम ॥=)
(५७) भारत में जाति भेद ,, १)
(५८) दयानन्द सिद्धान्त भास्कर (श्री कृष्णचन्द्र जी विरमानी) २।)
(५९) भजन भास्कर (संग्रहकर्त्ता श्री पं० हरीशंकर जी शर्मा १॥)
(६०) विमान शास्त्र (पं० प्रियरत्न जी आर्ष ।=)॥
(६१) सनातनधर्म व आर्य समाज (पं० गङ्गाप्रसाद उपाध्याय) ।=)
(६२) मुक्ति से पुनरावृत्ति ,, ,, ।=)
(६३) वैदिक ईश वन्दना (स्वा० ब्रह्ममुनि जी) ।=)॥
(६४) वैदिक योगामृत ,, ॥=)
(६५) कर्त्तव्य दर्पण सजिल्द (श्री नारायण स्वामी) १॥)
(६६) आर्यवीरदल शिक्षणशिविर (ओमप्रकाश पुरुषार्थी) ।=)
(६७) ,, ,, ,, लेखमाला ,, २।)
(६८) , ,, ,, गीताञ्जलि (श्री रुद्रदेव शास्त्री) ।=
(६९) ,, ,, भूमिका -।)

मिलने का पता:—सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, बलिदान भवन, दिल्ली ।

विश्वकोषों में आर्यसमाज

(वैदिक अनुसन्धान विद्वान् ब्र० उषर्बुध जी, दीवान हाल, देहली ।)

विदेशों में विभिन्न विषयों के अध्ययन में सहायता देने के लिये जिन विशालकाय कोषों का निर्माण किया जाता है; वे विश्वकोष वा Encyclopedia कहलाते हैं । इसाइक्लोपीडिया अमेरिकाना और इंसाइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका इस ढंग के प्रमुख कोष हैं । हिन्दी में भी इस प्रकार का एक विशाल विश्वकोष है । इन कोषों में विभिन्न वस्तुओं के महत्त्व के अनुपात से एक २ शब्द पर २-२ सौ तक पृष्ठ लिखे गये हैं । पृष्ठों का साइज भी फुल्सकेप है । हम देखें कि इन कोषों में आर्यसमाज और महर्षि दयानन्द को कितना स्थान दिया गया है ।

ENCYCLOPEDIA AMERICANA.

'इंसाइक्लोपीडिया अमेरिकाना' अमेरिका से प्रकाशित यह विश्वकोष ३० बड़े २ भागों में है । कुल मिला कर इसमें २२०६६ पृष्ठ हैं । इसके द्वितीय भाग के ३७२वें पृष्ठ पर आर्यसमाज के सम्बन्ध में २२।। पंक्तियां लिखी गई हैं । 'दयानंद' शब्द स्वतन्त्र रूप में कहीं नहीं है । अब आप तुलना कीजिये कि अन्य सम्प्रदायों और प्रवर्त्तकों को कितना स्थान दिया गया है ।

बुद्ध—चतुर्थ भाग, पृ० ६७२, ६७३, १२६ पंक्तियां ।

बुद्धिज्म—चतुर्थ भाग, पृ० ६७३—६७६, ३।। पृष्ठ, (५११ पंक्तियां)

Brahmo-Sama (ब्राह्म-समाज	—	चतुर्थ भाग, पृ० ३६४ (B.)	१४ पंक्तियां
राम मोहनराय	—	२३वां भाग, पृ० २०३	६१ पंक्तियां
केशवचन्द्र सेन	—	१६वां भाग, पृ० ३२१	२४ पंक्तियां

इस प्रकार ब्राह्म समाज के सम्बन्ध में कुल ६६ पंक्तियां ।

'गांधी' शीर्षक प्रारम्भ करते हुए (Mohan Das Karam Chand, Hindu nationalist and spiritual Leader) हिन्दुओं का राष्ट्रीय और आध्यात्मिक नेता कह कर

१२वां भाग, पृ० २७३, २७२, १७० पंक्तियां ।

मोहम्मद और तत्सम्बन्धी विषय	—	१६वां भाग, पृ० २६२–३०३,	६५७ पंक्तियां ।
क्राइस्ट	—	६ष्ठ भाग, पृ० ५६६–	७१ पंक्तियां ।
ईसाई सम्प्रदाय सम्बन्धी विषय	—	६ष्ठ भाग, पृ० ५६६ से लेकर	२५ पृष्ठ ।
'ईसाई धर्म' शीर्षक का उपशीर्षक 'प्रौटेस्टैंट डिविजन'	—	६ष्ठ भाग, पृ० ६०५–६०६,	५२ पंक्तियां ।

Protestant episcopal church, (प्रोटेस्टैंट इपिस्कोपल चर्च), Protestant social welfare work (प्रोटेस्टैंट सोशल वेल्फेयर वर्क), Protestantism (प्रोटेस्टैंटिज्म) आदि प्रोटेस्टैंट सम्प्रदाय पर इतनी व्याख्या देकर भी

मार्टिन लूथर १८वां भाग पृ० ३३९, २६ पंक्तियां

अब आप आप इन सब की तुलना में आर्य समाज का स्थान देखिये।

Encyclopedia Americana. द्वितीय भाग पृ० ३७२ तर २२।। पंक्तियां इस प्रकार हैं।

ARYA SAMAJ, aarya samaj. A reform church of the Vedic religion founded by Dayanand Sarawati (1825-1888), a Brahman of Gujrat. After the year 1860 Saraswati dissatisfied with his traditional faith, believed he had discovered in the Vedas the key to the problem of human suffering and final saluation After 1866 he gathered disciples who preached his new doctrine: that there are three eternal substances, God, spirit and matter; that the Rig-veda not only supports this belief but reveals to the perceptive student all the modern discoveries and developments in science, that the Vedic hymns are the only inspired scriptures. The Vedas he declared, did not recognize caste system; he advocated a social organigation of four classes, entrance to which could be gained by examinations, he also advocated propagation of education and abolition of child marriage. The first of his samajes (associations) was founded at Bombay, in 1875. Arya Samaj seeks to reconcile the modern scientific movement with faith in the Vedas.

अर्थात्—आर्यसमाज—गुजरात के ब्राह्मण दयानन्द सरस्वती (१८२५-१८८८) द्वारा संस्थापित, वैदिक धर्म का एक सुधारवादी संस्थान है। सन् १८६० के लगभग स्वामी दयानन्द सरस्वती ने परम्परागत विश्वास से असन्तुष्ट होकर यह विश्वास प्रकट किया कि वेदों में उन्हें मानवीय दुःखों से मुक्ति की चाबी मिल गई। सन् १८६६ के पश्चात् उन्होंने कई शिष्य बनाये जिन्होंने इस नवीन सिद्धांत का प्रचार किया कि ब्रह्म, जीव और प्रकृति ये तीन अनादि सत्ताएं हैं, ऋग्वेद न केवल इस सिद्धांत का समर्थन करता है बल्कि विज्ञान के सभी नवीन अविष्कारों को विद्यार्थियों के सन्मुख प्रकट करता है, केवल वेद ही ईश्वरीय ज्ञान हैं। उन्होंने घोषणा की कि वेदों में जन्म सिद्ध जाति भेद का नहीं किन्तु गुण कर्म पर आश्रित वर्ण व्यवस्था का प्रतिपादन है। साथ ही उन्होंने शिक्षा के प्रसार और बाल्य विवाह के निषेध का प्रचार किया।

प्रथम आर्यसमाज की स्थापना सन् १८७५ में

बम्बई में हुई। आर्यसमाज वर्तमान वैज्ञानिक आंदोलन का वेद में विश्वास के साथ समन्वय करनेका प्रयत्न करता है। १४वें भाग में (Hinduism) (हिंदू-इज्म) पर लिखे गये ४ पृष्ठों में पृ० १६४ पर आर्य समाज के लिये निम्न पंक्तियां लिखी गई हैं।

The establishment of British rule brought with it a vigorous proselytizing activity on the part of Christian missionaries. The newly acquired knowledge and a wider conception of world affairs put new life into the religious thought of India. Ardent reformers arose by the score and strove for the purification of the religion of their ancestors, and a proper dissemination of religious knowledge both to their own and the rest of the world. The two most important movements that have achieved some results, are the Brahmo Samaj and the Arya Samaj. Tne Brahma Samaj owes its existence to Rajah Ram Mohan Roy, and was vigorously preached by the famous reformer Keshab Chander Sen. The movement was ambitious and proposed to create a universal faith, although it immediately occupied it seolly with the purification of the Hindu faith. The movement never had more than handful of followers, but it had an important effect on orthodox thought and practices, not only in Bengal, which was its birth place but also in all parts of India. The Arya Samaj owes its origin to Dayanand Sarsawati. He proposed to go back to the faith of his ancestors and would not accept any other text but the Vedas as outhority. The movement has succeded extra-ordinarily well. It had broken the back bone of caste system in many parts of the country and has a large number of adherents.

भावार्थ—ब्रिटिश शासन की स्थापना के साथ ईसाई प्रचारकों की ओर से लोगों को ईसाई बनाने का आंन्दोलन प्रबल रूप से चला। नवीन प्राप्त ज्ञान और संसार के मामलों के विशाल भाव ने भारत के धार्मिक विचार में नवजीवन का संचार कर दिया। बहुत उत्साहीसुधारक उत्पन्न हुए जिन्होंने अपने पूर्वजों के धर्म की पवित्रता और धार्मिक ज्ञान के प्रसार का प्रयत्न किया। दो अत्यावश्यक आंदोलन जिनको कुछ सफलता प्राप्त हुई है ब्राह्मसमाज और आर्यसमाज हैं। ब्राह्मसमाज के प्रवर्तक राजाराम मोहनराय और पीछे जाकर उसके प्रबल प्रचारक सुधारक केशव चन्द्र सेन थे। इस की योजना बड़ी महत्त्वाकाङ्क्षा युक्त थी कि इसे विश्व धर्म बनाया जाए यद्यपि

यह हिन्दू धर्म के सुधार में ही अधिक तत्पर रही। इस के अनुयायियों की संख्या तो बहुत थोड़ी रही किन्तु कट्टर पन्थियों के विचारों और क्रियाओं को प्रभावित करने में इसका न केवल बंगाल में किन्तु भारत के अन्य स्थानों में भी पर्याप्त हाथ रहा। आर्यसमाज के प्रवर्तक स्वामी दयानन्द सरस्वती थे। वे अपने पूर्वजों के धर्म का पुनरुद्धार करना चाहते थे और वेदों को छोड़ कर और किसी की प्रामाणिकता स्वीकार न करते थे। यह आंदोलन असाधारण रूपमें सफल हुआ। इसने भारत के बहुत से भागों में जाति भेद की पीठ तोड़ दी है और इसके अनुयायी बहुत बड़ी संख्या में हैं। १५वें भाग के पृष्ठ ११ पर 'India' शब्द के उपशीर्षक 'Religions' (भारतीय धर्म) में आर्य समाज का नाम देने की आवश्यकता ही नहीं समझी गई। जरा निम्नलिखित वाक्य पढ़िये।

There are numerous other minor sects of Hinduism and worshippers of other particular gods in the Hindu mythology, the Brahmo-samaj is one of the modern Hindu theistic sects.

अर्थात्......हिन्दू धर्म के कुछ अन्य भी देवताओं वा विभिन्न ईश्वरीय रूपों के उपासक अल्पसंख्यक सम्प्रदाय हैं। हिन्दू ईश्वरवाद को मानने वाले नवीन सम्प्रदायों में से एक ब्रह्म-समाज है।

आर्य समाज जैसे प्रशस्त सुधारवादी धार्मिक विचार के विषय में यहां कुछ नहीं लिखा गया। (यह अच्छा ही हुआ क्योंकि आर्यसमाज कोई सम्प्रदाय वा पन्थ नहीं—सम्पादक सा० दे०)

अब आप एक दूसरे विश्वकोष Encyclopedia Britanica (इंसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका को देखिये।

'इंसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका' के २३ भागों में कुल २३०६० पृष्ठ हैं। इन में विभिन्न सम्प्रदायों और प्रवर्तकों को निम्न प्रकार से स्थान दिया गया है।

बुद्ध, बुद्धिज्म—	भाग ४,	पृ० ३२५-३२७,	३ फुलस्केप पृष्ठ।
ब्राह्म-समाज—	भाग ५,	पृ० १०१७,	५२ पंक्तियां।
राम मोहन राय—	भाग १८,	पृ० ९६६,	२० पंक्तियां।
केशवचन्द्र सेन—	भाग १३,	पृ० ३५३, ३५४,	४१ पंक्तियां।
गांधी—	भाग १०,	पृ० १५,	१०७ पंक्तियां।
मोहम्मद—	भाग १५,	पृ० ६४६ से ६४९,	३॥ पृष्ठ।
मोहम्मद सम्बन्धी— अन्य विषय	भाग १५,	पृ० ६५१ से ६५८,	८ पृष्ठ।
ईसाई सम्प्रदाय सम्बन्धी-	भाग ५	पृ० ६३१ से ६४० तक	१० पृष्ठ।
प्रोटेस्टैंट सम्बन्धी—	भाग १८,	पृ० ६११ से ६१४ तक	३॥ पृष्ठ।
मार्टिन लूथर—	भाग १४,	पृ० ९८८	२१ पंक्तियां।

किन्तु समस्त ग्रन्थ के २३०६० पृष्ठों में से 'महर्षि दयानन्द' को एक भी पंक्ति न देकर आर्यसमाज शीर्षक में केवल २१ पंक्तियां लिखी गई हैं॥ देखिये 'इंसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका' भाग २, पृ० ४६५.

ARYA SAMAJ

A Hindu reforming sect founded by Dayanand Saraswati, a Brahman of Guzerat, who born in 1825, was brought up as a shiva-worshipper, but renounced idol-worship. He sought in the Vedas a solution of the problems of human misery and final salvation. After 1866 he gathered disciples and assailed the Christians scriptures, maintaining that the Rig-Veda not only supported his own beliefs but that in it all modern discoveries in science were described, thus he discerned the endowment of true learning, the arts of manufacture, chemistry, popular instruction etc all in the Yajna or sacrificial cult. While denying that the Vedas recognized caste, he retained the four classes as social units into which entrance was to be dependent on examinations. Such ideas naturally antagonized the Brahmans, so he turned to the masses, and founded numerous samajes "associations" the earliest at Bombay, in 1875. He died at Ajmere in 1888. The Arya Samaj is not eclectic, like the Brahma-samaj, but narrower in scope and intenser in conviction, it attracted educated men whose Hinduism had been undermined, but who were opposed to the teachings of foreign creeds, while they wished to reconcile modern science and western ethics with the teachings of the Vedas.

आर्यसमाज—

अर्थात्...स्वामी दयानन्द सरस्वती द्वारा प्रवर्तित एक सुधारक हिन्दू सम्प्रदाय।

स्वामी दयानन्द एक गुजरात के ब्राह्मण थे जिनका जन्म सन् १८२५ में हुआ। उनका पालन पोषण एक शिव पूजक के रूप में हुआ किन्तु उन्होंने पीछे से मूर्तिपूजा का परित्याग कर दिया। उन्होंने वेदों में मानवीय दुःख और मुक्ति की समस्याओं का समाधान प्राप्त करने का प्रयत्न किया। सन् १८६६ के पश्चात् उन्होंने कई शिष्य एकत्रित किये और ईसाई मत ग्रन्थों पर आक्रमण किया। उनका कथन था कि ऋग्वेद में न केवल उनके सिद्धान्तों का समर्थन है किंतु विज्ञान के वर्तमान आविष्कार, सत्य शिक्षा, रसायन शास्त्र आदि का मूल भी यज्ञादि रूप में विद्यमान है। वेदों में जाति भेद का प्रतिपादन नहीं यह कहते हुए उन्हों ने गुणकर्मानुसार चार वर्णों में समाज

व्यवस्था का प्रतिपादन किया। स्वभावतः ब्राह्मण इन विचारों के कारण उनके विरोधी हो गये इस लिये वे जनता की ओर झुके और उन्होंने समाजों की स्थापना की। सबसे प्रथम आर्य समाज की स्थापना सन् १८७५ में हुई। अजमेर में सन् १८८६ (वस्तुतः १८८३ में) उनका देहावसान हुआ। आर्यसमाज का क्षेत्र ब्राह्मसमाज की अपेक्षा अधिक संकीर्ण है परन्तु इसके विश्वास दृढ़ हैं। इसने शिक्षित जनता को अपनी ओर आकृष्ट किया जिनका हिन्दू धर्म में विश्वास शिथिल हो गया था किन्तु जो विदेशी मतों की शिक्षाओं के भी विरोधी थे। वे वर्तमान विज्ञान और पाश्चात्य आचार शास्त्र का वेदों की शिक्षाओं के साथ समन्वय करना चाहते थे।

इसके पश्चात् २ तीय भाग 'Hinduism'' शब्द का उपशीर्षक 'Conclusion' पृ०५८०.

Who can venture to say what the future of Hinduism is likely to be ? Is the regeneration of India to be brought about by the modren theistic movements, such as the Brahma-samaj (q. v.) and Arya Samaj (q.v.)

अर्थात् कौन यह कहने का साहस कर सकता है कि हिन्दू धर्म का भविष्य क्या हो सकता है ? क्या भारत का पुनरुद्धार आधुनिक आस्तिक आन्दोलनों यथा ब्रह्मसमाज और आर्यसमाज के द्वारा होगा ?

इन दोनों इंग्लिश विश्वकोषों में आर्यसमाज की स्थिति देखने के पश्चात् अन्य कोषों को देखिये।

Webster's Dictionary.

वेब्स्टर की विशाल इंग्लिश डिक्शनरी के ३२१० पृष्ठ हैं। इस में उपर्युक्त विश्वकोषों के अनुपात से ही विभिन्न सम्प्रदायों और प्रवर्तकों को अधिकाधिक स्थान दिया गया है। आर्य समाज के विषय में पृ० १४८ पर निम्नलिखित ६ पंक्तियां दी गई हैं।

'Arya Samaj' ('arya samaj') [Hindi Samaj meeting, assembly, fr. skr.. Samaja, See Aryan] Hinduism. A native reform church of Vedic religion founded about 1860, by Dayanand Saraswati, a Brahman. The sect teaches that there are three eternal substances; God, spirit, and matter and that the hymns of the vedas, are the only imspired scriptures. It has as practical ends, the promotion of education, the re form of the caste system and the abolition of child marriage.

अर्थात् आर्यसमाज वैदिक धर्म की स्वामी दयानन्द नामक ब्राह्मण द्वारा सन् १८६० में (वस्तुतः १८७५) प्रवर्तित संस्था है। यह सम्प्रदाय सिखाता है कि ब्रह्म, जीव, प्रकृति ये तीन अनादि सत्तायें हैं और केवल वेद मन्त्र ही ईश्वरीय ज्ञान हैं। शिक्षा का प्रसार, जातिभेद का सुधार और बाल्य-विवाह का निषेध इसके क्रियात्मक उद्देश्य हैं।

इसके अतिरिक्त उपर्युक्त कोषों में से किसी में

भी आर्यसमाज सम्बन्धी कोई विषय नहीं है।

क्या सचमुच यह आश्चर्य्य का विषय नहीं कि महर्षि दयानन्द के समकालीन सुधारक श्री केशवचन्द्र सेन एवं राजा राममोहन राय जैसे व्यक्तियों को महर्षि दयानन्द की अपेक्षा अत्यधिक सम्मान और स्थान प्राप्त हुआ है? इसका कारण विदेशियों का पक्षपात है, या आर्यसमाज के प्रचार की कमी? इस प्रश्न पर विज्ञजन आत्मनिरीक्षण करें॥

[यह लेख परिश्रम से संकलित है अतः हमने इसे विद्वानों तथा आर्य समाज के कार्य कर्ताओं की सूचनार्थ छाप दिया है। इनमें आर्यसमाज के विषय में जो लिखा गया है वह यद्यपि कई अंशों में अशुद्ध है तथापि आर्यसमाज का महत्त्व उस में खुले या दबे शब्दों में स्वीकार करना ही पड़ा है। Encypledia of Religion and Ethics Edited by Hastings तथा Encyclopedia of Religion Edited by V. Ferm में भी आर्यसमाजपर लेख हैं जिनको हम फिर कभी पाठकों के सम्मुख रखेंगे—सम्पादक सा० दे०]

महर्षि श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती जी महाराज के विषय में अधिक खोज की आवश्यकता

"सार्वदेशिक पत्र" के अक्तूबर १९५१ के अंक में ऊपर दिये हुए शीर्षक से एक लेख श्री प्रोफेसर आत्मानन्दजी बि० अ० देहली का छपा है जिसमें लेखक ने १५ पैरों (Para) में खोज के लिये विविध क्षेत्र बतलाये हैं। श्री रायबहादुर गंगा-प्रसादजी ने जो श्रीमती परोपकारिणी सभा के एक सभासद् हैं उक्त लेख का हवाला देकर एक लेख "आर्य्य-मार्तण्ड" अजमेर में प्रकाशित किया जिसमें यह प्रस्ताव रक्खा कि श्रीस्वामी दयानन्द सरस्वती जी महाराज की जीवनी के विषय में खोज का कार्य्य परोपकारिणी सभा को करना चाहिये था। मैंने इस प्रस्ताव को सहर्ष स्वीकार करते हुए श्री गंगाप्रसादजी को पत्र लिखकर एक योजना मांगी। उक्त महोदय ने एक विस्तृत नोट लिख कर मेरे पास भेजा। उसमें मुख्य विषय निम्न प्रकार थे जिनमें से कुछ पर कार्य्य आरंभ होगया है।

१—श्री पं० रामनारायण मिश्र, काशी के प्रसिद्ध आर्य नेता ने सितम्बर १९५१ के "सार्वदेशिक" में एक लेख के द्वारा यह सूचना दी थी कि सन् १९२९ में स्विटजरलैंड (Switzerland की राजधानी जिनेवा (Geneva) में उनको स्व० श्री श्यामजी कृष्ण वर्मा (जो स्वामीजी के एक अनुग्रह पात्र सुयोग्य शिष्य और परोपकारिणी सभा के सदस्य थे) मिले और उन्होंने स्वामीजी के भेजे हुए सैंकड़ों पत्र अपने पुस्तकालय में संकेत द्वारा बतलाये जो सब संस्कृत में लिखे हुये थे और कहा कि यदि कोई संस्कृत व अंग्रेजी का विद्वान् उनके पास भेजा जाय तो वह उन सब पत्रों का अंग्रेजी में अनुवाद करादेंगे जिससे स्वामीजी के उस पहलू पर प्रकाश पड़ेगा जो लोगों पर अब तक प्रकट नहीं हुआ है। मैंने स्व० श्यामजी कृष्ण वर्मा के उत्तराधिकारियों को पत्र लिखा है यदि स्वामीजी के यह पत्र मिल जायं तो वह हमारे लिये अमूल्य निधि होगी।

२—श्री पृथ्वीसिंह मेहता वि० अ० ने अपने नये ग्रन्थ "हमारा राजस्थान" में यह विचार प्रकट किया है कि संभव है स्वामी दयानन्द सरस्वती को सन् १८५७ के राजद्रोह के समय मरहटा सरदार नाना व तांतिया आदि से श्री स्वामी जी की पुरातन जानकारी हो। स्वामी जी की स्वलिखित आत्म-जीवनी में सं० १९१४ चैत्र (अर्थात् मार्च १८५७ ई०) तक का वृत्तांत मिलता है। उसके पश्चात् सं० १९१७ (सन्

१८६०) में मथुरा जाने का वृत्तांत है। इसके सम्बन्ध में श्री पं० भगवद्दत्तजी से जो इस आत्म-जीवनी के सम्पादक हैं कुछ बातें पूछी गई हैं।

३—स्वामीजी के जीवन के अन्तिम १० वर्षों में अनेक स्थानों पर बहुत भाषण हुए जिन स्थानों पर अधिक व्याख्यान हुए वहां की आर्य्य समाजों से कहना है कि यदि उन व्याख्यानों के कोई संस्मरण या नोट उनके रजिस्टर आदि में हों अथवा उस समय के समाचार पत्रों में प्रकाशित हुए हों तो उनका संक्षिप्त विवरण या पता कृपा कर मेरे पास भिजवावें।

४—प्रो० आत्मानन्दजी के शेष विषयों में से बहुत से ऐसे हैं जिनकी खोज के लिये आवश्यक है कि स्व० श्री देवेन्द्रनाथजी मुखोपाध्याय की तरह ऋषि का कोई भक्त घूम-घूम कर खोज करे। श्री देवेन्द्रनाथ तो आर्य्य समाजी भी नहीं थे। पर उन्होंने बहुत सा जीवन ऋषि के विषय की खोज में अर्पण कर दिया। आर्य्य समाज का क्षेत्र अब बहुत विस्तृत होगया है और आर्य्य समाजियों की संख्या भी बहुत बढ़ गई है। पूर्वोक्त लेखक ने अपने लेख के पैरा १४ में लिखा है "कि यदि उचित योजना बन जाय तो सफलता अवश्य मिलेगी। उत्साही कार्यकर्ताओं की कमी नहीं है" मैं यह नोट आर्य्य पत्रों मे इसी अभिप्राय से प्रकाशित करता हूँ कि यदि ऋषि के दो-चार सच्चे भक्त ऐसे मिल जायँ जो अपना तन, मन अर्पण कर के इस कार्य को हाथ में लेवें यह कार्य अवश्य सफल होजावेगा। उनकी यात्रा आदि का सब व्यय श्रीमती परोपकारिणी सभा अवश्य देगी—जो योग्य श्रद्धालु आर्य्य सज्जन इस कार्य के लिये तय्यार हों वे कृपा कर मुझको सूचना देवें।

अजमेर हरविलास सारडा
३१ दिसम्बर मन्त्री
१९५१ श्रीमती परोपकारिणी सभा

[हमें प्रसन्नता है कि 'सार्वदेशिक' में प्रकाशित श्री पं० आत्मानन्दजी विद्यालङ्कार, श्री पृथ्वीसिंह जी विद्यालङ्कार तथा श्री पं० रामनारायणजी मिश्र के लेखों के आधार पर श्रीमती परोपकारिणी सभा अजमेर ने महर्षि दयानन्द जी के सम्बन्ध में अधिक खोज करवाने का निश्चय किया है जिसका हम हार्दिक अभिनन्दन करते हैं। हम आशा करते हैं कि कुछ उत्साही श्रद्धालु आर्य इस अत्यावश्यक कार्य के लिये अपनी सेवाएं समर्पित करेंगे और श्रीमती परोपकारिणी सभा उनके लिये सब प्रकार की आवश्यक और उचित सुविधाओं की व्यवस्था कर देगी जिससे कि यह महत्त्वपूर्ण कार्य शीघ्र सम्पन्न हो। सम्पादक सा० दे०।]

(पृष्ठ २२ का शेष)

करने का कारण बन रहे हैं। इसलिए आओ आर्य बन्धुओ! ऋषि के भक्तिमय स्वरूप को हम पहिचाने, और मुनिवर गुरुदत्त की तरह कोरे शुष्क तर्क और नागरिक विचारों का परित्याग कर प्रभु के अनन्य भक्त बनने का प्रयत्न करें। और जनता के सम्मुख भी ऋषि के इस पावन स्वरूप को न केवल उनके जीवन और पुस्तकों से प्रत्युत अपने भक्तिमय जीवन से रख कर आर्यसमाज को सच्चे सदाचारी ईश्वर भक्तों का समाज बनाकर उसमें फैली अशान्ति और कलह को दूर कर उसे देश, जाति और धर्म के उत्थान का सच्चा पथप्रदर्शक बनाएं।

[आर्यों ने स्वयं महर्षिदयानन्द जी को भक्त शिरोमणि के रूप में प्रायः नहीं समझा और न इस पर पर्याप्त बल दिया जिसका परिणाम स्पष्ट है कि 'कल्याण' गोरख पुर के भक्त चरित्र विशेषाङ्क में ५५७ भक्तों के चरित्र होते हुए भी महर्षि दयानन्द की गणना उन में नहीं की गई—सम्पादक सा० दे०]

इदानीन्तु देववाणी समादरणीया

लेखक—आचार्य द्विजेन्द्रनाथ शास्त्रिणः

संस्कृतं हि नाम दैवी वाक् देवैर्विद्वद्भिर्महर्षिभिः पाणिनिप्रभृतिभिः प्रकृति प्रत्ययादिलक्षणसंस्कारैः संस्कृतत्वादियं सम्प्रति संस्कृतपदेन व्यपदिश्यमाना विलसति, तथा चोक्तम्:

संस्कृतं हि दैवी वागन्वाख्याता महर्षिभिरिति

इयं हि संस्कृतवाणी विश्वविख्यातानां भाषापदार्हाणां समस्तभाषाणामादि जननी, संस्कृतवाणीत एव जगतः सर्वा अपि लेटिन, ग्रीक, इंग्लिश, पारसीकप्रभृतिभाषालब्ध प्रसवा इति भाषाशास्त्रकोविदानां सडिण्डिमनादमाघोषः। तासु तासु भाषासु समुपलभ्यमाना सुबहुला संस्कृतपदावलिरप्यपि सुतरां पुष्णाति तेषामाघोषस्य यथार्थताम्। लिपिरस्या यादृशी शास्त्रसम्मता विशुद्धा, विशदा नयनसुभगा सरला चास्ति न तादृशी कस्या अपीतरभाषायाः। लेखनानुगुणमुच्चारणमुच्चारणानुगुणञ्चलेखनं यादृशं संस्कृतभाषायां प्रतिफलितम् न तादृशमन्यस्यां कस्यामपि भाषायाम्। यल्लिखितं तदेवाक्षराभ्यासी बालोपि विशुद्धतयानुवाचयति न कर्हिचित्तद्व्यतिरिक्तम् न तथेतरासु भाषासु, कदाचित् बालः पुटं (Put) पटमिति वाचयति बटंच (But) बुटमिति उच्चारयन् बहुधा बम्भ्रमीति यादृशमुल्लेखनं तादृशमेव स्फुटमविकलंचोच्चारणं संस्कृतभाषाया एव वैशिष्ट्यम्। यादृशमुच्चारणं कंठीकरणीयं भवति भाषास्वन्यासु न तादृशं संस्कृतभाषायाम्! कीदृशो दारुणः क्लेशः शब्दोच्चारणकंठीकरणे सोढव्यो भवति छात्रैरित्यत्र तु त एव वराकाः प्रष्टव्याः। अस्तु संस्कृतलिपिलेखनवाचनसौकर्यन्तु सार्वजनीनमेव नात्र बहु वक्तव्यमपेक्षते।

ईदृशी सर्वाङ्गपूर्णा पुण्यतमा वाणी, समधिगतस्वातन्त्र्ये समुपलब्धस्वराज्ये स्वायत्तीकृते सकलशासनाधिकारेऽपि भारते यदीयं वराकी बृटिशशासनधुरन्धरैरिव भारतीयैः शासनसूत्रधारैरपि भवेदेकपदे निराकृता, न्यक्कृता, अवहेलिता, दूरेऽपसारिता, राष्ट्रभाषापदवीतोऽर्धचन्द्रं दत्वा निष्कासितेति कियदिदमरुन्तुदं वृत्तम। अपराध्यत्यत्र नूनं शासनचक्रमेव। शासनचक्रेण सह भारतीयजना अपि। राष्ट्रभाषा निर्धारणावसरस्तु अस्माकमनवधानतया निर्गतः किमधुना पश्चात्तापेन। सम्प्रति तु भारतीयैः संस्कृतप्रचारार्थमनन्य साधारणो यत्न आधेयः। सर्वैः सम्भूय च तथा प्रयतितव्यम् यथा न भवेदन्यभाषाभिज्ञो पि कश्चिदसंस्कृतज्ञः शिक्षितपदसम्मानितः अद्य, यद्राष्ट्रं विघातकं प्रजासु नैतिकाधः पतनम् आपण्डितपामरं प्राचुर्येण संक्रामकव्याधिवदभित आचंक्रम्यमाणमिवावलोक्यते तत्संस्कृताध्ययनवैमुख्यविजृम्भितमेवेति मन्यामहे संस्कृताध्येतृणां संस्कृतसाहित्यपरिशीलनपवित्रितमतिमताम् अधिगतधर्ममर्ममूर्द्धन्यानां परिदग्धसकलकल्मषांकुराणां धर्मभीरूणां हृदयेषु न पदं लभन्ते अमी विकाराः। अथ संस्कृतमानससुलभान् अनैतिककुसंस्कारसम्भवान् स्तैन्यपैशुन्योत्कोचप्रभृतिमहापातकोत्थान् राष्ट्रविघातकान् प्रजासु आमूलचूडमभिव्याप्तान् विकारान् कश्चिदरिमाष्टुं मलं

तर्हि स संस्कृतविद्याभ्यास एव। अस्माकं भारतीयानां निखिलं ज्ञानविज्ञानतत्त्वं संस्कृतसाहित्य एवास्ति सम्भृतम्। अस्माकं संस्कृतिः, समस्तं वैदिकवाङ्मयम्, सकलमितिहासजातं अखिला सा पूर्वजानामाचारव्यवहारपरम्परा। किं बहुना अस्माकं सर्वस्वं संस्कृतसाहित्यमंजूषायाम् महाशेवधिवदस्मत्पूर्वजैः महर्षिभिः संरक्षितमस्ति संस्कृताध्ययनविमुखानाम् पश्चिमसंस्कृत्युन्मुखानाम् प्रवयसामपि केषां चित् शासनधूर्वहप्रमुखानाम् कथमिवोदियात्तत्र श्रद्धा। तेऽपि संस्कृतभाषां मृतभाषेति पदेन विभूषयन्ति मृतेयं संस्कृतभाषा, इदानींवत् पुराऽपि कदाचित् व्यवहारगता नभवदिति पाश्चात्यकोविदा आकलयन्तिताननुसरन्तः केचनावसरवादिनो भारतीयास्तथैव मृतभाषेयं देववाणीति प्रतिध्वनयन्ति। किन्तु सूक्ष्मदृशावलोकनेन विदितं भवति। यदिदमाकलनं तु तेषां नितरामज्ञानविजृम्भतमेव तच्च संस्कृतभाषेति नामधेयादेव प्रतिपत्तुं सुशकम्। भाषणादि भाषा भवति, भाषा अथ च भाषणविधुरा इति विप्रतिषिद्धम् न कथमपि संगच्छेत। संस्कृतभाषां मृतभाषां व्यपदिशंतस्तावदनुयोक्तव्याः कुशाग्रधियः मृतभाषापदस्य को वा अर्थ इति। मृता चासौ भाषा मृतभाषा, मृतानां वा भाषा मृतभाषेति आद्यः पक्षश्चेन्न। नेयं भाषा मृता। इदानीमपि सर्वत्र विद्वत्समाजे, विद्यालयानां प्रांगणे च श्रवणगोचरीक्रियतेऽभितः सम्भाष्यमाणा। द्वितीयपक्षश्चेन्नतराम् न वयं मृता येषामियं भाषा। मन्ये ये मृतभाषामिमामुद्गिरन्ति त एव खलु मृताः हंहो यां भाषामधीत्य मानवा अमृता भवन्ति मरणधर्माणः। सा भाषा कथमिव मृतभाषेति पदेन व्यपदेष्टव्या भवितुमर्हति ?

अयि भो भारतीयाभिजनाः, आर्यमिश्राः, वैदेशिकैर्वैतालैः बम्भ्राम्यमाणाः शासनधुरीणाः परिचिन्वन्तु इदानीमपि आत्मस्वरूपं, समुद्धरन्तु भारतीयां सम्मूर्च्छितां संस्कृतिम्, पुनरुज्जीवयन्तु गुरुकुलशिक्षापद्धतिम्, परिवर्तयन्तु पाश्चात्य शिक्षा सारणिं प्राचीन शिक्षाप्रणाल्याम्। प्रसारयन्तु पुनः सर्वात्मना संस्कृताधीतिम्। संस्थापयन्तु च ग्रामे ग्रामे, नगरे नगरे संस्कृत विद्यालयान्। धर्मपरिणिष्ठितं शिक्षणं राष्ट्रकल्याणाय कल्पते। अद्यतनी आंग्लशिक्षापद्धतिः मूलंकषंमपेक्षते परिवर्तनम्। तदानीमेवास्माकं मानसिकं पारतन्त्र्यमपगतं भविष्यति। परिगतेऽपि राजनैतिकपारतन्त्र्ये बौद्धिकं मानसिकं च पारतन्त्र्यं त्वद्यापि अवलोक्यते परितः पम्फुल्यमानम् न यावद् बौद्धिकपारतन्त्र्यमवहेलितं भविष्यति न तावत् भारतीयसंस्कृतिपरम्परासु श्रद्धा समादरश्चोदेष्यति। भारतीयसंस्कृतिषु बद्धादरा एव जना भारतं पुनरुद्धर्तुम्, विगतप्रतिष्ठां च पुनरुज्जीवयितुं प्रभविष्यन्ति। सन्तोऽपि वपुषा भारतीया अन्तरात्मना च ये अभारतीया न ते कदापि राष्ट्रकल्याणं नापि लोककल्याणं कर्तुम्। प्रभविष्णवः भविष्यन्ति। अतो राष्ट्रकल्याणाभिकांक्षिभिर्भारतीयैरेव। सर्वात्मना समादरणीया संस्कृताध्ययनाध्यापनपरम्परा। परिरक्षयिष्यति राष्ट्रमिदं धर्मगर्भितं संस्कृतशिक्षणमेवेतिध्रुवम्। इदमेवास्ति राष्ट्रस्य प्रखरतरसमस्यायाः नैतिकपतनलक्षणायाः समाधानमिति "नान्यः पन्था विद्यतेऽयनायेति शम्।"

भक्तशिरोमणि-दयानन्द

(लेखक—आचार्य भद्रसेन जी अजमेर)

मनुष्य की सन्तप्त और दुःखी आत्मा को शान्ति प्रदान करने और आत्म साक्षात् तथा परमात्म दर्शन का सबसे उत्तम और सरलमार्ग भक्ति ही है। प्रभु-भक्ति द्वारा मनुष्य न केवल अपना ही कल्याण करता है, प्रत्युत प्राणिमात्र को भी कल्याण का मार्ग दिखाने में पथ प्रदर्शक बनता है। इसीलिए आज तक जितने भी संसार में सन्त महात्मा सुधारक हुए हैं, वे सब प्रभु के अनन्य भक्त और अटल विश्वासी थे। ऐसी महान् आत्माओं में से ही ऋषिदयानन्द एक थे। बाल्य काल से लेकर ऋषि का सारा जीवन ही भक्तिमय था। छोटी सी आयु में संसार के सुख वैभव पर लात मार कर तथा माता, पिता आदि बन्धु बांधवों की मोह ममता को छोड़ कर, और कामिनी, कांचन की चमकती हुई हिरण्यमयी शृंखला को तोड़कर कल्याणकारी शिव की तलाश में बन पर्वत एक करदेना यह उनकी प्रभु भक्ति का प्रबल परिचायक है। ऋषि का न केवल जीवन प्रत्युत उनके सारे ग्रन्थ ही प्रभु भक्ति के प्रसाद से भरे पड़े हैं। ऋषि ने हमारे सम्मुख प्रभु-भक्ति के सच्चे स्वरूप को रखा है हम ऋषि की प्रभु भक्ति के कुछ नमूने उसके ग्रन्थों से ही पाठकों के सम्मुख उपस्थित करते हैं। ऋषि ऋग्वेद भाष्य में लिखते हैं—

"जो लोग संसार के सब कर्म करते हुए भी उस उपासना के योग्य प्रभु को एक क्षण भी नहीं भूलते! उनके मन में कभी अधर्माचरण की इच्छा भी नहीं होती।"

ऋषि प्रभु भक्ति की व्याख्या का वर्णन करते हुए ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका में लिखते हैं—

"इस प्रकार वारम्वार अभ्यास करने से प्राण उपासक के वश में हो जाते हैं। और प्राण के स्थिर होने से मन, मन के स्थिर होने से आत्मा, और इन तीनों के स्थिर होने से आत्मा के भीतर जो आनन्द स्वरूप, अन्तर्यामी व्यापक परमेश्वर है उसके स्वरूप में मग्न हो जाना चाहिये जैसे मनुष्य जाल में गोता मारकर ऊपर आता है, और फिर गोता लगा आता है, इसी प्रकार अपने आत्मा को परमेश्वर के बीच में वारम्वार मग्न करना चाहिये।"

ऋषि ने उपर्युक्त वाक्यों में कैसी सुन्दर प्रभु-भक्ति की भावना और प्रभु प्राप्ति का सरल और प्रेम मय मार्ग दिखाया है। प्रभु प्राप्ति का मार्ग बताते हुए ऋषि फिर ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका में लिखते हैं—

"ध्यान करने और आश्रय लेने के योग्य जो आत्मा में अन्तर्यामी व्यापक परमेश्वर है, उसके प्रकाश (ज्योति) और आनन्द में अत्यन्त विचार और प्रेमभक्ति के साथ इस प्रकार प्रवेश करना चाहिये कि जैसे समुद्र में नदी प्रवेश करती है।"

अर्थात् जैसे समुद्र में प्रवेश कर नदी अपने स्वरूप को भुला देती है, वैसे भक्त को भी

भगवान् में ऐसा मग्न हो जाना चाहिये कि वह अपने आप को भी भूल जाए। केवल भगवान् ही एक मात्र उसका विषय और लक्ष्य बन जाए। उस समय वेद के शब्दानुसार—

यदग्ने ! स्यामहंत्वम्, त्वं वा घास्या अहम्।

"प्रभो ! मैं तू और तू मैं बन जाऊं" का भान-भक्त को होने लगे। पाठक देखें ऋषि ने भक्ति की कैसी उदात्त भावने को हमारे सम्मुख रखा है। भक्त को जब तक भगवान् के मधुर मिलन के स्थान का ज्ञान न हो, अर्थात् कहां वह मेरे प्रियतम मिलेंगे तब तक वह उसे नहीं मिल सकता। प्रभु-प्राप्ति का सही स्थान बताने में बड़े २ धर्माचार्य भी भटक गए हैं किंतु ऋषि, प्रेमी को प्रभु-मन्दिर का कितना सही पता बताते हैं—पाठक जरा ध्यान से पढें, और मनन करें। ऋषि ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका के उपासना प्रकरण में लिखते हैं—

"कण्ठ के नीचे जो हृदय देश है, जिसको ब्रह्मपुर अर्थात् परमेश्वर का नगर कहते हैं, उसके बीच में जो गर्त (गुफा) है, उसमें कमल के समान एक स्थान है। उसके बीच में जो सर्वशक्तिमान् परमात्मा बाहर भीतर एक रस होकर रम रहे हैं, वह आनन्द स्वरूप परमेश्वर उसी प्रकाश मय स्थान के बीच खोज करने से मिल जाता है। दूसरा उसके मिलने का कोई स्थान उत्तम या मार्ग नहीं है।'

ऋषि ने अपनेअनुभव से कैसा छुपा हुआ प्रभु का अगम्य स्थान बड़ी सरलता से हमें बता दिया है। प्रभु भक्ति के फल का वर्णन करते हुए ऋषि यजुर्वेद भाष्य में लिखते हैं—

हे मनुष्य ! यदि तुम को इस लोक और परलोक के सुखों की इच्छा है, तो सब से महान् स्वयं प्रकाश, आनन्द स्वरूप, अज्ञान के लेश से पृथक् वर्तमान परमात्मा को जान के ही जन्म मरण आदि दुःख सागर से पार हो सकते हो। यही परम सुखदायी मार्ग है इससे भिन्न मुक्त होने का कोई भी मार्ग नहीं।

ऋषि ने ऐसे स्थानों में भी प्रभु-भक्ति का स्रोत बहाया है जहां कि उसकी कुछ भी सम्भावना नहीं। 'मेला चांदापुर' नामक पुस्तक में जिसमें ऋषि के साथ हुए पादरियों और मौलवियों के शास्त्रार्थ का वर्णन है ऋषि मुक्ति विषय में शास्त्रार्थ करते हुए कहते हैं—

' जब सच्चेमन से और अपने आत्मा, प्राण और सब सामर्थ्य से परमेश्वर को जीव भजता है तब वह करुणामय परमेश्वर उसको अपने आनन्द में स्थिर कर देते हैं। जब कोई छोटा बालक घर के ऊपर से अपने माता पिता के पास नीचे आना चाहता है, अथवा नीचे से ऊपर उनके पास जाना चाहता है, तब हमारा बालक यदि गिर पड़ेगा तो चोट लगने से उसे दुःख होगा, यह सोचकर हजारों आवश्यक कामों को भी माता पिता छोड़कर दौड़कर अपने बालक को उठाकर गोद में ले लेते है। और जैसे माता पिता अपने बच्चे को सदा सुख में रखने की इच्छा और पुरुषार्थ सब करते रहते हैं। वैसे ही परम कृपा निधि परमेश्वर की ओर जब कोई जीव सच्चे आत्म-भाव से चलता है, तब वह अनन्त शक्तिरूप अपने हाथों से उस जीव को उठाकर अपनी गोद में सदा के लिये रख लेते हैं।

फिर उसको किसी प्रकार का भी दुःख नहीं होने देते।

ऋषि के यह स्वर्णाक्षरों में लिखने योग्य वाक्य, उनके अटल ईश्वर विश्वास उनकी अगाध प्रभु भक्ति का कितना स्पष्ट परिचय दे रहे हैं। भला इससे बढ़कर प्रभु-भक्ति के संबंध में और कोई क्या लिखेगा। इसलिए मैं तो ऋषि को केवल भक्त ही नहीं अपितु भक्ति शिरोमणि मानता हूँ। किन्तु खेद से लिखना पड़ता है कि हमने ऋषि के इस भक्तिमय स्वरूप को प्रायः बिल्कुल भुला दिया है। इसीलिए हमारे जीवन आज प्रभु-भक्ति से विमुख हो, श्रद्धा हीन बन कर कोरे शुष्क तर्क और नास्तिक विचारों की ओर अग्रसर होते जा रहे हैं हमारे अन्दर तर्क वाद तो इतना बढ़ गया है कि जरा २ सी बात में हम किसी की भावना को तर्क से ठेस पहुँचाने और उसका खण्डन करने लग जाते हैं। यदि कोई श्रद्धालु पुरुष श्रद्धा पूर्वक हाथ जोड़ कर संध्या करता है, तो हम झट उस पर आक्षेप कर देते हैं, अरे भगवान् कोई मूर्ति वाला है कि उसके सामने हाथ जोड़ कर सन्ध्या कर रहे हो। भला निराकार परमेश्वर को हाथ जोड़ने की क्या आवश्यकता? ऋषि ने कहां लिखा है कि हाथ जोड़ कर संध्या करो? हम स्वयं स्वाध्याय शून्य होते हुए भी ऐसे समय में ऋषि दयानन्द की भी दुहाई देने लग जाते हैं। मेरे विचार में यदि हम ऋषि के ग्रन्थों का भली प्रकार स्वाध्याय करते होते तो जहां हमारे अपने जीवन श्रद्धा और भक्ति मय होते वहाँ दूसरे श्रद्धालु हृदय को भी अपने शुष्क तर्क द्वारा उसीको श्रद्धा को नष्ट करने का कारण न बनते। देखिये सन्ध्या के मन्त्रों द्वारा ईश्वर की उपासना कैसे करनी चाहिये ऋषि दयानन्द इस सम्बन्ध में पंच महा यज्ञ विधि में क्या लिखते हैं—

"कृताञ्जलिरत्यन्त श्रद्धालु र्भूत्वैवैभि र्मन्त्रैः स्तुवन् सर्वकार्य सिद्ध्यर्थं परमेश्वरं प्रार्थयेत् ,"

,'अर्थात् हाथ जोड़कर अत्यन्त श्रद्धालु बनकर ही इन सन्ध्या के मन्त्रों से स्तुति करता हुआ भक्त सर्वदा सब कामनाओं की सिद्धि के लिए परमेश्वर की प्रार्थना करे।" हमारा यह श्रद्धा भक्तिहीन जीवन ही मेरे विचार में आर्यसमाज की शिथिलता का कारण बन रहा है। हमने दूसरों के सम्मुख भी ऋषि के भक्तिमय स्वरूप को नहीं रखा। आज हमारे लेख और व्याख्यान ऋषि को सुधारक, कुरीतिनिवारक, शिक्षाप्रचारक आदि सिद्ध करने में तो बहुत होते हैं। किन्तु ऋषि दयानन्द प्रभु के कितने अनन्य भक्त और आध्यात्मिक सन्त थे इस सम्बन्ध में प्रायः न तो कोई व्याख्यान ही देता है और न लेख ही लिखे जाते हैं। इसी लिए जैसा हमने जनता के सम्मुख ऋषि का स्वरूप रखा, वैसी रुचि के लोग तो आर्यसमाज में आए, किन्तु अध्यात्म प्रेमी प्रभुभक्तों ने आर्य समाज में प्रवेश न किया, और यदि किया भी तो बहुत कम मात्रा में। अध्यात्म भावना से शून्य मनुष्य ही लोक तथा समाज हित की अपेक्षा अपने स्वार्थों को अधिक मुख्यता देने वाले, और लड़ने झगड़ने तथा कलह करने वाले हुआ करते हैं। इसीलिए आज साधारण सदस्य ही नहीं अपितु कई बड़े २ अधिकारी भी अपने स्वार्थ साधन करने और उसके लिए लड़ाई झगड़े और पार्टियां बनाकर आर्यसमाज को बदनाम

(शेष पृष्ठ १७ पर)

महाभारत ग्रन्थ में प्रक्षेप

[लेखक—श्री स्वामी वेदानन्द सरस्वती, अध्यक्ष, विरजानन्द वैदिक संस्थान]

(१) गणेश की कथा

रामायण तथा महाभारत ये दोनो ग्रन्थरत्न आर्य्यजाति की बहुमूल्य सम्पत्ति हैं। रामायण का महत्त्व द्योतित करने के लिए इतना ही बस है कि रूस जैसे अध्यात्मभाव विरोधी देश के एक विद्वान् को रामायण का रूसी भाषा मे अनुवाद करने के उपरान्त लिखना पड़ा "सीता जैसी पावन चरित स्त्री अन्यत्र असंभव है।" एक क्षण के लिए इसी कवि की कल्पना मान लीजिए। किन्तु ऐसी कल्पना करने वाले कवि की पवित्रता को तो बरबस साधुवाद देना ही होगा। महाभारत का गौरव उसके विस्तार तथा उसके सर्वग्रासी होने के कारण है। यह किसी एक की रचना नहीं है, इसे किसी अन्य अवसर के लिए छोड़ते हैं। अनेकों की रचना होने पर भी इसमें भद्दे प्रक्षेप हुए हैं। हम ऐसे स्पष्ट प्रतीत होने वाले प्रक्षेपों का दिग्दर्शन कराना चाहते है।

यह सभी को विदितचर है कि व्यास जी जब महाभारत बना चुके तो उन्हें यह चिन्ता हुई कि इसे किस से लिखवायें ? तब ब्रह्मा जी की सम्मति से उन्होंने पौराणिक देवता गणेश को स्मरण किया। गणेश ने लेखक बनना तो स्वीकार किया किन्तु एक प्रतिबन्ध के साथ कि मेरी लेखनी रुके नहीं। व्यास जी ने भी इस पर एक प्रतिबन्ध अपनी ओर से लगाया कि बिना समझे लिखना नहीं। जैसा कि उपलभ्यमान महाभारत आदि पर्व के प्रथमाध्याय में लिखा है—

लेखको भारतस्यास्य भव त्वं गणनायक।
मयैव प्रोच्यमानस्य मनसा कल्पितस्य च ॥७७
श्रुत्वैतत्प्राह विघ्नेशो यदि मे लेखनी क्षणम्।
लिखतो नावतिष्ठेत तदा स्यां लेखको ह्यहम् ॥७८
व्यासोऽप्युवाच तं देवमबुद्ध्वा मा लिख क्वचित्।
ओमित्युक्त्वा गणेशोऽपि बभूव किल लेखकः ॥७९

हे गणनायक=गणेश ! मुझ से कथ्यमान तथा मन से कल्पित (रचित) इस भारत का तू लेखक=लिपिकर्ता हो। इसे सुनकर विघ्नेश= गणेश ने कहा—यदि लिखते हुए मेरी लेखनी एक क्षण भी न रुकने पाए तो मैं इसका लेखक हो सकूं। व्यास ने भी उस देव को कहा—समझे तू भी कहीं मत लिखियो, 'ओम्' [स्वीकार है] यह कह कर गणेश भी लेखक हो गया।

जिस समय ये श्लोक बनाए गए, इनमें वर्णित कथांश उससे बहुत पूर्व का है, क्योंकि इसमें प्रयुक्त हुए 'बभूव किल' ये शब्द पूर्वकाल के द्योतक हैं।

हमारा कहना यह है कि यह सारा सन्दर्भ प्रक्षिप्त है। इसका प्रमाण इसी अध्याय में विद्यमान है। देखिये—

तपसा ब्रह्मचर्य्येण व्यस्य वेदं सनातनम्।
इतिहासमिमं चक्रे पुण्यं सत्यवतीसुतः ॥५४
पराशरात्मजो विद्वान् ब्रह्मर्षिः संशितव्रतः।

तदाख्यानवरिष्ठं तु कृत्वा द्वैपायनः प्रभुः ॥५५
कथमध्यापयानीह शिष्यानित्यचिन्तयत् ॥५६

ब्रह्मचर्य्यरूपी तप के द्वारा सनातन वेद को आर पारके [अर्थात् सम्पूर्ण वेद का पूर्ण रूपेण अध्ययन करके पराशरपुत्र, सुतीक्ष्णव्रत, विद्वान् ब्रह्मर्षि सत्यवती पुत्र ने इस पवित्र इतिहास को रचकर द्वैपायन प्रभु (व्यस जी) सोचने लगे, अपने शिष्यों को यह कैसे पढ़ाऊं ?

इससे स्पष्ट है कि व्यासजी ने ग्रन्थ रच लिया था और उसके पढ़ाने [प्रचार करने] की चिन्ता कर रहे थे। ग्रन्थ की रचना का प्रमाण उसका लेखबद्ध होना है। अतः गणेश से उनका कहना कि तू लेखक बन, अशुद्ध है। गणेश जी ने जो प्रतिबन्ध लगाया कि 'मेरी लेखनी रुकने न पावे, वह तभी संभव हो सकता है जब ग्रन्थ लिखवाते समय रचा जाना हो, किन्तु ५४ तथा ५५ श्लोकों आए 'चक्रे' [रचा] तथा 'कृत्वा' [रचके] पद बताते हैं कि ग्रन्थ बन चुका था। अतः गणेश को लेखक बनाने की बात स्पष्ट मिलावट है। इसके प्रक्षिप्त सिद्ध होने पर "तस्य तच्चिन्तितं ज्ञात्वा ऋषेर्द्वैपायनस्य च ॥५७ तत्राजगाम भगवान् ब्रह्मा लोकगुरुः स्वयम् ।" ५७ पू० से आरंभ करके काव्यस्य लेखनार्थाय गणेशः स्मर्यतां मुने ॥ ७४ पू० तथा इससे आगे ७६ वें श्लोक तक का सार सन्दर्भ प्रक्षिप्त है। इसमें व्यास को चिंतित देखकर ब्रह्मा के आने और उसके द्वारा गणेश को लेखक बनने की प्रेरणा है।

कोई यदि कहे कि व्यास जी की इच्छा थी, रचा नहीं था। तो एक तो ऊपर उद्धृत ५४, ५५ दो श्लोकों के विरुद्ध है। तथा इस प्रक्षिप्त सन्दर्भ में भी ऐसा प्रमाण है कि वेद व्यास जी महाभार[त] रच चुके थे। यथा—

उवाच स महातेजा ब्रह्माणं परमेष्ठिनम् ।
कृतं मयेदं भगवन् काव्यं परमपूजितम् ॥६१

उस महातेजस्वी ने परमेष्ठी ब्रह्मा को कह[ा] कि—मैने यह परम पूजित काव्य रचा है।

इससे स्पष्ट सिद्ध है कि काव्य, इतिहास आख्यान जो भी हो, बन चुका है। इस बात[से] अपने रचित ग्रन्थ के विषयों को सुनाकर व्यास जी के मुख से यह कहलवाना कि 'परं न लेखक कश्चिदेतस्य भुवि विद्यते ॥ ७० [=किन्तु संसा[र] में इसका कोई लेखक नहीं है] नितान्[त] असंगत है।

व्यास जी के मुख से ब्रह्मा के प्रति ग्रन्थ [के] जो विषय सुनवाए गये हैं, वे भी सूचित कर[ते] हैं कि वे उस समय बनाए गए, जब [कि] महाभारत का उपलभ्यमान संस्कार हो चुका थ[ा]। इस विषय के वर्णन में एक और प्रमाण इसके प्रक्षिप्त होने का है। ऊपर उद्धृत ५४ वें श्लोक [में] इसे इतिहास कहा है किन्तु 'इतिहासं पुराण[ा]नामुन्मेषं निर्मितं च यत् (६३ पृ०) [इतिहास पुराणों का उन्मेष=खुलासा=सार जो मैं[ने] बनाया है] श्लोकार्द्ध में इतिहास के सारनिर्माण की बात कही है।

अतः जिस भी किसी प्रकार विचारा जाए ५६ वें श्लोक के उत्तरार्द्ध से लेकर ८३ वें तक सार प्रकरण प्रक्षिप्त है। इसीप्रकार अन्य प्रक्षेप भी हैं।

[महाभारत में प्रक्षेप का विषय महत्त्वपू[र्ण] है जिसके एक अंश पर ही इस छोटे से लेख [में] विद्वान् लेखक महोदय ने प्रकाश डाला है। हम आशा करते हैं कि सुयोग्य विद्वान् लेखक इस विषयमें अन्य प्रबल प्रमाण भी पाठकों के समक्ष रखने की कृपा करेंगे।

सम्पादक सा०दे०

क्या विवाह में कन्यादान की क्रिया वैदिक प्रथा है ?

(श्री पं० गंगाप्रसाद जी एम० ए० कार्य निवृत्त मुख्य न्यायाधीश जयपुर)

५ जनवरी सन् १९५२ शनिवार को जयपुर आर्य समाज मन्दिर में एक कुलीन एम. बी. बी. एस परीक्षा पास मुसलिम महिला की शुद्धि हुई और उसी सायंकाल को उसका विवाह राजस्थान नहर विभाग के चीफ इंजिनियर श्री मधुसूदन मित्थल जी के पुत्र श्री अखिलेश्वर मित्थल एम. ए. के साथ हो गया। महिला का वर्तमान नाम श्रीमयी है। पूर्व नाम सरवर आरा बेगम रहमान था। उसके पिता खान बहादुर शेख अबदुल रहमान सिविल सर्जन थे। उनका देहान्त हो गया। माता जीवित है और देहरादून में रहती है।

(२) ५।१।५२ को पूर्वोक्त महिला ने आर्य्यसमाज जयपुर में निवेदन पत्र भेजा था कि वे आर्य्य धर्म को स्वीकार करती हैं उनकी शुद्धि (initiation) का प्रबन्ध किया जाय। तदनुसार उसी दिन ११ बजे समाज के सदस्यों को सूचना दे कर शुद्धि की गई जो मेरी अध्यक्षता में समाज के मन्त्री पं० चन्द्रमणि शास्त्री ने कराई। विवाह संस्कार का कार्य्य भी मेरी अध्यक्षता में पण्डित चन्द्रमणि जी के सहयोग से संस्कार विधि के अनुसार कराया गया।

(३) संस्कार विधि में मधुपर्क व गोदान के पश्चात् वर के हाथ में कन्या का हाथ रखने की क्रिया भी लिखी है। पर वह कार्य्यकर्त्ता के हाथ से होनी लिखी है यद्यपि साधारणतया आर्य्यों के विवाहों में भी पिता माता के हाथ से कराई जाती है और कन्या दान के नाम से बोली जाती है। इस विवाह में कन्या के पिता का देहान्त हो चुका था। माता जीवित है पर उपस्थित न थी और न कन्या के दान करने में उसकी स्वीकृति की आशा हो सकती थी। मैंने नीचे लिखे कारणों से इस विवाह में कन्यादान के नाम से कोई क्रिया न करना उचित समझा।

(४) विवाह में संस्कार विधि के अनुसार सारी क्रियाएं आरंभ से अन्त तक कन्या व वर ही के बीच सम्पन्न होती हैं। पिता या माता का कोई कृत्य नहीं। वर के स्वागत का कार्य्य (जो मधुपर्क क्रिया कहलाती है) कन्या ही करती है, गोदान भी वही करती है। इन सब क्रियाओं के लिये संस्कार विधि में पारस्करगृह्य सूत्र के वचन दिये गये हैं। उन स्थलों में वर "प्रतिगृह्णामि" वाक्य बोलता है उसके लिये भी पारस्कर का प्रमाण दिया गया है। गोदान के पश्चात् कार्य्य कर्त्ता की ओर से वर को ये शब्द कहलाना लिखा है:—

"ओं अमुक गोत्रोत्पन्ना मिमा ममुक नाम्नी-मलंकृतां कन्यां प्रतिगृह्णातु भवान्।" इन शब्दों

के साथ कार्यकर्त्ता कन्या का हाथ वर के हाथ के ऊपर रखता है और वर "ओं प्रतिगृह्णामि" शब्द कहकर वस्त्रदान का मन्त्र पढ़ता व कन्या को वस्त्र देता है। कन्यादान समर्थक ऊपर लिखे वाक्यों के लिये कोई मन्त्र या गृह्यसूत्र का वाक्य नहीं दिया गया। मेरा विचार है कि यदि कन्या दान की क्रिया वैदिक होती तो ऋषिदयानन्द उसके लिये संस्कार विधि में अवश्य कोई मन्त्र या गृह्यसूत्र का वचन देते।

(५) पौराणिक समय में स्त्रियों की स्थिति में बहुत पतन हो गया। वे शूद्रों के समान समझी गई और शूद्रों के समान विद्या पढ़ना भी उनके लिये वर्जित हो गया जैसा कि पुराणवचन है कि "स्त्री शूद्रौ नाधीयाताम्' स्मृतियों में ऐसे वचन बढ़ कर रख दिये गये कि स्त्री का कुमार अवस्था में पिता, गृहस्थ अवस्था में पति और उसके पीछे पुत्र रक्षक होता है,"नस्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति" परन्तु स्त्री किसी दशा में भी स्वतन्त्र नहीं हो सकती। ऐसे ही विचारों का यह परिणाम हुआ कि कन्या-दान की प्रथा चली, अन्यथा कन्या का दान कैसा? उसका दान करना उसको मनुष्यत्व से गिरा कर पशुत्व की श्रेणी में रखना है।

ऋषि दयानन्द ने स्त्री व पुरुष का स्पष्ट रूप से समान अधिकार रक्खा है। पूर्वोक्त क्रिया के लिये भी संस्कार विधि में कन्यादान का शब्द प्रयोग नहीं किया गया और न पिता की ओर से उसका कराना लिखा है, गो प्रचलित पौराणिक विधि के कारण आर्य समाजियों के विवाहों में भी यह क्रिया कन्यादान के नाम से पिता वा माता अथवा दोनों के हाथ से कराई जाती है जैसा मैंने कई विवाहों में देखा है। मेरी सम्मति है कि आर्य्यों के विवाह संस्कारों में कन्यादान के नाम से कोई क्रिया नहीं होनी चाहिये। यदि गोदान के पश्चात् कन्या का हाथ वर के हाथ में पकड़ाने की क्रिया की जाय तो उसी प्रकार की जाय जैसा संस्कार विधि में लिखा है। उससे न्यून वा अधिक नहीं।

आशा है आर्य्य विद्वान् और योग्य सम्पादक महोदय इस पर अपना मत प्रकट करेंगे। विषय महत्त्व का है।

गंगाप्रसाद
(भूतपूर्व प्रधान सार्वदेशिक सभा)
२७।१।५२

[मान्य श्री पं० गङ्गाप्रसाद जी का उपर्युक्त लेख हमें भी आवश्यक प्रतीत होता है। हमें स्मरण है कि कईवर्ष हुए जब हमें आगरामें वैदिक रीति से एक सुशिक्षिता कन्या का विवाह संस्कार करवाने का अवसर प्राप्त हुआ तो उसने 'कन्यादान' करवाने से यह कह कर इन्कार किया कि मैं कोई ऐसी वस्तु नहीं जिसको दान में दिया जा सके। हमने उस समय इस बात को स्पष्ट किया था कि 'कन्यादान' यह शब्द एक विधि के लिये (जिसका लेख में भी निर्देश है) प्रचलित हो गया है किंतु संस्कार विधि में इस शब्द का प्रयोग कहीं नहीं तथा उस विधि का जो संस्कार विधि के लेखमें उद्धृत स्पष्ट शब्दानुसार कार्यकर्त्ता द्वारा की जानी चाहिये

तात्पर्य केवल इतना ही है कि कन्या के भरण पोषण तथा सुख सुविधादि विषयक उत्तरदायित्व पति का हो जाता है। इस लिये 'कन्या दान

इस शब्द का प्रयोग बन्द हो जाना चाहिये यह मान्य लेखक का कहना ठीक ही है। पौराणिक काल में इस कन्या दान को बहुत अधिक और अनुचित महत्त्व देते हुए बाल्य विवाह की प्रथा प्रचलित की गई। अष्ट वर्षा भवेद् गौरी, नव वर्षा तु रोहिणी। दश वर्षा भवेत् कन्या अत ऊर्ध्वं रजस्वला॥" (पराशर स्मृति, शीघ्र बोध।) इत्यादि वेद विरुद्ध कल्पना करके यह कहा गया कि ७, ८, ९, वर्ष की आयु में जो कन्या दान करता है वह स्वर्ग भागी होता है। वेद में इस का कहीं आधार नहीं। इस विषय में वेद का उपदेश इतना ही है कि 'सोमो वधूयुरभवदश्विना स्तामुभा वरा। सूर्यां यत् पत्ये शंसन्तीं मनसा सविता ददात्॥
ऋ १०।८५।९

अर्थात् सौम्य गुण तथा वीर्य युक्त युवक जब वधू की कामना करता है और सूर्य कान्ति समान तेजस्विनी कन्या भी मन से पति की कामना करती है तब सविता—उस कन्या का पिता उसे वर के प्रति विधि पूर्वक देता है। इस मन्त्र में कन्या दान का मूल अवश्य है पर उसकी प्रधानता नहीं है। वर वधू की ही परस्पर प्रीति और गुण कर्म स्वभाव के मेल की प्रधानता है। ऐसा देख कर पिता विधि पूर्वक उस कन्या को योग्य वर के प्रति सौंप देता है। इस लिये यदि माता पिता जीवित हों तो वे विवाह संस्कार के समय इस विधि में भाग लें तो उसे अवैदिक नहीं कहा जा सकता किन्तु ऐसा करना उचित ही होगा। यदि वे न हों अथवा किसी कारण से न आ सकें तो उस विधि को कार्य कर्ता ही करा सकता है। यही ऋषि दयानन्द का तात्पर्य प्रतीत होता है।

सम्पादक सा० दे०]

बुद्ध–काल से चली आ रहीं कुछेक परम्पराएँ

(ले० श्री प्रो० आत्मानन्द जी विद्यालङ्कार देहली)

---

(१) सामान्यत: देखने मे ऐसा प्रतीत होता है कि हमारे देश के वेद-शास्त्रानुयायी विद्वान् और जनता का पर्याप्त भाग महात्मा बुद्ध और बौद्धों को अपना प्रबल प्रतिद्वन्द्वी समझता है। परन्तु यज्ञयागादि के समय "संकल्प" पढ़ते समय 'बौद्धावतारे' ऐसा पद भी लोग उच्चारण करते या लिखते हैं। पुराणोक्त दशअवतारोंमें बुद्ध को अवतार भी मान लिया गया है। पिछले १०० वर्षों से विदेशी विद्वानों ने और कुछ स्वदेशी विद्वानों ने इतनी अधिक खोज की है कि बौद्ध धर्म के इतिहास का विशाल और विस्तृत ज्ञान इस समय हमारे सामने आ गया है। गहरा देखने से यह भी प्रतीत होता है कि बौद्ध धर्म और बौद्धकाल का प्रभाव भारत पर भी गहरा पड़ा। आज से लगभग ७५० वर्ष पहले बौद्धधर्म भारत से उठ गया पर उससे पहले लगभग १७०० वर्ष (१७ शताब्दियां) भारतीय वैदिक धर्म से यह टक्कर लेता रहा। अपनी बहुत सी परम्पराएँ प्रचलित हिन्दू-धर्म में डाल गया। घरके अन्दर के विरोधी के प्रबल हो जाने पर हिन्दू-धर्म के विद्वानों और रक्षक राजाओं ने देश, धर्म, संस्कृति की रक्षा में भरसक प्रयत्न किया। इन १७ शताब्दियोंमें कभी बौद्ध विद्वान् और राजा प्रबल हो जाते और कभी ब्राह्मण-धर्मानुयायी विद्वान् और राजा। पर अन्त में हिन्दू-धर्म ने बौद्धधर्म को उखाड़ दिया। वह नष्ट नहीं हुआ, तिब्बत, चीन, कोरिया, जापान, स्याम, अनाम, इंडोचाइना, बर्मा, लङ्का आदि में वर्तमान रहा। इस देशमें भी अपनी अनेक प्रवृत्तियाँ छोड़ गया। उन प्रवृत्तियों और दूसरी प्रवृत्तियों का मिश्रण बुद्ध-काल से अब तक आ रहा है। इन बीसियों परम्पराओं में से कोई परम्परा किसी देश खण्ड या किसी काल में बढ़ जाती है कभी कोई परम्परा किसी देशखण्ड या काल में क्षीण हो जाती है। इन २५०० वर्षों में भारतवर्ष की मुख्य प्रवृत्तियाँ, परम्पराएं और समस्याएँ लगभग एक जैसी ही रही हैं। इन्हीं का दिग्दर्शन कराना इस छोटे से लेख का उद्देश्य है। हम पाठकों को यह भी सकेत करना चाहेंगे कि जब इस देश की बहुत सी समस्याएँ और रोग वही है तो समय समय पर हमारे इतिहास में जिन महापुरुषों और स्त्रियों ने इन रोगों को दूर करने का यत्न किया उनके अनुभवों से लाभ उठाकर हम भारत की आधुनिक समस्याओं और रोगों को दूर करने का प्रयत्न करें। जब रोगी भी वही हो और उसका रोग भी लगभग वही हो तो

पूर्वजों के अनुभव से लाभ उठाना ही चाहिए।

(२) घर के अन्दर ही प्रचलित भ्रमों,कुरीतियों और अत्याचारों को देख कर श्री बुद्ध और श्री महावीर आदि ने अपने अपने मत का प्रचार किया और इन भ्रमों, कुरीतियों और अत्याचारों का खण्डन किया। यहां के प्रधान धर्म से विरोध की प्रवृत्ति मुसलमान, ईसाई सिक्ख, जैन आदि के रूप में अब भी विद्यमान है। भारत के अछूत, मुसलमान, ईसाई आदि में पर्याप्त संख्या उन लोगों की भी होगी जिन के पूर्वज बौद्ध थे।

(३) वेद शास्त्रों की निन्दा, प्रमाद और विरोध बुद्ध काल में भी वर्तमान था। लगभग इसी समय यास्कमुनि अपने निरुक्त में इन निन्दकों के प्रतिनिधि कौत्स का मत उद्धृत करते हैं। तब से लेकर आज तक वेद शास्त्रों की निन्दा, कुत्सा करने वाले लाखों लोग इसदेश में मिलेंगे। माना करोड़ों श्रद्धा करने वाले भी अब विद्यमान हैं। निन्दकों और स्तोताओं के वर्ग घटते बढते रहे पर प्रवृत्ति बुद्ध काल से अब तक जारी है।

(४) आश्रमों में चिरकाल से आचार्य लोग अपने अपने शास्त्र पढ़ाते आ रहे होंगे। परन्तु सूत्र ग्रन्थों का वर्तमान रूप उसीकाल से चला आ रहा प्रतीत होता है। पाणिनि-व्याकरण, षड्दर्शन. धर्म,गृह्य श्रौत सूत्रादि सूत्र ग्रन्थों के दूरदर्शी आचार्यों ने भाँप लिया था कि भारत की जनता में अशक्ति, प्रमाद, आलस्य,निन्दा, उपेक्षा और विरोध जाग उठे हैं सम्भवत: नाना विद्याओं का ह्रास और क्षय हो जाय, इसलिए उन्होंने वेदानुयायियों के विशाल वाङ्मय को स्वच्छ, स्पष्ट, क्रमबद्ध, स्मरणीय सूत्रों में बद्ध कर दिया। फारसी यूनानी संस्कृतियों के सम्पर्क और संघर्ष में हम भी अपना ज्ञान परिमार्जित और सुसंबद्ध कर दिखावें, सम्भवत: यह भावना भी काम करती हो। विशेषत: यूनानियों का संघर्ष स्पृहणीय था। इन्हीं यूनानियों की ज्ञानराशि से तो यूरोप की सारी संस्कृति दीपित हुई है। यह विशाल साहित्य, उत्थान-पतन के काल प्रवाह में से गुजरता हुआ हम तक आ पहुँचा है। माना हमारी अशक्ति, ह्रास, आलस्य, प्रमाद और उपेक्षा के कारण कुछ अंश नष्ट भी हो गया। उन आचार्यों की दूरदर्शिता और उपकार बुद्धि को हमारा नमस्कार हो।

(५) पतञ्जलिमुनि अपने व्याकरण महाभाष्य में जितनी वेद शाखाएं बताते हैं उनमें से लगभग १० ही आजकल मिलती हैं। जो मिलती हैं उनका स्वरूप उस समय से अब तक लगभग वही आरहा है। इस देश की साधारण जनता की मूक श्रद्धा ने और ब्राह्मणों की श्रद्धा, तपस्या, स्मृतिशक्ति, संयम ने इन वेदों की, ब्राह्मण ग्रन्थों की, और उपनिषदारण्यकादि की रक्षा की है। बाहर से असंख्य आक्रमण हुए, राष्ट्र के अपने अन्दर स्थान स्थान पर विप्लव हुए, दुर्भिक्ष हुए, बीमारियां आईं, बौद्ध, जैनादि विरोधी हुए, और जनता की अपनी उपेक्षा, आलस्य प्रमादादि दोष वर्तमान रहे परन्तु अपने वेदों, शास्त्रों की रक्षा जाति ने अपना सर्वस्व समझ कर की। साथ ही, वैदिक, संस्कृत, प्राकृत, वाङ्मय की रचना भी काल काल में लोग करते रहे। लोग चतु:षष्टि कलाओं में से कई कलाओं की भी रक्षा

करते रहे। स्मरण रहे जिस भारतीय प्रजा के हाथ में यह सम्पत्ति रही है वह परम्परा से बाल विवाह से उत्पन्न है और नाना कष्टों में ग्रस्त है। संसार के इतिहास में इतने लम्बे काल में इतनी बहुमूल्य सम्पत्ति ऐसे हाथों में से गुजर कर वर्तमान रही हो,दूसरी जगह इसका उदाहरण मिलना कठिन है। इस ज्ञानराशि से पिछली २५०० शताब्दियों में देश देशान्तरों ने भी लाभ उठाया है। अब पिछले १५० वर्षों से सारे भूमण्डल ने शनैः शनैः चुपके चुपके इस ज्ञानराशि की खोज, रक्षा, वृद्धि का बीड़ा उठा लिया है क्या इस ज्ञान राशि में कोई दिव्यता और अमरता विद्यमान है ?

(६) ईश्वर और वेद से विरोध कर ईश्वर के स्थान में बुद्ध, वेद के स्थान में त्रिपिटकादि को बौद्धों ने स्वीकार कर लिया। लोकयात्रा के लिए एक इष्टदेव और उसके आदेश को मानना जनता के लिए और व्यक्ति के लिए अपरिहार्य है। इसको बौद्धों ने 'बुद्धं शरणं गच्छामि' 'सङ्घं-शरणं गच्छामि' धर्मं शरणं गच्छामि' इन तीन तत्त्वों में परिवर्तित कर लिया। तब से ये तीन तत्त्व, इष्टदेव, धर्म और संघ यहूदी, पारसी, ईसाई, जैन, मुसलमान, सिक्खादि सम्प्रदायों ने स्वीकार कर लिए। प्रत्येक सम्प्रदाय एक इष्टदेव, एक धर्म पुस्तक, एक संघ को लेकर संसार-यात्रा करता है। क्या 'संघे शक्तिः कलौयुगे' की प्रवृत्ति भी इसी काल से चली है ? जनता के हृदय से मुक्त. कण्ठ होकर निकली प्रवृत्तियां ही तो लोकोक्तियां बन जाती हैं।

(७) सम्प्रदायों के परस्पर कलह भी इसी समय से प्रवृत्त हैं। लोभ, तृष्णा, विलास, भ्रम, अज्ञान,कुरीतियों ने ह्रास और क्षय पैदा किया। इससे मतिभेद बढ़ता गया। ऐकमत्य घटता गया। इस प्रकार ऐकमत्य घटने से दिन प्रति दिन, मत, सम्प्रदाय, और अन्ध परम्परा बढ़ गई। आगे आगे ये कुप्रवृत्ति बढ़ती गई। सामाजिक जीवन में यह भेद इतना बढ़ा कि आज २५०० वर्ष बाद लगभग ३००० जातियां उपजातियां बन गई हैं। इस भेद, नानात्व, विभाग को दूर करने का प्रयत्न बुद्ध से गान्धी तक सत्पुरुष करते रहे। पर इस विभाजन की परम्परा २५०० वर्ष से आज तक लगभग वैसी ही वर्तमान है।

(८) संन्यासी, भिक्षु, यति, वैरागी लोगों के अनेक सम्प्रदाय अपने मठ अखाड़े बनाकर तभी से चल रहे हैं और आगे आगे शिष्य परम्परा चलाते जाते हैं। ये जनता में क्षणिक वैराग्य भी पैदा करते हैं। ये जनता में अकर्मण्यता, संसार की असारता, अनाशा भी फैलाते हैं। लोगों को वैदिक कर्मयोग से विमुख भी ये करते रहते हैं। पहले बौद्ध जैन यति ये काम करते थे फिर शाङ्कर दशनामी संन्यासी लोगों ने यह काम जारी रखा। हां, सच्चे वैराग्य, ज्ञान, लोकोपकार उपदेशादि की परम्परा को भी इन्हीं ने इन २५०० वर्षों में जारी रखा। प्रवृत्ति और निवृत्ति मार्ग को अत्यन्त विच्छिन्न भी कर दिया। मन्दिर, मूर्ति, मूर्तिपूजा, नैवेद्य, मठ, पुरोहित, पूजक आदि की परम्परा भी भारत के सभी जैन, बौद्ध, शैव, वैष्णव, शाक्त, सौर, गाणपत आदि में अखण्ड रूप से वर्तमान रही है। इस परम्परा का जरा सा भी सुधार करना भारत में बड़ा दुष्कर

कार्य है। बौद्धों के दूर होने पर चैत्यादि तो शिवालय बनगये। बहुत से शिवालयों को तोड़ कर मुसलमानों ने मस्जिदें बना लीं। मुसलमान फकीर हिन्दू साधुओं से टक्कर लेते रहे।

(६) स्थापत्यकला, मूर्तिकला, संगीत, नृत्यकला, चित्रकला, नाना शिल्प, चतुःषष्टि कला और इनके लक्षण शास्त्र भी नानारूपों में से गुज़र कर भारत में क्षीणरूप में भी अपनी परम्पराओं को अबतक जारी रखे हुए हैं। भूमण्डल के अनेक अद्भुतालयों में इनकी पर्याप्त सामग्री विद्यमान है।

पारस के शाह दारा प्रथम के आक्रमण से लेकर, फारसी, यूनान, शक, यूची, कुषाण, पार्थिव, हून, तुर्क, अरब, पठान, मुगल, पोर्चुगीज, डच, फ्रेंच, अंग्रेजों के हमले आज कल तक जारी रहे हैं। रूस, चीन का साम्यवाद आगे आगे सरकता तिब्बत तक आ गया है। दक्षिण भारत में साम्यवाद कुछ जड़ पकड़ रहा है। आगे की कौन जाने ? सप्तसिन्धु क्षेत्र की समस्या भी दारा से लेकर आजतक पाकिस्तान के रूप में जारी है। सप्तसिंधु क्षेत्र पिछले २५०० वर्षों में कभी भारत वर्ष का भाग रहता है कभी स्वतन्त्र, और कभी विदेशियों के हाथ में। इसकी समस्या ने भारत को कभी चैन नहीं लेने दिया। बाहर से आई जातियों और उनकी संस्कृतियों को अपने अन्दर मिलाना भी जारी है। आज भी यह मिश्रण जारी है।

(११) विदेशों से सम्पर्क और ज्ञान क्षेत्र, यात्रा क्षेत्र, वाणिज्य क्षेत्र, श्रम-श्रमिक्षेत्र में आदान प्रदान बुद्ध समय से विशेष जारी है। पारस, यूनान, चीन, अरब, कोरिया जापान, इण्डोनेशिया, पूर्वदिश स्याम, अनाम, वर्मा, लङ्का, नैपाल, तिब्बत से जो आदान प्रदान इन २५०० वर्षों में रहा उसको देश देशान्तर कृतज्ञता पूर्वक स्मरण करते हैं। और अब अमेरिका, यूरोपादि देश भी उसमें शामिल हैं। भारत से सम्पर्क जोड़ने को सब देशों के लोग आज तक लालायित रहे हैं।

(१२) पाणिनि - कात्यायन - पतञ्जलि का त्रिमुनि व्याकरण का, भारत में तब से आज तक एकच्छत्र राज्य है। योग और ध्यान की परम्परा भारत में, बाली, में और वर्मा में विद्यमान है।

(१३) संस्कृत भाषा का काव्य नाटक साहित्य और लक्षण शास्त्र के ग्रन्थ-दोनों की परम्परा आज तक जारी है। इनकी शाखा प्रशाखाएं भारत में भाषा जनपदों की भिन्न भिन्न प्राकृतों और आधुनिक जनपद भाषाओं की परम्पराओं में वर्तमान हैं। भरतमुनि के नाट्य शास्त्र से जो लक्षण ग्रन्थ शुरू हुए दण्डी, भामह, मम्मटादि की परम्परा में से होते हुए जनपद भाषाओं के लक्षण ग्रन्थों में उसी परंम्परा को जीवित रक्खे हुए हैं। काव्य नाटकादि में भास ने यदि उदयन (बुद्ध कालीन) को अपने नाटकों का नायिक बनाया या पुरातन आख्यानों से कथा वस्तु ली तो कालिदास अश्वघोष, बाण, भवभूति आदि ने भी नायक और कथावस्तु में उसी परम्परा को जारी रखा। किसी न किसी रूप में, पौराणिक उपाख्यान, रामायण, महाभारत, इतिहासादि में से ही कथा वस्तु लेने की परम्परा सारे वाङ्मय में आज तक जारी है।

(१४) मनुस्मृति, याज्ञवल्क्य स्मृति आदि धर्म शास्त्रों का वर्तमान स्वरूप भी इन्हीं २५०० वर्षों में बना है। उसकी परम्परा में दसियों स्मृतियाँ पराशर लिखितादि और इन स्मृतियों पर टीकाएँ और निबन्ध, भारत के सामाजिक नियमों को जारी रखे हुए हैं। आधुनिक कानून भी इसके आधार पर ही पहले बनाया गया। कौन कानून ज्ञाता होगा जो इसी परम्परा के बिना जाने भारत और उसके कानून का अच्छा ज्ञाता बन सकेगा? इन धर्म शास्त्रों के अर्थ करने के सिद्धान्तों की (जो मीमांसादि शास्त्र बताते हैं,) परम्परा को कुमारिलादि आचार्योंने ऐसा चमकाया कि संसार आज भी मीमांसा शास्त्र के इस अंग पर मुग्ध है और उसे प्रमाण मानता है। बौद्धों ने भी सामाजिक व्यवहार में अपनी नई स्मृतियां न बनाकर अपने को बहुत कुछ इसी कानून में बाँध रखा था।

(१५) बुद्ध काल से जो ब्राह्मण श्रमण संघर्ष चला वह हिन्दू-अहिन्दू-संघर्ष के रूप में अब तक जारी है। जब बौद्ध, विदेशी बौद्धों से मिलकर भारत की प्रधान अंग, हिन्दू जनता को हानि पहुँचाते, तो भारत के अपने अन्दर से विद्वान्, आचार्य और राजा उत्पन्न होकर इस देश की, धर्म की, संस्कृति की रक्षा करते। भारत के महापुरुषों की परम्परा में पाणिनि, यास्क, पतंजलि से लेकर वात्स्यायन आदि में से होकर उदयन, वर्धमान यह परम्परा जारी रही। शंकर कुमारिल ने भी यही किया। भक्तिकाल, राजपूत-काल, मराठा, सिक्ख यही कार्य करते रहे। विक्रमादित्य, पुष्यमित्र, आन्ध्रराजा, गुप्तराजा, हर्षवर्धन, भोज, राजपूतादि भी यही करते रहे। स्थूलरूप से यों भी कह सकते हैं किले के अन्दर भारत का प्रधान अंश हिन्दू धर्म विद्यमान है उस पर जो हमला होता है उसकी रक्षा इस जाति के वीर करते आए हैं। हम कभी हारे हैं और कभी जीते हैं। यूं तो पिछले २५०० वर्षों का इतिहास मुख्यतया इसी हिन्दू-अहिन्दू संघर्ष का इतिहास है। आज भी यह समस्या ज्यों की त्यों है। यहां तक कि हिन्दू जाति के सच्चे हितैषियों को इसी संघर्ष की चिन्ता के कारण आज भी नींद नहीं मिलती। फिरभी लोग कहते हैं कि हिन्दू-विरोधी शक्तियों को कुछ न कहो। उस तरफ से आंख मूंद लो। भाई यह सिरदर्द तो हमें २५००वर्ष से है। इसे भुलाएं तो कैसे भुलायें?

(१६) तक्षशिला, उज्जयिनी, काशी, पाटलिपुत्र और दक्षिण के विद्याकेन्द्रों की परम्परा और तामिल साहित्य की परम्परा, नालंदा, विक्रमशिला वलभी और उत्थान, पतन, वृद्धि-क्षय के चक्र में से होती हुई आजतक पण्डित परम्परा में वर्तमान है। वर्तमान विश्वविद्यालयों की नींव में और विकास में सैकड़ों ब्राह्मणों की तपस्या, विद्या, प्रेम, श्रद्धा, और मनोयोग का अंश मिलेगा। विदेश में विख्यात विवेकानन्द, रामतीर्थ, रवीन्द्र, जगदीशचन्द्र, रमण, राधाकृष्णन् नरसिंहराव आदि से जाकर पूछना चाहिए कि उन्हें प्रेरणा और चेतना मिलने में भारत के विद्वान् ब्राह्मणों, यहां के शास्त्र और परम्पराओं का कितना हाथ है? अब भी आपको ग्रन्थों शास्त्रों को कण्ठस्थ कर उनकी परम्परा को जारी रखने वाले भारत में केन्द्र भी मिलेंगे और वंश

भी विशेषतया ब्राह्मण वंश।

(१७) हां अच्छी परम्पराओं के साथ बुरी परम्परा भी जारी हैं। ऊंच-नीच का भाव, पशुहिंसा, बालविवाह, छोटी आयु में संन्यास, चेले मूंडना, जाति का अति कोमल स्वभाव, भावावेश में आ जाना, अन्ध परम्परा, बाह्यलिंगों की प्रधानता, आडम्बर प्रेम, भीरुता, धन में आसक्ति, श्रद्धाडम्बर, संकोच की नीति, डरकर मध्य की ओर या दक्षिण में खिसकते जाना, जनतन्त्र भावना की कमी, अकर्मण्यता, असभ्य-जातियों से उपेक्षा, करोड़ों का अछूत रहजाना, मठों, मन्दिरों, तीर्थों की वृद्धि, पाखण्डवृद्धि, देवतार्पण चढ़ावे को पण्डों का खा जाना, आर्षग्रन्थों की उपेक्षा, अनार्षों की रचना, तथा तथ्य (fact) से उपेक्षा,कल्पना प्रधान,गप्प प्रधान साहित्य से प्रेम अपने धनदाताओं को उनकी मनोवांछित व्यवस्था दे देना, धर्म पुस्तकों में प्रक्षेप, ये और ऐसी प्रवृत्तियां भी चिरकाल से आजतक जारी हैं और हमें अपनी दृष्टि और दूसरों की दृष्टि में गिराती हैं। हज़ार प्रयत्न करने पर भी इन समस्याओं का समाधान आजतक नहीं हुआ।

(१८) चिरकाल से यह हमारा देश एक हाथी के तुल्य है। यह हाथी चिरजीवी है। पर इस हाथी के शरीर में बहुत से फोड़े-फुंसी हैं और उसे बुखार भी है। भाई! कितनी कुनाइन पिलाओगे और किस किस फोड़े फुंसी का इलाज करोगे? पर इस हाथी को यह वरदान मिला हुआ है कि तेरी आयु की कोई अवधि नहीं। इसको चिकित्सक भी बढ़िया मिलते हैं। उन्होंने भी निश्चय किया हुआ है कि हम इसका इलाज अवश्य करेंगे। अब बताइये इस हाथी को क्या करें?

(१९) यदि इन परम्पराओं की सूची बनावें तो ये परम्पराएं निम्न लिखित हैं।

(१) वेदशास्त्र परम्परा
(२) सूत्र ग्रन्थ परम्परा
(३) काव्य नाटकादिसाहित्य
(४) इन काव्यों के लक्षण ग्रन्थ
(५) चक्रवर्ती राज्यों और गण तन्त्रों की परम्परा
(६ संन्यासी
(७) ऊंच-नीच का भाव
(८) पशुहिंसा
(९ हिन्दु अहिन्दू संघर्ष
(१०) मठ, मन्दिर, पण्डे, पुरोहित तीर्थ
(११) इष्टदेव, संघ, धर्म ग्रन्थ
(१२) बाल-विवाह
(१३) जातियां, उपजातियां
(१४) फूट, मतभेद, अनैक्य
(१५) भावावेश
(१६) जाति का स्त्रीस्वभाव - अतिकोमलता, मण्डनप्रेम
(१७) ब्राह्मण-संन्यासी से प्रेम
(१८) पातिव्रत्य
(१९) समय समय पर वीरों सन्तों आचार्यों का उदय
(२०) कभी उत्थान, कभी पतन
(२१) उत्थान-पतन, उच्चता, नीचता के

सभी उदाहरणों की सत्ता, उच्च से उच्च, नीच से नीच दोनों की सत्ता

(२२) प्रस्थान त्रयी - उपनिषद्-गीता-वेदान्त-दर्शन, का प्रचार

(२३) मूर्तिपूजा

(२४) धर्म अर्थ, काम मोक्ष, में और ज्ञानकर्म उपासना में, सन्तुलन (Balance) का अभाव, कभी किसी की वृद्धि, कभी किसी का क्षय

(२५) दिल का हलका होना और छोटी आयु, विलाप बहुत करना।

(२६) मत मतान्तरों की उत्तरोत्तर वृद्धि। स्थिर राज नीति का अभाव।

(२७) व्यक्ति की प्रधानता और समष्टि की गौणता

(२८) धर्म ग्रन्थ में प्रक्षेप

(२९) दूसरे देशों का हम पर हमला। दूसरे देशों का हमसे बहुत कुछ सीखना

(३०) यह सूची समाप्त नहीं होती। केवल निर्देशक है। दिग्दर्शन मात्र है। विदेशी भी हमारे देश के गुण दोष लिखाते आये हैं। यूनानी मेगस्थनीज़ से लेकर आज तक यूरोपियन जातियों ने हमारे देश को जानने में बड़ा प्रयास किया है। आइये पाठक हम भी ज़रा अपने देश में गहरा पैठें। इसको जानें। यदि २५०० वर्ष से हमारा देश लगभग सुख दुःख में वैसे का वैसा ही है तो हमारा देश तो एक पहेली बन गया। क्या इसका रोग याप्य है। पर सारा संसार इसके गुणों पर भी तो मुग्ध है। हां, इसके दोषों और कमजोरियों के कारण इससे घृणा भी करता है इस पर हमले भी करता है फिर भी इसे मारना नहीं चाहता, इसका सर्वलोप होने नहीं देता। इसमें कौन सा रहस्य है? क्या इस दुर्बल, दुःखी देश के पास कोई पार्थिव और आध्यात्मिक सम्पत्ति है?

A BIRD'S EYE VIEW OF VEDIC PHILOSOPHY.

(Paper read in the first all Burma-Indian Culture conference in Judsom Assembly Hall Rangoon on 28-12-51).

A bird flying in the air can see only a contour of the country below. Similarly in this small paper it is not possible to touch more than a very few salient features of Vedic Philosophy. The Vedas are regarded by Aryas as the first religious scriptures of mankind and the history of Aryan life and Aryan thought covers such a vast period consisting of millinium s of important eras that even to count mere land-marks, needs much time and much research work. When we read in ancient books on astronomy that the world we live in is 1970 millions of years old, it sounds fabulous, but equally staggering and unbelievable appear the figures given by modern scientists:—

> "Today we know that the radioactive minerals are in reality geological clocks, and they record more accurately than in any other way the age of the stratum in which they occur. In a uranium mineral for example, each 1 percent of lead in terms of the quantity of uranium signifies the lapse of a period of 80 millions".
>
> "Every cubic centimetre of volume of helium per gram of uranium in a uranium mineral signifies 9 millions of years".
>
> "The carboniferous rocks tested by this new method appear to have an age of some 350 millions and the oldest Archean rocks of over 1500 millions". (vide Soddy's Science of Life P. 101).

A people so ancient, adherents to the Vedas from timer immemorial, upto today, cannot be expected to have remained stationary in philosophical thought all along. There must have been numerious currents and counter currents in Aryan thought from age to age, and Vedic philosophical systems could not have remained immune from complex influences.

However it is a wonder of wonders that the Vedic Philosophy has maintained a most durable continuity. The Vedanta of Vyas; the Mimansa of Jaimini, the Sankhya of Kapila, the Yoga of Patanjali, the Nyaya of Gotam, the Vaisheshik of Kanad, all the six systems of orthodox Hindu Philosophy receive their

sanction from the Vedas. It is a mistake to call them six different and differing schools. Studied deeply they are only different streams, rising out of a common fountain head, flowing in different channels and growing narrower or wider according to different environments. Even Charvaka, Buddhist and Jain philosophies which are heterodox and anti-Vedic and claim independent origin have a long common tradition behind, and ethical aspect of Indian philosophy is just the same in Lord Budha's Dhammapada, as in Lord Krishna's Gita or more ancient Upanishads.

Indian philosophers have often been tabooed as idle dreamers, some times justly for their fruitless speculations, but most often by those whose gross outlook does not allow them to appreciate things of ultimate and permanent values. But our glorious past of amazing durability is a strong proof that our philosophical outlook must have been realistic and bold. उत्तिष्ठत, जाग्रत, प्राप्य वरान्निबोधत।

"Rise, Wake up and enjoy the point of your achievements" has been our motto through and through.

The first note-worthy point in Vedic philosophy is a belief in existence of permanent values. Even fleeting phenomena should have a permanent unchanging essence to rest upon. In the Chhandogya Upanishat we read:—

(1) सदेव सोम्येदमग्र आसीत्। In the beginning there was sat or eternal being.

(2) एक आहु। ...असदेव। ...... तस्मादसतः सद्जायत। Some say there was non-existence in the beginning...so that from non-existence came existence.

(3) कुतस्तु खलु सोम्यैवं स्यादिति ...कथमसतः सज्जायेत।

How can it be, dear ? How can existence come out of nothing? This is the corner stone of Vedic Philosophy. Sat cannot come out of Asat. Something cannot come out of nothing.

The world we seek to explain is sat or real and its basis too should be real. In Yajur Veda we find :—

ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्

This Jagat which is changeful is pervaded by an unchangeable permanent entity called God.

In the Rig Veda we find :—

नासदासीन्नो सदासीत्

Non-being it was not. Being it

was not.

Some people think that it is a conundrum. But it is not correct. Not-being is denied because from nothing, this world that is,could not have come out. When being is denied, it means the existance of phenomenal world, which has the existence of practical value. Such an existence was not. It had to be brought out.

Vedic philosophy takes the existence of spirit as an axiomatic truth. Decartes said, "Cogito ergo sum." As I think therefore I am. Thus for Decartes the existence of spirit was an inference from the existence of thought. Later philosophers, such as Locke & Berklay worked on the theory, but everybody knows how the stream of the philosophy of spirit with which cartes began got lost in the desert of Hume's pure sensationalism. Shankarcharya holds that spirit is self-lumirous and Gotam of Nyaya compares it with a lamp. A lamp does not need another lamp to be seen. Similarly the existence of spiritual being is an axiomatic truth. I am. I think that the tripartite division of mind into three functions, knowing, willing and feeling, is incomplete. The Indian division of mind into four compartments, is more sound मन (feeling), बुद्धि (knowing), चित्त (willing) and अहंकार (Ego- consciousness) are the four functions of our inner organ. We are conscious of our existence intuitively. I can deny any existence, but not my own.To say to my self, "I am not" is absurd. This is the starting point of all philosophical investigations. In all knowledge we proceed from known to unknown, and the most known thing to me is my own self.

The next point is that there is something else too that is not I.I see. I hear. And the eye with which I see, or the ear with which I hear is not I. It is something distinct. Something that is not spirit. You can call it matter, something that I use as a tool. In fact it is the threshold where spirit and matter meet.

What is the relation between spirit and matter ? It is a very knotty problem. Is matter a mere illusion, or a mere mode of the spirit? Shankracharya's Maya or illusion theory and Ramanujarya's qualified monism are well-known to the students of Indian Philosophy. The Vedas clearly recognize the distinction between spirit and matter. The Rig Veda says metaphorically :—

द्वासुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृत्तं
परिषस्वजाते।

तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्ति, अनश्नन्नन्यो
अभिचाकशीति ॥
(Rig. Veda I. 164 20)

Two beautiful, co-eternal and loving birds abide on the same tree (matter). One of these, the soul, tastes the fruit (of Karma) while the other (Supreme Spirit) supervises it without tasting.

The world is neither exclusively material, nor exclusively spiritual. Spirit and matter go hand in hand. Swami Dayanand, one of the greatest philosophers of his age, holds that God, soul and matter are three distinct and co-eternal entities, without positing which, the various phenomena of nature from electronic activities upto the subtle display of a well-developed human mind cannot be explained. Physical sciences have failed to explain human institution on purely material basis, and spiritual monism has failed to satisfy the scientific aspirations of the present age. Science and religion should find a happy co-ordination in philosophical thought, Swami Dayanand's interpretation of Vedic philosophy holds out ample prospects for such a corrdination. If I am God or God is I, then what is the meaning of right and wrong, vice and virtue, of bondage and emancipation ? Similarly if all is inert matter and this world is a fortuitous transformation of matter only, then knowledge and ignorance, right and wrong, researches and inventions honesty, violence, all become meaningless terms. The great modern scientist Max Planck has rightly observed that the religious element in his nature must be recognised and cultivated, if all the powers of the human soul are to act together in perfect balance and harmony". And all philosophy should take a due notice of it.

The Upanishat says:-

आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेव च ।

Know that thou art the charioteer and thy body thy chariot, Lord Buddha says:—

यस्सिंद्रि यानि समथं गतानि,
अस्सा यथा सारथिना सुदन्ता ।
(धम्मपद-अर्हन्त वग्ग)

"He who controls his senses,as a wise charioteer, his horses etc." This is the moral philosophy of the Vedas

and it is based upon bold metaphysical foundation.

Sometimes it has been insinuated that Vedic Philosophy is pessimistic and therefore misfit in this age of action. But the charge is absolutely unjustifiable. There have been excrescences in later philosophical literature, I admit, but they were quite foreign to the Vedas. The over-emphasis on the existence of pain, total negation of happiness in life and, gloomy chilling outlook of the world are nowhere met with in the Vedas. The Rig Veda begins with the praise of God, as रत्नधातमम् (giver of most precious gems), सत्यश्चित्र-श्रवस्तमः(Holder of a real and wonderfully beautiful world), पितेव सूनवे (like a father to his son) etc. The Vedas nowhere depict the world as an abode of misery. There are prayers for long life (जीवेमशरदःशतम्), for wealth (वयं स्याम पतयोरयीणाम्), for progeny (प्रजाभिरग्ने अमृतत्वमश्याम). The Vedic Karma philosophy without which the philosophy of spirit or chit is meaningless spurs man up for action. उद् बुध्यध्वं समनसः सखायः। (Rig. Veda X. 101, 1) "Friends, rise up with one mind", It explains the genesis of pain very satisfactorily. Man is not an inert,inanimate being, a passive recirpient of pleasure. He must act and in action lies the secret of his emancipation.

कुर्वन्नेवेह कर्म्माणि जिजीविषेच्छतं समाः
एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे।

"The only way to attain emancipation is to perform action without a break. For, action only should a man desire to line a life of a full hundred years".

Action is happiness.In-action is pain. Therefore it is said in Bhagwad Gita,

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।

Thou art privileged to do actions only. Care not for the fruit. The principle of transmigration of soul, which is another name for the continuity of life of spirit fills us with hope, enables us to overcome the disappointments and miseries of the moment and opens before us a vista of limitless possiblities.

Life is real, life is earnest;
And the grave is not its goal.

This line of longfellow is only an echo of great truths enshrined in old Vedic literature, the richness and beauty of which is unsurpassed.

Ganga Prasad Upadhyaya,
Rangoon

विश्व-शान्ति

लेखक—श्री स्वामी सच्चिदानन्द जी, संस्थापक, विश्व-शान्ति संघ।

'सुखाद् बहुतरं दुखं जीवितं नास्ति संशयः'

निश्चय ही इस सांसारिक जीवन में सुख की अपेक्षा दुःख अधिक है। जिसको देखो एक दूसरे से बढ़कर दुःखी है। जिसके निकट बैठो उसके क्लेश तथा दुःखों का ताप झुलसा देने के लिये पर्य्याप्त है। दुखियाओं के करुणामय क्रन्दन से पृथिवी कम्पायमान है। आओ, विचार करें, क्या दुःख तथा अशान्ति से बचने का कोई साधन हैं?

इस संसार में तीन प्रकार के दुःख हैं—

(१) आध्यात्मिक—आत्मा के शरीर के साथ सम्बन्ध होने से, यथा-अविद्या, राग, द्वेष, मूर्खता, ज्वर, पीड़ादि।

(२) आधिभौतिक—शत्रु, व्याघ्र, सर्पादि भूतों के कारण।

(३) आधिदैविक—अतिवृष्टि, अति ठण्डा, अति गरम, बिजली आदि॥

इनमें से आधिभौतिक (अर्थात् अन्य प्राणी) तथा आधिदैविक (अर्थात् प्राकृतिक शक्तियों के) दुःख अशान्ति के बाहरी कारण हैं। और स्थूल-शरीर और सूक्ष्म-शरीर, अर्थात् अन्नमयकोष, प्राणमयकोष, मनोमयकोष तथा अज्ञान (अर्थात् आध्यात्मिक दुःख) अशान्ति के आन्तरिक कारण हैं॥

मनुष्य सामाजिक जीव है। इस विश्वव्यापी संग्राम में मनुष्य को जीवित रहने के लिये तथा अपने प्रयत्न और पुरुषार्थ में सफलता प्राप्त करने के लिये सारे संसार के सम्पर्क और संघर्ष का सामना करना अनिवार्य है। आत्मा शक्तियों का केन्द्र है। सफल जीवन का रहस्य इस बात में है कि समाज का निर्माण ऐसे सिद्धान्तों पर आधारित हो कि प्रतिकूल शक्तियों का संघर्ष न्यून से न्यून हो और शारीरिक, मानसिक तथा आत्मिक शक्तियों का ऐसा विकास हो कि जिसके द्वारा जीवन को विफल बनाने वाली विघ्न-बाधाओं पर विजय प्राप्त करता हुआ जीव नित्य उत्तरोत्तर ऐहलौकिक उन्नति, आत्मिक विकास और परम आनन्द को लाभ कर सके और समाज की प्रवृत्ति अपनी संस्कृति तथा सभ्यता की उन्नति और उन की पूर्णता की ओर अग्रसर हो॥

विश्व उन्नति के लिये, व्यक्तिगत कामनाओं और भावनाओं को तपा कर, दोषों को दग्ध करके, मन और हृदय को कर्त्तव्यों के सांचे में ऐसा ढालना होगा कि आत्मा पर परमात्मा का सच्चिदानन्द स्वरूप भली भांति छप जावे॥

'यादृशैः सन्निवसति यादृशांश्चोप सेवते।
यादृगिच्छेच्च भवितुं, तादृग्भवति पूरुषः॥
महा० शा० २६६-३२॥

पुरुष जैसों के साथ रहता है, जैसे की उपासना (उप=निकट आसन=बैठना) करता है, जैसा बनना चाहता है, वैसा ही वह पुरुष हो

...ता है ॥ ... स्वभाव से पुरुषार्थी है। धर्म, ...क्ष ही पुरुषार्थ के चार अंग ...और अर्थ की प्राप्ति को गौण पुरुषार्थ ...। पुरुषार्थ प्रधान जीव का मुख्य पुरु... सुख की प्राप्ति ही है। सुख दो प्रकार का होता है :—

(१ ... की प्राप्ति,
(२) ... क्ष।

... कहते हैं। अर्थ ... होती हैं और धर्म ...। धर्म उन कर्त्तव्यों को कहते हैं, जिनके पालन करने से जीव में ऐसी शक्ति विकसित हो जाती है कि वह जीवन संग्राम में विरोधी शक्तियों का सफलता पूर्वक विरोध करता हुआ, ऐहलौकिक और पारलौकिक उन्नति के शिखर पर सहज ही पहुंच जाता है। मर्त्यलोक जहां हमको निवास प्राप्त है कर्म प्रधान लोक है। मनुष्य योनि ही कर्म+भोग योनि है, शेष सारी योनियां भोग-योनियां हैं। 'बातां के पकवान से धापा नाहीं कोय।' जिसकी रहनी-गहनी कथनी के अनुकूल है उसी जीव की बुद्धि व्यवसायात्मिका कहलाती है। कर्मों के अनुकूल ही मनुष्य पशुत्व अथवा देवत्व की ओर अग्रसर होता है। कर्मानुसार जीव इस लोक तथा इस जीवन को नारकीय अथवा स्वर्गीय बना लेता है। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की प्राप्ति आर्य्यों में बहुत ही आवश्यक समझी गई है। पहले धर्म की कमाई करे और फिर धर्मपूर्वक अर्थ का संचय करके, उस अर्थ से सांसारिक कामनाओं तथा सब से महान् परमार्थी कामना अर्थात् मोक्ष को प्राप्त करे। परन्तु आजकल की प्रथा इससे बिल्कुल विपरीत है और उसका परिणाम जगत् के सामने कलह, विद्रोह, तथा विश्व व्यापी युद्ध की तैयारियों के रूप में स्पष्ट दिखाई दे रहा है ॥

'सुखमात्यान्तिकं यत्तत्'—सुख की अत्यन्त ऐकान्तिक अवस्था प्राप्त करने के लिये नित्य निरन्तर प्रयत्नशील रहना चाहिए। दुःख के आत्यन्तिक अभाव को ही पूर्णानन्द कहते हैं। यथा-कथित मृत्यु के पश्चात् क्या होगा वह तो तत्त्व-दर्शियों का विषय है। हमको तो यहीं, इसी जीवन में स्वर्ग अथवा मुक्ति की झलक दीखनी चाहिए। इसकी सफलता के लिये चरित्र निर्माण, रहनी-गहनी तथा शुद्ध धार्मिक व्यवहार अनिवार्य हैं। आत्मबल में चरित्रबल का समावेश है। दोनो एक दूसरे पर निर्भर तथा एक दूसरे के द्योतक हैं। अपनी रहनी में उस समुज्वल प्रकाश पुंज की झलक ढालते हुए आत्मा में तल्लीन होकर ब्रह्मानन्द में लवलीन रहना ही आत्मा का मुख्य कर्त्तव्य है। 'आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यः'—बृह०। आत्मा के विषय अर्थात् परमात्मा को देखना, सुनना, मनन करना और ध्यान में स्थित रखना ही मनुष्य का प्रधान कर्त्तव्य है। 'नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः'—मुण्ड० ३-२-४। परन्तु उस आनन्द के स्रोत को निर्बल आत्मा प्राप्त नहीं कर सकते ॥

निजी कर्त्तव्य

अशान्ति दूर रखने के लिये आवश्यक है कि न तो मन में अशान्ति हो और न तन में बेचैनी। अस्वस्थ दुर्बल तन और मन अशान्ति को कारण होते हैं। अतः मनुष्य का पहला कर्त्तव्य यह है कि तन और मन को स्वस्थ और बलवान् बनावे। शक्ति के

सम्पर्क और अभ्यास से शरीर ठीक हो जाता है। वैसे ही सद्व्यवहार और सदाचार से मन स्वस्थ और बलवान् होता है। अतः मनुष्य का पहला कर्त्तव्य निजी कर्त्तव्य है॥

प्राणीमात्र के साथ कर्त्तव्य

निजी शान्ति हो जाने पर भी मनुष्य शान्ति का उपभोग नहीं कर सकता। यदि आसपास के मनुष्य और अन्यप्राणी उसकी शान्ति में बाधक तथा द्वेषी हों। अतः मनुष्य का दूसरा कर्त्तव्य प्राणीमात्र के साथ प्रेमभाव और मित्रता की स्थापना करना है। द्वेष में प्रेम नहीं है। प्रेम में द्वेष नहीं है। अतः प्रेम द्वारा द्वेष के भाव को निर्मूल कर देना है। ईर्ष्या और द्वेष के मिट जाने से सारे झगड़े शान्त हो जाते हैं॥

संसार के प्रति कर्त्तव्य

मनुष्य का तीसरा कर्त्तव्य यह है कि वह दैवक शक्ति के साथ इस प्रकार सहयोग करे कि संघर्ष का लेशमात्र न रहे और समस्त शक्तियें परस्पर सहायता करती हुईं मनुष्य को, प्राणीमात्र को और समस्त संसार को उन्नति के शिखर पर ले जावें॥

विचार का प्रभाव

मनुष्य जैसे विचार करता है, वैसा ही आचरण करता है और वैसा ही बन जाता है। अच्छे विचार वाले भले लोग बन जाते हैं और कुत्सित विचार वाले बुरे। रोगों का नित्य आदर-सत्कार और ध्यान करने वाले रोगी दिखाई देते हैं और स्वास्थ्य पर दृढ़ निश्चित लोग सदा स्वस्थ रहते हैं, आनन्द भाव में विचरने . आनन्द झलकता है और सांसारिक भा चरने में सांसारिकता-ईर्ष्या, द्वेष, घृणा, आदि। स्पष्ट है कि मानसिक भावों के मनुष्य के शरीर और आचरण पर चित्रित हो जाते हैं। अतः मानसिक भावों का सदा शुद्ध रख जिन भ शुभ अपने जीव वों को मन-मन्दि हिये। जो फल हैं तत्सम्बन्धी भाव क लगी रहनी चाहिये॥

अब हम यह विचार करेंगे कि बाहरी और अन्तरी अशान्ति के क्या कारण हैं और वे कैसे दूर हो सकते हैं। गूढ़ दृष्टि से देखने से ज्ञात होता है कि समस्त पाप और झगड़े के बीज अज्ञान की भूमि में अंकुर लिया करते हैं और उनका रूप 'जर, जमीं, जन' (धन, भूमि और स्त्री विषयक) के झगड़ों में दिखाई देते हैं। पहले दो को कांचन और तीसरे को कामिनी कह सकते हैं। इन बाहरी झगड़ों को निर्मूल कर देने के लिये ऋषियों ने पांच साधन बताये हैं। वास्तव में जो सिद्ध पुरुषों के लक्षण होते हैं, वही साधक के लिये साधन हुआ करते हैं। ये पांच साधन—"अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह हैं।"

(शेष अगले अंक में)

आदर्श स्वराज्य

(कवयिता—श्री धर्मदेव विद्यावाचस्पति देहली)

हो स्वराज्य आदर्श हमारा ॥

(१)

अजेय [illegible] रा

[illegible]

[illegible]

[illegible] ॥

([illegible])

[illegible] अहिंसा तप से पाया
आत्मशक्ति से जो विकसाया।
रुधिर सींच कर जिसे बढ़ाया
हो स्वराज्य आदर्श हमारा ॥

(३)

उत्तम शिक्षा के प्रसार में
धर्म भावना के प्रचार में।
सब कुरीतियों के सुधार में
होवे नायक राज्य हमारा ॥

(४)

कोइ न मानव हो व्यभिचारी
कोइ न मद्यप असदाचारी।
नहीं अशिक्षित हो नर नारी
हो स्वराज्य आदर्श हमारा ॥

(५)

कृषक मुदित सारे सुख पावें
श्रमजीवी नहिं कष्ट उठावें।
सब मिल मङ्गल मोद मनावें
हो स्वराज्य आदर्श हमारा ॥

(६)

जनता के सेवक शासक हों
एक देव के आराधक हों।
धार्मिक जनता हितसाधक हों
हो स्वराज्य आदर्श हमारा ॥

(७)

जन सब होवें प्रेमपरायण
भजें भक्ति से सब नारायण।
पढ़ें वेद गीता रामायण
हो स्वराज्य आदर्श हमारा ॥

(८)

दे जग को शम का सन्देश
हो कर शान्त समुन्नत देश।
इसका मान करें निःशेष
हो स्वराज्य आदर्श हमारा ॥

(९)

सच्चे ब्राह्मण त्यागि-तपस्वी
क्षत्रिय हों अतिवीर मनस्वी।
वैश्य शूद्र भी हों वर्चस्वी
हो स्वराज्य आदर्श हमारा ॥

(१०)

परमेश्वर की दया दृष्टि हो
सब पर सुख की सदा वृष्टि हो।
नहीं धृष्ट की दुष्ट दृष्टि हो
हो स्वराज्य आदर्श हमारा ॥

सार्वदेशिक आर्यप्रतिनिधि सभा की अन्तरंग के आवश्यक

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा की अन्तरंग सभा का अधिवेशन ३ व ४ फरवरी को देहली में श्री राजगुरु पं० धुरेन्द्र जी शास्त्री के सभापतित्व में हुआ। श्री० स्वामी अभेदानन्द जी, श्री० पं० वासुदेव जी शर्मा (बिहार) श्री०पं० जियालाल जी (राजस्थान) श्री० पं० विजयशंकर जी (बम्बई) श्री० पं० यशपाल जी विद्यालंकार, श्री० पं० ज्ञानचन्द्र जी, श्री० लक्ष्मीदत्त जी दीक्षित, श्री० ला० चरणदास जी पुरी बी० ए० एल० बी० ऐडवोकेट, श्री० मदनमोहन जी सेठ एम० ए० एल० एल० बी० रिटा० सेशन जज, श्री० पं० रामदत्त जी शुक्ल एम० ए० एल० एल० बी० ऐडवोकेट, श्री कविराज हरनामदास जी बी० ए० श्री० म० कृष्ण जी बी० ए० (प्रताप) चौ० जयदेवसिंह जी बी० ए० एल० एल० बी० श्री० चंचलदास जी, श्री० ला० रामगोपाल जी, श्री० प्रो० रामसिंह जी एम० ए० तथा श्री० ला० बालमुकुन्द जी आहूजा इत्यादि १८ सदस्यों ने भाग लिया।

श्री० ला० देशबन्धु जी श्री० ला० ज्ञानचन्द्र जी देहली तथा श्री० सेठ शूरजी बल्लभदास जी बम्बई के निधन पर शोक प्रस्ताव पास हुए।

सभा ने आर्य महासम्मेलन मेरठ के निश्चयों पर विचार करके उन पर यथोचित कार्यवाही को करने का मिश्चय किया।

एक निश्चय के द्वारा मथुरा में गुरु विरजानन्द जी की कुटिया की भूमि प्राप्त करने के सम्बन्धमें उत्तर प्रदेशकी आ.प्र. सभा को आवश्यक आर्थिक सहायता देने का निश्चय किया गया।

उच्च कोटि के विद्वानों
गवेषणात्मक, सांस्कृतिक, और दा...
हिन्दी और अंग्रेजी भाषाओं के
युक्त सार्वदेशिक पत्र का एक सर्वांग
विशेषांक आगामी श्रावणी पर प्रकाशित क...
का निश्चय कि...
पं० इन्द्र ...
धर्मदेव जी
जी शुक्ल (४)
आर्य मित्र (५)
एम० ए० नव तीर्थ इन ...
सम्पादक मंडल बनाया गया है जिसके संयोजक श्री० पं० हरिशंकर शर्मा नियत हुए हैं।

सभा ने नैपाल, आसाम, मद्रास, उड़ीसा आदि प्रदेशों में वैदिक धर्म और वैदिक संस्कृति का प्रचार करने के लिये एक विशेष योजना बनाने और इसके लिये २ लाख की धन राशि एकत्र करने का निश्चय किया।

श्री० पं० विनायकराव जी बार० ऐट० ला० श्री० पं० नरेन्द्र जी श्री० माननीय घनश्यामसिंह जी श्री०प्रो० रामसिंह जी एम०ए० श्री० डा० युद्धवीरसिंह जी श्री डा०सुखदेवजी आदि आर्य भाइयों के प्रदेशीय विधान सभाओं में निर्वाचन पर हर्ष प्रकट करते हुए वधाई का प्रस्ताव पास किया।

सभा के आगामी बृहदधिवेशन की तिथि २७।४।५२ नियत हुई।

(ज्ञानचन्द्र)
मन्त्री—
५।२।५२ सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा,
बलिदान भवन देहली ६

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, देहली

दान-सूची

...न

...ो राजगुरु पं० धुरेन्द्र जी शास्त्री सभा ...न को भेंट रूप में प्राप्त वेद प्रचारार्थ

१५५...)

...०) ... ...गण लाल जी

...वी जी सोरोत

...लाल किशनलाल जी

... १२।

५१) श्री मन्त्री जी आर्य धर्म परिषद् बड़ौदा।

१५५२)

१५५२) योग

३६२०॥≡) गतयोग

५४७२॥≡) सर्व्वयोग

दान आर्यसमाज स्थापना दिवस

२५) आर्यसमाज शोलापुर

२५) योग

१०५३॥/-) गतयोग

१०७८॥/-) सर्व्व योग

दान शुद्धि प्रचारार्थ

५) श्री ईश्वरदास जी पटियाला।

५) योग

दान दाताओं को धन्यवाद।

ज्ञानचन्द्र, मन्त्री
सार्वदेशिक सभा

दान सार्वदेशिक वेद प्रचार निधि

२० फरवरी तक प्राप्त

२१) श्र नन्दकुमार दत्त जी कलकत्ता।

१३) आर्यसमाज किंग्सवे कैम्प देहली।

१०) मंत्रीजी आर्यसमाज गुरुकुल विभाग फीरोजपुर शहर।

२१) श्री कृपाराम जी रोहतक वासी दरियागंज, देहली।

१०) श्री चन्द्रभान कष्टपाल जी गाजियाबाद

१०) श्री हरिश्चन्द्र जी नई देहली द्वारा पं० चन्द्रभानु जी सि० भू०

१०) श्री वासुदेव जी मुराद नगर द्वारा पं० चन्द्रभानु जी।

२५) श्री विश्वनाथ जी एम० ए० देहली

३) विविध सज्जनों से।

१२३) योग

१६०३॥≡) गत योग

१७२६॥≡) सर्व्व योग

दान दाताओं को धन्यवाद। खेद है कि बहुत से आर्य सज्जनों और आर्य समाजों ने देश देशान्तरों में वैदिक धर्मप्रचार की व्यवस्था के उद्देश्य से आयोजित इस निधि के लिये दान देकर अपने कर्तव्य और सार्वदेशिक सभा के आदेश का पालन नहीं किया। उन्हें अब तुरन्त उदारदान देकर पुण्य का भागी बनना चाहिये।

धर्मदेव वि० वा० स० मन्त्री सभा

ग्राहकों से आवश्यक निवेदन

निम्न लिखित ग्राहकों का सार्वदेशिक पत्र का चन्दा मार्च मास के साथ . ल्हो रहा अतः प्रार्थना है कि वे अपना आगामी वर्ष का चन्दा शीघ्र मनीआर्डर द्वारा ५) कार्यालय की कृपा करें। अन्यथा आगामी अंक उनकी सेवा में वी० पी० द्वारा भेजा जायगा। धन प्रत्य में ३०।३।१६५२ तक कार्यालय में पहुँच जाना चाहिये। कूपन पर अपनी ग्राहक संख्या लिखनी न

ग्राहक सं०	पता	ग्राहक सं०	पता
४८	दी मैनेजर सिटि ड्रैस मैन्युफैक्चरिंग कम्पनी चिकपेट बंगलौर सिटि	३६०	,, बिहारी[illegible] आर्य डायज स्क्वायर [illegible]
१६८	मन्त्री जी आर्यसमाज हिरिवडका साउथ, कनारा	४१४	,, [illegible]
१८१	,, ,, छोटी सादडी वाया नीमच छावनी	४५८	,, बी०
२५४	,, ,, नारायणगढ़ जिला अम्बाला	६८८	,, प्रिंसिपल, [illegible]
२६८	,, ,, गुरुकुल विद्यापीठ हरियाना भैंसवालकलां जिला रोहतक	६६०	,, पुस्तकाध्यक्ष जी, [illegible] भुसावर (भरतपुर)
३०४	,, ,, सुरजननगर जि० मुरादाबाद	६६१	,, लेखराम जी गुप्ता दातागंज जि०बदायूं
३०६	,, ,, हिसार	६६२	,, वी० वासुदेव राव कार्कल साउथ कनारा
३०८	,, ,, पानीपत जिला करनाल	६६३	,, मन्त्री जी आर्य समाज रानी मण्डी इलाहाबाद
३०६	,, ,, घरोन्डा ,,		
३१०	श्री स्वामी शिवानन्द जी आर्य पंचांग कार्यालय, दिल्ली शाहदरा दिल्ली	६६४	,, ,, ,, ,, भोलेपुर जिला फर्रुखाबाद
३११	,, मन्त्री जी, आर्य समाज सालदन पो० असन्ध जिला करनाल	६६६	,, ,, ,, ,, रम्पुरा पो० फतेहगढ़ जि०फर्रुखाबाद
३१२	,, एच० सी आर० बी० प्रसाद ए० पी० ओ० नई दिल्ली।	६६७	,, ,, ,, ,, रत्नकापुरा पो० लीडर इलाहाबाद
३१४	,, मन्त्री जी आर्य समाज ब्रह्मकुन्डी पो० चारिहक जिला गया	६६८	,, ,, ,, ,, जसुरा पुर जिला
		६६६	,, ,, ,, ,, पिलखना पो० मेरापुर जि० फर्रुखाबाद
३१५	,, डा० शिवनन्दनप्रसाद जी निर्झर रजौली जिला गया	७००	,, ,, आर्यसमाज निरौली पो० मुहम्मदाबाद जि० फर्रुखाबाद
३१८	,, बद्रीनारायण जी गोस्वामी मु० डोमचोंच जिला हजारीबाग	७०१	,, स्वर्णसिंह आर्य मनी जी ग्राम नगौला पोस्ट जवां जिला अलीगढ़
३१६	,, मन्त्री जी आर्यसमाज दौवी जि० हिसार		

स्वाध्याय योग्य साहित्य

... संस्कृति (ले० पं० गंगाप्रसाद जी उपाध्याय एम० ए०)	२॥)
कर्त्तव्य दर्पण सजिल्द (ले० स्व० महात्मा नारायणस्वामी जी महाराज)	१॥)
वेद रहस्य " " "	१॥।)
४. धर्म का आदि स्रोत (ले० पं० गंगाप्रसाद जी एम० ए० रिटा० चीफ जज)	२)
५ वेदों पर अ... का व्यर्थ आक्षेप (ले० डा० सत्यप्रकाश जी)	॥=)
वैदिक (ले० पं० गंगाप्रसाद जी उपाध्याय एम० ए०)	३॥)
...गी की पूर्वी अफ्रीका तथा मौरीशस यात्रा	२।)
...त्मा गांधी (ले० पं० धर्मदेव जी विद्यावाचस्पति)	२)
...धर्म " "	१।।)
पं० रघुनाथ प्रसाद पाठक)	१।)

...ार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, बलिदान भवन, देहली

अग्नि—होत्र AGNI—HOTRA

लेखक—डा० सत्यप्रकाश डी. एस. सी.

प्रोफेसर, इलाहाबाद यूनिवर्सिटी मूल्य २।।)

भूमिका लेखक— डा० गंगानाथ झा

अग्नि होत्र की महिमा वैज्ञानिक रीति से समझाई गई है। नई रोशनी वालों के लिए अंग्रेजी भाषा में एक अद्भुत ग्रन्थ है।

मिलने का पता:—सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा देहली।

दो अनुपम पुस्तकें

[श्री पूजनीय स्वामी ब्रह्ममुनि जी कृत]

वैदिक योगामृत

अहिंसा सत्य आदि से लेकर समाधिपर्यन्त योगाङ्गों का अपूर्व और रोचक शास्त्रीय एवं वैदिक निरूपण है भारतीय संस्कृति का अनुपम आदर्श प्रदर्शित किया है, पुस्तक का विषय जीवन निर्माण के साथ साथ कथा प्रवचन के लिये अतीव उपयोगी है। कागज छपाई बहुत सुन्दर पृष्ठ संख्या ६४ मूल्य ।।=)

वैदिक ईशवन्दना

उपासक के उद्बोधन आस्तिक भावना के वर्धन, ईश्वर के प्रति अनुराग का वैदिक दृष्टि से उच्चतम स्वरूप प्रदर्शित है। परमात्मा के प्रति प्रेम उत्पन्न करने में इससे बढ़ कर लौकिक साहित्य में कोई पुस्तक नहीं हो सकती, कथा प्रवचनों में परम सहायक है कागज छपाई बढ़िया पृष्ठ सं० ३६३ मूल्य ।=)।।

मिलने का पता—सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, श्रद्धानन्द बलिदान भवन देहली

मुद्रक—ला० चतुरसेन गुप्त द्वारा सार्वदेशिक प्रेस, पटौदी हाउस में छपकर श्री रघुनाथ प्रसाद जी पाठक पब्लिशर द्वारा सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा देहली से प्रकाशित।

वैसाख २००९ वि०
मई १९५२

सम्पादक
श्री पं० धर्मदेव सिद्धान्तालङ्कार विद्यावाचस्पति

मूल्य स्वदेश ५)
विदेश १० शि०
एक प्रति ।।)

विषयानुक्रमणिका

ओ३म्

सार्वदेशिक आर्य-प्रतिनिधि सभा देहली का मासिक मुख-पत्र

वर्ष २६ } मई १९५२, वैसाख २००९ वि० दयानन्दाब्द १२८ { अङ्क ३

ओ३म्

वैदिक प्रार्थना

ओ३म् अस्यते सख्ये वयमियक्षन्तस्त्वोतयः ।

इन्दो सखित्वमुश्मसि ॥ ऋ० ६।६६।१४

शब्दार्थ—(इन्दो) हे परमैश्वर्यसम्पन्न, चन्द्र के समान आल्हादक प्रभो ! (वयम्) हम (अस्य) इस (ते) तेरी (सख्ये) मित्रता में (इयक्षन्तः) गति करते हुए (त्वोतयः) तेरी रक्षा, प्रीति, तृप्ति (आनन्द) और दान में रहते हुए (सखित्वम् उश्मसि) निरन्तर तेरी ही मित्रता चाहते हैं।

विनयः—हे प्रभो ! आप ज्ञान तथा भक्ति रस के अमृत से हमें तृप्त करने वाले और आनन्ददायक हैं। हम आप को अपना मित्र मान कर सदा आप का ज्ञान प्राप्त करें, आप को सर्वरक्षक जान कर सदा निश्चिन्त रहें। हमारा समस्त व्यवहार आप को सर्वान्तर्यामी मित्र जान कर हो जिस से किसी प्रकार की अपवित्रता हमें स्पर्श भी न कर सके। ऐसी तेरी आनन्ददायिनी सर्वक्लेश निवारिणी मित्रता की ही हम सदा कामना करते हैं॥

सम्पादकीय

पाकिस्तान में मुस्लिमेतरों की दुर्दशाः—

जहां भारत में मुसलमानों की सुरक्षा का विशेष ध्यान रखा जाता है और उस को सन्तुष्ट करने की नीति को (कई बार हमारे विचार में उचित सीमा का भी उल्लङ्घन कर के जैसे कि छत्री वाले मामले में) सदा अपनाया जाता है वहां पाकिस्तान में मुस्लिमेतरों की दशा अत्यन्त शोचनीय है। पाकिस्तान संसत् में विरोधी दल के नेता प्रो० राजकुमार चक्रवर्ती ने अपने भाषण में कहा कि 'स्वतन्त्रता मिलने के साथ हमने आशा की थी कि हम इस देश में अधिक नागरिक स्वतन्त्रता का उपभोग कर सकेंगे किन्तु इस बारे में हमें अब निराशा दिखाई दे रही है। यह दुर्भाग्य की बात है कि अब तो जन सुरक्षा कानूनों, गिरफतारियों और नजर बन्दियों से शासन करने का ढ़र्रा ही चल पड़ा है। देश के कई भागों में नागरिक स्वतन्त्रता नाम को भी नहीं है। सुहरावर्दी जैसे व्यक्ति को भी जो पाकिस्तान के निर्माताओं में गिने जाते हैं पूर्व बंगाल में सार्वजनिक सभाओं में भाषण नहीं देने दिया जाता। हमारे एक सन्मानित साथी सीमान्त गान्धी खान अब्दुल गफ्फार खान जेलमें सड़ रहे हैं। उनको वहां ३ साल हो गये और उनका स्वास्थ्य बड़ा चिन्ता जनक है। पूर्वी बंगाल में भाषा का एक असली और स्वयं स्फूत आन्दोलन दमन से कुचला जा रहा है और उसके लिये गोली, आंसू गैस और लाठी प्रहार तक से काम लिया जा रहा है।

पूर्वी पाकिस्तान में हिन्दुओं की स्थिति बहुत ही भद्दी हो गई है और वे इन कारणों से अपने आप को सुरक्षित नहीं समझते। समय और असमय मुसलमानों के कुछ नेता जिन में उत्तरदायी मन्त्री भी हैं जनता के कानों में यह बात डालते रहते हैं कि यह इस्लामी राज्य है।...यह इस्लामी राज्य है इस सिद्धान्त के प्रचार का बहुत बुरा परिणाम है। इस का यह अर्थ होता है कि केवल मुसलमान ही इस देश के निवासी हैं और दूसरों को यहां रहने की भी जरूरत नहीं है। पाकिस्तान केन्द्रीय सरकार के एक मन्त्री ने कहा कि पाकिस्तान इस्लामी राज्य है इस लिए यह राष्ट्रीय राज्य नहीं है। ऐसे वक्तव्यों से अल्पसख्यकों को समान अधिकारों का आश्वासन नहीं मिलता।...पूर्वी पाकिस्तान में हिन्दू अपने को असुरक्षित अनुभव कर रहे हैं और सिन्ध तथा कराची में रहे सहे हिन्दुओं को खदेड़ा जा रहा है।"

प्रो० चक्रवर्ती के इन शब्दों पर अधिक टीका-टिप्पणी की आवश्यकता नहीं। हम इतना ही लिखना पर्याप्त समझते हैं कि इस प्रकार की अवस्था सर्वथा अवाञ्छनीय और निन्दनीय है। एक ओर जहां हम भारत में रहने वाले मुस्लिम भाइयों के साथ अत्यधिक प्रेम और सहानुभूति पूर्ण व्यवहार को देखते हैं और दूसरी ओर पाकिस्तान के निवासी मुस्लिमेतरों की दुर्दशा का वृत्तान्त पढ़ते हैं तो हमें आकाश पाताल का अन्तर प्रतीत होता है। पाकिस्तानके अधिकारियों का कर्तव्य है कि वे इस अन्यायपूर्ण दशा को शीघ्राति शीघ्र दूर करके भारत सरकार का अनुसरण करें। प्रजा को इस प्रकार असन्तुष्ट रख के कोई शासन देर तक चल नहीं सकता।

राष्ट्रभाषा के प्रति शिक्षा मन्त्रालय की निन्दनीय उपेक्षाः—

यह खेद की बात है कि भारतीय विधान परिषद् द्वारा हिन्दी को राष्ट्र भाषा स्वीकृत किये जाने के पश्चात् भी भारत सरकार के शिक्षा मन्त्रालय ने इस राष्ट्र भाषा के प्रति उपेक्षा वृत्ति जारी रक्खी है। ज्ञात हुआ है कि शिक्षा मन्त्रा-

लय हिन्दी राष्ट्र भाषा विषयक इस शिथिल नीति से विभिन्न राज्यों की सरकारों तथा केन्द्रीय सरकारों के कई मन्त्रालय अब ऊब गये हैं यहां तक कि अब शिक्षा मन्त्रालय के राष्ट्र भाषा सम्बन्धी कुछ आदेशों को कई राज्य सरकारों तथा केन्द्रीय सरकार के कुछ मन्त्रालयों ने मानने से इन्कार कर दिया है। अब शिक्षा मन्त्रालय ने परिस्थिति से विवश हो कर अंग्रेजी शब्दों का हिन्दी में अनुवाद करने के लिये एक बोर्ड नियुक्त किया है और वैज्ञानिक व भाषा-विज्ञान के शब्दों के हिन्दी पर्याप्त बनाने के लिये भी दो समितियां नियुक्त की हैं।

उत्तर प्रदेश, बिहार और मध्यप्रदेश की सरकारों ने इस विषय में पर्याप्त प्रगति की है। केन्द्रीय सरकार के परराष्ट्र मन्त्रालय, रेल मन्त्रालय, खाद्य व कृषि मन्त्रालय तथा उद्योग व वाणिज्य मन्त्रालय ने अपने कार्यों में उपयोग किये जा रहे अंग्रेजी शब्दों के पर्यायवाची हिन्दी शब्द तय्यार कर लिये हैं। पर राष्ट्र मन्त्रालय इस दिशा में सब से आगे बढ़ गया है। इस ने कई कार्यों में इन शब्दों के उपयोग का न केवल निर्णय कर लिया है बल्कि उपयोग प्रारम्भ भी कर दिया है यह प्रसन्नता की बात है। यहां यह उल्लेख करना भी पाठकों की जानकारी के लिये उचित होगा कि हिन्दी की प्रगति के लिये चालू वर्ष के बजट में ५ लाख रु० की स्वीकृति दी गई थी किन्तु शिक्षा मन्त्रालय ने मौलाना आजाद के मन्त्रित्व में इस दिशा में प्रायः कुछ काम नहीं किया और लगभग १¾ लाख रु० खर्च करके शेष लौटा दिये।

हम राष्ट्र भाषा के प्रति शिक्षा मन्त्री मौलाना आजाद और उनके सहकारियों की इस उपेक्षा सूचकनीति को अत्यन्त अनुचित समझते हैं। यह देश का दुर्भाग्य है कि शिक्षा-विभाग जैसा सबसे अधिक महत्वपूर्ण विभाग जिस पर देश का भविष्य अधिकतर अवलम्बित है ऐसे व्यक्तियों के हाथ में है जिन्हें भारतीय संस्कृति, संस्कृत और हिन्दी से प्रेम नहीं और जो इस प्रकार की उपेक्षा पूर्ण नीति को काम में ला कर संस्कृत और राष्ट्र भाषा की प्रगति में रोड़े अटका रहे हैं। देहली के नये मन्त्रिमण्डल में भी शिक्षा मन्त्री श्री राफी-कुल रहमान किदवाई बनाये गये हैं। हम इस नीति को अच्छा नहीं समझते। इसका परिणाम देश के भविष्य के लिये भी हमें उत्तम नहीं प्रतीत होता। हम आशा करते हैं कि नवीन केन्द्रीय सरकार का निर्माण करते हुए इस बात का विशेष ध्यान रक्खा जाएगा कि शिक्षा मन्त्री ऐसे ही सज्जन नियत किये जाएं जो भारतीय संस्कृति, संस्कृत और हिन्दी के विशेषज्ञ हों ताकि इस प्रकार की उपेक्षा नीति का पुनः प्रदर्शन न हो और भारत अपने प्राचीन उज्ज्वल आदर्शों का अनुसरण करने में समर्थ हो सके।

भ्रष्टाचार विरोधी आन्दोलन को प्रबल बनाइये-

पत्र सम्पादकों से विशेष निवेदन

दुर्भाग्यवश देश में बढ़ते हुए भ्रष्टाचार और दुराचार के निवारणार्थ प्रबल आन्दोलन की आवश्यकता है इस विषय की ओर आर्य जनता का ध्यान इन स्तम्भों तथा सार्वदेशिक सभा कार्यालय से प्रेषित विज्ञप्तियों द्वारा अनेक वार आकृष्ट किया जा चुका है। हमें पिछले दिनों हापुड़, गुरुकुल काङ्गड़ी तथा सुजान गढ़ आर्य समाज के वार्षिकोत्सवों में सम्मिलित होने का अवसर प्राप्त हुआ जिन में मुख्यतया इस आन्दोलन को प्रबल बनाने पर बल दिया गया। आर्य नर नारियों में इस विषय में अच्छा उत्साह है और इस की उपयोगिता को भी वे अनुभव करते हैं किन्तु अभी इस सम्बन्ध में संगठित कार्य को करने की बड़ी आवश्यकता है। पत्र सम्पादकों और व्यवस्थापकों का उत्तर दायित्व इस विषय में बहुत अधिक

है अतः उनको सभा की ओर से जो पत्र भिजवाया गया है उसकी प्रति को जनता की सूचनार्थ हम यहां प्रकाशित कर रहे हैं ताकि प्रत्येक स्थान की जनता भी उनको इस विषय में कर्तव्य पालन के लिये प्रेरित करके उनका सहयोग प्राप्त कर सके। "श्री युत महोदय जी ! यह पत्र आपके पास एक विशेष उद्देश्य से भेजा जा रहा है। आप इससे सहमत होंगे कि हमें अपने प्रिय देश में से दुराचार और भ्रष्टाचार को हटाने तथा देशवासियों में सदाचार के भाव फैलाने की बड़ी भारी आवश्यकता है। इस कार्य में सब पत्र सम्पादकों और व्यवस्थापकों का पूर्ण सहयोग अपेक्षित है। उस दुराचार विरोधी और सदाचार संवर्धक आन्दोलन का जो कार्यक्रम निश्चित किया गया है उसमें से एक यह भी है कि 'समाचारपत्रों के सम्पादकों, स्वामियों तथा व्यवस्थापकों से प्रार्थना की जाए कि वे अपने समाचार पत्रों में भ्रष्टाचार विरोधि आन्दोलन को प्रगति दें और सर्व प्रथम अपने पत्रों को अनाचार फैलाने वाले लेखों तथा विज्ञापनों से साफ करदें। आपसे भी निवेदन है कि इस दृष्टि से अपने प्रतिष्ठित पत्र में प्रकाशित लेखों, चित्रों और विज्ञापनों पर विशेष दृष्टि रखें और इस दृष्टि से जिस प्रकार के सुधार की आवश्यकता हो उसे तुरन्त क्रियात्मकरूप देने की कृपा करें। पत्र सम्पादकों और व्यवस्थापकों की देश के सच्चरित्र निमार्णार्थ एक बड़ी उत्तरदायिता है। आशा है आप को स्वयम इसका ध्यान होगा तथापि यतः अनेक पत्रों में चित्र तथा विज्ञापन (महिलाओं के नग्न वा अर्धनग्न अवस्था में तथा काम्मोपक) दिखाई देते हैं जो युवक युवतियों के सदाचार की दृष्टि से सर्वथा अवाञ्छनीय हैं तथा नटियों के जीवन चरित्र और प्रशंसात्मक लेख लिख कर उनको अनुकरणीय बताया जाता है अतः इस ओर आपका भी ध्यान आकृष्ट करना उचित प्रतीत होता है। मुझे विश्वास है कि न केवल आप अपने प्रतिष्ठित पत्र के सम्बन्ध में इन बातों का ध्यान रख कर उचित सुधार तत्काल करवा देंगे प्रत्युत इस भ्रष्टाचार विरोधी और सदाचार वर्धक आन्दोलन को प्रबल बनाने में सहायक होंगे।"

हमारा विश्वास है कि इस भ्रष्टाचार विरोधी सदाचार संवर्धक आन्दोलन को प्रबल बना कर आर्यसमाज देश की बड़ी भारी और सच्ची सेवा कर सकता है। अतः इस विषय में समस्त आर्य नर नारियों को सक्रिय सहयोग देना चाहिये।

भारत के राष्ट्रपति और उपराष्ट्र पति का निर्वाचनः—

मई मास में भारत के राष्ट्र पति और उपराष्ट्र पति का निर्वाचन होना है। राष्ट्र पति पद के लिये निम्न ५ नाम प्रस्तुत हो चुके हैं (१) डा० राजेन्द्र प्रसाद जी (२) प्रो० के० टी० शाह बम्बई (३) श्री हरिराम जी ऐडवोकेट हिसार (४) श्री कृष्णकुमार चटर्जी कलकत्ता (५) श्री एल जी थत्ते पूना इनमें से पिछले तीन महानुभावों के नाम, कार्य योग्ता तथा देश सेवा से बहुत कम सज्जन परिचित हैं। राष्ट्र पति जैसा उच्च पद अपरिचित प्राय व्यक्ति को सौंप दिया जाय यह उचित नहीं। हो सकता है कि इन महानुभावों ने भी अपने २ क्षेत्र में स्वयोग्यतानुसार कुछ कार्य किया हो किन्तु यह निश्चित है कि इन्हें अखिल भारतीय ख्याति सर्वथा प्राप्त नहीं है। बम्बई के प्रो० के० टी० शाह एक सुयोग्य अर्थशास्त्र के विशेषज्ञ सज्जन हैं जो भारतीय लोक सभा में सक्रिय भाग के कारण पर्याप्त प्रसिद्ध हैं और जिन्हें समाजवादियों और साम्यवादियों का विशेष समर्थन प्राप्त है किन्तु जब देशरत्न श्री डा० राजेन्द्रप्रसाद जी के साथ उनकी तुलना की जाती है तो यह निस्सन्देह कहा जा सकता है कि माननीय डा० राजेन्द्र प्रसाद जी अपनी योग्यता, स्वार्थत्याग, देश सेवा सहानुभूति, जनता से सम्पर्क और उनके विश्वास तथा अन्य गुणों के कारण प्रो० शाह की अपेक्षया राष्ट्र पति पद के लिये अत्यधिक उपयुक्त हैं।

स्वयं प्रो० शाह ने उनके प्रति वैयक्तिक आदर और श्रद्धा का भाव प्रदर्शित किया है। भारतीय संस्कृति, संस्कृत भाषा तथा धर्म के प्रति श्री डा० राजेन्द्र प्रसाद जी का प्रेम हमारे विचार में अत्यन्त प्रशंसनीय है। अतः माननीय डा० राजेन्द्र-प्रसाद जी का पुनः राष्ट्र पति पद के लिये जो नाम प्रस्तुत किया गया है हम उसका सहर्ष समर्थन करते हैं। जैसे कि प्रस्ताव श्री पं० जवाहर लाल जी ने स्वयं भी स्पष्ट किया है उनका नाम कांग्रेस दल के प्रतिनिधि के रूप में नहीं प्रस्तुत किया गया किन्तु एक सुयोग्य सर्व प्रिय अनुभवी देशभक्त के रूप में। हम आशा करते हैं कि उनको निर्वाचकों का अत्यधिक बहुमत अवश्य प्राप्त होगा।

उप राष्ट्र पति पद के लिये श्री डा० राधाकृष्णन् जी का नाम प्रस्तुत किया गया है जो रूस में भारत के राजदूत थे और जिन की योग्यता में किसी को सन्देह नहीं हो सकता। आंध्र विश्व-विद्यालय और काशी विश्वविद्यालय के कुलपति और आक्स फोर्ड विश्व विद्यालय के धर्म विज्ञान के उपाध्याय तथा दार्शनिक विचारक और वक्ता के रूप में डा० राधाकृष्णन् जी सर्वत्र सुप्रख्यात हैं। वे भी भारतीय संस्कृति, संस्कृत भाषा और धर्म के प्रति डा० राजेन्द्रप्रसाद जी की तरह ही प्रेम रखने वाले हैं। आशा है उनका निर्वाचन सर्व सम्मति से करके देशवासी उन्हें सम्मानित करेंगे।

एक समर्थनीय आन्दोलनः—

अभी पिछले दिनों (१६ अप्रेल) जब हमे ओसवाला युवक सङ्घ द्वारा तेरापन्थ श्वेताम्बर सम्प्रदायक के आचार्य तुलसी जी की अध्यक्षता में आयोजित सर्व धर्म सम्मेलन और आर्यसमाज के वार्षिकोत्सव में भाग लेने के लिये सुजानगढ़ जाने का अवसर प्राप्त हुआ तो डीडवाना आर्य समाज के उत्साही मन्त्री श्री रत्नलाल जी द्वारा यह जान कर प्रसन्नता हुई कि उन्होंने आर्य समाज की ओर से मादा पशुओं भेड़ बकरी आदि के निर्यात के विरुद्ध एक प्रबल आन्दोलन प्रारम्भ कर रखा है जिसका तात्पर्य निम्न लिखित आवेदन पत्र से जो राजस्थान के मुख्य मन्त्री, राज प्रमुख तथा अन्य अधिकारियों को भेजा गया है भली-भांति ज्ञात हो सकता है। इस आवेदन पत्र में निवेदन किया गया है कि "आजकल देखने में आया है कि राजस्थान से बाहर मादा पशु जैसे भेड़ बकरी आदि का निर्यात प्रचुरता से होता जा रहा है। ये पशु बाहर जाकर प्रायः बूचड़खाने में पहुँचते हैं जिनका उपयोग फिर वहीं समाप्त हो जाता है। यदि इस खुली छूट में होने वाली अपार हानियों की ओर आप का ध्यान आर्षित करें तो यह स्पष्ट है कि राजस्थान में इन पशुओं की पहले से ही अधिकना नहीं थी। फिर इनके अधिक मात्रा में बाहर चले जाने के कारण यहां के निवासियों को दूध की मात्रा मिलना कठिन हो जाएगा। आज कल आर्थिक संकट के कारण अधिकतर लोग गाय, भैंसों को न पाल कर इन्हीं पशुओं का पालन करते हैं। इनके अतिरिक्त यहां पर ऊन व खाल की बड़ी भारी कमी हो जाएगी जिस से स्थानीय उद्योग धन्धों पर बड़ा प्रभाव पड़ेगा। लोगों का आर्थिक जीवन संकटमय हो जाएगा। भूतपूर्व राजस्थान राज्यों में इनके निर्यात पर कड़ा प्रतिबन्ध रहा करता था जिस का उद्देश्य भी ऊपर लिखा था। भूतपूर्व जोधपुर राज्य में एक दफ़ा इन का निर्यात खोला गया तो हमारे प्रधान मन्त्री श्री व्यास जी ने सन् १६२५ ई० में इस का कड़ा आन्दोलन खड़ा कर उस प्रतिबन्ध को पुनः लगवाया था। हमें पूर्ण आशा है कि आज सरकार इन बातों पर विचार कर उचित कदम उठाएगी। इन सब बातों को आपके समक्ष पेश कर हम पूर्ण आशा रखते हैं कि आप सारी परिस्थिति का पूर्ण अध्ययन कर इन मादा पशुओं के निर्यात पर

तुरन्त प्रतिबंध लगाने का प्रबन्ध करेंगे और राजस्थान के आर्थिक जीवन को सुदृढ़ बनाने में सहायक होकर इन दयनीय पशुओं के प्राणों की भी रक्षा करेंगे। हमें पूर्ण विश्वास है कि आप हमारी प्रार्थना पर ध्यान दे कर इस प्रतिबन्ध को कानून द्वारा लगवा देंगे।

इस विषय का पत्र ३१-८-५१ को जब श्री रत्नलाल जी मन्त्री आर्यसमाज डीड वाना ने राजस्थान के प्रधान मंत्री श्री व्यास जी को भेजा तो उसका निम्न उत्तर श्री रामदयाल जी अध्यक्ष नगर कांग्रेस कमेटी डीडवाना द्वारा उसी दिन प्राप्त हुआ। श्री मन्त्री जी आर्यसमाज डीडवाना।

महोदय, आपका पत्र संख्या १८३ ३१-८-५१ का जो आप ने माननीय श्री प्रधान मन्त्री जी की सेवा में भेजा था उस के उत्तर में श्री प्रधान मंत्री जी के आदेशानुसार निवेदन किया जाता कि मादापशुओं का निकास राजस्थान से श्री प्रधान मन्त्री जी ने बन्द करने की आज्ञा प्रदान कर दी है। मादा पशुओं के विकास की आज्ञा भूतपूर्व सरकार ने दी थी।

श्री रत्नलाल जी का कथन है कि उन्होंने इस पर विश्वास करके आन्दोलन को स्थगित कर दिया और श्री प्रधान मन्त्री जी को धन्यवाद दिया किन्तु उन के आश्चर्य का ठिकाना न रहा जब स्वायत्त शासनविभाग के मन्त्रीजी की ओर से १५ जनवरी १९५२ को उन्हें पत्र मिला कि 'I am directed to inform you that export of She baffaloes and cows is already banned under the law. No restriction can be placed on the export of other female animals.

अर्थात् भैंसों और गौओं के निर्यात पर तो प्रतिबंध लगा ही हुआ है। अन्य मादा पशुओं के निर्यात पर कोई प्रतिबंध नहीं लगाया जा सकता।

यह वस्तुतः आश्चर्य की बात है कि श्री व्यास जी ने पूर्व पत्र में उद्धृत बात कैसे कह दी थी जिस के सम्बंध में उन्हें आर्यसमाज डीडवाना की ओर से पुनः रजि पत्र भेजा गया है। उत्तर अभी तक अप्राप्त है।

हम इस आन्दोलन को इस दृष्टि से अपर्याप्त समझते हुए भी कि मादा पशुओं के निर्यात पर ही प्रतिबन्ध की मांग इसमें की गई है उन के वध की नहीं, उचित और समर्थनीय समझते हैं। राज स्थान आर्य प्रतिनिधि सभा और आर्य समाजों तथा अन्य सब उत्तम संस्थाओं को अपना सक्रिय सहयोग दे कर इसे प्रबल बनाना चाहिये। हमारा राजस्थान सरकार से भी अनुरोध है कि वे इस मांग को तुरन्त स्वीकृत करके अपने मान की रक्षा करें और यश तथा पुण्य के भागी बनें।

श्री "गोरे" जी की काली कल्पना

कोल्हापुर के श्री गणपतराव जी गोरे नामक सज्जन के 'ब्रह्मसाक्षात्कार' विषयक एक लेख की ओर जो "वैदिक धर्म" (स्वाध्याय मण्डल पारडी जिला सूरत) के फर्वरी के अंक १९५२ में प्रकाशित हुआ है मारीशस के स्वाध्यायशील आर्य सज्जन ने हमारा ध्यान आकृष्ट करते हुए उत्तर देने को लिखा है। हमने जब इस लेख को ध्यान पूर्वक पढ़ा तो हमें यह देख कर बड़ा आश्चर्य हुआ कि लेखक महोदय ने वेद मन्त्रों का अर्थ करने में कल्पना के घोड़े बे लगाम दौड़ा दिये हैं और ऐसी असङ्गत तथा विचित्र कल्पनाएं की हैं जिन्हें देख कर कोई भी विचारशील विद्वान् हंसे बिना न रहेगा। स्थान२पर उन्होंने आर्यसमाज के निराकार ईश्वर की उपासना विषयक वैदिक मन्त्रोंका उपहास किया है। इस स्पष्ट सम्पादकीय टिप्पणी में में यह तो सम्भव न होगा कि उनकी इस विचित्र कल्पना का कि सूर्य सृष्टि का अभिन्न निमित्तोपादान कारण है विस्तार से सप्रमाण निराकरण

किया जाए तथापि उनकी कल्पना की असङ्गतत को को प्रमाण सहित दिखाया जाएगा जिससे सर्व-साधारण में भ्रम न फैले। श्री गोरे जी "वैदिक धर्म" के फरवरी अङ्क के पृ० ७१ पर लिखते हैं कि "सच्चिदानन्द स्वरुप' सर्व शक्तिमान्, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक सर्वान्तर्यामी साकार सूर्य है, निराकार परमात्मा नहीं। पाठक देखें कि उपरोक्त विशेषण वेद के अनुसार साकार सूर्य पर घटते हैं। वह सत्=प्रकृति+चित्=जीव× आनन्द=परमात्मा स्वरूप है, वही ग्रहों को वा सृष्टि को धारण किये हुए है इत्यादि परन्तु आर्य समाज ने ये सभी विशेषण सूर्य देव से छीन कर अपने कल्पित निराकार परमात्मा पर घटाये हैं— देखो आर्य समाज का नियम २. परन्तु इनका समर्थन न वेद करता है, न भूगोल खगोल शास्त्र।" इत्यादि पृ० ६९ पर श्री गोरे जी ने लिखा है "इस लेख में साकार सूर्य को ही वेद सृष्टि का अभिन्न निमित्तोपादान कारण सिद्ध कर रहे हैं, सूर्य चेतन है तो उससे उत्पन्न सृष्टि भी चेतन ही होनी चाहिये।" "इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुः (ऋ १।१६४।४६) अनेजदेकं मनसो जवीयः' (यजु ४०।४) तदेजतितन्नैजति तद् दूरे तद्वन्तिके। तदन्तरस्य सर्वस्य तदु सर्वस्यास्य बाह्यतः॥ (य ४० इत्यादि मन्त्रों को भी जो स्पष्ट तया ईश्वर की सर्व व्यापकता आदि का प्रतिपादन करते हैं श्री गोरे जी ने सूर्य पर लगाने का विचित्र प्रयास किया है जिससे कोई निष्पक्ष विद्वान् सहमत न होंगे।

अद्वैत वादी भी सूर्य को अभिन्न निमित्तोपादान कारण नहीं मानते। यह तो श्री गोरे जी की ही नवीन किन्तु असङ्गत कल्पना है जो उन्हों ने वेदों पर थोपने का दुस्साहस किया है। 'ओं वाक वाक् ओं प्राणः प्राणः' इन सन्ध्या के वाक्यों को उद्धृत करके और उन का सूर्य वागिन्द्रिय और बाहु शक्ति है, सूर्य नासिका, कान और हृदय है इत्यादि कपोल कल्पित अर्थ करके गोरे जी पृ० ७० पर लिखते हैं कि 'पाठको! यहां स्वयम् ऋषि दयानन्द जड़ माने जाने वाले शरीर के अङ्ग प्रत्यङ्ग को ॐ वा सूर्य सिद्ध कर रहे हैं। ऋषि दयानन्द ने ऐसा अर्थ पञ्चमहायज्ञविधि आदि में कहीं नहीं किया। यह उन के साथ घोर अन्याय है। शेष आपका यह लिखना कि सिद्ध हुआ कि 'सृष्टिकर्त्ता सृष्टिसंहर्ता साकार सूर्य ही है निराकार परमात्मा नहीं। (पृ० ६६) यह भी एक कल्पना मात्र है जो सर्वथा वेद विरुद्ध है। वेदों के निम्न तथा अन्य सैंकड़ों मन्त्रों में परमात्मा को ही सृष्टि कर्ता, धर्ता तथा संहर्ता माना गया गया है, उसी को सूर्य का भी निर्माता और आधार बताया गया है।

हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे, भूतस्य जातः परि-
रेक आसीत्।
स दाधार पृथिवी द्यामुतेमां, कस्मै देवाय
हविषा विधेम॥ (ऋ० १०।१२१।१)
मा नो हिंसीज्जनिता यः पृथिव्या यो वा दिवं
सत्यधर्माजजान।
यश्चापश्चन्द्रा बृहतीर्जजान कस्मै देवाय हविषा
विधेम॥ (ऋ० १०।१२१।९)

इन मन्त्रों में परमात्मा को हिरण्यगर्भ के नाम से स्मरण करते हुए कि जिसके अन्दर सब सूर्य चन्द्रादि प्रकाशमान पदार्थ विद्यमान हैं कहा है कि वही पृथिवी, आकाश और अन्तरिक्ष को धारण करने वाला है हम उस सुखस्वरूप की श्रद्धापूर्वक पूजा करते हैं। जो सत्य धर्म वाला परमेश्वर पृथिवी आकाश, समुद्रादि का जनिता (उत्पादक) है उस सुख स्वरूप की हम भक्ति पूर्वक पूजा करते हैं।

अथर्व वेद के १०।१।२४ में प्रश्न है कि
'केनेयं भूमिर्विहिता केन द्यौरुत्तराहिता।
केनेदमूर्ध्वं तिर्यक् चान्तरिक्षं व्यचो हितम्॥

अर्थात् किसने यह पृथिवी बनाई है, किसने आकाश और अन्तरिक्षादि को बनाया है। इस

का उत्तर अ० १०।१।२५ में स्पष्ट शब्दों में दिया है 'ब्रह्मणा भूमिर्विहिता ब्रह्म द्यौरुत्तराहिता। ब्रह्मेदमूर्ध्वं तिर्यक् चान्तरिक्षं व्यचो हितम्॥

अर्थात् ब्रह्म (परमेश्वर) ने ही यह भूमि बनाई है, उसी ने आकाश, अन्तरिक्षादि को बना कर धारण कर रक्खा है। प्रजापति के नाम से सूर्य को ग्रहण करके आप उसे ही जगदुत्पादक मानते हैं पर वेद स्पष्ट बताते हैं कि उस सूर्य का निर्माता तथा आधार स्कम्भ अर्थात् सर्वाधार परमेश्वर ही है यथा

सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वम कल्पयत्॥
ऋ. १०।१९०।१

(यस्मिन् स्तब्ध्वा प्रजापतिर्लोकान् सर्वां अधारयत्। स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः (अथर्व १०।७।७)

यस्मिन् भूमिरन्तरिक्षं द्यौर्यस्मिन्नध्याहिताः। यत्राग्निश्चन्द्रमाः सूर्यो वातस्तिष्ठन्त्यार्पिताः स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः॥ (अथर्व १०।७।१२) यतः सूर्य उदेत्यस्तं यत्र च गच्छति। तदेव मन्येऽहं ज्येष्ठं तदु नात्येति किंचन॥ (अ० १०।८।१६)

इन मन्त्रों में स्पष्ट बताया गया है कि जिस परमेश्वर में स्थित होकर सूर्य ने लोकों को धारण किया हुआ है वह स्कम्भ (सर्वाधार) अत्यन्त सुखदायक है उसी का हे विद्वन्! तू सदा उपदेश कर। पृथिवी, अन्तरिक्ष, आकाश जिस के अन्दर स्थित हैं। अग्नि, चन्द्र, सूर्य, वायु जिस के आश्रित हैं वह सर्वाधार अत्यन्त सुखदायक परमेश्वर ही है। सूर्य जिस की शक्ति से उदित होता और जिस में अस्त होता है। उसी को मैं सब से बड़ा (ब्रह्म) मानता हूँ। उस से बड़ा और उस से परे कुछ नहीं। कोई उसका उल्लङ्घन नहीं कर सकता। परमेश्वर ने पूर्व कल्पवत् सूर्यचन्द्रादि को बनाया।

अन्य भी सैंकड़ों मन्त्रों को उद्धृत किया जा सकता है किन्तु विस्तार भय से इतना ही श्री गोरे जी की कल्पना की अवैदिकता और असंगतता को दिखाने के लिये पर्याप्त है। वेदों के अनुसार सृष्टि का निमित्त कारण परमात्मा है किन्तु उपादान कारण 'एषा सनत्नी सनमेव जाता एषा पुराणी परि सर्वं बभूव। (अ.१०-८-३०) 'अविर्वै नाम देवता ऋतेनास्ते परीवृता। तस्या रूपेणेमे वृक्षा हरिता हरितस्रजः॥ (अ. १०-८-३१) इत्यादि मन्त्रों के अनुसार (ऋतेन परिवृता) सत्यस्वरूप परमेश्वर द्वारा अधिष्ठित सनत्नी—(सनातन, नित्य) अवि=प्रकृति है। सूर्य चेतन है तथा यह सम्पूर्ण सृष्टि भी चेतन है इस तर्क और अनुभव विरुद्ध कल्पना की विस्तृत मीमांसा अनावश्यक है। आशा है श्री गणपतराव जी इन पंक्तियों पर निष्पक्षपात दृष्टि से विचार कर अपने आग्रह का परित्याग कर देंगे। हमें आश्चर्य श्री पं० दामोदर सातवलेकर जी सम्पादक 'वैदिक धर्म' जैसे अनुभवी सुप्रसिद्ध वेदज्ञ विद्वान् पर है कि वे इस प्रकार के असंगत लेखों को विना टिप्पणी के प्रकाशित करके क्यों सर्वसाधारण पाठकों में भ्रम फैलाने का कारण बनते हैं। हमारा उनसे भी निवेदन है कि वे भविष्य में लेखों को प्रकाशित करते हुए इस बात का ध्यान रखने की कृपा करें कि वैदिक धर्म के नाम से अनर्गल तथा असंगत कल्पनाओं को प्रोत्साहन न मिले॥

धर्म० देव०

दयानन्द महा मेला

(लेखक—श्री डा० सूर्यदेव जी शर्मा एम० ए० डी० लिट् अजमेर)

गत दीपावली के अवसर पर मेरठ में जो सप्तम आर्य महा सम्मेलन हुआ था उसमें ऋषि दयानन्द को श्रद्धांजलि अर्पित करते हुये राजस्थान आर्य प्रति निधि सभा के प्रधान श्री पं० जियालाल जीने अष्टम आर्यमहासम्मेलन को आगामी दीपावली के अवसर पर सन् १९५२ ई० में अजमेर में करने का निमंत्रण दिया था और साथ ही एक बड़ी महत्व पूर्ण घोषणा की थी कि उसी अवसर पर अर्थात् सन् १९५२ की दीपावली पर ऋषि की निर्वाण स्थली अजमेर नगरी में एक महान् "दयानन्द मेला" भी किया जायगा जो केवल उसी वर्ष के लिये नहीं किन्तु प्रतिवर्ष दीपावली पर वहीं हुआ करेगा।

इस घोषणा से आर्य भाइयों के हृदय में जो उस समय मेरठ सम्मेलन में उपस्थित थे उत्साह की एक लहर सी दौड़ गई थी और उन्होंने ऐसी योजना का हार्दिक स्वागत किया था।

श्री पं० जियालाल जी एक कर्मवीर आर्य हैं और वे जिस काम को उठाते हैं उसमें तन मन धन से ऐसे जुट जाते हैं कि उसको बिना सफल बनाये वे दम नहीं लेते। दूसरी ओर ऋषि दयानन्द के अत्यन्त भक्त हैं, ऋषि में उन्हें इतनी अगाध श्रद्धा है वे डंके की चोट अपने को "दयानन्दी आर्य" कहने में गर्व अनुभव करते हैं और यदा कदा अपने व्याख्यानों में कहा करते हैं कि मैं अपने ऋषि को मूर्ति पूजा के रूप में नहीं किन्तु ऋषि पूजा वा वीर पूजा के रूप में पुजवाना चाहता हूँ क्योंकि ऐसा ऋषि न कोई कई सहस्र वर्षों से संसार में हुआ और न होने की आशा है। फिर ऐसे अद्वितीय ऋषि के नाम पर यदि हम कोई आयोजन उसके नाम की चिरस्थायी रखने के लिये उसकी निर्वाणस्थली में करते हैं तो ऋषि ऋण से उऋण होने का यह एक छोटा सा साधन मात्र ही करते हैं। श्री पं० जियालाल जी की कर्म वीरता और ऋषि भक्ति को देखते हुये यह निस्सन्देह कहा जा सकता है कि इसमें उन्हें सफलता अवश्य प्राप्त होगी और अद्वितीय सफलता होगी।

इस दयानन्द महा मेले में होगा क्या और उसकी रूप रेखा क्या होगी ? ये तो विस्तार की बातें बाद में तय होंगी लेकिन यह निश्चय है कि एक दयानन्द चित्रालय(अद्भुतालय Museum) बनाया जायगा जिसमें ऋषि जीवन से सम्बद्ध लगभग १५० घटनाओं को चित्रकार की तूलिका से चित्रों के रूप में बड़े कलात्मक ढंग से प्रदर्शित किया जायगा और फिर इस कार्य को स्थायी बनाने के लिये इन चित्रमयी घटनाओं को सङ्गमरमर पर बड़े सुन्दर रूप में अंकित कराके अथवा खुदवाकर रख दिया जायगा जिनको अजमेर में आने जाने वाले यात्री सर्वदा और प्रतिवर्ष दीपावली के अवसर समस्त आर्य जगत् के लोग देख सकें।

इस प्रकार चित्रों और संगमरमर पर अंकित

ऋषि जीवन की घटनाओं के अतिरिक्त "दयानन्द म्यूजियम" में ऋषि के हस्तलिखित पत्र, पुस्तकें, सामान, सामग्री और ऋषि के जीवन काल में उनके सम्पर्क में आये हुये लोगों के चित्र आदि भी रहेंगे। यह एक ऐसी स्थायी वस्तु होगी जो किसी आचार्य के लिये आज तक भी नहीं की गई। इससे हमारे ऋषि का और आर्य समाज का गौरव कितना बढ़ेगा यह तो अनुमान की ही वस्तु है। इस म्यूजियम के अतिरिक्त मेले में प्रदर्शिनी धर्म प्रचार, तथा अन्य जो अनेक आकर्षक प्रोग्राम होंगे वे तो विस्तार की बातें हैं जो दर्शनीय होंगी ही साथ ही यह भी एक निश्चित बात है कि इस महान कार्य में लाखों रुपया व्यय होगा।

जिस समय यह घोषणा मेरठ सम्मेलन के मंच से की जा रही थी उसी समय मंच पर बैठे हुए कुछ आर्य पुरुष इसके औचित्य और उपयोगिता में संदेह प्रकट करके कह रहे थे कि यह तो अजमेर में दरगाह के मेले की तरह होकर दयानन्द की पूजा मे (समाधि पूजा या कब्रपरस्ती में) परिणत हो जायगा। हम समझते हैं कि उन महानुभावों की ऐसी धारणा ठीक नहीं। ऋषि जीवन की घटनाओं का प्रदर्शन दर्शकों पर अमिट प्रभाव डालने वाला ही होगा यह निस्सन्देह और ध्रुव सत्य है। साथ ही इस प्रकाश के युग में ऋषि दयानन्द के अनुयायी इतने अज्ञानी नहीं हैं जो डंके की चोट ऋषि द्वारा खंडन की गई मूर्तिपूजा को फिर अपनाने लगेंगे और इस प्रकार ऋषि दयानन्द की मूर्ति की पूजा करने लगेंगे। अतः यह संदेह निराधार है। इस म्यूजियम में पूजा करने के लिये दयानन्द की कोई मूर्ति होगी ही नहीं।

जब यह बन जायगा तब ऋषि मेला आर्यो के और हिन्दुओं के लिये एक महान् तीर्थ का रूप धारण कर लेगा। जिस प्रकार प्राचीन काल मे ऋषियों ने जो तीर्थ बनाये थे वे साधारण जनता की जो वर्ष में एक या दो बार वहां एकत्रित होती थी, ज्ञान देने के महत्त्वपूर्ण साधन थे, उसी प्रकार इस ऋषि मेले पर भी आर्य हिन्दू जनता वर्ष में एक बार आकर धर्मोपदेश और ज्ञान का प्रकाश प्राप्त किया करेगी, वास्तव में यह एक सच्चा ज्ञान तीर्थ हो जायगा।

हम समझते हैं कि यह योजना अत्यन्त व्ययसाध्य होते हुये भी सैद्धान्तिक दृष्टि से औचित्य पूर्ण और समीचीन है और हमें आशा है कि कृपा और आर्य भाइयों के सहयोग से श्री पं० जियालाल जी के जीवन की यह सबसे बड़ी साध अवश्य पूर्ण और सफल होगी।

सिनेमा का सुधार

(लेखक—श्री प० गङ्गाप्रसाद जी एम० ए० कार्य निवृत्त मुख्य न्यायाधीश जयपुर)

सार्वदेशिक के अक्तूबर १९५१ के अंक में "हमारे पतन के कारण सिनेमा" शीर्षक के साथ एक लेख श्रीमती कृष्णा कुमारी जी एम० ए०, डी० टी० उपाचार्या आर्य कन्या महाविद्यालय, इटावा, का लिखा हुआ प्रकाशित हुआ था। विषय ऐसे महत्त्व का है कि मैं कुछ विस्तार के साथ अपने विचार प्रकट करना चाहता हूं। सुयोग्य लेखिका जी के विचारों का हृदय से आदर करते हुए मैं कई बातों में उनसे मतभेद करने का साहस करूं गा।

(२) श्रीमती जी ने वर्तमान सिनेमाओं की अश्लीलता का और उनके चित्रों से जो विलासिता और कामुकता के भाव सर्व साधारण में, और विशेष कर युवकों में फैलते हैं उनका उग्र भाषा में वर्णन किया है और अन्त के पृष्ठ पर लिखा है।" मेरा तो यह विचार है कि जब तक सिनेमा को जड़ से न मिटा दिया जायगा हमारा देश सच्चे अर्थों में स्वतन्त्र न हो सकेगा। यदि योग्य लेखिका अप्रसन्न न होवें तो मैं यह कहूंगा कि "सिनेमा को जड़ से मिटा देना बिलकुल असंभव है, और ईश्वर की कृपा तथा ऋषि दयानन्द व महात्मा गान्धी के आशीर्वाद से हमारा देश सच्चे अर्थों में स्वतन्त्र होकर रहेगा चाहे इसमें कुछ अधिक समय लगे सिनेमा में सुधार होना चाहिये।

रेडियो के सुधार का दृष्टान्त

(२) मैं एक दृष्टान्त दूंगा। रेडियो ब्राड कास्टिंग Radio Broad Casting के विरोध में भी सुशिक्षित जनता व आर्य्य समाज को एक समय बहुत सी शिकायतें थी। भाषा की शिकायत थी कि सरल हिन्दी के स्थान में क्लिष्ट उर्दू काम में लाई जाती है, गीत व गजलें जो गाई जाती थीं उनकी अश्लीलता की शिकायत थी। अन्य प्रोग्राम की भी अनुपयुक्तता की शिकायत थी। हिन्दी साहित्य सम्मेलन ने तो सत्याग्रह आरम्भ कर दिया और अपने योग्य विद्वानों को रेडियो ब्रौड कास्टिंग में भाग न लेने की आज्ञा दे दी जो कुछ समय तक चलता रहा। भारत के स्वतन्त्र होने पर जो राज्य मन्त्री नियत हुए उनको जनता के हित से सहानुभूति थी। धीरे धीरे लगभग सब शिकायतें दूर होगई। अब भाषा सुगम हिन्दी काम में लाई जाती है। गीत व भजन आदि भी बहुत अंश में आपत्ति जनक नहीं होते। प्रोग्राम में भी सुधार होगया। आर्य्य समाज की मांग पर अब समय २ पर वेदों की कथा भी रेडियो से प्रकाशित होती हैं।

सिनेमा में सुधार की आवश्यकता

(३) रेडियो प्रोग्राम की तरह सिनेमा में भी सुधार हो सकता है और होना चाहिये। रेडियो बिलकुल सरकार के अधीन है। उस में एकदम सुधार होना संभव था और हो गया। सिनेमा के प्रबन्ध व संचालन में जनता का विशेष अधिकार है। चित्रों Films की तय्यारी Production और उनका वितरण Distribution या प्रचार बिलकुल जनता के हाथ में है, जैसी जनता की

रुचि होगी वैसे ही चित्र अधिक बनेंगे, यह ठीक है कि चित्र जो तय्यार होते और प्रदर्शित होते हैं उन का भी देखने वालों के चरित्र पर बहुत प्रभाव पड़ता है। पर इस का सुप्रबन्ध विशेष कर जनता ही के अधिकार में है।

बोर्ड आफ सेंसर्स का संगठन

(४) जहां तक मेरी जानकारी है देहली बम्बई व कलकत्ता में जहां चित्रों के बनने का व्यवसाय विशेष रूप से है चित्रों की जांच के लिये एक Board of Censors परीक्षक समिति नियत है। जब तक वह समिति किसी चित्र को स्वीकार Certify न करे तब तक उस का कहीं प्रदर्शन नहीं हो सकता। इस समिति में कुछ सरकारी अधिकारी हैं, कुछ इस व्यवसाय के व जनता के प्रतिनिधि हैं। आज कल रिश्वतखोरी व भ्रष्टाचार की बहुत शिकायत है। कुछ लोग कहते हैं कि इस परीक्षक समिति में भी घूस खोरी चल जाती है और ऐसे चित्र Film भी स्वीकृत (Certify हो जाते हैं जो अश्लीलता वा अन्य कारणों से अस्वीकृत Uncertified होने चाहिये थे। यह शिकायत यदि सही भी हो तो इसका सुधार असंभव नहीं। सिनेमा एक ऐसी कला है जिसका शिक्षा से लगाव है और जिससे शिक्षा के प्रचार में सहायता मिल सकती है। मेरा विचार है कि जिस प्रान्त में कोई परीक्षक समिति Board of Cesscrs नियत हो उस प्रान्त के शिक्षा सचिव वा मन्त्री Education minister or Secretary उस समिति के अध्यक्ष हों। मेरी सम्मति में श्रीमती सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा को भी ऐसा यत्न करना चाहिये कि उसका एक प्रतिनिधि सदस्य के रूप से ऐसी समिति में लिया जा सके।

बालकों की रक्षा

(५) साधारण फिल्मों में अश्लीलता को रोकते हुए भी विलासिता व कामुकता के भाव इतने आजावेंगे जिनका प्रदर्शन बालकों के सामने उनके चरित्र गठन के लिये हानिकारक होगा। इसलिये पूर्वोक्त बोर्ड में यह आदेश होना चाहिये कि जिन चित्रों को वे उन की कथा व भावों को दृष्टि में रखते हुए बालकों के अयोग्य समझें, उनके लिये ऐसी ही आज्ञा देवें, और फिर ऐसा कानून बनना चाहिये कि उक्त प्रकार के चित्रों के प्रदर्शन में कोई सिनेमा का अधिकारी १८ वर्ष से कम की आयु वाले बालक वा बालिकाओं को टिकट न देवें, और पुलिस तथा आर्य समाजी जैसे सुधारकों का, अथवा उनके सदाचार सैनिकों का यह कर्तव्य होना चाहिये कि वे देख रेख रक्खें कि इस नियम का यथावत् पालन होता है।

सिनेमा के अधिक प्रचार व सस्ता होने का कारण

(६) योग्य लेखिका जी का पहला वाक्य यह है ' सिनेमा नाटक का निर्जीव रूप है।" यह ठीक नहीं। सिनेमा निर्जीव नहीं किन्तु बहुत सजीव है जिसने जनता में इतनी खलबली मचा रक्खी है। यह कहना ठीक होगा कि वह नाटक का परिवर्धित रूप है। आगे लिखा है कि "भारतीय जनता पर अपनी सभ्यता का रंग जमाने, उसको अपनी ओर आकृष्ट करने, तथा भारत पर

अपना अधिकार दृढ़ करने के लिये ही तो अंगरेजों ने हमारे देश में सिनेमा का प्रचार किया। आरंभ में सिनेमा को जनता ने पसन्द नहीं किया, इस लिये अंगरेजों ने नाटकों की अपेक्षा सिनेमा का टिकट बहुत कम कर दिया यहां तक कि केवल दो आना टिकट था। सिनेमा के अधिक प्रचार व सस्ता होने के ये कारण कदापि ठीक नहीं उसके कारण राजनैतिक Political नहीं किन्तु आर्थिक Economical है, और वे इस प्रकार हैं। नाटकों की उपयोगिता को लेखिका जी ने स्वीकार किया है। जब नाटक खेले जाते थे तो नाटक कम्पनियों को १५ या २० ऐक्टर बड़ी तनखाह देकर रखने पड़ते थे। उसका एक खेल एक ही दिन में समाप्त हो जाता था, अब वह खेल चित्र रूप में कई वर्ष तक चलता है। नाटक का एक खेल एक समय में एक ही स्थान पर हो सकता था। अब एक खेल चित्र रूप में सैकड़ों स्थानों पर पहुँच जाता है। इस में खर्च नाटक की अपेक्षा बहुत कम पड़ता है। इसलिये सिनेमा के खेल वा प्रदर्शन इतने सस्ते हैं। इसमें अंगरेजों की कुछ करतूत नहीं। अब यदि कोई नाटक खेला जाता है तो केवल कला की दृष्टि से अथवा किसी विशेष अवसर या आयोजन पर नाटक से प्रेम रखने वाले बिना पुरस्कार या मूल्य लिये खेलते हैं। व्यापार की दृष्टि से फिल्मों के मुकाबले में अब नाटकों का खेला जाना असंभव होगया है।

[धार्मिक फिल्म]

(७) लेख में धार्मिक खेलों का भी जिकर है और लिखा है—सिनेमा के धार्मिक से धार्मिक खेल में भी दाम्पत्य प्रेम का प्रदर्शन अवश्य किया जाता है जिसका विनाशकारी प्रभाव नवयुवकों और युवतियों पर अवश्य पड़ता है। केवल दाम्पत्य प्रेम (अर्थात् विवाहित स्त्री व पुरुष के परस्पर प्रेम) का प्रदर्शन यदि उसमें अश्लीलता न हो तो आपत्तिजनक नहीं समझना चाहिये, और यदि किसी चित्र में अश्लीलता हो तो (जैसा पैरा ५ में लिखा गया) बोर्ड या परीक्षक समिति उसको दिखाने के अयोग्य ठहरा सकती है।

ऋषि दयानन्द के फिल्म की उपयोगिता

(८) कुछ समय हुआ आर्य सामाजिक पत्रों में यह विवाद चला था कि ऋषि दयानन्द की जीवनी का चित्र सिनेमा के लिये बनना चाहिए या नहीं, एक लेख मैंने भी इस विषय पर अपनी सम्मति प्रस्ताव के अनुकूल लिखते हुए किसी पत्र में दिया था। उस लेख में मैंने यह सुझाव भी रक्खा था कि श्रीमती सार्वदेशिक सभा को एक छोटी सी उप समिति इस अभिप्राय से बना देनी चाहिये कि वह आवश्यक जांच खोज के बाद इस विषय पर सभा में रिपोर्ट देवें कि यदि ऋषि दयानन्द की जीवनी का फिल्म तैयार कराना उचित समझा जाय तो उसके लिए क्या प्रवन्ध होना चाहिये। तथा ऋषि की जीवनी के सिवाय और क्या और कैसे धार्मिक चित्र आर्य समाज के धार्मिक प्रचार की दृष्टि से बनवाये जाने उचित होंगे, मुझको ज्ञान नहीं कि उस पर कोई विचार हुआ या नहीं। मैं इस लेख के द्वारा फिर सभा का ध्यान इस विषय की ओर दिलाऊंगा।

अन्य धार्मिक फिल्म

सिनेमा के दो या तीन धार्मिक चित्र, (कृष्ण जन्म, गंगावतरण आदि) देखने का मुझको

अवसर प्राप्त हुआ। ये चित्र बहुधा पुराणों की कथाओं के आधार पर बनाये जाते हैं। मेरे विचार में वे चित्र बुरे नहीं थे किन्तु पौराणिक मत प्रचार की दृष्टि से अच्छे ही थे। मैं अपने अनुभव से कह सकता हूं कि सनातनी दश उपदेशकों के व्याख्यान का इतना प्रभाव नहीं होता जितना उनके पुराणों के आधार भूत एक धार्मिक चित्र के प्रदर्शन से होता है। उपदेश को सुनने के लिए बहुधा लिखे पढ़े लोग ही आते हैं, और वे भी बहुत कम। सिनेमा के पूर्वोक्त प्रकार के चित्र प्रदर्शन में सैंकड़ों व सहस्रों दर्शक आते हैं और जो अशिक्षित हैं वे भी देखते और सुनते हैं। इन गिने चुने ही "धार्मिक" चित्रों से पौराणिक मत का जितना प्रचार हाल में सर्व साधारण जनता में हुआ है उतना उनके मौखिक वा लेखबद्ध प्रचार से शायद नहीं हुआ। सिनेमा वास्तव में प्रचार का एक बड़ा भारी साधन है, यह खेद की बात है कि आर्य समाज ने उस की अब तक बिलकुल अवहेलना की है। पैरा० ४ में जो विचार मैंने रक्खे हैं यदि उनके अनुसार Board of Censors वा परीक्षक समिति की रचना कराई जाय (और ऐसा होना असम्भव नहीं), और यदि सार्वदेशिक सभा का भी एक प्रतिनिधि उस समिति में रहे तो जो अश्लील व विलासिता के भावों से भरे चित्र अब प्रदर्शित होते हैं उनमें भारी सुधार और परिवर्तन हो सकता है और उस दशा में वैदिक धार्मिक प्रचार के लिए भी सिनेमा अयोग्य साधन नहीं रहेगा।

शिक्षा सम्बन्धी फिल्म

(१०) सिनेमा वास्तव में शिक्षा के प्रचार के लिये एक महत्वपूर्ण साधन है, मुझको विश्वस्त रूप से मालूम हुआ है कि भारत सरकार की ओर से बहुत से रोचक व शिक्षाप्रद चित्र विज्ञान, ललित कलाओं, इतिहास भूगोल आदि के तय्यार होते हैं और बिना फीस आदि के कालिजों व स्कूलों को भेजे जाते हैं और वे उनका अपने विद्यार्थियों में प्रदर्शन करके उनको वापिस भेज देते हैं। मुझको यह भी मालूम हुआ है कि इंगलैण्ड में यह नियम है कि सिनेमाघरों के अधिकारी एक चित्र के दो भागों के बीच के समय Interval में कुछ विज्ञान व ललित कला आदि के ऐसे दृश्य दिखलावें जिनसे उपस्थित जनता के विनोद के अलावा उनका कुछ शिक्षण भी होजाय, यह नियम इस देश में भी चालू होना चाहिये। आज कल उस बीच के Interval समय में सिनेमा वाले अपनी आमदनी बढ़ाने की नीयत से आगे आने वाले चित्रों के कुछ आकर्षक दृश्य दिखलाया करते हैं।

मुझको यह भी मालूम हुआ है कि इंगलिस्तान में यह नियम है कि सिनेमा के बोर्ड आफ सैन्सर्स या निरीक्षक जिन चित्रों को बालकों के अयोग्य समझें उनको स्वीकार Certify करने पर भी उनको बालकों के लिए अस्वीकार कर देते हैं। यह नियम यहां भी होना बहुत आवश्यक है और होजाना चाहिये।

योग्य लेखिका ने यह भी शिकायत की है कि "हमारे देश का करोड़ों रुपया सिनेमा की मशीनें खरीदने में विदेश को जा रहा है।" यह अवश्य दुःख की बात है। पर यह शिकायत केवल सिनेमा की मशीनों पर लागू नहीं किन्तु सब ही मशीनों

पर जो विविध व्यवसायों के लिये विदेश से आती हैं लागू है। सरकार तथा विचार शील प्रजा दोनों का इस ओर ध्यान है। जैसे जैसे हमारे देश में शिल्प की उन्नति होती जायगी और मशीनें यहां बनने लग जायंगी वैसे ही यह धन जो विदेशों में जाता है धीरे धीरे कम होकर बन्द हो सकेगा।

(१२) लेख का अन्तिम वाक्य यह है— "आओ एक साथ मिल कर प्रण करें कि सिनेमा को जड़ से मिटा कर ही दम लेंगे," मुझको अपने पहले शब्द दुहराते हुए कहना पड़ता है कि- ऐसी आशा निराशा मात्र ही है। जनता का कोई बड़ा भाग ऐसा प्रण करने को तय्यार न होगा। और न कोई सरकार चाहे जितनी शक्तिशालिनी हो, ऐसे व्यवसाय को जिसमें करोड़ों रुपये का धन लगा है और जिससे करोड़ों मनुष्यों के विनोद का सम्बन्ध है जड़ से मिटाने का साहस करेगी। और यदि ऊपर लिखे सुझावों के अनुसार सिनेमा का सुधार हो सके, (जो कानून के अनुसार बिलकुल सम्भव है) तो फिर उसको "जड़ से मिटाने" का प्रश्न ही नहीं रहता। सिनेमा का कानून Cinema tograph Act (II of 1918 एक छोटा सा कानून है। सिनेमा के सुधार के लिए वह किसी प्रकार बाधक नहीं, और न उसमें कुछ संशोधन या परिवर्तन करने की जरूरत होगी। केवल उसके नियमों Rules में जो प्रान्तीय सरकार बनाती है संशोधन कराना आवश्यक होगा। योग्य लेखिका जी ने वर्तमान सिनेमाओं के जो दोष दिखलाये वे अवश्य विचारणीय हैं। आशा है देश के विचार शील नेता उनके सुधार का यत्न करेंगे, आर्य समाज का जो सब सुधारों में अगुआ रहा है इस में विशेष कर्तव्य है।

ओ३म्

———

विश्व शान्ति

(लेखक—पूज्य श्री स्वामी सच्चिदानन्द जी संस्थापक, विश्व शान्ति संघ देहली ।)

(पूर्वाङ्क से आगे)

संसार में जितने झगड़े होते हैं, उन सबके तीन मुख्य कारण बताये जा सकते हैं, अर्थात् जर (धन), जमीं (जायदाद) और जन (स्त्री)। इन तीनों प्रकार के झगड़ों से बचने के ऋषियों ने तीन साधन बताये हैं—सत्य, अस्तेय और ब्रह्मचर्य ॥

सत्य

जो बात या वस्तु जैसी है उसको वैसा ही समझना, वैसा ही कहना और वैसा ही करना सत्य कहलाता है। असत्य के कारण मनुष्य ने मनुष्य के लिये अनेकानेक बखेड़े खड़े कर दिये हैं और ऐसी उलझने पैदा करदी हैं कि मनुष्य का जीवन अत्यन्त दुःखमय होगया है। न्यायाधीशों का कहना है कि दोनों पक्ष के लोग ईश्वर को साक्षी करके पक्ष तथा विपक्ष मत मण्डन करने के लिये झूठ के ढेर लगा देते हैं और न्यायाधीश के काम को इतना जटिल कर देते हैं कि इन झूठ के ढेरों में से सत्य को निकाल कर न्याय प्रदान करना दुष्कर होगया है। दूसरी ओर निर्दोष समझते हैं कि पृथ्वी पर न्याय प्राप्त नहीं होता और अपराधी समझते हैं कि झूठ बोलकर उन्होंने अपने चर्म की रक्षा करली है। व्यापारी कहते हैं कि बिना झूठ व्यवसाय नहीं चल सकता। एक फुटकर व्यापारी एक थोक व्यापारी के पास जाकर पूछता है कि अमुक वस्तु के क्या दाम हैं। वह २॥।) बताता है। वह दूसरी थोक दुकान पर जाकर मूल्य पूछता है, वह भी २॥।) बताता है। यह व्यापारी लौट कर पहली थोक दुकान पर जाता है और कहता है कि दूसरी दूकान वाला २।) में देरहा है। क्योंकि मैं पहले आपके पास आया था अतः आपका पहला अधिकार है। यदि आप २।) में देना चाहेंतो मैं आपसे ले सकता हूँ, अन्यथा दूसरी दुकान से लेलूंगा। थोक व्यापारी सोचता है कि आज कल व्यापार ढीला है चलो देदो। पैसे की आवश्यकता है अतः वह २।) में दे देता है। और ५०० नग उस वस्तु के बेच देता है। फुटकर व्यापारी इस प्रकार इस सौदे में जरा सी झूठ बोलकर २५०) कमा लेता है।

वह पूछता है स्वामी जी बताइए बिना झूठ बोले व्यापार कैसे हो सकता है? दूसरी ओर एक चोर बाजार का व्यापारी जिसके गुदाम में लाखों टन अन्न पड़ा है संसार की आवश्यकता देखकर कह देता है कि मेरे पास अनाज नहीं है। और उसी अनाज को जिसकी दर इस समय ५) रु० मन है उसकी २५) मन के हिसाब से जरूरत मन्दों को बेचदेता है। बाजार का भाव चढ़ जाता है। लाखों आदमी भूखे मर जाते हैं, और इन के रक्त से सिञ्चित धन को यह व्यापारी

भोगता है। और जब उससे पूछा जाता है कि ऐसा क्यों करता है तो वह उत्तर देता है कि महाराज "घोड़ा दाने से यारी नहीं किया करता।" मेरे जीवन का यही तो अवसर है जिसमें मुझे कुछ कमा लेना है। यदि दो तीन वर्ष में दस, बीस हवेलियां खड़ी न कर लीं तो ऐसा अवसर फिर हाथ न आयेगा। बात क्या है थोड़ा सा धन इसमें से दान कर देंगे। प्रेमीजनो! भगवान् के यहां घूंस नहीं चलती। उसके दरबार में पेशगी घूंस देने से स्वर्ग का सिंहासन सुरक्षित नहीं किया जा सकता "जैसी करनी वैसी भरनी।" मित्रो! घोड़े ने दाने से यारी करना छोड़ दिया और आज दाने ने घोड़े से यारी करना छोड़ दिया है। 'अब पछताये क्या होत है, जब चिड़ियां चुग गईं खेत।"

हमने तो इस जीवन में यह देखा है बड़े २ घूंस खोर और चोर बाजार वाले व्यापारियों के बालक यही सोचते रहते हैं कि सेठ जी की आंख बचे तो तिजोरी तोड़ें। यह माता जी के सोने का हार या बीबी के सोने के कंगन यदि मिल जायें तो काम बन जाय। अकस्मात् सेठ जी तिजोरी की चाबियां रह जाती हैं और उनका लड़का तिजोरी खोल कर एक हजार रुपये के नोट निकाल कर बाहर आजाता है। और अपने मित्रों को बुलाकर कहता है कि आज तो मैं सेठ बन गया हूँ। शीघ्र ही टैक्सी लाओ सैर करने चलें। टैक्सी आती है चार मित्र बैठ जाते हैं और आगे चल कर २० बोतल शराब की तथा अन्य सामान खाने पीने का ले लेते हैं। तब सेठ जी का पुत्र कहता है कि भाई अकेले क्या चलें चार नाचने गाने वाली भी ले चलें। दूसरी मोटर भी तैयार हो जाती है। और धन धनाते हुए आठों बगीचे में पहुँचते हैं। रात भर आनन्द मनाते हैं। खूब खाते-पीते हैं नाच और गाने के मजे लेते हैं और आनन्द लेते हैं। प्रातः काल में चार मित्रों में से तीन अपनी करनी के फल स्वरूप डाक्टर साहब के द्वार पर खड़े दिखाई देते हैं। सेठ जी के हजारों रु० खर्च होने पर लड़का अच्छा नहीं होता और सात पुश्तों की खबर लेता है। चोरी का माल मोरी में ही जाया करता है।

मनुष्य कहते हैं कि असत्य आचरण करने वाले फलते फूलते दिखाई देते हैं और सत्यपर चलने वाले दुःख और क्लेशों में अपना जीवन व्यतीत करते हैं। "दूर के ढोल सुहावने नियरे के ढप २ होये।" भाई हम को तो गरीब और अमीर दोनों से मिलने का अवसर मिलता है। हमने तो कई सेठों से पूछा कि सेठ जी आप तो बड़े सौभाग्यशाली मालूम होते हैं। दस रुपये के फल आपके यहां प्रतिदिन आते हैं। कैसी स्वादिष्ट मिठाइयां शुद्ध घी की प्रतिदिन आपके यहां बनती हैं आप तो मजे करते होंगे? सेठ जी ने उत्तर दिया कि स्वामी जी आपका विचार ठीक नहीं है। मैं तो यदि एक फांकी भी फल की मुंह में रखलूं या एक टुकड़ा मिठाई खालूं तो पेट में दर्द हो जाता है। मैं तो मारे डरके मूंग की दाल और रोटी खाता हूँ और वह भी बिना घी के।

मैंने फिर पूछा कि सेठानी जी और बच्चे तो खाते होंगे। सेठ जी ने उत्तर दिया कि महाराज

मैं इतना खुश किस्मत नहीं हूं। तनिक सी चीज खाने से सेठानी जी के पेट में हवा भर जाती है वायु के कारण शरीरके अंग २ में दर्द होने लगता है और सिर दर्द में सेठानी जी धाड़े मारने लगती हैं। मैंने फिर पूछा कि फिर आप इतनी चीजें क्यों मंगाते हैं और बनाते हैं। उत्तर मिला महाराज यह सब तो आने जाने वालों को दिखाने के लिए करते हैं जिससे हमारे अतिथियों में हमारा सन्मान बना रहे। फल मिठाई और घी तो हमारे नौकर-चाकर अतिथि चूहे बिल्ली खाते हैं। हमारे मुंह पर तो ताले लगे हैं। "सकल पदारथ है जग माहिं, भाग्य हीन नर पावत नाहिं" महाराज हम तो बाहर से साफ कपड़े पहने हुए मोटरों, जहाजों पर दौड़ते हुए लोगों की आंखों में चका चौंध करते फिरते हैं। परन्तु वास्तव में हमारा जीवन बड़ा दुःख मय है। अनेकानेक झूठ बोल कर दिन रात परिश्रम करते हैं जोखम लेते हैं लाखों के वटवारे करते हैं। परन्तु शान्ति से भोजन भी नहीं कर सकते। रात भर नींद नहीं आती। भय लगा रहता है। कहीं दिवाला न निकल जाय कहीं चोर डाकू धन ने ले जायें और मार न डालें। क्या यही सुख है जिसे की गरीब आदमी दूर से तड़क भड़क देखकर इतनी प्रशंसा करता है?

एक बार अकबर राजा शिकार खेलने गया। शाम हो गई और वर्षा होने लगी। पास की एक झोंपड़ी में गया कि रात को आश्रय ले लें। द्वार पर खड़ा होकर सुनने लगा घर में एक देहाती भोजन कर रहा था और अपनी स्त्री से इस प्रकार कह रहा था कि तूने कितना अच्छा भोजन बनाया है कि ऐसा किसी राजा ने भी न खाया होगा। अकबर ने सोचा कि यह कौनसा भोजन है जो मुझे नहीं मिला और उसे खाने की इच्छा हुई। उसने दरवाजा खट खटाया। किसान ने अन्दर बुला लिया और उसके सामने एक थाली में मक्की की रोटी और सरसों का साग और एक हरी मिर्च रख दी। राजा ने उसे खाया परन्तु एक दो ग्रास से अधिक न खा सका। प्रातः काल में चलते समय राजा ने इस किसान से कहा कि भाई कभी तुम्हारा देहली आना हो तो हमारे पास जरूर आना। किसान ने पूछा कि तुम्हारा नाम और पता क्या है। उत्तर मिला कि देहली आकर अकबर को पूछ लेना, सब लोग जानते हैं बता देंगे। एक दिन किसान दिल्ली आया और 'अकबरा २' कहकर लोगों से पूछने लगा। अन्त में लाल किले के द्वार पर आकर पहरे दार से पूछा कि मुझे अकबरा से मिलना है। द्वारपाल इसकी वेष-भूषा देखकर हैरान थे और राजा को सूचित करना नहीं चाहते थे। अन्त में एक आदमी ने राजा को सूचित किया कि अमुक नामका किसान आपसे मिलना चाहता है। अकबर ने स्वयं आकर उसका स्वागत किया और उसे हृदय से लगा लिया और दरबार में ऊंची गद्दी पर इसे बिठाया। आज्ञा दी कि अतिथि को केसर और कस्तूरी से स्नान कराया जाय। हजामत बनाई जाय। रेशम मखमल के कपड़े पहनाये जायें। और ३६०० मोहन भोगों के थाल सजा कर भोजन कराया जाय। जब किसान भोजन कर रहा था तो अकबर आया और पूछा कहिये क्या हाल है। किसान ने उत्तर

दिया। मालूम नहीं पानी में क्या मिलाया कि मेरी नाक उड़ी जाती है। यह लुचलुचे कपड़े पहना दिये हैं जो उतरे जाते हैं। भोजन तो मेरे कंठ से नीचे नहीं उतरता। ऐसा भोजन मैंने कभी नहीं खाया ठीक है. सच्चाई के साथ पसीने की कमाई के रूखे सूखे भोजन खा कर शुद्ध कपड़े पानी पी लेने में जो स्वभाविक आनन्द है वह महलों में कहां है ?

एक रिटायर्ड पुलिस सुपरिटैंडैंट साहब मिले उन्होंने कहा महाराज हमने अपने जीवन में बड़ी गल्ती की। कभी घूंस न ली और आज वे घर के दुःखी फिरते हैं। नौकरी के समय में अफसरों ने भी हमारी सच्चाई का कोई आदर नहीं किया। वरन् मेरा ठट्ठा उड़ाते रहे और मैं उन्नति न कर सका। जिन लोगों ने घूंस ली और दी उनसे सब खुश रहे और उन्होंने पर्याप्त उन्नति की। बहुत पैसा जमा किया। और अनेक घर महलों के समान खड़े किये। यहां एक कथा याद आती है कि एक साधु था जो नित्य राजा के यहां भोजन करता था और केवल रानी के हाथ का भोजन खाता था। एक दिन साधु जब महल से भोजन करके लौट रहा था तो उसने एक खूंटी पर हीरों का हार लटकता हुआ देखा। उसने उसे उठा लिया और छिपा दिया। महल में बहुत ढूंढने पर भी हार न मिला। नौकर चाकरों पर पुलिस ने डांट दी परन्तु हार किसी प्रकार न मिल सका। अन्त में एक दिन साधु ने राज दरबार में आकर कहा। राजन् मेरे इस हाथ ने बड़ा अपराध किया है इस को काट डालिये। जब हार साधु की कुटिया के पास भूमि खोद कर निकाला गया तब राजा ने साधु से पूछा महाराज आप इतने उच्च कोटि के महात्मा हैं कि ऐसे दुष्कर्म का आप पर सदेह करना भी असम्भव है। क्या बता सकते हैं आपकी ऐसी वृत्ति क्यों हुई ? साधुने उत्तर दिया कि जिस दिन मैं ने यह हार चुराया इससे पहले दिन एक सज्जन ने बड़े अच्छे कपड़े पहने हुए एक थाल में नाना प्रकार के भोजन लाकर उपस्थित किये। और मेरे मना करने पर भी उसने बहुत आग्रह किया कि मैं इस भोजन को पा लूं। मैं खुश हो गया और मुझे वह भोजन खाना पड़ा। इसी भोजन के उपरान्त मेरी बुद्धि मलिन हो गई।

सज्जनो विचार करो कि यदि चोरी के धन का भोजन प्राप्त कर लेने से एक महात्मा की बुद्धि इतनी भ्रष्ट हो सकती है। तो उन साधारण जीवों के तथा उनके परिवार, कुटुम्ब तथा बाल बच्चों की वृत्ति कैसे हो जायगी जो झूठ बोलकर अनेक प्रकार के धोखे द्वारा घूंस और चोरबाजारी का भोजन करते हैं और इस पाप मय जीवन के विस्तार से संसार में कैसी और कितनी अशांति पैदा हो जावेगी। यही कारण है कि ऋषियों ने 'ऋत' के महा मन्त्र का उपदेश किया है और बाहरी अशान्ति के बचने का दूसरा मुख्य साधन बताया है।

(शेष अगले अंकों में)

Psychic Affinity Between Hinduism And Buddhism.

(By Pt. Ganga Prasad Upadhyaya M.A. Ex. Secretary International Aryan League, Delhi-Mandalay)

HINDUISM as it is prevalent to day in different forms in India, and Buddhism, as it is in these days found in different Buddhist countries outside India, both lack their ancient and pristine purity.

There is Kernel there, but it is buried so deep under the debris of mythology and superstition, that the work of salvaging is more than a Herculean task. Political, social, problems both in India and neighbouring Buddhist countries are almost the same and they are engaging cent percent attention of the top-most thinkers of these countries. As to the masses, they are out of question in such serious undertakings. Superficial ceremonials are more than sufficient to keep them engaged. They can see no further and want nothing more, if there is a mind or two inquisitive enough to find the truth, his resources are so few and he so much lacks the co-operation and help of his countrymen, that he finds his path quite obstructed too often he passes as a crank. But the fact remains that nature hures terrible penalties on our heads for such criminal negligence. Our present is interlinked with our past and howsoever much we may try, we cannot begin as if on a clean state. The problems which spring up everyday, whether in political emancipation of nation from international entanglements, or in the reconstruction of our degenerate social fabric or in the solution of economic embarrassments, all have a bearing upon our past. We miserably fail in our task of amelioration if we ignore the conditions which gave rise to those problems. No doctor can cure a disease unless he studios the innermost powers of the diseased constitution and the causes which gave birth to the disease.

Buddhism was born in India and for many centuries it held a great sway over Indian mind. Was it an entirely new religion, written on a clean slate, transplanted on the virgin soil of India, from elsewhere? Had it nothing to do with old tradi-

tions? Was it altogether extraneous? Didit come down abruptly from the moon.? Certainly not. The birth place of lord Buddha was not a new country. It had thousands and thousands of years' tradition behind. The strands of the Buddha's mental set up must have been many and various. It was the oonditions, then obtaining in India which created the Buddha and Buddhism, and it was these conditions which provided the new sapling with necessary nurture. Buddhism grew into a gigantic tree with rich and exhuberant foliage. Casting its shade and shadow not only on the whole of India, but in neighbouring countries, east, west south, and north-Ceylon in south, Tibet in north and Burma etc in the east, are its living examples, andarchaelogical researches as well as religious and cultural investigators have found decisive proofs that Afghanistan,Persia, and other countries in the west could not escape the cultural influence of Buddhism in the heyday of its dominance.

Anagarika Dharmapala tells us that the Persian word "But" meaning idol is a corruption of the word 'Buddh' which is a proof sufficient and convicting that the images of Lord Buddha were universally worshipped in those countries before the iconoclastic wave burst forth and swept away Buddhistic infiuences from there.

In India too, there sprang up current and cross-cur-rents both social and religious. which shore the fabric of Buddhist thought. and Buddhism had to leave the place of its birth and cradle for pastures anew, But it was impossible that Buddhism should leave nothing behind. Many fabrics of Buddbistic thought got deep-rooted in the soil of India, that though it was possible to cut the branches and even the trunk, it was very difficult to uproot all the Buddhist influences. So enigmatic is the growth of a nation's life that even the enemy defeated and ousted successfully, leaves his marks on the life of the conqueror.

Even in the teachings and philosophies of Shri Shankaracharya and others to whose credit is accounted the glory of Hindu revivalism and Buddhist ostracism, there appear shades of Buddhist thought somewhere clearly and somewhere covertly.

The love of certain traits of Buddhism was so ingrained in Hindu mind, that inspite of anti-Vedic and hetrodoxical profession of Buddhist teachers, which were intolerable to

Indian thinkers of the later day, the Hindu could not bear to forget the prince of Kapilavastu altogether and he allowed a respectful niche in his temple as Bhagwan Buddha, the Atheist incarnation of Vishnu.

India and other Asiatic countries have woefully suffered a political set-back for about twenty conturies and some of these have remained verita-ble slaves in politics and economics. In this long duration of thraldom, to maintain old position was impos-sible, to go ahead out of question ; even to mark time, very difficult. And it is nothing short of miracle, that the old fire though under the heap of ashes could not be totally extinguished. Though wounded, cru-shed, mutilated and enslaved, India never succumbed to extraneous infl-uences; it ramained all along alive and kicking. Even in its worst days, it never ceased to struggle. Even in the darkest hour of moonless mid-night, a gleam appeared here and there in the horizon to assure the world that the old spirit is not all-together dead and that the signs of resuscitation are definite and sure. When Vadic revival took place with various degrees of success in various types and forms, it appeared that seeming discontinuity between the present and the past was only super-ficial; the bridge which tried to divi-de the current was too artificial and the water underneath it flowed on as ever. unobstructed and unstem-med. Is it not wonder-inspiring that very ancient Vedic scriptures conta-in words ninety per cent of which are found intact and in the original sense even in the Sanskrit language of today ? And the ten per cent which appeared old and archaic are not so unconnected and clueless that we may know nothing about them. No such thing is found in the case of literature of any other nation.

Here in india, cities, were raized to the ground, mortar and brick dis-appeared, people were massac-red, but culture and literature remai-ned. How ? It is a riddle for thinkers of the world to solve. It is no-plagi-arism. It is a reality.

Buddhism left the Indian shores It travelled abroad. It could not have remained totally unchanged. Climatic and geographical influences it could not bave combatted succes-sfully. It found different clothings in the form of different languages and different scripts. Great Buddh-ist teachers and missionaries went to Burma, Ceylon, China, and Far East, put the Buddhist Texts in different scripts and translated

them in different languages, The process must have been long and difficult. But their achievements proved paying. Buddhist scriptures have been practically kept intact in Burmese. Chinese, Ceylonese etc. even inspite of political vicissitudes. The Treasure is there. One has simply to convert it into current coins in order to ensure its market value.

Hindu thought and Buddhist thought, though originally cousins germane, now appear to be quite foreign to each other and efforts are sometimes made to widen the gulf between the two. The reason is quite plain. They are so differently dressed, no Indian knows Burmese language or script and no Burman knows Sanskrit language or Nagari character. What a sign of disappointment and anguish. I heaved when I saw in the private library of U khin Maung Dwe, a leading member of Mandalay Bar shelfuls of Buddhist scriptures handsomely got up and clearly kept up, all in a garb, which was an impenetrable wall between myself and the throughts. which must most probably have been just similar to my throughts. How I desire to hug them as lost brothers found again and how painful it was to find that we could not speak to each other. Equally painfully receiprocal were the sentiments of my friend the great scholar referred to above, for these thirty years the gentleman has been assiduously working to give a systematic condified form to Buddhist polity. He wishes to trace the words used by the Lord Buddha to their original pre-Buddhistic significances so that the evolution of these thoughts may be scientifically traced aud analysed. But he does not know Sanskrit.

(To be Continued.)

साहित्य-समीक्षा

सरल सन्ध्या विधिः—लेखक—श्री पण्डित गंगाप्रसाद जी उपाध्याय एम० ए० कला प्रेस प्रयाग प्रकाशक—आर्य समाज अमरोहा मूल्य ।=)

श्री पं० गंगाप्रसाद जी उपाध्याय आर्य जगत् के एक उज्ज्वलरत्न और सिद्धहस्त यशस्वी लेखक हैं जिनकी अनेक पुस्तकों की समालोचना हम 'सार्वदेशिक' में प्रकाशित कर चुके हैं। यह उनकी सन्ध्या विषयक सरल शैली में लिखी पुस्तक है जिसे आर्य समाज अमरोहा ने अपनी स्वर्ण जयन्ती के उपलक्ष्य में प्रकाशित किया है। सन्ध्या क्यों करनी चाहिये? सन्ध्या के विरुद्ध आक्षेपों का उत्तर, सन्ध्या करने के लाभ, सन्ध्या के रूप इत्यादि पर भूमिका रूप से अत्युत्तम प्रकाश डाल कर मान्य उपाध्याय जी ने सन्ध्या के मन्त्रों की सरल और प्रभावोत्पादिनी व्याख्या की है। सन्ध्या की व्याख्या में अनेक पुस्तकें लिखी जा चुकी हैं तथापि इसकी अपनी उपयोगिता और मौलिकता है जो पाठक को प्रभावित किये बिना नहीं रहेगी। "ओ३म् वाक् वाक्" इत्यादि का मान्य लेखक ने यह अर्थ किया है कि 'ओ३म् अर्थात् ईश्वर ही मुख्यतः हमारी वाणी है। इसी प्रकार 'ओं प्राणः प्राणः' का अर्थ असली प्राण तो ओ३म् ही है जिसके द्वारा मेरा समस्त शरीर अनुप्राणित है। "ओ३म् चक्षुः चक्षुः" का अर्थ है असली आंख ओ३म् ही है 'ओ३म् श्रोत्रं श्रोत्रम्' असली सुनने की शक्ति ओ३म् ही है।" इत्यादि

यह मान्य उपाध्याय जी की सर्वथा मौलिक व्याख्या है जिससे सम्भवतः अनेक विद्वान सहमत न होंगे तथापि उन्होंने 'यद् वाचानभ्युदितं येन वागभ्युद्यते' तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि 'वाचो ह वाचं स उ प्राणस्य प्राणः' इत्यादि उपनिषद् वाक्यों से इस कल्पना को पुष्ट करने का प्रयत्न किया है। यह कल्पना कुछ नवीन होते हुए भी विचारणीय है। शेष मन्त्रों की व्याख्या सरल और हृदयग्राहिणी है। हमें आशा है सन्ध्या की इस सरल व्याख्या से लोगों का वैदिक सन्ध्या में प्रेम बढ़ेगा तथा वे इससे विशेष लाभान्वित होंगे अतः इस पुस्तक का हम हार्दिक अभिनन्दन करते हैं। ध० दे०

भक्ति सोपान—लेखक स्व० श्री पं० घासीराम जी एम०ए० भूमिका लेखक—स्व० श्री महात्मा नारायण स्वामी जी प्रकाशक—श्री जयन्तीप्रसाद जी आर्य पुस्तकालय निकट तहसील मेरठ मूल्य १॥)

इस पुस्तक में स्व० श्री पं० घासीराम जी ने जो आर्य जगत् के एक प्रसिद्ध विद्वान् लेखक थे भक्ति और उसके अङ्गों स्तुति, प्रार्थना, उपासना की वैदिक धर्म के दृष्टिकोण से बड़ी अच्छी व्याख्या की है। विषय को रोचक बनाने के लिये उपयोगी जानकर बहुत से अच्छे भजनों को भी बीच २ में दे दिया गया है। पुस्तक के अन्तिम भाग में वेद उपनिषत्, मनुस्मृति, महाभारतादि से १०० उत्तम वचनों का अर्थ सहित संग्रह कर दिया गया है। इस प्रकार जनता में भक्ति भावना की

वृद्धि के लिये यह पुस्तक अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होगी इसमें हमें कोई सन्देह नहीं है। किन्तु हमें यह देख कर दुःख हुआ कि मन्त्र तथा श्लोकादि की छपाई में सैंकड़ों भयंकर अशुद्धियां रह गई हैं उदाहरणार्थ सुप्रसिद्ध शिवसंकल्प मन्त्रों की छपाई में ही अनेक भूलें पृ० ६३ पर विद्यमान हैं यथा 'यज्जाग्रत:' के स्थान पर यज्याग्रत:, 'कर्माण्यपसः' के स्थान पर 'कर्माएवगस:' 'विदथेषु' के स्थान पर विथेषु 'येनेदम्' के स्थान पर 'ये नेदम्' "अभी-शुभिर्वाजिन इव" के स्थान पर शुभमिर्वाजिन इव" 'हृत्प्रतिष्ठम्' के स्थान पर 'हृत्प्रतिषम्' 'अश्वानिव' के स्थान पर 'अश्वातिव' इत्यादि है। इनका अगले संस्करण में अवश्य संशोधन हो जाना चाहिये। वेदमन्त्रों के प्रकाशन में विशेष सावधाना बर्तनी आवश्यक है। ध० दे०

आर्य कुमार निबन्ध माला

—लेखक श्री धर्मदेव विद्यावाचस्पति स० मन्त्री सार्वदेशिक सभा देहली। प्रकाशक—म० राजपाल ऐन्ड सन्स नई सड़क देहली पृष्ठ १०० मूल्य १)

आर्य समाज के सिद्धान्तों का आर्य युवकों और उनके द्वारा अन्य युवकों में प्रचार हो सके इस उद्देश्य से यह पुस्तक लिखी गई है। प्रस्तुत पुस्तक में आर्य जीवन, वैदिक धर्म का व्यापक रूप, वैदिक ईश्वरवाद, वैदिक धर्म और विश्व-शान्ति, आश्रम व्यवस्था, वैदिक धर्मोद्धारक श्रद्धेय महर्षि दयानन्द, वर्ण-व्यवस्था, जातिभेद प्रथा के राष्ट्र विघातक भयंकर परिणाम आदि विषयों पर निबन्ध लिखे गये हैं। युवक समाज में यदि हम अपने सिद्धांतों का प्रचार करने में सफल हो जाएं तो समाज का भविष्य बड़ा सुन्दर हो सकता है। योग्य लेखक ने गम्भीर किन्तु महत्त्वपूर्ण विषयों को सरलभाषा में वर्णन कर सराहनीय कार्य किया है। पुस्तक की उपयोगिता के साथ २ पुस्तक की छपाई सफाई भी सुन्दर है। हरिशङ्कर शर्मा सम्पादक 'आर्यमित्र'

धर्म शिक्षा ६ भाग—सम्पादक श्री पं० विश्वनाथ जी आर्योपदेशक धर्मशिक्षक डी० ए० बी० हायर सैकण्डरी स्कूल घुघली (गोरखपुर) प्रकाशक—आर्य समाज घुघली पृष्ठ संख्या १६० मूल्य ।।=) ।

श्री पं० विश्वनाथ जी ने विद्यालयों में धर्म शिक्षा को प्रचलित करने के लिये यह पुस्तक ६ भागों में लिखी है। लेखक का परिश्रम प्रशसनीय है। सन्ध्या (पद्यानुवाद सहित) तथा वैदिक सिद्धान्तों की व्याख्या के अतिरिक्त रामायण और महाभारत की कथा देकर हनूमान का वानर होना, जटायु का गृध्र होना, श्री कृष्ण जी की १६१०८ स्त्रियां होना, द्रोपदी का पांचों पांडवों की पत्नी होना इत्यादि अनेक भ्रमों को सप्रमाण दूर करने का लेखक ने प्रयत्न किया है। बीच २ में सुभाषित दोहे तथा भजन भी दे दिये गये हैं। पुस्तक की छपाई आदि में पर्याप्त सुधार की आवश्यकता प्रतीत होती है। श्री कृष्ण जी की नीति का उल्लेख करते हुए लेखक ने पृ० ६८ पर लिखा है कि 'श्री कृष्ण जी की संक्षिप्त में नीति यही थी कि उद्देश्य को मुख्य समझो वह उत्तम होना चाहिये। उसका साधन चाहे कुछ भी हो। उसमें पाप पुण्य का विचार न करना चाहिये। साध्य के उत्तम होने से साधन स्वयम् उत्तम बन जाता है। पाप पुण्य और दोष गुण बन जाता है इत्यादि।"

राजनीति में कुछ अंश तक छल युक्त सत्य क्षन्तव्य माना गया है किन्तु उसे उपर्युक्त शब्दों में सिद्धान्त रूप से रख देना विद्यार्थियों पर अवांछनीय प्रभाव को उत्पन्न करेगा ऐसा हमारा विचार है। पुस्तक से लेखक की विद्वत्ता स्पष्टतया ज्ञात होती है ।।

गो मेध यज्ञ पद्धति—लेखक—पूज्य श्री स्वामी आत्मानन्द जी सरस्वती संस्थापक वैदिक साधनाश्रम जमुना नगर (जिला अम्बाला) प्रकाशक—स्नातक विद्याधर जी शास्त्री मन्त्री वैदिक साधनाश्रम पृष्ठ सख्या ५० मूल्य ।=)

पूज्य स्वामी आत्मानन्द जी सरस्वती आर्य जगत् के सुप्रसिद्ध विद्वान् हैं। आप "वैदिक गीता" "शिवसंकल्प और मनोविज्ञान" इत्यादि अनेक विद्वत्ता पूर्ण उपयोगी ग्रन्थ लिख चुके हैं। 'गोमेध' का अर्थ प्रायः पाश्चात्य विद्वान् और उनके अनुगामी कई भारतीय विद्वान् यज्ञ में गौ की बलि देने का करते हैं किन्तु इस 'गोमेध यज्ञ पद्धति' नामक पुस्तक में वैदिक सूक्तों के आधार पर गोरक्षा का महत्व दरशाते हुए यह बताया है कि गोवंश की उन्नति के लिये क्या २ उपाय किये जाएं। गोमेधयज्ञ के साथ गौओं की प्रदर्शनी का आयोजन करके हृष्ट पुष्ट तथा सुन्दर गौओं और उनके हृष्ट पुष्ट स्वस्थ बछड़ों के लिये तथा अधिक दूध और मक्खन के लिये पारितोषिक दिये जाएं। इस प्रकार एक मौलिक यज्ञ पद्धति का वैदिक आदर्शों की रक्षार्थ पूज्यपाद विद्वान् स्वामी जी ने निर्माण किया है जिस का हम हार्दिक अभिनन्दन करते हैं। यदि अश्वमेध और अजमेध के भी वास्तविक रूप पर पूज्य स्वामी जी इसी प्रकार प्रकाश डालेंगे तो बड़ा उत्तम होगा।

वेदों की अंतः साक्षी का महत्व-लेखक—पं० मदनमोहन जी विद्यासागर वेदालंकार प्रेम मन्दिर प्रकाशन तेनाली दक्षिण भारत पृष्ठ सं० ६२ मूल्य ।।=)

संस्कार का महत्व—लेखक—पं० मदनमोहन जी वेदालंकार-प्रेम मन्दिर प्रकाशन तेनाली दक्षिण भारत पृष्ठ संख्या ६२ मूल्य ।।=)

उपर्युक्त दोनो पुस्तकों के लेखक गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगड़ी के सुयोग्य स्नातक श्री पं० मदन मोहन जी विद्यासागर वेदालंकार हैं जो गत अनेक वर्षों से दक्षिण भारत में वैदिक धर्म का उत्साहपूर्वक प्रचार कार्य कर रहे हैं। यह हर्ष की बात है कि मौखिक प्रचार के साथ २ अब उन्होंने उपयोगी ग्रन्थों द्वारा लिखितरूप में प्रचार प्रारम्भ किया है जो अभिनन्दनीय है। वेदों की अन्तः साक्षी का महत्व' इस पुस्तक में सुयोग्य लेखक ने वेद मन्त्रों के प्रमाण दे कर सिद्ध किया है कि वे ईश्वरीय हैं। एक वेद को वेद व्यास जी ने चार वेदों के रूप में विभक्त किया इस वाद का भी सप्रमाण खण्डन किया गया है। वेदों को ईश्वरीय ज्ञान सिद्ध करने के लिये अब तक आर्य विद्वान् प्रायः अन्य ग्रन्थों के प्रमाण ही अधिक देते रहे हैं इस पुस्तक में एतद्विषयक वेदमन्त्रों का संग्रह लेखक महोदय की असाधारण विद्वत्ता और परिश्रम का परिचायक है जिसका हम हार्दिक अभिनन्दन करते हैं।

संस्कार महत्व विषयक पुस्तक भी अत्युत्तम है। आर्य जगत् के सुप्रसिद्ध तथा लब्ध प्रतिष्ठ लेखक श्री पं० गंगाप्रसाद जी उपाध्याय ने ३१ पृष्ठों की विस्तृत भूमिका में संस्कारों पर उत्तम प्रकाश डाल कर इस पुस्तक की उपयोगिता में चार चांद लगा दिये हैं। पुस्तक में संस्कारों की सामान्य उपयोगिता बताने के अतिरिक्त उन पर पृथक् २ प्रकाश भी सरल रीति से डाला गया है। यद्यपि 'संस्कार विधि' नामक विस्तृत उत्तम ग्रन्थ स्व० आत्माराम जी अमृतसरी और पं० भीमसेन जी शर्मा ने इसी उद्देश्य से लिखा था किन्तु यतः एक तो वह अब उपलब्ध नहीं होता और दूसरा वह सर्वसाधारण की पहुंच के भी बाहर है श्री पं० मदनमोहन जी की यह पुस्तक सामान्य आर्य जनता के लिये मार्गदर्शक का काम करेगी। हमारा अनुभव सिद्ध विश्वास है कि संस्कारों का

विधि पूर्वक व्याख्या सहित कराना भी वैदिक धर्म के प्रचार का एक अत्युत्तम साधन है। इस दृष्टि से भी इस पुस्तक का हम हार्दिक अभिनन्दन करते हैं।

भक्ति योग—लेखक श्री स्वामी सच्चिदानन्द जी सरस्वती संस्थापक विश्वशान्ति संघ प्रकाशक—विश्वशान्ति सङ्घ १०० हरध्यान सिंह रोड करौल बाग देहली पृष्ठ ५३ मूल्य—६ आ०

श्री स्वामी सच्चिदानन्द जी एक विद्वान् अनुभवी योगी हैं जिनका विश्वशान्ति विषयक लेख पाठकों ने 'सार्वदेशिक' के गत अंक में पढ़ा होगा और इस अंक में भी उसका दूसरा अंश प्रकाशित किया जा रहा है। आपने इस 'भक्ति-योग' नामक लघुपुस्तक में भक्ति का स्वरूप, लक्षण और प्रकार इत्यादि पर उत्तम प्रकाश डाला है तथा उसको स्पष्ट करने के लिये स्वर निर्मित अनेक भजन भी साथ २ दिये हैं। विषय का विवेचन उत्तम रीति से किया गया है और इस विषय में प्रचलित कई मिथ्या विश्वासों का भी अच्छी प्रकार निराकरण किया गया है उदाहरणार्थ पृ० २३ पर पूज्य स्वामी जी ने लिखा है "भक्ति करने या क्षमा प्रार्थना से अपराध क्षमा नहीं हुआ करते। यदि भक्ति द्वारा कर्म भोग मिटना सम्भव हो तो यह भगवान् की न्याय शीलता पर भारी दोषारोपण होता है। 'भक्ति द्वारा अपराध क्षमा' पर विश्वास करने वाले जीवों को इसके अतिरिक्त फिर कोई अन्य कर्तव्य शेष नहीं रह जाता कि वे नित्य अपराध करें, गिड़गिड़ाएं और क्षमा मांगें और क्षमा प्रार्थना के उपरान्त उसी अपराध की पुनरावृत्ति के लिये पुनः पूर्णतया स्वतन्त्र रहें।... अतः यह विचार कि भक्ति अथवा प्रार्थना के उपरान्त जीव दोष करने के लिये स्वतन्त्र हैं अथवा पाप करने के पश्चात् भक्ति पूर्वक याचना कर लेंगे, भक्ति की जड़ में आखेट करना है। (पृष्ठ २३) पाखण्ड परमार्थ को नष्ट भ्रष्ट करने वाली घातक छुरी है और परमार्थ का द्वार मक्कार (धूर्त) के लिये सर्वथा बन्द है। (पृ० २४) भक्ति के साथ ज्ञान और कर्मयोग पर बल देते हुए पूज्य स्वामी जी ने ठीक ही लिखा है 'जिस हृदय में प्रेम नहीं है वह मुरदा है। जो व्यक्ति जीवों से प्रेम करना नहीं जानते, वे अव्यक्त मालिक से कैसे प्रेम कर सकते इत्यादि (पृष्ठ ३८) यह लघु पुस्तक साधकों के लिये अच्छी उपयोगी सिद्ध होगी। भक्ति के उदाहरण वेद मन्त्रों के रूप में भी दिये जाते तो और भी अच्छा होता क्योंकि कुछ 'शब्दों" से साधारण अबोध पाठक को कहीं २ भ्रम भी हो सकता है यद्यपि पूज्य स्वामी जी निराकार सच्चिदानन्द के ही भक्त और उपासक हैं।

आरोग्य शास्त्र—लेखक श्री डा० कुन्दन लाल जी एम् डी० डी० एस, एल० एम० आर० ए० एस् (लण्डन) भूतपूर्व मेडिकल आफिसर टी० बी० सैनेटोरियम (जबलपुर) प्रेमनगर भूड़ बरेली प्रकाशक—स्वास्थ्य भण्डार प्रेम नगर भूड़, बरेली पृष्ठ सं० १६० मूल्य २)

डा० कुन्दन लाल जी. "यज्ञ चिकित्सा" विषयक परीक्षणों और "यज्ञ चिकित्सा" विषयक पुस्तक के कारण जिस पर उन्हें उत्तर प्रदेशीय सरकार की ओर से ८००) का पुरस्कार भी प्राप्त हुआ अच्छी ख्याति प्राप्त कर चुके हैं। आप क्षयरोग चिकित्सा के विशेषज्ञ हैं। आपने इस पुस्तक में आरोग्य से सम्बद्ध विचार, प्रसन्नता, परिश्रम, जलवायु, भोजन, स्वभाव, ऋतुचर्या ब्रह्मचर्य इत्यादि सब विषयों पर विस्तृत विचार किया है और भोजन के सम्बन्ध में तो ८ अध्याय लिखे हैं। एक अनुभवी चिकित्सक की लिखी यह पुस्तक सब के लिये उपयोगी है और इस योग्य है कि इसे विद्यालयों में मध्यम कक्षाओं के छात्रों

के लिये पाठ्य पुस्तक के रूप में नियत किया जा सके। हम आशा करते हैं कि इस पुस्तक से सब आरोग्य प्रेमी अवश्य लाभ उठाएंगे तथा शिक्षा विभाग इसे पाठ्य पुस्तक के रूप में स्वीकृत करके विद्यार्थियों को विशेष रूप से लाभान्वित करेगा।

The Home and the Family तथा अमरीका के शक्ति स्रोत—

Published by the United States information Service queens way New Delhi.

ये दोनों युनाइटेड् स्टेटस इन्फार्मेशन सर्विस नई देहली के सचित्र सुन्दर प्रकाशन हैं। इन में से प्रथम में अमेरिका वासियों में गृह तथा पारिवारिक जीवन पर बड़े मनोरञ्जक रूप में सुन्दर आकर्षक चित्रों सहित प्रकाश डाला गया है। बच्चों का पालनपोषण, प्रसूता की रक्षा, गृहोधन, अनाथ शिशुओं का संरक्षण इत्यादि पर उत्तम लेख हैं। हमे सबसे अधिक उत्सुकता 'Family Life in the United States' इस शीर्षक के लेख को पढ़ने की थी। पढ़ने पर अमेरिका वासियों के पारिवारिक जीवन के सम्बन्ध में अनेक नई बातें ज्ञात हुई उदाहरणार्थ अमेरिका लोग पारिवारिक जीवन को बड़ा महत्त्व देते हैं, प्राय: स्त्रियां घर का सारा काम नौकरों के बिना स्वयं ही करती हैं कठिनाई से २० में से १ घर में नौकर होते हैं अब अमेरिकों में विवाह की आयु साधारणतया पुरुषों में २४ और स्त्रियों में २० है इत्यादि। विवाह विच्छेद वा Divorce के विषय में ठीक २ सूचना प्राप्त करने की हमारी समाजशास्त्रप्रेमी के रूप में विशेष उत्सुकता थी किन्तु वह इस लेख से पूर्णतया शान्त नहीं हो सकी। इस लेख में यह बताया गया है कि "What of the rate of divoroe ?

It is true that it has risen sharply during the last fifty years. But it is not true that 'one out of every three marriages in theUnited States is doomed to failure an off repeated octory back in 1945 and 1946." अर्थात् यद्यपि यह ठीक है कि विवाह विच्छेदों वा तलाकों की संख्या पिछले ५० वर्षों में बहुत तेजी से बढ़ गई है तथापि यह सत्य नहीं है कि अमेरिका में प्रत्येक तीन में से एक विवाह का विच्छेद हो जाता है जैसे कि १९४५, १९४६ में प्राय: कहा जाता था। लेखक के अनुसार वे वर्ष १९४५, १९४६ के सामान्य वर्ष न थे। वे युद्ध जन्य परिस्थिति के कारण विशेष वर्ष थे। जब १९४७ में परिस्थिति सामान्य हो गई तो तलाकों की संख्या भी कम होने लगी और उस के पश्चात् के अङ्कों से सूचित होता है कि यह संख्या तब से घटती जा रही है। "Figures for subsequent years (after 1946) indicate that the divorce rate has continued to drop since then." (P. 29)

यह प्रसन्नता की बात है कि अमेरिकन लोग अब पारिवारिक जीवन की गम्भीरता और उच्चता को अधिकाधिक अनुभव करने लगे हैं जैसे कि इस पुस्तक के पढ़ने से प्रतीत होता है। कुछ भी हो, यह सचित्र पुस्तक उपयोगी, उपादेय और आकर्षक है।

अमेरिका के शक्ति स्रोत विषयक पुस्तक में उस देश की कृषि, कारखाने, बिजली, यातायात, संवाद व संचार के साधन, और निर्माणक्षमता पर सचित्र विशेष प्रकाश डाला गया है जो उपयोगी है। ध० दे०

कुछ उपयोगी पत्र-पत्रिकाएं

निम्न पत्र पत्रिकाओं के विशेष और नवीन अङ्क हमें प्राप्त हुए हैं "अदिति" का अगस्त १९५१ का १६४ पृष्ठों का विशेषाङ्क।

प्रकाशक—श्री अरविन्दाश्रम पाण्डीचेरी मूल्य १॥ ४ अङ्कों का वार्षिक मूल्य ५)

श्री अरविन्द जी के जन्म दिवस के उपलक्ष्य में प्रकाशित

यह विशेषाङ्क है जिस में श्री अरविन्द की जीवन की झांकी और व्यक्तित्व की आभा, श्री अरविन्द की साधना शैली तथा मानवविकास, श्री अरविन्द की राजनीति तथा समाजशास्त्र, श्री अरविन्द की जीवन दृष्टि तथा दर्शन, श्री अरविन्द की साहित्यसाधन, इन विषयों पर आचार्य भुवनेश्वर मिश्र जी, डा० इन्द्रसेन जी एम० ए० पी० एच डी, प्रो० छोटे नारायण जी शर्मा तथा श्री रामधारी सिंह जी के महत्त्वपूर्ण लेख हैं। श्री अरविन्द जी का एक यथार्थ भव्य-चित्र भी प्रारम्भ में देदिया गया है। यह विशेषाङ्क श्री अरविन्द जी के जीवन चरित्र, कार्य, विचार आदि तथा साधना शैली के विषय में जिज्ञासुओं के लिये अत्यधिक उपयोगी और उपादेय है।

शिशु सखा (पाक्षिक पत्र)— सम्पादक श्री पं० अवनीन्द्र कुमार जी विद्यालङ्कार ३८ एच् कैनाट रुर्कस नई देहली वार्षिक मूल्य ६।।) छः मास का ३।।) एक प्रति का ।=) यह बच्चों और छोटी आयु के बालकों के लिये उपयोगी पाक्षिक पत्र है जो अभी देहली से प्रकाशित होना प्रारम्भ हुई है। श्री अवनीन्द्र कुमार जी अनुभवी और प्रसिद्ध सम्पादक हैं। प्रथम अङ्क इस समय हमारे सन्मुख है जिस में राष्ट्रीय गान, तथा तितली आदि विषयक कविताओं के अतिरिक्त आदि कवि बाल्मीकि, सूर्यग्रह आदि विषयक उपयोगी लेख हैं। हम इस नवीन पत्र की सफलता चाहते हैं।

सम्पदा:—(मासिक पत्र) सम्पादक श्री पं० कृष्णचन्द्र जी विद्यालङ्कार अशोक प्रकाशन मन्दिर देहली वार्षिक मूल्य ८) अर्ध वार्षिक ४।।) एक अङ्क का ।।।) आर्य भाषा (हिन्दी) में आर्थिक समस्याओं पर विशेष प्रकाश डालने वाली पत्रिकाओं का प्रायः नितान्त अभाव है। वीर अर्जुन (सा०) के सुप्रसिद्ध और अनुभवी सम्पादक श्री पं० कृष्णचन्द्र जी विद्यालङ्कार ने 'सम्पदा' के द्वारा इस न्यूनता को दूर करने का निश्चय किया है जिस का हम हार्दिक अभिनन्दन करते हैं। प्रथम अङ्क में 'स्टर्लिङ्ग क्षेत्र में संकट, पंच वर्षीय समृद्धियोजना, मुद्रा प्रसार, सिक्के कहां बनते हैं नये चुनाव' इत्यादि विषयों पर उत्तम लेख हैं। हम इस नवीन और प्रशंसनीय प्रयत्न में पूर्ण सफलता प्रदान के लिये भगवान् से प्रार्थना करते हैं और आशा करते हैं कि जनता का सहयोग इसे प्राप्त होगा।

ऋषि वर क्या लिखते हैं ? लेखक— श्री रामगोपाल जी मन्त्री आर्य समाज दीवान हाल देहली मूल्य प्रचारार्थ ३) सैकड़ा

इस छोटी सी पुस्तिका में श्री राम गोपाल जी ने मनुष्य के लक्षण, ईश्वर विश्वास, विद्वानों का सत्कार, विवाह, गोरक्षा, मद्यनिषेध, राजा और प्रजा, न्यायाधीश का कर्तव्य, धनी और निर्धन, सिनेमा व नाटक इत्यादि विषयों पर महर्षि दयानन्द जी के ग्रन्थों से कुछ उद्धरण दिये हैं जो अत्यन्त उपयोगी तथा स्फूर्तिदायक हैं। प्रचारार्थ यह छोटी सी पुस्तिका बहुत अच्छी है।

खेद है कि समालोचनार्थ प्राप्त षड्दर्शन समन्वय, वैदिक प्रार्थना, मनुष्य का धर्म, ईश्वर मिलाप (स्वामी सर्वदानन्द जी कृत) पूंजीपतियों की कहानी (श्री चतुरसेन जी कृत) आदि पुस्तकों तथा कुछ पत्रिकाओं की समालोचना इस अङ्क में स्थानाभाव से नहीं जा सकी। वह अगले अङ्क में प्रकाशित होगी।

वैदिक धर्म और विज्ञान

नित्य आत्मा की सत्ता

(३)

(लेखक श्री धर्मदेव विद्यावाचस्पति)

इस विषय के पिछले दो लेखों में मैंने वैदिक एकेश्वरवाद और विज्ञान पर प्रकाश डालते हुए यह दिखाने का यत्न किया था कि न्यूटन, सर आलिवर लाज, लार्ड कैल्विन, लुई पैश्चर, थौमसऐडीसन आदि सुप्रसिद्ध वैज्ञानिकों ने ईश्वर वाद का प्रबल समर्थन किया है। इस लेख में मैं वैदिक धर्म में जो आत्मा को नित्य माना गया है उस के विषय में वैज्ञानिकों के अभिप्राय को संक्षेप से दिखलाना चाहता हूं।

वैदिक धर्म में आत्मा का स्वरूपः—

वैदिक धर्म आत्मा को इन्द्रिय मन बुद्धि आदि का अधिष्ठाता और नित्य स्वीकार करता है। वेदों के 'अनच्छये तुरगातु जीवम् एजद् ध्रुवं मध्य आपस्त्यानाम्। जीवो मृतस्य चरति स्वधाभिः अमर्त्यो मर्त्येना सयोनिः॥

ऋ. १।१६४।३०

अपश्यं गोपामनिपद्यमानम् आ च परा च पथिभिश्चरन्तम्। स सध्रीचीः स विषूचीर्वसान आवरीवर्ति भुवनेष्वन्तः॥ ऋ. १।१६४।३१

इत्यादि मन्त्रों में बताया गया है कि जीवात्मा ध्रुव (नित्य) अमर्त्य (अमर) है वह (गोपाः) इन्द्रियों का रक्षक (अनिपद्यमानः) कभी न नष्ट होने वाला है। वह अपने शुभाशुभ कर्मों के अनुसार अच्छी या बुरी योनियों में जाता है। दर्शनशास्त्र, उपनिषद् गीतादि में इसी सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है।

सुप्रसिद्ध वैज्ञानिकों का मत

वर्तमान विज्ञान की ज्यों २ उन्नति होती जाती है वह आत्मा की नित्यता और अमरता के इस वैदिक सिद्धान्त का समर्थन करता हुआ प्रतीत होता है। गत शताब्दी में वैज्ञानिकों को यह आशा थी कि वे चैतन्य को भी उत्पन्न कर सकेंगे किन्तु इस विषय में उन्हें सर्वथा निराश होना पड़ा।

सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक प्रो. टिण्डल ने British Association के सामने व्याख्यान देते हुए Norwitch में स्वीकार किया था कि

'We are far as ever from the solution of the problem "How far these physical processes are connected with the facts of Consciousness."

अर्थात् हम इस समस्या के समाधान से अभी तक पूर्ववत् दूर हैं कि इन भौतिक प्रक्रियाओं का चैतन्य की यथार्थ घटना के साथ क्या सम्बन्ध है।

प्रो. हैल्डेन की स्पष्टोक्तिः—

सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक डा. V. B. S. Haldane (हैल्डेन) ने Can we make life? अथवा क्या हम जीवन का निर्माण कर सकते हैं इस शीर्षक लेख में स्पष्ट स्वीकर किया किः—

'We know a lot about life, but we do not know Where and When it was born.

Many people are content to give up the quest and to say that the origin of life is a mystery beyond the range of Science. This may prove to be true. (V. B. S. Haldane

quoted here from (Hindustan Times New Delhi dated 29-4 40)

अर्थात् हम जीवन के विषय में बहुत कुछ जानते हैं किन्तु हम यह नहीं जानते कि जीवन कहां और कब उत्पन्न हुआ। बहुत से मनुष्य इस प्रकार के प्रश्न को छोड़ देने पर सन्तोष कर लेते हैं और यह कहते हैं कि जीवन का उद्भव यह एक रहस्य है जो विज्ञान के क्षेत्र के बाहर है। यही संभव है सत्य सिद्ध हो।

थौम्सन का स्पष्ट कथनः—

A. Thomson नामक वैज्ञानिक ने Introduction to Science के पृ० १४२ में लिखा:-

'How did living Creatures begin to be upon the earth ? In point of science, We do not know.'

Introduction to Science by V. A. Thomson M. A. P. 142

अर्थात् जीवित प्राणी पृथिवी पर कैसे प्रकट हुए विज्ञान की दृष्टि से हमारा उत्तर है कि हम नहीं जानते।

प्रो. पैट्रिक की स्पष्टोक्तिः--

"प्रो. पैट्रिक गेड्स ने विकासवाद (Evolution) नामक अपनी पुस्तक के पृ० ७० पर लिखा कि:—

"At some Vncertain, but inconceivably distant date, living creatures appeared on the scene. The question is. What was the manner of their becoming upon the previously tenantless earth ? Our answer must be that we do not know.

("Evolution" by Prof. Patrick Geddes P. 70)

अर्थात् किसी अनिश्चित किन्तु कल्पनातीत प्राचीन काल में जीवधारी प्राणी पृथिवी पर प्रकट हुए। इस उजाड़ पृथिवी पर प्राणी कैसे उत्पन्न हुए? हमारा उत्तर यही होना चाहिये कि हम नहीं जानते।

मि० ब्राइट सवेल् नामक वैज्ञानिक ने अपने 'The Dawn of life' शीर्षक लेख में जो टाइम्स आफ् इन्डिया बम्बई द्वारा प्रकाशित 'The miracle of Life' नामक पुस्तक में छपा है जीवन की उत्पत्ति विषयक प्रश्न के विषय में कहा है कि इसका अभी तक कोई उत्तर दिया गया। वे लिखते हैं:—

'Every day of the year, our great libraries gather to themselves scores of volumes, pamphlets and other publications, dealing with the visual world around us. But while every hour sees some former mystery explained, there still remains one outstanding question yet unanswered, though not of necessity un-answerable. How did it all begin ?

("The miracle of Life". P. 10

वर्ष के प्रत्येक दिन हमारे बड़े पुस्तकालयों में दृष्टि गोचर जगत् के विषय में अनेकों पुस्तक तथा प्रकाशन एकत्रित किये जाते हैं। परन्तु जब प्रत्येक घण्टे में पिछले रहस्यों का उद्‌घाटन होता रहता है एक अत्यावश्यक प्रश्न है जिस का अब तक उत्तर नही दिया गया यद्यपि यह आवश्यक नहीं कि उसका उत्तर कभी दिया ही न जा सके। वह प्रश्न यह है कि यह सब कैसे प्रारम्भ हुआ?

डा० पाल कैरस का कथनः—

"The Religion of Science" (विज्ञान का धर्म) के सुप्रसिद्ध लेखक डा० पाल कैरस ने भी इसके सम्बन्ध में विज्ञान का मत देते हुए

(शेष पृष्ठ १४२ पर)

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, देहली

शेष-पत्र (बैलैन्स-शीट) २९ फरवरी १९५२

निधियां तथा दातव्य	
स्थिर निधियां	
वेद प्रचार	५००००)
देश देशान्तर प्रचार	५००००)
भारतीय स्टेट्स	५००००)
रक्षा	२५०००)
सार्वदेशिक भवन	२४५००)
वैदिक आश्रम ऋषिकेश	१४०००)
शहीद परिवार सहायता	१५०००)
आर्य साहित्य प्रकाशन	११७५०)
चन्द्रभानु वेदमित्र स्मारक	५०००)
गंगा प्रसाद गढ़वाल प्रचार	२०००)
शिवलाल वेद प्रचार	६५०)
ढोढाराम चूणामणि वेद प्रचार	५०१)
डोमा महतो सुन्दर देवी वेद प्रचार	१००)
	२३८५०१)
विशेष निधियां	
दलितोद्धार	३०००)
दयानन्द आश्रम २२५०)	
सूद ,, ,, २२४।-)१	
	२४७४।-)१
श्रद्धानन्द नगरी	६६६३)
सूद शहीद परिवार सहायता १४०५-)॥	
,, गंगा प्रसाद गढ़वाल १२०॥=)	१५२५॥≡)॥
प्रचार ट्रस्ट	१३६६३)७

सम्पत्ति तथा प्राप्तव्य	
भूमि तथा मकान	
बलिदान भवन देहली	३०५००)
सार्वदेशिक भवन ,,	२४५००)
केशवार्य हाई स्कूल हैदराबाद	२५०००)
वैदिक आश्रम ऋषिकेश	१४०००)
श्रद्धानन्द नगरी	
आर्य समाज मन्दिर ३९१६)	
,, ,, पाठशाला भवन २७४७)	६६६३)
शोलापुर आर्य समाज मन्दिर	११९२२॥=)
गाजियाबाद भूमि	२७०४६)॥
	१३९६३१॥=)॥
इन्वेस्टमेन्ट्स	
सेन्ट्रल बैंक देहली-कैश सर्टिफिकेट्स	३९२७७)
पंजाब नेशनल बैंक चा० चौ० देहली F.D.	६३०००)
ट्रेजरी सेविंग सर्टिफिकेट	३००००)
डिबेन्चर्स मोहिनी सुगर	
मिल्स कलकत्ता	३०००)
शेयर्स सार्वदेशिक	
प्रकाशन लि० देहली	७६८०)
शेयर्स आर्य साहित्य मण्डल	
लि० अजमेर	२०)

रिलीफ (सहायता) निधियां

बंगाल	८०६५४=)।
पंजाब	२२६२।)१०
आसाम	१६२८।)।
बिहार	३३०)
हिन्दू	२००)
	८५३७४॥≡)४

दक्षिण भारत प्रचार निधियां

केशव आर्य हाई स्कूल	२५०००)
शोलापुर आर्य समाज मन्दिर	१५०००)
हैदराबाद मन्दिर निर्माण	५०५४।=)॥
	४५०५४।=)॥

विदेश प्रचार निधियां

अमेरिका प्रचार	४४२६)
सूद ,,	१६५।=)॥।
	४५९४।=)॥।
बिरला विदेश प्रचार	१३०००)
सूद ,,	११७०)
	१४१७०)
बगदाद फण्ड	१८७२)
	२००३६।=)॥।

पुस्तक भण्डार (बिक्री)

श्री नारायण स्वामी पुस्तक प्रकाशन स्टाक	७५९३)

चन्द्रभानु वेद मित्र स्मारक

स्टाक	५१७४)
बिक्री से	४४२।≡)११
	५६१६।≡)११
आर्य साहित्य प्रकाशन स्टाक	११३०६)

सुरक्षित ऋण

पाटौदी हाउस ट्रस्ट देहली	२९७७५)
मकानों व भूमि पर	३१६६००)
	३८२६५२)

फर्नीचर

गत शेष पत्र के अनुसार	२३९०॥)॥
इस वर्ष की वृद्धि	६३॥)
	२४५४)॥
घिसाई कम की	१५०)
	२३०४)॥

स्थिर पुस्तकालय

गत शेष पत्र के अनुसार	६०४६॥-)
इस वर्ष की वृद्धि	४·५॥≡)॥
	६४७२।)॥
	८७७३।–)

बिक्री की पुस्तकें

स्टाक श्री नारायण स्वामी पुस्तक प्रकाशन	७५९३)
छपाई व बिक्री खाता	३१३१।=)७
	१०७२४।=)७
स्टाक पुरानी पुस्तकें	२२२)
स्टाक चन्द्रभानु वेदमित्र स्मारक प्रका०	५१७४)
,, आर्य साहित्य प्रकाशन	११३०६)
छपाई व बिक्री खाता ३८७६=)॥।	१५१८८=)॥।
स्टाक ओंकारदत्त पुस्तक प्रकाशन	३६०)
,, सिंधी सत्यार्थ प्रकाश	२०८८)
गंगाप्रसाद पुस्तक प्रकाशन	१२३४≡)११
पुस्तक भण्डार	१७५८≡ ११
	३६१४५–)२

पुरानी पुस्तकें		
स्टाक	२२२)	
बिक्री से	४१२॥≡)॥	
		६३४॥≡)॥
पं० ओंकार दत्त पुस्तक प्रका० स्टाक		३६०)
पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय पुस्तक प्रकाशन		१५००)
दक्षिण अफ्रीका वेद प्रचार सीरीज		१९८।≡)।
आर्य सिद्धान्त विरोधी खण्डनी		४८०)
विशिष्ट साहित्य प्रचार		२००॥–)॥
आंध्र साहित्य प्रचार		८२६)
		२८७२१।)२
सत्यार्थ प्रकाश रक्षा निधि		१८१८२॥।)
सिंधी सत्यार्थ प्रकाश स्टाक	२०८८)	
बिक्री से	५०१६।–)	
		७१०४।–)
		२५२८७–)
अन्य निधियां		
दयानन्द समैपुर पाठशाला		५४६॥=)
आर्य समाज मन्दिर टंकारा		३५३–)
दयानन्द कीर्ति मन्दिर ,,		६२)
दयानन्द पुरस्कार	५५३२४॥≡)॥	
सूद ,, ,,	३९७१)	
		५९२९५॥≡)॥
आर्य नगर गाजियाबाद (रजिस्ट्रयों द्वारा सुरक्षित)		४७६९७॥≡)॥
,, ,, सुरक्षित होने वाला		१३६१२।)
		१२१५६७॥=)
उचन्त	४०६।≡)॥	
महिला सहायता शुद्धि	४६।।)	
आर्य महासम्मेलन (प्रति निधि-शुल्क)	१२७६॥)।	
		१७३२॥≡)॥।
		१२३३००।–)।

स्टाक कागज		६५१।=)
प्राप्तव्य तथा पेशगियां		
सूद (बैंकों से)		३०२२॥।)
सूद (ऋणो से)		६८२७)
किराया मकान		५०२७॥)
बिजली कम्पनी देहली		६३)
		१७६४०॥)
प्रान्तीय सभाओं से		
सिंध	७६७५)	
पंजाब	१६॥=)॥	
बंगाल	१८३२६॥।–)॥	
		२६३१८॥।)
पेशगियां		५७८७॥।–)
		५००४७–)
बैंकों (चलत)		
सेन्ट्रल बैंक देहली		।२०।
पंजाब नेशनल बैंक चांदनी चौक देहली		५४२–)१०
प्रताप बैंक चांदनी चौ० देहली		१०४५२॥।–)१०
पंजाब नेशनल बैंक चां० चौ० देहली सेविंग A/C		२९६१।=)।
इम्प्रेस्ट कार्यालय		५००)
		१४५७६॥–)११

प्रोवीडेन्ट फण्ड सभा कर्मचारी १०६८५)।

धरोहरें

आर्य समाज करांची	११५९३।-)१
,, ,, हैदराबाद (सिंध)	१३६॥)
,, ,, मांडले (ब्रह्मा)	३००)
,, ,, बालनगीर (उड़ीसा)	७५)
राजगुरु पं० धुरेन्द्र जी शास्त्री	३२६)
सभा कर्मचारी	१२२)१०
विविध	१६३६।-)॥
	१४४८६≡)५

महानिधि

स्थिर पुस्तकालय	६२८८॥≡)।
बिक्री पं० ओंकार दत्त पुस्तक प्रकाशन	१८३।-)।
फर्नीचर	३०४७॥≡)॥
	६५२०।)

आय-व्यय खाता

इस वर्ष की अधिक आय	१२११६)
गत वर्ष तक का अधिक व्यय	४२९६८॥=)२
	७८४७।-)१०
योग	६३२७८०-)७

योग ६३२७८०-)७

हमारी आज की रिपोर्ट के अधीन प्रमाणित
कृते जगदीशप्रसाद एण्ड कम्पनी
(ह) जगदीश प्रसाद
बी० ए० बी० कौम (बम्बई)
जी० डी० ए०, एफ० सी० ए०,
चार्टर्ड एकाउन्टेन्ट्स ऐण्ड आडीटर्स

चांदनी चौक, देहली ६
१०-४-५२

(ह०) प्रेमचन्द्र
एकाउन्टेन्ट

(ह०) रघुनाथप्रसाद पाठक
कार्यालयाध्यक्ष

(ह०) बालमुकन्द आहूजा
कोषाध्यक्ष

(ह०) ज्ञानचन्द्र आर्यसेवक
मन्त्री

(ह०) (राजगुरु) धुरेन्द्र शास्त्री
प्रधान

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, देहली

आय-व्यय चित्र १ मार्च १६५१ से २६ फर्वरी १६५२ तक

आय

विवरण		रकम
पंचमांश (प्रान्तीय सभाओं से)		३७४७)।
दशांश (सम्बद्ध ममाजों से)		४४६।।।-)
		४१६७-)३
दान		
सार्वदेशिक वेद प्रचार		२२०७।।≡)
आर्य समाज स्थापना दिवम		१०७८।।।=)
विविध दान	५५५६≡)।।	
आजीवन सदस्यों का शुल्क	३०००)	८५५६≡)।।
		११८४५।।)।।
दान दक्षिण भारत प्रचारार्थ		
श्री सेठ जुगल किशोर जी बिरला से		१६००)
अन्यों से		५०६।।।-)।।
		२१०६।।।-)।।
सूद तथा मकान किराया		
बैंकों तथा सम्पत्ति से		२४४०७≡)
विविध निधियों को दिया		६११०)
		१८२६७≡)
सूद देशदेशान्तर प्रचार फण्ड	१५००)	
,, रक्षा निधि	१०००)	२५००)
आय लीज़ं से	६५६।≡)।।	
व्यय आर्य नगर	६०३।=)।	५६-)।

व्यय

विवरण		रकम
कार्यालय		
वेतन		७३२६।।।≡)।।।
सार्वदेशिक पत्र व पुस्तक भण्डार से दत्तांश		१२००)
		६१२६।।।≡)।।।
प्रोवीडेन्ट फन्ड	६२७।।≡)	
एलौन्स सभा मन्त्री	३००)	६२७।।≡)
		७०५७।।=)।।।
अधिवेशन व्यय	४६८।।=)।।।	
मार्ग व्यय अन्तरंग सदस्य	६७१।)	११६६।।।=)।।।
विविध व्यय कार्यालय		४४६६।।)।
व्यय बलिदान भवन (टैक्स)	४१४।≡)	
व्यय सार्वदेशिक भवन ,,	४२७-)	८४१।)
घिसाई फर्नीचर		१५०)
स्थिर पुस्तकालय		४२५।≡)।।
		१४१४४।।-)।
प्रचार व्यय		
दक्षिण भारत		३६६०।≡)
उड़ीसा		११८०।।)
गढ़वाल		६६।)

शुद्धि	३६५।=)
साहित्य	३४६॥=)
सार्वदेशिक वेद	२५५०॥।-)
भ्रष्टाचार विरोधी	२४३।)॥
	८७४६।)॥
व्यय आर्य वीर दल संगठन २१५२॥।)	
आय-दान ७६५॥=)॥	
	१३८७-)॥
हैदराबाद पीड़ित सहायता	५०८॥)
सार्वदेशिक पत्र	
व्यय छपाई, कागज, डाक	
तथा वेतन ५६०४॥)।	
आय ग्राहकों व विज्ञापन से ४३४१॥)	१२६३)।
बट्टा खाता	८३४)
अधिक आय (इस वर्ष की)	१२११६)

योग ३६००२॥।≡)॥   योग ३६००२॥।≡)॥

चांदनी चौक, देहली ६
१०-४-५२

(ह०) प्रेमचन्द्र
एकाउन्टेन्ट

(ह०) रघुनाथप्रसाद पाठक
कार्यालयाध्यक्ष

(ह०) ज्ञानचन्द्र आर्यसेवक
मन्त्री

कृते जगदीश प्रसाद एण्ड कम्पनी
(ह०) जगदीश प्रसाद
बी० कौम (बम्बई)
जी० डी० ए०, एफ० सी० ए०,
चार्टर्ड एकाउन्टेन्ट्स

(ह०) बालमुकन्द आहूजा
कोषाध्यक्ष

(ह०) (राजगुरु) धुरेन्द्र शास्त्री
प्रधान

आदर्श शिक्षाप्रणाली

(भारतीय उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश श्री विजनकुमार मुखोपाध्याय एम. ए. एल. एल. डी. के गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय में १ वैशाख २००९ को दिये गये दीक्षान्त भाषण से)

गुरुकुलवासी प्रिय बन्धुओ तथा उपस्थित सज्जनो !

इस दीक्षान्त संस्कार में सम्मिलित होने तथा आज यहां उपस्थित स्नातकों को अभिभाषण देने के लिये निमन्त्रित कर के जो सम्मान आपने मुझे प्रदान किया है उसके लिये मैं आप का कृतज्ञ हूं। निःसन्देह यहां आने से मुझे तीर्थयात्रा का आनन्द अनुभव हो रहा है। वस्तुतः यह एक पवित्र भूमि है। सामने ये गम्भीर मौनमुद्रा में स्थित हिमालय की उच्च शिखाएं एक ध्रुवनिष्ठ सन्तरी के समान हमारी मातृभूमि की रक्षा कर रही हैं और इसके अन्तस्तल से निर्गत गंगा नदी की पवित्र धारा कलकल निनाद करती हुई गिरिशिखर से अगाध सागर तक अविश्रान्तभाव से अपने मार्ग का अनुसरण कर रही है। ऐसी भव्य परिस्थितियों में अवस्थित तथा व्यस्त संसार के कोलाहल से सुरक्षित यह शिक्षणालय साक्षात् शान्ति एवं पवित्रता के वातावरण में श्वास ले रहा है। यह विद्यामन्दिर वस्तुतः प्राचीन भारत के उन शान्त एवं ज्ञानसम्पन्न तपोवनों का अवशेष है, जिन की पावन स्मृति अब भी हमारे साहित्य तथा धार्मिक ग्रन्थों में विद्यमान है। आज बीसवी सदी में भी यह सम्पूर्ण प्रदेश वस्तुतः वैदिक भावनाओं से पूर्णतः ओत प्रोत है।

यहां आपके सन्मुख भाषण देते हुए मेरे मन में दो विचार प्रमुख रूप से उदय हो रहे हैं। सब से पूर्व मेरा विचार भारतीय सभ्यता के अनुपम स्वरूप, विलक्षण शक्ति तथा भारतीय इतिहास के परिवर्तनशील दृश्यों में अवस्थित सतत प्रवाह की ओर जाता है। काल चक्र के प्रभाव से अनेक दोष विकारों के उत्पन्न होने के बावजूद लाखों वर्षों के बीत जाने के बाद आज भी भारतीय सभ्यता अपने मुख्य तत्वों को यथापूर्व धारण किये हुए है, जबकि विश्व की शेष समग्र प्राचीन ऐतिहासिक सभ्यताएं सर्वथा लुप्त हो चुकी हैं। प्राचीन मिश्र, असीरिया तथा बैबिलोन चिरकाल से विस्मृति के आवरण में विलीन हो चुके हैं। इसमें सन्देह नहीं कि प्राचीन युनान की सभ्यता अपने साहित्य, दर्शन तथा कलारूप में अभी तक जीवित है। पर यह एक ऐसी पूर्णतः मृतप्राय प्रवाह है जिसका मानव समाज की जीवनधारा के साथ किसी प्रकार का सम्बन्ध नहीं। परन्तु भारत आज भी जीवित है और वह केवल भौगोलिक सत्ता रूप से ही नहीं; प्रत्युत वह उसकी आत्मा है जो कालकृत अनेक ऊंचनीच परिवर्तनों के होते हुए भी अवस्थित है। आज भी विचार तथा भावनाओं की ऐसी सुदृढ़ शृङ्खलाएं है जो हमें प्रागैतिहासक काल से सम्बद्ध कर रही हैं। मैक्स मूलर का कथन है "प्राचीन काल से लेकर आधुनिक युग तक के तीन हजार से भी अधिक विस्तृत काल में भारतीय विचार धारा के विविध रूपों में हमें एक सतत प्रवाह दृष्टिगोचर होता है।" सम्भव है सामान्य दृष्टि से देखने पर ऐसा प्रतीत हो कि तथाकथित भारतीय सभ्यता एक अपरिष्कृत पुञ्जमात्र के अतिरिक्त और कुछ नहीं। वह केवल जातिगत बाह्य लिंगों, भाषाओं तथा रहन सहन के विविध शिष्टाचारों या रूढ़ियों का पिण्ड मात्र है। परन्तु सूक्ष्म

निरीक्षण से यह स्पष्ट हो जायगा कि इन बाह्य रूपों की परिदृश्यमान विविधता में भी एकता उपलब्ध करना ही भारतीय संस्कृति की मुख्य विशेषता है। वैदिक ऋषियों का लक्ष्य, जीवन का अपने सम्पूर्ण रूपों में संगतिकरण करते हुए इस विश्व की परस्पर विरोधी विभिन्नताओं में एक व्यापक सत्यता का अनुसन्धान करना था। मैं यह दृढ़तापूर्वक कह सकता हूँ कि यह समन्वयपूर्ण आदर्श आधुनिक जगत् की सम्पूर्ण समस्याओं का सुन्दर समाधान कर सकता है, बशर्ते कि वर्तमान मानवसमाज की परिवर्तित अवस्थाओं के अनुसार इस का उचित प्रयोग किया जाय।

इस के अतिरिक्त जिस दूसरी वस्तु ने मुझ पर प्रभाव डाला है, वह है प्रकृति का वह कार्य जो उसने हमारे देश की सभ्यता तथा विचारधारा के निर्माण में किया है। मानव जीवन की प्रभात बेला के प्रारम्भ से हमारे पूर्वजों ने प्रकृति के प्रति तीव्र आकर्षण अनुभव किया है। प्रकृति के इन्हीं ध्यानावस्थित पर्वतश्रेणियों से परिवेष्टित एकान्त प्रदेशों में सुकोमल रवि किरणों से सुशोभित वनस्थलियों के चारों ओर इठलाती हुई कलकल निनादिनी चन्द्रिका समुज्ज्वल सरिताओं के तट पर ही मानव मस्तिष्क की महान् विभूतियों का उदय हुआ था।

जीवन निर्माण की वैदिक योजनानुसार बालक का एकांत तपोवन में विद्वान् गुरुजनों के संरक्षण में रहते हुए अपने शारीरिक तथा बौद्धिक शिक्षण के लिए दृढ़तापूर्वक अनुष्ठान करना परम आवश्यक था, जो उसे अपने जीवन के भावी कार्यक्षेत्र में अपना उचित भाग लेने के योग्य बना सके। न केवल शैशव काल में ही, प्रत्युत अपने संघर्षमय सांसारिक जीवन के अवसान काल में भी, वे लोग शक्ति संचय तथा विश्राम उपलब्ध करने के लिए इन्हीं एकान्त तपोवनों की कामना करते थे।

भवनेषु रसाधिकेषु पूर्वं क्षितिरक्षार्थमुशन्ति ये निवासम्।
नियतैक पतिव्रतानि पश्चात् तरुमूलानि गृही भवन्ति तेषाम्॥

यही वे पवित्र एवं शान्त तपोवन थे, जहां ऋषियों के मस्तिष्क ने लौकिक तथा आध्यात्मिक ज्ञान विज्ञानों के लिए साधना की तथा मानव समाज के शाश्वत कल्याण के लिए चिन्तनाप्रसूत महान् ग्रन्थों की रचना हुई। संसार को त्याज्य एवं हेय समझ कर उससे पलायन करने की भिक्षुवृत्ति वैदिक भावनाओं के सर्वथा प्रतिकूल है। हमारे देश में संघरूपात्मक भिक्षुवृत्ति सम्भवतः किसी धार्मिक आंदोलन का परिणाम थी और बाद में उत्पन्न हुई। अतः इसे हमें प्राचीन मौलिक आदर्शों का अंग न समझ कर उनका अतिक्रम ही समझना चाहिये।

सभ्यगण !

मेरे हृदय में महात्मा मुंशीराम तथा उनके सहयोगियों के लिए अत्यन्त आदर तथा सम्मान की भावना है। उन्होंने न केवल वर्तमान शिक्षा सम्बन्धी आदर्शों को पूर्णरूप से प्राचीनता का रूप देने की साहसपूर्ण कल्पना की, प्रत्युत एक ऐसे कठिन समय में, जब यह केवल एक सामान्य स्कूल खोलने का प्रश्न न था, प्रत्युत चिरकाल समादृत वैदिक परम्पराओं के आधार पर एक ऐसे सांस्कृतिक वातावरण का निर्माण करना था जो प्रतिभावान् मनुष्यों के अनुकूल हो तथा विदेशी संस्कृति से सर्वथा मुक्त हो। सन् १६०२ ईसवी में एक छोटे से विद्यालय से आरम्भ हुई हुई यह संस्था आज आश्रम प्रणाली पर आश्रित एक विशाल विश्वविद्यालय के रूप में विकसित दिखाई देती है। इस समय इसमें वेद महाविद्यालय, साधारण महाविद्यालय, आयुर्वेद महाविद्यालय तथा कन्याओं का महाविद्यालय—ये चार महाविद्यालय सम्मिलित हैं। इस के अतिरिक्त फण्ड की कमी दूर होने पर एक शिल्प महाविद्या-

लय के खोलने का भी विचार है। यह सब कुछ ब्रिटिश सरकार की रत्ती भर भी सहायता न मिलने पर हुआ। केवल यही नहीं कि इसे सरकारी सहायता प्राप्त नहीं हुई, प्रत्युत इसके विपरीत इस संस्था के अधिकारियों को समय पर ब्रिटिश सरकार का कोपभाजन बनना पड़ा।

परमात्मा की कृपा से अब हमारे देश में विदेशी शासन का अन्त हो गया है और हम अपने आप को अपने घर का स्वामी समझ सकते हैं। परन्तु यह स्वाधीनता अपने साथ परेशान करने वाली अनेक जटिल समस्यायें लाई है और उन में शिक्षा तथा संस्कृति सम्बन्धी समस्यायें भी कम विषम नहीं। इससमय हम पर चारों ओर से विविध सिद्धांतों तथा आदर्शों का आक्रमण हो रहा है। उनमें से कुछ विशुद्ध विजातीय हैं और हमारे राष्ट्रिय चरित्र एवं परम्पराओं के सर्वथा प्रतिकूल हैं। इन विषयों में हमारे शासकों के कन्धों पर एक महान् उत्तरदायित्व है। इस बात की कहने की आवश्यकता नहीं कि अपनी सद्यःप्राप्त प्रजातन्त्रप्रणाली में सुख तथा शान्ति को उपलब्ध करने के लिए उचित प्रकार की शिक्षा का चुनाव करना तथा उसका उचित विधि से वितरण करना नितान्त आवश्यक है। मैं एक शिक्षाविज्ञ होने का दावा नहीं करता और नाहीं इस विषय में कोई मत या विचार प्रकट करने का साहस करता हूँ। परन्तु इस समय एक नवीन युग में प्रवेश करने के कारण मैं भारत के प्रत्येक नर-नारी से यह अनुरोध अवश्य करूंगा कि वे भूतकाल का सिंहावलोकन करें तथा भारतमें ब्रिटिश काल के उदय से लेकर अब तक के अपने देश में प्रचलित शिक्षा विषय के आन्दोलन तथा इतिहास पर दृष्टिपात करें। इस से हम विविध सफलताओं व असफलताओं से परिवेष्टित अपने विचारों तथा आदर्शों का पर्यालोचन कर सकेंगे।

सामान्यतः प्रत्येक शिक्षा प्रणाली के दो पहलू या दो प्रयोजन बताये जा सकते हैं उन में से एक तो सांस्कृतिक, आदर्शरूप या सामाजिक पहलू है तथा दूसरा आर्थिक या उपयोगिता का पहलू है। दोनों परस्पर सम्बद्ध हैं। इस लिये विषयों के चुनाव करते समय उक्त दोनो प्रयोजनों को दृष्टि में रखना उचित होगा।

जिस असंभावित रूप से हमारे देश में ब्रिटिश राज्य की स्थापना हुई, उसे दृष्टि में रखते हुए प्रत्येक व्यक्ति इसे भली भांति अनुभव कर सकता है कि शिक्षा का कार्य ब्रिटिश व्यापारियों की—जिन्हें हमारे पारस्परिक विरोध के कारण अकस्मात् इस देश का आधिपत्य प्राप्त करने का अवसर प्राप्त हो गया था—सुविचारित योजना का कोई विशेष अंग न था। ईस्ट इण्डिया कम्पनी का शासन व्यापार की एक ऐसी संकुचित भावना से प्रारम्भ हुआ था, जिसे वह छोड़ने के लिये सर्वथा अनिच्छुक थी। यह सत्य है कि १८७१ ईसवी में वारन हेस्टिंग द्वारा कलकत्ता मदरसा की स्थापना हुई तथा दस वर्ष पश्चात् जोनथन डन्कन ने बनारस में संस्कृत कालिज की स्थापना की। परन्तु इन संस्थाओं की स्थापना का वास्तविक उद्देश्य अपने अभिनव अधिकृत प्रदेशों में न्याय-व्यवस्था को चलाने के लिये हिन्दू तथा मुसलिम कानून के कुछ पण्डितों को उत्पन्न करना था। भारत के अन्य प्रान्तों की अपेक्षा अङ्गरेजी शिक्षा का सूत्रपात बंगाल में पहले प्रारम्भ हुआ। परन्तु इस विषय में पहला कदम सरकार की ओर से न होकर कुछ स्वतंत्र व्यक्तियों तथा ईसाई मिशनरियों की ओर से उठाया गया। कुछ ही वर्षों में हिन्दू कालिज ने ऐसे प्रतिभा सम्पन्न विद्यार्थी उत्पन्न किये जिन्होंने शीघ्र ही आंग्ल भाषा के गद्य पद्य में लिखने की प्रवीणता प्राप्त कर ली। इन घटनाओं से मैकाले के लिये शिक्षा क्षेत्र में आंग्लभाषा के पक्ष में निर्णय करने का मार्ग

प्रशस्त हो गया और शीघ्र ही भविष्य में आंग्ल-भाषाको ही देश की राजकीय भाषा का स्थान देने की राज्य की नीति निर्धारित कर दी गई। तब से पश्चात् शिक्षा की नई शराब हिन्दुत्व की पुरानी बोतलों में डाली जाने लगी, जिसके दुष्परिणाम आज हमारे सामने हैं। उस समय विशेषतः बंगाल में, पाश्चात्य रंग ढंग फैशन तथा स्वाभिमान की वस्तु और अपने देश की प्राचीन शिक्षा, धर्म, संस्कृति तथा परम्पराएं सर्वथा गर्हित मानी जाने लगीं। परिणामत प्रारम्भ से ही हमारी शिक्षा नीति एकांगी, और उसका स्वरूप तथा दृष्टिकोण स्पष्ट रूप से ही विदेशी था। चिरकाल तक यही रहा जबकि उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्ध में इसकी प्रतिक्रिया हुआ। बंगाल में ब्रह्मसमाज ने इस उठती हुई राष्ट्र विरोधी भावना की लहर को रोकने का प्रयत्न किया। परन्तु वह इसमें विशेष सफल न हुआ। इसके बाद हमें अपने देशवासियों में तात्कालिक पाश्चात्य शिक्षा प्रणाली के लिये असन्तोष तथा अपने प्राचीन आदर्शों के प्रति निरन्तर बढ़ती हुई प्रवृत्ति दिखाई देती है। इस समय भारत के उच्च विद्वान् भारतीय शिक्षा पद्धति में प्राचीन भारतीयता की पुट देकर प्राच्य तथा पाश्चात्य विद्याओं का उचित संमिश्रण करना चाहते थे। सन् १८८३ ईसवी में श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती का देहावसान हो गया। १८८६ ईसवी में लाहौर में दयानन्द ऐंग्लो वैदिक हाईस्कूल स्थापित हुआ, जो दो वर्ष बाद एक कालिज के रूप में परिणत हो गया। कालिज की प्रथम वार्षिक रिपोर्ट से स्पष्ट प्रतीत होता है कि इसके संस्थापकों का वास्तविक उद्देश्य अपने देश की शिक्षा नीति का भारतीयकरण करके उसे इस बात को स्वीकार करते हुए कि पाश्चात्य शिक्षा ने हमारी बौद्धिक गतिविधियों में प्रेरणा दी है तथा कुछ ऐसे विद्वान् पुरुषों को जन्म दिया है जिन पर हमारा देश गर्व कर सकता है, रिपोर्ट में बताया गया है कि यह सब कुछ होते हुए भी इसके अनेक दुष्परिणाम हुए हैं। इसलिये राष्ट्रीय शिक्षा की मांग है कि अन्य विषयों के साथ २ साहित्य का, क्योंकि उस में आत्मा, चरित्र तथा जगत् रचना आदि विविध विषयों के स्वरूप का यथावत् एकान्त चिन्तन करने वाले ऋषि मुनियों के परिश्रम का सारवान् फल अन्तर्निहित है अपने राष्ट्र की भाषा तथा साहित्य के अध्ययन के साथ २ रिपोर्ट में अंग्रेजी भाषा के भी गंभीर अध्ययन पर बल दिया गया है और इस बात पर भी आग्रह किया है कि प्राकृतिक विज्ञान तथा उस से सम्बद्ध अन्य विषयों के ज्ञान का प्रसार करके देश की भौतिक उत्पत्ति को भी प्रोत्साहित किया जाय।

यह सर्व विदित सत्य है कि आर्य समाज की अधिकांश जनता दयानन्द एंग्लो वैदिक कालिज से निर्धारित शिक्षा प्रणाली से सन्तुष्ट न थी। यह असन्तुष्ट दल, जिस के एक प्रमुख सदस्य इस संस्था के आदरणीय संस्थापक भी थे, प्राचीन वैदिक सभ्यता से निकट सम्बन्ध रखना चाहता था। इस लिए पाश्चात्य परम्पराओं से सम्बन्ध-विच्छेद करके भारतीय नवयुवकों को शिक्षा देने की प्रणाली में क्रान्तकारी परिवर्तन करने का पक्षपाती था। यह है १६०२ ईसवी में गुरुकुल कांगड़ी की स्थापना का मूल हेतु। निःसन्देह इस संस्था का उद्देश्य अपनी प्राचीन ब्रह्मचर्य प्रणाली को पुनरुज्जीवित करना तथा शिक्षा को जीवन का वास्तविक पथप्रदर्शक एवं चरित्र-निर्माण में सहायक बनना था। इस के संचालकों की अभिलाषा थी कि बालकों को शैशवकाल में ही संसार के दूषित वातावरण से हटा कर प्रकृति के शान्त तथा सुन्दर वातावरण में ऐसे निष्ठावान् तथा सच्चरित्र विद्वान् गुरुजनों की संरक्षता में रखा जाय जो उन बालकों के अन्दर गुप्त उच्चतम मानसिक व आध्यात्मिक प्रवृत्तियों को विकसित करने में सहायक हो सकें। उन के मानसचक्षु के सम्मुख प्राचीन भारत के नालन्दा, तक्षशिला आदि अनेक विश्वविद्यालयों का चित्र था।

(शेष अगले अङ्क में)

हमारे सप्त रत्न

१. संस्कृताङ्कुर—मू० १।)—लेखक स्वामी वेदानन्दजी 'तीर्थ'। यह संस्कृत सीखने वालों के लिये अपूर्व पुस्तक है। यह इस प्रकार लिखी गई है कि हिन्दी पढ़ा लिखा व्यक्ति इसे पढ़ कर बिना किसी विशेष सहायता के संस्कृत सीख सकता है। इसमें रटंत की भी विशेष आवश्यकता नहीं पड़ती। इसकी उपयोगिता इसी से सिद्ध है कि इसे विरजानन्द संस्कृत परिषद् ने अपनी परीक्षाओं के लिये स्वीकार कर लिया है।

२. ब्रह्मचर्य के साधन—लेखक आचार्य भगवानदेव जी। ब्रह्मचर्य विषय इतना विस्तृत है कि एक ही पुस्तक में ब्रह्मचर्य के साधनों पर विस्तारपूर्वक लिखना कठिन है और बिना विस्तारपूर्वक लिखे ब्रह्मचर्य मार्ग के पथिकों को मार्ग ढूंढना कठिन हो जाता है। अतः पूज्य आचार्य जी ने ब्रह्मचर्य के साधनों पर पृथक् पृथक् पुस्तकें लिखनी आरम्भ की हैं। अब तक तीन भाग छपे हैं। शेष भाग भी धीरे धीरे छपेंगे। पहले तथा दूसरे भाग का मूल्य।–) और तीसरे का ≡) है।

३. महर्षि दयानन्द और महात्मा गांधी—(सजिल्द) मूल्य २)—ले० पं० धर्मदेव जी विद्यावाचस्पति। इस युग में दो ऐसे महापुरुष हुए हैं जिनकी धार्मिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक और सामाजिक विचारधारा ने इस युग का निर्माण किया है। अनेक अंशों में जहां ये दो महापुरुष—ऋषि दयानन्द और महात्मा गांधी—एक मत थे वहां कुछ एक बातों में उनका परस्पर भेद भी था। इन दोनों के विचारों की समता एवं भेद को जाने बिना वर्तमान राजनीति को समझना कठिन है। इस पुस्तक में लेखक ने दोनों महात्माओं के धर्म, समाज, तत्वज्ञान तथा राजनीति विषयक विचारों की निष्पक्ष रूप से तुलना की है।

४. मनोविज्ञान तथा शिवसंकल्प—(सजिल्द) मू० २॥) ले० श्री स्वामी आत्मानन्द सरस्वती। योग अभ्यासियों, विद्यार्थियों एवं ईश्वर-भक्ति मार्ग के पथिकों के लिये यह अत्यन्त उपयोगी पुस्तक है। पहला संस्करण हाथों-हाथ समाप्त हो गया था। अब यह द्वितीय परिवर्धित एवं संशोधित संस्करण निकाला गया है। भारतवर्षीय आर्य कुमार परिषद् की सिद्धान्त वाचस्पति परीक्षा में निर्धारित, पृ० ३३४।

५. कर्तव्य दर्पण—मू० १)—ले० महात्मा नारायण स्वामी—(सजिल्द, जेबी साइज, लगभग ४०० पृष्ठ)। इसमें आदर्श जीवनचर्या क्या हो? ब्रह्मचर्य का महत्व एवं स्वास्थ्य पालन के नियम, प्राणायाम विधि, आर्यसमाज का जन्म, विस्तार एवं नियमोपनियम, ईश्वर भक्ति के भजन आदि ४० विषयों का समावेश है। आज तक इसके बीसियों संस्करण निकल चुके हैं। यह पुस्तक प्रत्येक आदमी के पास सदैव होनी चाहिये।

६. विदेशों में एक साल—मू० २।)—ले० स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी महाराज। अनेक चित्रों से आभूषित इस पुस्तक में श्री स्वामी स्वतंत्रानन्द जी महाराज द्वारा की गई मारीशस, टांगानीका, केनिया, यूगैंडा आदि देशों की यात्रा का विशद विवरण सरल एवं रोचक भाषा में दिया गया है। इन देशों की धार्मिक, राजनीतिक और सामाजिक अवस्था, वहां पर भारतीय संस्कृति का प्रचार एवं उसकी रक्षार्थ किये गये संघर्ष का वर्णन दिया गया है। एक बार आरम्भ करने पर पुस्तक छोड़ने को मन नहीं चाहता।

७. हितैषी की गीता—मू० ।।।) इसमें भगवद् गीता के श्लोकों का सुन्दर एवं सरस हिन्दी दोहों में अनुवाद है। अक्षर मोटे और सरल होने के कारण यह सर्व साधारण के लिये अत्यन्त उपयोगी हो गई है।

टि०—२) से कम की वी० पी० नहीं भेजी जाती। वी० पी० से आपका अधिक व्यय होगा। अतः २) से कम की पुस्तकों के लिये अवश्य ही, तथा अधिक रुपये की पुस्तकों के लिये, पुस्तकों के मूल्य के अतिरिक्त, जितने रुपये की पुस्तकें मंगानी हों उतने ही आनों में रजिस्ट्री से मंगाने के लिये।=)॥ अन्यथा =) जोड़ कर डाक एवं बंधाई आदि के व्यय के लिये भेजें। उदाहरण—यदि ३) की पुस्तकें मंगानी हों तो ३)+≡)+।=)॥ कुल यदि रजिस्ट्री से मंगानी हों तो ३॥ᐨ)॥ अन्यथा ३।–) भेजें। (२) पता पूरा एवं स्पष्ट लिखने की कृपा करें। (३) अन्य प्रकाशकों की पुस्तकें भी आदेश आने पर भेजी जा सकती हैं। (४) भारतवर्षीय आर्य कुमार परिषद् की धार्मिक परीक्षाओं की पुस्तकें भी हमारे यहां मिलती हैं।

सार्वदेशिक सभा पुस्तक भण्डार की उत्तमोत्तम पुस्तकें

क्रम सं० नाम पुस्तक लेखक व प्रकाशक मूल्य

(१) यम पितृ परिचय (पं० प्रियरत्न आर्ष) २)
(२) ऋग्वेद में देवृकामा ,, -)
(३) वेद में असित् शब्द पर एक दृष्टि -।
(४) अथर्ववेदीय चिकित्सा शास्त्र ,, २)
(५) आर्य डाइरेक्टरी (सार्व० सभा) १।)
(६) सार्वदेशिक सभा का अ० २)
सत्ताईस वर्षीय कार्य विवरण ,, स० २॥)
(७) स्त्रियों का वेदाध्ययन अधिकार
(पं० धर्मदेव जी वि० वा०) १।)
(८) आर्यसमाज के महाधन
(स्वा० स्वतन्त्रानन्द जी) २॥)
(९) आत्म कथा (श्री नारायण स्वामी जी) २।)
(१०) श्री नारायण स्वामी जी की स० जीवनी
(पं० रघुनाथ प्रसाद जी पाठक) -)
(११) आर्य वीर दल बौद्धिक शिक्षण(पं०इन्द्रजी)।=
(१२) आर्य विवाह ऐक्ट की व्याख्या
(अनुवादक पं० रघुनाथ प्रसाद जी पाठक) ।)
(१३) आर्य मन्दिर चित्र (सार्व० सभा) ।)
(१४) वैदिक ज्योतिष शास्त्र(पं०प्रियरत्नजी आर्ष)१।)
(१५) वैदिक राष्ट्रीयता (स्वा० ब्रह्ममुनि जी) ।)
(१६) आर्यसमाज के नियमोपनियम (सार्व०सभा)-)॥
(१७) हमारी राष्ट्रभाषा प०धर्मदेवजी वि० वा०)।-)
(१८) स्वराज्य दर्शन(पं०लक्ष्मीदत्तजी दीक्षित)स० १)
(१९) राजधर्म (राज सस्करण)
(महर्षि दयानन्द सरस्वती) स० २॥)
,, (साधारण संस्करण) अ० ॥)
(२०) योग रहस्य (श्री नारायण स्वामी जी) १।)
(२१) मृत्यु और परलोक १।)
(२२) विद्यार्थी जीवन रहस्य ,, ॥=)
(२३) प्राणायाम विधि ,, ≡)
(२४) उपनिषदें:— ,,

ईश	केन	कठ	प्रश्न
।≡)	॥)	॥)	।=)
मुण्डक	माण्डूक्य	ऐतरेय	तैत्तिरीय
।≡)	।)	।)	१।)

(२५) बृहदारण्यकोपनिषद् (श्री न० स्वामी जी) ४)
(२६) मातृत्व की ओर
(पं० रघुनाथप्रसाद जी पाठक) १।)
(२७) आर्य जीवन गृहस्थ धर्म ,, ॥=)
(२८) कथामाला ,, ॥।)
(२९) सन्तति निग्रह ,, १।)
(३०) नया संसार ,, ≡)
(३१) आर्यसमाज का परिचय ,, ≡)

क्रम सं० नाम पुस्तक ले० व प्रका० मूल्य

(३२) आर्य शब्द का महत्व(पं०रघुनाथप्रसाद पाठक)-)॥
(३३) वैदिक संस्कृति (प० गङ्गाप्रसाद उपाध्याय) २॥)
(३४) इजहारे हकीकत (उर्दू)
(ला० ज्ञानचन्द जी आर्य) ॥।=)
(३५) वर्ण व्यवस्था का वैदिक स्वरूप ,, १॥)
(३६) धर्म और उसकी आवश्यकता १)
(३७) भूमिका प्रकाश (पं० द्विजेन्द्रनाथजी शास्त्री)१॥)
(३८) एशिया का वैनिस (स्वा० सदानन्द जी) ॥)
(४०) वेदों में दो बड़ी वैज्ञानिक शक्तियां
(पं० प्रियरत्न जी आर्ष) १)
(४१) सिंधी सत्यार्थ प्रकाश २)
(४२) सत्यार्थ प्रकाश की सार्वभौमता -)
(४३) ,, ,, और उस की रक्षा में -)
(४४) ,, ,, आन्दोलन का इतिहास ।=)
(४५) शंकर भाष्यालोचन (पं० गंगाप्रसादजी उ०)५)
(४६) जीवात्मा ,, ४)
(४७) वैदिक मणिमाला ,, ।।=)
(४८) आस्तिकवाद ,, ३)
(४९) भगवत कथा ,, १)
(५०) सर्व दर्शन संग्रह ,, १)
(५१) मनुस्मृति ,, ५)
(५२) आर्य स्मृति ,, १॥।)
(५३) कम्यूनिज़म ,, २)
(५४) आर्योदयकाव्यम् पूर्वार्द्ध उत्तरार्द्ध ,, १॥) १॥)
(५५) हमारे घर (श्री निरंजनलाल जी गौतम) ॥=)
(५६) भारत में जाति भेद ,, ।)
(५७) दयानन्द सिद्धान्त भास्कर
(श्री कृष्णचन्द्र जी विरमानी) २।)
(५८) भजन भास्कर (संग्रहकर्त्ता श्री पं० हरिशंकर जी शर्मा १॥।)
(५९) विमान शास्त्र (पं० प्रियरत्न जी आर्ष) ।=)॥
(६०) सनातनधर्म व आर्य समाज
(पं० गङ्गाप्रसाद उपाध्याय) ।=)
(६१) मुक्ति से पुनरावृत्ति ,, ,, ।=)
(६२) वैदिक ईश वन्दना (स्वा० ब्रह्ममुनि जी) ।=)॥
(६३) वैदिक योगामृत ,, ॥=)
(६४) कर्त्तव्य दर्पण सजिल्द (श्री नारायण स्वामी) १॥)
(६५) आर्यवीरदल शिक्षणशिविर (ओमप्रकाश पुरुषार्थी)।=)
(६६) ,, ,, ,, लेखमाला ,, २॥)
(६७) ,, ,, गीताञ्जलि (श्री रुद्रदेव शास्त्री) ।=)
(६८) ,, ,, भूमिका ≡)
(६९) दयानन्द दिग्विजय पूर्वार्द्ध ४)
,, ,, उत्तरार्द्ध ५)

मिलने का पता :—सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, बलिदान भवन, देहली।

दान-सूची

(१-३-१९५२ से २१-४-१९५२ तक)

दान आर्यसमाज स्थापना दिवस

५) श्री स्वा० महेश्वरानन्द जी आर्यसमाज जमालपुर (मुंगेर)
२५) आर्य समाज पीली भीत
२१) ,, कलम (उस्मानाबाद) (हैदराबाद स्टेट)
५) ,, भुसावर (भरतपुर)
२५) ,, पूरनपुर (पीलीभीत)
५१) आर्य स्त्री समाज लखीमपुर (खीरी)
५) आर्यसमाज उन्नाव
१०) श्री नम्बरदार राम बक्स सिंह जी बौंद खुर्द (रोहतक)
५) आर्यसमाज जगराओं (लुधियाना)
५) ,, फलावदा (मेरठ)
११) ,, एटा
१०) ,, तीमारपुर देहली
२५) ,, जौनपुर
७) ,, राजगढ़ (अलवर)
१५) ,, हनुमान रोड, नई देहली
१०) ,, दयानन्द रोड आगरा
५) ,, बरबीघा (मुंगेर)
४५) ,, लोधी रोड, नई देहली
२८५) योग

आर्यसमाजों को विशेष ध्यान देकर अपना धन शीघ्र भेजने की व्यवस्था करनी चाहिए—

ज्ञानचन्द्र
आर्य सेवक
मन्त्री सार्वदेशिक सभा

विविध दान

श्री राजगुरु पं० धुरेन्द्र जी शास्त्री प्रधान सभा द्वारा

३०२ बिहार प्रान्त
१०१) आर्यसमाज मानपुर गया
२०१) ,, मुजफ्फरपुर
३०२)

१७५) बम्बई प्रान्त
५१) श्री भगवान जी हीरा भाई पटेल बम्बई
३०) ,, पुरुषोत्तम भाई जेठा भाई जी पटेल बम्बई
२५) ,, महेन्द्र कुमार जी कविरत्न बम्बई
२५) ,, राम लाल जी आर्य बम्बई
१५) ,, वृन्दावन प्रसाद जी आर्य ,,
११) ,, कर मसी बीजपार जी साह ,,
११) ,, प्रेम जी खेत जी साह ,,
५) ,, सूर्य भान सिंह जी बम्बई
२) ,, पतिराम जी ,,
१७५)

१००) श्री डी० डी० पुरी नैरो बी (ब्रि० ईस्ट अफ्रीका)
५) श्री ला० मुन्नालाल जी ग्राम सकौती डा० मवानां कलां (मेरठ)
१) गुप्तदान
५८२) योग

दान दक्षिण प्रचारार्थ

४००) श्री सेठ जुगलकिशोर जी बिड़ला द्वारा अ० भा० आर्य धर्म सेवासंघ बिरला लाइन्स देहली सहायता मार्च व अप्रैल ५२ की
४००) योग

दान दाताओं को धन्यवाद—

ज्ञानचन्द्र आर्यसेवक
मन्त्री सार्वदेशिक सभा

दान सार्वदेशिक वेद प्रचार निधि

५०) श्री बिहारी लाल जी नई देहली
१०) ,, नवनीत लाल जी एडवोकेट, देहली
१०) ,, सूरजमल जी सम्राट प्रेस देहली
१२) ,, मनोहर जी विद्यालंकार राधेश्याम श्यामसुन्दर जी देहली
१०) ,, ब्रह्मानन्द जी वेदाचारी सुनामुडी पो० भैंसा (बालनगीर उड़ीसा)
५) ,, ला० रामस्वरूप शान्ति प्रसाद जी— हलवाई मुरादाबाद
४०) ,, आर्य समाज लातूर (हैदराबाद स्टेट)
५) ,, खिल्लू राम जी सदाना, देहली
१०) ,, रामदास जी वटरा, जमुना नगर (अम्बाला)
५) ,, आर्यसमाज फलावदार मेरठ
६) विविध सज्जनों से
१५२) योग

सब दानियों को धन्यवाद !

शेष आर्य नर नारियों को भी इस निधि के लिये उदार दान देकर वैदिक धर्म के प्रचार की व्यवस्था में सहायता अवश्य देनी चाहिये।

धर्मदेव जी वि० वा०
स० मन्त्री सभा

(पृष्ठ १२७ का शेष)

लिखा है कि

"Science rejects the assumption of a ghost soul, but it establishes at the same time, the reality of the continuity of man's soul after death."

(The Religion of Science by Dr. Paul Carus. P. 62)

अर्थात् विज्ञान भूत प्रेत आदि की सत्ता का निषेध करता है किन्तु यह मृत्यु के पश्चात् आत्मा के अस्तित्व की सत्यता को सिद्ध करता है। (शेष फिर)

ग्राहकों से आवश्यक निवेदन

निम्न लिखित ग्राहकों का वार्षिक चन्दा मई ५२ के साथ समाप्त होता है, अतः ग्राहकों से प्रार्थना है कि वे अपना आगामी वर्ष का चन्दा ५ रुपये शीघ्र मनीआर्डर द्वारा सभा कार्यालय में भिजवा दें अन्यथा आगामी अंक उनकी सेवा में वी० पी० द्वारा भेजा जावेगा मनीआर्डर भेजते समय मनीआर्डर कूपन पर अपना पूरा-पता तथा ग्राहक संख्या लिखना न भूलें ग्राहक संख्या आदि अंकित न होने से कार्यालय को उन पर कार्यवाही करने में असुविधा होती है और ग्राहकों को व्यर्थ की शिकायत होती है।

ग्राहक संख्या	पता
२	मन्त्री जी आर्य समाज सागर सी पी०
३	,, हरदोई
१५	,, नागौर राजस्थान
१६	,, गाजियाबाद मेरठ
२०	,, बिलासपुर सी पी०
२४	,, खुर्जा जिला बुलन्दशहर
३२	,, मऊनाथ भंजन आजमगढ़
१४३	श्री रामप्रसाद विलासी प्रसाद जी कारंजा जिला अकोला बरार
१६३	,, मन्त्री जी आर्य समाज मेरठ सिटि
१६४	,, मन्त्री जी आर्य समाज श्रद्धानन्द बाजार अमृतसर
१६७	,, मन्त्री जी आर्य समाज खामगांव बरार
१७१	,, मन्त्री जी आर्य समाज बादली
१७२	,, मन्त्री जी आर्यसमाज शांताकुंज बम्बई
१७७	,, शंभू माधा जी आर्य समाज खिजड़ा-वाला भावनगर सौराराष्ट्र
१८०	,, डा० सत्यनारायण जी कैयकारीम
१८४	,, मन्त्री जी आर्य समाज एहन जिला अलीगढ़
१८५	,, अध्यक्ष जी दयानन्द वाचनालय बन्दा यू० पी०
१८७	,, मन्त्री जी आर्य समाज कुसुमरा जिला मैनपुरी
१६०	,, सुपरिन्टेन्डेट साहब, बोर्डिंग हाउस सिविल लाइन्स लुध्याना
१६१	,, रामकुमार जी व्यवस्थापक, श्रीगोपाल वैदिक स्वाध्याय सदन घिरोर मैनपुरी
३२५	,, मन्त्री जी आर्यसमाज राजगढ़ अजमेर
३२६	,, भूपालसिंह जी शास्त्री हीरा मार्केट अमृतसर
३२८	,, मन्त्री जी आर्य समाज शाहपुरा राज्य
३२६	,, मन्त्री जी आर्य समाज सूरज सागर जोधपुर राजस्थान
३३०	,, मन्त्री जो आर्य समाज नया बाजार लश्कर ग्वालियर
४२८	,, शिवरम जी पुरी स्वामी द्वारा पन्ना-राम जी नेत्र वैद्य हिंगोली दक्षिण
४३५	,, ऋषिराम जी उपाध्याय डी० ओ० एफ चकरौता जिला देहरादून
४३६	,, शीतल सिंह जी टेलीफौन आपरेटर, मोकामाघाट
५५२	,, मन्त्री जी आर्य समाज हैद्राबाद जिला खीरी
७२१	,, मन्त्री जी आर्य समाज तरोड़ा पो० मुकावा जिला यवतमाल
७२६	,, आनन्दस्वामी जी योग निकेतन गंगोत्री जिला टिहरी
७२६	,, एस० सदानन्द जी कदव आनेकेरे कार्कला सा० कनारा
७३३	,, परशुराम जी दुधात जामनगर
७३४	,, मन्त्री जी आर्य-समाज घुघली जिला गोरखपुर
७३६	,, ,, जी आर्य समाज मेस्टन रोड, कानपुर
७३७	,, ,, जी आर्य समाज पूनेत्रा पोस्ट महाराज गंज जिला गोरखपुर

७३८ ,, हकीम वीरुमल जी आर्य नाला बाजार अजमेर
७३६ ,, रघुनन्दन प्रसाद जी आर्यसमाज गोविन्दपुर फुलका जिला मुंगेर
७४१ ,, केशवधर्मसिंह जी मिस्त्री जामनगर सौराष्ट्र
४२ ,, हरिश्चन्द्र जी उपदेशक जालना दक्षिण
७४३ ,, मती सविता देवी जी जालना दक्षिण
७४४ ,, नरदेवजी औरंगाबाद हैद्राबाद दक्षिण
७४५ ,, नरसिंह राव जी तालुका चिचोली गुलबर्गा हैद्रबाद
७४६ ,, शंकरदेव जी विद्यालंकार आर्यसमाज बीदर हैद्राबाद राज्य
७४७ ,, पं० प्रेमचन्द जी आर्यप्रतिनिधि सभा हैद्राबाद दक्षिण
७४८ ,, पं० कालीचरण जी प्रकाश आर्यप्रति-सभा हैद्राबाद दक्षिण
७४६ ,, विश्वेश्वरदयालु जी विशारद कचहरी मुजफ्फर नगर
७५३ ,, मांगेलाल जी सि० रत्न बालोतरा मारवाड़
७५४ ,, मन्त्री जी आर्य समाज बांसी जिला बस्ती
७५५ ,, ,, जी आर्य समाज लालगंज जिला आजमगढ़
७५६ ,, ,, जी आर्य समाज मेहनगर जिला आजमगढ़
७५७ ,, ,, ,, ,, ,, सरावां जिला आजमगढ़
७५८ ,, ,, जी आर्य समाज ठेकेमा जिला आजमगढ़
७५६ ,, मन्त्री जी आर्यसमाज बिस्कोहर बाजार जिला बस्ती
७६० ,, मन्त्री जी आर्य समाज अलीनगर जिला बस्ती
७६२ ,, एन० बी० राव टेलोरिंग कालेज मूडविद्री
७८२ ,, मन्त्री जी आर्य समाज फरीदकोट

सार्वदेशिक पत्र के ग्राहक अवश्य अंकित करें

जिन ग्राहकों को किसी मास सार्वदेशिक प्राप्त न हो तो उन्हें उस की १२ तारीख तक सभा कार्यालय को सूचित कर देना चाहिये। इसके पश्चात् प्राप्त होने वाली शिकायतों पर यदि कार्यवाही न होगी तो उसकी उत्तरदायिता सभा कार्यालय पर न होगी।

विशेष साहित्य

१ यम पितृ परिचय	(ले० पं० प्रियरत्न जी आर्य	२)
२ अथर्व वेदीय चिकित्सा शास्त्र	,,	≈)
३ वैदिक ज्योतिष शास्त्र	,,	१॥)
४ स्त्रियों का वेदाध्ययन का अधिकार	(पं० धर्मदेव जी वि० वा०)	१।)
५ स्वराज्य दर्शन	(ले० पं० लक्ष्मीदत्त जी दीक्षित)	१)
६ आर्य समाज के महाधन	(ले० स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी)	२॥)
७ दयानन्द सिद्धान्त भास्कर	ले० श्री कृष्णचन्द्र जी विरमानी)	२।)
८ भजन भास्कर	(संग्रह कर्त्ता श्री पं० हरिशंकर जी शर्मा कविरत्न	१।॥)
९ राजधर्म	(ले० महर्षि दयानन्द सरस्वती)	॥)
१० एशिया का वैनिस	(ले० स्वामी सदानन्द जी)	।॥)

मिलने का पता—सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, बलिदान भवन, देहली ६

दक्षिण अफ्रीका प्रचार—माला

(ले० श्री पं० गङ्गाप्रसाद जी उपाध्याय एम० ए०)

ये तीन पुस्तिकाएं देश तथा विदेश दोनों के लिये बहुत उपयोगी हैं:—

1—Life After Death
(पुनर्जन्म पर नूतन ढंग का सरल दार्शनिक ग्रन्थ) **मूल्य १।)**

2—Elementary Teachings of Hinduism
मूल्य ॥)

3—सनातन धर्म व आर्यसमाज
(आर्य समाज के सिद्धान्तों की दिलचस्प रूप रेखा) **मूल्य ।≈)**

प्रकाशक व मिलने का पता:—

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, बलिदान भवन, देहली ६

स्वाध्याय योग्य उत्तम साहित्य

स्व० श्री महात्मा नारायण स्वामी जी कृत कतिपय ग्रन्थ

(१) मृत्यु और परलोक

शरीर, अन्तःकरण तथा जीव का स्वरूप और भेद, जीव और सृष्टि की उत्पत्ति का प्रकार, मृत्यु का स्वरूप तथा बाद की गति, मुक्ति और स्वर्ग, नरकादि का स्वरूप मैस्मरइज्म और रूहों के बुलाने आदि पर रोचक विचार और मुक्ति के साधन आदि विषयों पर नए ढंग पर एक अद्भुत पुस्तक।

बीसवां संस्करण मूल्य १।)

(२) योग रहस्य

इस पुस्तक में अनेक रहस्यों को उद्घाटित करते हुए उन विधियों को भी बतलाया गया है जिनसे कोई आदमी जिसे रुचि हो—योग के अभ्यासों को कर सकता है।

पंचम संस्करण मूल्य १।)

(३) विद्यार्थी जीवन रहस्य

विद्यार्थियों के लिए उनके मार्ग का सच्चा पथप्रदर्शक उनके जीवन के प्रत्येक पहलू पर शृङ्खलाबद्ध प्रकाश डालने वाले उपदेश

पञ्चम संस्करण मूल्य ॥=)

(४) आत्म कथा

श्री महात्मा नारायण स्वामी जी का स्वलिखित जीवन चरित्र मूल्य ?।)

(५) उपनिषद् रहस्य

ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक, माण्डूक्य, ऐतरेय, तैत्तिरीय, बृहदारण्यकोपनिषद् का बहुत सुन्दर खोज-पूर्ण और वैज्ञानिक व्याख्याएँ। मूल्य क्रमशः—

।≡), ॥), ॥), ।=), ।≡), ।), ।), १), ४),

(६) प्राणायाम विधि

इस लघु पुस्तक में ऐसी मोटी और स्थूल बातें अंकित हैं जिनके समझने और जिनके अनुकूल कार्य करने से प्राणायाम की विधियों से अनभिज्ञ किसी भी पुरुष को कठिनता न हो और उन में इन क्रियाओं के करने की रुचि भी पैदा हो जाए।

चतुर्थ संस्करण मूल्य ≡)

मिलने का पता—

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा

श्रद्धानन्द बलिदान भवन

देहली ६

मुद्रक—चतुरसेन गुप्त द्वारा सार्वदेशिक प्रेस पटौदी हाउस दिल्ली ७ में छपकर
श्रीरघुनाथ प्रसाद जी पाठक पब्लिशर द्वारा सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा देहली ६ से प्रकाशित

कृण्वन्तोविश्वमार्यम्

ज्येष्ठ २००९ वि०
जून १९५२

सम्पादक
श्री पं० धर्मदेव सिद्धान्तालङ्कार विद्यावाचस्पति

मूल्य स्वदेश ५)
विदेश १० शि०
एक प्रति ॥)

विषयानुक्रमणिका

ओ३म्

सार्वदेशिक आर्य-प्रतिनिधि सभा देहली का मासिक मुख-पत्र

वर्ष २६ } जून १९५२, ज्येष्ठ २००९ वि० दयानन्दाब्द १२८ } अङ्क ४

ओ३म्

वैदिक प्रार्थना

ओ३म् पवस्व वाजसातमोऽभिविश्वानि वार्या ।
त्वंसमुद्रः प्रथमे विधर्मन् देवेभ्यः सोम मत्सरः ॥ सामवेद म. ५२१

शब्दार्थः—(सोम) हे जगदुत्पादक शान्ति के स्रोत जगदीश्वर ! (वाजसातमः) ज्ञान और शक्ति देने वालों में सब से श्रेष्ठ तू (विश्वानि वार्या अभि) सब वरणीय उत्तम गुणों वा पदार्थों की प्राप्ति के लिये हमें (पवस्व) पवित्र कर तथा गतिशील बना। (त्वम्) तू (समुद्रः) शान्ति, ज्ञान, आनन्द, पवित्रता और दया का समुद्र है और (प्रथमे विधर्मन्) सर्वोत्तम अपने विशेष धर्म में स्थिर रह कर (देवेभ्यः मत्सरः) सत्यनिष्ठ ज्ञानियों के लिये आनन्द देने वाला अथवा उन्हें मस्त बनाने वाला है ॥

विनयः—हे शान्ति मूल परमेश्वर ! आप शान्ति, ज्ञान, पवित्रता, बल और दया के समुद्र हैं। आप से बढ़ कर हमें कोई ज्ञान और बल प्रदान करने वाला नहीं है। आप आनन्द के स्रोत होकर सत्यनिष्ठ ज्ञानियों को आनन्दित करने वाले हैं। हमारी आप से यही प्रार्थना है कि हमें आप सब ओर से पुरुषार्थी और पवित्र बनाएं जिससे हम ज्ञानादि श्रेष्ठ ऐश्वर्यों को प्राप्त कर सकें ॥ हमारे अन्दर किसी प्रकार की अपवित्रता और आलस्य प्रमादादि न रहने पाए।

सम्पादकीय

आचार्य विनोबा जी का आर्यसमाजादि विषयक एक पत्र :—

गोविन्द गढ़ (जिला जयपुर) के गान्धी खादी भण्डार के श्री मूलचन्द्र जी ने निम्न पत्र हमारे पास प्रकाशनार्थ भेजा है। हम उसे अविकल रूप से प्रकाशित करके उसके विषय में अपना विचार प्रकट करना चाहते हैं। 'गत वर्ष पल्ली (हैदराबाद) के अधिवेशन के अवसर पर सर्वोदयसमाज के विषय में विचार करते हुए आचार्य विनोबा जी ने आर्यसमाज के संगठन पर कुछ आलोचना सी की थी। इस पर मैंने श्री विनोबा जी को लिखा था कि (१) आर्यसमाज के संगठन में आपको क्या दोष दिखाई दिया है (२) आपने उसे पन्थ कैसे समझ लिया जब कि आर्यसमाज का दावा तो पन्थों को मिटाने का है।

इसका उन्होंने बड़ा ही सुन्दर नीचे लिखा हुआ उत्तर दिया है—

मूलचन्द्र अग्रवाल
पड़ाव-सुचेतागंज (उ० प्र०)
२-५-५२

श्री मूलचन्द्र अग्रवाल,

आपका पत्र मिला आर्यसमाज के संगठन में या दूसरे भी किसी संगठन में दोष देखना मेरा काम नहीं है। मैं तो संगठन में ही दोष देख रहा हूँ। संगठन से अभिमान बढ़ता है, सहिष्णुता कम होती है, किसी ग्रन्थ या व्यक्ति से बधे रहने की वृत्ति होती है। आर्यसमाज के संगठन में ऐसा हुआ है या नहीं यह आपको देखना चाहिये। पन्थ की व्याख्या आप पूछते हैं। व्याख्याएं तो कई हो सकती है। किसी ग्रन्थ को अनादि समझ कर उस पर निर्भर रहना पन्थ के अनेक लक्षणों में से एक कहा जा सकता है। उन अच्छे ग्रन्थों की मदद लेना गलत नहीं है। लेकिन शब्द प्रमाणक बनना पंथ लक्षण है जैसे सनातन धर्मी, आर्यसमाजी, कुराणी, पुराणी।

हम अगर सावधान न रहे तो गान्धी जी के अनुयायियों का भी देखते-देखते एक पन्थ बन सकता है। हम सब को उस दृष्टि से सावधान रहना है। "विनोबा"

आचार्य विनोबा जी आजकल 'भूमिदानयज्ञ' के आन्दोलन के कारण (जिसकी हम भी इन स्तम्भों में प्रशंसा कर चुके हैं) विशेष प्रख्याति प्राप्त कर चुके हैं। वे एक त्यागी विद्वान् विचारक भी है किन्तु उपर्युक्त पत्र के द्वारा (जो अनेक पत्रों में प्रकाशित हुआ है) उन्होने जो विचार प्रकट किये हैं उनसे हम नितान्त असहमत हैं। उन्होंने पत्र के प्रारम्भिक भाग में यह अवश्य लिखा है कि "आर्यसमाज के संगठन में या दूसरे किसी संगठन में दोष देखना या दिखाना मेरा काम नहीं है।" तथापि ध्यानपूर्वक उनके इस पत्र को पढ़ने पर यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि उनकी आलोचना का मुख्य लक्ष्य (एक मात्र नहीं) आर्यसमाज है। शिवराम पल्ली के सम्मेलन में उन्होंने आर्यसमाज की आलोचना इस प्रकार के शब्दों में की थी कि "आर्यसमाज की कट्टरता ने आरम्भ में कुछ कार्य किया भी हो तो आज उनका विकास रुक गया है। आर्यसमाज का अनुसरण करके हम खोने वाले हैं! इत्यादि

(देखो "सर्वोदय" अखिल भारत सर्वसेवा सङ्घ का मासिक मुख पत्र मई १६५१ का अङ्क) इस अशुद्ध आलोचनाका उत्तर हमने "सार्वदेशिक" द्वारा उस समय दिया था। इस बार उन्होंने कुछ अधिक सावधानी से कार्य लिया है किन्तु जो बातें उन्होंनें लिखी हैं उनको हम यथार्थ नहीं समझते। उदाहरणार्थ "मैं तो संगठन में ही दोष देख रहा हूँ" यह उनका लिखना और संगठन मात्र से अभिमान बढ़ता है, सहिष्णुता

कम होती है किसी ग्रन्थ या व्यक्ति से बंधे रहने की वृत्ति होती है। इत्यादि संगठन मात्र के दोष दिखाना हमें युक्तियुक्त नहीं प्रतीत होता। किसी भी प्रकार के धार्मिक, सामाजिक, राजनैतिक, शैक्षणिक कार्य के लिये संगठन की आवश्यकता होती ही है। उसके बिना कार्य नहीं चल सकता। कांग्रेस, सर्वसेवासङ्घ अथवा सर्वोदय समाज भी तो एक संगठन ही है जिससे श्री विनोबा जी का सम्बन्ध है या रहा है। संगठन मात्र से अभिमान वृद्धि, सहिष्णुता की कमी आदि दोष अवश्य आजाते हैं यह भी उनका कथन यथार्थ नहीं। जहां "ज्यायस्वन्तश्चित्तिनो मा वियौष्ट संराधयन्तः सधुराश्चरन्तः॥" सं गच्छध्वं सं वदध्वं सं वो मनांसि जानताम्॥" समानी व आकूतिः समाना हृदयानि वः। समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति॥" इत्यादि वैदिक आदेशानुसार संगठन बनाया जाता है अर्थात् सब लोग बड़ों के प्रति आदर दिखाने वाले, ज्ञानी, मिल कर प्रेम से एक उद्देश्य की ओर चलने वाले, अपने संकल्पों हृदयों और मनों को मिला कर परस्पर सहयोग करने वाले होते हैं वहां संगठन से अभिमानादि उत्पन्न नहीं होते। संगठन मात्र की निन्दा करना वास्तविकता से विमुख होकर आकाश की बातें करना है। पन्थ की जो नवीन व्याख्या श्री विनोबा जी ने की है और जिसके अन्दर वे आर्यसमाजियों को भी सनातन धर्मियों कुराणियों पुराणियों के साथ ले आए हैं उससे भी हम असहमत हैं तथा उसे अशुद्ध समझते हैं। उनका यह कथन भी कि 'किसी ग्रन्थ को अनादि समझ कर उस पर निर्भर रहना पन्थ के अनेक लक्षणों में से एक कहा जा सकता है। अच्छे ग्रन्थों की मदद लेना ग़लत नहीं है लेकिन शब्द प्रमाणक बनना पन्थ लक्षण है।' अमान्य है। मनुष्य को सृष्टि के प्रारम्भ में धर्म का यथार्थ ज्ञान देने के लिये ईश्वरीय ज्ञान की आवश्यकता है और वह ईश्वरीय ज्ञान वेद है जिस की शिक्षाएँ सार्वभौम, युक्ति युक्त और वैज्ञानिक हैं यदि हम आर्य ऐसा मानते हैं और अपने इस कथन को तर्क की कसौटी पर कसकर दिखा सकते हैं तो इस आधार पर हमें पन्थ का नाम दे देना सर्वथा अनुचित है। प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान के साथ २ शब्द भी प्रमाण है और उसमें ईश्वरीय ज्ञान वेद प्रधान है जैसा कि "धर्मं जिज्ञासमानानां प्रमाणं परमं श्रुतिः॥ (मनुः) तद्वचनादाम्नायस्य प्रामाण्यम् (वैशेषिक) इत्यादि वचनों के अनुसार सब शास्त्रकारों ने बतलाया है तो इसे पन्थ के नाम से कह कर उसका तिरस्कार करना कैसे उचित हो सकता है? वस्तुतः किसी जरदुश्त, बुद्ध, ईसा, मुहम्मद आदि व्यक्ति विशेष में विश्वास को मुक्ति की प्राप्ति के लिये अनिवार्य बनाना और आचरण की अपेक्षा विश्वास को ही प्रधानता देना पन्थ के लक्षणों में हो सकता है न कि युक्ति युक्त, सार्वभौम ईश्वरीय ज्ञान में विश्वास रखना वा उसे प्रमाण मानना। हमें स्पष्ट प्रतीत होता है कि मुख्यतया आर्यों को पन्थाई बताने के लिये ही श्री विनोबा जी ने यह मनघड़न्त लक्षण बनाया है। महात्मा गांधी जी एक ईश्वर विश्वासी महापुरुष थे किन्तु उनकी समाधि पर फूल चढ़ाना, उनको ईश्वरावतार मानना, उनके चित्र वा मूर्ति आदि की पूजा करना, उनकी प्रत्येक बात को मानने के लिये आग्रह करना इत्यादि रूप में एक गांधी पन्थ बनता जा रहा है जिसके विरुद्ध श्री विनोबा जी को प्रबल आन्दोलन करना चाहिये न कि समय असमय पर आर्यसमाज अथवा संगठन मात्र पर अयथार्थ आक्षेप करना। आशा है श्री विनोबाजी अपने उत्तरदायित्व को समझकर इसप्रकार के अयथार्थ विचारों का फिर प्रचार न करेंगे॥ हमें आश्चर्य है कि श्री मूलचन्द जी को श्री विनोबा जी का उपर्युक्त उत्तर कैसे "बड़ा ही सुन्दर" लगा और उन्होंने इसे अनेक पत्रों में प्रकाशनार्थ भेजना उचित

समझा ॥

उस्मानिया युनिवर्सिटी हिन्दी विश्वविद्यालय के रूप में :—

यह प्रसन्नता की बात है कि दक्षिण हैदराबाद की उस्मानिया युनिवर्सिटी को भारत की केन्द्रीय सरकार अपने तत्त्वावधान में लेकर उसे दक्षिण भारत के लिये एक हिन्दी विश्वविद्यालय का रूप देने का विचार रखती है जहां शिक्षा का माध्यम हिन्दी हो। यद्यपि अभी यह प्रश्न विचाराधीन है और एक उपसमिति इस विषय में निश्चित योजना देने के लिये नियत की गई है तथापि हम इस विचार का हार्दिक समर्थन करते हैं। उस्मानिया युनिवर्सिटी की यह एक विशेषता रही है कि वहां शिक्षा का माध्यम अङ्गरेजी न हो कर उर्दू थी। हिन्दुओं की संख्या ८५ प्रतिशतक से अधिक होते हुएभी निजाम के शासन के कारण उर्दू को शिक्षा का माध्यम बनाना भी उचित न था किन्तु अब उसे हिन्दी विश्वविद्यालयके रूपमें परिणत करना अपेक्षा कृत सरल होगा क्योंकि हैदराबाद में प्रचलित कन्नड़ तिलगु आदि भाषाएं हिन्दी के ही समान संस्कृत बहुल हैं। किन्तु हमें एक आशङ्का अवश्य है कि अब जिस उर्दू के द्वारा विज्ञानादि विषयों की शिक्षा दी जाती है उसे ही केवल देवनागरी का चोला पहना कर हिन्दी मान लिया जाए। यदि ऐसा हुआ तो यह सर्वथा अनुचित होगा तथा हिन्दी प्रेमी जनता को धोखा देना होगा। हम केन्द्रीय सरकार और उस उपसमिति के सदस्यों से अनुरोध करते हैं कि वे ऐसी आशङ्का के लिये कोई अवसर न दें और शीघ्र ही उत्तर और दक्षिण भारत के पारस्परिक सम्पर्क की वृद्धि के लिये उस्मानिया युनिवर्सिटी को संस्कृत निष्ठ हिन्दी विश्वविद्यालय के रूप में परिणत करके यश के भागी बनें।

लङ्का में भारतीयों के साथ घोर अन्यायः—

लङ्का में भारतीयों की संख्या ८ लाख के लगभग है जिस में से ७ लाख अर्थात् ८५ प्रतिशत के लगभग उस देश के चाय व रबड़ के बागों में मजदूरी करते हैं। लङ्का की समृद्धि अधिकतर इन लोगों के परिश्रम पर निर्भर है। ऐसी अवस्था में भारतीय व पाकिस्तानी नागरिक रजिस्ट्रेशन कानून की आड़ में इन ८ लाख भारतीयों में से केवल ८५०० को ही चुनाव में मताधिकार देना और अन्यों को इस अधिकार से वञ्चित कर देना एक घोर अन्याय है। भारतीय सरकार ने भी लङ्का की सरकार के साथ पत्र व्यवहारादि तथा अपने प्रतिनिधि द्वारा इस अन्याय को दूर कराने के लिये विशेष प्रयत्न किया किन्तु बड़े दुःख की बात है कि डडले सेनानायक के प्रधान मन्त्रित्व में वहां की सरकार ने इस ओर कोई ध्यान नहीं दिया। इतना ही नहीं स्वयं प्रधान मन्त्री तथा अन्य अधिकारियों ने भारतीयों के विरुद्ध विषवमन करने में कोई कसर नहीं उठा रक्खी। इस अन्याय का अन्य कोई प्रतीकार न जान कर लङ्का के भारतीय सत्याग्रह कर रहे हैं जिस के साथ सब न्याय प्रिय लोगों की सहानुभूति है। हां, कुछ स्वार्थी व्यापारियों के सङ्घ ने इस कार्य को अवश्य अनुचित कहा है। लङ्का के शासनाधिकारियों से हमारा अनुरोध है कि वे इस अन्याय को दूर करके कलङ्क के टीके को धो डालें अन्यथा उन की अपकीर्ति और जनता का असन्तोष ये सदा बने रहेंगे जो लङ्का की समृद्धि और गौरव में भी बाधक होंगे।

लङ्का के वर्तमान प्रधान मन्त्री श्री डडले सेनानायक के 'भारतीय हमारे शत्रु हैं और वे हमारे देश में आधिपत्य जमा कर हमको अपनी धन सम्पत्ति से वञ्चित करना चाहते हैं।" इत्यादि शब्द सर्वथा असत्य और निन्दनीय मनोवृत्ति सूचक हैं। भारतीय सरकार को भी

इस विषय में अधिक दृढ़ता से कार्य करने की आवश्यकता है जिस से इस अन्याय का प्रतीकार किया जा सके। लङ्का के गृह मन्त्री की इस धमकी का कि "यदि सत्याग्रह जारी रहा तो वे भारतीयों की सुरक्षा के लिये उत्तरदायी न होंगे क्यों कि उन्हें सारी पोलीस की शक्ति को सत्याग्रह के विरुद्ध लगाना पड़ रहा है" भारतीय सरकार ने लङ्का के देहली स्थित हाई कमिश्नर श्री कुमार स्वामी द्वारा दृढ़ता सूचक उत्तर दे कर उचित ही कार्य किया है किन्तु उसे इतने पर ही सन्तोष न कर लेना चाहिये।

द० अफ्रीका का हाई कोर्ट आफ़ पार्लियामेन्ट बिलः—

यह दुःख और आश्चर्य की बात है कि अपने उच्चतम न्यायालय (सुप्रीमकोर्ट) के यह निर्णय देने पर भी कि रंग भेद के कारण पार्थक्य सूचक कानून अवैध हैं द० अफ्रीका की सरकार की आंखें नहीं खुलीं और २१ मार्च को डा० मलान ने पार्लियामेन्ट में घोषणा की कि वे ऐसे प्रस्ताव रखेंगे जिनसे न्यायालयों को पार्लियामेन्ट में स्वीकृत कानूनों की वैधानिकता की परीक्षा करने के अधिकार से वंचित कर दिया जाए। अपने इस निन्दनीय निश्चय को डा० मलान ने क्रियात्मक रूप देते हुए उपर्युक्त आशय का "हाईकोर्ट आफ पार्लियामेन्ट बिल पार्लियामेन्ट से ५९ के विरुद्ध ७८ के बहुमत से पारित करा लिया। संयुक्त विरोधिदल के नेता श्री स्ट्रास ने इस बिल को न केवल अवैधानिक (Un-Constitutional) बल्कि साथ ही एक धोखा (Fraud) बताया जिस में सुधार की गुंजायश नहीं। उस का तो आधार ही सर्वथा अशुद्ध है। इस बिल का अन्य भी अनेक सदस्यों ने घोर विरोध किया। वस्तुतः दक्षिण अफ्रीका के विधान के अनुसार भी केवल सामान्य बहुमत से ऐसे विधेयक (बिल) को पारित नहीं किया जा सकता था। उस विधान की धाराओं के अनुसार जिनकी उपेक्षा की गई है जाति या रंग भेद के कारण मतदाताओं को वंचित करने के सम्बन्ध में कोई क़ानून तब तक पारित नहीं हो सकता जब तक पार्लियामेन्ट के दोनों सदनों के सम्मिलित अधिवेशन के सदस्यों की ⅔ संख्या उसके पक्ष में अपना मत न दे। इस प्रकार डा० मलान की सरकार का पाशविक शक्ति से अपने विधान और मानवता की उपेक्षा करते हुए ऐसे अत्यन्त अनुचित विधेयक को केवल अपनी शक्ति को स्थिर बनाये रखने के लिये पारित कराना अनुचित है। इस प्रकार के क़ानूनों से जनता के घोर असन्तोष का इससे अनुमान लगाया जा सकता है कि १० मई को अफ्रीकी जनरल वर्कर्स यूनियन नामक संस्था ने संयुक्त राष्ट्र संघ से प्रार्थना की है कि वह दक्षिण अफ्रीका के संविधान और मलान सरकार को अवैध व ग़ैर क़ानूनी घोषित कर दे। यूनियन का दावा है कि वह दक्षिण अफ्रीका के १ करोड़ से अधिक अश्वेत श्रम जीवियों का प्रतिनिधित्व करती है। इस प्रार्थना पत्र में कहा गया है कि यह संविधान गोरों ने जो अल्पसंख्यक हैं संयुक्त राष्ट्रसंघ के घोषणापत्र में वर्णित मानवीय अधिकारों व लोक तन्त्रीय परम्पराओं का उल्लङ्घन करके ग़ैर क़ानूनी तरीके से बनाया है। ......प्रार्थनापत्र में यह भी कहा गया है कि श्वेत अल्पसंख्यकों को संयुक्त राष्ट्र संघ में समूचे दक्षिण अफ्रीका की ओर से बोलने का कोई अधिकार नहीं है। अन्त में प्रार्थना पत्र में संयुक्त राष्ट्र संघ से डा० मलान को यह आदेश देने के लिये कहा गया है कि कि वे एक नया संविधान बनाने के लिये समस्त जातियों के लोगों का एक सम्मेलन बुलाएं और एक नई जनवादी सरकार बनाने के लिये नये सिरे से साधारण निर्वाचन करवाएं।

हम उपर्युक्त श्रमजीविसङ्घ की मांग को युक्ति युक्त तथा सङ्गत समझते हुए उसका समर्थन

करते हैं यद्यपि संयुक्त राष्ट्र सङ्घ की ढिलमिल नीति को देखते हुए हमें कोई आशा नहीं प्रतीत होती कि वह ऐसे उग्र कार्य को करके द० अफ्रीका की शक्तिमदमत्त सरकार को सीधे रास्ते पर लाने में समर्थ हो सकेगा ॥

शेख़ अब्दुल्ला के अनुत्तरदायित्व पूर्ण भाषण:—

काश्मीर के प्रधान मन्त्री शेख़ अब्दुल्ला अपने को कट्टर राष्ट्र वादी बतलाते हैं। उन जैसे उत्तरदायित्व पूर्ण व्यक्ति से यह आशा की जानी चाहिये कि वे सोच समझ कर और संयत भाषा में अपने विचारों को प्रकट करेंगे किन्तु गत १० अप्रैल को रणवीर पुरा में और उसके पश्चात् भी उन्हों ने जो कई भाषण दिये हैं उनको सर्वथा अनुत्तरदायित्व पूर्ण और निराशा जनक कहना उचित ही होगा। भावावेश में वे यहां तक कह गये कि यदि भारत में साम्प्रदायिकता का सर्वथा अन्त न कर दिया गया तो काश्मी रयों को यह सोचने को विवश होना पड़ेगा कि वे भारत के रक्षा, विदेशनीति तथा यातायात के विषयों में भी (अन्य विषयों में तो वे वैसे भी सर्वथा स्वतन्त्र होने का तथा भारतीय प्रजातन्त्रके अन्दर एक सर्वशकि सम्पन्न प्रजा तन्त्र होने का दावा रखते है। सम्बन्ध रख सकते हैं वा नहीं तथा पं० नेहरू जी यदि न रहें तो हमारी क्या स्थिति होगी। ऐसे अनुचित शब्दों और भावों का जब सर्वत्र विरोध किया गया और स्वयं श्री पं० जवाहरलाल जी ने भी इन शब्दों को आपत्तिजनक बता कर आश्चर्य प्रकट किया तो यह कहा गया कि उनके भाषणों का समाचार पत्रों में प्रकाशित विवरण ठीक न था किन्तु जो विवरण सरकार की ओर से प्रकाशित हुआ उसमें भी कोई विशेष अन्तर न था सिवाय इसके कि इन विचारों को अपना न कह कर उन्होंने काश्मीरी जनता के भावों का सूचक बताया। भारत के प्रधानमन्त्री श्री पं० जवाहरलाल जी समय असमय सदा तथाकथित साम्प्रदायिकता के विरुद्ध युद्ध की घोषणा करते तथा इस विषय में सर्वदा कटिबद्ध रहते हैं ऐसी अवस्था में ऐसे शब्दों और भावों का प्रकाशन सर्वथा अनावश्यक तथा पाकिस्तानी मुस्लिमों के लिये प्रोत्साह जनक था अतः कांग्रेस के मुखपत्र "The people" ने शेख अब्दुल्ला के उन १० अप्रेल वाले भाषण की कठोर आलोचना करते हुए जो लिखा है हम उससे सर्वथा सहमत हैं कि वह भाषण निराशाजनक (Disappointing) और शोचनीय (Deplerable) था। उसने यह भी लिखा कि 'A great leader must essentially be a master psychoteogist, but Sheikh Abdullah a man of splendid impulses at times uses unguarded language. अर्थात् एक नेता को कुशल मनोविज्ञानवेत्ता होना चाहिये किन्तु शेख अब्दुल्ला जो एक भावुक व्यक्ति हैं कभी २ असंयत भाषा का प्रयोग कर बैठते हैं। हमें तो ऐसे प्रतीत होता है कि हमारे प्रधान मन्त्री जी ने कई बार सर्वथा अनावश्यक रूप में तथाकथित साम्प्रदायिकता के विरुद्ध युद्ध की घोषणा करके भी शेख अब्दुल्ला को बहुत अधिक सिर पर चढ़ा दिया है जिससे ऐसे अनुचित शब्दों के प्रयोग का उन्हें दुस्साहस हुआ है। उन्हें चाहिये कि वे शेख अब्दुल्ला को उचित मर्यादा से आगे न बढ़ने दें और वे जब कभी ऐसी अनुचित चेष्टा करें तो उनकी उचित भर्त्सना करनेमें कभी संकोच न करें। ऐसे व्यक्तियों पर जो इस प्रकार की असंयत भाषा का प्रयोग कर डालें कहां तक पूर्ण विश्वास किया जा सकता है यह भी विचारणीय है ॥

वैदिक धर्म और विज्ञान

(४) नित्य आत्मा की सत्ता (गतांक से आगे)

लेखक—श्री धर्मदेव विद्यावाचस्पति देहली

सर आलिवर लाज द्वारा समर्थन

किन्तु सर आलिवर लाज जैसे जगद्विख्यात वैज्ञानिक (रायल सोसाइटी के प्रधान) को इतने पर ही सन्तोष नहीं हुआ और उन्होंने इस बात की स्पष्ट घोषणा की कि:—

"It is un-reasonable that soul should jump out of existence when the body is destroyed. I say on definite scientific grounds that we shall continue to exist. We shall certainly survive. Survival of existence is scientifically provable by careful scientific investigation."
(Religion and Science by Seven men of Science P. 25)

अर्थात् यह मानना कि शरीर के नाश होने पर आत्मा का भी नाश हो जाता है सर्वथा युक्ति विरुद्ध है। मैं सर्वथा निश्चित वैज्ञानिक आधारों पर इस बात को कहता हूँ कि हमारी सत्ता (शरीर की मृत्यु के पश्चात् भी) विद्यमान रहेगी। हम निश्चय से मृत्यु के पश्चात् भी रहेंगे। यह सत्ता की निरन्तरता वैज्ञानिक रूप से ध्यान पूर्वक किये गये वैज्ञानिक अनुसन्धानों से सिद्ध की जा सकती है।

नोबल पुरस्कार विजेता डा० कैरल का माननीय कथनः—

नोबल पुरस्कार विजेता डा० अलैक्सिस कैरल ने 'Man the Unknown' नामक अपने सुप्रसिद्ध ग्रन्थ में आत्मज्ञान के अभाव को ही वर्तमान शोचनीय दशा का मुख्य कारण बताया है। वे लिखते हैं:—

'We are unhappy. We degenate morally and mentally. We are the victims of the backwardness of the sciences of life over those of the matter. The only possible remedy for this evil is a much profound knowledge of ourselves. The science of man has become the most necessary of all sciences."

(Man the Unknown by Dr. Alexis Carrel P. 38-39)

अर्थात् हम दुःखी हैं। सदाचार और मानसिक दृष्टि से हमारा पतन हो रहा है। यह इसी आत्मविद्या के अभाव का परिणाम है। इस बुराई का एक मात्र प्रतिकार यही है कि हम अपने आत्मा का अधिक गम्भीर ज्ञान प्राप्त करें। वर्तमान अवस्था में तो यह आत्मविज्ञान अन्य सब विज्ञानों की अपेक्षा अधिकतम आवश्यक हो गया है।

इन शब्दों से भी वैदिक सिद्धान्त का समर्थन ही होता है यह स्पष्ट है।

फ्लैमेरियांन नामक वैज्ञानिक का स्पष्ट कथनः—

कैमेल फ्लैमेरियां (M. Camille Flamimarion) नामक फ्रांसदेशीय जगद्विख्यात आधुनिक वैज्ञानिक ने "What do we know about the Beyond? विषयक अपनी पुस्तक में स्पष्ट लिखा है कि

"Long observation has shown clearly that there exists in us some thing Un-known, which has been systematically denied upto the present in all scientific theories, and that this some thing survives the disintegration of our earthly bodies and the transformation of our ma-

terial molecules which by the way, from a purely scientific point of view, are also indestructible. Whether we call it a principle, element, psychic atom, soul or spirit, there is no denying that this unknowu some thing reall) exists.'' (quoted from Sadhu T. L. Vaswani's Torch Bearer P. 187)

अर्थात् दीर्घ अनुभव ने यह स्पष्टतया प्रकट कर दिया है कि हम लोगों के अन्दर कोई अज्ञात पदार्थ स्थित है जिसे वैज्ञानिक कल्पनाएं अब तक अस्वीकार करती रही हैं। परन्तु यह अज्ञात पदार्थ हम लोगों के भौतिक शरीर के नाश होने तथा अविनाशी तत्त्वों में मिल जाने के पश्चात् भी विद्यमान रहता है। चाहे इसे हम एक मूल तत्त्व, आध्यात्मिक परमाणु, आत्मा या जीवात्मा किसी नाम से पुकारें किन्तु इससे इन्कार नहीं हो सकता कि इस अज्ञात पदार्थ की वास्तविक सत्ता है।

इससे बढ़ कर नित्य आत्मा के अस्तित्व विषयक वैदिक धर्म के सिद्धान्त का क्या प्रबल समर्थन हो सकता है जिस का भगवद्गीता में

न जायते म्रियते वा कदाचिद्
नायं भूत्वा भविता वा न भूयः।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो
न हन्यते हन्यमाने शरीरे॥

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि, नैनं दहति पावकः।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः॥

इत्यादि श्लोकों द्वारा उत्तम प्रतिपादन करते हुए बताया गया है कि आत्मा न पैदा होता है न मरता है, यह अजन्मा, नित्य और सदा रहने वाला है, शरीर के नाश होने पर इस का नाश नहीं होता। शस्त्र इस आत्मा को काट नहीं सकते, अग्नि इस आत्मा को जला नहीं सकती, पानी इसे गीला नहीं कर सकता और वायु इसे सुखा नहीं सकती॥ (शेष फिर)

आचार्य चन्द्र कान्त जी वेद वाचस्पति का शोक जनक देहावसानः—

हमें अपने पाठकों को यह सूचित करते हुए अत्यन्त दुःख होता है कि गुरुकुल काङ्गड़ी विश्वविद्यालय के सुयोग्य स्नातक और गुरुकुल सूपा के आचार्य श्री पं० चन्द्र कान्त जी वेद वाचस्पति का गत १२ मई की सायं बम्बई में हर्निया से देहावसान हो गया। श्री पं० चन्द्र कान्त जी आर्यजगत् के एक सुप्रसिद्ध विद्वान् और कर्मशील वक्ता थे। उनके तथा उनकी सुयोग्या धर्म पत्नी श्रीमती सुशीला देवी जी विद्यालंकृता के विद्वत्ता पूर्ण लेख 'सार्वदेशिक' में समय २ पर प्रकाशित होते रहे हैं। हम उनकी योग्यता, सरलता, कर्तव्य परायणता तथा सौम्यतादि गुणों के प्रति श्रद्धाञ्जलि अर्पित करते हुए उनकी पवित्रात्मा को सद्गति और उनके शोक संतप्त परिवार को धैर्य तथा शान्ति प्रदान करने के लिये भगवान् से प्रार्थना करते हैं। उनके देहावसान से आर्य जगत् की बड़ी भारी क्षति हुई है। हम आर्य जगत् की ओर से उनके दुःखित परिवार के प्रति हार्दिक समवेदना प्रकट करते हैं।

ज्वालापुरीय गुरुकुल महाविद्यालयस्य चतुश्चत्वारिंशत्तमे वार्षिकमहोत्सवावसरे विद्वत्कलापरिषदध्यक्ष महाभागानां सिद्धान्तशिरोमणि विरुदभाजां श्रीमदाचार्य द्विजेन्द्रनाथ शास्त्रिणाम्

अभिभाषणम्

श्रीमन्तः विद्वरेण्याः, पारिषद्याश्च,

तत्रभवद्भिर्भवद्भिरस्या विद्वत्कलापरिषदः सभापतिपदं मह्यं समर्प्य यत्सम्मानं प्रदर्शितं तदर्थं श्रीमद्भ्यः मदीया अनेकशः हार्दिकाः धन्यवादाः। नूनमत्र, भवतां सौजन्यं सौहार्दं स्वजनपक्षपातमेव वा प्रबलं कारणं मन्ये, नतु मयि अनितर साधारणं कमपि विशिष्टं वैदुषीविभवम्। अस्तु यथा तथा वा सम्प्रति भवादृशां विद्वद्वराणामादेशोल्लंघनं कर्तुमक्षमो, कथंचिदंगीकरोम्यासन्दीमिमाम्।

महाभागाः,

महानयं प्रमोदावसरो यदत्र वयं सर्वे गीर्वाणवाणीप्रणयिनः इमां वाग्देवतामाराधयितुं पुण्याश्रमपदे अस्मिन् गुरुकुलमहाविद्यालये दिष्ट्याद्य समवेताः। नेदं तिरोहितं विदुषां यदद्य सर्वेपि भाषातत्व विमर्शकाः संस्कृतभाषामखिलभाषान्तराणां जननीतिपदेन विभूषयन्ति। जगतीतलेऽद्य यावत्योपि भाषा व्यवह्रियाणाः सर्वत्र लब्धप्रचारा विश्वभाषेति व्यपदेशेनांकिताः सन्ति ताः सर्वा अपि गीर्वाणिवाणीत एव लब्धप्रसवाः इति मुक्तकंठेनांगीकुर्वन्ति भावेतिवृत्तविदः। पुरातु सर्वत्र एकैव संस्कृतभाषा आसीत् व्यवहारपदवीमारूढा इति तेषामभ्युपगमः। तदनन्तरं कालक्रमेण ततः प्रभ्रश्यापभ्रश्य गणनातीता भाषाः प्रावर्तन्त। देशकालभेदेन व्यावहारिकभाषायां ते ते भेदाः खलु सुलभोद्भवा एव इति न दुष्करमूहितुं मतिमताम्।

ये तु केचन विप्रतिपद्यन्ते यन्नेयं संस्कृतभाषा आसीत्कदापि लोकानां भाषणादिव्यवहार विषयीभूता, मन्ये भ्रान्ता एव खलु ते। यतः स्वयं भाषेति पदं सुतरां पुष्णातितरामस्या भाषणादिव्यवहारसाधनताम्। भाष्यते, भाषणादिव्यवहारोऽनुष्ठीयते यया सा भाषेति तद् व्युत्पत्तेः। भाषा अथ च भाषणादिव्यवहार विधुरा इति तु नाश्नुते कर्हिचित् सामंजस्यम्। भाषणादिगुणगारम्यैव तु इयं भाषेति परिभाष्यते नान्यथा अतः संस्कृतभाषा भाषणादिव्यवहारपरा नासीत्पुरा इति वचस्तु नूनं साहसजल्पितमेव। ये केचिदिमां मृतभाषेतिपदेन व्यपदिशन्ति तेऽपि वराका निगृहीतव्याः। यन्नाम भाषण व्यवहारवैधुर्येणास्या मृतभाषात्वं, तन्नितरांफल्गु। नेयं भाषा कदापि व्यवहारविधुरा पुरा आसीत्, न चाऽद्यापि तथा वर्तते। यदुच्यते केवलं विद्वज्जनसमाज एव इयं प्रायशो व्यवह्रियते न जनसाधारणेनेति कृत्वाऽस्या मृतभावात्वं, तर्हि तु सर्वा एव भाषा जगतः मृतभाषापदेनांकिताः स्युः, यतस्ताः सर्वा अपि तत्तद्देशवासिभिः कतिपयैरल्पसंख्याकैरेव व्यवह्रियन्ते न समस्तदेशवासिभिरशेषैर्जनैरिति तासामपि मृतभाषात्वं दुर्निवारमेव। अथ मृतानां भाषेति समभिप्रेत्य तथात्वमस्याः प्रतिपाद्यते, तदपि नितरामुपहासास्पदमेव। न वयं मृता येषां भाषेयं परिकल्प्यते। एवं चतुरस्रतया अपास्तास्ते अमृतभाषायां मृतभाषात्वं परिकल्पमाना जल्पाकाः। यां भाषामनुशीलयन्तो जना अमृतत्वं लभन्ते, अमृता भवन्ति तां मृतभाषां प्रवदतां मूर्द्धा कथन्न निपतति?

आर्य मिश्राः?

यदि नाम देववाणी एव निखिलभाषाजननी

तर्हि अस्याः प्रादुर्भावः कुतः, का खलु अस्याः प्रसवभूमिरिति प्रश्नोपि सुतरां सुलभप्रसव एवं तत्रापि किंचिदिव विवेचनीयम् ।

महानुभावाः,

सुविदितमेवैतत् संस्कृतसाहित्यविदुषां भाषातत्त्वविमर्शकानां यत् सृष्ट्यारम्भकाले अखिलभाषामूलभूतानाम् अजादिस्वराणां, कवर्गादिव्यंजनानांचादिमो नादः विश्वगगनमंडले प्रति ध्वनयन् "अग्निमीडे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम् । होतारं रत्नधातमम्,; इति ऋग्वेदीयश्रुतित एव चतसृषु दिक्षु प्रससार सर्वतः प्राक् । अस्यां हि श्रुतौ प्रमुखानां स्वराणां प्रव्यक्त व्यंजनानांचार्थोपदेशः भगवतादि गुरुणा परमेश्वरेण कृतः । इयमेव भगवती श्रुतिरस्ति वस्तुतः सर्ववर्णानां परम्परयाखिलभाषाणांचापि प्रसवित्रीति सुदृढं विमृशामः ।

अग्निमित्यत्र अ, इ, ईडे इत्यत्र दीर्घ ईकार, एकार, पुरोहितम् इत्यत्र उकारः ऋ त्वजमित्यत्र ऋकारस्योपदेशः । तदिदं स्वरोपदेशदिङ्, मात्रम् एवमेव व्यंजनानामुपदेशः । वर्गाणां तृतीयस्याक्षरस्य कोमलत्वं माधुर्यं च सुप्रथितं संगाताचार्यैश्चांगीकृतम् । इदमत्रावधेयम्, वेदानां चतुष्टयत्वं त्रयीत्वं वा विषयादिकमवगाह्य प्रवर्तते न तु वस्तुगत्या । वस्तुतस्तु वेदत्वेन वेद एक एव । तेषां संख्याचतुष्टयत्वं विषयीकृत्य अनु सन्धीयमाने, तेषु प्राथम्यादि तारतम्येन कः प्रथमः कतरो द्वितीयः कतमश्च पुनस्तृतीयः चतुर्थो वेति प्रश्नः समुज्जृम्भते निसर्गत एव । तदेषां चतुर्णां मध्ये कः खलु प्राथम्यमवगाहते इति महान् प्रश्नः । सत्यं, भगवता परमेश्वरेण ऋषीणां हृदयेषु प्रेरितस्य वेदात्मकस्य ज्ञानस्यपरत्र संक्रान्तिस्तु भाषामन्तरा न शक्यसम्भवा, भाषा हि लोकव्यवहारनिर्वहण साधनेषु प्रधानभावं जुषत इति न तिरोहितं विदुषाम् । भाषाम् च पुनः शब्दसंघातजन्या शब्दसंघातश्च वर्णप्रकृतिक, वर्णाश्च अज्झललक्षणा, अज्झलां प्रादुर्भावश्च वेदादृते न कुत्राप्यन्यत्र दृष्टचरः, तस्मात्सत्यस्मिन् व्यतिरेके साक्षात् परम्परया वा यदि देववाण्याः समस्त भाषान्तरजननीत्वं प्रतिपाद्यते भाषातत्त्वविवेचकैः तर्हि तत्र का नामात्युक्तिः ?

महाभागाः,

संस्कृतभाषाया या अध्ययनाध्यापनशैली सा न सुश्लिष्टा अपितु क्लिष्टा इति प्रतिपादनं तु विचारास्पदमेव । नूनम् अन्तेवासिनः संस्कृताध्ययनात् पलायन्ते । छात्राः प्रायशो बिभ्यति व्याकरणकठोकरणात् । टिड्ढाणञ् इति कृत्वा उपहसन्ति चते वैयाकरणान् । अत्र विद्वद्भिरवश्यं कश्चन सरलः पन्थाः व्याकरणपरिज्ञानार्थमाविष्करणीयः । व्याकरणविशेषज्ञबुभूषुणां कृत एव ते ते परिष्कारग्रन्थाः अपरिहार्यत्वेन निवेशनीयाः पाठयप्रणाल्यां न खलु साधारणसंस्कृतपरिज्ञानार्थिनाम् । यतो हि आंग्लभाषाविदः आंग्लभाषां सरलविधया यथा अध्यापयन्ति तथैव संस्कृतावबोधः सुलभः स्यात्तथा प्रयतितव्यम् सुरभारतीभक्तैः । तथा सत्येव आ विद्वत्पामराणां संस्कृताध्ययने अभिरुचिरभिवर्धेत स्वल्पप्रयासेनैव स्वल्पकालेन च संस्कृतज्ञानाधिगमो भवेत्सुकरः । एतदर्थं संस्कृतगद्य ग्रन्थानामुदयः बाहुल्येन स्यात् । समाचारपत्राणां प्रचारः स्यात्प्रचुरः । एवं प्रकारेणैवाद्यांगल भाषा सर्वाधिकतयाभिव्याप्य विश्वं विराजते । यस्मिन्कस्मिन् वापि देशे गते आंगल भाषाविज्ञः स्वकार्यं सरलतया साध्नोति शक्नोति च मनोभावं व्यक्तीकर्तुं यथा आंगलभाषया न तथा अन्यभाषाभाषी । विश्वव्यापिनी संजाता आंगलभाषाऽद्यत्वे, यदि इत्थमेव संस्कृतभाषायाः अपि प्रचारो भवेत् इयमपि सारल्येन विश्वभाषा भवितुं शक्नोति । तर्हि तत्प्रचारार्थमस्माभिः भूयस्तरां प्रयतितव्यमस्ति ।

अन्ते किञ्चित् प्राप्तकालं परम कर्तव्यं निर्दिश्य विरम्यते, तच्चेदं यत् अधुना सर्वेऽपि संस्कृत-

(शेष पृष्ठ १५८ पर)

कुछेक वैवाहिक समस्याएँ

(लेखक—श्री प्रो० आत्मानन्द जी विद्यालङ्कार देहली)

१. ब्रह्मचर्य्याश्रम की मर्यादा का प्रायः लोप हो गया है। वानप्रस्थाश्रम का नाम भी नहीं सुना जाता। सन्यासाश्रम भी अव्यवस्था से चलता है। हमने गृहस्थाश्रम को ज्येष्ठाश्रम और केवल आश्रम बना लिया है। चिरकाल से उसकी समस्याएँ चली आ रही हैं। अंग्रेजी पढ़े लिखे गृहस्थों ने पिछले ३०, ३५ वर्ष में उसमें और पेचीदगियां पैदा करली हैं।

२. प्रकृति की लीला है। ऋतु आने पर, काल आने पर पशु, पक्षी, वृक्ष, वनस्पति, लता, मानव सब में विवाह होता है। हम लोगों ने समाज बना कर उसमें कई नियम निश्चित किये। पर लम्बे काल प्रवाह में हमने विवाह के विषय में पेचीदगियों में पेचीदगियां पैदा करली हैं। आज कल बड़ी भारी समस्या है वर के लोभ की तृप्ति की। वर और उसके माता पिता, प्रेम का नाता न मान कर यौवन में परस्पर आकर्षण का नाता न मान कर, सन्तानोत्पत्ति और गृहस्थाश्रम के धर्म का नाता मुख्यतया न मानकर, प्रधानतया धन का नाता करने को तैयार हैं। शनैः शनैः यह लोभ समूची जाति में, विशेषतया अंग्रेजी पढ़े लिखे नागरिकों में सब प्रान्तों में फैल गया है। यह भूत प्रायः सबके सिर पर सवार है।

३. भारत में कमाने के साधन प्रायः अव्यवस्था में रहते हैं। नव शिक्षित लोग चिरकाल से कमाई के साधन आसानी से नहीं पा रहे। इन्हें हाथ के काम से, हुनर से घृणा और उपेक्षा रही है। प्रचलित किताबी शिक्षा पर व्यय बहुत हो जाता है। परभाषा में यदि इस शिक्षा का जीवन से साक्षात् कोई सम्बन्ध नहीं। अब जब नवशिक्षित, काल आने पर, और यौवन आने पर जीवन का संगी साथी चुनना चाहता है तो उसे लोभ और क्रोध आ घेरते हैं। वह सोचता है क्यों न लड़की वाले के घर से बहुतसा धन-पदार्थ ऐंठा जाय। अब जब सुपात्र और कमाऊ वर दुर्लभ होते जाते हैं इन वरों और उनके माता पिताओं का लोभ दिन प्रति दिन बढ़ता जाता है। जिसके एक लड़की हो उसके चिन्ता, शोक, उन्निद्रता और विवशता का कोई ठिकाना नहीं, जिसके तीन चार लड़कियां हों उसकी दुर्दशा का वर्णन शक्ति से परे है। गृहस्वामी तो दिन में घर से बाहर अपने धन्धे में, मित्र-मण्डली में अपने मन को थोड़ी देर के लिए चिन्ता से मुक्त कर सकता है, पर घर बैठी, लड़कियों वाली, गृहस्वामिनी तो अन्दर ही अन्दर घुलती जाती है। लड़कियों वाली लाखों स्त्रियों की घर घर यही दशा है। लड़की को देख मां घुलती जाती है मां को देख लड़की मुरझाती जाती है। जाति के जिन नये नये फूलों ने गृहस्थ की फुलवाड़ी की शोभा बढ़ानी थी, जिन तरुणियों के रूप, लावण्य, यौवन, हर्ष, चञ्चलता स्फूर्ति, उल्लास, आशा और उत्कण्ठाओं ने समूची जाति में जीवन और रस डालना था वही बालाएँ वही तरुणियां प्रति दिन सूख सूख कर कांटा हुई जाती हैं। अपने घर में बैठी बालाओं की यह दशा कर आज कल के तरुणों का क्या दिल पसीजता है ? यदि नहीं तो समझना चाहिए कि प्रेम का पुतला मानव आज लोभ का पुतला दानव हुआ चाहता है।

४. प्रति वर्ष बसन्त आती है। प्रत्येक मनुष्य के जीवन में भी यौवन रूपी बसन्त आती है। इसमें हरेक, तरुण और तरुणी का मन स्वभावतः जीवन का संगी साथी चुनना चाहता है लोकयात्रा निभाने के लिए, हृदय को खोल कर सामने रखने के लिए, एकान्त में अकेला बैठने के लिए दो तन

मन का एकाकार होने के लिए किस तरुण या तरुणी का हृदय नहीं अकुलाता। जीवन की मद-मय बसन्त में हर कोई रूप के पीछे पागल होता है पर अब तो इस रूप के मुकाबले में कुल, भद्रता, सुशीलता आदि गुण काफी तुच्छ होते जाते हैं। धन-पदार्थ, दहेज, मोटर, विलायत में शिक्षा का खर्च, विवाह के आडम्बर का खर्च, ये समस्याएँ पहले ही कम न थीं, गन्धर्व और अप्सरा पाने की चाह ने इस समस्या को और भी जटिल कर दिया है। भला लड़की के मां बाप, धर्म से, अधर्म से, हर्ष से, शोक से, भय से धन पदार्थ दे भी दें, यह रूप-लावण्य कहां से लावें, लड़की तो जो बन गई सो बन गई। बेचारे लड़की वाले और खास कर लड़की की मां और लड़की दोनो जगत् से, भलमानसों की समाज से, हाथ जोड़ कर पूछते हैं कि क्या इस समस्या का कोई समाधान इस भूमि पर है? तो क्या सभ्यसमाज और भद्र समाज यह चाहता है कि लड़कियां अपने शील और लज्जा के भाव को शिथिल करके लड़कों के आकर्षण और मनोहरण के उपाय बर्तें?

५. तो क्या इस समस्या को बढ़ने दिया जाय? स्त्रियों को अन्दर ही अन्दर घुलने दिया जाय? लड़कियों को सूख कर कांटा होने दिया जाय? उन्हें चुपचाप आहें भरने दिया जाय? यदि वे बिगड़ें तो क्या उन्हें बिगड़ने दिया जाय? समूचे हिन्दू-समाज को रसातल की ओर जाने दिया जाय? जाति चिन्ताग्रस्त और शोक-युक्त हो तो उसे ऐसा होने दिया जाय? समाज की इस दुर्दशा को उसके शत्रुओं को भांपने दिया जाय? देश के आन्तर और बाह्य शत्रुओं के हौंसले को बढ़ने दिया जाय? ना! ना! कौन देश भक्त, जातिभक्त और धर्मभक्त ऐसा चाहेगा? किस सहृदय का हृदय इस दुर्दशा को देख कर न फटेगा? इसलिए बन्धुओ! इस दुर्दशा को दूर करने और सुदशा को लाने का कोई उपाय सोचना ही चाहिए।

६. सबसे पहला उपाय है उपदेश्योपदेशक परम्परा। किसी न किसी को अपने से बड़ा समझना, गुरु समझना, विनयपूर्वक दूसरे की बात को सुनकर मानना। हमारे अन्दर अहंकार ने ऐसा डेरा जमाया है कि हम समझते हैं कि जो मैं समझता हूँ वही ठीक है। यह स्वयं अहंकार कम न था इसके साथ लोभ ने मिल कर कर्ण-दुर्योधन की जोड़ी का रूप धारण कर लिया है। समूची जाति की वर्तमान दुर्दशा को अनुभव कराकर आत्म परीक्षण की प्रवृत्ति जगानी चाहिए। हम किसी को तो गुरु मानें। परमात्मा गुरु हैं गुरुओं के भी गुरु हैं। वेद-शास्त्र गुरु हैं। शाश्वतधर्म ऋतगुरु हैं। माता-पिता आचार्य गुरु हैं। जाति बिरादरी और समाज गुरु हैं। देश के वृद्धजन गुरु हैं। अपना आत्मा गुरु है। अपना विवेक गुरु है। अपने मित्र गुरु हैं। माताएं, बहिनें, वृद्ध देवियां, लड़कियां, पुत्र वधुएं गुरु हैं। समाचार पत्र गुरु हैं। लोकमत गुरु है। परम्परा गुरु हैं। चारों ओर वर्तमान प्रकृति गुरु हैं। युग धर्म गुरु है। इतिहास गुरु है। अपना दुःख पीड़ा, और अनुभव गुरु हैं। पशु-पक्षी-सूर्य चन्द्र तारा आकाश गुरु हैं। यदि हृदय में विनय हो, शिष्य बुद्धि हो, तो हम इन सबसे सीख सकते हैं और ये हमें शिक्षा देने को तैयार हैं। जो इनमें से एक दो को भी शिक्षक, हितोपदेशक और मार्ग-दर्शक मान ले, वह धन्य हो जाय, वह निहाल हो जाय। वह कृतकृत्य हो जाय। वह सफल मनोरथ हो जाए। पर जिस व्यक्ति का (व्यष्टि का) या समष्टि का या समाज का कोई गुरु नहीं। उस निगुरु (निगुरे) के पतन का, दुःख का और पीड़ा का कोई ठिकाना नहीं। इस धन के लोभ और आडम्बर के भूत के सिर पर सवार होने पर हम किसी को गुरु नहीं समझते, किसी की नहीं सुनते। सबके सब मिल कर प्रवाह में बहते जा रहे हैं। किसी दिन सबके सब दुःख सागर में

जा गोते खायेंगे। समूची जाति के हितैषी बड़े सावधान होकर हमें इस महा कष्ट से और भयावनी आपदा से बचावें। स्त्रियों को सोचना चाहिए कि मौजूदा जमाने में अपनी स्वाभाविक नम्रता, विनय और श्रद्धा को खोकर हमारी जाति ने अपने को किस गढ़े में फेंक दिया है? ऋषियों और पूर्व पुरुषों के दिए ऐसे उत्तम गुण को हमने क्यों खो दिया ?

७. दूसरा उपाय है पुरुषार्थ प्रेम और आत्म सम्मान। हर कोई दिल में दृढ़ निश्चय करले कि मैं अपने पुरुषार्थ से कमाए धन से, जगत् में सारे व्यवहार चलाऊंगा। दूसरे के कमाए धन पर मेरा कोई हक नहीं, कोई दावा नहीं। मैं किसी के आसरे क्यों रहूँ? ये भावनाएँ, माता, पिता, आचार्य, घर के बड़े बूढ़े, नेता, संन्यासी, पत्र-सम्पादक, प्रेस, प्लेटफ़ार्म रेडियो, सिनेमा, सबको जनता के हृदय में डालनी चाहिएं। परावलम्बन ने अकर्मण्यता ने, आलस्य ने, हमारे निखट्टूपन ने, और नव्वाबी स्वभावों ने हमारी जड़ें उखाड़दी हैं। दोष समूची जाति के अन्दर घर कर गया है। अमेरिका से करोड़ों रुपयों का अन्न मांगते हमें जरा झिझक नहीं, कोई लज्जा नहीं। एक बार लेकर भी हमारे अन्दर पुरुषार्थ नहीं जागा और आगे भी निःसंकोच हम मदद लेने को तैयार हैं! यूं हमारी देवियां और हम अपने रिश्तेदारों और पड़ौसियों का एक धेले का अहसान लेने को भी तैयार नहीं होते। पर लड़की वाले के घर से धन पदार्थ ऐंठने को आठों पहर तैयार बैठे हैं। यदि हमारे अन्दर पुरुषार्थ और आत्म सम्मान जाग उठे तो हम ऐसे लेने देने को तुच्छ समझकर उसकी जरा भी परवाह न करें।

(८) अगला उपाय है सांसारिक वस्तुओं में तारतम्य जानना। वर-वधू और उनके माता पिता को चाहिए कि ये वरवधू में पहले देखें, दोनों का शरीर हृष्टपुष्ट है, नीरोग है। यौवन खिल रहा है बल वीर्य, पराक्रम अङ्ग २ से फूट रहा है। दोनो स्फूर्तिमान् हैं। दोनो गति शील हैं। दोनों सच्चरित्र हैं, प्रसन्नवदन हैं। पुरुषार्थी हैं कहीं शरणार्थी तो नहीं? संयम, व्यायाम, समय के सदुपयोग, धन्धा दिनचर्या, सत्संगति, पठन पाठन से अपने जीवन को नियमित रखते हैं। प्रकृति के समीप हैं, बहुत कृत्रिम उपायों से अपने को आकर्षक तो नहीं बनाना चाहते। इन्हीं गुणों की, नई पीढ़ी में, स्पर्धा, ईर्ष्या पैदा करनी चाहिए। जाति के सच्चे गुरु यदि जाति के अन्दर वस्तुओं की तारतम्य की, और सारासार की बुद्धि जगा दें, तो जाति उसी ओर चल पड़े और इस लोभ की कठोर यातना से छुटकारा पावे।

(९) अंग्रेज जाति बड़ी बुद्धिमती है। किसी राष्ट्रीय समस्या के आने पर अपने अन्दर से उत्तम और विशेषज्ञ लोगों का कमीशन बैठाकर रोग, रोगहेतु, आरोग्य और आरोग्योपाय के ंग पर गहरी परीक्षा करती है, सत्य के दर्शन-पाती है और रोग को दूर करने में सफल होती है। हमारी राष्ट्रीय सरकार को भी समझ लेना चाहिए कि भारत में लोभ नाम का रोग निश्चित है। राज्य के बल और बुद्धि के द्वारा इस रोग को दूर करना चाहिये। क्या धर्म निरपेक्ष सरकार है इसलिए इस समस्या को न सुलझाया जाय? साम्प्रदायिक धर्म से इस का क्या सम्बन्ध है। गांधी जी तो समाज सुधारक भी थे, पर उनकी शिष्यमण्डली राजनैतिक बातों में बहुत उलझी रहती है। जाति के जीवन का प्रधान अङ्ग सामाजिक है न कि राजनैतिक। पिछले ३० वर्ष में हमने जिस पीढ़ी को तैयार किया है उसके मन और हृदय में भी राजनीति को बड़ा स्थान है, सामाजिक बातों को बहुत कम। 'अति सर्वत्र वर्जयेत्' हमने राजनैतिक चर्चा की अति की, उसका यह साक्षात् परिणाम है। हमें राष्ट्र के जीवन के सभी पक्षों को जाति के सामने, विशेषतया उठती पीढ़ी के सामने रखना चाहिए।

हमारी पार्लियामेंट में अधर संसद् की अपेक्षा उत्तरसंसद् (Upper house) के वृद्धों का तो काम ही मुख्यतया यही होना चाहिए। देखें उसमें किन प्रतिनिधियों के हृदय में इस पीड़ा का अनुभव होता है। हैं तो प्रायः सभी बाल बच्चों वाले।
(१०) एक और उपाय है देश कालानुकूल साहित्य की रचना। सामयिक साहित्य में सामयिक सामाजिक समस्याओं की चर्चा पूरी मात्रा में चाहिए। कथा, उपन्यास, चित्रपट, रेडियो. कविता नाटक, उपदेश, संगीत, मित्रालय, सखीगोष्ठी, उपदेश इतिहास, उपहास, दृष्टान्त, सम्मेलन, वार्षिकोत्सव आदि सब में वर्तमान वैवाहिक समस्याओं की साङ्गोपाङ्ग चर्चा होनी चाहिए। सोवियट रूस ने पिछले ३०, ३५ वर्ष में साम्यवाद के प्रचार में अपने विचार के अनुकूल साहित्य से समूची जनता में अपने भाव भर दिये हैं। जिसकी प्रेरणा में जहां बल है, वह वहीं लोभ के विरुद्ध, दहेज के विरुद्ध, अकर्मण्यता के विरुद्ध, परावलम्बन के विरुद्ध, कुशिक्षा के विरुद्ध विचारों और भावोंको फैला सकता है। गांव गांव की पंचायतें, पण्डित पुरोहित, कथावाचक, समाचारपत्र, कथा लेखक, ट्रेड यूनियन आदि संघ सभी अपने अपने स्थान पर यह काम कर सकते हैं। सुधारक संस्थाएं, आर्यसमाज, ब्रह्मसमाज, अकाली, थियोसोफिस्ट, रामकृष्णमिशन, स्त्री सम्मेलन, न मालूम क्यों मन्द पड़ गये हैं। ये तो ऐसी समस्याओं के सुलझाने के लिये ही बने थे। आज कल बुद्धिमान् संन्यासियों का मान दरिद्र और मध्यमश्रेणी के गृहस्थों में बढ़ता जाता है। वे भी यदि जाति के कष्ट को अनुभव करें तो सैंकड़ों परिवारों में सन्मार्गदर्शन करा सकते हैं और अपने शिष्यों और अनुयायियों को इस पीड़ा से मुक्त करा सकते हैं।

११. इस कष्ट को नारियां सबसे अधिक अनुभव करती हैं। तेजस्विनी और कुलीन नारियाँ यदि अपनी नारी जाति के अन्दर से इस पाप को दूर करने के लिए दृढ़ निश्चय करलें, तो दूसरी नारियां भी जागउठेंगी, अपने लोभ पर पछतावेंगी और प्रवाह में पड़ कर इस दोष को दूर करने में उत्साहित होंगी। स्त्रीजाति के अन्दर बड़ा बल है यदि वह यह अनुभव करले कि मैं तो मूर्तिमती शक्ति हूँ।

१२. सब सुधार इकट्ठे नहीं लाए जा सकते। सब कुरीतियां इकट्ठी, एकदम, दूर नहीं की जा सकतीं। कुरीतियों का समूह तो, चोरमण्डल, डाकूमण्डल, दैत्यमण्डल, असुरमण्डल है। इनमें से एक एक को अलग अलग पकड़ कर पछाड़ना और मारना चाहिए। इसलिए आज कल पहले दहेजासुर और लोभासुर को पकड़ना चाहिए। इस लोभासुर के संहार के लिए सब देवियाँ और सज्जन कटिबद्ध हो जावें। नहीं तो बड़ी भारी विपदा मुंह बाये खड़ी है। भगवान् करे आर्यजाति की चेतना जाग उठे और जल्दी अपना सुधार करले॥

[हम सुयोग्य लेखक महोदय के शुभ विचारों का हार्दिक समर्थन करते हुए इस विषय में प्रबल आन्दोलन की प्रेरणा करते हैं:— सम्पादक]

अभिभाषणम्

(पृष्ठ १५४ का शेष)

विद्यालया महाविद्यालयाश्च प्रतिनिबद्धाः स्युः एकसूत्रे।संघे शक्ति रिति प्राचां प्रवादं चरितार्थयन्तःपरस्परम् अंगांगिभावेन सम्भावयन्तः परिपोषयन्तश्च सुदृढांगा बलवन्तः प्रभाववन्तश्च भविष्यन्ति। नालन्दा तक्षशिलादिच्छायाच्छटामनुसरन्तः पुनरप्युन्नतेः पराकाष्ठामासादयिष्यन्ति। शासनवज्जन साधारणेनापि निराद्रियमाणानां जन हततेजस्कानां सुरभारतीकेन्द्राणामुद्धरणस्य अयमेव पुनीतः पन्था नान्यः कश्चनेति दिक्।

आदर्श शिक्षा प्रणाली

(भारतीय उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश श्री विजनकुमार मुखोपाध्याय एम० ए० एल् एल् डी० का गुरुकुल कांगड़ी विश्व विद्यालय में १ वैशाख २००९ को दिये दीक्षांत भाषण से)

(गतांक से आगे)

इस सम्बन्ध में यह स्पष्ट कर देना आवश्यक होगा कि यह भावना आर्य समाज में ही न थी प्रत्युत उससे बाहर देश के अन्य भागों विशेषतः बंगाल, में भी थी। वहां भी बीसवीं सदी के आरम्भ में राष्ट्रिय भावना की लहर उठी, जिसने अपने आप को शिक्षा सम्बन्धी विविध आन्दोलनों के रूप में प्रकट किया और जिसका लक्ष्य प्राचीन सभ्यता को पुनरुज्जीवित करना था। जिन दिनों गुरुकुल की स्थापना हुई, लगभग उसी समय श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने शान्ति निकेतन में ब्रह्मचर्य आश्रम की स्थापना की, जो बाद में विश्व भारती के रूप में एक विशाल संस्था बन गई। इसका भी उद्देश्य लगभग वही था। इन्हीं योजनाओं के नमूने पर बंगाल के खुलना मण्डलान्तर्गत दौलत-पुर नगर में 'हिन्दू एकडमी' नाम से संस्था स्थापित हुई। बंग भंग के आन्दोलन के परिणाम स्वरूप १९०५ ईसवी में श्री अरविन्द घोष के आचार्यत्व में कलकत्ता में नेशनल कालिज की स्थापना हुई। १९११ में पाश्चात्य शिक्षा-दीक्षा में पले हुए श्री रास बिहारी घोष सदृश एक प्रतिभा सम्पन्न व्यक्ति ने हिन्दु विश्व विद्यालय की स्थापना का समर्थन करते हुए अपने देशवासियों की भावनाओं को बड़े प्रभावपूर्ण शब्दों में व्यक्त करते हुए कहा था—'हमारी शिक्षा का मूल आधार राष्ट्रिय भावनाओं तथा परम्पराओं की गहराई तक पहुँचा हुआ होना चाहिये।'......हम एक प्राचीन सभ्यता के उत्तराधिकारी हैं। इस लिये हमारी शिक्षा का मुख्य कार्य उन आदर्शों के क्रमिक तथा अनवरत विकास को प्रोत्साहित करना उचित है, जिन्होंने हमारी संस्कृति और तज्जन्य विविध प्रणालियों को एक निश्चित रूप दिया है।' यही विचार मद्रास में वार्षिक शिक्षा सम्मेलन के अध्यक्षपद से दिये गये भाषण में श्रीयुत एस. श्री निवास आयंगर द्वारा व्यक्त किये गए थे। उन्होंने स्पष्ट शब्दों में घोषणा की थी कि शिक्षित वर्ग की यह निश्चित धारणा है कि पाश्चात्य शिक्षा प्रणाली निष्फल सिद्ध हुई है और इसका कारण हमारी शिक्षानीति का उत्तरदायित्व वहन करने वाले संचालकों की भारतीय मनोवृत्ति, इतिहास, साहित्य तथा धर्म के प्रति उपेक्षा वृत्ति की है। इसलिये यदि उन्हीं दिनों कलकत्ता विश्व विद्यालय के वाइस चांसलर सर आशुतोष मुखर्जी ने द्वितीय ओरियन्टल कांफ्रेंस में भाषण करते हुए अपने श्रोताओं के सम्मुख गर्व के साथ निम्न शब्द कहे थे तो वह उचित ही था। उन्होंने कहा था कि हमारा विश्व विद्यालय ही भारत में ऐसी सर्वप्रथम संस्था है जिसने प्राच्य विषयों के अध्ययन के गौरव को स्वीकार किया है और विद्यार्थियों को भारतीय लिपिविद्या, ललित कला, मूर्ति विद्या, वास्तु कला, भारतीय आर्थिक व सामाजिक जीवन, अंकगणित शास्त्र, भारतीय जाति उद्‌गम प्रभृति विषयों का अध्ययन करने का अवसर प्रदान किया है।

इन सब दृष्टान्तों से स्पष्ट है कि किस प्रकार शिक्षा सम्बन्धी विचारों में परिवर्तन हो रहे थे और किस प्रकार पाश्चात्य शिक्षा दीक्षित विद्वान्

भी उस प्राचीन भारतीय ज्ञाननिधि की गहराई में जाने के लिए स्वयं लालायित हो रहे थे, जिस का कुछ वर्ष पूर्व मैकाले ने तिरस्कार पूर्वक निराकरण कर दिया था। वस्तुतः, वे सभी महापुरुष जिन्होंने गत अर्ध शताब्दी में हमारे विचारों तथा आदर्शों पर प्रभाव डाला है हमारे प्राचीन दर्शन तथा साहित्य से प्रेरणा पाते रहे हैं। ऋषि दयानन्द ने अपने देशवासियों को वेदों की ओर लौटने को कहा। महात्मा मुन्शीराम जी ने अपने गुरुकुल तथा श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने अपने शांति निकेतन द्वारा हमें प्राचीन आश्रमों की संस्कृति की ओर उन्मुख किया। श्री तिलक, श्री अरविन्द घोष तथा महात्मा गांधी ने अपने २ राजनैतिक क्षेत्र में भगवद्गीता से प्रेरणायें प्राप्त की हैं। स्वामी विवेकानन्द ने, बिना किसी वर्ण या जाति का भेदभाव किये, अपने देशवासियों के मन को वेदांत के महान् सत्य की ओर आकर्षित किया है। इसी प्रकार राम कृष्ण परमहंस ने सब धर्मों के समन्वय का उपदेश दिया, जो हमारे श्रुति प्रतिपादित धर्म का सार है।

भद्र पुरुषो !

अब हमने स्वाधीनता प्राप्त कर ली है और हम भावी योजनाएं निर्धारित करने में स्वतन्त्र हैं। शिक्षाविज्ञ अपना कार्य करते रहें परन्तु हम सर्व-साधारण जनों को भी अपने शिक्षा के आदर्श के विषय में विचार करना चाहिए। हम अपनी अतीत काल की सफलताओं तथा असफलताओं से पूर्णतया परिचित हैं। इसे कहने की आवश्यकता नहीं कि हमें अपनी भूलों को दुहराना नहीं चाहिये और जो कुछ हमने उपलब्ध कर लिया है उसी तक सीमित रहना भी उचित नहीं। आज से कुछ वर्ष पूर्व श्री अवनीन्द्रनाथ ठाकुर ने जो चेतावनी दी थी, उसे आज स्वाधीनता के युग में भी हमें भूलना नहीं चाहिये। उन्होंने कहा था कि किसी राष्ट्र को अन्य देश के आदर्श के अनुरूप—चाहे वह कितना ही सम्पन्न व उन्नत क्यों न हो—अपने इतिहास के निर्माण का निरर्थक प्रयत्न नहीं करना चाहिए।' यह ठीक है कि हमें समय के साथ साथ चलते हुए वर्तमान जगत् की प्रगतिशील आवश्यकताओं के अनुकूल अपने आप को ढालना चाहिये। अवस्थानुसार अपने आप को ढालने तथा आत्मसात् करने की शक्ति के कारण ही हमारी संस्कृति ने अतीत काल में विलक्षण शक्ति तथा गौरव प्राप्त किया और जब कुछ ऐतिहासिक एवं राजनैतिक कारणों से वह आत्मसात् करने की शक्ति क्षीण होगई तो हमारी वास्तविक उन्नति भी रुक गई। वर्तमान वैज्ञानिक युग के आविष्कारों ने देश तथा काल की दूरी को समाप्त कर दिया है और हम विश्व की समस्त सांस्कृतिक प्रगतियों के निकट सम्पर्क में आगये हैं। हमें उनकी विशेषताओं को ग्रहण करना चाहिये। परन्तु जिस संस्कृति का हम निर्माण करें वह हमारा आंतरिक भाग हो तथा हमारी सभ्यता के आधारभूत तत्वों में गहराई तक प्रविष्ट और देश की प्रतिभा और आत्मा के अनुरूप हो। इसलिए शिक्षा में इस प्रकार के समन्वय की आवश्यकता है जो वर्तमान् जगत् के हितकर तथा उपयोगी तत्वों का आत्मसात् कर सके, जिस में नवीन और प्राचीन तथा सांस्कृतिक एवं आर्थिक दोनों पहलुओं का सुन्दर संमिश्रण हो सके। इस गुरुकुल के संस्थापक महात्मा मुन्शीराम का भी यही उद्देश्य था। आज भी वर्तमान समाज की परिवर्तित अवस्थाओं के अनुसार उचित संगतिकरण करते हुए उन आदर्शों पर दृढ़ रहना अत्यन्त हितकर है।

गुरुकुल शिक्षा पद्धति की मुख्य विशेषता छात्रों के बालकों के चरित्र निर्माण करने की है। निःसन्देह शिक्षा का प्रधान उद्देश्य चरित्र गठन है और उस उद्देश्य की पूर्ति के लिए केवल बौद्धिक शिक्षा अपर्याप्त है। हर्बर्ट स्पेन्सर का

यह कथन उचित है कि हम मनुष्य को जो लाभ पहुंचाना चाहते हैं, वह उसे शिक्षा के माध्यम से पहुँचाना चाहिये। क्योंकि शिक्षा बौद्धिक होने की अपेक्षा भावना प्रधान अधिक है।

जीवन का वास्तविक लाभ तो तब मिलता है जब शिक्षा के प्रताप से हम में ऐसी मानसिक अवस्था उत्पन्न हो जाती है जिस से हमारा आचार व्यवहार स्वाभाविक, स्वयंफूर्त और सहज हो जाता है। इस दृष्टि से गुरुकुल की शिक्षाविधि निःसन्देह अत्युत्तम है। नागरिक जीवन के दूषित प्रभावों से दूर रहना, उदात्त विचार पवित्र चरित्र वाले व्यक्तियों का सम्पर्क, श्रद्धा, समादर, स्नेह और आत्मप्रेम द्वारा मानव की नैतिक शक्तियों का सुदृढ़ करना, मन और चरित्र का ऊर्ध्वीकरण आदि शुभंकरी प्रवृत्तियों से ही सुसाध्य होता है।

आजकल आश्रमिक जीवन पद्धति के द्वारा शिक्षण की व्यवस्था को सर्वोत्तम माना जा रहा है। परन्तु आधुनिक रग-ढंग पर जो आश्रमिक पद्धति (छात्रावास पद्धति) चल रही है वह बहुत व्ययसाध्य बन गई है। भारत जैसे गरीब देश में उस पद्धति का लाभ बहुत कम लोग ही उठा सकते हैं। ऐसी दशा में गुरुकुल की सरल और सादी जीवन प्रणाली को स्वीकार करके उसे विशाल पैमाने पर बढ़ाया जा सकता है। हमारी सरकार इस दिशा में क्या किया चाहती है यह मैं नहीं जानता। मुझे यही समुचित प्रतीत होता है कि हमारी राष्ट्रिय सरकार गुरुकुल को भरपूर सहायता प्रदान करे। यह आवश्यक है कि इसे अपने राष्ट्रिय जीवन की एक बहुमूल्य संपदा समझा जाय। बिना किसी बाह्य शासन और आदेश के इस को अपने ही ढंग पर अपना स्वतन्त्र विकास साधने की छूट दी जाय। यह भी उचित है कि संस्था के संचालक अपने पाठ्यक्रम पर पुनर्विचार करके यदि उचित समझें तो आधुनिक युग के क्रियात्मक विषयों का समावेश करें जो आर्थिक दृष्टि से उपयोगी हों। मैं नहीं कह सकता कि इस प्रकार की शिक्षणविधि को माध्यमिक विभाग की कक्षाओं तक, बड़े पैमाने पर चालू करना व्यावहारिक होगा या नहीं। परन्तु मेरा विचार है कि राज्य की सहायता से इस प्रकार की आदर्श शिक्षा संस्थाएं, सर्वांश में नहीं तो कुछ अंशों में, गुरुकुल शिक्षा विधि के मुख्य तत्त्वों को स्वीकार कर के अवश्य स्थापित होनी चाहिएं।

मेरा विश्वास है कि आधारभूत बातों पर सहमत हो जाने पर इस प्रकार की शिक्षा-विधि को परिचालित करना कुछ कठिन नहीं होगा। गुरुकुल में शिक्षा पाए हुए ऐसे युवक अच्छी मात्रा में मिल सकते हैं जिनकी सेवाओं के द्वारा देश में इस प्रकार के विद्यालय आयोजित किए जा सकें।

आज इस विद्या निकेतन से दीक्षा प्राप्त करने वाले छात्रों के प्रति दो-चार शब्द कहना चाहता हूँ। मित्रो! मैं आप को स्मरण कराना चाहता हूँ कि आप उदात्त और महत्त्वपूर्ण परम्पराओं के उत्तराधिकारी हैं। आपके समक्ष उन निःस्वार्थ, कर्तव्यपरायण, पवित्र चेता, चरित्रों की परम्परा विद्यमान है जिनके द्वारा आपको समस्त जीवन में प्राण, प्रेरणा और पथ-प्रदर्शकता प्राप्त होती रहेगी।

आर्य संस्कृति के उदात्ततम आदर्शों की छाया में आप ने इस शिक्षा निकेतन में जो शिक्षा प्राप्त की है उस से सुसज्जित होकर आप को संसार में आगे बढ़ना है और उस शिक्षा के प्रताप से आपने उन सब वस्तुओं को दूर भगाना है जिनके द्वारा मानव की आत्मा दूषित और अपवित्र बनती है। आपने अपनी शिक्षा पुरातन ऋषियों

(शेष पृष्ठ १७६ पर)

सिद्धान्त विमर्श—

मायावादियों की माया

(लेखक—श्री शिवस्वामी जी सरस्वती संभल (मुरादाबाद)

(१)

महर्षि श्री १०८ स्वामी दयानन्द सरस्वती जी ने मायावादियों को 'नवीन वेदान्ती' कह कर पुकारा है। इस पर कतिपय पौराणिकों ने श्री महर्षि जी पर यह दोषारोपण किया है कि यह नवीन वेदान्ती नाम महर्षि जी का स्वनिर्मित है। परन्तु ऐसी बात नहीं है। महर्षि जी के जन्म से शताब्दियों पूर्व मायावादियों को नवीन वेदान्ती कह कर पुकारा गया है। देखिये—

१—यद्यपि केचिन्नवीना वेदान्तिब्रुवा आहुः- 'एकस्यैव आत्मनः कार्ये कारणोपाधिषु प्रतिबिम्बानि जीवेश्वराः। प्रतिबिम्बानां वाऽन्योन्यं भेदाज्जन्माद्याखिलव्यवहारोपपत्तिः तदप्यसत्।

विज्ञान भिक्षुः।

२—अनयैव च रीत्या नवीनानामपिप्रच्छन्न बौद्धानां मायावादिनाम् सांख्यसूत्र—१।१।२२ पर विज्ञानभिक्षुः पृ० ३०॥

३—यत्तु वेदान्ति ब्रुवाणामाधुनिकस्य मायावादस्याऽत्र लिंगं दृश्यते तत्तेषामपि विज्ञानवाद्येकदेशितया युक्तमेव । "मायावादमसच्छास्त्र प्रच्छन्नं बौद्धमेव च।

मयैव कथितं देवि! कलौ ब्राह्मण रूपिणा।" इत्यादि पद्म पुराणस्य शिववाक्य परम्पराभ्यः। नतुतद् वेदान्तमतम्। वेदान्तंतुमहाशास्त्रं मायावाद मवैदिकम्॥

अनयैवरीत्या नवीनानामपि प्रच्छन्नबौद्धानां मायावादिनाम्। विज्ञानभिक्षुः

४—विजातीयाद् द्वैतापत्तिश्च। सां०सू० ४।२ पर भी—"आधुनिका वेदान्त ब्रुवाः।" पृ० १२६।

पद्मपुराण के असली श्लोक निम्न लिखित हैं—

१—शृणुदेवि प्रवक्ष्यामि, तामसानियथा क्रमम्।
येषां श्रवण मात्रेण, पातित्यं ज्ञानिनामपि॥
प्रथमं हि मयैवोक्तं, शैवपाशुपतादिकम्।
मच्छक्त्यावेशितैर्विप्रैः, प्रोक्तानि तु ततः परम्॥
कणादेन तु सम्प्रोक्तं, शास्त्रं वैशेषिकं महत्।
गौतमेन तथा न्यायं, सांख्यंतु कपिलेनवै॥
द्विजन्मनाजैमिनिना, पूर्वं वेदमपार्थतः।
निरीश्वरेणवादेन, कृतं शास्त्रं महत्तमम्॥
मायावादमसच्छास्त्रं, प्रच्छन्न बौद्धमेवच।
मयैवकथित देवि! कलौ ब्राह्मणरूपिणा॥
अपार्थं श्रुति। वाक्यानां, दर्शयल्लोकगर्हितम्॥

पद्मपुराण, उत्तरखंड, अध्याय २३६.
श्लोक–६८ से ७५ तक। पृ० २३७॥

२—मणिमत् पूर्वका दुष्टाः,दैत्या आसन् कलौयुगे।
ते कुशास्त्रं प्रकुर्वन्तो, हरिवायुविरोधिनः।
तेषांमध्ये शंकरस्तु, पूर्वं यो मणिमान् खलः।
सौगन्धिक वने दिव्ये, भीमसेनहतोऽसुरः॥
यः क्रोध तन्त्रको दुष्टो, मिथ्याशास्त्रं वदन्पुनः।
कृष्णे भीमेच विद्वेषं, कुर्वन् भूमावजायत॥
कालडीग्रामके रुद्र-वराज्जगविमोहयन्।
बौद्धशास्त्रपरोविप्रो, कश्चिद् वापर शिष्यकः॥
ससंकरस्य सन्यस्य, तस्मात् संकर रूपिणः।
वेदान्तमतमित्येतद्, दुष्टशास्त्र चकारह॥
स्कन्दपुराण उत्तरखंड॥

हम इन उपर्युक्त श्लोकों की मीमांसा नहीं करना चाहते।

कारण कि विधर्मी विद्वेषीगण इस प्रकार

की पौराणिक तू तू मैं मैं से सदैव अनुचित लाभ उठाना चाहते हैं। परन्तु वे पण्डितगण, जो सदैव श्री महर्षि दयानंदजी और आर्यसमाज को पुराण निन्दक, वेद निन्दक, ऋषि निन्दक और खण्डन करने वाले कहा करते हैं, इन श्लोकों पर अवश्य ही ध्यान दें। एक प्रकार से पुराणों ने, पौराणिकों के विश्वासानुसार व्यास जी ने मायावादियों के प्रति जो कुछ सम्मति निर्धारित की है, वह बहुत कुछ सोच समझ कर ही की है। वास्तव में मायावादियों के सारे ही सिद्धांत श्रुति, स्मृति और युक्ति विरुद्ध हैं। हमारी इस कठोर प्रतिज्ञा का प्रमाण पाठकों को इस विस्तृत लेख से मिल जायगा।

१—मायावादियों का ब्रह्म—

ब्रह्म के विषय में विशेष विवेचना शारीरिक भाष्य में की गई है। उस विवेचना को जब ध्यान पूर्वक देखा जाय तो इतने परस्पर विरोध पाये जाते हैं कि जिज्ञासुगण यह निश्चय नहीं कर पाते कि सत्य सिद्धान्त क्या है। एक स्थान पर है कि

"निष्प्रदेशस्यापि ब्रह्मणः प्रदेश विशेष कल्पना भागिनी।" वे०सू० १।१।२४ पृ० ३००पर शंकरजी।

भा०—अवयव रहित ब्रह्म के अवयव विशेष की कल्पना करना ठीक नहीं।

इस उपर्युक्त कथन पर भामती व्याख्या—

'निष्प्रदेशस्य निरवयवस्याऽविशेषेऽपि दिवः परस्ताद् देदीप्यमान ब्रह्मावयव कल्पना भागिनी युक्तानतु, इति अन्वयः। पृ० ३५० ॥

"श्रूयमानत्वादव निरवयवत्वस्याऽप्यभ्युपगम्य मानत्वात् ॥" ३।१।१७ पर शंकर पृ० १०५६

प्रश्न—कथं पुनरदृश्यत्वादि गुणकस्य भूतयोनेर्विग्रहवद्रूपं सम्भवति ? अर्थात्—अदृश्यादि गुण वाले ब्रह्म का रूपवान् होना कैसे सम्भव है ?

उत्तर—रूपोपन्यासाच्च । १।२।२३ पर शंकर जी—

"सर्वात्म विवक्षयेदमुच्यते न तु विग्रहवत्त्व विवक्षया इदमुच्यते इति अदोषः।" अर्थात्—अदृश्यादि—निराकार गुण वाले ब्रह्म का रूप कैसा ? यह जो शंका की, उसका यह उत्तर है कि—सर्व व्यापक होने से रूपकालङ्कार से कहा गया न कि साकार होने से ॥ पृ० ५०१ ॥

ब्रह्मकार्य कारण से भिन्न है—

(१)—अन्यत्र धर्मादन्यत्राधर्माद् अन्यत्रास्मात् कृताकृतात्' १।२।११ पर पृ० ४३६।

अर्थात्—धर्म से अन्य अधर्म से अन्य, कार्य और कारण से अन्य है।

(२)—"नैतद् ब्रह्मपूर्वमनपरम्० ।" बृ०-उ०-२।५ १९।३।२।१४ पृ० १७३७।

अर्थात्—वह ब्रह्म कारण तथा कार्य नहीं है।

(३)—पूर्वस्मिंश्चब्राह्मणे कार्यकारण व्यतिरिक्तस्यात्मनः सद्भावः कथ्यते । ३।३।३६। पर पृ० २०३५ ॥

(४) —कार्यव्यतिरेकेण सत्ताश्रवणात् । ४।१।२७ पर शंकर। पृ० १०७५।

अर्थात्—ब्रह्म की सत्ता कार्य से पृथक् कही गई है।

(५)—अन्यत्र धर्मादन्यत्राधमात्। १।३।२५ पर पृ० ६५४।

(६)—अन्यदेवत्तद् विदितादथोऽविदितादधि० केन उ० ।१।३। पर रत्न प्रभा व्याख्या पृ० १७८ ॥

ईश्वर की प्रतिमा नहीं—

(७)—नतस्यप्रतिमा अस्ति यस्यनाममहद्यशः। श्वेताश्वर उ० ४।१९ ॥ इतिचपरस्यैव ब्रह्मणो यशोनामत्वप्रसिद्धेः। अर्थात्—उस ईश्वर की प्रतिमा नहीं है जिसका—जिस ईश्वर का नाम महद्—दिशा आदि से अनवच्छिन्न सर्वत्र परिपूर्ण है। ४।३।१८ पर।

(८) "अकायः—लिंग शरीर शून्यः"। शंकर।

अर्थात्—इन दो पदों से स्थूलदेह रहित स्थिति कही है।

"सपर्यगात्०" पर रत्नप्रभा व्याख्या—

"स एव आत्मा परिसर्वं अगात्—व्याप्तः, शुक्रो-दीप्तिमान् अकायोलिंगशून्यः, अव्रणो-ऽक्षतः. अस्नाविरः-शिराविधुरः, अनश्वर इतिवा। आभ्यां पदाभ्यां स्थूलदेह शून्यत्वमुक्तम्, शुद्धो-रागादिमलशून्यः अपापविद्धः— पुण्यपापाभ्यां असंस्पृष्टः, इत्यर्थः ॥ स्वामी गोविन्दानन्द जी। पृ० १८८ ॥

ये उपर्युक्त प्रमाण शारीरक भाष्य से दिग्दर्शनमात्र हमने उद्धृत किये हैं। ब्रह्म कार्य कारण से भिन्न है, निराकार है और निरवयव है यह सिद्धान्त पग पग पर श्री शंकर जी ने अपने भाष्य में दिखलाया है। परन्तु इस सिद्धान्त के विरुद्ध पग पग पर यह सारा प्रपञ्च (जगत्) ब्रह्म का कार्य भी बतलाया है।

यथा-१. सर्वमिदं विकारजातं ब्रह्मैव। पृ० ४०५।

अर्थात्—यह सारा प्रपंच ब्रह्म ही है।

२-एवं क्रमेण सूक्ष्मं सूक्ष्मतरं चाऽनन्तरमनन्तरतरं कारणमपीत्य सर्वं कार्यजातं परमकारणं परमसूक्ष्मं च ब्रह्माप्येति वेदितव्यम्।

अर्थात्—इसी प्रकार क्रम से अनंतर, अनंतरतर, सूक्ष्म, सूक्ष्मतर कारण में लीन होकर सब कार्य परमकारण-परमसूक्ष्म ब्रह्म में लीन होता है ॥ २।३।१८। पृ० १४०३-४। पर शंकर जी।

३-नान्यत् किंचन मिषत्। ऐ० १।१।१ पृ० २३२।

अर्थात्—उससे भिन्न कोई दूसरी स्वतन्त्र वस्तु नहीं थी।

४—इदं सर्वं यदयमात्मा। बृ० उ० ।४।४।६। पृ० ८८३।

५—प्रपञ्चस्यैक प्रसवत्वादेक प्रलयत्वाच्च। १।४।२२ पर पृ० ८८१।

अर्थात्—उत्पत्ति और प्रलयस्थान एक ही (ब्रह्म) है।

६—ब्रह्मादि स्तम्बपर्यन्तस्य समस्तस्यैव जगतो भगवद् व्यूहत्वावगमात्। २।२।४४ पर शंकर जी।

इन उपर्युक्त स्थलों पर शंकर जी इस जड़ जगत् का कारण ब्रह्म को ही बतलाते हैं !! भला कार्यकारण से रहित ब्रह्म जड़ जगत् में परिणत कैसे हो गया? इस ही को मायाजाल कहते हैं।

ब्रह्म उपादान कारण है—

१-सर्वज्ञः सर्वेश्वरो जगतः उत्पत्तिकारणं मृत्सुवर्णादयइव घट रुचकादीनाम् २।२।१ पर शंकर। पृ० ६२२।

अर्थात्-सर्वज्ञ और सर्वेश्वर ब्रह्म जगत् का कारण इस ह प्रकार का है

जैसे मट्टी घड़े की और सुवर्ण आभूषण का।

२—स्थित्यर्थम् अहमेव उपादानतया कार्याभेदात् जनिष्यामि इत्याह ॥ रत्नप्रभा पृ० २३२।

अर्थात्—स्थिति करने के लिये मैं ही उपादान रूप से कार्य से अभिन्न होकर उत्पन्न होऊँ।

३—घट रुचकादीनां मृत्सुवर्णादिवत् प्रकृतित्वे कुलालसुवर्णकारादिवत्। १।४।२३ पृ० ६०१। शंकर।

अर्थात्—जैसे घर रुचकादिका उपादान कारण मृत्तिका और सुवर्ण है, वैसे ही ब्रह्म जगत् का उपादान कारण है। जिस प्रकार प्रकृति-मृत्तिका और सुवर्ण होनेपर कुम्हार और स्वर्णकार बनाते हैं।

४—नच यथा ब्रह्मण आत्मैकत्वदर्शनं मोक्षसाधनमेवं जगदाकार परिणामित्व दर्शनमपि स्वतन्त्रमेव कस्मैचित् फलायाभिप्रेयते प्रमाणाभावात्। कूटस्थ ब्रह्मात्मत्वविज्ञानादेवहिफलंदर्शयति शास्त्रम्।

अर्थात्—जैसे ब्रह्म आत्मा से अभिन्न है, यह ज्ञान मोक्ष का साधन है; वैसे ब्रह्म जगत् रूप

से परिणत होता है. यह ज्ञान स्वतन्त्र ही किसी फल के लिये अभिप्रेत नहीं है, क्योंकि इसमें प्रमाण नहीं है। कूटस्थ ब्रह्म आत्मा है, इस का ही फल शास्त्र दर्शाता है—इसी ज्ञान से मोक्ष है।
पृ० १०१६ ॥

परस्पर विरोध—

१. कृपणधीः परिणाममुदीक्षते क्षपित कल्मष-धीस्तु विवर्ततताम्। इति २।१।२८ पर पृ० १०२५।

रत्नप्रभाव्याख्या—

भा०—जिसकी चित्त-शुद्धि नहीं हुई है वह इस जगत् को ब्रह्म के परिणाम रूप से देखता है, जिसके चित्त से कालुष्य हट गया है, वह इस जगत् को ब्रह्म का विवर्त देखता है। १४ पृ० १०५५

पाठकगण ! विचारिये इस मायाजालको। कहाँ तो यह लिखना कि ब्रह्म जगत् का उपादान कारण इस ही प्रकार से है जैसे मृत्तिका घट की और सुवर्ण आभूषण का। क्या कोई विज्ञपुरुष यह कह सकता है कि घट मृत्तिका का विवर्त है ? कचक-गहना सोने का विवर्त है ? मायाजाल ही जो ठहरा !!!

श्रुति के मत्थे विरोध—

वे० सू० २।१।१७ पर शंकर जी लिखते हैं—

"शब्दाश्चोभयमपि ब्रह्मणः प्रतिपादयति कृत्स्नप्रसक्ति निरवयवत्वं ।" च पृ० १०७८ ॥

अर्थात्-श्रुति समस्त रूप में ब्रह्म का परिणाम और निरवयवत्व दोनों का प्रतिपादन करती है।
पृ० १०७८।

भला यह कैसे हो सकता है कि कूटस्थ ब्रह्म परिणामी हो जाय ? कौन ऐसा विद्वान् है जो परिणाम-कार्य कारण भाव को विवर्तमान सके ?

श्री शंकर जी स्वयं लिखते हैं—१-"नहि यत् परिणामितदेव कूटस्थं परिणामित्वं नित्यत्वंच पुनर्व्याहन्यते—नहियत् परिणामितदेव कूटस्थं नित्यमपिस्यादिति कस्यापि अनुभव गोचरम्।"

अर्थात्-कूटस्थत्व और परिणामित्व ये दोनों विरोधी धर्म एक में नहीं रह सकते।

२-नह्येकस्य ब्रह्मणः परिणामधर्मित्वं तद्रहितत्वं च शक्यं प्रतिपत्तुम्। नहि कूटस्थब्रह्मणः स्थितिगतिवदनेकधर्माश्रयत्वं सम्भवति। कूटस्थं च नित्यब्रह्म सर्व विक्रियाप्रतिषेधादित्यवोचाम।
२।१।१४ पर शंकर। पृ० १०१८-१६ ॥

अर्थात्-कूटस्थ ब्रह्म स्थिति और गति के समान अनेक धर्मों का आश्रय हो, यह नहीं हो सकता, ब्रह्म कूटस्थ और नित्य है, क्योंकि उसमें सब विकारों का प्रतिषेध है, ऐसा हमने कहा है।
पृ० १०१८-१६।

यदि सारा ही ब्रह्म, जैसा कि श्री शंकर जी कहते हैं, परिणत हो गया तो ब्रह्म का ही अभाव मानना पड़ेगा। यदि कुछ भाग परिणत हुआ तो ब्रह्म की निरवयवता और कूटस्थता जाती है। परिणाम में क्या होता है, सो भी सुनिये—

"पूर्वरूपपरित्यागे सति नानाकार प्रतिभासः परिणामः ॥ रत्नप्रभा— पृ० १६५।

अर्थात्-पूर्वरूप का त्याग होने पर नाना प्रकार से दिखाई देना परिणाम है। कहिये ! ऐसी अवस्था में तो मायावादियों के ब्रह्म का ही अभाव हो जाता है। मायावादियों के मत में अंशी ब्रह्म है, जीव और माया उसका अंश है। जीव और माया चल हैं। तो अंशी भी चल होगा न कि कूटस्थ। यथा—

"यस्मिन्नात्मप्रदेशेऽदृष्टोत्पत्तिः सः किं चलः स्थिरोवा ? नाद्यः। अचले अंशिन्यंशस्य चलन विभागयोरसम्भवात्। २।३।५३ पर रत्नप्रभा—
पृ० १५३६ ॥

अर्थात्—आत्मप्रदेश में अदृष्ट उत्पन्न होता है, वह चल है वा अचल ? प्रथमपक्ष चल होना नहीं बन सकता, क्योंकि अंशी के अचल होने पर अंश के चलन और विभाग का संभव नहीं। शेष फिर ॥ शिव स्वामी सरस्वती ॥

मतमतान्तर विमर्श

श्वे. तेरापन्थ की दया-दान विषयक
भीषण मान्यताएं

(लेखक—श्री बच्छराज जी सिंघी सुजानगढ़)

विचारस्वातंत्र्य के इस युग में किसी के धार्मिक विचारों पर ठेस पहुँचाना अनुचित समझा जाता है। सबको अपनी श्रद्धा और विश्वास के अनुसार धर्म की आराधना करने का अधिकार है। परन्तु इसका यह अर्थ कदापि नहीं है कि धर्म का नाम लेकर कोई व्यक्ति या समूह जी चाहे जैसा मानवसमाज और राष्ट्र के हित को हानि पहुंचाने वाला सिद्धान्त बनाकर उसका मनमाना प्रचार करे। धर्म का उद्देश्य संसार में शांति और आध्यात्मिक गुणों का विकास करना है। इसके लिये व्यक्ति अपनी इच्छानुसार वैसे ही मार्ग का अवलम्बन कर सकता है जिसके द्वारा व्यष्टि या समष्टि की शांति बनी रहे और आध्यात्मिकता का विकास हो। परन्तु यदि कोई व्यक्ति या समूह, धर्म का नाम लेकर ऐसी बातों का प्रचार करे कि जिनसे विकास के स्थान पर ह्रास हो, मानवता का पतन हो, नैतिकता का उन्मूलन हो और राष्ट्र की हानि हो तो उस संगठन के प्रचार का विरोध करना मानवता के प्रत्येक उपासक का कर्त्तव्य हो जाता है और राष्ट्र की भलाई के लिये राजसत्ता का भी उस समय यह कर्त्तव्य होता है कि ऐसे संगठन को कानून द्वारा बंद करदे। ऐसा संगठन, चाहे वह धार्मिक, सामाजिक अथवा राष्ट्रीय—किसी भी चोगे में खड़ा किया हुआ हो, उसको सर्वथा मिटादे।

संसार के हित चाहने वाले सभी महापुरुषों ने विश्वशांति के लिये यह उपाय सोचे हैं कि परस्पर प्रेम और सद्भाव रखना, दुःख में एक दूसरे की सहायता करना, परोपकार और सेवा करना आदि।

परोपकारः पुण्याय पापाय परपीडनम्।

यह एक सर्वमान्य सिद्धान्त है जिससे कोई भी विचारशील इन्कार नहीं करता। यदि कोई मजहब या संगठन धर्म के नाम पर परोपकार और सेवा के कर्मों को करने (जैसे भूख प्यास से मरते हुए को अन्न पानी की सहायता देकर बचाने, विपत्ति में पड़े हुए की सहायता करने, अस्वस्थ माता-पिता पति आदि की सेवा—शुश्रूषा करने, शिक्षा प्रचार करने, रोगियों की चिकित्सा कराने आदि) में गृहस्थ के लिये अधर्म और एकान्त पाप होने का उपदेश करता हो उसे धर्म का संगठन कहना कदापि श्रेयस्कर नहीं है। किसी को दुःख न पहुँचाना, दुःखी जीवों की रक्षा करना, विपत्ति में पड़े हुए की सहायता करना, भूख प्यास से मरते हुए को भोजन पानी की सहायता देना, माता-पिता की सेवा करना, रोगियों की चिकित्सा कराना आदि आदि परोपकार और सेवा के समस्त कार्य मानवसमाज और राष्ट्र के लिये हितकारी कर्त्तव्य हैं। आर्य तथा आर्येतर कोई भी मजहब इन कामों के करने में गृहस्थ के लिये एकान्त पाप और अधर्म नहीं बताता। सब मजहब या धर्म इन कामों के करने में गृहस्थ के लिये धर्म या पुण्य होना बता रहे हैं। परन्तु इस भूमण्डल पर एकमात्र जैन श्वेताम्बर तेरापन्थ मजहब ही एक ऐसा मजहब है जो ऐसे परोपकार और सेवा के कामों को करने में गृहस्थ के लिये एकान्त पाप होना मानता और उपदेश करता है।

ऐसी मान्यता का प्रचार प्राणीमात्र के लिये तो हानिकारक है ही, परन्तु राष्ट्र के उत्थान में बहुत बड़ा बाधक है। अपने स्वार्थों की बलि देकर जिन्होंने भारत को परतन्त्रता के शिकंजे से निकालने का प्रयत्न किया उन सद्गृहस्थों ने यदि परोपकार और सेवा में अधर्म और पाप मान लिया होता तो वे ऐसा कदापि नहीं करते। राष्ट्रपिता महात्मा गांधी तथा पंडित जवाहर लालजी नेहरू आदि सद्गृहस्थों ने अपना सारा जीवन ही परोपकार और सेवा के कामों में लगाया और अन्य सज्जन भी लगारहे हैं। वे यह समझ कर नहीं लगा रहे हैं कि हम अधर्म और पाप का कार्य कर रहे हैं।

यदि मनुष्यके हृदयमें यह भाव भर दिये जावें कि सेवा और परोपकार करने से तुम्हें धर्म या पुण्य न होकर एकान्त पाप होगा और पाप के फल स्वरूप तुम्हें घोर दुःख उठाना पड़ेगा या दुर्गति होगी तो ऐसी अवस्था में कौन ऐसा मूर्ख होगा जो परोपकार और सेवा के कामों में पाप समझकर भी उन्हें करेगा? इसलिये परोपकार और सेवा में गृहस्थ के लिये पाप होने की मान्यता कायम करना मानवसमाज को परोपकार और सेवा के कामों से विमुख बनाना है और राष्ट्र के उत्थान में सब प्रकार से बाधा पहुंचाना है।

जैन श्वेताम्बर समाज के इस समय मुख्य तीन सम्प्रदाय हैं। संवेगी (मूर्तिपूजक) स्थानकवासी और तेरापंथी। इन तीनों के शास्त्र एक हैं। जिन शास्त्रों से संवेगी और स्थानकवासी दोनो परोपकार और सेवा के ऐसे कामों को करने में गृहस्थ के लिये पुण्य होना बतला रहे हैं उन्हीं शास्त्रों से तेरापंथी इन में एकान्त पाप होना बता रहे हैं। जिन शास्त्रों से ९० प्रतिशत व्यक्ति जिन कार्यों के करने में गृहस्थ को पुण्य होना बता रहे हैं ठीक उन्हीं परोपकारी कामों को करने में १० प्रतिशत ये तेरापन्थी एकान्त पाप और अधर्म बता रहे हैं। साधु जीवन के लिये यदि संसार के ऐसे कामों में सकाम प्रवृत्ति करने में धर्म न माना होता तो किसी हद तक क्षम्य था परन्तु गृहस्थ के लिये परोपकार में पाप मान लेना और पाप का उपदेश करना तो मानवसमाज और राष्ट्र की व्यवस्था को बहुत बड़ी हानि पहुँचाने का अपराध है।

भगवान् महावीर के समय से लगाकर विक्रम सं० १८१५ तक लगभग २३०० वर्षों में, परोपकार और सेवा के कामों को करने में गृहस्थ के लिए एकान्त पाप कहने वाला भगवान् महावीर का अनुयायी एक भी जैनो नहीं हुआ, जैसा कि इतिहास और जैनाचार्यों की रची हुई टीकाओं, भाष्यों और अन्य ग्रन्थों से विदित हो रहा है, परन्तु विक्रम सं० १८१५ से जब यह जै. श्वे. तेरापंथ मजहब उत्पन्न हुआ है गृहस्थ के लिये परोपकार में एकान्त पाप बताने की मान्यता चालू हुई है।

इस श्वे. तेरापंथ मजहब के प्रवर्तक स्वामी भीषण जी नामक एक साधु थे। उन्होंने स्थानकवासी सम्प्रदाय से निकल कर अपना अलग यह नया मजहब चालू किया जिसमें (मानव समाज की व्यवस्था को हानि पहुँचाने वाले) ऐसे सिद्धान्तों का निर्माण किया। स्वामी भीषण जी और उनके चौथे पट्टधर आचार्य श्री जीतमल जी की रची हुई पुस्तकों में अनेक स्थानों में परोपकार और सेवा के कामों को करने में गृहस्थ के लिये एकान्त पाप होना बताया गया है जिनमें से कुछ इस लेख में आगे दिये जा रहे हैं।

तेरापंथियों की मान्यता के कुछ नमूने

१ "तेरापंथी साधु के सिवाय संसार के सब मनुष्य (साधु या संसारी) और प्राणी मात्र असयती हैं। असंयती को दान देना, सहायता करना एकान्त पाप है।"

२ "तेरापंथी साधु के सिवाय संसार के सब मनुष्य कुपात्र हैं और कुपात्र को किसी भी प्रकार

की सहायता करना, दान देना गृहस्थ के लिये एकान्त पाप है।" तेरापंथी साधु के सिवाय अन्य किसी साधु को तेरापंथी लोग साधु नहीं मानते। साधु और सुपात्र यह लोग उसी को मानते हैं जो सेवा और परोपकार आदि में एकान्त पाप मानने वाला हो। अगर कोई सेवा और परोपकार में एकान्त पाप नहीं मानता तो फिर वह महात्मा गांधी की तरह कितना भी उच्च कोटि का संयमी साधक और परोपकारी पुरुष ही क्यों न हो, उसे ये लोग असाधु और कुपात्र ही समझते हैं।

३ भूख प्यास से तड़फ कर मरते हुए को कोई दयावान् गृहस्थ अन्न पानी की सहायता करके बचाता है तो वह बचाने वाला एकान्त पाप करता है।

४ पुत्र अपने माता पिता की तथा स्त्री पति की सेवा शुश्रूषा करे तो उसमें एकान्त पाप होता है।

५ किसी मकान में आग लगी। अन्दर स्त्री बालक आदि मनुष्य आर्तनाद कर रहे हैं, पशु बिलबिलाहट कर रहे हैं, उन्हें बाहर निकाल कर रक्षा करने वाला गृहस्थ एकान्त पाप करता है।

६ किसी ऊंचे मकान से बालक गिर रहा है। कोई दयावान् गृहस्थ बीच में झेलकर उस बालक को बचा लेता है तो वह एकान्त पाप करता है।

७ गौओं से भरे बाड़े में आग लग जाय और कोई दयावान् गृहस्थ बाड़े के किवाड़ खोल कर गौओं के प्राण बचा लेवे तो तेरापंथी उस गृहस्थ को एकान्त पाप हुआ कहते हैं।

सैद्धान्तिक कथनों के कुछ प्रमाण

"साधुथी अनेरो कुपात्र छै। अनेराने दीधां अनेरी प्रकृतिनो बन्ध कह्यो ते अनेरी प्रकृति पापनी छै।"

—भ्रमविध्वंसनम् पृष्ठ ७६

अर्थात्—साधु के सिवाय बाकी सब मनुष्य कुपात्र हैं। उन्हें दान देने से पाप होता है।

'कुपात्र दान कुक्षेत्र कह्या, कुपात्र रूप कुक्षेत्र में पुन्य बीज किम उपजे ?

—भ्रमविध्वंसनम् पृष्ठ ८०

अर्थात्—कुपात्र को दान देना तो खराब खेत में बीज बोना है। वहां पुण्य बीज कैसे उत्पन्न हो सकता है ? यानी नहीं होता।

"कुपात्र दान, मांसादिक सेवन, व्यसन कुशीलादिक यह तीनों एक ही मार्ग के पथिक हैं जैसे चोर जार ठग यह तीनों समान व्यवसाई हैं उसी तरह कुपात्र दान भी मांसादि सेवन व्यसन कुशीलादि की श्रेणि में गणना करने योग्य है।

—भ्रमविध्वंसनम् पृष्ठ ८२

अर्थात्—उपर्युक्त कथनों से यही बात सिद्ध होती है कि तेरापंथी साधुओं के सिवाय संसार के सब मनुष्य कुपात्र हैं, चाहे वे माता-पिता आदि पूज्य जन अथवा देशाधिपति, देशोपकारक आदि ही क्यों न हों। उन माता-पिता आदि की सेवा शुश्रूषा को मांसभक्षण और वेश्यागमन के समान ये महान् पापकारी बतलाते हैं।

"साधु के अतिरिक्त सब प्राणी असंयती जीवों के जीने आदि की कामना करना एकान्त पाप है-उनके सुख, जीने आदि की कामना करने से असंयम जीवन की अनुमोदना लगती है तथा विषयभोगों में लगी हुई इन्द्रियों को उत्तेजना मिलती है। इस प्रकार और अधिक पापोपार्जन कराकर उन जीवों की आत्मिक दुर्गति का कारण होता है।

—श्री मदाचार्य भीषणजीके विचार रत्न पृष्ट ५३

"जितरा उपकार संसार रा तेतो सगला ही सावद्य जाणो।

—अनुकम्पा ढाल ४ कड़ी १८

अर्थात् - संसार के जितने उपकार हैं वे सब सावद्य (पापपूर्ण) हैं। आगे संसार के उपकारों का खुलासा करते हैं—

कोई लांयसूं बलता ने काढ़ बचायो, बले कूए पड़ताने बचायो ! बले तलाब में डूबता ने बाहर काढ़े बले ऊंचा थी पड़ता ने मेले ताणे
ओ उपकार संसार तणो छे, संसार तणो उपकार करे छे।
तिणरे निश्चय ही संसार बधे ते जाणो।'
— अनुकम्पा ढाल ११ कड़ी १२

अर्थात् अग्नि में जलते हुए जीवों को कोई बाहर निकाल कर बचावे. कुए में गिरते हुए को बचावे। यह संसार के उपकार हैं। संसार के उपकार से निश्चय ही भव-भ्रमण की वृद्धि होती है। ऐसे पापकारी कार्यों से प्राणी दुर्गतियों में भटकता है।

कोई मात पितारी सेवा करे दिन रात,
मनमाना भोजन त्यांने कराई।
बले खाधे कावड़ लियां फिरे त्यांरी,
बले दोनो वक्ते स्नान कराई ताई।
ओ उपकार संसार तणो छे।
—अनुकम्पा ढाल ११ कड़ी १८

अर्थात्—कोई गृहस्थ दिनरात माता-पिता की सेवा करता है। उन्हें रुचिके अनुसार भोजन कराता है, कावड़ में उठाये फिरता है, दोनों वक्त स्नान कराता है तो यह सब उपकार संसार के हैं, जो दुर्गतियों में भटकाने वाले हैं।

गृहस्थने औषध भेषज देईने, अनेक उपाय करी जीव बचावे।
यह संसार तणो उपकार कियां में मुक्तिरो मारग मूढ़ बतावे ॥—अनुकम्पा ढाल ८ कड़ी ५

अर्थात्—औषधादि देकर अथवा अन्य उपायों से गृहस्थ का जीवन बचाना संसार बढ़ाने वाला पापकारी उपकार है। मूढ़ लोग इसको मुक्ति का मार्ग यानि धर्म बता रहे हैं।

दुखियां और दरिद्री देखी अनुकम्पा उणरी मन आणी।
गाजर मूलादिक सचित खुवावे, बले पावे उणनै काचो पाणी।
आ अणुकंपा सावद्य जाणो।
—अनुकम्पा ढाल १ कड़ी १६

अर्थात्—दरिद्री और दुखियों को देखकर उनकी अनुकम्पा करके गाजर आदि वनस्पति खिलावे और पानी पिलावे तो यह पापकारी दया है।

व्याधि अनेक कोढादिक सुणने,
तिण उपर वेद चलाई ने आवे।
अनुकम्पा आणी साझो दीधो,
गोली चूरण दे रोग गमावे ॥
आ अनुकम्पा सावद्य जाणो।
—अनुकम्पा ढाल १ कड़ी २४

अर्थात्—कुष्टादिक कठिन रोग से पीड़ित रोगियों को सुनकर कोई वैद्य दयाभाव से उनको गोली चूर्ण देकर रोग रहित कर दे तो दया पापकारी दया है।

लाय लागी जो गृहस्थ देखे तो तुरत बुझावे छः काय ने मारी।
यह सावद्य कर्त्तव्य लोक करे छे, तिणमें धर्म कहे सांगधारी ॥
—अनुकम्पा ढाल १ कड़ी २४

अर्थात्—लाय (आग) लगी हुई गृहस्थ देखता है तो फौरन वह छः काय पृथ्वी आदि के जीवों को मार कर उसे बुझाता है। ऐसे पापपूर्ण कार्य को स्वांगधारी साधु धर्म कहते हैं।

कुपात्र दान में पुन्य परुपे, तिणसूं लोक हणे जीवाने विशेषो।
कुगुरु एहवा चलावे, ते भ्रष्ट हुआ लेई साधुरो भेषा ॥
—अनुकम्पा ढाल १३ कड़ी ६

अर्थात्—कुपात्रदान में पुण्य बताने से लोग जीवों को विशेष मारते हैं। पुण्य बताकर यह लोग साधु के भेष में भ्रष्ट होते हैं।

कुपात्र जीवांने बचावियां, कुपात्र ने दियां दानजी।
—अनुकम्पा ढाल १२ कड़ी १०

अर्थात्—कुपात्र जीवों को मरने से बचाना, कुपात्र को दान देना यह संसार का पापमय कार्य है।

(शेष अगले अङ्क में)

क्या मुक्त जीवो का 'पैरोल' पर लौट आना सम्भव है ?

(ले० विद्या भूषण श्री पं० सुरेन्द्र शर्मा जी काव्य–वेदतीर्थ साहित्याचार्य आर्योपदेशक दिल्ली)

दिनाङ्क २८ फरवरी ५२ के आर्यमित्र के पृष्ठ ७ पर आर्य जगत् के वृद्ध मुनि प्रवर श्री पं० गंगाप्रसाद जी (रि० चीफ जज) का "योग में मुक्तजीवों के अवतार" शीर्षक से एक लेख छपा है। उस के प्रथम व द्वितीय कालम में 'ऊपर लिखे गीता के (यदायदा हि धर्मस्य, गीता ४।७८) बचनों में जो बात कही गई है वह केवल श्री कृष्ण पर (ही) लागू नहीं है किन्तु श्री गौतम बुद्ध, शंकराचार्य्य, श्री गौरांग, म० कबीर, गुरु नानक श्री रामकृष्ण आदि सब ही महात्माओं के लिये ठीक है, क्योंकि-इन में से प्रत्येक महात्मा के समय में कुछ धर्म विरुद्ध प्रचार और प्रथायें फैली हुई थीं। जिनको दूर करने के लिये उनका जन्म हुआ।"

लेखक महोदय की पवित्र भावना से उनके "आदि" शब्द से–म० ईसा, हजरत मुहम्मद, राजा राममोहन राय, स्वा० रामतीर्थ, महर्षि दयानन्द, महर्षि अरविन्द, (पुनरपि) आदि २ प्राय: उन समस्त महात्माओं की गणना भी की जा सकती है जिन्होंने अपने २ जीवन में कुछ न कुछ धर्म प्रचार एवं अधर्म का निराकरण किया है। यहां पर जिज्ञासा केवल इतनी ही हो सकती है कि–गीता के उक्त वाक्य कहने वाले श्री कृष्ण, श्री शंकराचार्य आदि की विद्या-बुद्धि, साक्षरता तथा यौगिक शक्ति सम्पन्नता और दादू, कबीर, नानक, मुहम्मद, आदि की योग्यता की समानता में क्या कोई अन्तर नहीं ? यदि है तो फिर गीतोक्त अवतारवाद की योग्यता सब पर लागू कैसे हो सकती है ?

(२) श्री स्वा० ओमानन्द जी के उद्धृत लेख "ईश्वरीय नियमानुसार संसार के कल्याण में जब २ उनकी आवश्यकता है तब तब वे अपने शुद्ध स्वरूप से इस भौतिक जगत् में अवतीर्ण होते हैं।" तथा च कालम तीन पर लेख के सारांश में—

(३) "उन में उपरोक्त जीवों की विशेष आध्यात्मिक स्थिति का कुछ वर्णन दिया गया है। अन्त की पंक्तियां भी विशेष द्रष्टव्य हैं। उनसे यह स्पष्ट हो जाता है कि ये मुक्त जीव ईश्वर के नियमानुसार (अथवा यह कहा जाये कि–ईश्वर की आज्ञानुसार) संसार के सुधार के लिये कैवल्य स्थिति से संसार में अवतार लेते हैं, इस लिये अपने लोक सुधार का कार्य करके फिर उनको कैवल्य प्राप्ति का अधिकार सदा बना रहता है, संसार के बन्धन में नहीं रहते।"

इन पंक्तियों में लेख का सारांश है और वह यह है कि–(क) मुक्त जीव जब भी संसार में धर्म संस्थापनार्थ तथा अधर्मनाशार्थ आना चाहें मुक्ति की सुदीर्घ कालीन १ परान्तकाल की अवधि के बीच में से भी अपनी इच्छानुसार आ और जा सकता है।

(ख) दूसरा प्रकार उनके आने का यह भी है कि—ईश्वर जहां २ और जिस २ लोक या देश में कोई सुधार करना चाहेगा और उस में उन २ मुक्त जीवों का, संसार के सुधारार्थ आना या भेजना आवश्यक समझेगा तो उन २ मुक्त जीवों को वहां २ उनकी प्राप्त मुक्ति की ३१ नील १० खरब ४० अरब वर्षों की अवधि से पूर्व भी भेज देता है और जब वे मुक्त जीव आकर ईश्वर की प्रेरणा या आज्ञानुसार संसार का सुधार कर चुकते हैं तब फिर वे अपनी उसी पूर्व उपार्जित मुक्ति की स्थिति अधिकार में वापिस जा पहुँचते

है। निज मोक्षावधि के मध्य में मुक्त जीवों का इस प्रकार संसार के सुधारार्थ आना ही उनका अवतार लेना है। ऐसा लेखक महोदय का मन्तव्य प्रतीत होता है। यदि यह पक्ष सत्य सिद्ध हो जाये तो परान्तकाल की सुदीर्घ मोक्षाऽवधि में मुक्त-जीव अनेक बार "पैरोल" पर छूट कर संसार में आते रहेंगे। इस लेख पर हमारी जिज्ञासा यह है कि --मुक्त जीवों का इस प्रकार आना या अवतार लेखक महोदय का निजाभीष्ट मत है. किं वा वैदिक सिद्धान्त? यह स्पष्ट होना ही चाहिये।

यतः—आर्ष प्रामाणिक साहित्य में प्रदर्शित वैदिक सिद्धान्तानुसार तो– भिद्यते हृदयग्रन्थि-च्छिद्यन्ते सर्व संशयाः क्षीयन्ते चाऽस्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे पराऽवरे॥ (मु० २।२।८)

जब इस जीव के हृदय की अविद्या, अज्ञान-रूपी ग्रन्थि कट जाती है, सब संशय छिन्न-भिन्न हो जाते हैं और दुष्ट कर्म क्षय को प्राप्त होते हैं, तभी उस परमात्मा जो कि अपने आत्मा के भीतर और बाहर व्याप्त रहता है, उस में निवास करता है। अर्थात् सब शुभाशुभ सांसारिक संकल्प विकल्प तथा कर्मों के त्याग एवं ज्ञान के विकास में ही जीव की मुक्ति होती है। "ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः" बिना ज्ञान के किसी की मुक्ति नहीं होती। मोक्ष या मुक्ति क्या है?–

बाधनालक्षणं दुःखमिति॥ तदत्यन्त-विमोक्षोऽपवर्गः॥ न्या० १।१।२४ प्रतिकूलात्मक बन्धन ही दुःख है तथा उस दुःख से छूट जाना ही मुक्ति किंवा अपवर्ग है। अथवा–

"दुःख जन्मप्रवृत्तिदोषमिथ्याज्ञानानामुत्तरोत्तरापाये तदन्तरापायादपवर्गः" न्या० १।२

अर्थात्—क्रमशः मिथ्याज्ञान का नाश होने पर राग द्वेष मोहादि दोष नष्ट हो जाते हैं, जिनके कारण जीव की कर्म करने में प्रवृत्ति होती है। दोषों के नाश से प्रवृत्ति-कर्म नष्ट होता है और कर्म के अभाव में जन्म का अभाव तथा जन्म के अभाव ही का नाम मुक्ति-मोक्ष का अपवर्ग होता है।

इसी को भगवान् कपिल के शब्दों में–

"अथ त्रिविध दुःखात्यन्तनिवृत्तिरत्यन्त पुरुषार्थः" (सांख्य १।१)

आध्यात्मिक, आधिभौतिक, और आधिदैविक त्रिविधात्मक कर्मज दुःखों की अत्यन्त निवृत्ति होना ही-जीव का अत्यन्त पुरुषार्थ या मुक्ति कहा जाता है।

इस प्रकार वे मुक्ति प्राप्त मुक्तात्मा जीवः—"वेदान्त विज्ञान सुनिश्चितार्थाः संन्यास योगाद्यतयः शुद्धसत्वाः। ते ब्रह्मलोकेषु परान्तकाले परामृताः परिमुच्यन्ति सर्वे।" (मु० ३।२।६)

मुक्ति की अवधि ३११०४००००,०००,०० ३१ नील १० खरब ४० अरब वर्षों तक अर्थात् ३६ सहस्रबार सृष्टि की उत्पत्ति तथा प्रलय होने तक जीव मुक्ति में परमानन्द का भोग भोगता तथा ब्रह्म के आधार पर ही लोक लोकान्तरों में विचरता रहता है! और मोक्षाऽवधि की पूर्ण समाप्ति पर ही वापिस आता है, या आ सकता है, इससे पूर्व नहीं। यही वेदादि शास्त्रोक्त एवं ऋषि दयानन्द अभिमत वैदिक सिद्धान्त है।

यदि मुक्त जीवों का अवधि से पूर्व ही उन की इच्छानुसार अथवा ईश्वरादेश से राम, कृष्ण, कबीर, दादू, नानक, बुद्ध, शंकर, दयानन्दादियों के रूप में जन्म या अवतार लेना माना जावे तो प्रत्येक अवतारी महात्मा जब अनेक विध शारीरिक एवं मानसिक दुःखों से पीड़ित होते रहे हैं। दुःख चाहे कैसा भी क्यों न हो, किसी भी अनिष्ट कर्म का ही फल होता है। सांख्य के मत से त्रिविध दुःखों की स्थिति में मुक्ति कभी हो ही नहीं सकती, तो फिर ऐसे शरीरधारी महात्माओं को मुक्तात्मा या 'पैरोल' पर मुक्ति से लौटे हुए कैसे कहा जा सकता है?

जीव को शरीर मिलना तथा शरीर जन्म से होने वाले दुःख का होना निस्सन्देह उनके पूर्व जन्मोपार्जित अनिष्ट कर्मों का फल ही हो सकता है।

महामुनि पतञ्जलि ने कहा है—

"सतिमूले तद् विपा को जात्यायुर्भोगाः॥ (योग० २।१३) अर्थात् जन्मधारण का मूल संस्कारज कर्मों का फल जीव को—जाति, आयु तथा सुख दुःखादि के रूप में प्राप्त होता है।

अतः सिद्ध है कि—शरीर का मिलना आदि सब कुछ उसके पूर्वोपार्जित कर्मों के फल स्वरूप ही हैं, तथा यावत् ऐसे भोग्य सकाम कर्म रहते हैं तब तक किसी भी जीव की मुक्ति नहीं होती।

संक्षेपतः—संसार के कल्याणार्थ जितने भी सुधारक-साधु महात्मा आदि आते हैं वे पुण्यात्मा तो हो सकते हैं, किन्तु मुक्तात्मा कदापि नहीं। अर्थात् मुक्ति प्राप्त कोई भी मुक्तात्मा अपनी इच्छा से मोक्षाऽवधि के मध्य में ही—लौटकर जन्म नहीं ले सकता, एवं ईश्वर भी निज नियमानुसार १ परान्तकाल से पूर्व किसी भी मुक्तात्मा को शरीर-जन्म बन्धनों में नहीं डाल सकता तथा ईश्वर का भी कोई कर्म ऐसा नहीं जो उन मुक्तात्माओं के सहयोग बिना सिद्ध न हो सकता हो, अतः उनको भेजकर ही कार्य-पूर्ति की अपेक्षा नहीं।

आशा है २८।१।५२ के 'आर्यमित्र' में ये उक्त लेख तथा हमारे इस निवेदन पर विद्वान् लेखक महोदय एवं इतर विद्वान् भी यथोचित विचार विमर्श करने की कृपा करेंगे।

आर्य कुमार जगत्

भारतवर्षीय आर्य कुमार परिषद्, अजमेर।

परीक्षाफल [सन् १९५२]

परिषद् की धार्मिक परीक्षायें इस वर्ष रविवार ता० २७ जनवरी से आरम्भ हुई थीं। अनेक कठिनाइयों के होते हुये भी गत ५ वर्षों में हमारे कार्यालय के सतत प्रयत्न से परीक्षा कार्य में अभूतपूर्व प्रगति हुई है। सन् १९४६ में जब मेरे पास देहली में कार्यालय आया था तब कुल भारत में १०६ परीक्षा केन्द्र और लगभग २५०० छात्र थे। गत वर्ष के केन्द्रों की संख्या २४४ और छात्रों की संख्या लगभग ५८०० हो गई थी। अब इस वर्ष केन्द्रों की संख्या २६० और छात्रों की संख्या ७१०० से अधिक हो गई है। अफ्रीका, मरीशस और फीजी टापू में भी परीक्षा-केन्द्र खुल गये हैं। इस धर्म कार्य में योगदान के लिये समस्त केन्द्र व्यवस्थापक परीक्षकगण तथा अन्य सहयोगी सज्जन धन्यवाद के पात्र हैं। इस वर्ष का परीक्षा फल निम्न प्रकार है:—

सिद्धान्त सरोज परीक्षा:— कुल आवेदन पत्र ३८८३ आये। ३३४३ छात्र सम्मिलित हुये तथा २८२८ उत्तीर्ण हुये। परीक्षाफल लगभग ८४.५ प्रतिशत रहा। सर्वप्रथम-कचरूलाल गोंदिया), सर्व -द्वितीय—पुष्पलता (मेरठ शहर) सर्व तृतीय हरस्वरूप दत्त (सबलपुर)।

सिद्धान्त रत्न परीक्षा:— कुल आवेदन पत्र १८०८ आये। १५६१ छात्र सम्मिलित हुये उनमें से १३७४ उत्तीर्ण हुये। परीक्षा फल लगभग ८७ प्रतिशत रहा। सर्व प्रथम प्रभा (प्रयाग आर्य क० पा०) सर्व द्वितीय-राजाराम (संगरिया) सर्व-तृतीय—सुशीलाकुमारी (प्रयाग आर्य क० पा० तथा जगन्नाथसिंह (एटा)।

सिद्धान्त भास्कर परीक्षा:—कुल आवेदन पत्र ५१६ आये। ४५६ छात्र सम्मिलित हुये उनमें से ३०३ उत्तीर्ण हुये। परीक्षाफल लगभग ६६.५ प्रतिशत रहा। प्रथम विभाग में ४८, द्वितीय में १४२, तृतीय में ११३, तथा फेल १५३ हुये सर्व प्रथम रहा ओ३मप्रकाश (झांसी), सर्व द्वितीय चंद्रावती (मेरठ शहर) तथा सर्वतृतीय-जवाहर लाल (भर्थना)।

सिद्धान्त शास्त्री परीक्षा:— कुल आवेदन पत्र ७५१ आये। ६०५ छात्र सम्मिलित हुये उनमें से २८१ उत्तीर्ण हुये। परीक्षाफल लगभग ४६.४ प्रतिशत रहा। सब प्रथम ओ३मप्रकाश (देहरादून एल० टी० कालेज) सर्व द्वितीय-सुरेशचन्द्र गुप्त (अजमेर डी० ए० वी० सर्व तृतीय-विजयकुमार शर्मा (अजमेर डी० ए० वी०)-कन्या प्रथम—शान्तिदेवी (व्यावर)।

सिद्धान्त वाचस्पति परीक्षा:— इसी वर्ष से संचालित हुई। कुल आवेदन पत्र ७३ आये। ६२ सम्मिलित हुये उनमें से ४८ उत्तीर्ण हुये। परीक्षा फल लगभग ७७.४ प्रतिशत रहा। सर्व प्रथम—भवानीलाल भारतीय (जोधपुर) सर्वद्वितीय रमेशचन्द्र (नई दिल्ली वै० आश्रम) सर्व तृतीय रघुवरदयाल (बिजनौर) कन्या प्रथम- प्रकाशवती (नई दिल्ली वै० आश्रम) नोट:—[१] सिद्धान्त वाचस्पति परीक्षा का परिणाम आगे दिया है। अन्य परीक्षाओं का परिणाम पृथक् २

केन्द्रों को भेजा जा रहा है उपर्युक्त छात्रों को परिषद् की ओर से पारितोषिक तथा समस्त उत्तीर्ण छात्रों को प्रमाणपत्र जुलाई या अगस्त मास में भेज दिये जायेंगे। कोई सज्जन व्यर्थ का पत्र व्यवहार न करे।

परीक्षा कार्यालय
अजमेर
४-४-५२

निवेदक—
डा० सूर्यदेव शर्मा
साहित्यलंकार एम. ए. एल. टी. डी. लिट् सि० शास्त्री
परीक्षा मंत्री, अजमेर।

सिद्धान्त वाचस्पति परीक्षाफल (१९५२)

नोट:—प्रत्येक नाम के साथ का अंक उत्तीर्णता की श्रेणी का सूचक है।)

(अलीगढ़)—रामस्वरूप ३, (अलीपुर खेड़) चौहलसिंह ३, अतरसिंह २, (इन्दौर गांधी०) राम बहादुरलाल ३, (काकडौली) सत्यव्रत ३, (कानपुर डी० ए० वी०) शिवपूजनसिंह १, विजयपाल २, लक्ष्मीनारायण २, (गुलबर्गा अमरसिंह ३, (गोरखपुर सी० पी०) मूंगाराम २, (गगागंज) जागेश्वरसिंह २, (जयपुर) रणजीतसिंह १, विजयबिहारीलाल २, (ज्वालापुर सत्यज्ञान०) वेदव्रत ३, (जोधपुर) भवानीलाल १, (झज्जर) वेदव्रत २, यज्ञदेव २, सत्यवीर ३, सुदर्शनदेव १, सत्यव्रत २ (तुलसीपुर) प्रभावतीदेवी २, (देववन्द) वेदव्रत २, (नई दिल्ली वै० आश्रम) रमेशचन्द्र १, सुशीला गुप्ता ३, जनक शर्मा ३, माधुरी २, देवेश्वरीदेवी २, शारदाकुमारी २, कान्ता ३, रामादेवी २, प्रकाशवती १, प्रमीला खेड़ा २, कुमारी उमापुरी ३, (नारसन) रामपाल ३, देवमित्र २, दयाराम १; परमात्मशरण २, (बम्बई)—बंशारीपनसिंह २, बांरा)—चन्द्रविहारी १, (वारवास)—निहालसिंह ३, (बिरहीकलां)—दीपचंद २, भीष्मप्रताप १, (बिजनौर)—रघुवरदयाल १, (बेतिया)—रामवीर प्रकाश २, (भर्थना) भगवतदयाल -, (भोगांव)—केशवदेव २, (मथुरा विद्या०)—ओ३म्प्रकाश २, (सीसामऊ)—लक्ष्मणकुमार २।

आर्यों के लक्षण

(लेखक—श्री ललिता प्रसाद जी देहली)

महर्षि दयानन्द से किन्हीं महानुभाव ने पूछा कि महाराज यह बतलाइये कि इस देश का नाम आर्यावर्त है या हिन्दुस्तान। महाराज ने उत्तर दिया जब तक देश में आर्य निवास करते रहे यह देश आर्यावर्त रहा क्योंकि वेद कहता है कि यदि संसार को सुखी बनाना चाहते हो तो "कृण्वन्तो विश्वमार्यम्" तो संसारी जनों को आर्य बनाओ। यदि संसार में सुख की और आनन्द की वर्षा देखना चाहते हो तो भगवान् वेद की आज्ञा के अनुकूल "अहं भूमिम् अददाम् आर्याय" यह भूमि आर्यों के राज्य करने को है!

आर्य कौन है ?

आर्य, ईसाई, मुसलमान प्रत्येक मनुष्य चाहे किसी देश या जाति से सम्बन्ध रखता हो आर्य हो सकता है। हमारे भाई यूरोप के निवासी विशेष जाति विशेष देश और विशेष सूरत की और शकल की शर्त लगाते हैं पाश्चात्य विद्वान् कहते हैं जो गोरा हो, लम्बा हो जिसका शिर बड़ा हो और जो भारत, ईरान, योरोप में बसता हो उसे आर्य कहते हैं जैसा कि Hrms' worh's History of the World पृष्ठ ३२१ में बतलाया गया है : family of cancasic man to which all the chief civilisations of modern times belong.

A tall, fairskinned, long headed race whose origin is still dogbtful, though it was probably in Central Asia and who spread in pre-historic times over the whole Europe and and parts of Asia and Africa, Almost all modern Europeans are of Aryan descent, the family is also called Indo Europeans or Indo Germanic, but these names are open to objections from which the term Aryan is free.

(वैदिक सम्पत्ति पृष्ठ १५०) परन्तु संस्कृत साहित्य से पता चलता है कि आर्य किसी विशेष जाति या देश निवासियों का नाम नहीं बल्कि विशेष गुण रखने वालों का है जैसा बतलाया गया है। ज्ञानी तपस्वी सन्तोषी सत्यवादी जितेन्द्रियः। दाता दयालुर्नम्रश्च आर्यः स्यादष्टभिर्गुणैः जिस में आठ गुण हों चाहे किसी देश या किसी जाति का हो वह ही आर्य है। वे आठ गुण क्या हैं। ज्ञानी, तपस्वी, सत्यवादी, सन्तोषी, जितेन्द्रिय, दाता, दयालु, सुशील होना अमरकोष में है 'महाकुल कुलीनार्य साधु सज्जन साधवः' सभ्य सज्जन बड़े ऊँचे विचार आचार वालों की सन्तान हो, सभ्य हो, मननशील हो, विवेकी हो, सज्जन हो, जो प्राणिमात्र को बिना कष्ट दिये जीवन व्यतीत करता हो, साधु हो, इन्द्रियों की साधना करने वाला, संसार का भला करने वाला हो वह आर्य है। महाभारत में आता है—न वैरमुद्दीपयति प्रशान्तं, न दर्पमारोहति नास्तमेति न दुर्गतोस्मीति करोत्यकार्यं, तमार्य शीलं परमाहुरार्याः॥ जो किसी से वैर नहीं करता, जो शान्त चित्त है जो श्रेष्ठ पुरुषों का अपमान नहीं करता, जो बुरा कार्य नहीं करता, वही आर्य है वही शीलवान् है। जब तक आर्य रहे आकाश मंडल से आवाज आती थी

"गायन्ति देवाः किलगीतकानि-धन्यास्तु ये भारतभूमिभागे। स्वर्गापवर्गस्य च हेतु भूते

भवन्ति भूयः पुरुषाः सुरत्वात्" श्री मद्भागवत जिसका अनुवाद कविकुल भूषण श्री मैथिलीशरण गुप्त अपनी कविता में इस प्रकार करते हैं

हैं धन्य भारतवर्ष वासी. धन्य भारतवर्ष है।
सुरलोक से भी सर्वथा उसका अधिक उत्कर्ष है ।।

शोक है कि वे स्वार्थत्यागी ज्ञानी महात्मा लोग जो उच्च पर्वतों की कन्दराओं और हरे भरे बनों की कुटियों में बैठ कर और बस कर समस्त मनुष्य जाति के लिये हितकर एवं सुख शान्तिमय उपाय सोचा करते थे जब तक वे देवता दिव्य गुणों से सम्पन्न रहे। देश आर्यावर्त था इस देश में चोर आर व्यभिचारियों का नाम और निशान तथा राजा लोग कहा करते थे 'नमे स्तेनोजनपदे न कदर्यो न मद्यपः । नानाहिताग्निर्नाविद्वान्न स्वैरी स्वैरिणी कुतः"

है मद्यपी कायर न मेरे राज्य में तस्कर नहीं।
व्यभिचारिणी तो फिर कहाँ जब एक व्यभिचारी नहीं ।।

यों सत्यवादी नृप विना संकोच कहते थे यहां।
कोई बतादे विश्व में शासक हुए ऐसे कहां ? ।।

कई वर्ष हुये रूस के विद्वान् नोटोविच ने महात्मा मसीह का जीवन चरित्र लिखा।

वह कहता है कि महात्मा मसीह तिब्बत के हीमिस नामक मठ में रहकर विद्या प्राप्त करते रहे वह इसराईल घराने में उत्पन्न हुये। १३, १४ वर्ष की आयु में रूठ कर घर से चल दिये वे काशी आदि स्थानों में विद्याध्ययन करते रहे।

योरोप भी जो बन रहा है आज कल मार्मिक बना।
यह तो कहे उसके खुदा का पुत्र कब धार्मिक बना।।
था आर्यों का शिष्य ईसा यह पता भी है चला।
ईसाईयों का धर्म भी है बौद्ध सांचे में ढला।।

उस समय यह देश आर्यावर्त था परन्तु अब तनिक हम अपने अन्तः करण में विचारें कि हम कौन हैं। आज हमारे उत्तर प्रदेश के मुख्य मन्त्री श्री पन्त जी कहते हैं कि उत्तर प्रदेश की सरकार ने सन् १९ १ में पुलिस पर ७ करोड़ २८ लाख ६०० सौ रुपये व्यय किये हैं और शिक्षा पर केवल सात करोड़ पचासी लाख तीस हजार एक सौ रुपये खरच हुये हैं। हमसे एक डिप्टी कलक्टर ने कहा था कि अवध की जेलों में ८० प्रतिशतक ब्राह्मण और क्षत्रिय जातियों के आदमी हैं। अभी समाचार पत्रों में निकला है कि भूपत डाकू के सहायक सौराष्ट्र प्रान्त में नौ राजे और रानियाँ और सत्तर बड़े २ परिवारों के आदमी पुलिस ने पकड़े हैं। (प्रभात हिन्दी ६ मार्च नई देहली) उत्तर मिलता है अब यह हिन्दुस्तान है जी जनाब हिन्दुस्तान है यहां के निवासी हिन्दू हैं यदि इस का अर्थ देखना हो तो पं० लेखराम जी की बनाई "आर्य हिन्दु और नमस्ते की तहकीकात और फारसी की लुगात (कोषो) को पढ़िये मेरा मन नहीं चाहता कि इस शब्द पर कुछ अधिक लिखूं प्रभु ऐसी कृपा करो कि हम इस देश के निवासी सच्चे आर्य बन जावें।

।। ओं शम् ।।

आदर्श शिक्षाप्रणाली

(पष्ठ १६१ का शेष)

की उस पवित्र होमाग्नि को प्राप्त किया है जो समस्त मलिनता को भस्म कर के इस विश्व में आप को समृद्धि प्रदान करके परलोक में मुक्ति का आनन्द दे सकेगी।

श्रद्धा और भक्ति के साथ इस पवित्र ज्ञानाग्नि को प्रबुद्ध और सुरक्षित रखिए, जिस प्रकार पुराने याज्ञिक लोगों ने इसे सुरक्षित रखा था। आप देखेंगे कि कल्याण और मांगल्य आपके साथ है।

साहित्य समीक्षा

वैदिक कर्तव्य शास्त्र;—लेखक पं० धर्मदेव जी विद्यावाचस्पतिः प्रकाशक—प्रकाशन मंदिर, गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगड़ी जि० सहारनपुर उ० प्र० पृष्ठ संख्या २६० मूल्य १॥)

श्री पं० धर्मदेव जी विद्यावाचस्पति विरचित वैदिक कर्तव्य शास्त्र का आद्योपान्त अवलोकन किया। मुझे यह लिखते हुए हर्ष होता है कि पुस्तक में मानव जीवन के प्रत्येक क्षेत्र के कर्तव्यों का निर्देश वेद एवं शास्त्रों के आधार पर बड़ी सुन्दरता एवं रोचक रीति से किया गया है। मानवता के पूर्ण विकास के लिए जो अपरिहार्य तत्त्व हैं जैसे विश्वबन्धुत्व, निर्भयता, सामाजिक एवं वैयक्तिक कर्तव्य, अध्यात्मता, आत्म संयम, वर्णाश्रम धर्म, राष्ट्र के प्रति कर्तव्य, स्वतन्त्र संरक्षण, सर्व समविकास आदि उन समस्त अमूल्य वैदिक उपदेशों का उत्तम एवं प्रशस्त सकलन इस ग्रन्थ में हुआ है। इस प्रकार की वैदिक संस्कृति एवं परम्पराओं के दिग्दर्शन से वेद एवं भारतीय शास्त्रों के महत्त्व तथा गौरव की छाप मानव हृदय पर अवश्यंभावी है। श्री पंडित जी स्वयं आर्य जगत् के प्रतिष्ठित विद्वान् एवं प्रवक्ता हैं, तदनुरूप ही यह ग्रन्थ भी है, इसमें किंचित् भी सन्देह नहीं। वैदिक आदर्शों एवं भावनाओं के जिज्ञासुओं के लिये यह एक अपूर्व ग्रन्थ है। आशा है जनता इससे पूर्ण लाभ उठायेगी।

आचार्य द्विजेन्द्रनाथ
शास्त्री सिद्धान्तशिरोमणि
मुख्याधिष्ठाता, गुरुकुल वृन्दावन मथुरा

षड्दर्शन समन्वय—लेखक श्री स्वामी ओमानन्द जी तीर्थ। प्रकाशक—सांख्ययोग ग्रन्थमाला प्रकाशन समिति अजमेर पृष्ठ संख्या ३०० मूल्य ९)

श्री स्वामी ओमानन्द जी तीर्थ एक विद्वान् और योगी संन्यासी हैं जो पातञ्जल योग प्रदीपादि उत्तम ग्रन्थों की रचना के कारण अच्छी ख्याति प्राप्त कर चुके हैं। आपने पातञ्जल योग प्रदीप की भूमिका में षड्दर्शनों के विरोधाविरोध पर कुछ प्रकाश डाला था जो पृथक् पुस्तक रूप में भी छप गया था किन्तु प्रस्तुत पुस्तक उसका परिवर्धित और अत्यधिक उपयोगी संस्करण है। महर्षि दयानन्द जी को छोड़कर मध्यकालीन सब आचार्यों ने जिनमें श्री शंकराचार्य, श्री मध्वाचार्य वा आनन्दतीर्थ श्री रामानुजाचार्य, श्री वल्लभाचार्य आदि भी सम्मिलित हैं अपने भाष्यों में दर्शनशास्त्र का परस्पर विरोध माना है। उनके अनुसार सांख्य शास्त्रकार कपिल मुनि अनीश्वरवादी थे। पूर्वमीमांसाकार जैमिनि भी ईश्वरवादी न थे। न्याय, सांख्य, वेदांत आदि शास्त्रों के सृष्ट्युत्पत्ति जीवेश्वर सम्बन्ध आदि विषयक सिद्धान्त एक दूसरे से न केवल भिन्न किन्तु विरोधी हैं। महर्षि दयानन्द जी ने सत्यार्थप्रकाश में इस अशुद्ध धारणा को दूर करने का प्रयत्न किया और यह भी बताया कि सांख्यशास्त्रकार कपिल मुनि नास्तिक न थे किन्तु वे इस विषय का दिग्दर्शन मात्र ही करा सके। अधिक विस्तार से इस पर प्रकाश नहीं डाल सके क्योंकि अन्य अनेक आवश्यक वेदादि विषयों पर उस में विस्तृत प्रकाश डालना आवश्यक था। यह बड़े हर्ष की बात है कि श्री स्वामी ओमानन्द जी ने इस विवादास्पद किन्तु अत्यन्त महत्त्वपूर्ण विषय पर प्रस्तुत पुस्तक में विस्तृत प्रकाश डाला है और सांख्य शास्त्रकार और पूर्वमीमांसाकार के अनीश्वरवादी होने तथा यज्ञ में पशु बलि समर्थक होने आदि का भी सप्रमाण खण्डन किया है। न्याय, वैशेषिक,

सांख्य, योग, पूर्वमीमांसा, उत्तरमीमांसा इन छः दर्शनों के मुख्य २ सिद्धांतों का प्रतिपादन करते हुए इस पुस्तक में उनके समन्वय तथा विरोधाभासपरिहार का प्रशंसनीय प्रयत्न किया गया है। हम इस प्रयास का हार्दिक अभिनन्दन करते हैं और आशा करते हैं कि दर्शनों को परस्पर विरोधी मानने वाले विद्वान् भी इस उपयोगी ग्रन्थ को निष्पक्षपात भाव से पढ़ कर लाभ उठाएंगे। पृ० १७ में "साक्षादप्यविरोधं जैमिनिः" इस वेदांत सूत्र के पश्चात् पूर्व मीमांसा तथा अध्याय १।२।३१, अध्याय १।४।११ अध्याय ४।३।११-१४ अध्याय ४।४।५ जैमिनि के ईश्वरवादी होने में प्रमाण हैं। (पृ० १८) ऐसा लिखने के स्थान पर यदि उन सूत्रों का अर्थ सहित उल्लेख कर दिया जाता तो पाठकों को अधिक लाभ होता। आशा है अगले संस्करण में ऐसा ही कर दिया जाएगा। शेष पुस्तक मननीय और उपादेय है। ध० दे०

पूंजीपतियों की कहानी—लेखक श्री चतुरसेन जी गुप्त। प्रकाशक—गुप्ता प्रेस शामली उत्तरप्रदेश मू० २)

आजकल पूंजीपति यह एक घृणासूचक सा शब्द बन गया है। यदि निर्धनों का रक्त शोषण करके कोई व्यक्ति ऐसा धनी बनता और उन पर अत्याचार करता है तो वह वस्तुतः निन्दनीय है किन्तु स्वयं धनी होना वैश्यों के लिये अनुचित नहीं है यदि उस धन को परिश्रमपूर्वक धर्म और न्याय संगत मार्ग से कमाया जाए। इसमें भाग्य या पूर्वजन्म के पुण्य कर्म भी मनुष्य की कमी २ सहायता करते हैं इसी बात को यहां अनेक मनोरंजक किन्तु सच्ची कहानियां द्वारा बताया गया है। लेखक महोदय ने भूमिका में लिखा है कि 'वास्तव में यह सब कुछ प्राणी के पूर्व जन्म के संचित कर्मों पर भी आश्रित है। अतः आज की वह विचारधारा बड़ी ही निकम्मी, तथ्यरहित तथा नास्तिकतापूर्ण है जिसमें एक दूसरे का खून चूसने, अधिकार हड़पने और डाका डालने से ही पूंजी प्राप्त होनी बताई जाती है।"

निस्सन्देह पुस्तक आजकल के साम्यवाद की विचारधारा के सर्वथा विरुद्ध किन्तु अत्यन्त रोचक और शिक्षाप्रद है। भाषा परिष्कृत और प्रभावोत्पादिनी है। पुस्तक को आद्योपान्त पढ़ने पर एक विशेष प्रभाव मन पर पड़ता है।

कणिक नीति— उद्धारक, अनुवादक एवं व्याख्याता—श्री स्वामी वेदानन्द जी। प्रकाशक—श्री कन्हैयालाल वैदिक प्रकाशन निधि गाजियाबाद (जिला मेरठ) प्राप्ति स्थान—सार्वदेशिक प्रेस मूल्य ≈) देहली नं० ७।

श्री स्वामी वेदानन्द जी आर्य जगत् के सुप्रसिद्ध विद्वान हैं जिन्होंने महाभारत में से धृतराष्ट्र के मन्त्री कणिक की नीति का संग्रह कर के अनुवाद तथा टिप्पणी सहित इस पुस्तिका के रूप में प्रकाशित किया है। इसमें अत्यन्त कुटिलतापूर्ण राजनीति का उपदेश किया गया है जिस के दो तीन उदाहरण ही पर्याप्त होंगे।

पृ० ३० श्लोक ६० में कहा है :—

प्रत्युत्थानासनाद्येन, संप्रदानेन केनचित्।
प्रतिविस्रब्धघातीस्यात्, तीक्ष्णदंष्ट्रो निमग्नक.॥

स्वामी वेदानन्द जी को टिप्पणी—(जिसकी हत्या करनी है यदि आवश्यकता हो, तो उसका आदर सत्कार करें। उसके आने पर खड़ा हो जाए, उसे बैठने को आसनादि दे। सर्वथा विश्वास उत्पन्न कराए। पृ० ३०)

पृ० ३२ श्लो० ६६ में कणिक ने कहा है :—

वाचा भृशं विनीतः स्याद्, हृदयेन तथा क्षुरः।
स्मितपूर्वाभिभाषीस्यात्, सृष्टो रौद्रे च कर्मणा।

अनुवाद—वाणी में अत्यन्त विनम्र होवे किन्तु हृदय में तो छुरा। भयङ्कर कर्म में प्रवृत्त होकर भी मुस्कराकर बोलने वाला हो।

अनुवादक की टिप्पणी—जब किसी के प्रति कोई दारुण कर्म करने को प्रवृत्त होने लगे, तब उस समय अपने व्यवहार तथा बोलचाल में कठोरता एवं कटुता न आने दे, प्रत्युत बोल चाल में मधुरता का प्रदर्शन करे। हँस हँस कर बोले, किन्तु हृदय में विष घोले।" (पृ० ३२)

ऐसी ही अन्य असत्य तथा छल कपट की शिक्षाओं से यह पुस्तिका भरी हुई है। यद्यपि अनुवादक महोदय ने भूमिका में लिखा है कि 'नीतिशास्त्र के सम्बन्ध में एक बात का जान लेना आवश्यक है कि यह राज्यतन्त्र संचालकों के लिये है सर्वसाधारण के लिये नहीं है। मुनि तथा राजा के व्यवहार में भेद अनिवार्य है।" तथापि हमें भय है कि इस प्रकार की शिक्षाओं को सर्व-साधारण शीघ्रता से ग्रहण कर लेंगे और उस का बड़ा भयङ्कर परिणाम होगा। कणिक ने अपनी नीति द्वारा धृतराष्ट्र को बुरे मार्ग में प्रवृत्त कर के हानि ही करवाई। ऐसे व्यक्ति के नीति ग्रन्थ को प्रकाशित करने से (विशेषतः वैदिक प्रकाशन निधि द्वारा) हमें तो लाभ की अपेक्षा सत्य और सदाचार की दृष्टि से हानि ही अधिक प्रतीत होती है॥

नारद नीति—उद्धारक, अनुवादक तथा व्याख्याता—श्री स्वामी वेदानन्द जी। प्रकाशक और मुद्रक—पूर्ववत् मूल्य)

इस में महाभारत सभापर्व में से सर्वधर्मवित् नारद महर्षि के नीति विषयक उत्तम उपदेशों का अनुवाद और टिप्पणी सहित संग्रह है जिसे हम अत्यन्त उपयोगी समझते हैं। नारद जी के विषय में महाभारत में लिखा है कि

वेदोपनिषदां वेत्ता, ऋषिः सुरगणार्चितः।
न्यायविद् धर्म तत्त्वज्ञः, षडङ्गविदनुत्तमः॥
वक्ता प्रगल्भो मेधावी, स्मृतिमान्
नयवित्कविः॥ इत्यादि

इन से नारद महर्षि की विद्वत्ता और योग्यता का परिचय मिलता है। ऐसे एक आप्त राजनीतिज्ञ ने युधिष्ठिर को प्रश्न द्वारा राजनीति के जो तत्त्व समझाये हैं उनका इस पुस्तिका में उत्तमता से सकलन किया गया है। श्री स्वामी वेदानन्द जी ने अनुवाद के अतिरिक्त स्थान २ पर तुलना के रूप में मनुस्मृति आदि के श्लोक भी उद्धृत किये हैं तथा व्याख्यारूप में उपयुक्त टिप्पणियाँ दे दी हैं जिन से पुस्तिका की उपयोगिता बहुत बढ़ गई है॥ ध० दे०

राष्ट्रपिपासा

बेल नेह की चढ़े प्रेम वारि से पले,
कि देश की अज्ञानता तुषार हो गले,
ऊँचा उठायें देश को लें शपथ सभी,
कि देश के लिए सब शासक हों भले भले।

समाज पुकारता कि साहित्य नवीन हो,
यहाँ पर फैला पुनः गौरव प्राचीन हो,
सब असीमित निविड़ तम में हों पड़े नहीं,
जगे समाज फिर प्रकाश के आधीन हो।

युवको ! तुमसे देश नवीन रक्त माँगता,
कौन बवाल देश का एक ओर टाँगता ?
बिगड़ी इसकी दशा अब तुम पर भार है,
कि निरखो जरा यह क्या वचन माँगता ?

सारे यहाँ एक हों गले से गले मिलें,
कि आपत्तियाँ राष्ट्र की दूर हो टलें,
देश का हो ऊँचा फिर भाग्य सितारा,
कि निज राष्ट्र के निमित्त सब एक हो चलें॥

पग बढ़ाओ आगे यदि तुममें जोश हो,
कहे देश जग में मेरा विजय घोष हो,
पुनः हो देश अपना सोने की चिड़िया,
कहलाये जगद्गुरु शक्तियों का कोष हो।

हर-मानव के भरी भावना नवीन हो,
मुँदे, खुलें ज्ञान-चक्षु जो बुद्धि हीन हों;
हो दूर तमिस्रा, समाज हो नया नया,
स्वतन्त्र हो विचरें सभी जो रागरीन हों॥

इस भूमि पर हो पुनः ओंध्वज फहराता,
बच्चा बच्चा गीत राष्ट्र के हो गाता,
'विक्षिप्त' देश की हो मारी छलनायें,
कि देश नवीन हो सुख वैभव लहराता॥

★ ★ ★

रमाकान्त 'विक्षिप्त',

स्वतन्त्र भारत में गोवध बन्द होना अनिवार्य

(लेखक—श्री पण्डित अयोध्या प्रसाद जी बी० ए० वैदिक अनुसन्धान विद्वान् कलकत्ता)

[लेखक भारत के अमूल्य रत्न—कांग्रेस आन्दोलन में कई बार जेल गये। अरबी, फारसी, उर्दू अंग्रेजी, हिन्दी, बंगला, संस्कृत, फ्रैंच, जर्मन, आदि १४ भाषाओं के प्रौढ़ विद्वान्, अमेरिका, योरुप के अनेक देशों में वैदिकधर्म के अनुपम तथा सच्चे प्रचारक, ईसाई-मुसलमान-यहूदी-बौद्ध आदि अनेक मतों के विशेषज्ञ, आर्यसमाज के प्रतिष्ठित-सदाचारी और त्यागी विद्वान्, आर्यसमाज कलकत्ता के प्रतिष्ठित आचार्य हैं। पाठक उनके गम्भीर और उत्कृष्टलेख से लाभ उठावें। सम्पादक]

सृष्टि के समस्त प्राणियों में मनुष्य की ही सृष्टि शिरोमणि समझी जाती है और अर्बी भाषा में इसे अशरफुलमखलूकात कहते हैं, कारण मनुष्य के मस्तिष्क तथा हृदय के यन्त्रों की स्रष्टा ने इस प्रकार की रचना की है कि पूर्णतया विकास कर लेने पर मनुष्य, मनुष्य से देवत्व अवस्था को प्राप्त करने में समर्थ हो जाता है। मस्तिष्कयन्त्र की शक्ति के विकास से तो मनुष्य अपरा तथा परा विद्याओं के रहस्यों को अवगत कर समस्त ब्रह्माण्ड की शक्तियों को अपने वश में करके संसार में सुख तथा शांति के विस्तार का कारण बन सकता है। परन्तु इस महान् उद्देश्यकी उपलब्धि के लिये मस्तिष्क की शक्ति के साथ साथ हृदय-यन्त्र की शक्ति का विकास भी उसी अनुपात से होना चहिये। मस्तिष्क शक्ति का विकास मनन-शीलता के विकास के ऊपर निर्भर है तथा हृदय-यन्त्रकी शक्ति का विकास प्रेम भावना, सहानुभूति तथा सहृदयता आदि गुणों के विकास के ऊपर निर्भर है। यदि मस्तिष्क-शक्ति के विकास के अनुपात में हृदययन्त्र की शक्ति का विकास नहीं हो सका तो मानव-समाज में सुख और शांति का अभाव हो जाता है। इसी लिये वेद में आदेश दिया गया है कि:—

ओं सहृदयं सांमनस्यमविद्वेषं कृणोमि वः।
अन्योअन्यमभि हर्यत वत्सं जातमिवघ्न्या ॥
अथर्ववेद ३।३०।१

भाषानुवाद—हे मनुष्य! मैं परमात्मा तुम्हारे लिये सहृदयता, उत्तम मनोभावयुक्तता तथा निर्वैरताका विधान करता हूँ, तुम लोग परस्पर एक दूसरे के साथ इस प्रकार प्रीतिपूर्ण बर्त्ताव करो जैसे अहिंसनीय गौ अपने बच्चे के प्रति करती है।

मानसिक शक्तियों की विकसित अवस्था का सौन्दर्य्य हृदयशक्ति की विकसित अवस्था अर्थात् सहृदयता तथा सहानुभूति की विकसित अवस्था पर ही निर्भर है। इसी आदर्श को लक्ष्य बनाकर प्राचीन आर्य जाति ने सब प्रकार से अपने आपको उन्नति के शिखर पर आरूढ़ किया था। उनकी सहानुभूति तथा सहृदयता ने विश्वप्रेम का रूप धारण कर लिया था, अतः प्राणिमात्र उनकी सहानुभूति के पात्र थे। इसी विश्वप्रेम की भावना ने अहिंसा की भावना को उनके अन्तःस्तल में उद्बोधित कर दिया था, जिसके आदेश में वे परमात्मा से वेद मन्त्रों द्वारा इस आशय की प्रार्थना किया करते थे कि प्रभु उन्हें समस्त प्राणियों के प्रति प्रेम तथा सहानुभूति के भाव को उनके हृदय में दृढ़ करे, यथाः—

"ओ३म् दृते दृंह मा मित्रस्य मा चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम्। मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे॥" यजुर्वेद। अ० ३६मं० १८,

भाषानुवाद:—हे महाशक्ति सम्पन्न परमात्मन्! आप (हमारे हृदयों को) दृढ़ कर दें जिससे

समस्त प्राणिमात्र मुझे प्रेम की दृष्टि से देखें और मैं भी समस्त प्राणियों को मित्र (प्रेम) की दृष्टि से देखा करूं। हम लोग परस्पर एक दूसरे को मित्र की दृष्टि से देखा करें।

इससे बढ़कर विश्वप्रेम विषयक आदर्श और क्या हो सकता है? पारस्परिक प्रेम तथा सहानुभूति के विस्तार की सीमा केवल सजातीय मनुष्य जाति में ही सीमित नहीं रही, बल्कि समस्त प्राणिमात्र प्रेम तथा सहानुभूति के पात्र रहे। जीवधारियों के जीवन की पवित्रता ही परम आदर्श समझी जाती रही। मानवता तथा पाशविकता का अन्तर भी इसी जीवन की पवित्रता के आदर्श पर निर्भर है। जहां समस्त प्राणियों के जीवन के प्रति सहानुभूति तथा उनके संरक्षण का भाव विद्यमान है वहां मानवता का परिचायक चिन्ह है और जहां अन्य प्राणियों को अपने जीवन के संरक्षण में विनाश करने का भाव है वही पाशविकता है। जिओ तथा सबको जीने दो (Live and let live) मानव जीवन का परम आदर्श होना चाहिये। क्षुद्र पशुओं के प्रति यदि प्रेम तथा सहानुभूति के भाव न हों तो मनुष्य के प्रति भी इस भाव को धारण करना कठिन है। इंग्लिश भाषा के एक बड़े विद्वान् लेखक रस्किन (Ruskin) महोदय ने ठीक ही कहा है:—

"Don't fancy that you will lower yourselves by sympathy with the lower creatures, you cannot sympathise with the higher, unless you do with these". ......Ruskin

अर्थात्:—तुम ऐसी कल्पना मत करो कि क्षुद्र जन्तुओं के प्रति सहानुभूति प्रकट करने से तुम अपने आपको नीचे गिरा दोगे, वरन् तुम उच्च जीवधारियों (अर्थात् मनुष्यों) के प्रति तबतक सहानुभूति प्रकट नहीं कर सकते जब तक तुम इन (क्षुद्र जन्तुओं) के प्रति सहानुभूति) प्रकट न किया करो।

अतः किसी जाति विशेष की सभ्यता के नापने का मापक सहानुभूतिका भाव है। जिस जाति की सहानुभूति की भावना का विस्तार जितना ही अधिक हो, उस जाति की सभ्यता उतनी ही अधिक उच्च समझी जाती है। इसी कारण प्राचीन आर्यों ने जीवन का परम आदर्श सहानुभूति तथा विश्व-प्रेम पर निर्धारित किया था। वैदिक परिभाषा में इस प्रकार के जीवन को याज्ञिक जीवन कहा जाता है। यह ही मानव जीवन को उच्चतम अवस्था में पहुँचाने का एकमात्र कारण है, जैसा श्रुति कहती है:—'यज्ञो वै श्रेष्ठतमं कर्म।' अर्थात् यज्ञ ही श्रेष्ठतम कर्तव्य है।

अतः जीवन को श्रेष्ठतम बनाने के लिये जिन साधनों की आवश्यकता पड़ती है उनमें सब से मुख्य साधन गौ ही को समझना चाहिये। गौ के बिना याज्ञिक जीवन बनाना सर्वथा असम्भव ही है, इसलिये मन्त्र द्वारा प्रार्थना की गयी है कि गार्हस्थ-जीवन में बहुत संख्या में गौ की प्राप्ति हो। यथाः----

"ओ३म् आप्यायध्वमघ्न्या इन्द्राय भागं प्रजावतीरनमीवा अयक्ष्मा मा वस्तेन ईशत माघशंसो ध्रुवा अस्मिन् गोपतौ स्यात बह्वीर्यजमानस्य पशून् पाहि" ॥

यजु० १।१ ॥

अर्थ:----अर्थात् तुम लोग सब उन्नत अवस्था को प्राप्त करो,हे परमात्मन्! परम ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिए बहुत सन्तानवाली, सब प्रकार की व्याधि तथा राजयक्ष्मा आदि रोग रहित गौवें जो सब प्रकार से सर्वथा अहिंसनीय हैं उनको सदैव नियत कीजिये, तथा कोई पापी चोर डाकू समाज में न रहें, तथा यजमान अर्थात् गृहस्थ के गौ आदि पशुओं की निरन्तर रक्षा कीजिये तथा इस गौ के स्वामी के पास आपकी कृपा से अनेकानेक गायें निश्चल हमेशा रहें।

अतः सनातन वैदिक धर्मानुसार गौ ही को याज्ञिक जीवन का केन्द्र समझना चाहिए । यज्ञ के ऊपर ही मनुष्य का ऐहिक तथा पारलौकिक जीवन निर्भर है । यज्ञ के अभाव में सांसारिक जीवन-यापन के साधनों की उपलब्धि भी नहीं हो सकती है । गीता में भगवान् कृष्ण ने बहुत ही ठीक कहा है:—

'अन्नाद्भवन्ति भूतानि पर्जन्यादन्नसंभवः ।
यज्ञाद्भवति पर्जन्यो यज्ञः कर्मसमुद्भवः ॥"

गीता ३।१४

अर्थात्:—समस्त प्राणी अन्न से ही उत्पन्न होते हैं और अन्न का सृजन वर्षा द्वारा होता है और वर्षा यज्ञ द्वारा होती है और यज्ञ वेदविहित कर्मों से होता है ।

स्पष्ट है कि वेदविहित कर्मों के सम्पादन के लिए गोघृत, गोदुग्ध आदि गोजाति से प्राप्त होने वाले पदार्थों ही कि मुख्यतया आवश्यकता पड़ती है, अ त: गोघृतादि न हो तो वेदविहित कर्म नहीं हो सकते । वेदविहित कर्मों के बिना यज्ञ नहीं हो सकता और यज्ञ के अभाव से वर्षा के अभाव की सम्भावना है और वर्षा के अभाव से अन्नोत्पादन का अभाव हो जायगा और अन्नाभाव मे प्राणियों का जीवन असम्भव हो जाता है । अतः यज्ञ ही को जीवन-धारण का मूल समझना चाहिए तथा यज्ञ का मूल गो जाति से प्राप्त गोघृत आदि गव्य पदार्थ है और घृतादिकी प्राप्ति के लिए गौ की आवश्यकता है । अतः गौ ही वैदिक सनातन धर्म का मुख्य केन्द्र है, इसलिए वेदमन्त्र द्वारा गौ की प्राप्ति के लिये प्रार्थना की जाती है:—

ओं एतायामोप गव्यन्त इन्द्रमस्माकं सुप्रमतिं वावृधाति । अनामृणः कुविदादस्य रायो गवां केतं परमावर्जते नः ॥

ऋग्वेद १।३।१

अर्थात्:—हे लोगो ! आओ अनेकानेक गौवों की प्राप्ति के लिए हम लोग इन्द्र भगवान् की शरण में आ वें, वही भगवान् हम लोगों की सुबुद्धि का विकास करता है । और वही अविनाशी परमात्मा अपनी गौवों से प्राप्त करने वाले धन को तथा गो सम्बन्धी उच्चकोटि का ज्ञान भी हमें निरन्तर प्रदान करता है । हम कभी परस्पर द्वेष न करें । जानना चाहिए कि गौ ही श्रेष्ठ धन है, गोरक्षण. गोपालन आदि विषय का ज्ञान हम प्राप्त करें ।

अनेकानेक गौवों की प्राप्ति तथा गो विषयक ज्ञान की उपलब्धि आर्य जाति के गार्हस्थ्य जीवन का परम ध्येय है । इसी हेतु गोविषयक अनेकों श्रुतियां वेदों में उपलब्ध होती हैं, । गौ का माहात्म्य कितना अधिक समझा जाता रहा इसका परिचय तो ऋग्वेदोक्त निम्नांकित मंत्र द्वारा भलीप्रकार मिल जाता है:—

"ओ३म् माता रुद्राणां दुहिता वसूनां स्वसादित्यानाममृतस्य नाभिः । प्र नु वोचं चिकितुषे जनाय मा गामनागामदितिं वधिष्ट ॥" ऋ० ८।१०।१५

अर्थात्:—गौ रुद्रदेवता की जननी है, वसु देवताओं की कन्या है, आदित्य देवताओं की बहिन हैं और अमृत की नाभि अर्थात् केन्द्र स्वरूप हैं । अतः समझदार मनुष्यों में मैं इस बात की घोषणा करता हूँ कि कोई भी व्यक्ति निरपराध तथा अवध्य. अन्न प्रदान करने वाली गौ की हिंसा न करने पावे ।

रुद्रों की संख्या ग्यारह हैं और वे प्राणियों के शरीर तथा ब्रह्माण्ड रूपी विराट् कार्य में स्थित ११ भागों में विभक्त प्राण, अपान व्यान आदि जीवन धारिणी शक्तियां हैं । इन जीवनधारिणी शक्तियों की माता अर्थात् जननी स्वरूप गौ को समझना चाहिए । दूसरे गणदेवताओं में वसु है जिनकी संख्या आठ है । वे अग्नि पृथ्वी, जल आदि आठ हैं जिनके कारण प्राणीमात्र का निवास सम्भव है । उन दिव्य शक्तियों की कन्या स्वरूप गौ को समझना चाहिए । आदित्य नाम सूर्य का है इन आदित्यों की संख्या १२ है । स्पष्ट है कि सूर्य के बिना ब्रह्मांड को धारणपोषण आदि की

सम्भावना हो ही नहीं सकती। गौ को इन आदित्य देवताओं की वहन स्वरूप समझना चाहिए। इन प्रधान गणदेवताओं के साथ सम्बन्ध स्थापनकर मन्त्र में बड़ी ही महत्वपूर्ण बात एक वाक्य में यह कही गयी है कि। अमृतस्य नाभिः" अर्थात् गौ अमृत रसकी नाभि अर्थात् केंद्र स्वरूप हैं। गौ को अमृत की नाभि क्यों कहा गया यह बात मन्त्र गत उक्तियों से स्पष्ट है। अर्थात् प्राणी तथा ब्रह्मांड स्थित प्राणों की जननी तथा समस्त निवासभूत तत्वों की कन्या तथा पालन-पोषण धारण करने वाली दिव्य शक्ति की वहन वा सहकारिणी होने से गौ अमृत की नाभि वा केन्द्र स्वरूप है। इसी लिए समस्त समझदार मनुष्यों में इस बात की घोषणा की जाती है कि "इस निष्पाप तथा अवध्य अन्न प्रदान करने वाली गौ की हिंसा कोई न करने पावे।"

गौ के जीवन की पवित्रता तथा उनके रक्षा के लिए वेद ने कैसे खुले शब्दों में घोषणा कर दी है। वैदिक साहित्य से पूर्ण परिचित न होने ही के कारण कतिपय योरोपीय विद्वान् तथा उनके अनुयायी एतद्देशीय विद्वान् भी ऐसी धारणा रखते हैं तथा लेख द्वारा उसका प्रचार भी करते हैं कि प्राचीन काल में अर्थात् वैदिक काल में आर्य लोग गोमेध नाम का यज्ञ किया करते थे और इस यज्ञ में गौ का हनन किया करते थे। इससे बढ़कर आर्य्य संस्कृति पर और बृहत्तर कुठाराघात क्या हो सकता है। वैदिक शब्दों के वास्तविक अर्थों के न जानने तथा वेद प्रतिपादित विहित कर्मों की पद्धति की अज्ञानता के कारण ही गोमेध शब्द का ऐसा विकृत अर्थ कर दिया गया है। पाठकों की जानकारी के लिए वेद प्रतिपादित गोमेध शब्द का वास्तविक अर्थ बतला दिया जाता है। शतपथ ब्राह्मण में गोमेध शब्द का अर्थ ऐसा किया गया है:—

'अथ गौः प्राणमेवैतयात्मनस्त्रायते प्राणो हि गौरन्नं हि गौरन्न' हि प्राणस्तां रुद्राय होत्रे ददात्।'

शतपथ ब्रा० ४।३।४।२५

अर्थात्—गौ के विषय में प्राण ही गौ है। (मनुष्य) इससे अपनी रक्षा करता है। प्राण ही गौ है। अन्न ही प्राण हैं, उसे रुद्र होता को दिया॥ इससे यह बात सिद्ध हुई कि गौ शब्द के अर्थ उक्त ग्रंथ में 'अन्न' और 'प्राण' के हैं।

महर्षि गार्ग्यायन कहते हैं—"गोमेधस्तावच्छब्दमेध इत्यवगम्यते। गां वाणी मेधया संयोजनमिति तदर्थात्। शब्दशास्त्रस्य ज्ञानमात्रस्य सर्वेभ्यः प्रदानमेव गोमेधयज्ञः तद्वचनं च शाब्दिकसन्निधानादर्थानामेवेति विज्ञेयम्" ॥२२॥

अर्थात्—गोमेध का अर्थ है 'शब्दमेध' गौ का अर्थ है वाणी और मेधा का अर्थ है बुद्धि। अतः गोमेध का अर्थ हुआ—वाणी का बुद्धि के साथ संयोजन' सबको शब्दशास्त्र का ज्ञान देना यही 'गोमेध' है।

गोमेध का एक अर्थ और हो सकता है-'जहाँ कि भूमि' गौएं और अन्न क्रम से उर्वरा, बलवान् और स्वादिष्ट हो, उस स्थान को 'गोमेध' कहते हैं और ऐसी भूमि बनाने की या नयी भूमि तलाश करके उसको इस योग्य बनाने के पुण्य कर्म को 'गोमेध यज्ञ' कहते हैं।

प्राचीन पार्सी भाषा में 'गोमेध' शब्द ही का विकृत रूप 'गोमेज़' (Gomez) शब्द बन गया है। पार्सियों की भाषा में भी 'गोमेज़' शब्द का अर्थ गोहत्या द्वारा यज्ञ सम्पादन करना नहीं है। डा० मार्टिन हांग (Dr. Martin) हॉग साहब ने पार्सी धर्मशास्त्रों का पूर्णतया अध्ययन किया था। उन्होंने अपनी पुस्तक Essays on the sacred language Writings and religions में लिखा है कि:—

The parsi religion enjoins agriculture as religious duty and this is the Whole meaning of GOMEZ.

अर्थात्—पार्सी धर्म में खेती करना एक धार्मिक

कर्तव्य समझा जाता है, अतः खेती धर्म से सम्बन्ध रखने वाले समस्त क्रियाकलाप का नाम 'गोमेज' है।

इस उक्ति से शतपथ ब्राह्मणोक्त कथन की परिपुष्टि होती है।

वेद मन्त्रों में गौ' शब्द के पर्यायवाचक निम्नोक्त शब्द दिये गये हैं:—

अघ्न्या, उस्रा, उस्रिया, अही, मही, अदिति, इडा जगती, शक्करी (निघण्टु २।११)

इनमें अघ्न्या शब्द का अर्थ यास्काचार्य ने यह किया है:-अघ्न्या अहन्तव्या भवति। (निरुक्त ११।४४)

अर्थात्—गौ को अघ्न्या इसलिये कहते हैं क्योंकि वह अहन्तव्या—हनन करने योग्य नहीं है—दुर्गाचार्य ने इस पर भाष्य करते हुए लिखा है:—अघ्न्या कस्मात्? सा हि सर्वस्यैव अहन्तव्या भवति!'

अर्थात् गौ को अघ्न्या इसलिए कहा जाता है क्योंकि वह सबके लिये ही अहन्तव्या अर्थात् हनन करने योग्य नहीं। इसी 'अघ्न्या शब्द के उपर्युक्त अर्थ की पुष्टि में महर्षि व्यास ने कहा है:—

'अघ्न्या इति गवां नाम क एतां हन्तुमर्हति।
महच्चकाराकुशलं वृषं गां वाऽलभेत्तु यः'
(महाभारत, शांतिपर्व अ० २६३

अर्थात्—अघ्न्या गौओं का नाम है, इसका कोई हनन नहीं कर सकता। जो गौ या बैल का हनन करता है वह महा पापी है?

अही शब्द का अर्थ भी निघण्टु टीकाकार श्री देवराज यज्वा लिखते हैं:—

'अहीनाहन्तव्या वा—अर्थात् गौ का नाम अही इसलिये है क्योंकि वह न हन्तव्या-हनन करने योग्य नहीं है।

इस प्रकार गौ के पर्याय अन्यान्य शब्दों के विषय में समझ लेना चाहिये। इसीलिये मन्त्र में कहा है:-

'गां मा हिंसीरदितिं विराजम्' यजु० १३।४३)

जो गौ अहिंसनीय है और अन्न प्रदान करने वाली है उसकी हिंसा न करें।

गोरक्षा के सम्बन्ध में संक्षेपतः अनेकों बातें कही गयीं। वैदिकधर्म के अतिरिक्त ईसाई, यहूदी तथा मुसलमान धर्मावलम्बियों की धार्मिक पुस्तकों में भी गोरक्षा करने का आदेश आया है तथा गौ की हिंसा को सर्वथा निषिद्ध बतलाया गया है! अहिंसा धर्म को संसार के प्रायः समस्त धर्मप्रचारकों ने स्वीकार किया है और धार्मिक जीवन के लिये अहिंसा व्रत को परम आवश्यक समझा है, जैन, बौद्ध तथा सनातन धर्मावलम्बियों की बात कौन चलावे। ईसाई धर्म के संस्थापक हजरत ईसा मसीह का भी ऐसा ही उपदेश रहा। ईसाई धर्मावलम्बियों की मान्य पुस्तक बाइबल (Bible) है उसमें कतिपय स्थानों पर पशु हिंसा का निषेध किया है विशेष कर गाय या बैल की हत्या को तो मनुष्य की हत्या के समान कहा गया है। पाठकों के जानने के लिये सक्षेपतः कई स्थलों के वाक्य अक्षरशः उद्धृत किये जाते हैं तथा इंगलिश पंक्तियों के हिन्दी में अनुवाद भी साथ-साथ दिये जाते हैं:—

I will take no bullock out of thy house nor he goats out of thy folds.

For every beast of the forest is mine, and the cattle upon a thousand hills.

I know all the fowls of the mountains : and the wild beasts of the field are mine.

If I were hungry, I would not tell thee : for the world is mine, and the fulness thereof.

Will I eat the flesh of bulls, or

दान-सूची

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, देहली।

(२२—४—१९५२ से २०—५—१९५२ तक)

दान आर्यसमाज स्थापना दिवस

१०) आर्यसमाज कैराना (मुजफ्फर नगर)
२५) ,, मेरठ शहर
२६|||) स्त्री आर्यसमाज दरियागंज, देहली
१०) आर्यसमाज जसपुर (नैनीताल)
३५) ,, किशनपोल बाजार, जयपुर
५१) ,, कांकरिया रोड, अहमदाबाद
७) ,, टमकौर पो० बिसाऊ (जयपुर)
२५) ,, बिहारशरीफ पटना
२५) ,, नामनेर आगरा कैन्ट
१०) ,, सोहना (गुडगांव)
१०) ,, ग्वालियर
१४) श्रीमती जानकीदेवी जी अध्यापिका कन्या पाठशाला रुहालकी दयालपुर पो० भगवानपुर (सहारनपुर)
५) आर्यसमाज पौड़ी (गढ़वाल)
२०) ,, बुलन्दशहर
२५) ,, १९ कार्न वालिस स्ट्रीट, कलकत्ता
५) ,, महम (रोहतक)
२१) ,, गुरुग्राम
५) ,, रजौली (गया)
२१|=) ,, वारसलीगंज, गया
६५||) ,, रतलाम
२५) ,, चांदपुर (बिजनौर)
२५) ,, जमशेदपुर (बिहार)
५) ,, गुलबर्गा (हैदराबाद स्टेट)
२५) ,, प्रतापगढ़ (यू० पी०)
६||) ,, नगीना बिजनौर

५०६=) योग
२८५) गत योग
७९१=) सर्व योग

दान दाताओं को धन्यवाद—

जिन समाजों ने इस सभा की आर्य समाज स्थापना दिवस की अपील पर धन सग्रह न किया हो। वे अब धन संग्रह करके अथवा अपने कोष से एक पुष्कल राशि शीघ्र ही इस सभा के कार्यालय में भिजवा देवें। आर्य-समाजोंको कार्यालयसे स्मरण-पत्र भी भिजवाए जा चुके हैं। अतः अभी तक जिन समाजों से सभा में इस निधि का धन अप्राप्त है, उन्हें अपने कर्त्तव्य का पालन करते हुए सभा के आदेशानुसार धन शीघ्र भिजवाना चाहिए।

कविराज हरनामदास बी० ए०
मन्त्री, सार्वदेशिक सभा

विविध-दान

५१) श्री ठा० संग्रामसिंह जी प्रधान आर्यसमाज

मगरहाँ पो० सीखड़ (मिर्जापुर)
यज्ञोपवीत संस्कार के उपलक्ष्य में
श्री राजगुरु पं० धुरेन्द्र जी शास्त्री
प्रधान सभा-द्वारा
६॥)॥ विविध सज्जनों से

५७॥)॥ योग
५८२।) गत योग
६४०)॥ सर्व्व योग

दान सार्वदेशिक वेद प्रचार निधि

३०) श्री के० सी० पिल्ले, दी किंग काटन ग्रीन्स बौज, नार्थ कोलम्बिया
५) ,, मती सीतादेवी जी गुरुकुल कांगड़ी (सहारनपुर)
१०) ,, प्यारेलाल जी नई देहली
५) ,, मानसिंह जी भदौरिया इलाहाबाद
१००) पं० ठाकुरदत्त शर्मा धर्मार्थ ट्रस्ट अमृत धारा भवन देहरादून
३) विविध सज्जनों से

१५३) योग
१५३) गत योग
३०६) सर्व्व योग

(पृष्ठ १६० का शेष)

७६८ ,, मन्त्री जी आर्यसमाज पाठकपुर पोस्ट असोहा जि० उन्नाव
७६९ ,, मन्त्री जी आर्यसमाज हैदराबाद पोस्ट गोला जि० खीरी
७७० ,, मन्त्री जी आर्यसमाज सालौन जिला रायबरेली
७७१ ,, मन्त्री जी आर्यसमाज लालगंज जिला रायबरेली
७७२ ,, मन्त्री जी आर्यसमाज पाटन जि० उन्नाव
७७५ ,, मन्त्री जी आर्यसमाज सोरसा जिला हरदोई
७७७ ,, राजलदास जगतराय जी हिन्दी टीचर पिम्पली कोलोनी चिचन्वाड़ा पूना
८६१ ,, प्रीतमसिंह जी आर्य ग्राम रादौर जिला करनाल
९१७ ,, पुस्तकाध्यक्ष जी आर्यसमाज किशन पोल बाजार जयपुर सिटी

सार्वदेशिक पत्र के ग्राहक अवश्य अंकित करें

जिन ग्राहकों को किसी मास सार्वदेशिक प्राप्त न हो तो उन्हें उस की १२ तारीख तक सभा कार्यालय को सूचित कर देना चाहिये। इसके पश्चात् प्राप्त होने वाली शिकायतों पर यदि कार्यवाही न होगी तो उसकी उत्तरदायिता सभा कार्यालय पर न होगी।

ग्राहकों से नम्र निवेदन

निम्न लिखित ग्राहकों का चन्दा जून मास के साथ समाप्त होता है कृपया वे अपना चन्दा शीघ्र मनीआर्डर से सभा कार्यालय में भिजवादें अन्यथा आगामी अंक उनकी सेवा में वी० पी० से भेजा जायगा, चन्दा प्रत्येक दशा में ३०,६,५२ तक कार्यालय में पहुंच जाना चाहिए. मनीआर्डर कूपन पर अपनी ग्राहक संख्या लिखना न भूलें।

ग्रा० सं०	नाम	पता
६	श्री शिवपूजनसिंह जी गुप्त	केसर शुगर मिल बहेड़ी जिला बरेली
२२	,, प्रधान जी आर्य समाज	जगतपुर पो० औरन्ध जिला मैनपुरी
७०	,, पं० गंगाराम जी हैडमास्टर	मैनी दरेड़ा
८३	,, मन्त्री जी आर्य सभाज	सोहनगंज सब्जी मन्डी दिल्ली,
१३६	,, स्वामी शिवानन्द जी तीर्थ	शान्ति आश्रम लोहरदगा जिला रांची
१५१	,, मन्त्री जी आर्य समाज	पीलीभीत यू०पी०
१८८	,, मन्त्री जी आर्य समाज	एटा यू० पी०
१६४	,, ,, ,,	मन्डी धनौरा जिला मुरादाबाद
१६७	, प्रिन्सिपल साहब डी० ए० वी० कालेज	बनारस
१६८	,, मन्त्री जी आर्य समाज	माटुंगा बम्बई नं० १६
२०१	,, प्रिन्सिपल साहब डी० ए० वी० कालेज	अनूपशहर जिला बुलन्दशहर
२०६	,, मन्त्री जी आर्य समाज	इस्लामनगर जिला बदायूं
२०७	,, मन्त्री जी आर्य समाज	गौतमपुरा इन्दौर
२०६	,, मन्त्री जी आर्य समाज	मन्दसौर ग्वालियर
२१५	,, मन्त्री जी आर्य समाज	बैतूल बाजार बैतुल सी० पी०
२२३	,, रामप्रताप जी आर्य	सांभरलेक राजस्थान
३३५	,, पुस्तकाध्यक्ष जी	दर्शनानन्द पुस्तकालय आर्य समाज हाथरस जिला अलीगढ़
३३६	,, मन्त्री जी आर्य समाज	डीडवाना मारवाड़
४३२	,, मनोहरलाल जी सूली	८ अन्डरहिल रोड सिविल लाइन्स दिल्ली
४३३	,, गिरीशचन्द्रपाल जी	हवेली खडगपुर जिला मुंगेर
४३७	,, स्वामी सुरेन्द्रानन्दजी सरस्वती	दयानन्द-मठ रोहतक
४३८	,, गोकुलप्रसादसिंह जी	ग्राम फुलौना पोस्ट गौरा जिला सुल्तानपुर
४३६	,, मन्त्री जी आर्य समाज	पुरवा जिला उन्नाव
६३४	,, शिवनारायण ज्ञानचन्द जी गुप्त	मु० बरकुट्टी काजरी नं० ४ परसिया छिन्दवाड़ा
६३४	,, मन्त्री जी आर्य समाज	सुजानगढ बीकानेर राज्य
७५०	,, जगन्नाथ सुमनदेव जी देसाई	फालिया अंकलेश्वर जिला भड़ौंच
७६१	,, एन० बी० कारकी	नागरी एस० पुर डी० एच० आर०
७६५	,, व्यवस्थापक जी	महात्मा हिन्दी वाचनालय चितापुर

(शेष पृष्ठ १८६ पर)

स्वाध्याय

आसाढ़ २००६ वि० जौलाई १९५२	सम्पादक श्री पं० धर्मदेव सिद्धान्तालङ्कार विद्यावाचस्पति	मूल्य स्वदेश ५) विदेश १० शि० एक प्रति ॥)

विषयानुक्रमणिका

सार्वदेशिक का वार्षिक विवरणाङ्क

ओ३म

सार्वदेशिक आर्य-प्रतिनिधि सभा देहली का मासिक मुख-पत्र

वर्ष २६ } जुलाई १९५२, आषाढ २००९ वि० दयानन्दाब्द १२८ { अङ्क ५

ओ३म

वैदिक प्रार्थना

ओ३म् य उदचीन्द्र देवगोपाः सखायस्ते शिवतमा असाम ।
त्वां स्तोषाम त्वया सुवीरा द्राघीय आयुः प्रतरं दधानाः ॥ ऋ० १।५३।११

शब्दार्थ —(इन्द्र) हे परमेश्वर ! हम (उदचि) उत्कृष्ट ऋग्वेदादि ज्ञान में परायण (देव-गोपा) तू आनन्ददायक जिनका रक्षक है ऐसे (ते सखाय) तेरे मित्रवत् अनुकूल (शिव तमा) अत्यन्त मंगलकारी, (असाम) होवें। (त्वया) तेरी कृपा से (सुवीरा) उत्तम वीर्य बल सम्पन्न होकर (द्राघीय) दीर्घ और (प्रतरम) अत्यन्त उत्कृष्ट (आयु) आयु वा जीवन को (दधाना) धारण करते हुए (त्वा स्तोषाम) सदा तेरी ही स्तुति करें।

विनय—हे सच्चिदानन्द स्वरूप परमेश्वर ! आप हमारे सदा रक्षक हैं अत आप की मित्रता मे निर्भय और निश्चिन्त होकर हम सब का अत्यन्त कल्याण करने वाले बनें। आप इस लोक कल्याण साधन के लिये हमे शक्ति तथा ज्ञान प्रदान करें। हम सच्चे वीर बनें। हमारी न कवल दीर्घ आयु हो किन्तु हमारा जीवन अत्यन्त उत्कृष्ट आदर्श आर्य जीवन हो और हम सदा तेरी ही स्तुति करते रहें। तुझे छोड़ कर या तेरे स्थान म अन्य किसी की स्तुति वा पूजा हम कभी न करें। ऐसा सच्चा भक्ति-भाव आप हम में उत्पन्न करें ॥

सम्पादकीय

परम मान्य राष्ट्रपति जी का चरित्र शुद्धि पर बलः—

यह सौभाग्य और हर्ष की बात है कि हमारे प्रिय आर्यावर्त के परम मान्य राष्ट्रपति श्री डा० राजेन्द्रप्रसाद जी (जिनके अत्यधिक बहुमत से चुने जाने पर हमने उन्हें बधाई भेजी थी और १८ मई के पत्र द्वारा उन्होंने उसके लिये धन्यवाद सूचित किया) प्राचीन आर्य संस्कृति के बड़े प्रेमी हैं अतः उसके मुख्य तत्व चरित्र शुद्धि की ओर वे सदा जनता और छात्र-वर्ग का ध्यान आकृष्ट करते रहते हैं। अभी गत १७ जून को नैनीताल मे बिरला विद्या मन्दिर के जन्मोत्सव में अध्यक्ष-रूप से भाषण देते हुए उन्होंने सब शिक्षण संस्थाओं से अपील की है कि वे चरित्र निर्माण पर विशेष ध्यान दें कारण यह है कि इसके बिना कोई भी राष्ट्र उन्नति नहीं कर सकता। आपने यह भी कहा कि स्वतन्त्रता प्राप्त करने के पश्चात् हमें जो शिकायतें सुनने को मिल रही है उनका मुख्य कारण चरित्र का अभाव है। अत एव यह आवश्यक है कि शिक्षण संस्थाओं में चरित्र निर्माण की ओर विशेष ध्यान दिया जाए।"

हम मान्य राष्ट्रपति जी के इस कथन का हार्दिक समर्थन करते हुए समस्त शिक्षण संस्थाओं के संचालकों से सानुरोध निवेदन करते है कि वे सच्चरित्र निर्माण को शिक्षा का मुख्य उद्देश्य समझते हुए जैसे कि वेदों में "चरित्रांस्तेशुन्धामि" तथा ब्रह्मचर्यसूक्तादि में बताया गया है इसको प्रमुख स्थान दें। यह दुःख की बात है कि वर्तमान विद्यालयों और महाविद्यालयों में इस की प्रायः उपेक्षा की जाती है। शिक्षण संस्थाओं के संचालकों और शिक्षकों का बड़ा भारी उत्तरदायित्व राष्ट्र के निर्माण मे है जिसे अनुभव करते हुए उन्हें अपने चरित्र को सर्वथा विशुद्ध और आदर्श रूप बनाना चाहिये अन्यथा मौखिक उपदेश से कुछ लाभ न होगा। महामान्य राष्ट्रपति जी का यह कथन सर्वथा सत्य है कि "स्वतन्त्रता प्राप्त करने के पश्चात् हमें जो शिकायतें सुनने को मिल रही हैं उनका मुख्य कारण चरित्र का अभाव है।" वस्तुतः घूसखोरी, चोर बाजारी तथा भ्रष्टाचार सच्चरित्रहीनता के ही विविध रूप हैं। यह सचमुच दुःख और लज्जा की बात है कि देश के स्वतन्त्र होने के पश्चात इन दुर्गुणों की वृद्धि दृष्टिगोचर हो रही है। इसको सच्चरित्र निर्माण की ओर अत्यधिक ध्यान देने से ही रोका जा सकता है अन्यथा नहीं।

शिक्षण संस्थाओं में धर्म शिक्षा अत्यावश्यकः—

इस सम्बन्ध में हम यह निवेदन करना तथा परम मान्य राष्ट्र पति जी और सब शासकों का ध्यान इस ओर आकृष्ट करना आवश्यक समझते है कि विद्यालयों और महाविद्यालयो में धर्मशिक्षा की वर्तमान अवहेलना अत्यन्त हानिकारिणी सिद्ध हो रही है। सच्चरित्र निर्माण तब तक सम्भव नहीं जब तक विद्यार्थियों और विद्यार्थिनियों में सच्ची धर्म भावना जागृत नहीं होती। इसलिये यह अत्यन्त आवश्यक है कि विद्यालयों और महाविद्यालयों में असाम्प्रदायिक रूप से सार्वभौम युक्तियुक्त धर्म की शिक्षा का प्रबन्ध किया जाए तथा उदार भावनायुक्त विद्वानों द्वारा ऐसे ग्रन्थों का निर्माण कराया जाए जिन में धर्म-ग्रन्थों की सार्वभौम शिक्षाओं का उत्तम संकलन सरल रूप में किया गया हो। सत्य, अहिंसा, ब्रह्मचर्य, पवित्रता, सदाचार, संयम, सन्तोष, ईश्वर-विश्वास, भूतदया, धैर्य विश्वप्रेम इत्यादि विषयों पर वेद उपनिषद्, रामायण, महाभारत, गीता, नीति ग्रन्थ इत्यादि के उद्धरणों के साथ २ उसे अधिक उपयोगी और लोकप्रिय बनाने के

लिये विविध मतग्रन्थों से भी असाम्प्रदायिक अंश सकलित किये जा सकते है जिन्हें निस्संकोच विद्यार्थियों के हाथ मे दिया जा सके। वतमान मान्य उपराष्ट्रपति डा० राधाकृष्ण जी के सभापतित्व में जो युनिवर्सिटी कमीशन कुछ वर्ष पूर्व नियत किया गया था उसमे भी इस प्रकार के धम शिक्षा विषयक पाठ्य क्रम का निर्देश किया गया था किन्तु खेद है कि इतने वर्ष व्यतीत होने पर भी उसे क्रियात्मक रूप देने का अभी तक भारतीय सरकार की ओर से कोई प्रयत्न नहीं किया गया। असाम्प्रदायिक राज्य वा सैक्युलर स्टेट के नाम पर इसकी नितान्त अवहेलना की जा रही है किन्तु यह भी एक बड़ी भ्रान्ति है। सेक्युलरस्टेट का अर्थ अधार्मिक व धर्मविहीन राज्य सर्वथा अशुद्ध है। उसका केवल इतना ही अर्थ है कि धर्म वा मत सम्प्रदाय के आधार पर उसमे शासनादि कार्यों मे भेदभाव न रक्खा जाएगा। इंगलैण्ड का आदर्श सेक्युलरस्टेट माना जाता है किन्तु हमारे आश्चर्य का कोई ठिकाना न रहा जब कि इन दिनों "Jesus-myth or History by Archibald Robertson M. A. Watts & Co. London" नामक पुस्तक की भूमिका मे हमने ये शब्द पढ़े:—

'By the Education Act of 1944 Parliament has for the first time made it obligatry on the managers or governors of all publicly provided schools in England and Wales to give religious instruction. The syllabus of such instruction is drawn up by the conferences in which the churches control fifty percent of the Votes. Thus a legal obligation is now laid upon our local education authorities to teach Christianity.

Foreword (P. VII)

अर्थात् सन् १९४४ के शिक्षा विषयक विधान के द्वारा पार्लियामेंट ने प्रथम बार इंग्लैंड और वेल्स के सब सार्वजनिक धन से सचालित विद्यालयों के व्यवस्थापकों के लिये धर्मशिक्षा देना अनिवार्य कर दिया है। इस प्रकार की शिक्षा का पाठ्यक्रम उन सम्मेलनों द्वारा निर्धारित किया जायेगा जिनमे गिरजाघरों के प्रतिनिधियों का ५० प्रतिशतक मताधिकार होगा। इस प्रकार हमारी स्थानीय शिक्षण संस्थाओं के अधिकारियों के ऊपर ईसाईमत की शिक्षा देने का कानूनी उत्तरदायित्व व भार डाल दिया गया है।

यह सूचना जैसे हमारे लिये नवीन और आश्चर्योत्पादक थी वैसे अन्य भी प्राय सभी पाठकों के लिये होगी किन्तु इसकी प्रामाणिकता मे सन्देह का कोई कारण नहीं। यदि इंग्लैड और वेल्स में ईसाई मत की शिक्षा को अनिवार्य रूप से देने पर भी उनकी असाम्प्रदायिकता वा सेक्युलर स्टेट होने में कोई बाधा नहीं पड़ती तो भारत में ही क्यों धर्म शिक्षा के नाम से शासनाधिकारी भयभीत होते है ? हां, इस बात का ध्यान रखा जाना चाहिये कि यह सच्चे धर्म की शिक्षा हो जो मतान्धता और साम्प्रदायिक संकीर्णता को प्रोत्साहित करने वाली न हो।

जो दूसरा उदाहरण इसी प्रसंग में उल्लेखनीय है वह टर्की व तुर्कीस्तान का है। तुर्कीस्तान भी मुस्तफा कमाल पाशा के प्रधानमन्त्रित्व काल से एक असाम्प्रदायिक राष्ट्र बन चुका है। यद्यपि आतातुर्क कमालपाशा ने इस्लाम मत की शिक्षा को विद्यालयों मे केवल उनके लिये रखा था जो उसे चाहते हों किन्तु तुर्किस्तान के प्रजातन्त्रात्मक शासन दल वा डिमोक्रेटिक पार्टी की सरकार ने अब धर्म शिक्षा को विद्यालयों में सब के लिये नियत कर दिया है सिवाय उन विद्यार्थियों या उनके संरक्षकों के जो इसे नहीं चाहते। यह समाचार हिन्दुस्तानटाइम्स नई देहली के १३ जून १९५२ के

अंक मे Turkey and Islam शीर्षक लेख में "The present Demorcatic Party Government has now introduced religious instruction in schools for all except those who do not want it" इत्यादि शब्दों में प्रकाशित हुआ है। जब इस्लाम की शिक्षा विद्यालयों में लगभग सभी छात्रों के लिये रखते हुए भी तुर्किस्तान असाम्प्रदायिक राष्ट्र रह सकता है तो भारत क्यों नहीं ? हमारे कथन का सारांश यह है कि विशुद्ध और असाम्प्रदायिक सार्वभौम रूप में धर्म शिक्षा का प्रबन्ध विद्यालयों और महा विद्यालयों में किया जाना नास्तिकता, दुराचार और भ्रष्टाचार की बढ़ती हुई वर्तमान दुष्प्रवृत्ति को रोकने के लिये अत्यन्त आवश्यक है। आशा है महामान्य राष्ट्रपति जी तथा उपराष्ट्रपति डा. राधाकृष्णन् जी इस आवश्यक विषय की ओर भारतीय शासन के अधिकारियों का ध्यान आकृष्ट करेंगे और इस दृष्टि से भारतीय संविधान में भी यदि कुछ संशोधन की आवश्यकता होगी तो उसे करा लिया जायेगा। वर्तमान नियमों का तो यह परिणाम हो रहा है कि जहा विद्यालयोंमें धर्मशिक्षा का थोड़ाबहुत भी प्रबंध थ, उसे सरकारी सहायता प्राप्त करने के प्रलोभन में बन्द किया जा रहा है जो सर्वथा अवाञ्छनीय है। भारतवर्षीय आर्य कुमार परिषद की धार्मिक परीक्षाएँ इस दृष्टि से विशेष अभिनन्दनीय हैं। न केवल आर्यसंस्थाओं में किन्तु अन्यत्र भी अधिक से अधिक संख्या मे विद्यार्थियों और विद्यार्थिनियों को उन में सम्मलित होकर लाभ उठाने के लिये प्रोत्साहित करना चाहिये। गुरुकुल विश्वविद्यालय काङ्गड़ी में धर्म का तुलनात्मक अनुशीलन विषयक पाठ्य क्रम तो इस विषय में सब विश्वविद्यालयों के लिये अनुकरणीय ही है।

राजशर्मा सिकन्दर काण्ड—

हमें प्रसन्नता है कि गत मई मास के अन्तिम सप्ताह देहली की राजशर्मा नाम्नी १९ वर्ष की नवयुवती के देहली राज्य के प्रधानमन्त्री श्री ब्रह्मप्रकाश जी के निजू मत्री सिकन्दर बख्त नामक ३६ वर्ष के मुस्लिमयुवक के साथ प्रस्तुत विवाह की जिस चर्चा ने न केवल देहली प्रदेश में किन्तु अन्यत्र भी विक्षोभ और रोष की लहर उत्पन्न कर दी थी ४ जून को श्री राजशर्मा ने मैजिस्ट्रेट के नाम इस आशय का पत्र लिख कर कि "मैंने अपना विचार बदल दिया है और मैं श्री सिकन्दर बख्त के साथ प्रस्तुत विवाह नहीं करना चाहती अतः मेरे इस विषय के आवेदन पत्र को लौटाया हुआ समझा जाए। उस अप्रिय काण्ड की उचित समाप्ति कर दी। श्री राजशर्मा के पिता श्री राम नारायण ने इस प्रस्तुत विवाह पर इस आधार पर आक्षेप किया था कि उनकी कन्या की आयु लगभग १९ वर्ष की है (जब कि सिविल मैरिज के लिये वह कम से कम २१ की होनी चाहिये) तथा माता पिता की अनुमति उसके लिये प्राप्त नहीं की गई। देहली प्रादेशिक कांग्रेस कमेटी की प्रधान मन्त्रिणी श्रीमती सुभद्रा जोशी ने इस विषय में जो उचित मर्यादा का अतिक्रमण करते हुए उत्साह दिखा कर इसे सार्वजनिक समारोह का रूप देने का यत्न किया था उससे कांग्रेस का अपयश ही हुआ। आवेश में जो कुछ कांग्रेस विरोधियों ने हिंसात्मक प्रदर्शन वा उपद्रव किये उनको हम सर्वथा अनुचित समझते हैं। साथ ही श्री प्रो० रामसिंह जी एम० ए०, श्री ला० रामगोपाल जी, श्री देश पाण्डे जी आदि की इस आन्दोलन के सम्बन्ध में की गई पकड़ को भी हम सर्वथा अनावश्यक और अनुचित समझते हैं। श्री राजशर्मा कांग्रेस कार्यालय में एक टाइपिस्ट थीं और सिकन्दर बख्त उसी कांग्रेस के एक कार्यकर्ता और अब ब्रह्मप्रकाश जी के निजू मन्त्री होने के नाते कांग्रेस कार्यालय में आते जाते रहते थे जिससे यह मामला बढ़ता गया और यदि आर्य हिन्दू जनता की ओर से प्रतिवाद प्रदर्शन न

किया जाता तो यह क्रियात्मक रूप ग्रहण करके देहली की शान्ति में विशेष रूप से बाधक बनता अतः हमें हर्ष है कि श्री राजशर्मा ने अपने अपरिपक्व भावुकता पूर्ण विचार को अनुचित समझ कर स्वयं छोड़ दिया और इस प्रकार इस अप्रिय काण्ड का पर्यावसान हो गया। ज्ञात हुआ था कि भारत के शिक्षामंत्री मौलाना अबुल कलाम आजाद बड़े प्रेम और उत्साह के साथ नवदम्पती को बधाइयां और भेंट देने के लिये बहुत से फल तथा मिठाई आदि ले कर अपनी मोटर कार में २४ मई को सायं कान्स्टीट्यूशन क्लब में पहुँचने वाले ही थे कि मैजिस्ट्रेट द्वारा अस्थायी रोक या 'इंजक्शन' का समाचार उन्हें ज्ञात हुआ और वे निराश से होकर वापिस लौटे। अब क्योंकि इस अप्रिय काण्ड की समाप्ति हो चुकी है अत. इस पर विस्तृत टिप्पणी हमें अनावश्यक प्रतीत होती है तथापि इतना लिख देना आवश्यक है कि हिन्दू-मुस्लिम एकता अथवा असाम्प्रदायिकता का जीवित जागृत उदाहरण समझ कर ऐसे क्षणिक उत्तेजना में किये गये सम्बन्धों को प्रोत्साहित करना श्री सुभद्रा जोशी और श्री कृष्णनायर आदि कांग्रेस अधिकारियों के लिये अनुचित तथा कांग्रेस के लिये अपकीर्ति वर्धक था। यह क्षणिक उत्तेजना और भावुकता में तथा श्री राजशमो को एक प्रकार से फुसला कर किया जा रहा था यह इसी से स्पष्ट है कि कुछ ही दिनों के बाद उसने अपने विचार को बदल दिया अन्यथा यह निश्चित है कि मुस्लिम परिवार में जाकर उसे पश्चात्ताप होता, या तो वह मुसलमान बनने के लिये विवश की जाती अन्यथा उस का जीवन वेदनापूर्ण होता। अतः ऐसे विषयों में अविवेकपूर्ण शीघ्रता से काम लेना सर्वथा हानिकारक होता है॥

महात्मा गांधी जी की अवतार रूप में अनुचित पूजाः—

अभी कल रात को एक सज्जन ने हमारे हाथ में श्री रामदीनसिंह कृत 'श्री गांधी चालीसा' नामक पुस्तक दी जिस के प्रकाशक श्री अश्विनी कुमार जी आर्य वैदिक प्रेस गौतम बुद्ध पथ गया है। इस में महात्मा गांधी जी को साक्षात् ईश्वरावतार मान कर उनकी स्तुति निम्न प्रकार के शब्दों में की गई है:—

'जन्मे फिर कलिकाल में, हरण करण जग भार।
सत्य अहिंसा धर्म के, गांधी रूप अवतार।। पृ०३
जब जब भारत में भयो, पाप घनिष्ट अपार।
तब तब प्रभु अवतरउ यहां, शमन करन मही भार।।
खादी धारी भेष प्रभु, लिये लकुटिया हाथ।
रादीप सब काल मह, तुम्हे नवाऊं माथ।। पृ० ४
भारत के संकट हरण, गांधी रूप भगवान।
आयऊ रचना नव करण, भारत के निरमान।।पृ१६
शक्तिमान श्रीमान हैं, गांधी रूप करतार।
जो जैसा रूप जानी हैं, तैसे ही फल दातार।। पृ १६

पाठक देखेंगे कि इन तथा अन्य दोहों में महात्मा गांधी जी को साक्षात् भगवान् मान कर स्तुति प्रार्थनादि की गई हैं जिसे हम न केवल अनुचित प्रत्युत म० गांधी जी के अपने विचारों के भी सर्वथा विरुद्ध समझते हैं। आश्चर्य है कि वैदिक प्रेस के व्यवस्थापक श्री अश्विनीकुमार जी आर्य ने कैसे इन अवैदिक और अशुद्ध भावों के प्रचारक लघुग्रन्थ का वैदिक प्रेस में प्रकाशन करके भ्रम जाल की वृद्धि करना उचित समझा? महात्मा गांधी जी के उत्तम सदाचार वर्धक ब्रह्मचर्य तथा आत्म संयम प्रतिपादक उपदेशों पर आचरण करने की अपेक्षा उन के अनुयायी अधिकतर ऐसी स्तुति करने तथा उनकी समाधि पर पुष्प और भेंट चढ़ाने में ही प्रसन्नता अनुभव करते हैं यह दुःख की बात है॥

भारतीय लोक सभा के अनेक सदस्यों का अंग्रेजी से मोहः—

यह दुःख की बात है कि अंग्रेजी के भारत से

चले जाने और देश के पूर्ण स्वतन्त्र हो जाने पर भी अनेक शिक्षित लोगों का अंग्रेजी से मोह अब तक पूर्ववत् बना हुआ है। भारतीय लोक सभा के वर्तमान अधिवेशन मे इस मोह के अनेक उदाहरण सन्मुख आये हैं। रेलवे मन्त्री श्री लाल बहादुर शास्त्री ने जब हिन्दी में भाषण किया तो मद्रास के पोकर साहेब, मिस् ऐनी मुस्करीन तथा कुछ कम्युनिस्ट सदस्यों ने विरोध प्रदर्शन किया और कई प्रतिवाद स्वरूप सभा भवन से बाहर चले गये। इस बात पर भी बल दिया गया कि रेलवे मन्त्री तथा अन्यों को पहले अवश्य अंगरेजी मे ही बोलना चाहिये पीछे चाहे वे हिन्दी मे बोलें। श्री लाल बहादुर जी ने इस अनुचित मांग पर ध्यान न देकर अच्छा ही किया। उन्होंने ठीक ही कहा कि लोक सभा में ६८ प्रतिशतक के लगभग सदस्य हिन्दी समझ सकते हैं किन्तु यह दु:ख की बात है कि अनेक सदस्य हिन्दी मे भाषण को सुनना ही नहीं चाहते। हमे नवभारत टाइम्स मे यह पढ़कर हँसी आई और साथ ही खेद हुआ कि भारतीय संस्कृति की दिन रात दुहाई देने वाली रामराज्य परिषत् के प्रधान मन्त्री पं० नन्दलाल शर्मा ने भारतीय लोक सभा मे अंगरेजी मे भाषण दिया इसी प्रकार बिहार के श्री श्याम नन्दन मिश्र ने हिन्दी के अच्छे ज्ञाता तथा वक्ता होते हुए भी अंगरेजी मे भाषण देने में ही अपनी प्रतिष्ठा समझी (कइयों का कथन है कि वे सरकार मे उपमन्त्री पद प्राप्त करने के लिये लालायित हैं अत: उन्होने माननीय पं० जवाहर लाल जी को प्रसन्न करने के लिये ऐसा किया। ईश्वर जाने इस समाचार में कहा तक तथ्य है। ऐसे ही उत्तर प्रदेश के हरिजन सदस्य श्री प्यारेलाल जी कुरी ने अशुद्धियों से भरपूर अंगरेजी मे अपनी शान समझ कर भाषण दिया। हम अङ्गरेजी से ऐसे मोह को नितान्त निन्दनीय समझते हैं। श्री पं० नेहरू जी को अङ्गरेजी का प्रबल समर्थक समझा जाता है किन्तु उन्होंने भी भारत सरकार की विदेशीय नीति के समालोचक कम्यूनिस्ट सदस्यों को यह कह कर चकित कर दिया कि "आंग्ल अमेरीकी प्रभुत्व का सबसे बड़ा कारण अङ्गरेजी भाषा है पर उसका विरोध किसी भी कम्यूनिस्ट ने नहीं किया।"

यद्यपि किसी को भी माननीय पं० नेहरू जी के मुख से ऐसे शब्दों के निकलने की आशा न हो सकती थी किन्तु वस्तुतः इन शब्दों मे कितनी सचाई है। ८ जून को डा० राधाकृष्णन् जी के सभापतित्व मे लोक सभा सदस्यार्थ आयोजित हिन्दी कक्षाओं के उद्घाटन के अवसर पर भाषण करते हुए श्री सेठ गोविंद दास जी ने दु:ख के साथ कहा कि जब कोई सदस्य हिन्दी मे बोलने लगता है तो उसके प्रति तिरस्कार दिखाया जाता है और ऐसे भी उदाहरण हैं जब प्रतिवाद के रूप में सदस्य सभा भवन छोड़ कर चले जाते हैं किंतु अंगरेजी भाषणों के विषय मे ऐसा कभी नहीं होता।

यह अवस्था दासमनोवृत्ति की सूचिका है। माननीय उप राष्ट्रपति जी ने उपरिनिर्दिष्ट हिन्दी कक्षोद्घाटन भाषण में ठीक ही कहा था कि ११ वर्षों के अन्दर २ हमें अंगरेजी का स्थान हिन्दी को दे देना चाहिये यह तभी हो सकेगा जब कि अभी से पूर्ण मनोयोग से इस दिशा में कार्य प्रारम्भ कर दिया जाएगा। अत: लोकसभा के जो सदस्य हिन्दी नहीं जानते उन्हे हिन्दी सीखना अविलम्ब प्रारम्भ कर देना चाहिये। यह आवश्यक राष्ट्रिय कर्तव्य है। जो जानते हैं उन्हे तो अंगरेजी से मोह और उपर्युक्त निन्दनीय दास मनोवृत्ति का परित्याग करके हिन्दी मे ही अपने विचार प्रकट करने चाहियें। हिन्दी स्वीकृत राजभाषा के रूप मे हमारे देश की एकता का प्रतीक है इसे कभी न भूलना चाहिये॥

द्राविडिस्थान का उपहासजनक आन्दोलनः-

मद्रास संस्थान के ई० वी० रामस्वामी नायकद् अब्राह्मण दल के एक नेता माने जाते हैं जो आर्यसंस्कृति के घोर विरोधी हैं और जिन्होंने पुनः इस आन्दोलन को चलाने की सेलम में १६ जून को घोषणा की है कि अनार्यों का द्राविड़ों के लिये द्राविडिस्थान की पृथक स्थापना होनी चाहिये क्योंकि उनका आर्यों की भाषा (संस्कृत-हिन्दी आदि) उनके धर्म तथा संस्कृत से किसी प्रकार का कोई सम्बन्ध नहीं। कुछ समय पूर्व इन्होंने दक्षिण भारत में उत्तर भारतीय व्यापारियों के बहिष्कार का आन्दोलन भी चलाया था जिसमें कोई सफलता न हुई। अब वे जिस आन्दोलन को पुनः चलाना चाहते है उसका स्वरूप उन्होंने यह घोषित किया कि रेलगाड़ियां में बिना टिकट के यात्रा की जाए तथा रेलवे स्टेशनों के बोर्डों पर जहां हिन्दी पर नाम लिखा हुआ हो उसे मिटा दिया जाए। हम इस विद्वेष मूलक आन्दोलन को सर्वथा निन्दनीय और प्रस्तुत साधनों को केवल उपहासजनक किन्तु बच्चों का खिलवाड़ समझते हैं। हमें निश्चय है कि माननीय श्री चक्रवर्ती राज गोपालाचार्य जी की सरकार इन उपद्रवियों को कठोर दण्ड देकर उनकी बुद्धिको ठिकानेलगादेगी।

नैपाल में संस्कृत शिक्षा प्रसार का प्रशंसनीय प्रयत्नः-

गत १३ जून को नैपाल के महाराज त्रिभुवनसिंह जी ने संस्कृत महाविद्यालय का काठमाण्डू मे उद्‌घाटन करते हुए ठीक ही कहा कि इसके द्वारा हम उसभाषाको जीवित रख सकेंगे जिसमें प्राचीन संस्कृति और ज्ञान को अत्यन्त अभिनन्दनीय रूप से प्रकट किया गया था। इस अवसर पर नैपाल के प्रधानमन्त्री श्री एम्० पी० कोयराला ने भी संस्कृत के महत्व पर प्रकाश डालते हुए कहा कि जब तक आर्य सभ्यता जीवित है संस्कृत को कोई मिटा नहीं सकता। हम नेपाल में संस्कृत महाविद्यालय की स्थापना पर जहां हर्ष प्रकट करते हैं वहां नैपाल के संस्कृत शिक्षाध्यक्ष के इस विवरण पर संतोष प्रकट करते हुए उसे अन्य प्रदेशों के लिये भी अनुकरणीय समझते हैं कि 'अब तक नैपाल में १८० संस्कृत पाठशालाएं खोली जा चुकी हैं और उनकी सख्या शीघ्र ही ४२८ तक पहुँच जाएगी।' आशा है संस्कृत शिक्षाध्यक्ष अपने उत्साह सूचक इन शब्दों को क्रियात्मक रूप देकर सब संस्कृत प्रेमियों के अभिनन्दन के पात्र बनेंगे तथा सब प्रादेशिक शासनों और केन्द्रीय शासन के अधिकारियों के सन्मुख एक अनुकरणीय आदर्श उपस्थित करेंगे। यदि सर्वत्र संस्कृत शिक्षा प्रसार के लिये उत्साह पूर्वक ऐसा ही प्रयत्न किया जाए तो उस से बड़ा भारी लाभ हो सकता है। देहली जैसी भारत की राजधानी में एक केन्द्रीय संस्कृत विश्वविद्यालय का अभाव अत्यन्त शोचनीय है जिसको दूर कराने का संस्कृत प्रेमियों को संघटित प्रयत्न करना चाहिये।

एक अत्यन्त उत्साही दृढ़ आर्य का देहावसानः-

हमें पाठकों को यह सूचित करते हुए अत्यन्त दुःख होता है कि गत २५ मई को प्रात. चन्द्रप्रिटिंग प्रेस श्रद्धानन्द बाजार (जिसमें बहुत वर्षो तक सार्वदेशिक पत्र छपता रहा है) देहली केव्यवस्थापक तथा वनिता विश्रामाश्रय देहली के भू. पू. प्रधान श्री सेवाराम जी का लगभग ७० वर्ष की आयु में हृदय की गति रुक जाने से अचानक देहावसान हो गया। श्री सेवाराम जी एक अत्यन्त उत्साही और दृढ़ आर्य सज्जन थे जिन को वैदिक धर्म के प्रचार की बड़ी लगन थी। वे बड़े ही मिलनसार हँसमुख वृद्ध सज्जन थे। हम उनकी पवित्रात्मा की सद्‌गति तथा उनके शोक-सन्तप्त परिवार को धैर्य और शान्ति प्रदान करने के लिये भगवान् से प्रार्थना करते और यह आशा करते हैं कि उनके सुपुत्र श्री सुदर्शनलाल जी सपरिवार अपने पूज्य पिता जी के वैदिक धर्म और आर्यसमाज के प्रति प्रेम को अपने अन्दर धारण करने का विशेष यत्न करेंगे। ध० दे०

* उपासना *

(१) बैठा मैं माता की गोदी, मैं जो है मंगल का मूल
नित अशान्त रहते हैं वे जन, जो उस को जाते हैं भूल।
यही शान्ति का मार्ग सुगम है, रहना नित मां के अनुकूल,
उस की आज्ञा पर चलने से, नष्ट सभी हो जाते शूल ॥

(२) माता की गोदी में बैठूं, मुझ को सुधा पिलाती है,
ज्ञान भक्ति रस पान करा कर, मुझ को पुष्ट बनाती है।
शोक मोह संशय दुर्बलता, सब को दूर भगाती है,
मंगल कर कर सर पर धर कर, मुझ को खूब नचाती है ॥

(३) मस्त हुआ मैं तब माता के, गुण गण गाता जाता हूँ,
गाता जाता पर नहिं उसका, अन्त कहीं मैं पाता हूँ।
हिम आवृत पर्वत शिखरों में, सरिताओं में कुसुमों में,
सब में माता का कर लखता, मस्तक उसे नमाता हूँ ॥

(४) प्रेम मयी आनन्द मयी मां, मुझे शान्ति से भर देती,
आनन्दामृत मुझे पिला कर, पाप ताप सब हर लेती।
ज्योतिजगाकर अन्धकार को, छिन्न भिन्न कर देती है,
शान्ति शक्ति आनन्दभक्ति दे, वह निहाल कर लेती है ॥

स्वर्गाश्रम ऋषिकेश
९:६-५२

धर्मदेव विद्यावाचस्पति

सार्वदेशिक सभा की भ्रमण-पत्रिका

समस्त आर्यसमाजों के मन्त्रियों के नाम

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा की साधारण सभा ने अपने गत अधिवेशन में आर्य जगत् के लिए इस वर्ष का जो कार्य क्रम निर्धारित किया है वह तथा उसके सम्बन्ध मे आवश्यक निर्देश आपको अपनी प्रतिनिधि सभा के द्वारा प्राप्त हो गए होंगे अथवा प्राप्त होने वाले होंगे जिसकी एक प्रति साथ भेजी जाती हैं। इस कार्य-क्रम के अनुसार आर्य समाजों को अपनी साधारण प्रगतियों के साथ २ निम्न लिखित कार्यों पर विशेष रूप से अपनी शक्ति और पुरुषार्थ को केन्द्रित करना होगा।

प्रौढ़-शिक्षा

आर्य समाजों को आर्य मन्दिरों मे अथवा अन्यत्र रात्रि पाठशालाएं खोल कर बिना पढ़े लिखे प्रौढ़ नर-नारियों को पढ़ाने का प्रबन्ध करना चाहिए। इस कार्य के लिए इन्हें, यत्न करने पर, सेवा और नि.स्वार्थ भाव से काम करने वाले सज्जनों की निश्चय ही निःशुल्क (मुफ्त) सेवाएं प्राप्त हो सकती हैं। जिन स्थानों पर नगर पालिका समितियां (म्युनिसिपल कमेटियां) हैं, उनसे इस राष्ट्र और जन सेवा के पुनीत कार्य में आर्थिक सहायता मिल सकती है। इसके लिए यत्न होना चाहिए। न मिले तो भी इस विषय में भागीरथ यत्न करना आर्य समाजों का महान कर्त्तव्य है।

संस्कृत शिक्षा

आर्य समाज पर संस्कृत के प्रचार और प्रसार की बहुत बड़ी उत्तरदायिता है। खेद है कि इस महत्त्व पूर्ण उत्तरदायित्व के पूर्ण करने मे अपेक्षित यत्न नहीं हुआ देश की वर्तमान स्वतन्त्र राजनैतिक स्थिति मे देश हितैषियो और नेताओं का ध्यान उपेक्षित संस्कृत भाषा को उसके महान् गौरवमय स्थान पर प्रतिष्ठित करने की ओर गया है। अब राजनैतिक स्वतन्त्रता के आगमन पर संस्कृत भाषा के प्रचार के लिए जो अनुकूल परिस्थितियां और वातावरण उत्पन्न हुआ है उससे आर्य समाज को पूरा २ लाभ उठाना है। आर्य मन्दिरों में संस्कृत शिक्षा की व्यवस्था और नियमित पाठशालाएं खुलनी चाहिए। इस पुनीत कार्य मे अर्थ बाधक नहीं हो सकता। सर्व साधारण आर्य और हिन्दू जनता दिल खोल कर इसमें अपना आर्थिक योग देगी।

स्कूलों और कालिजों में प्रचार

स्कूलों और कालिजों में समय २ पर आर्य समाजों के तत्वावधान में विशिष्ट विद्वानों के संस्कृति और चरित्र निर्माण विषयक व्याख्यानों का प्रबन्ध होना चाहिए। इस कार्य के लिए आर्य समाज के बाहर प्रख्यात विद्वानों की सेवाएं भी प्राप्त का जा सकती हैं। आवश्यकतानुसार इन सब के लिए आवश्यक व्यय की व्यवस्था अवश्य होनी चाहिए। स्कूलों और कालिजों के छात्र और छात्राओं तक आर्य समाज का उत्तम और अपील करने वाला साहित्य भी पारितोषिक आदि के रूप में पहुंचाना चाहिए। सार्वदेशिक सभा प्रदेशीय प्रतिनिधि सभाओं के सहयोग और परामर्श से ऐसे साहित्य के निर्माण की व्यवस्था भी करेगी।

आर्य समाजों द्वारा संचालित शिक्षा संस्थाओं के आस पास लगने वाली चाट, खोमचे, चुस्की, आदि स्वास्थ्य-नाशक और बच्चों में कुटेव उत्पादक दुकानों के न लगने की ओर ध्यान देना चाहिए और इस रीति से अन्य शिक्षा संस्थाओं का मार्ग प्रदर्शन करना चाहिए।

स्कूलों की पाठ्य पुस्तकें

प्रान्तीय प्रतिनिधि सभाएं और सार्वदेशिक सभा स्कूलों में पढ़ाई जाने वाली पुस्तकों की ओर विशेष ध्यान दे रही हैं। प्रदेशीय प्रतिनिधि सभाओं को अपने आधीन ऐसी समितियों की बनाने की प्रेरणा की गई है जिनका काम यह होगा कि वे वेद, दयानन्द और आर्य समाज के प्रति भ्रान्ति उत्पन्न करने वाली पुस्तकों की खोज करें, आपत्ति जनक स्थलों की ओर संबद्ध शिक्षा विभाग का ध्यान आकृष्ट करें और उनको निकलवाएं। आर्य समाजों और आर्य पुरुषों को इस ओर विशेष ध्यान देकर आपत्ति जनक पुस्तकों की ओर अपनी प्रतिनिधि सभा और सार्वदेशिक सभा का ध्यान आकृष्ट करना चाहिए। प्रतिनिधि सभाओं और सार्वदेशिक सभा की यह भी योजना है कि स्कूलों लिए ऐसी पुस्तकों का निर्माण कराया जाय जिनके पठन पाठन से विद्यार्थियों में ईश्वर, देश, धर्म, गौ, ब्राह्मण, वेद, मानवता और अपनी संस्कृति के प्रति श्रद्धा और प्रेम बढ़े।

इनके अतिरिक्त आर्य समाज को अधिकाधिक लोक प्रिय बनाने वाले छोटे २ बहुत से कार्य हैं जिन्हें आर्य समाजों को स्थानीय आवश्यकतानुसार अवश्य अपने हाथ में लेना चाहिए। यथा—

(१) बीड़ी, सिगरेट के व्यापारियों द्वारा बीड़ी, सिगरेट का सड़कों, गलियों आदि सार्वजनिक स्थानों में होने वाला प्रचार (प्रोपेगन्डा) बन्द कराना।

(२) सिनेमा के अश्लील (गन्दे और लज्जास्पद) चित्रों का प्रदर्शन व विज्ञापन बन्द कराना।

(३) सभ्य गृहस्थों के मध्य में तथा बाजार गली, कूचों, में स्थित वेश्यालयों तथा शराब की दुकानों को बन्द कराना।

(४) नगर पालिका समितियों (म्युनिसिपल कमेटियों) द्वारा आवारा गऊओं, बछड़ों और बछियों के नीलामों को निरुत्साहित कराना क्योंकि इस कुप्रथा के कारण ये उपयोगी पशु प्रायः कसाइयों के छुरों का शिकार बनते हैं। उनकी रक्षा के लिए उपाय करना।

इस सम्बन्ध में यह बड़ी प्रसन्नता की बात है कि आर्य समाज दीवान हाल देहली ने इस प्रकार के कई कार्य हाथ में लेकर अपने कर्त्तव्य का पालन किया है और आर्य समाज के यश को बढ़ाया है। मुझे यह लिखते हुए भी हर्ष होता है कि इन कार्यों का सूत्र संचालन उन कतिपय सज्जनों के हाथ में है जो आर्य समाज दीवान हाल के प्रमुख सदस्य और कार्य कर्त्ता होने के साथ २ सार्वदेशिक सभा के भी अधिकारी हैं। आर्य समाज दीवान हाल देहली के निमित्त से आर्य समाज के लिए एक नमूना प्रस्तुत किया जा रहा है। इसका विस्तृत विवरण साथ की भ्रमण पत्रिका से जाना जा सकता है।

मुझे आशा है कि आर्य समाजें सार्वदेशिक सभा द्वारा निर्दिष्ट कार्य क्रम तथा उपर्युक्त कार्यों को हाथ में लेकर न केवल आर्य जगत् में विशेष गति ही उत्पन्न करेंगी अपितु अपने पवित्र कर्त्तव्यों का पालन करने के यथेष्ट यश के भागी भी होंगे।

अपने कार्य की रिपोर्ट अपनी प्रतिनिधि सभा और इस सभा को भी अवश्य भेजते रहने का प्रबन्ध कीजिए जिससे आपके कार्य का समुचित प्रकाशन और दूसरों के लिए मार्ग प्रदर्शन का हेतु बन सके।

आपके उत्साह वर्धक उत्तर की मुझे बड़ी प्रतीक्षा रहेगी।

कविराज हरनामदास, मन्त्री
सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, देहली

सार्वदेशिक आर्यप्रतिनिधिसभा की साधारण सभा के वा० अधि० २८-४-५२ का नि० सं० १

आर्य जगत् के लिए इस वर्ष का कार्यक्रम

आर्यसमाज का उद्देश्य वैदिक धर्म के सिद्धान्तों का विचारात्मक तथा क्रियात्मक प्रचार करना है, वैदिकधर्म के सिद्धान्त इतने व्यापक हैं कि मनुष्यजीवन का कोई अंग उनसे बाहर नहीं रह जाता, इस कारण आर्यसमाज का स्थिर कार्यक्षेत्र भी संसारव्यापी है। फिर भी समय २ पर विशेष दशाओं की दृष्टि से कार्यक्षेत्र के विशेष अंगों पर जोर देना और उस पर शक्ति को केन्द्रित करना आवश्यक हो जाता है। इस कारण वर्तमान परिस्थितियों को दृष्टि में रख कर सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा सब आर्यसमाजों तथा आर्यजनों को आदेश देती है कि ये आगामी वर्ष में अपने वर्तमान कार्यों को भली प्रकार चलाते हुए निम्नलिखित कार्यों पर विशेष बल दें :-

१. इस समय देश के सामने सबसे बड़ी समस्या यह है कि बढ़ती हुई चरित्रभ्रष्टता को कैसे रोका जाय, चरित्र के बिना न व्यापार उन्नत हो सकता है और न स्वतन्त्र राज्य का संचालन हो सकता है। आर्यसमाज देश में चरित्रभ्रष्टता के प्रवाह को रोकने और नैतिक स्तर को ऊंचा करने के लिए निम्नलिखित उपाय करे, इस के लिए आर्यजन अपने जीवन को वैदिक आदर्शानुसार सर्वथा पवित्र बनायें।

क अपने शिक्षणालयों में चरित्र शिक्षण की विशेष व्यवस्था करे, तथा अन्य शिक्षणालयों में वैसी व्यवस्था को प्रचलित कराने का भरसक प्रयत्न करे।

ख. नागरिकता के शिक्षण तथा चरित्र-निर्माण के लिए उपयुक्त उत्कृष्ट श्रेणी की प्रमाणित धार्मिक पाठ्यपुस्तकें तैयार कराये और उन्हे देश के शिक्षणालयों में व्यवहृत करानेका प्रयत्न करे।

ग. धार्मिक तथा सांस्कृतिक दृष्टि से यह अत्यन्तावश्यक है कि सामान्यरूप से भारतवासी मात्र की ओर विशेष रूप से आर्यजनों को संस्कृत भाषा का ज्ञान हो, आर्यसमाजों को यह व्यवस्था करनी चाहिए कि दो वर्षों के अन्दर २ प्रत्येक साक्षर आर्यजन को संस्कृत का बोध करा दिया जाय, इस कार्य के लिए समाज मन्दिरों में संस्कृत पढ़ाने की व्यवस्था की जाय।

घ. देश में प्रौढ़शिक्षा का प्रचार अत्यन्तावश्यक है। जैसे आर्यसमाज ने अन्य सब प्रकार की शिक्षा में मार्ग दर्शक का कार्य दिया है उसी प्रकार से उसे प्रौढ़ शिक्षा के प्रचार में मार्ग दर्शक बनना चाहिए और प्रत्येक आर्यसमाज मन्दिर में प्रौढ़ शिक्षा देने की व्यवस्था कर देनी चाहिए। इस कार्य के लिए रात्रि पाठशालाओं का खोलना उपयुक्त होगा।

च. अब सार्वदेशिक आर्यप्रतिनिधि सभा शिक्षा विज्ञों के एक ऐसे सम्मेलन का आयोजन करे जो आर्यसमाज के दृष्टिकोण से शिक्षा सुधार के सम्बन्ध में निश्चित योजना बनाये।

२. इसके अतिरिक्त यह सभा आर्यजनों का ध्यान अपने कार्यक्रम के निम्नलिखित अंशों की ओर विशेषरूप से आकृष्ट करती है। इसके सम्बन्ध में विस्तृत और निश्चित आदेश सभा शीघ्र संचारित करेगी।

(१) पिछड़ी हुई जातियों में प्रचार व उनके उद्धार का कार्य।
(२) भ्रष्टाचार विरोधी भावनाको जागृतकरना।
(३) रेडियो व सिनेमा के गानों व चित्रों से अश्लीलता का निर्वासन।
(४) अन्तर्जातीय विवाह।

३. सभा निश्चय करती है कि धारा सभाओं में निर्वाचित आर्यजनों की एक परिषद् दिल्ली में की जाये जिससे आर्यसमाज व धारा सभा के सदस्यों में निकट संपर्क बना रहे और परस्पर उपयोगी परामर्श होता रहे। कवि० हरनामदास

मन्त्री, सार्वदेशिक आर्यप्रतिनिधि सभा, देहली

ब—धा—ई

आपके दिल्ली नगर में पिछले दिनों निम्न-लिखित बड़े महत्व पूर्ण कार्य हुए जिनके लिए प्रत्येक दिल्ली निवासी को बधाई।

सिनेमा के अश्लील विज्ञापन

सिनेमा के अश्लील चित्रों का सार्वजनिक स्थानों पर प्रचार और प्रदर्शन इस व्यापक घातक बुराई का नगा चित्र होता है। आर्यसमाज दीवान हाल, देहली ने इन प्रदर्शनों के विरुद्ध आवाज उठाई और आन्दोलन किया जिसके फल स्वरूप राज्याधिकारी और सिनेमा के संचालक इनको बन्द करने के लिए विवश हो गए। इस कार्य में दिल्ली नगर पालिका (म्युनिसिपल कमेटी) के भूतपूर्व प्रधान श्री डा० युद्धवीर सिंह जी और वर्तमान प्रधान श्री ला० शामनाथजी ने सराहनीय योग दिया।

मांस की दुकानें

जैन मन्दिर, गौरीशंकर मन्दिर तथा आर्य समाज मन्दिर के निकट लाजपतराय मार्केट के आस पास कुछ समय से मांस की कई दुकाने खुल गई थीं जिन पर खुले आम मांस बिकता था। इस क्षेत्र मे यह एक बहुत बड़ा कलंक था। आर्य समाज दीवान हाल, देहली के आन्दोलन के फल स्वरूप मांस बिकना बन्द हो गया है। केवल एक दुकान पर बन्द नहीं हुआ जिसको बन्द करने के लिए देहली न्युनिसिपल कमेटी ने आश्वासन दिया है।

वेश्यालय

जी० बी० रोड और काठ बाजार स्थित वेश्यालय पहले से ही देहली नगर के लिए अभिशाप बने हुए हैं, परन्तु भले परिवारों के बहु संख्या में उन बाजारों में उन मकानों में बस जाने के कारण जिनकी मंजिलों मे वेश्याए भी रहती हैं, यह अभिशाप और भी भयकर बन गया है। इन वेश्याओं के मध्य मे भले परिवारों की स्त्रियों, बच्चों, नवयुवकों और नवयुतियों पर जो दूषित प्रभाव पड़ता है और वे जिस अशान्त और गन्दे वातावरण से अपने को घिरा हुआ पाते हैं इनकी सहज ही कल्पना की जा सकती है। इन वेश्यालयों को हटवाने का आर्य समाज दीवान हाल, देहली ने बीड़ा उठाया हुआ है। आन्दोलन किया जा रहा है। देहली नगर पालिका के प्रधान और देहली राज्य की स्वास्थ्य मन्त्रिणी श्री मती सुशीला नायर से आर्य समाज दीवान हाल देहली का एक शिष्ट मण्डल भेंट भी कर चुका है जिन्होंने इनके शीघ्र हटवाने का आश्वासन दिया है।

आवारा गोएं

अब तक की प्रथा के अनुसार देहली म्युनिसिपल कमेटी नगर की सड़को और गलियों मे फिरती हुई लावारिस गऊओं, बछड़ों, बछियों को नीलाम करती रही है जो अबतक हजारों की सख्या मे कसाइयों के हाथ नीलाम की जाती रही हैं। आर्य समाज दीवान हाल देहली ही वह सस्था है जिसका ध्यान सर्व प्रथम उपयोगी पशु धन के इस महा विनाश की ओर गया। उसने प्रबल आन्दोलन द्वारा इस नीलामी की प्रथा को बन्द करने की मांग की। फल स्वरूप दिल्ली की नगर पालिका ने नीलामी बन्द करने का आश्वासन दे दिया। अब ये पशु-क्रमशः आर्यसमाज दीवान हाल, देहली को दिए जारहे हैं जिनका प्रबन्ध गाजियाबाद की श्री कृष्ण गोशाला में

आर्यसमाज द्वारा किया जा रहा है।

सिकन्दर-राज काण्ड

सिकन्दर बख्त और कुमारी राज शर्मा के प्रस्तावित अनुचित विवाह को रोकने में नगर की आर्य हिन्दू जनता ने अपने सम्मिलित यत्न से जो प्रशंसनीय कार्य किया है उसके लिए वह समस्त आर्य हिन्दू जनता की बधाई की पात्र है। आर्यसमाज को इस बात की प्रसन्नता है कि उसके सदस्यों ने समय रहते इस विवाह के रचाने वाले व्य क्तयों को इस अनुचित कार्य के प्रति निजी रूप में सावधान किया और जब इसके विरुद्ध आन्दोलन अनिवार्य हुआ तो उसका सूत्रपात, सचालन और नेतृत्व भी किया। इस सम्बन्ध में श्री ला० चरणदास जी पुरी एडवोकेट, प्रधान आर्य समाज दीवान हाल तथा कानूनी सलाहकार सार्वदेशिक सभा, श्री ला० रामगोपाल जी शालवाले उपमन्त्री सार्वदेशिक सभा, श्री प्रो० रामसिंह जी एम०ए०, पुस्तकाध्यक्ष सार्वदेशिक सभा, श्री ला० बालमुकुन्द जी आहूजा, कोषाध्यक्ष सार्वदेशिक सभा और श्री ओंप्रकाश जी त्यागी, प्रधान सेनापति अखिल भारतीय आर्य वीर दल देहली के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। श्री ला० रामगोपाल जी और श्री प्रो० रामसिंह जी एम० ए० उन ग्यारह सज्जनों मे से हैं, जिन्हें राज काण्ड के सिलसिले में देहली सरकार ने नजर बन्द किया था। सार्वदेशिक सभा के प्रधान श्री राजगुरु पं० धुरेन्द्र जी शास्त्री के सामयिक, अत्युत्तम और ओजस्वी वक्तव्य से जनता को बड़ा प्रोत्साहन मिला था।

आशा है सर्व साधारण जनता और विशेषत: देहली के नागरिक जन आर्य समाज की इन पथ-प्रदर्शक उत्तम सेवाओं का उचित आदर करते हुए आर्य समाज को अपना अधिक से अधिक सहयोग देंगे जिससे आर्य समाज को उपर्युक्त अधूरे कार्यों को पूर्ण और नए २ उपयोगी कार्यों को हाथ में लेने का उत्साह हो। यह कृतज्ञता पूर्वक स्वीकार किया जाता है कि देहली की जनता ने इन कार्यों में आर्य समाज को जो सहयोग दिया है इसके लिए नगर निवासी बधाई के पात्र है। जनता से यह भी प्रार्थना है कि किसी भी सार्वजनिक हित के कार्य में जो आवश्यक होने के साथ २ उन्हें कठिन प्रतीत हो उससे आर्य समाज दीवान हाल देहली के मन्त्री को सूचित करें।

हरसरनदास
आजीवन सदस्य,
सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, देहली

शिवाजी भवन,
गाजियाबाद मेरठ

मतमतान्तर विमर्श

श्वे. तेरापन्थ की दया-दान विषयक
भीषण मान्यताएं

(गतांक से आगे)

(लेखक—श्री बच्छराज जी सिंघी सुजानगढ़)

असंजती जीवरो जीवणो,
तो सावद्य जीतव्य साक्षातजी।
तिणने देवे ते सावद्य दान छे,
तिणमें धर्म नहीं अंशमात जी॥

—अनुकम्पा ढाल १२ कड़ी ४०

अर्थात्—असंयमी यानि तेरापंथी साधु से अन्य सब का जीवन पापमय है। उनको देना एकान्त पापमय दान है। उसमें धर्म का अंश मात्र नहीं है।

असंजती ने दान दियां में,
धर्म पुन्य कांई थापो रे।
श्री वीर कह्यो भगवती मांही,
निर्जरा नहीं एकान्त पापोरे॥

—चतुरविचार की ढाल १ कड़ी २३

अर्थात्—हे लोको! असंजती को दान देने में क्यों धर्म का पुण्य बता रहे हो? भगवान् ने इसको एकान्त पाप कहा है।

असंजती रा जीवन मध्ये धर्म नहीं अंश मातजी।
दान देवे छे तेहने, ते पण सावद्य साक्षातजी॥

—अनुकम्पा ढाल १३ कड़ी ६२

संसार तणो उपकार कियां में,
केई मूढ मिथ्यात्वी धर्म बतावे।
श्री जिन मार्ग ओलखियां बिन,
मनमाने जूं गोल चलावे॥

संसाररो उपकार कियां में,
जिन धर्मरो नहीं अंश लिगार।
संसार तणा उपकार कियां में,
धर्म कहे ते मूढ गंवार॥

—अनुकम्पा ढाल ११ कड़ी ३७-३६

अर्थात्—संसार का उपकार करने में धर्म बताने वाले व्यक्ति 'जिन' धर्म को नहीं जानते। वे मूढ़ मिथ्यात्वी, गंवार हैं।

श्रावक तो असंजती अव्रती छे
ते रूड़ी रीति पहिचानोरे।
श्रावक ने दान दे तिणरी करे
प्रशंसा ते परमार्थरा अजाणोरे॥

चतुरविचार ढाल ३ कड़ी ३८

अर्थात्—श्रावक (गृहस्थ) तो असंजती, अव्रती है, यह अच्छी तरह समझ लो। उनको दान देने की जो प्रशंसा करते हैं, वे अज्ञानी हैं।

श्रावक (गृहस्थ) को जो भी द्रव्य सहायता पहुँचाई जायगी वह प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष में असंयम को ही उत्तेजना देने वाली होगी क्योंकि श्रावक का खाना पीना, व्यापार धन्धा करना स्त्री सेवन करना, बाल बच्चों का पोषण करना, उपयोग-परिभोग की चीजों का सेवन करना, देना आदि सब प्रवृत्तियां उसके जीवन के अधर्म पक्ष असंयम पक्ष का ही सेवन है।

—श्रीमदाचार्य भीषणजी के विचाररत्न पृ० ६०

केई एक अज्ञानी इम कहे छःकाया
काजे हो देवां धर्म उपदेश ।
एकण जीवने समझावियां मिट जावे
हो घणा जीवांरा क्लेश ॥
छव काय घरे शान्ति हुवे
एहवा भाषे हो अन्यतीर्थी धर्म ।
त्या भेद न पायो जिन धर्मरो ते तो
भूल्या हो उदय आया अशुभ कर्म ॥

—अनुकम्पा ढाल ५ कडी १६-१७

अर्थात्—किसी मरते हुए जीव को बचाने के लिये कोई उपदेश देवे तो उपदेशदाता मिथ्यात्वी, अज्ञानी और अशुभ कर्म बांधने वाला है।

गृहस्थ के पग हेटे जीव आवे तो
साधु ने बताणो कठे नहीं चाल्यो ।
भारी करमा लोकांने भृष्ट करण ने
ओपिण घोचो कुगुरां घाल्यो ॥

—अनुकम्पा ढाल ८ कडी ३८

गृहस्थ के पैर के नीचे कोई छोटा जीव दब कर मरता हो तो साधु को बताना नहीं चाहिए। जो बताते हैं वे कुगुरु हैं।

ऐकेन्द्री मारी ने पंचेन्द्री पोषे तो निश्चय ही
बान्धे कर्मों रे ।
मछ गलागल ते चोड़े मांडीओ पाखन्डियां
रो धर्मो रे ॥

—अनुकम्पा ढाल

जो अनाज खिला कर, पशु-पक्षी मनुष्य का रक्षण-पोषण करता है वह निश्चय ही पाप कर्म बाँधता है। पाखण्डी इसमें धर्म मानते हैं।

रांकां ने मारीनैं ने पोषे आ तो बात दीसे
घणी गहरी ।
इस मांही दुष्ट धर्म परूपे तो रांक (गरीब)
जीवों के शत्रु हैं।

—अनुकम्पा ढाल १३ कडी ४

गरीब वनस्पति आदि स्थावर जीवों को मार कर शैतान पंचेन्द्रिय जीवों का जो पोषण करते हैं वे रांक (गरीब) जीवों के शत्रु हैं।

ज्यू छ-कायना हिंसक भणी जे नर पोषे जाण ।
ते बेरी षट कायनो प्रत्यक्ष हिये पिछाण ॥८॥
हणणहार षट कायनो तसू पोषे किये सूर ।
तिण कारण जीवां तणो बेरी ते भरपूर ॥६॥

—भिक्षुजशरसायन ढाल १८

अर्थात्—छःकाय के हिंसक को पोषण करके सबल बनाने वाला छही काय शत्रु है।

जो आरंभ सहित जीवणो असंजतीरो अम्भ ।
जिणवांछयो एह जीवणो तिण वांछयो आरम्भ ॥८॥

—भिक्षुजशरसायन पृष्ट ६६

अर्थात्—असंजती का जीवन आरम्भ (१८ पाप) सहित होता है इसलिए उसके जीवन की कामना करना आरम्भ का अनुमोदन करना है।

सावज दान सरधायवा दिया भिक्षू दृष्टान्त ।
खेत बायो एक करसनी पाको खेत अत्यन्त ॥१॥
इतले धनीरे वालो हुवोदुखणो आयो देख ।
किणहिक औषध दे करी सांतरो कियो विशेष ॥२॥
ताजो हुवो तिण अवसरे खेत काटयो धरी खंत ।
साज देने वालाने सही लागे पाप एकान्त ॥३
कहेपाप हुवे खेत काटियांतो काटण वालाने सोय ।
साझ देईने साझो कियो तिणने पिण पाप जोय ॥४॥

—भिक्षुजशरसायन ढाल १८

यह एक दृष्टान्त है जिसमें श्री भीषण ने यह कहा है कि इलाज करके जिसने किसान का फोड़ा ठीक किया, प्रकारान्तर में उसने किसान को एकेन्द्रियकाय (अनाज) के जीवों को काटने में सहायता दी। इसलिये खेत काटने का पाप उस इलाज करने वाले को भी हुआ। "साझ देईने साझो कियो तिणने पिण पाप जोय"। आश्चर्य तो इस बात का है कि किसी जीव को बचाने से

वह बचा हुआ जीव भविष्य में जो पाप करेगा उस पाप का साझीदार तो बचाने वाले को यह लोग बनाते हैं परन्तु यदि बच जाने वाला बचकर कोई धर्म करता है तो उसका साझीदार बचाने वाले को नहीं बनाते।

यहां तेरापन्थ मजहब के सैद्धान्तिक कथनों के थोड़े से उदाहरण दिये गये हैं। यह तेरा पन्थ के प्रवर्तक स्वामी श्री भीषण जी तथा उनके चौथे पटधर आचार्य श्री जीतमल जी की रचनाओं में से संगृहीत किये गये हैं।

पाठक वृन्द !.तेरापन्थ के सिद्धान्तिक कथनों को पढ़कर आपको भली भाति ज्ञात हो गया होगा कि तेरापन्थी साधु को दान देने के सिवाय यह लोग सभी दान, दया, अनुकम्पा, सहायता, प्राणरक्षा, परोपकार, सेवा आदि ससार के समस्त उपकारी कार्यों को करने मे एकान्त पाप होना मानते हैं और पाप का फल जन्म, जरा रोग मृत्यु आदि दुखों की वृद्धि है। तेरापन्थी साधु के सिवाय यह लोग ससार के सब मनुष्यों को असंयती और कुपात्र मानते हैं। अन्य सब साधुओं को तो यह भेषधारी, मूढ, गंवार, स्वांग धारी, भ्रष्ट, हिंसा मे धर्म मानने वाले कहते हैं, जिनका उल्लेख इनकी रचनाओं मे अनेक स्थानों में हैं। यह लोग उसी को साधु मानते हैं जो जो संसार के परोपकार. के कामों के करने मे गृहस्थ को पाप का उपदेश करता है। ये हैं तेरा पन्थ मजहब के सिद्धांत ! जिन से धर्म के नाम से जनसाधारण मे निर्दयता और स्वार्थ के भाव फैलते हैं।

धर्मप्रवर्तक अपने माने हुए सिद्धान्तों को संसार के समस्त मनुष्यों द्वारा मानते और पालन करते हुए देखना चाहता है। जिस कार्य के करने में वह धर्म और पुण्य समझता है उसे वह खुद करता और दूसरे लोगों से करवाना चाहता है। और जिसके करने में अधर्म या पाप समझता है उसको छुड़वाना चाहता है।

अनुमान कीजिये कि यदि सब गृहस्थ इस मान्यता के अनुसार परोपकार और सेवा के कार्यों को करने मे एकान्त पाप समझकर छोड़ दें तो समाज की कैसी भीषण दशा हो। जिन सेवाओं का आदर करना मनुष्य के लिये नैतिक जिम्मेवारी समझी जाती है और जिस परोपकार में समाज का उत्थान निहित है, उसे भी एकान्त पाप कह देना बड़ी भयकर बात है। इसलिये इस प्रकार के अनैतिक और हानिकारक सिद्धान्त का प्रचार होने देना मानवसमाज और राष्ट्र को हानि पहुचाने देना है।

जैनशास्त्रों के मानने वाले अन्य श्वेताम्बरियों ने, तेरापंथियों से इस विषय पर शास्त्रार्थ करके एक निर्णय पर पहुँचने की अनेक बार माग की। परन्तु तेरापन्थी आचार्यों ने शास्त्रार्थ करके एक निर्णय पर पहुँचने की मांग की आज तक कोई सुनाई नहीं की।

परोपकार और सेवा में गृहस्थ के लिये पाप होने की मान्यता, क्या जैन और क्या जैनेतर सभी के लिये हानिकारक है। इसलिये इस विषय की सफाई होना नितान्त आवश्यक है। विषय की गम्भीरता को देखते हुए इसका शीघ्रातिशीघ्र निर्णय होना चाहिये, चाहे वह समाज करावे या राष्ट्र। इस बुरी मान्यता का प्रचार बड़े जोरों से हो रहा है और लाखों मनुष्यों के हृदय पर यह बुरा असर कर चुकी है और करती जा रही है।

इस भ्रम से जनता को बचाना, धर्म की शोभा है और राष्ट्र का व्यापक उपकार एवं आवश्यक कर्तव्य है। इत्यलम्।

★

वेदोपदेश

आत्मिक स्वराज्य (संख्या १)

ओं प्रेह्यभीहि न ते वज्रो नियंसते-इन्द्र नृम्णं हि ते शवो हनो वृत्रं जया अप अर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥ ऋ० १-८०-३

[प्रवचन कर्त्ता—श्री पूज्यपाद महात्मा प्रभुआश्रित जी, भक्ति-साधन आश्रम, रोहतक]

सब स्थानों पर लड़ाई है। कहीं आंख मे, नाक मे और कहीं जिह्वा में। आत्मा व्याकुल है। सोच नहीं सकती। जो पार्टी बाज़ है वह कभी मेरे मित्र, सम्बन्धी, पड़ोसी को छेड़ता है ताकि यह गलतान रहे। क्रोध ने पार्टी बनाई इसकी सेना है निन्दा, हठ, क्रोध, कीना, बदला वृत्ति। यह इसके सहायक हैं। जो मेरी निन्दा करता है, उससे मेरी शत्रुता हो जाती है। इससे मनुष्य भीरू बन जाता है।

लोभ की सेना—झूठ, चोरी, रिश्वत बेइमानी आदि की है। लोभ का अपना नाम नहीं। यह सब काम लोभ के लिये करते हैं। एक लोभ से कितनी पाप की वृत्तियां आ गईं। यह वृत्ताकार ० है। इनका आदि और अन्त नहीं। न सिर है न पैर। इससे हमको सर्वतः घेरे हुए हैं।

मोह की सेना—आलस्य प्रमाद, स्थूल शरीर मोटा प्राय स्थूल मन जड़ बुद्धि। हम बेहोश हो जाते हैं। सब ओर शत्रु मुंह बाये खड़े हैं। देखने वाला सोचता है कि क्या करूं। कोई नेजा कोई बन्दूक कोई भाले लिये खड़ा है। इन सेनाओं से जीवात्मा घिरा है। वेद भगवान् कहते हैं, तू अपनी शक्ति सम्भाल। सेना तो साधारण सी चीज है। राजा के वशीभूत होने पर सब स्वयं वश में हो जाते हैं। इस अहंकार को झुकाओ। जैसे निजाम जीता गया फौज स्वयं-मेव हट गई। एक अहंकार दबाओ, सब स्वयं सेवक बन जायेंगे। जीवात्मा में बड़ी शक्ति हैं वह है सत्य संकल्प की। सत्य में बल है जिस में सत् नहीं वह क्या करेगा? जैसे कहावत है "कि जिसके जिस्म मे सत् ही नहीं रहा वह क्या करेगा" हमारा अस्तित्व सत्य के साथ है। इसकी शक्ति है सत्य संकल्प। हठ भी एक शक्ति है पर यह दुराग्रह है। "जिससे सबका कल्याण हो वह सत्य है"।

भारत सरकार ने निजाम को मारा नहीं, जीत लिया। तब वह अधीन होकर रहा। अहंकार रहे पर अधीन होकर। तू अपने संकल्प को जगा।

कैसे जगाएं? सत्य सोया हुआ है। सत्य चेला है। ज्ञान गुरु है। चेले ने गुरु को जगाना है। हमे शुद्ध ज्ञान नहीं। आज प्रत्येक मत वाले सत्य की दुहाई देते हैं पर उन्हे शुद्ध ज्ञान नहीं। धर्म मे शुद्ध ज्ञान है। वह ज्ञान जिन से हम बंधे हैं, इनका हमे ज्ञान हो। इनसे छूटने की हमारी इच्छा नहीं। लोग अब भी कहते हैं, कि अंगरेजों का राज्य अच्छा था। वह तप करना नहीं जानते और चाहते। तप के अभाव से सत्य को नहीं जगा सकते।

"सत्यं पुनातु पुनः शिरसि" "तप पुनातु पादयोः" तप के लिये ज्ञान की आवश्यकता है। तप, सत्य, ज्ञान पर्यायवाची सहायक शब्द हैं। प्रभु-पूजा, आराधना सब इसी लिये है कि हमें सत्य का ज्ञान होवे। सत्य की शक्ति को जगाएं। थोड़ा प्रकाश हुआ अन्धकार तो भाग जायेगा। हमारे में अग्नि जगी नहीं कि ये सब शत्रु भाग उठेंगे।

अब हम क्या करे? हमारे शत्रु कई हैं। भजन काल में मक्खी मच्छर आते हैं, चादर

ओढ़ लें दूर ही जायेंगे। यूका लिखा (जुए रिंड) तो घर के मालिक है। मच्छर तो बाहर के मलसे आये। इस मल को दूर करें तो स्वयं हट जायेंग या उस्तरा फिरा दें साफ़ हो जायेंगे। इस सफाईका नाम है भक्ति। मोटरको चलाने वाला तेल है पर उसे साफ़ न करें तो इंजन को और सवारियों को खराब कर देगा। पेट्रोल ज्ञान है सफाई तो भक्ति से होगी। ये वासनाएं भक्ति से धोई जायेंगी। हम भक्ति तो रोज करते हैं, पर हमारी शुद्धि नहीं होती। भक्ति का अर्थ है, विभक्त करना। जिसकी जो चीज है उसे दे दें। निन्दा, चोरी जिसकी है, उसे दे दें। जब उनको मिल गई तो हम खाली हो गये। जीवात्मा निर्मल है, निर्मलता पैदा कर। पर यह कठिन है। निन्दा हम किसको दें। इसका आसान तरीका है। जैसे मैं चाहता हूँ स्वराज्य को। किसी ने निन्दा की। इससे मुझे क्रोध आया। उसका मैं निशाना बन गया। उसका झण्डा मेरी राजधानी पर लग गया। पर यदि मैं उसे ठोकर लगा दूं, तो वह परास्त हो गया। नहीं तो वह वृत्र मेरे घर पर अधिकार कर लेगा। क्रोध से मेरी आंख ऊपर हो गई। उसका राज्य हो गया। ईसा ने कहा कि प्रभु कीपूजा करो तो सोचो कि आज क्या दुर्व्यवहार किया। पहले उस चीज को उखाड़ो। यही तुम्हारी वास्तविक पूजा है। अन्तः करण शुद्ध हो जायेगा और कोई पूजा का मतलब नहीं। मैल दूर हो गई तो प्रभु-दर्शन हो जायेगा।

आसान काम---कई आज्ञाएं शरीर से सम्बद्ध हैं और कई आत्मा से। जो शरीर से सम्बन्ध रखती हैं, वह शरीर के रोग और दुःख पैदा करती है उसमें गलतान रहने से शोक चिंता लगी रहती है। जो हम मन से करते हैं वह आत्मा से सम्बद्ध है हम कम से कम शरीर को ठीक कर लें। जो बीमारी कहीं से आकर कष्ट देती है वह तो किसी पाप का फल है। एक को सदा जुकाम रहता है, यह नाक की बीमारी है, कारण। हम घृणा करते हैं इससे नाक भौं सिकुड़ी रहती है। इसका इलाज करें। जब तक घृणा को न छोड़ेंगे तब तक बीमारी दूर न होगी।

जिन को हिस्टीरिया हो जाता है। पूर्व जन्म में उनके शौकीनी के विचार रहे। अब अगर वह बन्द हो गये तो उनको प्रभाव कम होगा। और अगर अब भी हमने प्रभु-आज्ञा को भग किया। उसके फल स्वरूप हमें उच्चपद नहीं प्राप्त हो सकता। योग-विद्या को निर्बल मन समझ सकता नहीं। दुर्बल मन सशय वृत्ति रखता है। चाहे पढ़े लिखे भी क्यों न हों।

आज सारा संसार इन्हीं में मस्त है। इस लिये आत्मा के साथ सम्बन्ध रखने वाले रोग जन्म जन्मांतर में साथ रहेंगे, और खराब करेंगे। कई लोग जप करते हुए आंखें मींचते हैं तो उन्हें बलाएं नजर आती हैं। जब खोल कर करेंगे तो अन्दर की आंख कैसे खुलेगी। आंख खुली भयानक होती है जैसे मृतक की। और यदि जीवित प्राणी भी किसको एक टकसे देखे तो कहते हैं कि "आंखें फाड़ कर क्यों देखता है ?"

ऐसे जिह्वा खुली अच्छी नहीं। मुंह खुले को मुंहफट कहते हैं। मृत्यु समय शरीर अकड़ा रहता है। हम तो अकड़े हुए हैं। गर्दन में धन की कील है। जिससे सारा शरीर अकड़ा हुआ है।

अपने रोगों को विचारो कि ये किस पाप से आये। इनके कारणों को ढूंढो। पर हमें तनिक भी फुर्सत नहीं। हमें आत्मा के कल्याण की इच्छा नहीं शरीर की कैसे रहेगी।

वेद ने तो एक नुस्खा बता दिया, सत्य संकल्प का। इसके प्रबल होने से हमारा शरीर आत्मा दोनों जग जायेंगे।

प्रभु आशीर्वाद दें ताकि इस सत्य-संकल्प से हमारे शरीर आत्मा दोनों जग जायें। क्रमशः

(लि०-पं० लखपति शास्त्री, साहित्याचार्य दिल्ली।)

सिनेमा का सुधार

[२]

(लेखक—श्री पं० गंगाप्रसाद जी एम० ए०, कार्यनिवृत्त मुख्य न्यायाधीश, जयपुर)

—:oo:—

सार्वदेशिक के गत (मई मास के) अंक ऊपर लिखे शीर्षक से मेरा एक लेख प्रकाशित हुआ है। वह लेख एक देवी (श्रीमती कृष्णा कुमारी M. A., P. T.) के लेख के उत्तर मे था। परन्तु विषय महत्वपूर्ण होने से मैंने अपने विचार कुछ विस्तार के साथ लिखे थे । सारांश यह था कि वर्तमान सिनेमाओं में अश्लीलता व विलासिता के भावों के अधिक होने की शिकायत सही है। परन्तु इस कारण से सिनेमाओं को नष्ट करने की दुहाई देना व्यर्थ है और यह असंभव भी है। उनका सुधार करना चाहिये । रेडियो (Radio Broadcasting) के विषय में भी ऐसी शिकायतें थीं। पर स्वराज्य हो जाने पर वे बहुत कम हो गई। सिनेमाओं का संचालन केवल सरकार के हाथ में नहीं, उसमें जनता का भी हाथ है। इसलिये उसके सुधार में कुछ समय लगेगा और जनता को भी उद्योग करना पड़ेगा।

(२) सन १९५० में सिनेमा व्यवसाय की जांच करने के लिये सरकार की ओर से एक कमेटी नियत हुई थी जिसके सभापति बम्बई के मेयर श्री पटेल महोदय थे। मेम्बरों में इलाहाबाद यूनिवर्सिटी के प्रो० श्री बी० बी त्रिपाठी शिक्षा के प्रतिनिधि थे, श्री बी० शकर I.C.S. सरकार के प्रतिनिधि व श्री बी० एन० सरकार व्यवसाय Industry के प्रतिनिधि थे। गत अक्टूबर मास में कमेटीने अपनी रिपोर्ट तैयार करके ११-१०-५१ को पार्लियामेंट में पेश कर दी। १२-१०-५१ के Times of India दैनिक-पत्र में रिपोर्ट का संक्षिप्त विवरण छपा था। उसी के आधार पर मैं निम्न बातें लिख रहा हूँ। यह सन्तोषदायक बात है कि कमेटी ने योग्यतापूर्वक जांच की। वर्तमान फिल्म कला में जो दोष हैं उनको स्वीकार किया है। यह भी लिखा है कि सुधार करना कठिन होगा "the evils having crept too wide and deep into the system" क्योंकि जो दोष है वे बहुत विस्तृत हैं और बहुत गहरे संस्था में घुसे हुए हैं। चित्रों की Quality poor दशा असन्तोषजनक कही है। Dances indiscriminate, music inappropriate अर्थात् नृत्यों का विचार हीन व गानों का अनुचित होना बतलाया है। Lack of proper provision of film entertainment for children अर्थात् बालकों के लिये चित्रों द्वारा उचित प्रमोद का अभाव होना स्वीकार किया है। यह महत्व की बात है क्योंकि वर्तमान चित्रों के विरुद्ध सबसे बड़ी शिकायत यह है कि बालकों पर उनका बुरा प्रभाव पड़ता है।

(३) जांच कमेटी ने यह सिफारिश की है कि १८ मेम्बरों की एक स्थायी फिल्म कौंसिल Autonomous Statutory Centre Film Council नियत की जाय। "It will enforce standard of quality to make the film a cultural agent and an instrument of healthy entertainment" अर्थात् वह कौंसिल फिल्म कला के आदर्श को उन्नत करेगी और उसको शुद्ध प्रमोद का तथा भारत की संस्कृति का प्रतिनिधि बनायेगी। उसका

चेयर मैन a person of high judicial status अर्थात् उच्च न्याय व्यवस्था का व्यक्ति होगा, यह भी महत्व की बात है। ऐसा होने पर अश्लील व अनुपयुक्त चित्रों के घूस वा रिश्वत द्वारा स्वीकृत हो जाने की जो शिकायतें रहती हैं वे कम हो जायेंगी। कौंसिल के अन्य मेम्बरों में व्यवसाय के अन्य प्रतिनिधियों (producers, distributors, exhibitors and artists) के सिवाय शिक्षा विभाग के व सरकार के प्रतिनिधि भी होंगे।

आय के लिये चित्रों के Entertainment Tax (आमोद करों) से जो भारी आमदनी होती है उसका दशवां भाग, तथा Raw films (कच्चे फिल्मों, पर एक Cess या कर लगाने का सुझाव रक्खा गया है। एक करोड़ रुपये की सम्पत्ति से एक Film Finance Corporation बनाने का भी प्रस्ताव है।

(४) आजकल सबसे बड़ी शिकायत यह है कि सिनेमाओं में बहुतायत से अश्लील अथवा विलासिता व कामुकता के चित्र होते हैं। इसके लिये Central Board of Censors अर्थात् केन्द्रीय निरीक्षक समिति बन चुकी है, जिसकी स्वीकृति Certification के बिना किसी चित्र का प्रदर्शन नहीं हो सकता। चित्रों की स्वीकृति के लिये रिपोर्ट में कुछ उत्तम आदेश दिये गये हैं, यथा—

(क) चित्र जो स्वीकृत किये जांय दो प्रकार के होंगे। एक सर्व साधारण general exhibition के लिये, दूसरे केवल प्रौढ़ adults के लिये। आर्य समाजी तथा अन्य सुधारकों का यह कर्तव्य होगा कि वे इस बात को देखें कि सिनेमा के अधिकारी नियमों का यथावत् पालन करते हैं और किसी चित्र में जो केवल प्रौढ़ लोगों के लिये स्वीकृत है किसी १८ वर्ष से कम आयु वाले बालक या बालिका को टिकट नहीं देते है।

(ख) सरकार ने विज्ञान तथा शिक्षा सम्बंधी बहुत से फिल्म तैयार किये हैं जो बिना फीस स्कूल, कालिजों व विद्यालयों को भेज दिये जाते हैं जिनसे विद्यार्थियों की शिक्षा मे उन्नति होती है, तथा कुछ आमोद-प्रमोद का साधन भी हो जाता है।

(ग) कमेटी का आदेश है कि सब सिनेमाओं में साधारण चित्रों मे भी जितने समय तक एक चित्र चलता है उसका लगभग दशवें भाग में ऐसे फिल्म दिखाये जावें जो सरकारी कार्यों के वा अन्य प्रकार जनता की शिक्षा व जानकारी के लिए सरकार ने स्वीकृत किये हैं। इससे उन साधारण अशिक्षित लोगों को भी जो सिनेमा में केवल नाच व गाने वा तमाशा देखने के अभिप्राय से जाते है कुछ उपयोगी शिक्षा मिल जायगी। आज कल सब सिनेमा वाले चित्र के दो भागों के बीच Interval इंटर वेल में ऐसे इश्तहार आदि दिखलाते हैं जिनके लिये उनको बड़ी फीस मिलती है अथवा आने वाले किसी फिल्म के कुछ आकर्षक दृश्य दिखला देते हैं जिस से उनको आगे के लिये आमदनी की आशा है।

(५)—रिपोर्ट से पाया जाता है कि अमरीका के सिवाय संसार भर में किसी दूसरे देश में फिल्म कला की इतनी उन्नति नहीं जितनी भारत में है। ४१ करोड़ रुपया इस व्यवसाय में लगा हुआ है जिससे २० करोड़ रुपये की वार्षिक आय होती है। लगभग ६० करोड़ दर्शक चित्रों को देखते हैं। ३२५० चित्र दिखाये जाते हैं २७५ नये चित्र प्रति वर्ष बनते हैं। पाकिस्तान लंका, बर्मा, स्याम.पूर्वी अफ्रीका, मध्य पूर्व आदि स्थानों में भी यहां के फिल्म जाते हैं। फिल्म (विशेषकर अंगरेजी फिल्मों) की दशा में उपयुक्त उन्नति होने पर इस आय में वृद्धि भी होनी संभव है।

(६) इस वर्ष के आरम्भ में एक International film festival अर्थात् अन्तर्जातीय फिल्म उत्सव मनाया गया जिसका आरम्भ बम्बई में जनवरी मास में हुआ था। फिर मद्रास व देहली में प्रदर्शन हुआ और अन्त में कलकत्ता में मनाया जाकर ८ मार्च १९५२ को विदाई दीगई जिस में भारत के Information & Broadcasting के सचिव श्री दिवाकर महोदय ने अध्यक्ष का कार्य्य किया। ९-३-५२ के Times of India में उसका वर्णन छपा है जिससे परखा जाता है कि सारे संसार के २३ देशों के प्रतिनिधि इस उत्सव में शामिल हुए। १३ भाषाओं के ५५ चित्र दिखाये गये, और २३ देशों के १५० Documentaries अर्थात जनता के उपयोगी जानकारी के चित्र दिखाये वा सुनाये गये, लगभग १२ लाख मनुष्यों ने इस उत्सव में चित्रादि को देखा। भिन्न२ देशों के प्रतिनिधियों में संपर्क और विचार विनिमय हुआ। और भारत में फिल्म कला की ओर जागृति हुई। श्री दिवाकर महोदय ने विदेश के प्रतिनिधियों को प्रमाण पत्रादि दिये जो उपस्थित न थे उनको अन्य प्रकार भिजवाये।

(७) ऐसी विश्व व्यापिनी और दिन प्रति दिन बढ़ती हुई कला केलिये यह पुकार कि वह बन्द या नष्ट कर दी जाय कितनी अनुचित है और सर्वथा असंभव भी है विशेषकर जब कि जो दोष उसमे इस समय है उनका सुधार करना संभव है और जनता ही के हाथ मे है। जांच कमेटी Enquiry Committee की रिपोर्ट में जो आदेश या सुझाव सुधारके लिये दिये गये हैं उन को कार्य्य में लाया जाय इसका उत्तरदायित्व सुधारक लोगों का ही होना चाहिये। जो लोग व्यवसाय में लगे हुए हैं वे अपने स्वार्थ के कारण उनकी अवहेलना करेंगे। उनके स्वार्थ के कारण ही फिल्म कला में वे दोष बढ़े हुए है जिनकी शिकायत की जाती है। यदि सुधारक वर्ग इन दोषों की समाचार पत्रों मे केवल डुगडुगी पीटने से सन्तुष्ट न होकर उन को दूर करने के साधन काम में लावें जो कानून व कायदों में बतलाये गये हैं तो सुधार होने मे बहुत विलम्ब नहीं लगेगा।

(८) ऋषि दयानन्द के फिल्म वा चित्र तय्यार कराये जाने का प्रश्न भी बहुत समय से आर्य-समाज के सामने है। १९-१०-५० के आर्य मित्र में एक मेरा लेख भी इस प्रस्ताव के समर्थन में प्रकाशित हुआ था। २४-४-५२ के आर्यमित्र में एक लेख श्री प्रेमदत्त पांडे जी का इस प्रस्ताव की पुष्टि में छपा है। ८ मई के आर्य मित्र मे मेरे मित्र श्री विश्वम्भर सहाय प्रेमी जी का लेख इसके विरोध में छपा है। मैं इस लेख में उस के उत्तर में कुछ अधिक नहीं लिखना चाहता। परन्तु उक्त लेखक महोदय ने प्रचार की दृष्टि से यह लिखा है कि ऋषि के जीवन का चित्र बनाया जाने की दशा में यदि "एक बात भी स्वामी दयानन्द के सिद्धान्तों के प्रतिकूल आ जाती है तो वही विवादास्पद विषय बन जायगा और उसका प्रभाव कदापि अच्छा न पड़ेगा।" मेरे विचार में यदि ऋषि दयानन्द का चित्र बनाना स्वीकार हो तो उस को मुख्यतया कला की दृष्टि से ही तैयार कराना होगा। सिद्धान्त का प्रश्न साधारण होगा। उस को ऐसी तीव्रदृष्टि से नहीं देखा जा सकेगा जैसी प्रेमी जी के ध्यान में है, अथवा जैसी किसी सिद्धान्त विषय के ग्रन्थ की रचना में रक्खी जाती है। यदि सिद्धान्त विषय में ऐसी कड़ी दृष्टि रहे तो ऐसा फिल्म बनाने का विचार छोड़ना ही होगा। विषय बहुत जटिल है। इसका निर्णय करना ही है। मेरी वही सम्मति

है जो मैंने अपने १६-१०-५० के लेख में प्रकट की थी कि सार्वदेशिक आर्य प्र० सभा ५ या ७ सज्जनों की एक उपसमिति बना देवे जो इस कठिन विषय के सब अंगों पर विचार करके अपनी रिपोर्ट सभा में भेज देवें और फिर सभा की अन्तरंग सभा उस पर अपना निश्चय देवे।

(६) स्वामी दयानन्द के फिल्म की तय्यारी के साथ यह प्रश्न भी विचारणीय है कि ऋषि के जीवन के सिवाय अन्य किन धार्मिक विषयों पर आर्य समाज की ओर से चित्र बन सकते हैं वा बनने चाहिये। मैं कई बार अपना यह विचार प्रकट कर चुका हूँ कि फिल्म प्रचार का सब से बड़ा साधन है। अब तक जो ८ या १० धार्मिक चित्र बने वे मुख्यतया पुराणों के आधार पर बने। उनसे पौराणिक विचारों की शक्ति बहुत कुछ बढ़ गई है। मेरे अनुमान से १० या २० सनातनी उपदेशक इतना प्रचार नहीं कर सकते थे जितना इन धार्मिक चित्रों ने किया। सरकार भी अपने शिक्षा प्रचार कार्य में फिल्मों का उपयोग करती है। आर्य समाज अब तक उसकी ओर बिलकुल उदासीन भाव रखता रहा है जो उसके प्रचार की उन्नति में बाधक ही है। मेरी सम्मति में यदि सार्वदेशिक सभा स्वामी दयानन्द के जीवन चित्रपट के विषय पर कोई उपसमिति बनावे तो यह दूसरा विषय भी विचार व रिपोर्ट के लिये उसी के सपुर्द कर देवे।

A Letter to Hon'ble Pt. Jawahar Lal Nehru, Prime Minister of India.

ON

Sheikh Abdulla's Speech.

Respected Pandit ji

There was nothing surprising in Sheikh Abdulla's Speech, as he has only treaded the path, shown to him by you, as his preceptor, as you, even after the election results, never hesitate in telling the world that communalism is rampant in India. Thus, Sheikh Abdulla has only faithfully followed your most favourite tune of communalism.

The results of the last elections in the country were a clear and positive proof that commualism had died and buried deep in India; but even then, you went on harping on your tune of the existence of communalism in the country; and thereby you have committed a great national wrong by defaming India and lowering her prestige before the world. During the British regime and before the recent elections, Hindu communalism which always remained ineffective and feeble, was the direct outcome of the Muslim appeasement policy followed by the Congress and its leaders since 1916. The Muslim communalism, on the other hand, was visible at its height in every corner of the land. The Congress and its leaders were always thinking, talking and acting in terms of Hindus and Muslims, as separate entities; and were always trying to appease the latter at the cost of the former. Now you, as our Prime Minister have begun talking in terms of majority and minority.

A man of your exalted position and high attainments ought to have known that there is no Hindu or Muslim and no majority or minority in nationalism. Nationalism is always an unit and it is indivisible. If this could have been understood long before by you and our other

leaders, the country would have been saved from vivisection and its dreadful consequences. If you, as our Prime Minister, can even now understand this fundamental truth of nationalism and begin to act accordingly your disciples like Sheikh Abdulla will follow suit, and all the communal organisations in India including Jammu, though now only in name, will be automatically wiped off. But you should first undo this great national wrong.

I am forwarding a copy of this letter to Hon'ble Shri Dr. Rajendra Prasad, President of India, New Delhi. Hon'ble Shri N. Gopal Swami Ayyanger, Minister for States, Govt. of India, New Delhi. Hon'ble Shri Sheikh Abdulla, Chief Minister, Jammu & Kashmir, Srinagar.

Yours Respectfully,

18th April, 1952

S. Chandra
Former Assistant Secretary,
International Aryan League, Delhi.

सार्वदेशिक पत्र के ग्राहक अवश्य अंकित करें

जिन ग्राहकों को किसी मास सार्वदेशिक प्राप्त न हो तो उन्हें उस मास की १२ तारीख तक सभा कार्यालय को सूचित कर देना चाहिये। इसके पश्चात् प्राप्त होने वाली शिकायतों पर यदि कार्यवाही न होगी तो उसकी उत्तरदायिता सभा कार्यालय पर न होगी।

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा दिल्ली का

चवालीसवां वार्षिक वृत्तान्त

(१-३-१९५१ से २९-२-१९५२ तक)

निर्माण व्यवस्था

इस वर्ष इस सभा में १६ प्रतिनिधि सभाएँ और नियम सं० ६ के अनुसार सभा में सीधे प्रतिनिधित्व प्राप्त करने वाली ८ आर्य समाजें सम्मिलित रहीं। वर्ष के अन्त में यह सभा प्रतिनिधि सभाओं के ६० आर्य समाजों के ६ भूतपूर्व प्रधान २, प्रतिष्ठित ४, आजीवन १८ कुल ९० सदस्यों का समुदाय थी।

इस वर्ष श्री शूर जी वल्लभदास जी के निधन से १ प्रतिष्ठित सदस्य का स्थान रिक्त हुआ और श्री लाला ज्ञानचन्द जी के निधन से आजीवन सदस्यों की संख्या में एक की कमी हुई।

इस वर्ष ६-५-५१ की अन्तरंग के निश्चयानुसार श्री ओम्प्रकाश जी और श्री प्रो० रामसिंह जी तथा ३-२-५२ की अन्तरंग के निश्चयानुसार श्री मा० शिवचरणदास जी, श्री दिव्यानन्द जी सरस्वती, श्री राजकुमार रणंजयसिंह जी तथा श्री लाला राधेलाल जी सभा के आजीवन सदस्य बनें।

सभा के अधिकारी और अन्तरंग सदस्य

अधिकारी

१ प्रधान श्री राजगुरु पं० धुरेन्द्र जी शास्त्री
२ उप प्रधान श्री पं० इन्द्र जी विद्यावाचस्पति
३ „ , „ स्वामी अभेदानन्द जी
४ „ „ „ पं० नरेन्द्र जी हैद्राबाद दक्षिण
५ मन्त्री „ पं० ज्ञानचन्द जी
६ उप मन्त्री „ पं० लक्ष्मीदत्त जी दीक्षित
७ कोषाध्यक्ष „ लाला बालमुकुन्द जी आहूजा
८ पुस्तकाध्यक्ष „ प्रो० रामसिंह जी

अन्तरंग सदस्य

१ श्री पं० वासुदेव जी शर्मा पटना, बिहार
२ „ पं० रविदत्त जी ब्यावर, अजमेर
३ „ पं० मिहिरचन्द जी धीमान् कलकत्ता, बंगाल
४ „ दत्तात्रेयप्रसाद जी वकील, हैद्राबाद
५ „ पं० विजयशंकर मूलशंकर जी बम्बई,
६ „ पं० शिवशंकर जी गौड़ जागीर कमिश्नर ग्वालियर, मध्यभारत
७ „ म० चंचलदास जी अजमेर, (सिन्ध)
८ „ पं० रामदत्त जी शुक्ल एम० ए० एल० एल० बी एडवोकेट, लखनऊ, उत्तर प्रदेश
९ „ चौ० जयदेवसिंह जी बी० ए० एल० एल० बी, एडवोकेट, मेरठ, उत्तर प्रदेश
१० श्री लाला चरणदास जी पुरी बी० ए० एल०एल०बी० एडवोकेट, दिल्ली,(पंजाब)
११ श्री पं० यशःपाल जी सिद्धान्तालंकार जालंधर पंजाब
१२ „ लाला रामगोपाल जी शाल वाले देहली, सम्बद्ध आर्य समाजों के प्रतिनिधि
१३ „ कविराज हरनामदास जी बी० ए० देहली, आजीवन सदस्य
१४ श्रीमती लक्ष्मी देवी जी मुख्याधिष्ठात्री कन्या-गुरुकुल सासनी, (अलीगढ़)
१५ श्री मदनमोहन जी सेठ एम०ए० एल० एल० बी रि० डिस्ट्रिक्ट ऐंड सेशन जज लखनऊ
१६ श्री म० कृष्ण जी बी० ए० मालिक प्रताप नई दिल्ली।
१७ श्री पं० गंगाप्रसाद जी उपाध्याय एम० ए० प्रयाग

९ ९-५१ की अन्तरंग सभा की बैठक में श्री पं० रविदत्त जी का अन्तरंग सदस्यता से त्याग-पत्र स्वीकृत होकर उनके स्थान पर श्री पं० जीयालाल जी अन्तरंग सदस्य निर्वाचित हुए।

उपसमितियां

६-५-१९५१ की अन्तरंग सभा ने इस वर्ष

का कार्य विभाजन करते समय निम्नलिखित उप समितियां नियुक्त की थीं।

आर्य नगर गाजियाबाद उपसमिति

१ श्री लाला बालमुकुन्द जी आहूजा
२ ,, प्रो० रामसिंह जी एम० ए०
३ ,, लाला हरशरणदास जी रईस
४ ,, पं० इन्द्र जी विद्यावाचस्पति
५ ,, पं० ज्ञानचन्द जी आर्य सेवक (संयोजक)
६ ,, चौ० जयदेवसिंह जी
७ ,, देशराज जी चौधरी
८ ,, लाला चरणदास जी पुरी

धन विनियोग उपसमिति

१ श्री लाला बालमुकुन्द जी आहूजा
२ ,, लाला चरणदास जी पुरी
३ ,, पं० इन्द्र जी विद्यावाचस्पति
४ ,, पं० ज्ञानचन्द जी (संयोजक)
५ ,, देशराज जी चौधरी
६ ,, लाला हरशरणदास जी

आर्य समाज उपनियम संशोधन उपसमिति

१ श्री बा० मदनमोहन जी सेठ
२ श्री पं० रामदत्त जी शुक्ल (संयोजक)
३ श्री प० ज्ञानचन्द जी
४ श्री चौ० जयदेवसिंह जी
५ श्री पं० गंगाप्रसाद जी उपाध्याय
६ श्री पं० विजय शंकर जी

आर्यवीरदल उपसमिति

१ श्री पं० ज्ञानचन्द जी : मन्त्री सार्वदेशिक सभा:
२ श्री लाला बालमुकुन्द जी आहूजा (कोषाध्यक्ष सभा)
३ ,, पं० मिहिरचन्द जी धीमान् (रक्षा मन्त्री)
४ ,, ओमप्रकाश जी त्यागी प्रधान सेनापति
५ ,, राजगुरु पं धुरेन्द्र जी शास्त्री
६ ,, पं० वासुदेव जी शर्मा
७ ,, पं० रामदत्त जी शुक्ल

सम्बद्ध प्रान्तीय सभाओं के दल अधिष्ठाता

८ श्री प० भीमसेन जी विद्यालंकार	पंजाब
९ ,, पं० रविदत्त जी व्यावर	राजस्थान
१०,, युद्धवीरसिंह जी	हैद्राबाद
११ ,, स्वामी दिव्यानन्द जी	उत्तरप्रदेश
१२ ,, प० वासुदेव जी	बिहार
१३ ,, पं० मिहिरचन्द जी धीमान्	बंगाल
१४ ,, लाला रामगोपाल जी	दिल्ली

सार्वदेशिक प्रकाशन लिमिटेड उपसमिति

१ श्री पं० इन्द्र जी विद्यावाचस्पति
२ ,, पं० गंगाप्रसाद जी उपाध्याय
३ ,, पं० रामदत्त जी शुक्ल
४ ,, चौ० जयदेवसिंह जी
५ ,, देशराज जी चौधरी संयोजक
६ ,, लाला बालमुकुन्द जी आहूजा
७ ,, प्रो० रामसिंह जी एम० ए०

उपदेशक महाविद्यालय उपसमिति

१ श्री पं० लक्ष्मीदत्त जी दीक्षित
२ ,, कविराज हरनामदास जी
३ ,, पं० गंगाप्रसाद जी उपाध्याय
४ ,, पं० रामदत्त जी शुक्ल
५ ,, पं० ज्ञानचन्द जी (संयोजक)
६ ,, प० धर्मदेव जी विद्यावाचस्पति
७ ,, राजगुरु पं० धुरेन्द्र जी शास्त्री
८ ,, स्वा० अभेदानन्द जी

आर्य नगर गाजियाबाद

आर्य नगर के बिके हुए २५७ प्लाटों में से १७३ प्लाट तथा नई क्रय की हुई भूमि अभी तक यू० पी० रोड साइड कन्ट्रोल ऐक्ट की बाधा से मुक्त नहीं हो पाई है यद्यपि इसके लिये पूरा २ यत्न

हो रहा है। श्री मदनमोहन जी सेठ सम्बद्ध अधिकारियों से पत्र व्यवहार और भेंट आदि के द्वारा इस बाधा के निराकरण के कार्य में संलग्न हैं। हर्ष है इस यत्न की सफलता की संभावनाएं इस वर्ष बहुत बढ़ गई हैं। आर्य नगर गाजियाबाद म्यूनिसिपिल क्षेत्र में आ गया है।

१६६ प्लाटों की रजिस्ट्रियों के द्वारा सुरक्षित हुए धन में से गत वर्ष ४७६६७ रुपये साढ़े ग्यारह आने शेष था। इस वर्ष के अन्त में भी यही राशि शेष थी। इसके मुकावले में २७०४६ रुपये ६ पाई भूमि पर लगा हुआ है।

धन विनियोग उपसमिति

इस वर्ष इस समिति की ४ बैठके बुलाई गई। परन्तु कोरम न होने से कोई बैठक न हो सकी। इस वर्ष सभा का ३००८०) रुपया १० वर्षीय नेशनल ट्रेजरी डिपोजिट में साढ़े तीन प्रतिशत सूद (प्रतिवर्ष प्राप्तव्य) पर तथा ६३०००) रुपया पंजाब नेशनल बैंक देहली में एफ० डी० में लगाया गया।

आर्यसमाज उपनियम संशोधन उपसमिति

इस उपसमिति की एक बैठक ९-९-५१ को देहली में उपनियमों के संशोधन के सम्बन्ध में कतिपय मौलिक बातों का निर्णय करने के लिये बुलाई गई। बैठक के निश्चयानुसार संशोधनों का ड्राफ्ट बनाने का कार्य श्री पं० रामदत्त जी शुक्ल एडवोकेट के सुपुर्द हुआ। ड्राफ्ट बनाये जाने का यत्न हो रहा है।

आर्यवीर दल उपसमिति

इस उपसमिति की एक बैठक ९-९-५१ को देहली में आर्यवीर दल के कार्य, संचालनार्थ धन की व्यवस्था और बजट की पूर्ति के उपायों पर विचार करने के लिये हुई। इस बैठक की रिपोर्ट पर सभा की ९-९-५१ की अन्तरंग की बैठक में विचार हुआ। अन्तरंग के निश्चयानुसार श्री ओम्प्रकाश जी त्यागी प्रधान सेनापति आर्यवीर दल ने आर्यवीर दल उपसमिति के अन्तर्गत सभा प्रधान की अनुमति से दल के कार्य को यथेष्ट प्रगति देने के उद्देश्य से एक कार्य कारिणी का निर्माण किया।

आर्यवीर दल समिति की निर्माण व्यवस्था की धारा सं० १० के अनुसार समिति की ९-९-५१ की बैठक के अनुसार श्री ब्र० उषर्बुध जी अखिल भारतीय आर्यवीर दल के सहायक प्रधान सेनापति नियुक्त हुए।

इस वर्ष आर्यवीर दल संगठन के लिए निम्न प्रकार ७५६ रुपये साढे ५ आने का दान प्राप्त हुआ :—

१३०-५-६	श्री ब्र० उषर्बुध जी
४५ ०-०	कार्य कारिणी द्वारा संगृहीत
४०-०-०	आर्यवीर दलों से
५३९-०-०	सभा प्रधान द्वारा संगृहीत
७५६-५-६	

सार्वदेशिक प्रकाशन लिमिटेड

इस उप समिति की एक बैठक ९-९-५१ को देहली में हुई। कम्पनी में लगे हुए सभा के धन की सुरक्षा के उपायों के सम्बंध में कम्पनी को विशेष सुझाव दिये गये हैं। सभा के अधिकार की सुरक्षा का विषय अभी भी विचाराधीन है।

उपदेशक महाविद्यालय, उपसमिति

इस उपसमिति द्वारा प्रस्तुत उपदेशक विद्यालय की व्यावहारिक योजना व पाठ विधि अन्तरंगके सामने आ चुकी है। विद्यालय के एक वर्ष के परीक्षण के लिये ४०००) रुपये तथा स्थायी

संचालन के लिये धन की व्यवस्था का हल सभा के विचाराधीन है।

सिद्धान्त उपसमिति

५-५ १९५१ की अन्तरग सभा की बैठक में इस उप समिति द्वारा भेजा हुआ सिद्धान्त समिति का संगठन स्वीकृत हुआ। इस के दो उद्देश्य नियत हुए। एक तो वैदिक सिद्धान्त पोषक ग्रन्थों का निर्माण और प्रकाशन और दूसरा वैदिक धर्म तथा संस्कृति के विरुद्ध लिखित साहित्य का निराकरण। समिति का नियमित संगठन किया जाने वाला है। कई आर्य विद्वानों की स्वीकृति भी प्राप्त हो चुकी है। आक्षेप योग्य साहित्य एकत्र किया जा रहा है। श्री पं० जगन्नाथ जी रामनगर देहली ने इस कार्य के निमित सभा को ५००) रुपया दान-रूप मे दिया है।

सत्यार्थ प्रकाश सर्वांगपूर्ण संस्करण संपादन उपसमिति

१ श्री पं० रामदत्त जी शुक्ल (संयोजक)
२ श्री आचार्य विश्वश्रवा जी
३ श्री पं० गङ्गाप्रसाद जी उपाध्याय
४ श्री पं० धर्मदेव जी विद्यावाचस्पति

सत्यार्थ प्रकाश के सर्वांग सुन्दर परिष्कृत संस्करण के सम्बंध मे अदत्त और अपूर्ण प्रतीकों की खोज का कार्य इस वर्ष भी श्री पं० धर्मदेव जी विद्यावाचस्पति ने जारी रक्खा और इस विषय में अन्य विद्वानों से सहयोग प्राप्त करने का यत्न किया जिसके परिणामस्वरूप बहुत सेसत्यार्थ प्रकाश में उद्धृत प्रमाणोंके शुद्ध प्रतीक प्राप्तहो गये हैं अब कुछ थोडे से प्रमाण है जोअभी उप लब्ध नहीं हो सके और जिनके लिये अनुसन्धान जारी है। जो प्रतीक उपलब्ध हो गये हैं उनकी वर्णानुक्रम से शुद्ध सूची विद्वन्मण्डल तथा स्वाध्याय शील जनता के उपयोगार्थ तैयार की जा रही है। आशा है कुछ मासों में यह कार्य संपूर्ण हो जायगा। इस परिष्कृत संस्करण के विषय में सार्वदेशिक सभा का परोपकारिणी सभा से पत्र व्यवहार चल रहा है।

शुद्धि कार्य

इस वर्ष भी मेरठ जिले के कुछ भागों मे कुछ समय तक यह कार्य हुआ। मध्यभारत के नायकों मे आर्य धर्म के प्रचार का कार्य आर्य प्रतिनिधि सभा मध्य भारत के सहयोग से आरम्भ किया गया परन्तु उपदेशक के उपयुक्त सिद्ध न होने के कारण यह कार्य स्थगित कर देना पड़ा। राजस्थान आदि में सभा इस कार्य के लिये उपयुक्त क्षेत्रों का निरीक्षण और उपयुक्त क्षेत्रो मे काय आरम्भ करने के लिये आवश्यक साधन जुटाने के यत्न मे हैं।

धर्मार्य सभा

१ धर्मार्य सभा के मन्त्री श्री स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी ने २६-१० ५० को निजी कारणों से इस पद से अपना त्यागपत्र दे दिया था। तब से इस वर्ष के अन्त तक श्री स्वामी वेदानन्द तीर्थ जी तथा सहायक मन्त्री श्री पं० धर्मदेव जी विद्यावाचस्पति कार्य करते रहे। धर्मार्य सभा

का कोई अधिवेशन न होने के कारण त्यागपत्र सभा में न भेजा जा सका। यद्यपि नियमित रूप से त्यागपत्र स्वीकृत न हुआ था और प्रधान महोदय ने श्री मन्त्री जी को त्यागपत्र स्वीकृत होने तक, मन्त्री पद का कार्य करते रहने की प्रार्थना की थी फिर भी वे कार्य करने में असमर्थ रहे। सभा के वर्तमान सदस्यों का कार्य काल सभा के इस वर्ष के साथ समाप्त हो गया है। आगामी ३ वर्ष के लिये सदस्यों की नामावली मंगाई जा रही है।

विलोनिया केन्द्र

यह केन्द्र त्रिपुरा राज्य में तत्कालीन राजा द्वारा प्रदत्त २० बीघा भूमि मे स्थित है। इस केन्द्र मे एक पाठशाला, आर्य समाज और औषधालय के द्वारा शिक्षा प्रचार और जन सेवा का कार्य होता है। अशिक्षित और धार्मिक अन्ध विश्वासों में डूबी हुई पर्वतीय जनता में जहां ईसाइयों का प्रचार कार्य फैला हुआ है। इस तथा इस प्रकार के विविध केन्द्रों की आवश्यकता का सहज ही अनुमान लगाया जासकता है। यह केन्द्र आर्य प्रतिनिधि सभा बंगाल के अधीन है और उसके प्रतिनिधि श्री पं० सदाशिव जी की देख रेख में कार्य होता है। १ चिकित्सक, १ प्रचारक, २ शिक्षक, ४ कम्पाउन्डर तथा अन्यान्य परिचारक और परिचारिकाएँ कार्य करती हैं। कुल व्यय ४००) रुपये मासिक है जो बंगाल रिलीफ फन्ड से आर्य प्रतिनिधि सभा बंगाल के द्वारा दिया जा रहा है। केन्द्र में फलके बाग हैं जिनसे अभी लगभग ४००) रुपये वार्षिक की आय होती है। इस केन्द्र के अधीन लखीचरा में एक केन्द्र खुला हुआ है। वर्ष भर के कार्य का विवरण इस प्रकार है:—

१ शुद्धि कार्य—मार्च ५१ से फर्वरी ५२ तक १६४ रियाक ईसाइयों को शुद्ध किया गया।

२ प्रचार कार्य—इस प्रान्त में घूम फिर कर प्रचार कार्य करना संभव परक नहीं अतः जिस ग्राममें केन्द्र हो वहां के ही रियांक परिवारों मे जाकर वार्तालाप के द्वारा उनको समझाना पड़ता है। १ बगाफा, २ लखीचरा, ३ बेताका ४, कालाचरा, ५ लाउगांग आदि ग्रामों के अधिवासियों में प्रचार किया गया।

३ ग्रामांचलों में जहां कहीं भी किसी विशेष उपलक्ष्य में यज्ञ आदि का आयोजन किया वहां विलोनिया तथा लखीचरा केन्द्रों के कार्यकर्त्ताओं ने विशेष व्याख्यान दिये। सारे वर्ष के व्याख्यानों की कुल संख्या ४० है। वार्तालाप के द्वारा जो प्रचार किया गया उसकी संख्या ३०० के लगभग है।

४ संस्कार—यज्ञोपवीत २००, गृह प्रवेश ४, विवाह २, अन्त्येष्टि १

५ समाज स्थापना—आर्य समाज स्थापित हुए

१ विलोनिया—प्रधान श्री हरेन्द्रकुमार सूर, मन्त्री श्री सुरेन्द्रकुमार विश्वास, सदस्य संख्या १०

२ लक्ष्मीचरा—प्रधान श्री कृष्णचन्द्र रियांक, मन्त्री श्री गगनचन्द्र रियांक सदस्य २५ : रियांक समाज :

३, लक्ष्मीचरा २, प्रधान क्षेत्रकुमार मजूमदार, मन्त्री श्री गगनचन्द्र रियांक सदस्य १०

: आश्रय प्रार्थी समाज :

४ राधा किशोर गंज, प्रधान श्री रमणी मोहनदास, मन्त्री नगर वासी भौमिक, सदस्य २०

५ इच्छाछरा, प्रधान देवजय रियांक मन्त्री अक्षमणि रियांक, सदस्य१३

६ बेताका, प्रधान बेत्र कुमार चौधरी, मन्त्री योगेश्चन्द्र दास, सदस्य ८

७ सिन्धु आचारण, प्रधान श्री खुन्नूहा रियांक, मन्त्री मगदलां रियांक, सदस्य १०

८ बरपतिराम, प्रधान कालीचरण रियांक, मन्त्री खड्गराय रियांक, सदस्य १३

९ लाउगांग, प्रधान देवेन्द्रकुमार नाथ, मन्त्री मोतीलाल दास गुप्त, सदस्य १२

विलोनिया विभाग तथा पोस्ट आफिस मुहरी पुर त्रिपुरा राज्य,

साहित्य प्रचार—१-भारते आर्य समाज, २-दिग्विजयी दयानन्द, ३-शतनाम उपासना, ४-वैदिक संध्या विधि, ५-आमरा आर्य, ६-आर्योद्देश्य रत्न माला, ७-गोकरुणा निधि, ८-गायत्री मन्त्र विस्तृत व्याख्या सहित, ९-आर्य समाज के दस नियम, १० पशु बलि निषेध आदि सैंकड़ों की संख्या में वितीर्ण किये गये (बंगला भाषा में।)

सहायता कार्य वर्तमान वर्षा भर में दातव्य चिकित्सालयों में औषध दान के अतिरिक्त निम्न लिखित रूप में साधारण सी सहायता का कार्य किया गया। यथा:—

गरीब आश्रय प्रार्थियों को पथ्य तथा अनुपान आदि, गरीब विद्यार्थियों को पुस्तकें तथा अन्य आवश्यक वस्तुएं, किसी २ वस्त्र-हीन अत्यन्त गरीब को वस्त्र खरीदने के लिये तथा लावारिस मरने वालों को जलाने के लिये आर्थिक सहायता।

८ विलोनिया तथा लक्ष्मीचरा के दातव्य चिकित्सालयों से वर्तमान वर्ष भर मे कुल २४९०४ रोगियों को औषध दिया गया।

९ चिकित्सक १ चिकित्सक तथा प्रचारक १ शिक्षक २ कम्पाउन्डर तथा अन्य न्य परिचारक तथा परिचारिका ४

१० प्रति रविवार को विलोनिया केन्द्र मे हिन्दी पढ़ाने का भी प्रबन्ध है।

११ एक दैनिक पत्र तथा एक मासिक पत्रिका मंगवाने का भी प्रबन्ध है। एक छोटा सा वैदिक सिद्धान्त सम्बन्धी ग्रन्थों का भी संग्रह है। लोग स्वाध्याय आदि द्वारा लाभ उठाते हैं।

सभा प्रधान का दौरा

गतवर्ष की तरह इस वर्ष भी सभा प्रधान ने देश के विविध प्रान्तों का परिभ्रमण किया, आर्य समाजों का निरीक्षण, आर्य समाज की स्थिति का पर्यवेक्षण, सार्वजनिक सभाओं में भाषण, आर्य समाज के कार्यकर्ताओं की सभाओं में समाज की उन्नति के उपायों पर विचार विमर्श, ये चार बातें इस परिभ्रमण का मुख्यांग

रहीं। आर्य समाजों ने स्थान २ पर सभाप्रधान का उनके पद और व्यक्तित्व के अनुरूप अभिनन्दन किया और उनके भ्रमण से असंख्य नर नारियों को लाभान्वित होने का अवसर प्रदान किया। प्रधान जी मध्यप्रदेश, बम्बई, बड़ौदा, विहार, उत्तर प्रदेश, पंजाब और बंगाल का ही भ्रमण कर सके राजनैतिक निर्वाचनों के कारण कई प्रान्तों का पुरोगम न बन सका। कई प्रान्तों का पुरोगम संक्षिप्त करना पड़ा फिर भी इस भ्रमण में सभा के लिये थैलियों व दान के रूप में प्रधान जी को निम्नप्रकार ५०६६ रुपया प्राप्त हुआ।

१ बम्बई व बड़ौदा	१७६३ रुपये
२ मध्य प्रदेश	११८५ ,,
३ उत्तर प्रदेश,	८६५ ,,
४ विहार;	७०१ ,,
५ बंगाल	५०१ ,,
६ सिन्ध	५१ ,,
	५०६६ योग

इसके अतिरिक्त निम्न प्रकार २०५८ रुपये ८ आने प्रधान जी के द्वारा प्राप्त होकर कोष में जमा हुआ।

१५००) आजीवन सदस्यता का शुल्क
५४१) आर्यवीरदल के लिये गुजरात की समाजों से दान
१६॥) आने निजी भेंट में प्राप्त दो राशियां जो सभा को दे दी गई।

२०५८ रुपये ८ आने

इस प्रकार सभा को कुल ७१५४ रुपये ८ आने की राशि प्राप्त हुई।

इस भ्रमण के विस्तृत वृतान्त आर्य तथा अन्यान्य पत्रों में यथा समय प्रकाशित हो चुके हैं।

हैद्राबाद पीड़ित सहायता

इस वर्ष श्री स्व० बंशीलाल जी के परिवार को १००) रुपया मासिक के हिसाब से ५ मास तक ५००) की सहायता दी गई और ३ वर्ष की अवधि पूर्ण हो जाने पर यह सहायता अगस्त १६५१ से बंद की गई।

दयानन्द पुरस्कार निधि

इस निधि की स्थापना कलकत्ता आर्य महासम्मेलन के निश्चय सं० २१ के द्वारा आर्य समाज तथा आर्य सिद्धान्तों पर लिखी हुई उत्कृष्ट पुस्तकों के लेखकों को पुरस्कृत करने के उद्देश्य से हुई थी और इसके लिये १ लाख रुपये की अपील की गई थी। अपील पर अब तक ५३२४ रुपये ८ आने प्राप्त हुए हैं। २२-४-५० की अतरंग के निश्चयानुसार आर्य नगर गाजियाबाद निधि से ५०००० रुपया इस निधि में परिवर्तित हुआ। इस निधि के सूद से १५०० वार्षिक पुरस्कार रूप में दिये जाने की व्यवस्था करदी गई है। इस समय इस निधि का सूद ३६७१ रुपया जमा है। पुरस्कार के नियम ६-५-५१ की अंतरंग द्वारा स्वीकृत हो चुके हैं। इस समय तक ६ लेखकों की पुस्तकें विचारार्थ प्राप्त हुई हैं। जो पुरस्कार समिति के सदस्यों को अपनी सम्मति स्थिर करने के लिये भेजी हुई हैं। उनकी सम्मति के प्राप्त होने पर समिति निश्चय करेगी कि कौन २ पुस्तकें परीक्षकों के पास भेजी जांय। यदि कोई पुस्तक परीक्षकों के पास भेजे जाने के योग्य न हुई तो आगामी वर्ष अन्य पुस्तकें मंगाई जायंगी।

पुस्तक भंडार

इस वर्ष इस विभागमें निम्न प्रकार से पुस्तकें छपीं:-

आर्य साहित्य प्रकाशन निधि

६६६ रुपये धर्म और उसकी आवश्यकता (द्वितीय संस्करण)ले० श्री स्व०ला० ज्ञानचन्दजी२०००
५२७-१४-० अंग्रेजी कठोपनिषद्, ले०—श्री पं० गंगाप्रसादजी रि० चीफ जज १०००

श्री नारायण स्वामी पुस्तक प्रकाशन निधि

५३० रु० विद्यार्थी जीवन रहस्य २०००)

इस वर्ष की बिक्री का विवरण इस प्रकार है :—

१ आर्य साहित्य प्रकाशन निधि	८३६-१५-९
२ श्री नारायण स्वामी पुस्तक प्रकाशन	१४९९-१०-०
३ चन्द्रभानु वेदमित्र प्रकाशन	३११-८-६
४ सत्यार्थ प्रकाश प्रकाशन	५७५-१४-९
५ दक्षिण अफ्रीका वेद प्रचार सीरीज	४७९-६-६
६ पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय पुस्तक प्रकाशन	
१ वैदिक कल्चर २५२-९-३	
२ आर्योदय काव्यम् १५२-१-०	४०४-१०-३
७ सिन्धी सत्यार्थ प्रकाश	२०७-८-०
८ दक्षिण प्रचार निधि से प्रकाशित पुस्तकें	११-१-६
९ पुराना स्टाक	५४-६-९
१० अन्य पुस्तक प्रकाशकों की	१७५८-३-६
	६११९-५-६ पा०

व्यय

स्टेशनरी, पोस्टेज, डाक व्ययादि	३२३-१४-६
विज्ञापन सार्वदेशिक पत्र,	२३७-८-०
वेतन लेखक (कार्यालय को दशांश)	६००-०-०
	रु० ११६१-६-६

सार्वदेशिक सभा पुस्तकालय

इस पुस्तकालय में उत्तम साहित्य निर्माण तथा अनुसन्धान कार्यार्थ वेदवेदाङ्ग, स्मृति, श्रौत और गृह्यसूत्र, दर्शनशास्त्र, समाजशास्त्र, पारसी, बौद्ध, जैन, ईसाई, इस्लाम आदि विविध मत-मतान्तर, तुलनात्मक धर्मविज्ञान, राजनीति इतिहासादि विषयक ग्रन्थों का संग्रह किया जा रहा है। ये ग्रन्थ संस्कृत, आर्य भाषा (हिन्दी), बङ्गाली, गुजराती, मराठी, कर्णाटक, तामिल, मलयालम, तिलगू, अङ्गरेजी, जर्मन, तथा अन्य भाषाओं के हैं। इस वर्ष ५७ बहुमूल्य उत्तम ग्रन्थों को पुस्तकालयार्थ खरीदा गया जिनमें से निम्न विशेषतया उल्लेखनीय हैं। अरविन्दाश्रम पाण्डचेरी के श्री कपाली शास्त्री कृत ऋग्वेद भाष्य २ खण्ड। डा० रघुवीर कृत English Vernacular Language Dictionary, Comparative Study of Religions by Widgenj, The Origin of Religion by Lord Raglan, The Science and the Spirit of man by Julius Friend. श्री राम गोविन्द त्रिपाठी कृत वैदिक साहित्य, पं० युधिष्ठिर जी कृत संस्कृत व्याकरण का इतिहास, श्री पृथिवीसिंह विद्यालङ्कार कृत, हमारा राजस्थान, आदि।

पुस्तकालय को नवीन वैज्ञानिक प्रकार से सुव्यवस्थित करने का प्रयत्न चल रहा है। इस वर्ष ३३ पुस्तकें भेंट स्वरूप प्राप्त हुईं जिनमें से स्वा० ओमानन्द जी कृत षड्दर्शन समन्वय, श्री स्वा० आत्मानन्द जी कृत शिवसंकल्प और मनोविज्ञान, पं० घासीराम जी कृत भक्तिसोपान, अमेरिका के इतिहास की रूपरेखा आदि उल्लेखनीय हैं।

चन्द्रभानु वेदमित्र स्मारक निधि

यह निधि श्री चन्द्रभानु जी रईस तीतरों जिला सहारनपुर की पुण्य स्मृति में उनके सुपुत्र श्री म० वेदमित्र जी द्वारा प्रदानित ५०००) के दान से मथुरा शताब्दी के पश्चात् स्थापित हुई थी। दानी की इच्छानुसार इस राशि के ब्याज से साहित्य प्रकाशित किया जाता है। गत वर्ष तक १७ पुस्तकें छप चुकी थीं। इस वर्ष श्री पं० गंगाप्रसाद जी उपाध्याय कृत आर्यसमाज की नीति नामक १ पुस्तिका २००० की संख्या में छपी जिस पर २३२ रुपया व्यय हुआ।

दक्षिण अफ्रीका वेद प्रचार सीरीज

२०-८-५० की अन्तरंग के निश्चयानुसार यह निधि श्री पं० गंगाप्रसाद जी उपाध्याय के १३३५=) के दान से स्थापित हुई है जो उन्हें दक्षिण अफ्रीका से वहां के आर्य भाइयों की ओर से निजी व्यय के लिये भेंट रूप में मिला था। इस निधि के धन से गत वर्ष ३ पुस्तकें सनातन धर्म और आर्य समाज, लाइफ आफ्टर डैथ, ऐलिमेन्ट्री टीचिंग्स आफ हिन्दूइज्म छपीं थीं।

सार्वदेशिक पत्र

गतवर्षों की नाईं इस वर्ष भी पत्र का संपादन श्री पं० धर्मदेव जी विद्यावाचस्पति द्वारा हुआ। इस वर्ष चन्दे और विज्ञापन से ४३४१॥) की आय तथा छपाई, कागज, डाक, व्ययादि में ५६०४॥) का व्यय हुआ। घाटा १२६३) रहा। गत वर्ष आय ३७७६=)६ पा० और व्यय ५६१६।≈) का हुआ और घाटा १८१०)३ पाई रहा था। फरवरी १६५२ के अन्त में ग्राहकों की संख्या ७५४ थी।

३-२-५२ की अन्तरंग सभा के निश्चयानुसार आगामी श्रावणी के अवसर पर सार्वदेशिक पत्र का एक सर्वांग पूर्ण विशेषांक निकालने का आयोजन हो रहा है। यह कार्य निम्न लिखित महानुभावों के सम्पादक मण्डल के अधीन किया गया है।

१ श्री पं० इन्द्र जी विद्यावाचस्पति
२ श्री पं० रामदत्त जी शुक्ल
३ श्री पं० धर्मदेव जी विद्यावाचस्पति
४ श्री पं० हरिदत्त जी शास्त्री
५ श्री पं० हरिशंकर शर्मा कविरत्न

राजदूतावासों में साहित्य वितरण

इस वर्ष युगोस्लेविया और फिनलैण्ड के राजदूतों से सभा के भूतपूर्व मन्त्री श्री पं० गंगाप्रसाद जी उपाध्याय और श्री पं० धर्मदेव जी ने भेंट करके उन्हें सभा की ओर से आर्यसमाज का विशिष्ट साहित्य भेंट किया और आर्यसमाज के सिद्धांतों तथा कार्यों से उक्त महानुभावों को परिचित कराया। इससे पूर्व ब्रह्मा, अफगानिस्तान इण्डोनेशिया, और अमेरिका के राजदूतों को सभा की ओर से साहित्य भेंट किया जा चुका है। अन्य राजदूतोंसे भेंट करनेका प्रयत्न किया जा रहा है। इस वर्ष देहली में संयुक्त राष्ट्रीय शिक्षा विज्ञान संस्कृति संगठन 'यूनेस्को' के तत्वावधान में "मानव स्वरूप की कल्पना" और प्राच्य तथा पाश्चात्य शिक्षा दर्शन पर एक सम्मेलन शिक्षा मन्त्री मौ० आजाद के सभापतित्व में १४ से २० दिसम्बर तक हुआ जिसका उद्घाटन श्री पं० राधाकृष्णन के द्वारा हुआ। इस सम्मेलन में देश विदेश के विद्वान् सम्मिलित हुए थे। श्री पं० धर्मदेव जी विद्यावाचस्पति भी इसमें सम्मिलित हुए। उन्होंने सम्मेलन के अनेक प्रतिनिधियों और विद्वानों से मिलकर उनसे विचार विमर्श किया जिनमें श्री डा० राधाकृष्णन्, बड़ौदा विश्वविद्यालय के प्रो० वाइसचांसलर, प्रो० ए० आर वाडिया नामक पारसी विद्वान, सागर विश्वविद्यालय के प्रो० रासबिहारीदास, जर्मनी के डा० हैल्मुथवान ग्लौसनप, अमेरिका के सेन्टफोर्ट यूनिवर्सिटी के प्रो० फोस्ट, इटली के प्रो० पिसेवल्ली, फ्रांस के आन्देरुसो, श्रीमती विजयलक्ष्मी पंडिता, मौलाना आजाद आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं।

सार्वदेशिक आर्य महासम्मेलन

सार्वदेशिक आर्य महासम्मेलन का सातवां अधिवेशन २७ अक्टूबर से १ नवम्बर ५१ तक मेरठ में श्री पं० विनायकराव जी विद्यालंकार की अध्यक्षता में नौचन्दी के मैदान में बड़े समारोह के साथ सम्पन्न हुआ। इस अवसर पर वेद सम्मेलन, शुद्धि सम्मेलन, महिला सम्मेलन,

शिक्षा सम्मेलन, राजनीति सम्मेलन आदि कईअन्य सम्मेलन भी हुए जिनका विवरण इस प्रकार है.—

१ आर्य युवक सम्मेलन, सभापति, श्री ओमप्रकाश जी त्यागी
२ संस्कृति सम्मेलन, श्री पं० बुद्धदेवजी विद्यालंकार
३ शुद्धि ,, ,, श्री कुंवर चांदकरण जी शारदा
४ वेद ,, ,, श्री पं० ब्रह्मदत्त जी जिज्ञासु
५ शिक्षा ,, ,, ,, डा० मंगलदेव जी शास्त्री
६ गोरक्षा ,, ,, ,, हरदेवसहाय जी
७ महिला ,, ,, श्रीमती शन्नोदेवी जी
८ राजनीति ,, ,, श्री पं० भगवद्दत्तजी रि०स्कालर
९ आर्यकुमार ,, ,, ,, पं० धर्मदेव जी वि० वा०
१० कवि ,, ,, ,, डा०सूर्यदेवजी एम.ए.डी.लिट

स्वागताध्यक्षा श्रीमती शकुन्तला देवी जी गोयल, स्वागत कारिणी समिति के प्रधान मन्त्री श्री बा० कालीचरण जी तथा उनके सहयोगियों ने सम्मेलन को प्रत्येक दृष्टि से सफल बनाने मे कोई उद्योग शेष न छोड़ा। डेलीगेटों के भोजन का प्रबन्ध भी स्वागत कारिणी समिति ने अपने व्यय पर किया।

श्री पं० विनायकराव जी अध्यक्ष सम्मेलन का जलूस मेरठ के इतिहास में कदाचित अभूत-पूर्व था। लाखों नर नारियों ने इसमे सम्मिलित होकर आर्य समाज और सम्मेलन के प्रधान के प्रति अपनी श्रद्धा और भक्ति का उत्साह वर्धक परिचय दिया था।

सम्मेलन का मुख्य प्रस्ताव 'राजनीति' विषयक था जिस पर विचार बड़े गर्म वातावरण में प्रारंभ हुआ। परन्तु आर्य समाज की अब तक की श्लाघ्य परम्परा के अनुसार बड़े शान्त और बुद्धिमत्ता पूर्ण ढंग से उसका अन्त हुआ। राजनीति विषयक प्रस्ताव इस प्रकार पास हुए:-

निश्चय सं० ५

यह सम्मेलन निश्चय करता है कि आर्यसमाज बहैसियत आर्यसमाज प्रचलित राजनीति तथा चुनाव में भाग न ले।

निश्चय सं० ६

आर्य संस्कृति की विचार धाराओं से प्रभावित पृथक राजनैतिक संगठन स्थापित कर उसे सक्रिय रूप देने के लिये निम्नलिखित सज्जनों की एक समिति बनाई जाती है।

१—श्री० स्वामी आत्मानन्द जी वैदिक साधना आश्रम जमना नगर, अम्बाला
२— ,, ,, अभेदानन्द जी बांकीपुर, पटना
३— ,, ,, सत्यदेव जी परिव्राजक ज्वाला-पुर (सहारनपुर)
४— ,, आनन्द स्वामी जी देहरादून, तपोवन
५— ,, पं० बुद्धदेव जी विद्यालंकार प्रभाताश्रम जानी, पो० नेक (मेरठ)
६— ,, ,, राजगुरु धुरेन्द्र जी शास्त्री, सार्व-देशिक सभा, देहली
७— ,, ,, जीयालाल जी केसरगंज अजमेर
८— ,, ,, भगवद्दत्त जी वैदिक रिसर्च स्कालर नई दिल्ली
९— ,, ,, मनोहरलाल जी, सुल्तान बाजार,
१०— ,, ,, मिहिर चन्द्र जी धीमान्, तुलसी निवास, ११५ बनारस रोड, सलकिया (हावड़ा)
११— ,, ,, बाल दिवाकर जी हंस भारतीय लोक सघ गाजियाबाद (यू० पी०)
१२— ,, ,, प्रकाश वीर जी शास्त्री, चन्दौसी (यू० पी०)
१३— ,, ,, ओमप्रकाश जी त्यागी
१४— ,, ,, रामचन्द्र जी देहलवी, हापुड़, (मेरठ)
१५— ,, ,, भूदेव जी शास्त्री द्वारा आर्यमित्र आगरा

प्रस्ताव सं० ६ की लिपि श्री पं० बुद्धदेव जी विद्यालंकार तथा श्री पं० मनोहर लाल जी सिकन्दराबाद, हैद्राबाद, को यथा समय भेज दी

गई तथा समिति के सदस्यों से सदस्यता की स्वीकृति प्राप्त होने पर समिति की बैठक बुलाने की अनुमति देदी गई।

सम्मेलन के इन तथा अन्य प्रस्तावों पर सभा की ३ व ४ फर्वरी ५२ की अन्तरंग सभा में विचार हुआ और उन पर आवश्यक कार्यवाही का निश्चय हुआ।

राजनीति विषयक प्रस्ताव संख्या ५, ६ पर विचार होकर निम्न प्रकार निश्चय हुआ :

आर्य महासम्मेलन मेरठ के राजनीति विषयक प्रस्ताव सं० ५ व ६ पर विचार होकर निश्चय हुआ कि प्रस्ताव सं० ५ स्वीकार किया जाय।

प्रस्ताव सं० ६ के सम्बंध में निश्चय हुआ कि इस प्रस्ताव के अधीन नियुक्त उपसमिति द्वारा प्रस्तावित पृथक् राजनैतिक संगठन की रूप-रेखा प्राप्त होने पर ही इस विषय पर सभा विचार कर सकती है।

खेद है स्वागत कारिणी समिति ने अभी तक सम्मेलन का हिसाब व रिपोर्ट नहीं भेजी यद्यपि, उन्हें कई बार कार्यालय से लिखा गया। ऐसी अवस्था में सम्मेलन का हिसाब व रिपोर्ट आगामी वर्ष ही प्रस्तुत किया जा सकेगा।

नैपाल प्रचार

नैपालमें नई जनतन्त्रीय राज्य व्यवस्थासे आर्य समाज के प्रचार का कई दशाब्दियों से अवरुद्ध हुआ मार्ग परिष्कृत हो गया है। आर्यप्रतिनिधि सभा बिहार के सहयोग से इस सुअवसर से लाभ उठाया गया और वहां सम्प्रति १ सुयोग्य प्रचारक बिहार सभा के द्वारा भेजा गया है जो बड़ी तत्परता और लग्न से कार्य कर रहे हैं। इस प्रचार का १५० रुपये मासिक व्यय आर्य-प्रतिनिधि सभा बिहार के द्वारा इस सभा की ओर से दिया जाना प्रारम्भ हुआ है। इस प्रचार के फलस्वरूप वीरगंज और काठमांडू में नियमित आर्य समाजों की स्थापना हो गई है। लोगों की सहानुभूति दिन पर दिन आर्य समाज की ओर बढ़ रही है। नैपाली भाषा में आर्य साहित्य का प्रचार, हिन्दी संस्कृत विद्यालयों और आर्य हाई स्कूलों की स्थापना तात्कालिक आवश्यकताएं हैं विशेषतः ईसाईयों के बढ़ते हुए प्रभाव और उनके स्कूलों की संख्या में निरंतर वृद्धि होने की दृष्टि से। नियमित प्रचार का सूत्र पात होने से पूर्व बिहार सभा की ओर से नैपाल राज्य के १, २ स्थानोंपर प्रचार हुआ था। इस सभाके उपप्रधान श्री स्वामी अभेदानन्द जी महाराज ने गत सितम्बर मास में आर्य समाज के प्रचार की दृष्टि से स्थिति का निरीक्षण करने के उद्देश्य से नैपाल का भ्रमण किया था और वे काठमांडू में प्रमुख राज्याधिकारियों से भी मिले थे।

भ्रष्टाचार विरोधी आन्दोलन

देश में व्याप्त भ्रष्टाचार और चरित्रहीनता के उन्मूलन में अपना सक्रिय और संगठित योग देने के उद्देश्य से सभा की ओर से गत मई मास में एक आयोजना आर्य समाजों में प्रचारित की गई। आर्य जनता और आर्य समाजों में इस कार्यके प्रति बड़ा उत्साह प्रकटकिया गया। सहस्त्रों की संख्या में लोगों ने भ्रष्टाचार मिटाने की प्रतिज्ञाएं कीं। जगह २ आर्य सम्मेलनों में इस कार्य को सफल बनाने की प्रेरणाएं दी गई। इस प्रकार प्रारंभिक पग तो उठा दिया गया है। भूमि भी तैयार हो रही है, उचित मार्ग प्रदर्शन की आवश्यकता है।

ब्रह्मा प्रचार

आर्य समाज मान्डले के निमन्त्रण पर श्री पं० गंगाप्रसाद जी उपाध्याय गत १० दिसम्बर को आर्य समाज के प्रचार और आर्य समाज की स्थिति के निरीक्षण के लिये ब्रह्मा के लिये रवाना

हुए और १२ दिसम्बर को कलकत्ते से हवाई जहाज से चलकर रंगून पहुँचे। १३ दिस० को आर्य कार्यकर्ताओं की रंगून में बैठक हुई और उसमें आर्य समाज की परिस्थिति और सुधार के उपायों पर विचार हुआ। महायुद्ध से पूर्व ब्रह्मा में आर्यप्रतिनिधि सभा थी। उसको पुनर्जीवित करने के उपायों पर भी विचार हुआ। १४ दि० को श्री उपाध्याय जी ने भारत के राजदूत श्री डा० रऊफ से भेंट की। ब्रह्मा में आर्य समाज की सम्पत्ति को आर्य समाज के अधिकार में लाने का कार्य भी इस सभा की ओर से श्री उपाध्याय जी के अधीन किया गया था। इस संबन्ध में उन्होंने वहां जाते ही यत्न आरम्भ कर दिया था। वे इस उद्देश्य से कई राज्याधिकारियों से भेंट भी कर चुके हैं। आर्य समाजों को पुनर्जीवित करना इस सम्पत्ति की प्राप्ति का आवश्यक मार्ग सुझाया गया है। इस सुझाव को क्रियान्वित किये जाने का प्रयत्न किया जा रहा है। २१ दिसम्बर को श्री उपाध्याय जी के सम्मान में आर्य समाज की ओर से एक भोज की व्यवस्था की गई जिसमें बड़े बड़े व्यक्ति राजदूत आदि सम्मिलित हुए और इस भोज के द्वारा श्री उपाध्याय जी को अपना सन्देश देने का अवसर मिला। २७ दिस०को रंगून विश्वविद्यालय में हुई सांस्कृतिक कान्फ्रेन्स में श्री उपाध्याय जी आर्य समाज के प्रतिनिधि के रूप में सम्मिलित हुए और उसमें एक निबंध पढ़ा, जो बहुत पसन्द किया गया।

रंगून के सबसे बड़े पुंगी श्री यू० रिवेट महोदय से उपाध्याय जी की २६ दिसम्बर को उनके निवास स्थान पर भेंट हुई, ये मांस भक्षण के महा विरोधी हैं। उन्होंने आर्य समाज का साहित्य मंगाया।

३० दिसम्बर को श्री उपाध्याय जी हवाई जहाज द्वारा मांडले पहुँचे। १२ जनवरी को बुद्धिस्ट इंस्टीट्यूट में श्री पं० जी को आमन्त्रित किया गया। वहां उन्होंने एक बड़ा सारगर्भित व्याख्यान Vital Currents of human cultures विषय पर दिया जिसकी वहां के पत्रों में पर्याप्त प्रशंसा हुई।

श्री उपाध्याय जी २७ जनवरी को प्रचार कार्य के लिये रंगून चले गए। वहां ४ फरवरी को हिन्दी साहित्य सम्मेलन के वार्षिकोत्सव में अध्यक्ष का पद ग्रहण किया और भाषण दिया। वहां से पुनः मांडले लौट गए।

ब्रह्मा सरकार की ओर से श्री उपाध्याय जी को ब्रह्मा में रहने की ३ मास की अनुमति मिली थी परन्तु भारत के राजदूत महोदय के अनुग्रह-पूर्ण यत्न से यह अवधि ६ मास के लिये बढ़ गई थी।

मांडले से श्री उपाध्याय जी ३ मार्च को बेंकोक पहुँचे और वहां भारत थाई लौज में ठहराये गये जहां उन्हें हर प्रकार की सुविधा और आराम मिल रहा है।

श्री उपाध्याय जी के निम्नलिखित महत्वपूर्ण सुझाव सभा के विचाराधीन हैं:—

१. बरमी भाषा में सत्यार्थ प्रकाश का अनुवाद शीघ्र से शीघ्र कराके प्रकाशित कराया जाय। बर्मी भाषा में अन्य आवश्यक साहित्य भी अनूदित व प्रकाशित कराया जाय।

२. रंगून को आर्य समाज का एक केन्द्र बनाया जाय जहां सार्वदेशिक सभा की ओर से मिशनरी भाव रखने वाला एक उपदेशक नियुक्त किया जाय। इस केन्द्र को पूर्वी पशिया में प्रचार की सुदृढ़ चौकी (out post) बनाया जाय। प्रतिनिधि सभा को पुनर्जीवित और सुदृढ़ करके बेंकोक तथा सिंगापुर की समाजों को इस सभा के साथ सम्बद्ध किया जाय।

३ ब्रह्मा के मूल निवासियों में प्रचार पर अधिक बल दिया जाय। अब तक विदेशों में जहां

थोड़ा बहुत प्रचार कार्य हुआ है वह प्रवासी भारतीयों तक सीमित रहा है। मूल निवासियों तक पहुँचने और उनमें प्रचार करने की प्रायः सर्वथा उपेक्षा हुई है। अब इस नीति में परिवर्तन करना अनिवार्य है.

इस वृद्धावस्था में भी श्री उपाध्याय जी जिस उत्साह और लग्न से प्रचार कार्य में लगे हुए हैं वह वस्तुतः प्रशंसनीय है। उनकी इन यात्राओं से आर्यसमाज का गौरव बढ़ा और उसका सन्देश विस्तृत और व्यापक हुआ है। इसके लिये श्री उपाध्याय जी धन्यवाद के पात्र हैं।

३-२-१९५२ की अन्तरंग सभा ने एक विशेष निश्चय के द्वारा श्री उपाध्याय जी को सभा के विदेश विभाग का अध्यक्ष मनोनीत किया।

स्कूलों की पाठ्य पुस्तकें और आर्यसमाज

स्कूलों की पाठ्य पुस्तकों में आर्यसमाज की दृष्टि से तथा उसके सम्बंध में भ्रमजनक और अशुद्ध स्थलों के संशोधन की ओर इस सभा का विशेष ध्यान आकृष्ट रहा।

उत्तर प्रदेश के राजकीय शिक्षा विभाग द्वारा स्वीकृत "सामाजिक विषय भाग १" नामक पुस्तक में जो कक्षा ३ के लिये पाठ्य पुस्तक नियत है, निम्नलिखित स्थल भ्रमजनक पाये गये थे :—

१. पाठ ६, हमारे पूर्वज और उनका समाज,
 'हमारे देश का नाम पहले हिन्दुस्तान था, अब भारत है।"

२. आर्य लोग सोचा करते थे कि सूर्य, चन्द्र और अग्नि ज्योतिषमान् है, इसलिये इनको प्रसन्न करने के लिये जानवरों की बलि भी देते थे।" पृ० १४

इन स्थलों के संशोधन के लिये शिक्षा मन्त्री श्री सम्पूर्णानन्दजीको ६-११-१९५२ को कार्यालयसे पत्र लिखा गया। उनका २३-११-५२ का लिखा हुआ उत्तर इस प्रकार है :—

"आपका ६-११-५२ का पत्र सं० २९५२ मिला। मैंने सामाजिक विषय भाग १ मंगा कर देखा। मैं आपसे इस बात से सहमत हूँ कि लेखक का यह कहना कि इस देश का नाम पहले हिन्दुस्तान था, अब भारत हो गया है, सर्वथा असत्य है। यज्ञ के विषय में मेरा आपसे कुछ मत वैषम्य है परन्तु यह मैं भी मानता हूँ कि छोटे २ बच्चों की पाठ्यपुस्तकों में विवादास्पद विषय नहीं आने चाहियें।

शिक्षा विभाग को आगे के संस्करण के लिये आदेश भेजा जा रहा है। आशा है नये संस्करण में अपेक्षित सुधार हो जायगा।" इस काय की ओर सभा का विशेष ध्यान आकृष्ट है।

सार्वदेशिक सभा का इतिहास

सभा की ३-२-५२ की अन्तरंग सभा की बैठक में सन् १९३५ से आगे अब तक का सभा का इतिहास तैयार कराने का निश्चय हुआ। इस निश्चय को क्रियात्मक रूप दिये जाने का प्रयत्न हो रहा है।

आर्य समाज के मंच की पवित्रता

आर्य समाज की वेदी को दलगत राजनीति का अखाड़ा बनने से रोकने और उसकी पवित्रता की रक्षा के लिये सभा ने गत जनवरी मास में निम्नलिखित घोषणा आर्यसमाजों के मार्ग प्रदर्शन के लिये आर्य पत्रों में प्रचारित कराई। ३-२-१९५२ की अन्तरंग सभा के निश्चयानुसार सभा द्वारा पूर्वप्रचारित प्रचार पद्धति में मञ्च की पवित्रता की रक्षार्थ आवश्यक सुझावों का विवरण प्रस्तुत करने का कार्य एक उप समिति के अधीन हुआ।

आर्य समाज की वेदी की पवित्रता की रक्षा

आर्य समाज की वेदी की पवित्रता और उसके गौरव की रक्षा और आर्यसमाज को अनावश्यक उलझनों से बचाने के लिये यह नितान्त आवश्यक है कि उसे दलगत राजनैतिक आन्दोलन वा आलोचनाओं का अखाड़ा न बनाया जाय। आवश्यक होने पर आर्यसमाज की वेदी से मुख्यतया विशुद्ध राजनैतिक सिद्धांतों और आदर्शों की ही चर्चा और व्याख्या होनी चाहिये।

आर्य समाजों को इस निवेदन पर विशेष ध्यान देते हुई आर्य समाज की वेदी से होने वाले उपदेशों और व्याख्यानों की बड़े ध्यान से व्यवस्था और निरीक्षण करना चाहिये। उपदेशक महानुभावों का भी यह कर्तव्य है कि वे इस विषय में विशेष सावधानी से काम लें।

यह देखने में आया है कि भारत के किसी २ राज्य में राजनैतिक सभाओं पर प्रतिबन्ध लगाये जाते हैं परन्तु आर्यसमाजों की सभाएँ इसप्रकार के प्रतिबन्धों से प्रायः मुक्त रक्खी जाती है। यदि आर्यसमाज की वेदी से राजनैतिक दल गत पक्ष विपक्ष में भाषण हों तो ऐसी समाओं के प्रतिबन्धों के अधीन आने की आशंका बनी रहेगी। एक आध स्थान पर ऐसा हो भी चुका है। अत. सावधानी वर्तने की आवश्यकता है।

सार्वदेशिक सभा का प्रचार कार्य

इस वर्ष का प्रचार कार्य गत वर्षों की नाईं मद्रास और उड़ीसा प्रान्त में हुआ। प्रचार केन्द्र तथा प्रचारकों के नाम इस प्रकार हैं :—

मद्रास प्रांत

नाम	प्रचार केन्द्र	प्रचारक
१. आन्ध्र (मद्रास प्रान्त)	तनाली (गुन्टूर)	श्री पं० मदन मोहन विद्यासागर जी
२. केरल	चेंगानूर	(१) श्री पं० नारायणदत्त जी सिद्धान्त भूषण (२) श्री जी० कृष्णन् पोटी
३. दक्षिण कन्नड़	कार्कल	श्री मंजूनाथ जी शैनई
उड़ीसा प्रान्त		
४. गंजाम व बालनगीर	कुशस्थली व बालनगीर	श्री पं० बलराम जी सिद्धान्त भूषण

आन्ध्र प्रान्त प्रचार

(१ श्री पं० मदन मोहन विद्यासागर ने आन्ध्र प्रदेश, हैद्राबाद संस्थान तथा दक्षिण भारत में निम्न स्थानों पर प्रचार किया :—

गंगवरम, पैपर्स, जाम्पनी, मौय्यर्स, इण्टुर, अयतालुस, पेड़ना, ताड़िगडया, कौलिर्स, तिरुनपल्ली नरसारावपेट, मुप्पाला, कूलिपूडि, चकलवाड़ा, वरंगल, पल्लिकोपा, दुग्गिराला, रगानपल्ली, आर्लगुड़ा, नेल्लूर, मूलपुर, तिरुमिल्ला विजयवाड़ा, हैद्राबाद, निजामाबाद, नेयरू मद्रास, अल्लयर्स, तोडना नारियालेम्भ, आलूपाडू।

(२) इस वर्ष कोई नवीन समाज की स्थापना नहीं हो सकी।

(३) २८ संस्कार, विवाह व अन्त्येष्टि कराये गए।

(४) २३ व्याख्यान विविध विषयों पर दिए गए।

केरल (ट्रावनकोर) प्रचार

(१) श्री पं० नारायणदत्त जी सिद्धांतभूषण उपदेशक सभा ने इस वर्ष निम्न स्थानों पर आर्य समाज का प्रचार कार्य किया :—

कोल्लम्, कोट्टयम, पेरशरी, केईपुरम्, ट्रिवेन्ड्रम, कुरुपुन्तरा चोवरा आलवाग, औरवेप्पणी, मुकतुरुति, तामिलनाड, तिरुवेट्टी वीरवनेकुरू, अलयार तिरुनगरी कोठाचेरी, भाराटपुप्पा, कुतिरुट्टम, मेलकरां, चम्पकुलम, चेंगनूर, मुरुकाड, आला, कुकनपंतलम, कुन्जिकुणी, तिरुवाकुकम। इनके अतिरिक्त इन्होंने हिन्दू-सम्मेलन में व्याख्यान दिया। चेंगानूर की समाज में हवन सन्ध्या साप्ताहिक सत्संग आदि के कार्यों के अतिरिक्त हिन्दू कालिज में ४ घण्टे प्रतिदिन हिन्दी पढ़ाने का कार्य किया।

प्रचार कार्य पर पूरा समय न दे सकने और प्रचारमे अपेक्षित सफलता प्राप्त न होनेके कारण ये अक्टोबर ५१ के मध्य में सभा की सेवाओं से

पृथक हो गए।

(२) इनके स्थान में वहीं के एक स्थानीय सज्जन को ७५) मासिक पर प्रचार कार्य पर फरवरी ५२ के प्रारम्भ में लगाया गया है। प्रचार कार्य हो रहा है।

श्री मंजूनाथ जी शैनई

इन्होंने केवल मार्च व अप्रैल मे प्रचार-कार्य किया। पश्चात् वयोवृद्ध हो जाने के कारण कार्य मे अशक्त हो जाने पर आप सभा की सेवाओं से मुक्त हो गए।

उड़ीसा प्रचार

श्री पं० बलराम जी सिद्धान्तभूषण का कार्य क्षेत्र समस्त उड़ीसा प्रदेश ही रहा। वे गंजाम जिले में कुशस्थली तथा पटना में बालनगीर केन्द्र बना कर बारी २ से प्रचार कर रहे हैं।

(१) इस वर्ष नए समाज की स्थापना नहीं हो सकी। सुनामुडी में वैदिक आश्रम चलाया जारहा है। वर्ष के अन्तपर निम्न समाजें हैं(१)बलानगी (२) पाटनागढ़ (३) कुशस्थली (४) पुलसरा (५) ब्रह्मकुण्डी (६) गोरक्षाश्रम।

(२) यहां की समाजों की अवस्था साधारणतया अच्छी नहीं है।

(३) आर्य समाज बालनगीर द्वारा हुए शुद्धि के कार्य में भी योग दिया।

(४) दलित भाइयों का उद्धार करने के लिए नाना स्थानों में उनके इलाकों में जाकर प्रचार किया। प्रचार के अन्दर मद्यमांसादि अनिर्मलता दूरी करण, शिक्षा, सभ्यता, सत्य भाषण, चोरी-त्याग आदि संस्कार सम्बन्धी सब बातें शामिल हैं। कुछ दलितों को यज्ञोपवीत दिए गए। दो चार आदमियों के वैदिक रीति से विवाह संस्कार कराए गए। उन्हे गायत्री तथा सन्ध्योपदेश देकर नित्य कर्म में प्रवृत्त करवाया गया। यह घटना ब्रह्मपुर तथा बालनगीर में हुई।

(५) विश्व शान्ति महायज्ञ सुनामुडी में दलितों को आहुति देने की सुविधा दी गई। इस वर्ष दलितोद्धार का विशेष कार्य किया गया।

(६) साहित्य प्रचार—

(१) इस वर्ष पं० गंगा प्रसाद जी उपाध्याय की पुस्तक 'सनातन धर्म व आर्यसमाज' तथा ब्रह्मचर्य आदि कुछ ट्रैक्टों का उड़िया अनुवाद कराया गया।

(२) 'ऋषि दयानन्द तथा आर्यसमाज' और '१९वीं शताब्दी में दयानन्द' दो ट्रैक्ट लिखे गए है। पहला ट्रैक्ट छपवाया जा चुका है तथा उसका वितरण सुनामुडी मे महायज्ञ के समय कराया गया। दूसरे को भी शीघ्र छपाने का प्रबन्ध किया जायगा।

(७) इस वर्ष आर्य समाज बालनगीर की लायब्रेरी का पुनः सुधार करने के लिए श्रीराम सहाय बल्देव जी साहू ने ४००) की किताबें दान रूप में दीं।

वेद प्रचारार्थ लगभग ५०) संग्रह हुए।

(८)संस्कार—इस वर्ष ३ विवाह,८ यज्ञोपवीत, १० नाम करण निष्क्रमण तथा अन्नप्राशन, ३ मुण्डन, तथा १ अन्त्येष्टि संस्कार वैदिक ढंग से कराये गए।

(९) सार्वदेशिक-पत्र—

सार्वदेशिक पत्र के ३ ग्राहक बनाए। प्रचार के साथ सार्वदेशिक के ग्राहक बनने की भी प्रेरणा की जाती है।

(१०) विद्यालय —

विद्यालय जिस प्रकार पिछले साल चलता

(शेष पृष्ठ २३४ पर देखिये)

साहित्य-समीक्षा

"'आर्य' का शिक्षा अङ्क—आर्य प्रेस निकल्सन रोड अम्बाला छावनी,

सम्पादक—पं० भीमसेन जी विद्यालङ्कार
स० सम्पादक—पं० भारतेन्दु जी साहित्यालङ्कार

"आर्य"—आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब का साप्ताहिक मुख पत्र है जिसका शिक्षाङ्क इस समय हमारे सम्मुख है। यह गुरुकुल काङ्गड़ी विश्वविद्यालय के वार्षिकोत्सव के अवसर पर वैशाखी को प्रकाशित हुआ था। इस अङ्क में श्री पं० यशःपाल जी सिद्धान्तालकार, आचार्य प्रियव्रत जी वेद वाचस्पति, पं० शिवकुमार जी शास्त्री, श्री प्रह्लादसिंह जी 'आराधक' प० शङ्करदेव जी विद्यालङ्कार आदि के शिक्षा विषयक उत्तम लेख और श्रीमती राकेशरानी साहित्यरत्न, श्री ज्ञानप्रकाश जी आर्य आदि की स्फूर्तिदायिनी कविताएँ हैं। प० भीमसेन जी विद्यालङ्कार की 'आर्यसमाज की शिक्षापद्धति की विशेषता' विषयक सम्पादकीय टिप्पणी भी माननीय है। पं० शान्ति प्रकाश जी शास्त्रार्थ महारथी का 'शिक्षा के उद्देश्य' विषयक लेख अच्छा है किन्तु उन्होंने 'सहनाववतु सहनौभुनक्तु' इस उपनिषद्वचन को तीन स्थानों में वेदमन्त्र लिखा है जो अशुद्ध है। सम्पूर्णतया यह शिक्षाङ्क बहुत उपयोगी निकला है जिसके लिये सम्पादक मण्डल बधाई का पात्र है।

संस्कृतांकुर—लेखक—श्री स्वा० वेदानन्द जी तीर्थ प्रकाशक—वैदिक साहित्य सदन सीताराम बाज़ार देहली पृष्ठ ११० मूल्य १।)

इस समय इसबात की बड़ी भारी आवश्यकता है कि संस्कृतभाषा को लोकप्रिय बनाने तथा उसका सर्वत्र प्रचार करने के लिये सरल शैली से उत्तम ग्रंथ तैयार किये जाएं। श्री स्वामी वेदानन्द जी ने जो आर्य जगत् के एक सुप्रसिद्ध विद्वान् लेखक हैं 'संस्कृतांकुर' नामक पुस्तक लिखकर उपर्युक्त उद्देश्य की पूर्ति का प्रशंसनीय यत्न किया है। इस में अत्यन्त सरल रूप से संस्कृत सिखाने के लिये ४० पाठ दो भागों मे दिये गये हैं जिनके द्वारा साधारण बुद्धि के व्यक्ति भी बिना किसी कठिनाई के संस्कृत सीख सकते हैं वेदों के वाक्य भी स्थान २ पर उदाहरण रूप से दे दिये गये हैं। यह स्वयं शिक्षक के रूप मे अत्युत्तम है। दुर्भाग्यवश छापे की कुछ अशुद्धियां रह गई थीं जिनको शुद्धि पत्र लगवा कर ठीक कर दिया गया है। प्रत्येक आर्य नर नारी को जिस ने अब तक संस्कृत सीखने के अपने कर्तव्य और महर्षि दयानन्द के आदेश का पालन नहीं किया इस पुस्तक की १ प्रति तुरन्त खरीद कर संस्कृत का अभ्यास प्रारम्भ कर देना चाहिये।

मनुष्य का धर्म—मूल लेखक श्रीरवीन्द्रनाथ ठाकुर अनुवादक—श्री रघुराज गुप्त एम. ए. रिसर्च स्कालर कलकत्ता विश्वविद्यालय सुमित्रा प्रकाशक ४ बी. राजा कालीकृष्ण लेन कलकत्ता

पृष्ठ ८० मूल्य ३)

कवीन्द्र रवीन्द्र नाथ ठाकुर की अन्तिम रचना 'मनुष्य धर्म' मूल रूप में बगला में प्रकाशित हुई थी जिसका अंग्रेजी रूपान्तर 'The Religion of Man' नाम से निकाला था। हमारे सहपाठी श्री पं० धनराज जी विद्यालंकार के सुपुत्र श्री रघुराज जी गुप्त ने उस बंगला पुस्तक का अनुवाद आर्य भाषा में करके एक अत्यन्त प्रशंसनीय कार्य किया है। 'मनुष्य के धर्म' मे श्री ठा. रवीन्द्रनाथ जी ने अपने जीवन भर के अनुभव और परिपक्व

विचार के अनुसार आध्यात्मिकता का अत्युत्तम सदेश मानव मात्र के लिये दिया है जिससे हिन्दी भाषा-भाषी इस अनुवादके द्वारा लाभ उठा सकेंगे। अनुवादक महोदय ने भूमिका में ठीक ही लिखा है कि 'रवीन्द्रनाथ का हृदय समाज में विद्यमान अन्याय, अत्याचार, असमानता, ऊंच नीच, घृणा अन्ध विश्वास, संकीर्णता से बुरी तरह आहत है, उसके विरुद्ध विद्रोह कर उठता है। उनके अनुसार धर्मात्मा का लक्ष्य एकान्त वास अथवा मुक्ति नहीं है। वरन् समाज के सदस्य की हैसीयत से मनुष्य की अपरिमेय असीम सभावनाओं को अनुभव करना तथा मानव जाति की सेवा मे अपने आपको सम्पूर्णत समर्पित कर देना है। रवीन्द्रनाथ के दर्शन का मुख्य स्रोत उपनिषद हैं। वह उन्हीं से प्रेरणा पाते हैं। रवीन्द्रनाथ का जीवन दर्शन भारत के प्राचीन सार्वभौम ज्ञान की ही वर्तमान जगत् की भूमिका में एक पुनरावृत्ति है। रवीन्द्र के दर्शन मे व्यक्ति और समाज, कर्म और ज्ञान, भाव और भक्ति, भोग और त्याग का सुन्दर समन्वय है।' इत्यादि।

अनुवाद में भाव को स्पष्ट करने का पर्याप्त प्रयत्न किया गया है तथापि विषय गम्भीर होने के कारण कहीं २ क्लिष्टता रहना स्वाभाविक ही था। कहीं २ मूल बंगला गीत भी दे दिये गये हैं जिनसे लाभ उठाया जा सकता है। मूल्य कुछ कम होता तो अधिक लोग लाभ उठा सकते। हम युवक अनुवादक के उत्साह और परिश्रम की प्रशंसा करते हैं और आशा करते हैं कि वे अन्य भी उत्तम ग्रन्थों का अनुवाद प्रकाशित कर हिन्दी साहित्य की अभिनन्दनीय वृद्धि करेंगे।

(पृष्ठ २३२ का शेष)

था इस साल भी गोरक्षाश्रम तथा ब्रह्मपुर चलता रहा है। दलितों को कुशस्थली में शिक्षा देने का प्रबन्ध है। इस वर्ष सुनामुखी में भी विद्यालय चलवाया है। इन विद्यालयों मे लड़कों को सिद्धान्त सम्बन्धी शिक्षा देकर उनमे आर्य समाज के संस्कार डाले जाते है।

श्रद्धानन्द नगरी देहली

श्रद्धानन्द नगरी स्थित आर्यसमाज मन्दिर और पाठशाला भवन का कुछ भाग किराए पर चढ़ा हुआ है। इसका हिसाब नियमित रूप से प्राप्त नहीं हो रहा है, नगरी के बहुत से निवासियों ने सभा में शिकायत लिख कर भेजी है कि दलितोद्धार सभा के अधिकारी न तो उक्त आर्य समाज के अभीष्ट रूप से सभासद् बनने देते हैं और न इस सम्पत्ति का सदुपयोग करते हैं। सभा कार्यालय ने इस बात की नियमित जाच कराई है। जाच की रिपोर्ट प्राप्त हो गई है। इस सम्पत्ति की रक्षा के लिए सम्भवतः सभा को उग्र कार्यवाही करने के लिए विवश होना पड़े।

वर्ष का विवरण समाप्त करने से पूर्व यह प्रकट कर देना आवश्यक है कि इस वर्ष श्री ला० ज्ञानचन्द जी, श्री ला० देशबन्धु जी, श्री मौलवी महेशप्रसाद जी आलिम फाजिल और श्री सेठ शूरजी वल्लभदास के निधन में आर्य समाज और इस सभा को पर्याप्त क्षति उठानी पड़ी है।

Pandit Upadhyaya's visit to Thailand

Pandit Ganga Prasad Upadhyaya, Ex-secretary of the International Arya League, recently visited Bangkok en route to Burma and stayed here as a guest of the Thai Bharat Cultural Lodge. During his three week stay in Bangkok, Pandit Upadhyaya delivered a series of lectures on the cultural aspects of India at various learned institution of the ci y.

The first of the service was arranged by the Thai-Bharat Cultural Lodge on "India's Contribution to World Culture" which was delivered at the Bharat Vidyalaya and was attended by a distinguished gathering of indians. Another was arranged at the local Buddhist University. The best speech was delivered at the siam Society, the subject being "The Spiritual aspects of the Vedas", The occasion was presided over by The Ex-Regent of Thailend, His Highness Prince Dhani Nivat Kromaun Bidyalabh Bridhyakorn,

Apart from these engagements, Pandit Upadhyaya visited the Chulalongkorn University, the National Library and other places of cultural and historical interest. He presented the University and the National Library each with a set of his books and donated a sum of Ticals 1.000 to the Chulalongkorn University to be used for the promotion of learning of the Sanskrit language in the University.

Pandit Upadhyaya left for Singapore on March 21 and was seen off at the aerodrome by a number of prominent Indians, including Pandit Raghunath Sharma, Director-Secretary of the Thai-Bharat Lodge.

P.S. On the "Holiday". Pandit Upadhaya addressed a mammoth meeting of Indians at the local Arya Samaj, which was attended, amongst other prominent Indians, by H.E. Mr. M K. Kripalani, Indian Ambassador to Thailand. Apart from this, Panditji delivered a series of lactures for 2 weeks at the local Hindu Samaj Hall which were well attended.

—:o:—

दान सूची

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, देहली

(२१-५-१९५२ से २०-६-५२ तक)

दान आर्य समाज स्थापना दिवस

१०) आर्य समाज गया (विहार)
२५) ,, सीतापुर
१०) ,, बहादरा बाद(सहारनपुर)
२५) ,, हरदोई
२५) ,, वालनगीर (उड़ीसा)
२५) ,, रोहतक
२।) एक आर्य समाज से
१२२।) योग
७९१=) गत योग
९१३।=) सर्वयोग

दान दाताओं को धन्यवाद—

जिन समाजों ने इस सभा की आर्य समाज स्थापना दिवस की अपील पर धन संग्रह न किया हो वे अब धन संग्रह करके अथवा अपने कोष से एक पुष्कल राशी शीघ्र ही इस सभा के कार्यालय में भिजवा देवें। अभी तक जिन समाजों से सभा में इस निधि का धन अप्राप्त है, उन्हें अपने कर्त्तव्य का पालन करते हुए सभा के आदेशानुसार धन शीघ्र भिजवाना चाहिए।

कविराज हरनामदास बी० ए०
मन्त्री, सार्वदेशिक सभा

विविध दान

१५) श्री विद्याभूषण जी त्रिभु हिवर खेड रूप राव (अकोला) द्वारा वधू सूर्यभान बहादुर जी माके पुत्री पल सोहु और वर पंठरी चन्द्रभानु दात्तराहिंगणी के पुत्र श्री वासदेव जी के विवाहोपलक्ष में

१५) श्री विद्याभूषण जी विभु द्वारा श्री मन कमीनाम देवराज खोटर वधू देवती और वर महादेव राव तुलसी राम जी गांवडे हिवर खेद निवासी के विवाहोपलक्ष में

११) श्री विद्याभूषण जी विभु द्वारा श्री निर्मला वैकुठराव वर आमदाव वामनराव जी के विवाहोपलक्ष में

१३) विविध सज्जनों से द्वारा पं० दीन बन्धु जी वेद शास्त्री उपदेशक
५४) योग
६४०)।।। गत योग
६९४)।।। सर्वयोग

दान दक्षिण प्रचारार्थ

४००) दान श्री सेठ जुगल किशोर जी बिड़ला द्वारा अ० भा० आर्य धर्म सेवा सङ्घ देहली सहायता मई व जून १९५२
४००) योग
४००) गत योग
८००) सर्व योग

दान सार्वदेशिक वेद प्रचार निधि

१०१) श्री ला० हंसराज गुप्त द्वारा ला० हंसराज एण्ड लि० चावड़ी बाजार देहली
५) श्री सदानन्द जी कपूर मिर्जापुर
५) ,, वेदव्रत जी सिद्धान्त वाचस्पति
५) ,, विश्वमित्र जी आर्य समाज मेरठ शहर
५।।।=) विविध सज्जनों से
१२१।।।=) योग
३०६) गत योग
४२७।।।=) सर्वयोग

दान दाताओं को धन्यवाद
मन्त्री
सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा

सार्वदेशिक पत्र के ग्राहकों से आवश्यक निवेदन

निम्नलिखित ग्राहकों का सार्वदेशिक पत्र का चन्दा जुलाई मास के साथ समाप्त होता है। कृपया ये अपना वार्षिक चन्दा शीघ्र मनी आर्डर द्वारा कार्यालय मे पहुँचाने की कृपा करें। अन्यथा आगामी अंक उनकी सेवा में वी० पी० द्वारा भेजा जावेगा। धन प्रत्येक दशा मे ३०७५२ तक कार्यालय मे पहुंच जाना चाहिए। मनीआर्डर कूपन पर अपना पूरा पता व ग्राहक नम्बर लिखना न भूलें। अन्यथा पत्र न मिलने वा देर से मिलने का उत्तरदायित्व कार्यालय पर न होगा।

ग्राहक संख्या	पता
५०	श्री मन्त्री जी आर्य समाज नया बांस दिल्ली
६७	,, शिवपूजनसिंह जी कुशवाहा कानपुर
७६	,, मन्त्री जा आर्यसमाज कुचामन सिटि मारवाड़
२०४	,, ,, जी आर्यसमाज वारा (कोटा राज)
२१६	आर्य समाज हिण्डौन जयपुर
२४५	श्री सीताराम जी शिल्पी कानपुर
३३३	,, मन्त्री जी आर्यसमाज नारायण पेट हैद्राबाद दक्षिण
३३४	,, ,, जी वैदिक पुस्तकालय जहानाबाद जिला गया
३३७	,, मंत्री आ० उ० प्रति० सभा सांदलपुर मडराक अलीगढ़
३३८	,, किशोरीलाल जी तोपखाना बाजार इन्दौर
३४२	,, मंत्री जी आर्यसमाज आरा विहार
३४३	,, ,, जी आर्य समाज अम्वाला जिला सहारनपुर
३४४	,, चन्द्रभानु जी आर्य ग्राम ससाडी पोस्ट, अगियाव जिला आरा
३४५	,, मत्री जी आर्यसमाज धामनगांव जिला अमरावती
४३४	,, ,, जी आर्य समाज ज्वालापुर जिला सहारनपुर
४५१	,, प्रिन्सिपल साहब अहीर क्षत्रिय हायर से० स्कूल शिकोहाबाद जिला मैंनपुरी
४६२	,, रघुराज प्रसाद जी आर्य डाल्टनगंज जिला पलामू
४६३	,, पं० वृन्दावनदेव जी बहरेपाली पोस्ट जामगांव रायगढ़
४६८	,, मंत्री जी आर्य समाज गंज मुरादाबाद
४६९	,, ,, जी आ० स० मेंडू जिला अलीगढ़
४७०	,, प० धर्मदेव जी घनश्यामदास वैदिक विद्यालय देवरिया
४७५	,, वामनवाजीराव जी दयानन्द वस्तु भंडार उस्मानाबाद हैद्राबाद स्टेट
४८७	,, मंत्री जी आर्यसमाज पोरबदर काठियावाड़
७६३	,, गंडाराम जी पूरनपुर जिला पीलीभीत
७६६	,, धनराज जी मैनेजर, दयाराम आइलमिल गुलबर्गा हैद्राबाद स्टेट
७७३	,, रामचन्द्र जी आर्य अकबरपुर (कानपुर)
७७४	आर्यसमाज पाटम (विहार)
७७८	श्री बा. मदनगोपाल जी जवाहर नगर देहली
७७९	आर्य समाज जावल बाजार (बहराइच)
७८०	श्रीमती सुशीला जी जौहरी, लखीमपुर खीरी
७८१	आर्य समाज कौड़िया (गोंडा)
७८३	,, ,, चौडेली (खीरी)
७८४	,, ,, जुमलाजुर्नपुर (बहराइच)
७८५	,, ,, कुकहापर (खीरी)
७८६	,, ,, हयात पुर (खीरी)
७८७	,, ,, काशी बनारस
७९०	,, ,, महाराज पुर (नौगाव)
७९१	,, ,, बिलासपुर (रामपुर स्टेट)
७९२	,, ,, सदर मथुरा
७९३	,, ,, वेवर (मैनपुरी)
७९४	,, ,, गिलौला (बहराइच)
७९५	,, ,, कालाकांकर राज (प्रतापगढ़)
७९६	,, ,, साकोल (हैद्राबाद स्टेट)
९२	,, ,, मोहम्मदी

प्रबन्ध कर्त्ता, सार्वदेशिक देहली

स्वाध्याय योग्य साहित्य

(१) श्री स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी की पूर्वी अफ्रीका तथा मौरीशस यात्रा २।)
(२) वेद की इयत्ता (ले० श्री स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी) १॥)
(३) महर्षि दयानन्द और महात्मा गांधी (पं० धर्मदेव जी वि० वा) १)
(४) बौद्ध मत और वैदिक धर्म „ १॥)
(५) मनोविज्ञान व शिव संकल्प (स्वा० आत्मानन्द जी) २॥)
(६) धर्म का आदि स्रोत (पं० गंगाप्रसाद जी एम. ए.) २)
(७) वेद रहस्य (श्री नारायण स्वामी जी) १॥।)
(८) ईश्वर की सर्वज्ञता (ले० देवराम जी सि० शास्त्री) १)
(९) सुभाषित रत्न माला (ले० पं० कृष्णचन्द्र जी वि० अ०) ॥।=)
(१०) संस्कार महत्व (पं० मदनमोहन विद्यासागर जी) ।।।)
(११) जनकल्याण का मूल मन्त्र „ ।।)
(१२) वेदों की अन्तः साक्षी „ का महत्व ॥=)
(१३) आर्य घोष „ ।।)
(१४) आर्य स्तोत्र „ ।।)

मिलने का पताः—सार्वदेशिक सभा देहली

English Publications of Sarvadeshik Sabha.

1. Agnihotra (Bound) (Dr. Satya Prakash D. Sc.) 2/8/-
2. Kenopanishat (Translation by Pt. Ganga Prasad ji, M. A.) -/4/-
3. The Principles & Bye-laws of the Aryasamaj -/1/6
4. Aryasamaj & International Aryan League (By Pt. Ganga Prasad ji Upadhyaya M. A.)-/1/-
5. Voice of Arya Varta (T. L. Vasvani) -/2/-
6. Truth & Vedas (Rai Sahib Thakur Datt Dhawan) -/6/-
7. Truth Bed Rocks of Aryan Culture (Rai Sahib Thakur Datt Dhawan) -/8/-
8. Vedic Teachings & Ideals (Dhareshwar B. A. Atma) 1/4/-
9. Vedic Culture (Pt. Ganga Prasad Upadhyaya M. A) 3/8/-
10. Aryasamaj & Theosophical Society (B. Shyam Sundarlal B. A. LL. B.) -/3/-
11. Glimpses of Dayanand (by Chamupati M. A.) 1/8/-
12. A Case of Satyarth Prakash in Sind (S. Chandra) 1/8/-
13. In Defence of Satyarth Prakash (Prof Sudhakar M. A.) -/2/-
14. We and our Critics -/1/6
15. Universality of Satyarth Prakash -/1/-
16. Rishi Dayanand & Satyarth Prakash (Pt. Dharma Deva ji Vidyavachaspati) -/8/-
17. Landmarks of Swami Dayanand (Pt. Ganga Prasadji Upadhyaya M. A.) 1/-/-
18. Scope & Mission of Aryasamaj (Pt. Ganga Prasad ji Upadhyaya M. A.) 1/4/-
24. Political Science Royal Edition 2/8/- Ordinary Edition -/8/-
25. The Light of Truth 6/-/-
26. Life After Death(Pt. Ganga Prasad Upadhyaya M. A.) I/4/-
27. Elementary Teachings of Hindusim „ -/8/-
28. Kathopanishad (By Pt. Ganga Parshad Rtd. Chief Judge) 1/4/-

Can be had from :—

Sarvadeshik Arya Pratinidhi Sabha, Delhi.

Regd. No. D 51

मुद्रक-चतुरसेन गुप्त द्वारा सार्वदेशिक प्रेस पटौदी हाउस दिल्ली ७ में छपकर
श्रीरघुनाथ प्रसाद जी पाठक पब्लिशर द्वारा सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा देहली ६ से प्रकाशित

कृण्वन्तोविश्वमार्यम्
सार्वदेशिक
श्रावण २००९ वि०
अगस्त १९५२
सम्पादक
श्री पं० धर्मदेव सिद्धान्तालङ्कार विद्यावाचस्पति
मूल्य स्वदेश ५)
विदेश १० शि०
एक प्रति ।।)

विषयानुक्रमणिका

ओ३म

सार्वदेशिक आर्य-प्रतिनिधि सभा देहली का मासिक मुख-पत्र

वर्ष २६ } अगस्त १९५२, श्रावण २००९ वि० दयानन्दाब्द १२८ { अङ्क ६

ओ३म

वैदिक प्रार्थना

ओं वयः सुपर्णा उपसेदुरिन्द्रं प्रिय मेधा ऋषयो नाधमानाः ।
अप ध्वान्तमूर्णु हि पूर्धि चक्षुर्मुमुग्ध्यस्मान्निधयेव बद्धान् ॥ (ऋग्वेद ८।३।४)

शब्दार्थः—(सुपर्णाः वयः इव) उत्तम गतिवाले पक्षियों की तरह क्रिया शील (प्रिय मेधाः) शुद्ध मेधा बुद्धि तथा यज्ञ जिन को प्रिय हैं ऐसे (ऋषयः) तत्त्वज्ञानी पुरुष यह (नाधमानाः) प्रार्थना करते हुए (इन्द्रम् उपसेदुः) परमेश्वर की उपासना करते हैं कि (ध्वान्तम्) अन्धकार को (उप ऊर्णु हि) दूर कर दे (चक्षुः पूर्धि) हमारी आंखों को प्रकाश से पूर्ण करदे और (निधया इव बद्धान्) मानो जाल से बँधे हुए (अस्मान्) हमें (मुमुग्धि) मुक्त करदे ॥

विनय—हे सच्चिदानन्द स्वरूप परमेश्वर ! आप ज्योतिर्मय सर्वथा पवित्र और सदामुक्त हैं। हम शुद्ध बुद्धि को प्राप्त करना चाहते हैं और हमें यज्ञादि शुभकर्मों से प्रेम है। हम तत्त्व ज्ञानी बनने के अभिलाषी हैं। हमारी आपसे यह प्रार्थना है कि आप हमारे सारे अज्ञानान्धकार को दूर करके हमारे अन्दर ज्ञान की ज्योति जगा दें तथा हमें सब बन्धनों से मुक्त करदें जिससे इस जन्म में भी हम जीवन्मुक्त होकर श्रेष्ठ कार्यों के करने में तत्पर हों ॥

सम्पादकीय

श्रावणी पर्व का मुख्य संदेश वैदिक स्वाध्याय

श्रावण पूर्णिमा मङ्गलवार (५ अगस्त) को उपाकर्म वा श्रावणी का पर्व नर-नारियों के श्रद्धा और प्रेम पूर्वक मनाते हुए वैदिक स्वाध्याय का व्रत विशेष रूप से ग्रहण करना चाहिये। वेद का नियमित स्वाध्याय करना कराना ही इस पर्व का मुख्य सन्देश है जहां वेदों के 'यः पावमानीरध्येत्यृषिभिः संभृतं रसम्। सर्वं स पूतमश्नाति स्वदितं मातरिश्वना॥ पावमानीः ... नान्दनम्। पुण्यांश्च भक्षान् भक्षयत्यमृतत्वं च गच्छति॥ (ऋ० ९।६७।३१-३२) इत्यादि मन्त्रों में स्वाध्याय का महत्त्व बताते हुए कहा गया है कि स्वाध्याय शील का जीवन पवित्र हो जाता है, उसे कल्याण और आनन्द की प्राप्ति होती है तथा उस स्वाध्याय के अनुसार आचरण करने पर अन्त में मोक्ष की प्राप्ति होती है वहां शतपथ ब्राह्मण ११।५।६।३ में ब्रह्मयज्ञ का एक अर्थ स्वाध्याय करते हुए उस का फल निम्न लिखित आकर्षक शब्दों में बताया गया है.—

"स्वाध्यायो वै ब्रह्मयज्ञः। प्रिये स्वाध्यायप्रवचने भवतः। युक्तमना भवति, अपराधीनः, अहरहः अर्थान् साधयते, सुखं स्वपिति, परमचिकित्सकः आत्मनो भवति, इन्द्रिय संयमश्च, एकारामता च प्रज्ञावृद्धिः यशो लोकपक्तिः।"

इत्यादि अर्थात् स्वाध्याय (वेदादि सत्य शास्त्रों का प्रतिदिन नियम से पढ़ना) निश्चय से ब्रह्मयज्ञ है। स्वाध्याय और प्रवचन (वेदादि का पढ़ाना) ये दोनो प्रिय अथवा आनन्द देने वाले हैं। इन दोनो से मनुष्य एकाग्रचित्त होता है और स्वतन्त्र हुआ प्रतिदिन अनेक पदार्थों को प्राप्त करता है, सुख से सोता है, अपना उत्तम चिकित्सक (मानसिक, आत्मिक रोगों का निवारक) बनता है। इन्द्रियों का संयम, सदा एक रसता वा प्रसन्नचित्तता, बुद्धि की वृद्धि, यश तथा लोगों की अतिश्रद्धा, स्वाध्याय और प्रवचन से होती है।"

इसी लिये महर्षि दयानन्द जी ने आर्य समाज के नियमों में लिखा कि "वेद सब सत्यविद्याओं का पुस्तक है। वेद का पढ़ना पढ़ाना, सुनना सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है।"

प्रतिवर्ष उपाकर्म वा श्रावणी का पर्व हमें अपने इसी परम धर्म का स्मरण कराने के लिये आता है किन्तु खेद है कि बहुत से आर्य नर नारी इस पर्व को मनाते हुए भी वैदिक स्वाध्याय को नियमित रूप से नही करते। यह अत्यन्त अनुचित बात है जिस का परिणाम यह होता है कि बहुत से आर्यो को वैदिक सिद्धान्तों तक का ठीक ज्ञान नहीं होता और वे अनेक बार वेद विरुद्ध आचरण भी कर बैठते हैं। अतः हम समस्त आर्य नर नारियों से अनुरोध करते हैं कि वे श्रावणी के पर्व को उत्साह पूर्वक मनाते हुए प्रतिदिन कम से कम १ वेद मन्त्र के अर्थ सहित पाठ का व्रत ग्रहण करें। इस से उन्हें मानसिक और आध्यात्मिक दृष्टि से बड़ा लाभ होगा। इसी दिन हैदराबाद सत्याग्रह के आर्य वीरों का श्रद्धासहित स्मरण करते हुए उन की धार्मिक भावना को अपने अन्दर धारण करने का निश्चय करना चाहिये और सार्वदेशिक वेद प्रचार निधि के लिये उदार दान देना चाहिये जिससे देशदेशान्तरों मे वैदिक धर्म के प्रचार की उचित व्यवस्था की जा सके।

शहाने शरीयत के सम्पादक को उचित दण्ड:—

'सार्वदेशिक' के ग्राहकों को यह जान कर

प्रसन्नता होगी कि जिस हजरत शाह शूफी सम्पादक 'शाहाने शरीयत' कानपुर ने लगभग २ वर्ष पूर्व प्राचीन ऋषि मुनियों, श्री कृष्णादि मान्य महापुरुषों तथा महर्षि दयानन्द के सम्बन्ध में अनर्गल असत्य लेख प्रकाशित कर के समस्त आर्य जनता में विक्षोभ उत्पन्न कर दिया था उसे न्यायालय द्वारा २ वर्ष क सपरिश्रम कारावास और १ हजार रु० जुर्माना हुआ है। जुर्माना न देने की अवस्था में ६ मास का कारावास (जेल) और भुगतना होगा। हम इस न्याय संगत कार्य के लिये न्यायाधीशों का अभिनन्दन करते हैं और आशा करते हैं कि भविष्य मे ऐसे अनर्गल, असम्बद्ध लेख लिख कर आर्य धर्मावलम्बियों के हृदय पर आघात पहुँचाने का दुस्साहस कोई न करेगा।

माननीय डा० बालकृष्ण केसकर का अभिनन्दनीय कार्य:—

केन्द्रीय सरकार में सूचना और ध्वनि प्रसार के मन्त्री डा० बालकृष्णजी केसकर ने बम्बई में भारतीय फिल्म सङ्घ के अधिवेशन में भाषण करते हुए जो यह बात कही कि 'भारतीय फिल्मों का नैतिकस्तर बहुत गिर गया है। उन्हे भारतीय संस्कृति और परम्परा के अनुरूप होना चाहिये। वे भारतीय, अंग्रेजी, अमरीकी और फ्रान्सीसी संस्कृतियों की खिचड़ी नहीं हो सकते। उन्हें भारतीय दृष्टिकोण रखते हुए ही प्राप्ति करनी चाहिये।' इत्यादि हम इसके लिये उनका हार्दिक अभिनन्दन करते हैं। उन्होंने इसी प्रसग में यह भी चेतावनी दी कि यदि फिल्म निर्माताओं ने इस विषय में अति शीघ्र सुधार नहीं किया तो सरकार को कठोर कार्यवाही करनी पड़ेगी। इस का सङ्घ के सदस्यों पर उत्तम प्रभाव पड़ा प्रतीत होता है। सङ्घ के अध्यक्ष श्री चन्दूलाल शाह ने आश्वासन दिया कि "अब हम अमरीकी चित्रों का अनुसरण न करेंगे।"

यह भी ज्ञात हुआ है कि अखिल भारतीय रेडियो के अधिकारियों को ये निर्देश दिये गये है कि वे अश्लील फिल्म गीतों का प्रसारित करना बन्द करके उत्तम तथा शास्त्रीय गीतों को अपने कार्य क्रम में अधिक स्थान दें क्योंकि अश्लील कामुकतावर्धक गीतों का युवक युवतियों के चरित्र पर बड़ा अवाञ्छनीय प्रभाव होता है। हम माननीय डा० बालकृष्णजी के उपर्युक्त भाषण तथा उसके समर्थन में की जाने वाली कार्यवाही पर हर्ष प्रकट करते हैं और आशा करते है कि केन्द्रीय सरकार इस विषय में दृढ़ता से कार्य लेगी जिससे इन अश्लील गीतादि द्वारा बढ़ते हुए नैतिक पतन को रोका जा सके।

भारतीय स्वतन्त्रता और नैतिक पतन में वृद्धि:—

१५ अगस्त १९४७ को भारत को विदेशी शासन से मुक्त और स्वतन्त्र हुए ५ वर्ष पूरे हो जाएंगे। हम जहां इस स्वतन्त्रता की प्राप्ति पर हर्ष प्रकट करते है वहां यह देख कर हम दु:ख प्रकाशित किये बिना नहीं रह सकते कि स्वतन्त्रता की प्राप्ति के साथ जिस सुख समृद्धि और नैतिक उत्थान की आशा को जानी चाहिये थी उससे अभी हम कोसों दूर है। इससे भी बढ़कर दु:ख और लज्जा की बात यह है कि हमारे देशवासियों का नैतिकपतन बढ़ता चला जाता है। दुराचार और भ्रष्टाचार की वृद्धि के सैंकड़ों उदाहरण प्रतिदिन सामने आते है। कन्याओं और विवाहिता महिलाओं तक के अपहरण, छोटी २ बातों के कारण हत्या, पारिवारिक असन्तोष के कारण आत्म हत्या आदि की घटनाओं से समाचार-पत्र भरे रहते हैं। पिछले दिनों जब हमने देहली के सुप्रसिद्ध अंग्रेजी पत्र 'देहली एक्सप्रेस' के १४ १५ जुलाई के अंकों में पढ़ा कि "देहली में वेश्यावृत्ति

से आजीविका करने वालों की वार्षिक आय ४ करोड़ ५२ लाख, रु० के लगभग है जो कि देहली प्रदेश की करादि द्वारा आय से १ करोड़ रु० अधिक है। देहली के काठ बाजार में ही प्रतिदिन ४०००) जी० बी० रोड में ७० हजार और अन्य स्थानों पर व्यभिचारादि पर ५० हजार रु० व्यय किया जा रहा है, देहली मे १३३ स्त्रियाँ खुले तौर पर वेश्यावृति कर रही हैं जिनमें ६६ छोटी आयु की बालिकाएं और २० शरणार्थी महिलाएं हैं। इनके अतिरिक्त १०० से अधिक प्राइवेट वेश्यालयों का अनुमान है। ६ होटलों का मौरल सोशियल हाईजीन असोसियेशन को पता है जो वेश्यावृत्ति के लिये लड़कियां देते हैं। वेश्यावृत्ति करने वाली इन लड़कियों की संख्या ५०-० से ऊपर है।" इत्यादि तो हमारा मस्तक लज्जा से अवनत हो गया। जिस देश के राजा यह दावा कर सकते थे। कि "न मे स्तेनो जनपदे, न कदर्यो न मद्यपः। नानाहिताग्निर्नाविद्वान्, न स्वैरी स्वैरिणी कुतः॥" अर्थात् मेरे देश में एक भी चोर नहीं, एक भी कृपण और शराबी नहीं, एक भी अग्निहोत्र न करने वाला और अविद्वान् नहीं, एक भी व्यभिचारी पुरुष नहीं फिर व्यभिचारिणी स्त्री तो हो ही कहां सकती है। उसी देश में नैतिकपतन की यह पराकाष्ठा और वह भी देहली जैसी केन्द्रीय शासन की राजधानी में।

यह अवस्था अत्यन्त शोचनीय है जिसे सुधारने का शासक और जनता दोनों को मिलकर पूर्ण प्रयत्न करना चाहिये। इस वेश्यावृत्ति को दूर करने के लिये इसको प्रोत्साहित करने वाले समस्त व्यक्तियों और दलालों को दण्ड देने के लिये कठोर विधान बनाने चाहियें जिनका उग्रता से पालन कराया जाए। हमारा तो यह निश्चित विश्वास है कि जब तक इन विधानों के साथ कुमार कुमारियों और युवक युवतियों में सदाचारवर्धक धार्मिक शिक्षा का प्रबन्ध न किया जाएगा और उनमें ब्रह्मचर्य के भारतीय संस्कृति के मूलभूत तत्त्व का प्रचार न किया जाएगा तब तक कभी पूर्ण लाभ न हो सकेगा। यदि इस नैतिक पतन को शीघ्रातिशीघ्र दूर करने का प्रबल प्रयत्न न किया गया तो यह हमारे राष्ट्र को रसातल तक पहुंचा देगा। अतः देश के सभी सच्चे प्रेमियों का कर्तव्य है कि वे सदाचारमय वातावरण को बनाने में सहायक हों, दुराचारवर्धक चित्रों तथा नाटकों का पूर्ण बहिष्कार करें, रेडियो से अश्लील गीतों के प्रसरण को बन्द कराएं और सरकार को इस बात के लिये बाध्य करें कि वह दुराचार के दमनार्थ अति कठोर विधान बना कर उनका उग्रता से पालन कराए अन्यथा हमारी राजनैतिक स्वतन्त्रता हमारे लिये केवल अभिशाप सिद्ध होगी॥

एक अंशतः सत्य किन्तु अत्युक्ति पूर्ण लेखः—

नई देहली से सरिता नाम की एक मासिक पत्रिका श्री विश्वनाथ नामक सज्जन के सम्पादकत्व में प्रकाशित होती है जिस पर 'सामाजिक व पारिवारिक पुनर्निर्माण की पत्रिका' ये शब्द लिखे रहते है। इस पत्रिका के मई १९५२ के अंक में "युगों युगों से शोषित भारतीय नारी" इस शीर्षक का श्री रतनलाल बंसल द्वारा लिखित एक लेख प्रकाशित हुआ है। इस लेख को ध्यानपूर्वक आद्योपान्त पढ़ने पर हमें ऐसे प्रतीत हुआ कि लेखक का उद्देश्य भारतीय नारी की वर्तमान अवस्था को शोचनीय समझते हुए उसे उन्नत करने का है किन्तु भावावेश में वे उचित मर्यादा का अतिक्रमण कर बैठे है और विषय का ऐसा अत्युक्तिपूर्ण चित्रण कर बैठे हैं कि पढ़ने वाले व्यक्तियों विशेषतः महिलाओं को धर्मशास्त्र मात्र से घृणा हो जाए। अपने लेख का उद्देश्य बताते

हुए लेखक ने प्रारम्भ में ही लिखा है कि "प्राचीन काल के विभिन्न युगों मे भारतीय नारी पर धर्म और व्यवस्था के नाम पर कैसे बर्बर अत्याचार होते रहे हैं इसकी कुछ झांकियाँ दिखा देना ही प्रस्तुत लेख का उद्देश्य है।"

इस लेख में उन्होंने अमेरिका की कुख्यात लेखिका मिस मेयो का अनुसरण करते हुए केवल कृष्ण पार्श्व को पाठकों के सन्मुख रखने का प्रयत्न किया है जो एक निष्पक्षपात लेखक के लिये उचित न था। श्री रतनलाल जी ने इस लेख में बार २ लिखा है कि केवल दो चार बहुप्रचलित श्लोक हैं जिनमें नारियों के प्रति आदर का भाव प्रकट किया गया है किन्तु यह बात सर्वथा अशुद्ध है। उन्होंने तो उन दो चार श्लोकों को भी उद्धृत करने की उदारता नहीं दिखाई किन्तु वस्तुतः वैसे सैंकड़ों वचन शास्त्रों में पाये जाते हैं। 'शुद्धाः पूता योषितो यज्ञिया इमाः ॥' (अथर्व ११।१।१७) अर्थात् स्त्रियाँ शुद्धा पवित्रा और पूजनीया हैं इससे बढ़कर नारियों के प्रति आदर सूचक भाव और कहां पाये जा सकते हैं ? ऋग्वेद के 'गृहान् गच्छ गृहपत्नी यथासो वशिनी त्वं विदथमावदासि" (ऋ० १०।८५।२६) तथा सम्राज्ञी श्वशुरे भव सम्राज्ञीश्वश्र्वांभव । ननान्दरीसम्राज्ञी भव सम्राज्ञी अधि देवृषु ॥ (ऋ० १०। ८५।४६) इत्यादि में नारियों को जो वशिनी (सब को वश में रखने वाली) और सम्राज्ञी (रानी और अपने गुणों से प्रकाशमान) का पद दिया गया है उससे अधिक मान उन्हें कहां प्राप्त हो सकता है ? हमें आश्चर्य है कि श्री बंसल जी ने इनमें से एक भी वचन को उद्धृत नहीं किया जब कि सब आर्य वेद को स्वतः प्रमाण मानते हैं और अन्य सब ग्रन्थों को परतः प्रमाण तथा वेद विरुद्ध वचनों को सर्वथा अप्रमाण। अतः मनुस्मृति आदि में भी जो वेद विरुद्ध, स्त्रियों के प्रति अनादरसूचक वचन हैं वे सब अमाननीय हैं तथा 'यत्रनार्यस्तु पूज्यन्ते, रमन्ते तत्र देवताः । यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते, सर्वास्तत्राफलाः क्रियाः ॥ तस्मादेताः सदा पूज्या भूषणाच्छादनाशनैः ॥" (मनु० ३।५६।५९) इत्यादि वचन जो स्त्रियों की पूजा का विधान करते है वेदानुकूल होने से माननीय हैं। महाभारत के भी

'अर्धं भार्या मनुष्यस्य, भार्या श्रेष्ठतमः सखा।
भार्या मूलं त्रिवर्गस्य, भार्या मूलं तरिष्यतः॥
(आदि पर्व अ० ७४ ४२)

"नास्ति भार्या समो बन्धुः,नास्ति भार्या समा गतिः।
नास्ति भार्या समो लोके, सहायो धर्म संग्रहे।"
(पर्व अ० १४५ १६)

इत्यादि वचन जिन में स्त्री को पुरुष का सर्वोत्तम मित्र और धर्म संग्रह में सहायिका, बन्धु और आश्रय माना गया है वेदानुकूल होने से मान्य तथा अन्य अमान्य हैं जिन में बृहस्पति, उद्दालक, गालवादि की दुराचार प्रोत्साहक कथाएँ भी सम्मिलित हैं। महाभारत में अनेक श्लोक पीछे से मिलाये गये हैं जिससे आख्यान सहित मूल २४ हजार के १ लाख से अधिक श्लोक हो गये हैं इस बात को स्वर्गीय श्री बङ्किम चन्द्र चट्टोपाध्याय ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'कृष्णचरित्र' में प्रबल प्रमाणों से सिद्ध किया है (जिसे हम अत्यन्त उपयोगी होने के कारण कभी सार्वदेशिक के पाठकों के लाभार्थ उद्धृत करेंगे)। अन्य भी निष्पक्षपात सब विद्वान् इस बात को स्वीकार करते हैं अतः वर्तमान रूप में महाभारत के अनेक अंश जो नारियों के प्रति अनादर तथा व्यभिचार सूचक हैं सर्वथा अमान्य है इस बात की हम स्पष्ट घोषणा करते हैं। पुराणों के अधिकांश भाग को वेद विरुद्ध होने के कारण हम सर्वथा अप्रा-

माणिक मानते हैं जिनका हमारे लिये रत्ती भर भी मूल्य नहीं। ऐसे वचनों के आधार पर श्री रतनलाल जी का यह परिणाम निकाल लेना कि "ऐसे अनेकानेक प्रमाण मिलते हैं कि बलात्कार पुरुषों का—ऐसे पुरुषों का भी जो समाज में अपनी विद्वत्ता, आध्यात्मिकता एव जपतप के लिये आदरणीय माने जाते थे, जो समाज के नेता थे—एक स्वभाव सा बन गया था" सर्वथा अनुचित है। वेदों में स्पष्ट उपदेश है कि 'पापमाहुर्यः स्वसार नि गच्छात्" (ऋ० १०।१०) अर्थात् जो बहिन के साथ संभोग की इच्छा से जाता वा उसे पत्नी बना लेता है वह पापी कहलाता है इसलिये मत्स्य पुराणादि के अनुसार यदि किसी ने ऐसा विवाह किया तो घोर पाप किया और ऐसों को कभी ऋषि वा राजर्षि नहीं कहा जा सकता।

कन्या दान का तात्पर्य केवल माता पिता द्वारा अपने उत्तरदायित्व को वर के प्रति सौंपने का है अन्य चलाचल सम्पत्ति की तरह देने का नहीं यह न समझ कर लेखक ने जो उसकी आलोचना की है वह वैदिक तथा प्राचीन आर्ष काल के लिये अशुद्ध है। तब तो "ब्रह्मचर्येण कन्या युवानं विन्दते पतिम्" 'भद्रा वधूर्भवतियत्सुपेशा. स्वय सामित्रं वनुते जने चित्।" (ऋ० १०।२७।१२) इत्यादि वैदिक आदेशो के अनुसार स्वयंवर की प्रथा प्रचलित थी। पौराणिक काल मे छोटी २ आयु की कन्याओं के दान को जो महत्त्व दिया गया वह वस्तुत हानिकारक है। लिखने का तात्पर्य यह है कि श्री रतनलाल जी यदि अपने लेख में नारियों के प्रति आदर सूचक वैदिक आदेशों तथा अन्य आर्ष वचनों का उल्लेख करते हुए यह दिखाने का यत्न करते कि मध्यकालीन अन्धकारयुग में इन के विपरीत आचरण से नारियों की कितनी दुर्गति कर दी गई और उससे समाज को कितनी भारी हानि पहुँची, वर्तमान काल में भी महर्षि दयानन्द के आदेशानुसार आर्यसमाजादि सुधारक संस्थाओं ने कैसे उस शोचनीय अवस्था को दूर करने का प्रयत्न किया (जैसे कि हमने अपने "भारतीय समाज शास्त्र" नामक आर्य साहित्य मण्डल 'अजमेर से प्रकाशित ग्रन्थ के सप्तम अध्याय मे तथा वैदिक कर्तव्य शास्त्र" (गुरुकुल कांगड़ी से प्रकाशित) में विस्तार से दिखाया है तो उन्हें सब सुधारकों का सहयोग प्राप्त होता किन्तु ऐसा न करके अत्यधिक अत्युक्तिपूर्ण प्रकार से केवल कृष्ण पक्ष को 'वास्तव मे उस समय प्रजा की किसी बहन बेटी की इज्जत सुरक्षित नहीं थी' ....समाज मे नारी का सन्मान इतना गिर गया था कि बलात्कार करने वाला घृणा का नहीं, आदर का पात्र समझा जाता था।" ऐसे भयङ्कर शब्दों में रखकर उन्होंने आर्य धर्म और धर्मशास्त्र मात्र को विचार शील नर नारियों की दृष्टि में गिराने का यत्न किया है जिसको हम सर्वथा निन्द्य समझते हैं।

मि० रागोज़िन के स्त्रियों की स्थिति विषयक विचारः—

श्री वशाल जी के लेख की पाठक Vedic India नामक पुस्तक के लेखक मि० रागोज़िन के वैदिक भारत में स्त्रियों की स्थिति विषयक लेख के साथ तुलना करेंगे तो उन्हें आकाश पाताल का अन्तर प्रतीत होगा। इस प्रसंग में तुलनार्थ हम उसके कुछ अंशों को उद्धृत करना आवश्यक समझते हैं। अपनी Vedic India नामक सुप्रसिद्ध पुस्तक में मि० रागोज़िन ने लिखा है कि "The position held by the Aryan woman in Vedic Punjab was a most honourable nay, exalted one, which later influences and developments changed by no means for the better, but rather, and very much for the worse. She appears

to have been on a footing of perfect equality with her husband. What is more, she was a willing bride; it is more probable that her consent was made sure of first and indeed that she was frequently awarded the privilege of choosing out of many suitros."

(Vedic India P. 367.)

अर्थात् वैदिक पंजाब में आर्य महिलाओं की स्थिति बड़ी आदरणीय और उच्च थी जिसमें आगे जाकर बुरे परिवर्तन ही हुए। वे अपने पतियों के समान अधिकार रखती थीं और ऐसा ही उनके साथ व्यवहार किया जाता था। विवाह उनकी अनुमति से ही होता था बल्कि उन्हें अपने पति को चुनने का अवसर दिया जाता था।

इसके पश्चात् "सम्राज्ञी श्वशुरेभव, सम्राज्ञी श्वश्रवां भव।" इत्यादि के अनुवाद को उद्धृत करते हुए मि० रागोज़िन जो टिप्पणी देते हैं वह दर्शनीय है। वे लिखते हैं:—

"How absolute the wife's and mother's supremacy as hare proclaimed and consecrated by the husband ? and what a tremendous falling off from this high standard is presented by the condition of women, as modified in later Brahmanism and especially Hinduism, by all sorts of foreign deteriorating influences. Even the popular life of modern nations falls far short of the ideal of domestic life set up by our so-called 'barbarous' early ancesters. That such an ideal implies monogamy is self-evident."

(Vedic India by Ragozin P. 372)

भावार्थ यह है कि यहां पत्नी और माता की प्रधानता पति द्वारा कितने स्पष्ट शब्दों में घोषित की गई है और आगे जाकर ब्राह्मण मत (पौराणिक) विशेषतः "हिन्दू मत" में सब प्रकार के विदेशी पतनकारी प्रभावों के परिणाम स्वरूप स्त्रियों की स्थिति में कितना भयङ्कर पतन इस उच्च आदर्श से हो गया है? हमारे तथाकथित जंगली पूर्वजों ने पारिवारिक जीवन का जो उच्च आदर्श रक्खा आधुनिक सभ्यंमन्य जातियों का जीवन भी उस से गिरा हुआ है। यह स्पष्ट है कि इस आदर्श में एक विवाह प्रथा समाविष्ट है।

यहां मि० रागोज़िन का स्त्रियों की स्थिति विषयक यह लेख हमने श्री बंशल जी की मनोवृत्ति और विषयनिरूपण शैली से भेद प्रदर्शित करने के लिये उद्धृत किया है। स्थानाभाव से हम यहां क्लैरिसी बेदन नामक फ्रेञ्च महिला द्वारा लिखित 'Women in ancient India' (Published by Kegan Paul Trench Tubner & Co-London) नामक अत्युत्तम पुस्तक से स्त्रियों की स्थिति विषयक विस्तृत उद्धरण नहीं दे सकते (जिनको यथा समय हम फिर कभी पाठकों की सूचनार्थ और श्री बंशल जी जैसे एक पक्षीय लेखकों के लाभार्थ देने का प्रयत्न करेंगे) तथापि निम्नलिखित दो वाक्यों को जो निष्कर्षरूप से उस महिला ने लिखे हैं उद्धृत करने के प्रलोभन का हम संवरण नहीं कर सकते। वे लिखती हैं:—

'The religious rights of women among the Aryans, testified to the elevated rank which she occupied

in the Vedic family.

'We have seen her participating in the ceremonies of family worship and directing the religious instruction of her children"

(Women in Ancient India by Clairssee Baden P. 49)

अर्थात् आर्यों के अन्दर स्त्रियों के धार्मिक अधिकारों से उनकी वैदिक परिवार में अत्यन्त उच्च स्थिति का समर्थन होता है। हमने उन्हें यज्ञ योगादि क्रियाओं में भाग लेते हुए और अपनी सन्तान को धार्मिक शिक्षा देते हुए देखा है इत्यादि।

हम श्री बंशल जी तथा तत्सदृश महानुभावों का ध्यान इन पंक्तियों की ओर विशेष रूप से आकृष्ट करते हुए उन से निवेदन करते हैं कि वे अधिक नहीं तो कम से कम इन पाश्चात्य विद्वानों और विदुषियों जैसी उदार दृष्टि से तो काम लें तथा केवल कृष्णपक्ष का भयंकर दिग्दर्शन करा कर लोगों की प्राचीन धर्म से विमुखता के कारण न बनें। इस्लाम आदि में भी तो नारियों की स्थिति बहुत हीन है उसके विरुद्ध लिखने का श्री बंशल जी को क्यों साहस नहीं होता ?

नैपाल में आन्तरिक संघर्षः—

यह बड़े दुःख की बात है कि नैपाल में आन्तरिक संघर्ष विकट रूप धारण कर रहा है। इस संघर्ष का परिणाम नैपाल की प्रगति के लिये हानिकारक ही सिद्ध होगा। दो सगे भाइयों के पारस्परिक मनोमालिन्य के कारण ऐसी विषम परिस्थिति उत्पन्न हो रही है यह तो और भी अधिक खेद का विषय है। १८ जुलाई को नैपाल कांग्रेस की कार्य कारिणी ने एक प्रस्ताव द्वारा प्रधान मन्त्री श्री मातृकाप्रसाद जी से यह मांग की कि वे मन्त्रियों की संख्या ११ से घटा कर ७ करदें और उस में निर्दिष्ट परिवर्तन करदें जिसका तात्पर्य यह था कि वे अपने समर्थक तीन मन्त्रियों को हटाकर उन के स्थान पर ३ विरोधि-दल के सदस्यों को लेलें। श्री मातृकाप्रसाद ने इस मांग को पूरा करने से इन्कार कर दिया। अब २४ जु० को नैपाल कांग्रेस कमेटी की कार्य कारिणी ने निश्चय किया है कि प्रधान मन्त्री श्री मातृकाप्रसाद् कोयराला और उन कांग्रेस दलीय मन्त्रियों को जो ४८ घ० के अन्दर सरकार से त्यागपत्र न दें ३ वर्ष के लिये कांग्रेस से निकाल दिया जाए। तदनुसार अर्थ मन्त्री श्री सुवर्ण शम्शेर; गृह मन्त्री श्री एस० पी० उपाध्याय और खाद्य मन्त्री श्री गणेशमान सिंह ने मन्त्रि-मण्डल से त्याग पत्र दे दिया है। इस प्रकार एक बड़ी विषम परिस्थिति उत्पन्न हो गई है जिस से नैपाल की प्रगति में बाधा पड़ेगी और यदि इस परिस्थिति को शीघ्र संभाला न गया तो कम्युनिस्ट पार्टी आदि का बल बढ़ जाएगा। ऐसा ज्ञात हुआ है कि श्री मतृकाप्रसाद कोयराला और उन के छोटे भाई विश्वेश्वर प्रसाद कोयराला में नैपाल के प्रधान मन्त्रित्व के विषय मे संघर्ष था। तब इस आधार पर उन में समझौता कराया गया था कि श्री मातृकाप्रसाद कांग्रेस के कार्यों में हस्ताक्षेप न करे और श्रीविश्वेश्वर प्रसाद सरकार के कार्यों मे हस्ताक्षेप न करें। अब श्री विश्वेश्वर प्रसाद के प्रधानत्व में नैपाल कांग्रेस कमेटी ने जिस प्रकार प्रधानमन्त्री के शासन कार्य में हस्ता-क्षेप प्रारम्भ किया है उस को उचित नहीं कहा जा सकता। स्थानीय परिस्थिति का पूर्ण ज्ञान तो स्थानीय व्यक्तियों को ही हो सकता है तथापि समाचार पत्र पढ़ने से जो विदित हुआ है उस के आधार पर उपर्युक्त टिप्पणी दी गई है। नैपाल कांग्रेस कमेटी, नैपाल राष्ट्रीय कांग्रेस कमेटी और नैपाल जन कांग्रेस कमेटी इस प्रकार तीन दलों में कांग्रेस के अनुयायी नैपाल में पहले ही विभक्त हो चुके हैं। अब उन के आन्त-रिक संघर्ष का इतना विकट रूप धारण कर लेना चिन्ता जनक है जिस को दूर करने का देश हितैषी राजनीतिज्ञों को बहुत शीघ्र कोई उपाय करना चाहिये। हमें आशा करनी चाहिये कि पद लोलुपता तथा स्वार्थ परायता का परित्याग कर के सब नैपाल के राष्ट्रनेता इस विषम परिस्थिति को दूर करके नैपाल की वास्तविक एकता और प्रगति में सहायक होंगे। ध० दे०

सत्याग्रह बलिदान स्मारक दिवस

मंगलवार ५ अगस्त १९५२ को मनाइये

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, देहली के निश्चयानुसार हैदराबाद सत्याग्रह मे अपने प्राणों की आहुति देने वाले आर्यवीरों की पुण्य-स्मृति में श्रावण शुक्ला पूर्णिमा तदनुसार ५ अगस्त १९५२ को आर्यसमाज मन्दिरों में सत्याग्रह बलिदान स्मारक दिवस मनाया जावेगा। इसी दिन श्रावणी का पुण्य पर्व है। इसका कार्य क्रम श्रावणी उपाकर्म के साथ मिलाकर निम्न प्रकार किया जाय:—

प्रात: ८॥ बजे आर्य समाज मन्दिरों में सभाये की जायं जिनमें उपाकर्म कार्यवाही के पश्चात् सब उपस्थित भद्र पुरुष तथा देवियां मिलकर निम्न प्रकार पाठ करें—

(१) ओ३म् ऋतावान ऋतजाता ऋतावृधो घोरासो अनृतद्विषः।
तेषां वः सुम्ने सुच्छर्दिष्टमे वयं स्याम ये च सूरयः॥ ऋग्वेद ७।६६।१३

(२) ओ३म् अग्ने व्रतपते व्रतं चरिष्यामि तच्छकेयं तन्मे राध्यताम्।
इदमहमनृतात् सत्यमुपैमि॥ यजुर्वेद १.५

(३) ओ३म् इन्द्रं वर्धन्तोऽप्तुरः कृण्वन्तो विश्वमार्यम्।
अपघ्नन्तो अराव्णः॥ सामवेद

(४) ओ३म् उपस्थास्ते अनमीवा अयक्ष्मा अस्मभ्यं सन्तु पृथिवि प्रसूताः।
दीर्घं न आयुः प्रतिबुध्यमाना वयं तुभ्यं बलिहृतःस्याम्॥ अथर्ववेद १२।१।६२

आर्य समाजों के पुरोहित अथवा अन्य कोई वेदज्ञ विद्वान् उपर्युक्त मन्त्रों का तात्पर्य इन शब्दों में पढ़ कर प्रार्थना करायें।

(१) जो विद्वान् सदा सत्य के मार्ग पर चलते हुए सत्य की निरन्तर वृद्धि और असत्य के विरोध में तत्पर रहते हैं, उनके सुखदायक उत्तम आश्रय में हम सब सदा रहे तथा हम भी उनकी तरह मन, वचन और कर्म से पूर्ण सत्यनिष्ठ बने।

(२) हे ज्ञान स्वरूप सब उत्तम संकल्पों और कर्मों के स्वामी परमेश्वर! हम भी आज से एक उत्तम व्रत ग्रहण करते हैं जिसके पूर्ण करने की शक्ति आप हमें प्रदान करें ताकि उस व्रत के ग्रहण से हमारी सब तरह से उन्नति हो। वह व्रत यह है कि असत्य का सर्वथा परित्याग करके हम सत्य की ही शरण में आते हैं। आप हमें शक्ति दे कि हम अपने जीवनों को पूर्ण सत्यमय बना सकें।

(३) हे मनुष्यो! तुम सब आत्मिक शक्ति तथा उत्तम ऐश्वर्य को बढ़ाते हुए कर्मशील बनकर उन्नति में बाधक आलस्य प्रमादादि दुर्गुणों का परित्याग करते हुए सारे संसार को आर्य अर्थात् श्रेष्ठ सदाचारी, धर्मात्मा बनाओ।

(४) हे प्रिय मातृ-भूमे! हम सब तेरे पुत्र और पुत्रियां तेरी सेवा में उपस्थित होते हैं। सर्वथा नीरोग, स्वस्थ तथा ज्ञान सम्पन्न होते हुए हम दीर्घ आयु को प्राप्त हों और तेरी तथा धर्म की रक्षा के लिये आवश्यकता पड़ने पर अपने प्राणों की बलि देने को भी तैयार रहें।

इसके पश्चात् मिलकर निम्न लिखित कविता का गान किया जावे —

धर्म वीरों के प्रति श्रद्धांजलि

श्रद्धाञ्जलि अर्पण करते हम, करके उन वीरों का मान ।
धार्मिक स्वतन्त्रता पाने को, किया जिन्होंने निज बलिदान ॥
परिवारों के सुख को त्यागा, युवक अनेकों वीरों ने ।
कष्ट अनेकों सहन किये पर, धर्म न छोड़ा वीरों ने ॥
ऐसे सभी धर्मवीरों के आगे सीस झुकाते हैं ।
उनके उत्तम गुण गण को हम, निज जीवन में लाते हैं ॥
अमर रहेगा नाम जगत में, इन वीरों का निश्चय से ।
उनका स्मरण बनायेगा फिर, वीर जाति को निर्भय से ॥
करें कृपा प्रभु आर्य जाति में, कोटि कोटि हों ऐसे वीर ।
धर्म देशहित जोकि खुशी से प्राणों की आहुति दें धीर ॥
जगदीश को साक्षि जानकर, यही प्रतिज्ञा करते हैं ।
इन वीरों के चरण चिन्ह पर, चलने का व्रत धरते हैं ॥
सर्व शक्तिमय दें बल ऐसा, धीर वीर सब आर्य बनें ।
पर उपकार परायण निशि दिन, शुभ गुण धारी आर्य बनें ॥
(ध० दे०)

धर्मवीर नामावली

श्यामलाल जी महादेव जी, रामा जी श्री परमानन्द ।
माधव राव विष्णु मल्लावन्दा, श्री स्वामी कल्याणानन्द ॥
स्वामी सत्यानन्द महाशय मलखाना श्री वेद प्रकाश ।
धर्म प्रकाश रामनाथ जी, पाण्डुरङ्ग श्री शांति प्रकाश ॥
पुरुषोत्तम जी ज्ञानी लक्ष्मण राव सुनहरा वेंकट राव ।
भक्त अरूड़ा मातुराम जी नन्हूसिंह श्री गोविन्द राव ॥
चपलसिंह जी रतीराम जी, मान्य सदाशिव ताराचन्द ।
श्रीयुत छोटेलाल अशर्फीलाल तथा श्री फकीरचन्द ॥
माणिकराव भीमराव जी, महादेव श्री अर्जुनसिंह ।
सत्यनारायण, वैजनाथ ब्रह्मचारी दयानन्द नरसिंह ।
राधाकृष्ण सरीखे निर्भय अमर हुए इन वीरों का ।
स्मरण करें विजयोत्सव के दिन, सब ही वीरों वीरों का ।

कविराज हरनामदास बी० ए०
मन्त्री
सार्वदेशिक आ० प्र० सभा

संस्कृत पठन पाठन की रीति और व्यवस्था

(ले० श्री प्रो० आत्मानन्द जी विद्यालंकार करौल बाग देहली)

हमारा भारतवर्ष बहुत बड़ा देश है। यहाँ अनेक भाषाएँ व्यवहृत होती हैं। द्राविड़ भाषाओं को छोड़कर प्रायः सभी मुख्य मुख्य भाषाएँ संस्कृत और वैदिक भाषा की सन्तान हैं। प्रचलित द्राविड़ भाषाओं में भी (प्रान्थिक भाषा में) संस्कृत शब्दों की पर्याप्त मात्रा है। शब्द राशि के अतिरिक्त भावराशि, विचारराशि, शैली, पारिभाषिक शब्द आदि को तो भारत की भाषाएँ वैदिक वाङ्मय और संस्कृत वाङ्मय से ही ग्रहण करती हैं। वैदिक वाङ्मय और संस्कृत वाङ्मय से अपने अनेक रूप धारण करती हुई भारत की प्राकृत भाषाएँ मध्यकाल की अव्यवस्था में से गुजर कर आजकल अपने नये रूप हिन्दी, बंगला, गुजराती, मराठी आदि में परिष्कृत और सुव्यवस्थित हो रही हैं। यह सौभाग्य की बात है। परन्तु वैदिक वाङ्मय और संस्कृत वाङ्मय से हमारा नाता प्रत्यक्ष और परोक्षरूप में साक्षात् या परम्परया, लगा हुआ है। यह हमारे जीवन का अंग है। इसलिए साधारण जनता की मूक श्रद्धा और ब्राह्मण और सन्यासियों की श्रद्धा और जागरूक कर्मठता ने इन दोनों वाङ्मयों को सुरक्षित रक्खा है। माना कि बहुत सा भाग हमारी अशक्ति, प्रमाद और आलस्य के कारण नष्ट भी हो गया परन्तु सारे भूमण्डल के पुस्तकालयों की इन वाङ्मयों की ग्रन्थराशि पर दृष्टिपात करने से आश्चर्य, रोमाञ्च और हर्ष होता है। पिछले लगभग १७० वर्षों में हमारे वाङ्मय और हमारी संस्कृति की रक्षा में भूमण्डल के नाना देशों के विद्वानों ने महान् पुरुषार्थ किया है। जब अपने देशवासियों से भी बढ़कर हम अनेक देशों, विशेषतया यूरोप के अनेक-देशों के विद्वानों को भारतीय वाङ्मय और संस्कृति के अनुशीलन और अन्वेषणा में तत्पर पाते हैं, हमारा मस्तक इन विद्वानों के सामने कभी हर्ष से, कभी कृतज्ञता से और कभी लज्जा से झुक जाता है। पिछली शताब्दी की गवेषणा और ज्ञानवृद्धि ने भूमण्डल के ज्ञान के एकीकरण और तुलनात्मक अध्ययन में बड़ी सहायता दी है। इसलिए वैदिक वाङ्मय संस्कृत-वाङ्मय और भारतीय संस्कृति के अनेक तत्त्व भूमण्डल के विद्वानों को सार्वभौम और समान प्रतीत होते हैं। सार्वभौम तत्त्व तो स्वभावतः भिन्नता में एकत्व स्थापित करते हैं। कभी कभी ऐसा प्रतीत होता है कि यह भूमण्डल एक बड़ा परिवार है और भारत उसमें वृद्ध पुरुष है। इस वृद्ध भारत की भाषाओं, भावों, विचारों, अनुभूतियों, परम्पराओं और उच्च आध्यात्मिक कोश को सीखने के लिए दूसरे देश इसे घेर कर बैठे हैं। अपने देश में भी ऊपर ऊपर से देखने से ऐसा प्रतीत होता है कि हरकोई, अपने अन्न, वस्त्र गृह, विनोद, औषध, व्यायाम आदि= अर्थात् अर्थ और काम इन दो पुरुषार्थों के योगक्षेम में प्रवृत्त है। परन्तु जरा गहरा देखने से स्पष्ट ज्ञात हो जाता है कि भारतीय जनता का पर्याप्तभाग अब भी, धर्म और मोक्ष के प्रति और जीवन की सार मूलभूत आवश्यकताओं के प्रति सावधान है। माना देशभेद, कालभेद और पात्रभेद से मात्राभेद और रुचिभेद अवश्य है। इन तत्त्वों में संस्कृत वाङ्मय और संस्कृत भाषा भी है।

२. संस्कृत वाङ्मय और संस्कृत भाषा के पठन पाठन और गवेषणा के विषय में हमारे देश

में कैसी स्थिति है उस पर गम्भीरता से विचार होना ही चाहिए। हमें इस विषय में जागरूक रहना चाहिए। दीर्घकाल की परम्परा मे ब्राह्मण और सन्यासी लोग इसके पठनपाठन मे तत्पर हैं। कोई लगभग १७० वष से इनसे भिन्न वर्ग भी और भारत से भिन्न देशों के लोग भी इसका अनुशीलन करने लगे हैं। हमारे देश के प्रचलित नये ढग के स्कूलों और कालिजों में भा सस्कृत का पठनपाठन हो रहा है। पिछले लगभग ५० वर्ष से गुरुकुल ऋषिकुल,विश्वभारती और विद्यापीठ आदि सस्थाएँ नये उत्साह से सस्कृत के अनुशीलन में प्रवृत्त हैं। यूरोपियन, अमेरिकन और चीनी जापानी आदि लोग भी सस्कृत के अनुशीलन में सलग्न हैं। स्थूलरूप से हम इन पद्धतियों को यों बाँट लेते हैं

(१) परम्परागत परिपाटी
(२) स्कूलों और कालिजा की परिपाटी
(३) गुरुकुल परिपाटी
(४) यूरोपियन परिपाटी

३ परम्परागत परिपाटी ही प्रधान परिपाटी है। इसी परिपाटी से भारत में लाखों विद्यार्थी सस्कृत का अभ्यास करते हैं इस शैली में अनेक गुण हैं। श्रद्धा, तन्मयता, अध्यवसाय, त्याग, सयम, गुरुसेवा, बुद्धि के गुण, शुश्रूषा, श्रवण, ग्रहण, धारण, ऊहा पोह अर्थविज्ञान और तत्त्व ज्ञान आदि का प्रयोग यह परम्परा करती है। इन्हीं गुणों के कारण ही सस्कृत भाषा जीवित है आगे भी यही गुण इस भाषा और वाङ्मय को जीवित रखेंगे। परन्तु अनेक कारणों से इस शैली से अभीष्ट उन्नति नहीं हो रही। इसलिए इस शैली में, देश, काल, पात्र के अनुसार और भाषा शिक्षण के अनेक सिद्धान्तों और अनुभवों के आधार पर परिवर्तन होते रहना चाहिए। पुराने पण्डितों को नई नई पद्धतियां और भाषा-शिक्षण के सिद्धान्त अवश्य जानने चाहिये।

४ पहला परिवर्तन व्याकरण की पठनपाठन की परिपाटी में होना चाहिए। सस्कृत वाङ्मय और सस्कृत भाषा अगी वस्तु हैं व्याकरण उस का अग है। भाषा अधिकृत भाषण श्रवण से आती है। व्याकरण ज्ञात भाषा का मुख्यतया शोधक है। बोलते सुनते जो भाषा आ जावे व्याकरण को उसे शुद्ध करते जाना चाहिए। ठीक है व्याकरण शुद्धि के साथ साथ भाषा वृद्धि भी करता है और मूलभूतनियमों को भी सिखाता है। भाषण द्वारा विद्यालय मे सस्कृत का वातावरण उत्पन्न करके चित्रों सूचियों, विषय चक्रों द्वारा सस्कृत वाङ्मय मे ओतप्रोत सस्कृति का वातावरण उपस्थित करके, स्फूर्ति और कुशलता से आधुनिक साधनों का उपयोग लेकर यदि अध्यापक लोग उपाय कुशल होकर सस्कृत पढावे तो हम जल्दी और अच्छी सस्कृत सीख सकते हैं। सस्कृत शिक्षण में रस आ सकता है।

पहले लघुकौमुदी को मुख्यता देकर, भाषा पुस्तकों, रीडरों से सस्कृत न पढाना और हितोपदेश पचतन्त्र या रघुवशादि काव्यों में सहसा प्रवेश करना ठीक नहीं। माना रीडरो और प्रारम्भिक पुस्तकों का प्रचार बढता जाता है परन्तु पुरातन ढग के पण्डित लोग रीडरों का समुचित उपयोग नहीं लेते। शनै शनै व्याकरण की मात्रा उत्तरोत्तर बढाते जाना चाहिए।

पहले भाषा और सरल वर्णनात्मक और कथात्मक साहित्य का अधिक प्रयोग करना चाहिये। विद्यालयविभाग में प्रथम आठ वर्ष बाद व्याकरण साहित्य दोनों लगभग समान हो जावें। यह प्रथमा स्थिति समझिए। इसमें मध्य कौमुदी जितना व्याकरण आ जाना चाहिए।

इसमे आगे दो वर्ष सब विषयों का सामान्यज्ञान यह मध्यमा स्थिति हुई। उत्तमा स्थिति में एक विषय का गहन पाण्डित्य य ध्येय होना चाहिए।

(५) प्रथमा की आठ श्रेणियों में भी व्याकरण के भिन्न २ अंगों और उनकी शैलियों पर विचार करना चाहिए। पाठ्यवस्तु पर आधिपत्य करके अध्यापक, कृष्णपट्ट की सहायता से गतिशील होकर यह समझ कर कि कृतयुग गतिशील होता है, त्रेता उद्यत, द्वापर जाग्रत् और कलियुग प्रसुप्त, अपने को कृतयुगी बना कर पढ़ावे।

(अ) पहले एकतिङ् वाक्य सिखावे

(आ) पहले कर्तृवाच्य फिर कर्मवाच्य और भाववाच्य

(इ) पहले अजन्त शब्द फिर हलन्त शब्द

(ई) पहले, भ्वादि, दिवादि, तुदादि और चुरादि गण, फिर अदादि, जुहोत्यादि स्वादि, रुधादि तनादि, और क्र्यादिगण

(उ) पहले परस्मैपद और पीछे आत्मनेपद

(ऊ) पहले लट् लोट् लङ् विधिलिङ् और लृट् लकार, पीछे, लिट्, लुट् आशीर्लिङ् लुङ् और लृङ् लकार

(ऋ) पहले छोटे वाक्य फिर बड़े वाक्य

(ॠ)आरम्भ के पाठ प्रतिदिन के व्यवहार की वस्तुओं पर हों, अमरकोश के अनेक वर्ग, पर्याय शब्दों में और इस दिशा में अच्छी सहायता दे सकते हैं। आधुनिक अंग्रेजी और प्रान्तीय-भाषाओं की रीडरें भी उत्तरोत्तर विकास में अच्छा मार्गदर्शन कराती हैं विशेषतया Basic English सरल पाठों के बाद, सरल कहानियाँ। फिर हितोपदेश पञ्चतन्त्र की सरलीकृत कहानियाँ। जैसे ईश्वरचन्द्र विद्यासागर जी के ऋजु पाठों में है। फिर यथास्थित हितोपदेश पञ्चतन्त्र, रामायण, महाभारत पुराणादि में से सरल-प्रकरण, और आख्यान उपाख्यान। बाद में उत्तम काव्य नाटकादि

(ए) पहले सन्धिरहित पाठ फिर सन्धिसहित पाठ

(ऐ विद्यार्थियों में कुछ स्पर्धा पैदा करना। पुरस्कार भी समय समय पर, देते रहना।

(ओ)सन्धि, नामरूप, सर्वनाम कारक, समास, क्रिया,आदि को यथासम्भव चार्टों चित्रोंसूचियों चक्रों,तालिकाओं में बद्ध करके प्रत्यक्ष कराना और श्रेणी में लटकाना,

(औ)प्रक्रिया शैली, और पाणिनीय अष्टाध्यायी दोनों शैलियों को मिला कर पढ़ाना,। मूल अष्टाध्यायी अवश्यकण्ठस्थ कराना। मूलभूत आधारभूत प्रमेय, सूत्रों द्वारा कारिकाओं द्वारा, श्लोकों द्वारा ही कण्ठस्थ किया जा सकता है। कण्ठस्थ वस्तु को समझना और समझाना आसान है। बार बार पुस्तक का आश्रय नहीं लेना पड़ता और गुरु और शिष्य दोनो की आत्म-विश्वास और आत्मावलम्बन की भावना बढ़ती है। मूल वेद मंत्रों का कण्ठस्थ करना भी बाद में अर्थज्ञान में परम सहायक है।

(क) व्याकरण के अध्यापक ओर साहित्य के अध्यापक का परस्पर सहयोग। व्याकरण का अध्यापक साहित्य ग्रन्थ में से नियमों के लिये उदाहरण लेता जावे। साहित्य का अध्यापक साहित्य पढ़ाते समय व्याकरण के सूत्रों में स्थितनियमों को प्रतिदिन के साहित्य में विनियुक्त हुआ दिखावे। दोनो लवकुश

की तरह एक चित्त होकर पढावें ।

(ख) प्रान्तीयभाषा के अध्यापक से मिलकर प्रान्तीयभाषा और संस्कृत भाषा के समान तत्त्व की सूची बनाले । भाषाओं के अध्यापक समानतत्त्व अपने अपने पाठों में दर्शाते रहें । जिससे विद्यार्थी यह समझें कि प्रातीय भाषा और संस्कृत भाषा में बहुत साम्य है । दोनों भाषाएँ परस्पर वृद्धि कर सकती हैं ।

(ग) भाषा और अनुवाद में काम आने वाले नियमों को कारिका बद्ध करके स्मरण कराना । श्रेणी मे इन कारिकाओं का इकट्ठे उच्चारण और गायन ।

(घ) सुभाषित श्लोक अवश्य कण्ठस्थ कराना । वेद के वे सरल मंत्र जिनका लौकिक संस्कृत से बहुत साम्य है कण्ठस्थ कराना ।

(ङ) जीवन के उपयोगी, वेदमंत्रों श्लोकादि को वेद, ब्राह्मण, उपनिषद्, मनुस्मृति, आयुर्वेद आदि से लेकर कण्ठस्थ करवाना

(च) छात्रों में, इन सुभाषितों, सूत्रों, श्लोकों, का परस्पर शास्त्रार्थ और प्रतियोगिता । एक ही श्रेणी में, भिन्न २ श्रेणियों मे, और भिन्न २ विद्यालयों में ।

(छ) प्रत्येक विद्यालय के पुस्तकालय में, नवीन संस्कृत कोश, आपटे आदि के, रामकोश, पद्मचन्द्रकोश और अमरकोश आदि को विद्यार्थियों के लिए सुलभ कर देना । वे जब चाहे कोश देखते रहे ।

(ज) संस्कृत गोष्ठी, संस्कृत सभाएँ, संस्कृत की हस्तलिखित पत्रिका, और भारत के भिन्न २ स्थानों से निकल रही २० से अधिक संस्कृत पत्रिकाओं में से कुछेक मगा कर विद्यालय के पुस्तकालय में रखना

(झ) संस्कृत भाषा में अनेक शास्त्रों की संज्ञा-परिभाषा शब्दों की सूची को अर्थ सहित चार्टों मे लिखकर भवन में लटकाना । जिससे विद्यार्थी अनायास ही शास्त्रीय शब्दों को जान जावें ।

(ञ) वर्णोच्चारणशिक्षा अर्थात् शिक्षा नाम के वेदाग को प्रयोग द्वारा पढाना । ज्ञात रहे यह शास्त्र और वेदाग स्वाभाविक, घना, निर्दोष और निर्विवाद और सार्वभौम है । अपनी इस बहुमूल्य सम्पत्ति का आदर पण्डित लोग भी यथार्थ नहीं करते । दूसरे देशों की भाषाओं में ऐसा परिष्कृत शिक्षा शास्त्र नहीं है ।

(ट) यज्ञपात्र,मुख्य २ अन्न, शाक फल, रस, ओषधि, खनिज आदि के नाम, गुण सहित वस्तुएँ शीशियों मे सूक्ष्म रूप मे रख कर पुस्तकालय या अद्भुतालय मे रखना । हम विज्ञान सिखाने के अपने ढग आविष्कार कर सकने हैं । पण्डित लोगों के पास भी मूलभूत विज्ञान की बहुत सी सामग्री वर्तमान है । उस सामग्री के सग्रह, प्रदर्शन और शिक्षण मे हम शिथिल हैं । अन्वय और व्यतिरेक द्वारा भारतीय शास्त्रों मे सैंकड़ो नियम बताये गये हैं । वे वैज्ञानिक रीति से सिद्ध किये जा सकते हैं । आधुनिक विज्ञान अपने शास्त्रों के सैंकड़ों नियमों को अन्वय-व्यतिरेक द्वारा परीक्षण करके निकालता है । इस प्रकार विज्ञान सार्वकालिक और सार्वभौम है ।

(ठ) धातुपाठ का पूरा उपयोग लेना । २००० से अधिक धातुएँ है संस्कृत भाषा की शब्द प्रभूतराशि धातुज है । संस्कृत भाषा की यह विशेषता है । तिङन्त, और कृदन्त शब्द और उणादि शब्द द्वारा हमारा ज्ञान बहुत

बढ़ जाता है। छात्र को यदि धातुपाठ पर आधिपत्य हो जावे तो अनायास ही वह शब्द प्रयोग कर लेता है। धातुपाठ की धातुएं भिन्न २ प्रान्तों में प्रदेशों में अपभ्रंश रूप में प्रयुक्त होती हैं। उन उन प्रान्तों में वे अपभ्रंश धातुएं अपनी मूल शुद्ध धातुओं को आसानी से समझा देती हैं। पतञ्जलि मुनि ने भिन्न २ धातुएं, भिन्न २ देशों में कैसे प्रयुक्त होती हैं यह दिखाया है। मुलतानी, पंजाबी, हिन्दी आदि में सैंकड़ों शब्द तद्भव हैं, परस्पर भिन्न दीखते हैं परन्तु उनका मूल संस्कृत में है।

(ड) जिन धातुओं के तिङन्त रूप कठिन हो वहां कृदन्त, शतृ, शानच्, क्त, क्तवतु, क्त्वा, ल्युट्, क्तिन्, तृन्, तृच् तव्य अनीयर यत्, घञ् ण्वुल्, णिनि, आदि में रूप बना कर यथा स्थान 'कृ' या 'भू' धातु का प्रयोग कर संस्कृत बोल या लिख सकते हैं। माना इस में अशक्ति दीखेगी परन्तु भाषा अशुद्ध तो न होगी।

(ढ) मुख्य मुख्य ऋषियों मुनियों, आचार्यों, राजर्षियों, ग्रन्थकारों, ग्रन्थों की नाम सूची लिखवा कर कमरे में लटकाना। विद्यार्थी कौतूहल और स्पर्धा द्वारा उन्हे अनायास ही स्मरण कर लेंगे।

(ण) संस्कृत के अध्यापक अपने छात्रों के सामने कोई न कोई ग्रन्थ अनुशीलन करते हुए दिखाई दें। इससे विद्यार्थी यह समझेंगे हमारे गुरु जी भी अपनी विद्या वृद्धि करते रहते हैं। अभी वे सर्वज्ञ नहीं बने।

(त) दृष्टान्तों द्वारा सिद्धान्त और नियम पर पहुंचना लक्ष्य से लक्षण की ओर विशेष से सामान्य की ओर, व्यक्त से अव्यक्त की ओर, मूर्त से अमूर्त की ओर प्रत्यक्ष से परोक्ष की ओर भाषण से लेख की ओर, स्थूल से सूक्ष्म की ओर ले जाने की पद्धति से अध्यापक को पढ़ाना चाहिए। यूरोप अमेरिका की नई शिक्षण पद्धतियों और हमारी पुरातन औपनिषद, और संन्यासी और फकीरों और सन्तों की शैली में स्थान स्थान पर उपाय कुशलता प्रकट होती है।

(६) इस प्रकार पहले आठ वर्षों में जो विद्यालय मुख्यतया संस्कृत विद्यालय हैं और आधुनिक विषयों के साथ साथ लगभग आधा या आधे से कुछ अधिक समय संस्कृत को देना चाहते हैं उन्हें इन और ऐसे दूसरे निर्देशों और सुझावों को सामने रख कर संस्कृत पढ़नी पढ़ानी चाहिए। इस संस्कृत विद्यालय का मुख्याध्यापक संस्कृत का आचार्य हो और साथ बी० टी० या एल० टी पास हो। वह स्वयं पाठन का काम चाहे बहुत न करे परन्तु अपने अध्यापकों और छात्रों को प्रगतिशील और रसिक बनाये रक्खे। विद्यालय की गोष्ठियों, शास्त्रार्थों और प्रतियोगिताओं में स्वयं भाग लें। ब्राह्मणों के परम्परागत, सहजात ऊहा, विनय, गुरुभक्ति, अध्यव साय, आदि गुणों के साथ जब आधुनिक गुण, प्रगति, उत्साह, संघर्ष प्रयोग शाला, चार्ट, चित्र मैप, देशदेशान्तर भ्रमण, पुस्तकालय, वाचनालय, संग्रहालय, खोज आदि का मेल हो तो सोने में सुगन्ध आ जाती है। अध्यापक और छात्र निर्भय और उपाय कुशल हो जाते हैं।

(७) प्रोजेक्ट मेथड, डाइरेक्ट मेथड, बुनियादी शिक्षा, नई तालीम, फिल्म, आदि उपाय जहां तक सात्त्विक हों प्रयुक्त होने चाहिएं। पंजाब और महाराष्ट्र में संस्कृत शिक्षण की ट्रेनिंग दी जाती रही है। दूसरे प्रान्तों में भी संस्कृत शिक्षण की ट्रेनिंग अनिवार्य होनी

चाहिए। काशी का संस्कृत कालिज विश्व विद्यालय बन रहा है। इसे संस्कृत शिक्षण पद्धति के परीक्षण का भी केन्द्र बनाना चाहिए। पण्डितों की आत्महीनता कम होकर उनके अन्दर आत्म-सम्मान बढ़ेगा। दूसरे अध्यापकों की तरह वे भी स्वच्छ होकर पढ़ा सकेंगे।

(८) अब तक हमने पुरातन पद्धति से पढ़ने वाले व्यष्टि-पंडित की गृह-पाठशाला या समष्टि विद्यालय की प्रारम्भ की आठ श्रेणियों में संस्कृत-पठन-पाठन-परिपाटी के विषय में कुछ चर्चा की है। अब स्कूलों मे संस्कृत की प्रारंभिक शिक्षा-अर्थात् स्कूल की छटी, या सातवीं से आरम्भ कर दसवीं श्रेणी तक पढ़ाई जाने वाली संस्कृत की चर्चा करनी चाहिए। स्कूलों की इस संस्कृत का उद्देश्य ही भिन्न है। संस्कृत का यह विषय सब विषयों मे गौणतम है। भाषाओं में भी मातृभाषा और अंग्रेजी के मुकाबले में इसका स्थान नीच तम है। जनता की उपेक्षा, शिक्षा विभाग की उपेक्षा, आग्लराज्य की उपेक्षा, सदियों की दासता के कारण, स्कूलों के मुख्याध्यापक और इतर अध्यापक और स्वयं संस्कृत का अध्यपक भी विद्यालय में अपनी स्थिति को और अपनी संस्कृत भाषा की स्थिति को अधम पाता है। इस परम्परा से आई स्थिति को एकदम बदलना दुष्कर है। आर्थिक क्षेत्र में संघर्ष इतना अधिक है, अंग्रेजी ढंग से शिक्षित जनता की रुचि इतनी विकृत है, शहरों का वातावरण इतना दूषित है कि संस्कृत भाषा, उसका वाङ्मय, उसकी उपयोगिता, और संस्कृताध्यापक इनमें से किसी के प्रति भी जनता का आदर नहीं बढ़ता। न मालूम कोई दिव्य शक्ति और इस भाषा की अपनी विभूति ही इसकी रक्षा करती रही है। विज्ञान का युग भी हमें पीछे धकेल रहा है। इसलिए विद्यालय के मुख्याध्यापकों को दृढ़ होकर इसके उद्धार और उन्नति में सदा जागरूक और बद्ध-परिकर रहना चाहिए। न मालूम किसका विरोध और किसकी उपेक्षा, प्रमाद और आलस्य संस्कृत की स्थिति को और भी खराब करदे।

स्कूलों के ४, ५ वर्षों मे विद्यार्थी कुछ संस्कृत पढ़ता है। इसमें पहले दो वर्ष लगभग वह दो तीन रीडरे पढ़ता है। फिर, हितोपदेश, पञ्चतन्त्र, रामायण, महाभारत, पुराण, भोज प्रबन्ध, वेतालपञ्चविंशति का, शुकसप्तति आदि से सकल, या खण्ड रूप प्रकरणों कथाओं या आख्यानों के संग्रह ग्रन्थों को पढ़ता है। ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, रामकृष्ण भण्डार कर आदि से लेकर विनायक पाण्डुरंग बोकिल और सातवलेकर तक विद्वान् ऐसी रीडरे हमें देते रहे हैं इन और ऐसी रीडरों को प्रचलित हुए लगभग १०० वर्ष हो चले। इतना बड़ा भारत वर्ष, उसमें इतने प्रान्त, इन प्रान्तों में इतने विद्यालय, इतने संस्कत रीडर रचयिता—इनके कारण संघर्ष, प्रगति, द्रव्य लोभ के कारण संस्कृत की रीडरों की बड़ी भारी सख्या भारत में विद्यमान है। आजकल ये रीडरें चित्रित, क्रम विकसित और सुप्रकाशित, और सुमुद्रित होती जाती हैं इंग्लैंड आदि देशों में भी अपने अपने ढग की संस्कृत रीडरे बनती रही हैं। इन रीडरों के सम्बन्ध में एक मजेदार बात यह कि ये रीडरें नलोपाख्यान से आरम्भ होती हैं। इस विषय में यह भी सुना जाता है कि यूरोप वासियों की लोक यात्रा का प्रकार भी नल दम्यन्ती के जीवन जैसा है इसलिए स्वभव की समानता से उन्हें नलोपाख्यान बड़ा प्रिय और स्वाभाविक लगता है। उनकी दृष्टि में यह आख्यान Romantic भी है। संसार में प्रचलित इन रीडरों का ही यदि कोई संग्रह करे तो एक छोटा सा पुस्तकालय बन जावे। पिछले १०० वर्ष से संस्कृत भाषा के

अनुशीलन विषय में जागृति आने से प्रसिद्ध लोगों ने भी इसमें हाथ लगाया। ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, रामकृष्ण भाण्डारकर, दयानन्द सरस्वती आदि इन में मुख्य हैं।

(९) इन परिस्थितियों का निष्कर्ष यह है कि देश-काल-पात्र के भेद से पहले चार पांच वर्ष के लिये पचासों रीडरें आपको समूचे भारतवर्ष में मिलेंगी। काश्मीर से कन्या-कुमारी तक और पुरी से द्वारिका तक समूचे भारत में स्कूल कालिज हैं। अनेक ट्रेनिङ्ग कालिजों में संस्कृत शिक्षण पद्धति भी एक विषय है। यूरोपीय देशों में भी पुरातन भाषाओं ग्रीक-लेटिन आदि की शिक्षा-पद्धति पर सिद्धांत रूप से ग्रन्थ-उपग्रन्थ वर्तमान हैं। हमारे देश में भी पाण्डुरङ्ग, वोकील और कोल्हापुर के जी० एस० हुपरीकर और प्रो० गौरीशंकर आदि ने भी संस्कृत शिक्षण की पद्धति पर वैज्ञानिक रीति से विचार किया है। अब पुरातन रीति के पण्डित, गुरुकुलों के शिक्षक कालिजों और स्कूलों के शिक्षक और यूरोप के संस्कृत के शिक्षक स्पष्ट रूप से अपने अनुभव द्वारा संस्कृत शिक्षण के कुछेक स्थिर नियम निकाल सकते हैं। उन्हें ग्रन्थ रूप में दर्शा सकते हैं।

(१०) स्कूल और कालिजों के लिये कुछेक निर्देश निम्नलिखित हैं—

(१) संस्कृत अध्यापक कम से कम शास्त्री ट्रेंड हों।

(२) दूसरे अध्यापकों के समान उन्हें वेतन मिले।

(३) स्कूल का मुख्याध्यापक संस्कृतज्ञ हो।

(४) सुभाषितों, सूत्रों, श्लोकों, मन्त्रों, चार्टों, मैपों का पूरा उपयोग हो।

(५) मातृभाषा के अध्यापक के साथ मिल कर तुलनात्मक अध्ययन हो।

(६) व्याकरण को बुद्धिपूर्वक सरस रीति से वे पढ़ावें।

(७) अपने विषय का स्वयं मान करें और करावें।

(८) स्वयं संस्कृत में कुछ पढ़ते रहें।

(९) संस्कृत सम्भाषण में पटु हों।

(१०) Direct Method का पूरा उपयोग लें।

(११) स्कूल में चार पांच वर्ष एक ही अध्यापक संस्कृत पढ़ावे। प्रमेयज्ञान की मात्रा प्रत्येक वर्ष थोड़ी है। इसलिए विद्यार्थी की योग्यता और त्रुटियों को वही अध्यापक अच्छी तरह जान सकता है। लगातार पढ़ाने से विद्यार्थियों और अध्यापक में ममता भी हो जायेगी। इसलिये ममता और पात्रों की योग्यता का ज्ञान कर वही अध्यापक चार पांच वर्ष पढ़ाता हुआ विद्यार्थियों को कुछ न कुछ बना देगा। अध्यापकों के बदलने से गहरा न गया हुआ ज्ञान उखड़ जायगा और चार पांच वर्ष में पढ़ी हुई संस्कृत कुछ देर बाद भूल जावेगी। बहुत से स्कूलों और कालिजों में छात्र उपेक्षा से, उदासीनता से पढ़ी संस्कृत को जल्दी भूल जाते हैं। स्थिर अध्यापक द्वारा पढ़ाई हुई संस्कृत कालिज में भी उपयुक्त हो सकेगी। कालिज में भी यदि वह संस्कृत पढ़ेगा और वहां भी यदि उसे एक उत्तम स्थिर अध्यापक मिलेगा तो वह विद्यार्थी सब मिल कर ८, ९ वर्ष थोड़ी थोड़ी संस्कृत पढ़कर उत्साहित रहेगा। पढ़ी हुई संस्कृत के आधार पर आगे संस्कृत वाङ्मय और वैदिक वाङ्मय का लाभ अपने पुरुषार्थ से और अनुवादों की सहायता से उठा सकेगा। यूरोप के विद्वान अध्यवसाय, स्थिरता, उत्तम पद्धति, उत्तम

अध्यापकों के कारण ही संस्कृतादि दुरूह भाषाओं मे अपना प्रवेश कर लेते हैं और सारी आयु कुछ न कुछ नया ज्ञान बढ़ाते बढाते प्रामाणिक महापण्डित तक बन जाते हैं और विशाल गवेषणा और संग्रह का कार्य कर जाते हैं।

हमारे यहां आरम्भ में शिथिलता आ जाने से बाद का बहुत सा परिश्रम व्यर्थ जाता है । ये छात्र अपनी विफलता के कारण अपनी सन्तान, पत्नी और मित्रों को संस्कृत पढने के लिए उत्साहित नहीं करते।

(११) इससे आगे आधुनिक गुरुकुलों की पद्धति है। पिछले ५०,६० वर्ष से आर्यसमाज ने, और उनके देखा देखी सनातन धर्मावलम्बी भाइयों ने गुरुकुल और ऋषिकुल खोले हैं । इन विद्यालयों में प्रथम द्वितीय श्रेणी से लेकर अन्तिम श्रेणी तक संस्कृत का अध्ययन होता है। माना इनमे आरम्भ से परम्परा से आये पण्डित ब्राह्मण ही कार्य करते रहे हैं परन्तु ब्राह्मणेतर जनता के उत्साह, प्रबन्ध, कुशलता और धनसंग्रह ने इन्हे बडे उत्साह से चलाया है। पिछले ६० वर्षों के काल में इन संस्थाओं ने संस्कृत के पठन पाठन मे अपना ही मार्ग अवलम्बन किया है। इनमें स्कूलों कालिजों की सी उपेक्षा, शिथिलता और उथलापन नहीं है । पुराने ढंग की पाठशालाओं मे इन गुरुकुलों की अपेक्षा श्रद्धा और व्याकरण की घनता अधिक है। परन्तु इन गुरुकुलों मे अर्थकरत्व की परवाह न करके रस-पूर्वक सब वर्गों को संस्कृत पढाने की एक परिपाटी चलती है । गुरुकुल कांगड़ी, गुरुकुल ज्वालापुर, गुरुकुल वृन्दावन, कन्या गुरुकुल देहरादून तथा इतर गुरुकुलों में भी संस्कृत के पठन पाठन में तारतम्य अवश्य है। परन्तु फिर भी प्राय इन सब में पहले दस बारह वर्षों में जितनी संस्कृत पढा देते हैं उसे सिर पर लादी, हठात् पढाई भाषा की तरह नहीं परन्तु बुद्धिपूर्वक, रसपूर्वक, पढी पढाई भाषा की तरह विद्यार्थी उसे ग्रहण करता है।

इन गुरुकुलों का मूल भी स्वामी दयानन्द जी सरस्वती द्वारा स्थापित वैदिक पाठशालाओं में देखना चाहिये। इन वैदिक पाठशालाओं का भी मूल स्वामी दयानन्द जी के अपने अनुभव और उनके गुरु स्वामी विरजानन्द जी की पाठशाला मे ढूंढना चाहिए । व्याकरण के सूर्य इस प्रज्ञाचक्षु, ८०, ९० वर्ष के, गुरुओ के गुरु, पितामह, प्रपितामह की पाठशाला मे दयानन्द जी ने पढा था । स्वामी दयानन्द जी ने देश की दशा देखकर संस्कृत की शिक्षा के लिए जगह जगह वैदिक पाठशाला खोलने की प्रेरणा की। बंगाल में गुरुदेव रवीन्द्रनाथ जी के पिता श्री देवेन्द्रनाथ जी को भी वैदिक पाठशाला खोलने की प्रेरणा की । अभी कुछ दिन हुए आगरे के महापण्डित हरिदत्त जी नवतीर्थ ने उत्तर प्रदेश मे स्वामी दयानन्द जी की प्रेरणा से स्थापित किसी संस्कृत पाठशाला के विषय में आर्यमित्र में एक लेख दिया था, इस प्रकार अपने जीवन काल मे, स्वामी विरजानन्द जी की पाठशाला मे पढकर स्वामी दयानन्द जी ने अनेक स्थानों पर पाठशाला खोलीं या खुलवाईं । सत्यार्थप्रकाश, संस्कारविधि, स्वामी जी के पत्र आदि से अपने ढंग की घनी पाठविधि का विवरण हमें मिलता है। इन्हीं विचारों और दृष्टान्तों की प्रेरणा से आर्यसमाज में, स्वामी दर्शनानन्द, स्वामी श्रद्धानन्द जी (महा० मुंशीराम जी) आदि ने स्थान स्थान पर वैदिक पाठशाला या गुरुकुल खोले। डी० ए० वी० कालिजों में पण्डित गुरुदत्त जी, महात्मा हंसराज जी आदि ने वैदिक श्रेणी आदि खोलने के

प्रवास भी किये थे। उपदेशक विद्यालय भी खोले गये।

तात्पर्य यह कि लगभग सन् १९०० में उत्तरीय भारत में यह विचार मध्यम श्रेणी की अंग्रेजी पढ़ी लिखी जनता में स्थिर होगया कि वर्तमान स्कूल कालिजों से भिन्न और संस्कृत पाठशालाओं से भिन्न अपने ढग के विद्यालय, गुरुकुल आदि चलाने चाहियें। अनादिकाल से चली आ रही ऋषि परम्परा, ब्राह्मण परम्परा, आचार्य परम्परा, गुरुपरम्परा के अनुसार समूचे देश में हजारों संस्कृत विद्या स्थान चले आ रहे हैं वास्तव में तो हमें उसे ही नमस्कार करना चाहिये। श्री विरजानन्द जी और श्री दयानन्द जी उसी परम्परा में हैं। भारत में जरा गहरी खोज करें, हजारों शुभ-परम्पराएँ हमारे सामने आ जाती हैं।

परन्तु सब वर्गों के बालक बालिका समान भाव से एक ही स्थान पर संस्कृत भाषा और वेदादि शास्त्र पढ़ें यह रीति पिछले ७० ८० वर्ष मे उत्तरीय भारत में आर्यसमाज ने नये ढंग से डाली है। परिणाम स्वरूप ६० लाख आर्यसमाजियों में अनुपात की दृष्टि से संस्कृतज्ञों की संख्या पर्याप्त है और इनके देखादेखी हिन्दुओं के इतर सम्प्रदायों में भी संस्कृत का प्रचार बढ़ गया है। स्कूलों और कालिजों में, और शास्त्रीय परीक्षाओं में पढ़ने वाले विद्यार्थी भी लाखों की संख्या में संस्कृतज्ञ हो गये हैं।

लेखक के अनुभव का आधार गुरुकुल कांगड़ी है इसलिए उसके अनुभव को आधार मान ये पंक्तियाँ लिखी जा रही हैं। दूसरे गुरुकुलों और ऋषिकुलों आदि संस्थाओं के अपने अपने अनुभव होंगे। उनके अनुभवों के आधार पर इससे जरा भिन्न लेख लिखे जा सकते हैं।

१२. श्री महात्मा मुंशीराम जी द्वारा उत्साहित अनेक विद्वान् ब्राह्मण पण्डितों ने गुरुकुल में अध्यापन आरम्भ किया। ब्राह्मणेतर छात्रों को संस्कृत पढ़ाने का यह नया उपक्रम था यद्यपि स्कूलों कालिजों में ब्राह्मणेतर छात्र थोड़ी बहुत संस्कृत सूँघते रहते थे। कांगड़ी गुरुकुल में अष्टाध्यायी काशिकाक्रम से, सिद्धान्त कौमुदी' क्रम से तथा वेदांग प्रकाशादि के क्रम से महाभाष्य के क्रम से समय समय पर पढ़ाई जाती रही है। संस्कृत के महाकाव्यों के खण्ड लेकर साहित्य का अध्ययन होता रहा। बाद में रीडरें और हितोपदेश पंचतन्त्रादि का उपयोग भी चला जो अब तक जारी है और शनैः शनैः अब एक स्थिर पाठ्य विषय पाठ्य पद्धति बन गई है। इस वर्ष तक आजकल हिन्दी, गणित, भूगोल, विज्ञान, आलेख्य, अंग्रेजी धर्मशिक्षा के अतिरिक्त संस्कृत व्याकरण, साहित्य, कुछ दर्शन, गीतादि की मात्रा पढ़ाना वास्तव में अध्यवसाय और साहस का कार्य है। बाहर के स्कूलों का सारा पाठ्य विषय पढ़ा कर साथ ही लगभग उससे आधा संस्कृत विषयक पाठ्य विषय भी इस गुरुकुल में दस वर्ष में पढ़ा देते हैं।

आज तक ६०० से अधिक स्नातक इस गुरुकुल से निकल चुके हैं। इनमें स्कूली विषयों से अतिरिक्त संस्कृत के अनेक विषयों के ज्ञाता इन स्नातकों का संस्कृत ज्ञान शास्त्रियों से कोई कम नहीं। बी० ए० लोग प्रायः नवीन विषय ही पढ़ते हैं। शास्त्री लोग प्रायः पुरातन विषय ही, दोनों का समुच्चय करके गुरुकुल का स्नातक बनता है। बाहर के व्यवहार में उसे शास्त्री, बी० ए० कह सकते हैं जो वह चौदह वर्ष की अवधि में बना है। संक्षेप से देखना चाहिए कि इस गुरुकुल पद्धति में संस्कृत पठनपाठन की दृष्टि से क्या गुण दोष हैं।

(क) गुण निम्नलिखित हैं —

(१) रसपूर्वक पढ़ना पढ़ाना। विद्यार्थियों को यह चिन्ता नहीं कि वे इस संस्कृत द्वारा धनोपार्जन करेंगे या नहीं।

(२) शब्दरूप, नामरूप आदि से व्याकरण आरम्भ करना

(३) व्याकरण का शनैः विकास

(४) बुद्धिपूर्वक पठनपाठन।

(५) सुभाषितों का पर्याप्त सख्या में कंठस्थ कराना

(६) आजकल व्याकरण की मात्रा का पहले से कम प्रयोग

(७) काव्य नाटकादि का अश्लील भाग निकाल कर पढ़ाना। अपनी क्रमिक पुस्तकें रचना

(८) संस्कृत सम्भाषण के लिए गोष्ठी, सभा, वार्षिकोत्सव का प्रबन्ध

(९) संस्कृत निष्ठ हिन्दी का प्रयोग। भाषाओं के सीखने के लिए सुन्दर आधार

(१०) संस्कृत शब्दों का वातावरण। संस्कृत के विकास के प्रभूत साधन और अवसर

(ख) दोष निम्नलिखित हैं—

(१) व्याकरण पढ़ाने में कुछ कुछ शिथिलता

(२) पाठन रीति को बदलते रहना

(३) अपने घने और दीर्घकालीन अनुभव और भिन्न २ काल की पद्धतियों का गहरा पर्यालोचन न करना

(४) संस्कृत अध्यापकों के शिक्षण(Training) का प्रबन्ध न करना

(५) अपने अनुभव के आधार पर उत्तम पाठ्य पुस्तकें पूरी तरह न तैयार करना

(६) पिछले पढ़े व्याकरण के प्रमेय की भिन्न २ काल की भूमिकाओं पर पंचम, अष्टम, दशम श्रेणी में पुनरावृत्ति और सिंहावलोकन न करना।

(७) जनता में बाहर हो रहे स्कूलों, कालिजों, और संस्कृत पाठशालाओं की पुस्तकों, अनुभवों और परिपाटियों से पूरा लाभ न उठाना

(८) विचारशील होने पर भी लगातार दस वर्षों में व्याकरण का पूरा पूरा उपयोग न लेना। छात्रों के हृदयों में व्याकरण और उसके नियमों का गहरा न पैठना

(ग) उन्नति के लिए कुछेक निर्देश

(१) स्नातकों के अन्दर प्रेरणा करना कि गृहस्थ जीवन में भी संस्कृत का पठनपाठन जारी रखें

(२) व्याकरण पढाने के समय का पूरा उपयोग, सिंहावलोकन और पुनरावृत्ति

(३) साहित्य और व्याकरण के अध्यापकों का परस्पर सहयोग और विचार विनिमय

(४) शिक्षण(Training) का प्रबन्ध Chart, चित्र, चक्रादि नये नये बनाते रहना।

(५) दूसरे विद्यालयों से स्पर्धा और प्रतियोगिता में वृद्धि

(६) संस्कृत कोशों का अधिक उपयोग

(७) अष्टाध्यायी क्रम और प्रक्रिया क्रम को अधिकाधिक समीप लाना और दोनों का यथायु, और यथा स्थान पूरा उपयोग।

(८) भारत की संस्कृत रीडरों को इकट्ठा कर उनमें से उत्तम चुनना या उनके उत्तम अंशों का अपनी रीडरों में समावेश

(९) दशरसप्रधान काव्यनाटकों पर ही आश्रय न लेना। वाङ्मय के दूसरे अंग दर्शन, ज्योतिष, आयुर्वेद, पुराण, भाष्य, धर्मशास्त्र आदि की ठोस संस्कृत से पूरा लाभ उठाना। स्थिर, शास्त्रीय, वस्तुप्रधान संस्कृत का प्रयोग। भावप्रधान, रसप्रधान, कल्पना-प्रधान, विशेषण बहुल, अलंकार बहुल

संस्कृत को कम कर, ज्ञान धन स्थिर, मिताक्षर, परिमार्जित संस्कृत का प्रयोग। जैसे योग का व्यासभाष्य, चाणक्यार्थ शास्त्र वाचस्पतिमिश्र, दुर्गाचार्य, उदयनाचार्य, दयानन्दाचार्य सायणाचार्य, शङ्कराचार्य वात्स्यायनाचार्य आदि की संस्कृत है। अर्थघन, ज्ञानघन, मिताक्षर, परिष्कृत संस्कृत का आदर अधिकाधिक होना चाहिये, अलंकृत, शब्दप्रधान, हल्की संस्कृत का कम।

१३. पुरातन पण्डितशैली, गुरुकुल शैली, स्कूल कालिजशैली और योरुपियनशैली—इन चारों शैलियों को निम्नलिखित विषयखण्डों में बाँट कर परखना चाहिये। भाषा का—

(क) समझना
(ख) पढ़ना
(ग) लिखना
(घ) बोलना
(ङ) अनुवाद
(च) लघुनिबन्ध
(छ) काव्यरचना
(ज) गोष्ठी में भाषण
(झ) शास्त्रार्थ
(ञ) जनता में भाषण
(ट) गवेषणा
(ठ) महापुस्तक रचना
(ड) भाषाओं का तुलनात्मक अध्ययन
(ढ) अध्यापन
(ण) इतर भाषाओं से ग्रन्थानुवाद

१४. समूची दृष्टि से देखने से प्रतीत होता है कि आजीवन संस्कृत को श्रद्धापूर्वक प्रयोग के करने में पुरातन परिपाटी के पण्डित श्रेष्ठ हैं। बिना किसी विशेष जिम्मेवारी के संस्कृत पढ़ने में गुरुकुल के विद्यार्थी १४ वर्ष संस्कृत का निश्चिन्त आनन्द लेते हैं। खोज करने और अपने पुरुषार्थ से पढ़ने पढ़ाने में योरुपियन श्रेष्ठ हैं। संस्कृतद्वारा धनोपार्जन में और स्कूली पुस्तक प्रणयनमें सरकारी युनिवर्सिटीयों के एम. ए. चतुरतम हैं। जनता में संस्कृत को लोकप्रिय बनाने की परिपाटी में गुरुकुलों की शैली अभी तक अच्छी प्रतीत होती है। समय, साधन और शैली का सदुपयोग योरुपियन ठीक लेते हैं। प्रचलित स्कूलों कालिजों में संस्कृत पठनपाठन का वातावरण जितना हल्का और तुच्छ है उसे देखकर सब को हँसी आती है। हाँ एम. ए. और गवेषणा कार्य में पर्याप्त गम्भीरता आ जाती है। परिश्रमी और प्रतिभाशाली एम. ए. और पी. एच डी लोगों में संकड़ों रत्न भी हैं। जहाँ इन्होंने गुरुमुख से पुराने ढङ्ग से भी संस्कृत पढ़ी है वहाँ तो सोने में सुगन्ध आ जाती है। परन्तु जो भाव, जो श्रद्धा, भारत के सच्चे तपस्वी महापण्डितों को देखकर होती है वह वर्णनातीत है।

१५. अब संस्कृत के उत्तम पण्डित और महा पण्डित बनने बनाने पर विचार करना चाहिए। पुराने ज़माने से हमारे महा पण्डितों को आचार्य भी कहते आए हैं। श्री पतञ्जलि मुनिपाणिनि को आचार्य नाम से याद करते है। श्री शङ्कराचार्य जी अपने भाष्यों में बादरायण, बादरि जैमिनि आदि को आचार्य नाम से पुकारते हैं। मध्यकाल में शंकराचार्य, रामानुजाचार्य मध्वाचार्य, उदयनाचार्य आदि बीसियों आचार्य हो गये हैं। हमारे देश में चिरकाल से महापण्डितों की परम्परा चली आ रही है। अभी समीपभूत में ही काशी के बालशास्त्री, विशुद्धानन्द जी, गुरु काशीनाथ जी, शिवकुमार जी आदि महा पण्डित हो गये हैं। दक्षिण में महाराष्ट्र में भी बीसियों महापण्डित सुने जाते हैं। अब भी यदि भारत के असली महामहोपाध्यायों और महापण्डितों की खोज की जाय तो भारतवर्ष में दो तीन सौ और योरुप अमेरिका चीन जापानादि

मे चालीस पचास महापण्डित मिल जावेंगे। क्या कोई केन्द्रीय सरकारी या गैर सरकारी संस्था इन महापण्डितों के विषय मे कुछ वस्तु समह करेगी? काम तो प्रदेश-शासनों और केन्द्रीय शासन दोनों का है। डा राधाकृष्णन् यदि इस काम को हाथ में ले तो दो मास मे सारी सामग्री इकट्ठी हो जावे। डा राजेन्द्रप्रसाद जी भी बड़े श्रद्धावान हैं उनके सकेत से भी यह काम हो सकता है। गुरुकुल कागड़ी, काशी विद्यापीठ, हिन्दू-विश्वविद्यालय, संस्कृतविश्वविद्यालय या डा० मङ्गलदेव शास्त्री आदि व्यक्ति यदि चाहे तो ज़रा से उद्योग से इस कार्य को कर सकते हैं। योरुप के वैज्ञानिकों और भारतवर्ष के महापण्डितों का जितना मान किया जाय थोड़ा है। यह महापण्डित कैसे बनता है जरा विचार करना चाहिए।

(१६) पहली बात श्रद्धा है। ब्राह्मण समाज और पण्डित समाज परम्परा द्वारा आगे आने चाहिये। मनुष्य वास्तव में सामाजिक प्राणी है। अकेले विद्वान् का फलना फूलना भी मुश्किल है। पण्डित भी समाज रूप में रह कर पाण्डित्य बढ़ा सकते हैं। इन्हीं पण्डितों में से ही महापण्डित बनते हैं। समूची जाति श्रद्धा, उत्साह-वृद्धि, मान, पूजा, योग, क्षेम द्वारा पण्डितों की रक्षा करती आई है। पण्डितों की परस्पर स्पर्द्धा से भी पाण्डित्य की वृद्धि होती है। पण्डित समाज चिरकाल से विद्या के दीप को जागरित और दीपित रखते आए हैं। सामान्य जनता इनकी जीविका और लोक-यात्रा के लिये प्रबन्ध करती आई है। बड़े बड़े राजा, सेठ और धनी लोग या गाव की पचायतें स्थान स्थान पर अक्षयनिधि कायम कर दें तो पण्डित व्यक्तिरूप से या एक सुसंगठित पाठशाला बना कर विद्यादान करते रहेगे। राजाश्रय से भी यह काम चलता रहा है और प्रजाश्रय से भी। जहा पण्डितों में से चुने जाकर महापण्डित मिलेंगे, वहा वे हमारे मान, पूजा और गर्व के पात्र बनेगे। दूर दूर तक ऐसे महापण्डितो की ख्याति होती है। दूर दूर से जनता ऐसे महा विद्वान् के दर्शन करने आती है।

अब तो अनेक शास्त्र सम्पन्न महा पण्डितों की परिपाटी कमजोर होती जाती है। दूसरे देशों के विद्वान् भी हमारे देश के महा प ण्डतों के सम्पर्क के लिए लालायित रहे हैं। उनके विशाल निर्मल, असंशय, गहन ज्ञान की प्रशसा और आदर करते आए हैं केवल ब्राह्मणों मे ही नहीं, चिरकाल से जैन और बौद्धों में भी महापण्डित हुए हैं। पिछले दो ढाई हजार वष पहले से दसवीं ग्यारवीं शताब्दी तक इन महापण्डितों का परस्पर सघर्ष चलता रहा है। एक ओर बौद्ध नागार्जुन, वसुबधु, दिङ्नाग, धर्मकीति, ज्ञानश्री, रत्नकीर्ति, दुर्वेकमिश्र और दूसरी ओर वात्स्यायन, उद्योतकर, वाचस्पतिमिश्र उदयन, वर्धमान आदि ब्राह्मण महापण्डित सघर्ष करते रहे हैं। इन सघर्षों का भी अपना इतिहास है। भारत का महापण्डित कितने अध्यवसाय और महाश्रम या के अध्यापन के बाद बनता है यह एक अलग विषय है। वशपरम्परा की भी इस में अपनी कारणता है। आर्य समाज मे अभी महापण्डित बनने बनाने की परम्परा नहीं चली। एक दो पीढ़ी बाद पुत्रपौत्र दूसरी ही वृत्ति ग्रहण करलेते हैं। भारतवष का "सनातनधर्म" इस विषय मे बड़ा दृढ़मूल है इसमे कई ऐसे वंश मिलेंगे जिसमे सैंकड़ों वर्षों से पण्डित परम्परा आरही है। वह भी बीसियों विघ्न बाधाओं का मुकाबला करके।

(१७) संस्कृत अध्ययन और अध्यापन की आधुनिक परिस्थिति को सामने रखकर सूत्ररूप में कुछ उपसंहार किया जा सकता है।

(१) भारत के अन्दर और बाहर सस्कृत का

अनुशीलन और गवेषणा पर्याप्त होती है।

(२) चिरकाल से यह परम्परा वर्तमान है। आधुनिक योरुप में तुलनात्मक भाषा शास्त्र संस्कृत के अनुशीलन से बना।

(३) गृहपाठशाला, लोकचालित पाठशाला, राजचालित पाठशाला, स्कूल, कालिज, गुरुकुल आदि में लाखों विद्यार्थी संस्कृत पढ़ते हैं।

(४) भारत की भाषाएँ अब भी इसे मातातुल्य समझकर इसे दोहती रहती हैं। जब जितना चाहे धातु, शब्द, अर्थ, शैली आदि दूध देती रहती है। संस्कृत को कामधेनु समझती हैं। माँ के घर से दहेज के अतिरिक्त कुछ न कुछ लेती ही रहती हैं।

(५) स्त्रियाँ भी और क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र आदि भी संस्कृत पढ़ते है।

(६) भारत में और बाहर भी उत्तमपुस्तकालय, संग्रहालय विद्यमान हैं और संसार में संस्कृत ग्रन्थों की विशाल अमुद्रित और मुद्रित ग्रन्थ राशि को संसार के संग्रही जानते हैं और इसके विषय में चर्चा भी करते रहते हैं।

(७) संस्कृत के व्याकरणऔर शिक्षांग की पूर्णता अब भी संसार प्रसिद्ध है।

(८) जैन समाज भी संस्कृत का रक्षक है। जैनयतियों को संस्कृत पठन की लालसा रहती है।

(९) सिक्खों में, निर्मला, उदासीनपन्थ आदि के लोग संस्कृत को बड़ी तन्मयता से पढ़ते हैं। भैनी साहब के गुरुरामसिंह जी के अनुयायी लोग भी।

(१०) खोज पत्रिकाएं और संस्कृत भाषा पत्रिकाएं पर्याप्त हैं।

(११) बालबोध पुस्तकों से लेकर क्रमबद्ध संस्कृत की पुस्तकें नई नई प्रकाशित होती जाती हैं।

(१२) मन्त्र, श्लोक, सुभाषित, लोकोक्तियों को कण्ठस्थ करके संस्कृत ज्ञान सुरक्षित भी रहता है और बढ़ता भी है।

(१३) संस्कृत शिक्षण की Training के लिये भी भारत में अच्छा प्रबन्ध होना चाहिये।

(१४) संस्कृत वाङ्मय के इतिहास को तत्कालीन सामाजिक पृष्ठभूमि के साथ पढ़ना चाहिए।

(१५) संस्कृत वाङ्मय राजाश्रय से भी पनपता रहा है। शास्त्र वाङ्मय प्रजाश्रय से भी।

(१६) उत्थानपतन के अनेकयुग और केन्द्र इस दीर्घकाल में मिलते हैं।

(१७) इसका अलंकार शास्त्र भी व्याकरण के तुल्य बड़ा प्रौढ़ है

(१८) ललित वाङ्मय से अलग वैज्ञानिक शास्त्रीय साहित्य भी इसमें पुष्कलमात्रा में वर्तमान है।

(१९) संस्कृतज्ञों की स्मृतिशक्ति और त्याग, तपस्या, अध्यवसाय और सात्विकता संसार की सम्पत्ति है केवल भारतवर्ष की ही नहीं।

(२०) इसके बहुत से नियम और प्रमेय संक्षिप्त, सूत्र, श्लोक, कारिकाओं द्वारा कण्ठस्थ किए जा सकते हैं। ग्रन्थों में स्थान स्थान पर वे नियम बिखरे पड़े हैं

(२१) महा पण्डित बनाने की प्रभूत सामग्री अब तक विद्यमान है। महा पण्डित परम्परा अखण्डित रूप से चलनी चाहिए। ये महापण्डित हमारी बड़ी भारी लक्ष्मी है

(२२) आधुनिक यूरोपियन लोगों की गवेषणा, विचारशैली, कोशों संग्रहालयों से पुरातन ढंग के पण्डित बहुत कुछ सीख सकते हैं। यूरोपियन और नवीन भारतीय तो पण्डितों से सीखने को लालायित रहते हैं।

(२३) भारतीय संस्कृत सम्मेलनों द्वारा पण्डितों को परस्पर मिलते रहना चाहिए। इससे पंडितों को बलाबल ठीक ठीक ज्ञात हो जायगा। शास्त्रार्थ और रंग मंच भी सहायक हो सकते हैं

(२४) संस्कृत का सीखना, सिखाना, और प्रचार इतना कठिन नहीं जितना लोग समझते हैं। उपाय कुशलता से बहुत बड़ी सिद्धि हो सकती है।

(२५) संस्कृत के सरल आर्ष और ज्ञान प्रधान ग्रन्थ और रामायण महाभारत भी संस्कृत शिक्षण में अधिक उपकारक हैं, अनार्ष या काव्य नाटकादि उतने नहीं। सारिष्ठ वस्तु एक बात है, अलंकरण और मण्डन दूसरी।

(२६) संस्कृत की ग्रन्थ राशि की सूची, केन्द्रों की सूची, महापण्डित सूची, उत्तमविद्या स्थान सूची तैयार हो जानी चाहिए।

(२७) संस्कृत भाषा का भविष्यत् आशामय हो सकता है यदि जरा भी भारतीय संस्कृतज्ञ और सामान्य जन उत्साहवान् और जागरूक हो जावें।

(२८) शिक्षाशास्त्र और व्याकरण शास्त्र, ज्योतिषादि की प्रयोगशाला (Laboratory) भी साथ साथ होनी चाहिए। आयुर्वेद की तो प्रयोगशाला होती जाती है।

(२९) काशी को संस्कृत विद्या का महा केन्द्र बनाने में शीघ्रता करनी चाहिए।

(३०) संस्कृत वाङ्मय के समान, नहीं नहीं उससे भी बढ़कर वैदिक वाङ्मय का आदर करना चाहिए।

(३१) श्रद्धामयी आर्य हिन्दू जनता का पर्याप्त भाग संस्कृत सीखना चाहता है, संस्कृत को सुनकर गद्‌गद् हो जाता है।

(३२) सैंकड़ों पण्डित चाहते हैं कि उन्हें विद्यार्थी मिलें उन्हें विद्यार्थी या वृत्ति नहीं मिलती।

(३३) सैंकड़ों मन्दिर खाली पड़े हैं जिनका सदुपयोग कोई नहीं लेता। देवतार्पण धन बैंकों में पड़ा है।

(३४) श्रद्धा, धन, उत्साह, स्थान, विद्यार्थी और अध्यापक इनका परस्पर सम्बन्ध कराने की व्यवस्था होनी चाहिए।

(३५) देश देशान्तरों के महापण्डितों को अपने विश्वविद्यालयों और संस्कृत-केन्द्र स्थानों पर बुलाते रहना चाहिये।

(३६) संस्कृत के विद्वानों को मातृभाषा, संस्कृत और अंग्रेजी के अतिरिक्त दूसरी विदेशी भाषा, जर्मन, फ्रेंच, डच, इटालियन, चीनी, जापानी, रशियन आदि में से भी कोई एक सीखनी चाहिए।

(३७) सैनिक विभाग में उच्चशिक्षा मे संस्कृत को स्थान मिलना चाहिए

(३८) संस्कृत के विद्यार्थियों और अध्यापकों को भारत में घूमने और संस्कृत केन्द्रों से सम्पर्क जोड़ने में सुविधा

(३९) भारत के ब्राह्मणों और संन्यासियों की आन्तर सामाजिक व्यवस्था और दशा की खोज और इतिवृत्त।

[श्री पं० आत्मानन्द जी का यह लेख अत्यन्त उत्तम निर्देश पूर्ण और नितान्त उपयोगी है। संस्कृत को लोकप्रिय बनाने का कार्य इस समय संस्कृति की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण कार्य है। अन्य अनुभवी विद्वान् भी अपने निर्देश इस विषय में अवश्य भेजने की कृपा करें।

—सम्पादक सा० दे०]

भारतीयं स्वातन्त्र्यम्

१ स्वतन्त्रतेयं सहजोऽधिकारः, लोके मतो मानवमात्रतुल्यः।
श्रमेण लब्धं तपसार्जवेन, स्वातन्त्र्यमेतत् किल रक्षणीयम्॥

२ यद् भारतं पददलितं विदेशे, समुद्भवैः स्वार्थपरायणैर्वै।
तेनैव लब्धं तपसा स्वराज्यं, सर्वप्रयत्नेन हि रक्षणीयम्॥

३ नाना दयानन्द पटेल दादा—सुभाष गांधी तिलकादि वीरैः।
कष्टानि सोढ्वा विकटानि लब्धं, स्वातन्त्र्यमेतत् किल रक्षणीयम्॥

४ ऋषिर्दयानन्दयतिर्युगेऽस्मिन्, स्वराज्यमाहात्म्यमिदं जुघोष।
"विदेशि राज्यं हितकारि चेत्स्यात्, न तत्स्वराज्येन समं कदाचित्॥"

५ सर्वं स्वदेशीयपदार्थजातं, जनैः प्रयोज्यं निजराष्ट्रवृद्ध्यै।
वेदादिशास्त्राणि पुरातनानि, पाठ्यानि रक्ष्या श्रुतिसंस्कृतिश्च॥

६ युगस्य निर्मातृतमः स एव, स्वराज्यमन्त्रस्य स एव दाता।
मान्यः समस्तैरपि सत्यभक्तैः, सुधारकानां प्रथमः स नेता॥

७ श्री श्यामजी, लाजपत, प्रताप, वारीन्द्र, सावर्कर, भक्तसिंहैः।
'भाई' हरिश्चन्द्र, बुधारविन्द- यत्नेन लब्धं महितं स्वराज्यम्॥

८ आजाद चन्द्रादि यतीन्द्र दास- रामप्रसादैः सुखदेवयुक्तैः।
स्वकीयरक्तेन सुसिञ्चितोऽयं, स्वातन्त्र्यवृक्षः किल वर्धनीयः॥

९ गांधी महात्मा ऽसहकारशस्त्रं, हस्तेषु नृणां प्रबलं प्रदाय।
सत्यार्जवाहिंसकताबलेन, स्वराज्यमाप्तुं सततं प्रयेते॥

१० नेता सुभाषोऽप्यकरोत् प्रयत्नं, कर्तुं स्वतन्त्रं सकलं स्वदेशम्।
स्वतन्त्रसेनां च चकार यस्यां, स्वदेशभक्ता बहवः समेयुः॥

११ न तस्य यत्नः फलमाप पूर्णं, यद्यप्यनेकैः प्रबलैर्निदानैः।
तथापि यत्नः किलतस्य वन्द्यः, स्वातन्त्र्यमाप्तुं च बभूव हेतुः॥

१२ श्रद्धायुतानन्द धनस्तपस्वी, येते स्वराष्ट्रं प्रबलं विधातुम्।
शिक्षां प्रदायाभयदां पवित्रां, स्वदेशभक्तिं किल वर्धयन्तीम्॥

१३ अस्पृश्यतावारणदत्तचित्तः, परोपकारार्पित सर्व वित्तः।
धीराग्रगण्यो गतभीर्यतीन्द्रः, स्वराज्य संग्राम विनायकोऽभूत्॥

१४ रासो विहारी च हरो दयालुः, उभावुपायैर्विविधैः प्रयासम्।
प्रचक्रतुर्देशमिमं स्वतन्त्रं, कर्तुं परेषां निगडैर्निबद्धम्॥

१५ वीराङ्गना झांसिमहीपलक्ष्मी- लक्ष्मी सरोजिन्यभिधा अनेकाः।
स्वातन्त्र्यसंग्राम परायणास्ताः स्वकीय नामान्यमराणि चक्रुः॥

१६ परस्सहस्रैर्विभयैः सुवीरैः सशस्त्र निश्शस्त्र विकीर्ण कृत्यैः।
प्रज्वालितो यैर्निजराज्यवह्निः, ते पुण्यभाजः सकला नमस्याः॥

१७ अस्मिन्क्षणेहस्यखिलान् नमामः स्वदेशभक्तान् विषयेष्वसक्तान्।
नेतॄन् समस्तान् नरपुंगवांस्तान् राष्ट्रीयनावः शुभकर्णधारान्॥

१८ भवेत्सदा राष्ट्रमिदं स्वतन्त्रं, मूर्धन्यभूतं भुवने सुमन्त्रम्।
भवेत्समृद्धं मुदितं सुशान्तं, धातुर्दयातोऽविकलं च कान्तम्॥

धर्मदेवो विद्यावाचस्पतिः

स्वतन्त्रता के परम पुजारी—

श्याम जी कृष्ण वर्मा

(लेखक—श्री रतनलाल जी बंसल)

सन् १८५७ की असफल क्रान्ति के पश्चात् शस्त्रबल द्वारा भारत को अंग्रेजी दासता से मुक्त कराने के लिये एक देशव्यापी संगठन खड़ा करने का विचार जिनके मस्तिष्क मे पहले पहल आया और न केवल विचार ही, बल्कि जिन्होंने अपने इस विचार को कार्यरूप में परिणत करने के लिये जीवन भर सतत उद्योग भी किया तथा उसके लिये अनेक यातनायें सहीं, उनका नाम था श्री श्याम जी कृष्ण वर्मा, जो ३१ मार्च १६३० को लगभग जीवन भर निर्वासित रह कर जेनेवा मे स्वर्गस्थ हुए थे।

भारत के स्वाधीनता आन्दोलन में श्री श्याम जी कृष्ण वर्मा का भी वही स्थान है जो श्री दादाभाई नौरोजी का है। यह तुलना इस लिए और भी उपयुक्त है, क्योंकि दोनों केवल समकालीन ही न थे, बल्कि अनेक वर्षों तक निकटतम सहयोगी भी रहे थे। दोनों को ही एक दूसरे का स्नेह तथा सम्मान प्राप्त था। किन्तु दादाभाई के विचार जहां अत्यन्त नरम थे वहां श्याम जी के अत्यन्त गरम। अतः दोनों पृथक् पृथक् पथों के पथिक बने। इसमें सन्देह नहीं कि श्री श्याम जी ने जो पथ ग्रहण किया वह अत्यधिक संकटापन्न था और शायद इसी का यह परिणाम है कि आज भारत के इने गिने व्यक्ति ही इस महान् देशभक्त के जीवन एवं कार्यों से परिचित है।

विप्लव युग में जन्म

श्री श्याम जी का जन्म ४ अक्तूबर १८५७ को काठियावाड़ की कच्छ रियासत में स्थित मांडवी नामक कस्बे मे हुआ था। ऐसे विप्लवकारी युग मे जन्म लेने के कारण ही जैसे उनके रोम रोम मे विप्लव की आग भरी हुई थी। प्रकृति ने इस आग को नष्ट करने के लिये उन पर आपत्तियों की वर्षा की। अभी श्याम जी केवल दस वर्ष के ही थे कि उनकी माताजी का देहान्त हो गया। पिता अत्यधिक निर्धन थे और बम्बई में छोटी मोटी नौकरी करके जीवन यापन करते थे। श्री श्याम जी भी पिता के साथ बम्बई ही रहते थे और इस आयु में ही उनकी बुद्धि इतनी तेजस्वी तथा प्रभावोत्पादक थी कि उससे प्रभावित होकर बम्बई के एक धनपति मथुरादास लवजी ने उनकी शिक्षा का व्यय भार अपने ऊपर ले लिया। श्री श्याम जी अब बम्बई के विल्सन हाईस्कूल मे भरती हो गये और साथ ही संस्कृत के एक सुयोग्य विद्वान् श्री विश्वनाथ शास्त्री से संस्कृत पढ़ने लगे। कुछ ही दिनों मे श्री श्याम जी को संस्कृत एवं अंग्रेजी भाषा का अच्छा ज्ञान हो गया। इस समय श्री श्याम जी की नानी ने इस मातृहीन बालक का जिस लाड़ प्यार से पालन पोषण किया और शिक्षा प्राप्त करने मे प्रेरणा दी तथा सहायता की उसके कारण उनका उल्लेख न किया जाना एक भारी अपराध ही होगा।

महर्षि दयानंद के सम्पर्क में

श्री श्याम जी ने विल्सन हाईस्कूल की अन्तिम परीक्षा समाप्त की ही थी कि बम्बई में महर्षि दयानन्द जी सरस्वती का आगमन हुआ। युगों से चले आ रहे अन्धविश्वासों एवं रूढ़ियों के बड़े अंश पर महर्षि ने जिस साहस से आक-

मण किया था उसके कारण जन्मजात क्रान्तिकारी श्री श्याम जी के मन में महर्षि के प्रति आकर्षण होना स्वाभाविक ही था। अतः श्री श्याम जी महर्षि से मिले और महर्षि ने भी उनकी असीम प्रतिभा एवं उज्ज्वल भावनाओं को तुरन्त ही पहिचान लिया। महर्षि ने श्री श्याम जी को विदेश जाकर ज्ञान प्राप्त करने की प्रेरणा दी और इसके लिये आवश्यक व्यय का प्रबन्ध करने में भी सहायता दी अतः सन् १८७९ के मार्च मास में वे सुप्रसिद्ध औक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी में प्रविष्ट हो गये। श्री श्याम जी वहां से संस्कृत में एम. ए. होकर कुछ दिन तक यूनिवर्सिटी के संस्कृत विभाग में अध्यापक पद पर भी कार्य करते रहे। औक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी में अध्यापन कार्य करने वाले आप प्रथम भारतीय थे।

संस्कृत का अध्ययन

इन्हीं दिनों श्री श्याम जी ने बर्लिन एवं लीडन के पूर्वीय अन्तर्राष्ट्रीय विद्वज्जन सम्मेलनों (ओरिन्टियल कांग्रेस के अधिवेशनों) में भारत का प्रतिनिधित्व किया। वहां आप भारत सरकार द्वारा परिचालित 'इन्डिया आफिस' की ओर से भेजे गये थे। विश्वविख्यात विद्वान् श्री मैक्स-मूलर से इन दिनों आपका अच्छा परिचय था और उन्होंने एक स्थान पर लिखा है कि "मैं श्याम जी कृष्ण वर्मा की प्रतिभा से अत्यधिक प्रभावित हुआ हूँ।" इसके पश्चात् आपने बैरिस्ट्री की परीक्षा भी पास की और सन् १८८३ में स्वदेश वापस आगये। यहां आकर आपने उदयपुर में ८ जनवरी सन् १८८४ को एक प्रभा-वशाली भाषण दिया। मार्च १८८४ में अपनी धर्मपत्नी के साथ आप पुनः इंग्लैंड गये और वहीं कुछ मास रहकर जनवरी १८८५ में भारत लौट आये। इस समय आपके सम्मुख उच्च सरकारी नौकरी स्वीकार करने का प्रस्ताव उप-स्थित था, किन्तु आपने अस्वीकार कर दिया।

सन् १८८५ से सन् १८९७ तक श्री श्याम जी भारत में रहे। प्रारम्भ में कुछ दिन तक आपने बम्बई में वकालत की, किन्तु फिर आप राजस्थान चले आये और अजमेर में वकालत करने लगे। अजमेर म्यूनिसिपल बोर्ड के आप सदस्य भी चुने गये। सन् १८९२ में आपने ब्यावर में एक औद्योगिक संघ की स्थापना की और उसकी ओर से राजपूताना काटन प्रेस की स्थापना की, जिसके आप वर्षों तक मैनेजिंग डाइरेक्टर रहे। अन्य कई स्थानों पर भी आपने इसी प्रकार की व्यापारिक संस्थायें स्थापित की। इससे सिद्ध होता है कि व्यापारिक विषय में भी आपकी अच्छी गति थी।

मन्त्री पदों पर

सन् १८८८ में श्री श्याम जी रतलाम राज्य के प्रधान मंत्री बने। इसके पश्चात् १८९२ में उदयपुर राज्य के एक मन्त्री बने और १८९५ में जूनागढ के दीवान बने। इन रियासतों में मंत्रिपद स्वीकार करने का सम्भवतः यही कारण था कि आप भारतीय स्वाधीनता के संघर्ष में देशी राज्यों का सहयोग चाहते थे, जैसा कि उस समय के प्रायः सभी क्रान्तिकारी सोचा करते थे। किन्तु इसमें सफलता प्राप्त होना आकाश कुसुमवत् था अतः आपसे किसी भी राज्य की पटी नहीं और सन् १८९७ में आपने पुनः इंग्लैंड को प्रस्थान किया। इस बार आप वहीं स्थायी रूप से रहने की योजना बनाकर गये थे। अतः जाते ही आपने एक मकान खरीद लिया, जहां आप सन् १९०७ तक अपनी पत्नी के साथ रहे।

क्रांति का प्रचार

इंग्लैंड पहुंचकर प्रारम्भ में आपने श्री दादा-

भाई नौरोजी की इन्डियन एसोसियेशन मे सह योग देना प्रारम्भ किया। इसी स स्था की ओर से उस समय इन्डिया' नामक एक पत्र भी प्रकाशित होता था, जिसमें श्री श्याम जी भी लिखा करते थे। जून १८९८ में काठियावाड़ के एक दूसरे युवक श्री एस आर. राना आपके सम्पर्क में आये और शीघ्र ही श्री श्याम जी तथा श्री राना घनिष्ठ मित्र होगये। श्री राना सम्भवत आज भी पेरिस में जीवित हैं और प्रस्तुत लेख की अधिकाश सामग्री इन पक्तियों के लेखक को श्री राना से ही पत्र व्यवहार द्वारा प्राप्त हुई थी।

श्री श्याम जी को क्रान्तिकारी आन्दोलन में सहयोग देने के लिये श्रीमती भरिवाजी कामा नामक एक पारसी युवती का भी सहयोग प्राप्त होगया, जो प्रारम्भ मे श्री दादाभाई की सहयोगिनी या शिष्या थीं। इससे सिद्ध होता है कि श्री श्याम जी के व्यक्तित्व में कुछ ऐसा आकषण था कि बलिदान भावना से परिपूर्ण हृदय के व्यक्ति शीघ्र ही उनके अनुचर बन जाते थे।

सरकार विरोधी वृत्तियां

श्री दादाभाई नौरोजी की नरम नीति से श्री श्याम जी को सन्तोष नही हुआ और सन् १९०४ में उन्होंने 'इन्डियन सोशियोलोजिस्ट' नामक एक पत्र का पृथक रूप से प्रकाशन आरम्भ किया। इस पत्र के प्रथम अङ्क में ही उन्होंने भारतीय युवकों के लिये छात्रवृत्तियों को देने की घोषणा की। छात्रवृत्ति ग्रहण करने व ले विद्यार्थी के लिये शर्त यह थी कि वह ब्रिटिश सरकार से जीवन भर किसी प्रकार का सहयोग नहीं कर सकेगा। न तो कोई सरकारी पद ही ग्रहण करेगा और न सरकारी खिताब ही। इसके साथ ही उन्होंने 'होमरूल सोसाइटी' नामक एक स स्था की भी स्थापना की और लन्दन में एक सुन्दर भवन खरीदकर उसे 'इन्डिया हाउस' का नाम दे दिया। कुछ दिन पश्चात् श्री श्याम जी के मित्र श्री राना ने भी श्री श्याम जी की ही भांति छात्रवृत्ति देने की घोषणा की। श्री विनायक दामोदर सावरकर, श्री सेनापति बापट इत्यादि ने इन छात्रवृत्तियों को स्वीकार किया और भविष्य में इन्होंने देश की स्वाधीनता के लिये जो कुछ किया, उससे तो सभी सुपरिचित ही हैं। कुछ दिन पश्चात् भारत के महान् प्रतिभाशाली क्रान्तिकारी ला० हरदयाल जी भी सरकारी छात्रवृत्ति को लात मार कर श्री श्याम जी के साथ आ मिले। इस प्रकार लन्दन का श्री श्याम जी द्वारा परिचालित 'इन्डिया हाउस' भारतीय क्रान्तिकारियों का एक केन्द्रीय स्थान बन गया।

लन्दन से पेरिस को

सन् १९०७ में लन्दन में रहना सुरक्षित न समझ कर श्री श्याम जी पेरिस आगये और यहीं से अपने पत्र 'इन्डियन सोशियोलोजिस्ट' का प्रकाशन करने लगे। इस समय तक वे समस्त स सार के क्रान्तिकारियों में प्रसिद्ध हो चुके थ और भारत की स्वातन्त्र्य भावनाओं के प्रतीक माने जाते थे।

साथी पकड़े गये

अग्रेज सन् १९१४ में प्रथम महायुद्ध प्रारम्भ होते ही श्री श्याम जी पेरिस छोड़कर जेनेवा चले गये थे। इस समय कुछ दिनों के लिये उन्हें अपना पत्र भी बन्द कर देना पड़ा। किन्तु कुछ ही दिन पश्चात् वे उसे जेनेवा से ही पुन निकालने लगे। इसी बीच एक एक करके उनके अनेक साथी पकड़े गये, जिनमें से कुछ तो फांसी पर चढ़ा दिये गये और कुछ जीवन भर के लिये अन्डमान की भयानक कोठरियों में पहुँचा दिये गये। कुछ साथी आश्चर्यजनक ढंग से लापता

भी होगये और कुछ ऐसे भी निकले, जिन्होंने जान बूझकर श्री श्याम जी के साथ विश्वासघात किया, किन्तु अपनी जननी जन्मभूमि से हजारों मील दूर सर्वथा एकाकी से श्री श्याम जी अनेक भयानकतम कठिनाइयों एवं खतरों से घिरे रह कर भी निरन्तर देश की स्वाधीनता के लिये साधना करते रहे और उस समय तक करते रहे, जब तक मृत्यु ने उनके जीवन दीप को बुझा नहीं दिया।

देश का इतना कार्य करते रह कर भी श्री श्याम जी ने अपनी व्यापार बुद्धि से विदेश में एक बड़ी धनराशि अर्जित की थी। इस रुपये से उनकी पत्नी ने एक ट्रस्ट कायम कर दिया था, जिससे आज भी फ्रांस में विद्याध्ययन करने वाले भारतीय विद्यार्थियों को अनेक सुविधायें प्राप्त होती हैं।

श्री श्याम जी की धर्म पत्नी भी एक उच्चकोटि की महिला थीं। जीवन भर वे अपने पति की सहयोगिनी और उनकी आपत्तियों मे हिस्सा बंटाती रहीं। सन् १९३३ में अर्थात् श्री श्याम जी की मृत्यु के ३ वर्ष पश्चात् जेनेवा में ही उनका भी देहान्त हो गया।

भारतीय स्वातंत्र युद्ध के एक प्रणेता के रूप में श्री श्याम जी युगों तक स्मरणीय रहेंगे।

(नवभारत टाइम्स से साभार)

सार्वदेशिक पत्र के ग्राहक अवश्य अंकित करें

जिन ग्राहकों को किसी मास का सार्वदेशिक प्राप्त न हो तो उन्हें उस मास की १२ तारीख तक सभा कार्यालय को सूचित कर देना चाहिये। इसके पश्चात् प्राप्त होने वाली शिकायतों पर यदि कार्यवाही न होगी तो उसकी उत्तरदायिता सभा कार्यालय पर न होगी।

साहित्य समीक्षा

शास्त्रार्थ महारथी (प्रथम भाग)—लेखक श्री शिवस्वामी जी सरस्वती। मुद्रक—पी० सी० शर्मा, शर्मा मुद्रणालय सम्भल उत्तरप्रदेश पृष्ठ ३०० मूल्य ३)

श्री शिवस्वामी जी सरस्वती जिनका पूर्वाश्रम का नाम पं० शिवशर्मा जी था आर्यजगत् के सुप्रसिद्ध अनेक भाषाभिज्ञ शास्त्रार्थ महारथी वृद्ध विद्वान् हैं जिन की आयु इस समय लगभग ८५ वर्ष की है। आपने अपने गत लगभग ६० वर्षों के स्वाध्याय के परिणामस्वरूप आर्यविद्वानों को वैदिक धर्म के मण्डन और पौराणिकादि मत मतान्तरों की युक्तियुक्त समालोचना में सहायता देने के उद्देश्य से यह पुस्तक लिखनी प्रारम्भ की है जिसका प्रथमभाग हमारे सन्मुख है। इसमें मूर्तिपूजा, अवतार, नियोग, पुराण, पुराणोक्त श्री कृष्ण चरित्र, महर्षि दयानन्द कृत वेदभाष्य आदि के सम्बन्ध में सप्रमाण शङ्का समाधान सहित विवेचन किया गया है जो विद्वानों तथा शास्त्रार्थकर्ताओं के अतिरिक्त सब सत्य जिज्ञासुओं के लिये उपयोगी है। इस प्रकार इस ग्रन्थ के एक अनुभवी आर्य विद्वान् द्वारा लिखे जाने के कारण उपयोगी होने में तो कोई सन्देह ही नहीं किन्तु खेद है कि इसकी छपाई में पर्याप्त सावधानता (जिसकी ऐसी पुस्तकों में अति विशेष आवश्यकता थी) नहीं वर्ती गई अतः मुद्रण दोष प्रमाण-भाग में बहुत स्थानों पर रह गये हैं जिन्हें आशा है दूसरे संस्करण में तो ठीक कर ही दिया जाएगा इस संस्करण में भी शुद्धि-पत्र लगवा कर उस त्रुटि को दूर करने का अवश्य प्रयत्न करना चाहिये ताकि कोई अशुद्ध उद्धरण न दे बैठे। ध दे०

वेद की इयत्ता और मंत्र संख्या—लेखक श्री स्वामी स्वतन्त्रतानन्द जी प्रकाशक—ज्ञानचन्द्र आर्य हीरादेवी ट्रस्ट १७ बारह खम्भा रोड नई देहली मू० १॥)

श्री स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी ने इस पुस्तक मे वेद चार हैं तीन नहीं इस मन्तव्य को प्रबल प्रमाणों द्वारा सिद्ध करके उनकी मन्त्र संख्या पर विस्तृत तुलनात्मक विचार किया है। किन २ विद्वानों ने क्या विचार इस विषय में प्रकट किये हैं इस बात का उल्लेख करते हुए आवश्यकतानुसार उनके विचार की आलोचना की है और अपना विचार सप्रमाण प्रस्तुत किया है। इस विषय में उन्होंने जो परिश्रम किया है वह नितान्त प्रशंसनीय है। बाल खिल्यसूक्तों को कई विद्वान् मूल ऋग्वेद का भाग न मानकर खिल अथवा परिशिष्ट मानते हैं श्री स्वामी जी ने इस मत का सप्रमाण निराकरण किया है। द्विपदाओं, अर्धर्चों आदि की गणना में भेद के कारण ही अधिकतर ऋग्वेद के मन्त्रों की संख्या मे भेद प्रतीत होता है जो वास्तविक नहीं। इस बात को भी उन्होंने बड़ी अच्छी तरह से दिखाया है। उनके अनुसार ऋग्वेद की मन्त्र संख्या १०५५२ यजुर्वेद की १९७५ सामवेद की १८७५ और अथर्ववेद की ५९७७ है। पुस्तक के अन्त में श्री स्वामी जी ने पृ० १२८ पर ठीक ही लिख दिया है कि "चारों वेदों की मन्त्र संख्या मैंने अपनी मति अनुसार लिख कर विद्वानों के सामने उपस्थित कर दी है। अब विद्वान निर्णय कर लें कि यह ठीक है या नहीं।"

श्री स्वामी जी की पुस्तक को ध्यान पूर्वक निष्पक्ष भाव से पढ़ कर अन्य विद्वान् भी आव-

यथकतानुसार विचार प्रकट करेंगे।

स्वस्थ-जीवन—लेखक-श्री डा० सूर्यदेव जी सिद्धान्त वाचस्पति एम० ए० एल् टी० डी० लिट् अजमेर। प्रकाशक—आर्य साहित्य मण्डल अजमेर पृ० १६८ मूल्य १।)

श्री डा० सूर्यदेव जी एम० ए० डी० लिट् आर्यजगत के एक सुप्रसिद्ध विद्वान् लेखक तथा कवि हैं। उन्होंने श्री गदाधर प्रसाद जी तथा श्री मथुराप्रसाद जी शिवहरे की प्रेरणा से आरोग्य विषयक इस उत्तम पुस्तक का निर्माण करके युवक युवतियों का विशेष उपकार किया है। पुस्तक के ६ अध्यायों में क्रमशः ब्रह्मचर्य, प्राणायाम, व्यायाम, आहार, व्याख्यानकला, जीवन में विजय और उत्तम उपदेश इन ६ विषयों पर सरल और परिमार्जित भाषा में अत्यन्त उत्तम प्रकाश डाला गया है जिस में स्वस्थ जीवन संबंधी प्रायः सभी उपयोगी बातों का समावेश हो गया है। ब्रह्मचर्य विषयक अध्याय कुमार कुमारियों और युवक युवतियों के लिये बहुत ही अधिक लाभदायक होगा। व्यायाम, आहारादि का भी बड़ा सुन्दर निरूपण पुस्तक में किया गया है। व्याख्यानकला का स्वस्थ जीवन के सम्बन्ध यद्यपि विशेष सम्बन्ध साधारणतया प्रतीत नहीं होता तथापि इस अत्यावश्यक विषय पर इतने उत्तम निर्देश सुयोग्य लेखक और वक्ता ने अपने अनुभव के आधार पर दिये हैं कि पाठक इसके लिये उन्हें शतशः धन्यवाद दिये बिना न रहेंगे। नवीन वक्ताओं के लिये ही नहीं, अनुभवी सार्वजनिक वक्ताओं के लिये भी उस अध्याय में अनेक उपयोगी निर्देश मिलेंगे। इस अत्यन्त उपयोगी पुस्तक निर्माणार्थ हम अपने मित्र डा० सूर्यदेव जी को हार्दिक धन्यवाद देते हैं। ध० दे०

ऋजुपाणिनीयम्, पाणिनीय प्रबोधः (पूर्वार्धः) तथा उत्तरार्द्ध—लेखक-दर्शन केसरी महामहाध्यापक श्री पं० गोपाल जी शास्त्री प्रधान काशी पण्डित सभा प्राप्ति स्थान—शास्त्रिमंडल ग्रन्थागार डी ५६।३१ शिव पुरवा अजमल गढ़ पैलेस बनारस ६ मूल्य क्रमशः ।।।) १) १)

काशी पण्डित सभा के प्रधान श्री पं० गोपाल जी शास्त्री दर्शन केसरी काशी के सुप्रसिद्ध विद्वान् हैं जिन्होंने स्व० पण्डित मदनमोहन जी मालवीय की प्रेरणा से संस्कृत व्याकरण को सरल शैली से अष्टाध्यायी के क्रमानुसार सिखाने के लिये इन तीन उपर्युक्त पुस्तकों का निर्माण किया है। भूमिका में आपका कथन है कि इन पुस्तकों में निर्दिष्ट क्रम से यदि व्याकरण पढ़ाया जाए तो ६ महीनों में विद्यार्थियों को अच्छा ज्ञान प्राप्त हो सकता है जो आजकल १०, १२ वर्ष परिश्रम करने पर भी नहीं होता। हमें भी देखने पर ये ग्रन्थ और इनमें प्रतिपादित शैली अत्यन्त उपयुक्त प्रतीत हुई हैं। अनुवृत्ति का निर्देश, सूत्रार्थ को स्पष्ट करने के लिये अक, निष्कर्ष और विषय का संक्षिप्त निर्देश करके संस्कृत व्याकरण को सरल बनाने का यह प्रयास अत्यन्त प्रशंसनीय है जिसके लिये पण्डित प्रवर श्री गोपाल जी शास्त्री धन्यवाद के पात्र हैं।

ध० दे०

श्री कृष्ण जन्माष्टमी

(लेखिका—श्रीमती कृष्णाकुमारी जी एम०ए०बी०टी० आचार्या आर्य कन्या महाविद्यालय, इटावा)

प्रत्येक देश में विशेष तिथियों पर पर्वों को मनाने की प्रथा प्रचलित है। इन पर्वों में महात्मा पुरुषों पर मनाए जाने वाले पर्व अधिक महत्त्व-पूर्ण माने गए हैं। किसी जाति की सभ्यता और संस्कृति के विकास का अनुमान उसकी पूर्व महान् विभूतियों से लगाया जाता है। जापान में मुख्य ११ पर्व मनाए जाते हैं, जिनमें ६ पूर्व पुरुषों के स्मारक दिवस हैं। अमरीका में वाशिंगटन के स्मारक दिवस पर आबाल वृद्ध नर नारी तन मन की सुधि भूल कर आनन्द विभोर हो जाते हैं। हमारे यहाँ मर्यादा पुरुषोत्तम श्री रामचन्द्र, योगीराज श्री कृष्ण महात्मा बुद्ध ऋषि दयानन्द, रवीन्द्र नाथ ठाकुर और महात्मा गान्धी के दिवस मनाए जाते हैं। वस्तुत ये पर्व जाति में जान फूँकने वाले, उसमें उत्साह भरने वाले तथा भावी सन्तान को अपने अपने पूर्व पुरुषों के समान महान् बनने की प्रेरणा देने वाले हैं। जितनी उत्तम रीति से इन पर्वों को मनाया जावे देश के लिये ये उतने ही उपयोगी सिद्ध होते हैं।

जिन महात्मा पुरुषों की जयन्तियाँ मनाई जाती हैं योगीराज श्री कृष्ण उनमें शिरोमणि हैं। प० रामचन्द्र शुक्ल के शब्दों में जीवन की पूर्णता कर्म, ज्ञान और भक्ति के समन्वय में है। "साधना किसी प्रकार की हो साधक की पूर्ण सत्ता के साथ होनी चाहिये।" ऐसी अवस्था में मनुष्य के जीवन में लेश मात्र भी अहङ्कार नहीं रहता। श्री कृष्ण का सम्पूर्ण जीवन कर्म, ज्ञान और भक्ति का समन्वय है। निष्काम कर्म योगी बनने का जो उपदेश युद्ध क्षेत्र में उन्होंने अपने सखा अर्जुन को दिया था उसी को उन्होंने अपने जीवन मे घटाया, उनका जीवन गीता ज्ञान का जीता जागता स्वरूप है। उन्होंने इस लोक में १२५ वर्ष दीन दु खियों की सेवा की। जीवन में कभी विश्राम नहीं किया। जिधर उनकी पुकार होती उधर ही चल पड़ते, जहाँ अत्याचार सुनते वहीं दौड़ पड़ते। उनके समय में चहुँ ओर अत्याचार फैला हुआ था। अनेकों राजा प्रजा के साथ अमानुषिक व्यवहार कर रहे थे। प्रजा त्राहि त्राहि कर रही थी। धर्म के संस्थापक श्री कृष्ण अपने नेत्रों के सम्मुख ऐसा अधर्म होते कब सहन कर सकते थे? उन्होंने प्रजा के कष्ट निवारण के लिये अत्याचारियों को दण्ड देकर धर्म राज्य की स्थापना की। अपने माता पिता, वसुदेव देवकी को कैद करने वाले और सात भाइयों के हत्यारे पापी कंस को मार कर नाना उग्रसेन को मथुरा का राजा बनाया। मथुरा पर १७ बार चढ़ाई करने वाले दुष्ट जरासंघ को मृत्यु के घाट उतार कर उसके पुत्र को राज्य शासन का भार सौंपा। करवीर नरेश शृगाल को युद्ध में मारकर उसके पुत्र को राज सिंहासन पर बिठाया। द्वारिका नगरी पर वायुयानों से आक्रमण करने वाले शाल्व का पीछा करके उसका वध किया। शिशुपाल और कालयवन के कुकर्मों को निरन्तर बढ़ते हुए देख कर उनका सिर अपने सुदर्शन चक्र से काट लिया। समस्त कार्यों को उन्होंने निज बुद्धि पराक्रम के द्वारा धैर्यपूर्वक सम्भाला। सदैव कार्य-व्यस्त रहने पर भी उनका मुखमण्डल कभी चिन्ताग्रस्त नहीं हुआ।

श्री कृष्ण सर्वात्म-भावापन्न पुरुष थे। निर्धन-

धनी, छोटे-बड़े सभी के साथ वह प्रीति का व्यवहार करते थे। बचपन में उन्होंने गोकुल वासियों के साथ गौएं चराईं और बन में पशु पक्षियों के साथ क्रीड़ाएँ करके सब की एकता का भाव दिखाया। निर्धन मित्र सुदामा के आने की जब उन्हें सूचना मिली तो उससे मिलने के लिये सिंहासन छोड़ नंगे पैर दौड़े। उस समय के दृश्य का कवि नरोत्तम दास हृदयग्राही चित्रण करते हैं:—

हाय महा दुःख पाये सखा
तुम आये इते न किते दिन खोये।
पानी परात को हाथ छुओ नहीं,
नैनन के जल सों पग धोये।

उसके कच्चे चावलों का प्रेम से भोग लगाया। अनेक दास दासियों के होते हुए भी उन्होंने स्वयं मित्र का स्वागत किया; उसको उत्कृष्ट भोजन कराया और चलते समय अनेक प्रकार का बहुमूल्य द्रव्य देकर उसे सतुष्ट किया।

श्री कृष्ण ने अपने जीवन में जो कार्य किये उनमें उनका व्यक्तिगत स्वार्थ न था; अपितु कल्याणार्थ किये गए थे। कार्य करते हुए उन्होंने कभी प्रशंसा की अभिलाषा नहीं की। जरासन्ध, शिशुपाल, रुक्मी आदि प्रायः उनकी निन्दा किया करते थे किन्तु इन्होंने इस ओर ध्यान नहीं दिया। उनको किसी में आसक्ति न थी केवल कर्त्तव्य भावना से कर्म करते थे, और विकट से विकट परिस्थितियों का सामना करने में घबराते न थे। महाभारत के युद्ध से पूर्व पाण्डवों की अभिलाषा थी कि एक बार कौरवों से समझौता करने में पूर्ण शक्ति लगा दी जाये जिससे असंख्य वीरों को जीवन से हाथ न धोना पड़े। श्री कृष्ण स्वयं सन्धि के पक्ष में थे। दुर्योधन जैसे स्वार्थान्ध, कपट-कुशल के दरबार में जाना मृत्यु के मुख में कूदना था। यद्यपि श्री कृष्ण के दूत बन कर जाने के प्रस्ताव पर कोई सहमत नहीं हुआ किन्तु पाण्डव जानते थे कि श्री कृष्ण के अतिरिक्त कोई अन्य व्यक्ति इस कार्य को करने में समर्थ नहीं। वाद विवाद के उपरांत श्री कृष्ण तैयार हुए। एक ओर प्राण संकट की सम्भावना थी तो दूसरी ओर यात्रा अपमानजनक थी; पर कर्त्तव्य समझ कर श्री कृष्ण ने जाना ही उचित समझा। उनकी सर्वतोमुखी उन्नति हुई। वे वीर योद्धा, कुशल सेनापति, दीनों के उद्धारक, सकल संसारादर्श, पूर्ण राजनीतिज्ञ, धर्म के उपदेष्टा, और परम तत्त्वदर्शी थे।

अब तनिक इन महान् विभूति के जन्मोत्सव पर विचार कीजिये। कई दिन पूर्व तैयारियाँ आरम्भ हो जाती हैं। भांति भांति के बहुमूल्य वस्त्राभूषण एकत्रित किये जाते हैं। घरों तथा मन्दिरों में नेत्रों को चकाचौंध करने वाले वस्त्रालङ्कारों से भी इनकी मूर्तियाँ सजाई जाती है हिंडोले बनाए जाते हैं; झांकियाँ निकाली जाती हैं और मूर्ति के सौंदर्य को दुगुना करने के लिये रंग बिरंगे बिजली के बल्बों और मोम बत्तियों से इनके मुख मण्डल को प्रदीप्त किया जाता है। जन्माष्टमी के दिन स्थान स्थान पर रास लीला ड्रामे होते हैं। यहाँ पर भी सजावट में किसी प्रकार की कमी नहीं की जाती। कोई राधा बनता है तो कोई कृष्ण। पहले से ड्रामे और नाच का अभ्यास किया जाता है। मन भर कर रंगरलियाँ मनाई जाती हैं।

जन्माष्टमी के व्रत की झांकी भी देखिये। चार दिन पूर्व फलाहार की चिन्ता हो जाती है। बाजार में लोगों की झड़ी लगी रहती है। बेचारे पंसारियों को सिर खुजाने का अवकाश नहीं मिलता। सब ओर से कुट्टू के आटे, सिंघाड़े के आटे, गोंद, खरबूजे की गिरी, फूलमखाने, किशमिश, गोला, बदाम, चीनी इत्यादि की मांग

होती है। विशम्भरनाथ कौशिक ने ठीक ही लिखा है—व्रत के साथ आध्यात्मिक भावना जुड़ी हो ऐसा प्रतीत नहीं होता। हाँ! इतना अवश्य है कि बच्चे बूढ़े और जवानों में घर घर यह चर्चा होती है कि व्रत के दिन फलाहार में क्या बनेगा? वे यह स्वप्न देखने लगते हैं कि उसका स्वाद कैसा होगा। जन्माष्टमी के दिन की बहार का कुछ न पूछो। दिन भर सजावट, फलाहार और व्रत की बातों में व्यतीत हो जाता है। सायंकाल के समय लोग मन्दिरों में झांकियां तथा हिंडोले देखने निकल पड़ते हैं। सजावट करने वाले पुजारियों को लोगों के मुख से सुनने की यह लालसा रहती है कि अमुक मन्दिर का हिंडोला कमाल का सजा था। देखते नेत्र न अघाते थे। रात्रि को रास लीला और ड्रामे का आनन्द लूटा जाता है। जैसे ही घड़ी में बारह बजते हैं मन्दिरों में और नाट्यशालाओं के घण्टे और नगाड़ों की ध्वनि और श्री कृष्णभगवान् की जय से आकाश गूँज उठता है और हमारे भोले देशवासी समझते हैं बस अब जीवन सफल हुआ। मन्दिरों के पुजारी खीरा काट कर श्री कृष्ण जी के जन्म की घोषणा करते हैं। उनको भोग लगाकर प्रसाद बांटा जाता है और लोग उस समय व्रत पूरा करके फलाहार खाते हैं।

जन्माष्टमी चली गई और जनता के दिलों में यह भावना छोड़ गई कि जिस दिन के लिये इतनी तैयारियाँ की थीं वह दिन कितनी शीघ्रता से चला गया। बालक बालिकाओं और स्त्री पुरुषों में कई दिनों तक यह चर्चा चलती है कि शहर में जन्माष्टमी की कैसी धूम रही। कितनी चहल पहल रही। इस चहल पहल को जनता के मनोरंजन का साधन अवश्य कहा जा सकता है। आश्चर्य है यदि यह उत्सव जनता के हृदय को छूता हो। योगीराज श्री कृष्ण के उज्ज्वल चरित्र की इससे भद्दी अभिव्यक्ति और क्या हो सकती है? प्रति वर्ष जन्माष्टमी मनाई जाती है किन्तु जनतापर उसकी कोई अमिट छाप दृष्टिगोचर नहीं होती अन्यथा हमारी जाति की यह दुर्दशा न होती जो आज हो रही है। कौन सहृदय होगा जिसके मन में इस दृश्य को देख कर पीड़ा न होती हो। उस वेदना को किसी कवि ने श्री कृष्ण के शब्दों में व्यक्त किया है

अपनी जन्माष्टमी को दूर से देखूँ हूँ सदा।
एक भी भारती करता है मुझे प्यार नहीं।
स्वाग भर भर के मुझे हाथ नचाते हैं मेरा।
नाच और गान से मुझे कोई सरोकार नहीं।
रास क्यों करता मैं ऊखल से क्यों बांधा जाता।
शोक है शोक कि मैं चोर नहीं जार नहीं।
देश और जाति को बस देखके ऐसा कृतघ्न।
बही आखों से मेरे आसुओं की धार नहीं।

आज हमारे सम्मुख यह समस्या है कि जन्माष्टमी कैसे मनाएँ? जिस ढंग से गांधी जयन्ती मनाई जाती है यदि उसी ढंग से श्री कृष्ण जी का जन्म दिन मनाया जाये तो उसका समुचित लाभ उठाया जा सकता है। जन्माष्टमी के आठ दिन पूर्व प्रत्येक नगर और ग्राम में धार्मिक स्थानों पर श्री कृष्ण जी के जीवन चरित्र पर उपदेश, कथा और शिक्षाप्रद भजनों का प्रबन्ध किया जाये। जनता को कृष्ण जी के दिव्य गुणों का दिग्दर्शन इस प्रकार कराया जाये कि वह उनका सुगमतापूर्वक अनुकरण कर सके। स्कूल और कालेज के शिक्षकों को चाहिये कि वे विद्यार्थियों को श्री कृष्ण जी के जीवन का अध्ययन कराएँ, उनके विषय में फैली हुई भ्रान्तियों को विद्यार्थियों के मन से सदा के लिये दूर कर दें और उनके जीवन पर कविता लेख इत्यादि लिखवाएँ। नगर हिन्दी साहित्य समिति की ओर से उस दिन साहित्यक प्रोग्राम होना चाहिये, जिसमें बालक बालिकाओं की उत्तम रच-

नाओं पर पारितोषिक देकर उनके उत्साह को बढ़ाया जाये।

श्री कृष्ण जी का गौओं पर प्रगाढ़ प्रेम यह सिद्ध करता है कि धनी से धनी मनुष्य को भी गौओं की सेवा को एक पुण्य कर्म समझना चाहिये। जिस प्रकार गांधी जयन्ती पर सम्पूर्ण भारतवर्ष में चर्खे की कताई होती है उसी प्रकार जन्माष्टमी पर गो-सेवा-सप्ताह मनाया जाये। प्रत्येक व्यक्ति गो सेवा का व्रत ले। जनता में गौओं की सेवा के लिये उत्साह उमड़ पड़े। गौओं की सेवा करने की विधियां सोची जायें। गौओं की दशा को सुधारा जाये जिससे जनता को पर्याप्त मात्रा में दूध मिल सके। यदि हम इस कार्य को आरम्भ करदें तो पुनः हमारे देश में घी दूध की नदियां बहने लगें और गो बध बन्द कराने के लिये कानून बनाने का प्रश्न उत्पन्न ही न हो। किन्तु अब यह अत्यावश्यक है कि इसके लिये प्रबल आन्दोलन किया जाए।

स्वर्गीय पण्डित श्री० पद्मसिंह शर्मा ने लिखा है—"आर्य जाति के लीडर और शिक्षित युवक श्री कृष्ण चरित को अपना आदर्श मान कर यदि अपने चरित का निर्माण करें तो देश और जाति का उद्धार करने में समर्थ हो सकेंगे।"

महिला जगत

वैदिक संस्कृति
ही विश्व का कल्याण कर सकती है।

[लेखिका—सावित्री देवी जी "साहित्यरत्न" श्री महिला विद्यापीठ मुसावर, राजस्थान]

ओ३म् । "संगच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम् ।
देवा भागं यथा पूर्व्वे संजानाना उपासते ।"

'संस्कृति और सभ्यता' ये दो शब्द अत्यन्त प्रसिद्ध हैं। संस्कृति विचार धारा को कहते हैं तथा सभ्यता रहन सहन, खान पान, वेष-भूषा को।

विश्व में अनेकों संस्कृतियां हैं जैसे अरबी संस्कृति, रशियन संस्कृति, यूनानी संस्कृति, बौद्ध संस्कृति, हिन्दू संस्कृति आदि २।

परन्तु मैं आज युक्ति और प्रमाणों से यह सिद्ध करने का प्रयत्न करूँगी कि उपर्युक्त संस्कृतियों में विश्वम्भर संस्कृति का एक भी गुण नहीं है और यह सिद्ध हो जाने पर कि वे विश्व संस्कृति नहीं हैं विश्व का कल्याण कैसे कर सकती हैं ?

'संस्कृति' शब्द सम् पूर्व्वक कृधातु से क्तिन् प्रत्यय करने से बनता है 'समित्येकी भावे' 'डुकृञ् करणे' इसका अर्थ यही निकलता है कि एकत्रित होकर क्रिया करना।

जिसमें सामाजिकता हो, जिसमें विकास का क्रम निश्चित हो, वही संस्कृति की अन्वर्थक सञ्ज्ञा है।

संस्कृति के सम् उपसर्ग की सङ्गठनात्मक भावना को लेकर ऋग्वेद के अन्तिम सङ्गठन सूक्त में संस्कृति की पूर्ण व्याख्या कर दी गई है।

सं समिद्युवसे वृषन्नग्ने विश्वान्यर्य आ
इडस्पदे समिध्यसे स नो वसून्याभर। १

सङ्गच्छध्वं संवदध्वं, स वो मनांसि जानताम्।
देवा भाग यथा पूर्व्वे, संजानाना उपासते।२
समानो मन्त्र समिति समानी, समान मनः
सहचित्तमेषाम् समान मन्त्रमभिमन्त्रये व, समा-
नेन वो हविषा जुहोमि।३

समानी व आकृति, समाना हृदयानि व।
समानमस्तु वो मनो यथा व सुसहासति।४

इन चार मन्त्रों में १८ बार सगठनात्मक प्रवृत्ति वाला सम्, समान और सह शब्द आया है।

परमात्मा मानव और महिलाएँ एकत्रित होकर क्या करें ? इसके उत्तर में संस्कृति परक उपदेश करता है—

आर्य नर-नारियो।

सङ्गति करो, वाद-विवाद नहीं, सम्वाद करो, समन्त्रण करो, सभा समानाशय वाली हो, मनन शक्ति समान हो, चिन्तन शक्ति समान करो, मैं तुम्हारे लिये समन्त्रण अभिमन्त्रित करता हूँ तथा समस्त पदार्थ सर्व के लिये समान रूप से विभक्त करता हूँ। अनुमान शक्ति समान हो, तुम्हारे हृदय समान हों, तुम्हारा मन समान हो।

इस प्रकार का मानवैक्य शिक्षा से ओत प्रोत अन्य संस्कृतियों में उपदेश नहीं।

विचारों का भाषा से बड़ा गहरा सम्बन्ध है और इन दोनों का आचरण से। विचार मन

की वस्तु है, भाषा वाणी की और आचरण कम शीलता को कहते हैं। यद्यपि मन, वचन और कर्म स्वरूपत भिन्न हैं। फिर भी अर्थतः ऐक्य सम्पादन करना पड़ता है, जो संस्कृति का मूलमन्त्र है।

मनस्येकं वचस्येकं कर्मण्येकं महात्मनाम्,
मनस्यन्यद्वचस्यन्यत्कर्मण्यन्यद्दुरात्मनाम् ।

महात्मा बनाने वाली संस्कृति, वैदिक संस्कृति है और भाषा वैदिक संस्कृत।

तस्माद्यज्ञात्सर्व्वहुतः ऋचः सामानि जज्ञिरे।
छन्दांसि जज्ञिरे तस्माद्यजुस्तस्मादजायत ।
यस्मादृचो अपातक्षन्, यजुर्यस्मादपाकषन्,
सामानि यस्य लोमान्यथर्व्वाऽङ्गिरसो मुखम्।

इन दो वेदमन्त्रों में यह स्पष्ट घोषणा की है कि उस परम पिता परमात्मा ने ही सृष्टि के आदि में वेदों का ज्ञान दिया है।

'अग्नेऋ ग्वेदः, वायोर्यजुर्वेदः सूर्य्यात्सामवेदः।'
अग्नि-वायु-रविभ्यस्तु, त्रयं ब्रह्म सनातनम्।
दुदोह यज्ञसद्ध्यर्थम्, ऋग्यजुः सामलक्षणम्॥

इन दो प्रमाणों से यह स्पष्ट है कि वेदों का ज्ञान परमात्मा ने सृष्टि के प्रारम्भ में अग्नि-वायु-आदित्य-अङ्गिरा के हृदय में दिया।

यस्मिन्नृचः साम यजूंषि. यस्मिन् प्रतिष्ठिता रथनाभाविवाराः यस्मिंश्चित्तं सर्व्वमोतं प्रजानां तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु।

इस मन्त्र में 'मन में वेदों का ज्ञान अधिष्ठित किया' यह स्पष्ट लिखा है।

अग्नि-वायु-आदित्य और अंगिरा अमैथुनी सृष्टि के मानव थे ' तत्र शरीरं द्विविधं योनिजम-योनिजं च'' "सन्त्ययोनिजाः" कणाद ऋषि के दो सूत्रों के अनुसार अयोनिज अमैथुनी सृष्टि को ही कहते हैं। वेद में भी 'अज्येष्ठास अकनिष्ठास०' मन्त्र द्वारा अमैथुनी सृष्टि का वर्णन मिलता है कि उसमें न तो बुड्ढे ही पैदा हुये क्योंकि वे परसेवापेक्षी होते हैं। न बच्चे ही, क्योंकि वे भी साहाय्याभिलाषी होते हैं, ऐसी युवा सृष्टि में विशुद्धान्तः करण वाले मुक्तावृत्त ऋषि चतुष्टय के हृदय में वेद का विश्वव्यापक ज्ञान भाषा सहित ईश्वर ने आविर्भूत किया संस्कृत आत्माओं द्वारा ही वैदिक संस्कृत भाषा में वैदिक संस्कृति विश्वकल्याण के लिये सृष्टि के आदि में परमात्मा ने भारत भूमि पर दी।

इसी भाव को वेदों ने तीन देवियों के रूप में अभिव्यक्त किया है।

"इडा, सरस्वती, मही, तिस्रो देवीर्मयोभुवः" ये तीनों देवियां, मातृ-भाषा, मातृ-संस्कृति और मातृ-भूमि ही है और कुछ नहीं।

अमैथुनी सृष्टि के नर-नारी जगत् ने दम्पतित्व स्वीकार करके जो सन्तति निर्माण की, उस सन्तति की मातृभाषा वैदिक संस्कृत थी, मातृ संस्कृति वैदिक संस्कृति और मातृ भूमि भारत की भूमि।

सकल संसृति के निखिल मानवों की मातृ भाषा वैदिक संस्कृत है और मातृ संस्कृति वैदिक संस्कृति तथा मातृ भूमि यही भरत खण्ड है। इसी लिये तो समस्त एतद्देशीय और वैदेशिक विद्वानों ने इस बात को स्वीकार किया है कि समस्त भाषाओं का मूल कोई एक भाषा है, समस्त संस्कृतियों का मूल कोई एक संस्कृति है और समस्त जातियों के पूर्वज कभी एक जगह अवश्य रहे थे।

समस्त पौरस्त्य एवं पाश्चात्य विद्वानों ने ऋग्वेद की प्राचीनता को मुक्त कण्ठ से स्वीकार किया है। यह स्वीकृति ही स्पष्ट निर्णय करती है कि विश्वकल्याण कारिणी देवियां वेदों से सम्बन्ध रखने वाली हैं।

(शेष अगले अङ्क में देखें)

आर्य जगत्

दो सुयोग्य पाश्चात्य विद्वानों से भेंट

सार्वदेशिक आर्यप्रतिनिधि सभा के स० मंत्री श्री पं० धर्मदेव जी विद्यावाचस्पति ने इस जुलाई मास में दो सुयोग्य पाश्चात्य विद्वानों से भेंट करके उन्हें वैदिक सिद्धान्त तत्त्वज्ञान तथा आर्य समाज के कार्य से अवगत कराते हुए सार्वदेशिक सभा की ओर से उन्हे Vedic Culture, सत्यार्थ प्रकाश (अंग्रेजी) Gems of Vedic Wisdom. Catechism on Vedic Dharma आदि पुस्तके भेंट की तथा उनकी प्राचीन आर्यों के गो मांस भक्षण, सोम के नाम से मद्य सेवनादि विषयक शङ्काओंका सप्रमाण समाधान किया। इनमें से प्रथम विद्वान् हौस्टन टैक्सस (अमेरिका) के प्रो० नीलसन् थे जो राइस इन्स्टीट्यूट् मे फिलासफी और धर्म के प्रोफेसर हैं। आपको न्यू हैवन कन्नेक्टिकट (अमेरिका) की येल युनिवर्सिटी के प्रो० नार्विन हैन् ने (जो लगभग २ वर्ष हुए देहली में पं० धर्मदेव जी से मिल चुके थे और जो विशेष रूप से प्रभावित हुए थे) पण्डित जी से मिलने का विशेष परामर्श दिया था। तदनुसार प्रो० नीलसन ८ जुलाई को श्री श्रद्धानन्द बलिदान भवन में पं० धर्मदेव जी से मिलने के लिये पधारे। पण्डित जी ने १½ घ० मे एकेश्वरवाद, ब्रह्म, जीव और प्रकृति की अनादिता, कर्म नियम, पुनर्जन्म, वैदिक यज्ञों में पशुहिंसा का अभाव, सब भाषाओं की माता संस्कृत भाषा, आदि विषयों पर-अंग्रेजी में प्रकाश डाला जिसे प्रो० नीलसन ने न केवल ध्यान से सुना अपितु उसके मुख्य २ अंशों को वे नोट् करते गये। सत्यार्थ प्रकाश के महत्त्व तथा उसके उद्देश्य की भी पण्डित जी ने उचित व्याख्या की और फिर वैदिक कल्चर, सत्यार्थ प्रकाश, उपनिषदों के अंग्रेजी अनुवाद आदि पुस्तके उन्हे भेंट कीं। प्रो० नील्सन ने इस भेंट पर अत्यधिक प्रसन्नता प्रकट की। २२ जुलाई को प्रात: ११ बजे प० धर्मदेव जी नीदर लैन्ड (हौलैन्ड राजदूतावास के प्रधान परामर्श दाता डा० वान गुलिक डी० लिट से मिलने पत्र द्वारा निश्चित समयानुसार रैटडन् रोड् नई देहली गये। डा० वान गुलिक ने उन्हे घर में ले जा कर १ घ० तक प्रेम पूर्वक धार्मिक विषयों पर बातचीत की तथा पं० धर्मदेवजी ने वैदिक धर्म के मुख्य तत्त्व बताते हुए उन की वैदिक आर्यों के गोमांस सेवन, मद्यसेवनादि विषयक शङ्काओं का सप्रमाण समाधान किया। डा० वान गुलिक संस्कृत के अच्छे विद्वान् हैं। आपने अपनी मातृभाषा डच मे कालिदास कवि के विक्रमोर्वशीय का अनुवाद भी किया है। आपने प० धर्मदेव जी को अपना विशाल पुस्तकालय भी दिखाया जिसमें रामायण महाभारत (सटीक) रघुवंश उत्तर रामचरित, मृच्छ कटिक आदि बहुत सी संस्कृत पुस्तके विद्यमान हैं जिन का डा० वान् गुलिक अध्ययन करते रहते हैं। प० धर्मदेव जी ने उन्हें स्वरचित संस्कृत श्लोक भी सुनाये जिन्हे उन्होंने बहुत

पसन्द किया। वैदिक कल्चर, सत्यार्थ प्रकाश आदि पुस्तकों को उन्होंने ध्यानपूर्वक पढ़ने का ही वचन नहीं किन्तु यह भी कहा कि यदि उन का पूरा सन्तोष हो गया तो वे इनमें से कुछ का डच भाषा में अनुवाद भी करने का यत्न करेंगे। डा० वान् गुलिक ने इस भेंट पर बड़ी प्रसन्नता प्रकट की और यह इच्छा प्रकट की कि इस प्रकार की भेंट तथा विचार विनिमय उनसे यथासमय पुनः होता रहे। फ्रांस, जर्मनी तथा अन्य देशों के राजदूतों को भी भेंट के लिये पत्र लिखे गये हैं। उनके उत्तर आने पर उनसे भेंट की जायगी। उपर्युक्त दोनों विद्वानों से यह जान कर प्रसन्नता हुई कि उनके देशों में संस्कृत का अध्ययन अब विद्यार्थी अधिक संख्या में करने लगे हैं।

(संवाद दाता)

दार्शनिक चर्चा

वैदिक आपस्तत्व का दार्शनिक स्वरूप

[लेखक—आचार्य वैद्यनाथ जी शास्त्री एम. ए]

इस जगत की उत्पत्ति से पूर्व एवं प्रलयावस्था में ईश्वर, जीव और प्रकृति तीन मूल तत्त्व विद्यमान रहते हैं और ये ही तीन वर्तमान दृश्य जगत् के मूल कारण हैं, ऐसा वेदों का सिद्धान्त है। द्वासुपर्णा सयुजा सखाया समान वृक्षं परिषस्वजाते—ऋ० १।१६४; तथा नासदीय सूक्त ऋ० अ० ८। अ० ७। व० १७। मंत्र १-६ में आये स्वधा, तमः, सलिल, आनीदवातं स्वधयातदेक, स्वधा अधस्तात् प्रयति. परस्तात्, रेतोधाः महिमानः आदि पद वाक्य इस तथ्य पर पूर्ण प्रकाश डालते हैं। स्वधा. तमः सलिल आदि शब्द प्रधान एवं प्रकृति के अर्थ में हैं—ऐसा विशेष रूप से अपने सार्वदेशिक आर्य महा सम्मेलन के समय निकले वेदवाणी के सम्मेलनाङ्क में तथा वेंकटेश्वर १६५० के दीपावली अङ्क में दिखला चुका हूं। 'सारस्वती सुषमा—अनुसधान पत्रिका में भी मैंने सस्कृत में इस विषय पर प्रकाश डालकर यह दिखलाया है कि पूर्व सांख्याचार्य ऐसा ही मानते थे। सांख्यास्तु तमः शब्देन प्रधानमाहुः- यह दुर्ग का वचन इस विषय में सार्थक है। स्कन्द भी ऐसा ही मानता है। अह भुवं वसुनः पूर्वस्पतिरह—इत्यादि वैकुण्ठीय सूक्त की व्याख्या करते हुए स्कन्द ने निरुक्त भाष्य में "विकुण्ठा" पद का भी प्रकृति ही अर्थ लिया है। अस्तु इन विषयों पर मेरे पास जो सामग्री है उसका ग्रन्थ के रूप में समय पर प्रकाशन होगा। रेतोधाः का अर्थ कर्म के बीज से युक्त बद्धजीव और "महिमानः" का अर्थ मुक्त जीव है। प्रकृति, बद्ध और मुक्तजीव तथा परमेश्वर प्रलयावस्था में विद्यमान थे—ऐसा वेद में प्रतिपादन किया गया है। यजुः और अथर्व में 'अवि' पद से प्रकृति का ग्रहण है। प्रलय हो जाने पर जगत् रचना से पूर्व इनका परस्पर भाव. इनकी स्थिति, द्रव्य की दृष्टि से स्वभावतः पृथक् होते हुए भी ऐसी संकीर्ण रहती है कि इन्हें स्पष्ट रूप से वर्णन में लाना कठिन होता है। नासदीय सूक्त में ठीक यही अवस्था चित्रित की गई मालूम पड़ती है। तीनों तत्त्व पृथक् पृथक् हैं फिर भी व्यवहार में न बतलाये जा सकने के कारण सत्, असत्, मृत्यु, अमृत, आदि किसी भी प्रकार में उनका वर्णन नहीं किया जा सकता है। इन असत् और सत् आदि शब्दों से न केवल अद्वैत वादियों की प्रक्रिया का प्रतिपादन है न शून्यवाद, न इन तीनों तत्वों के अभाव का बल्कि व्यवहार की अविद्यमानता और सृष्टि की प्रागवस्था की गूढ़ता का वर्णन है। मनु के—आसीदिदं तमोभूतमप्रज्ञातमलक्षणम् । अप्रतर्क्यमविज्ञेयं प्रसुप्तमिव सर्वतः ॥ मनुः १।५ का भाव भी वही है जो नासदीय सूक्त के "नासदासीन्नो सदासीत्" आदि का भाव है। ऋषिदयानन्द ने इस प्रक्रिया के समन्वयार्थ अपनी ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका में 'तद्व्यवहारस्य वर्तमानाभावात्" वाक्य के प्रयोग द्वारा मनु के भाव को व्यक्त किया है। आचार्य दयानन्द के इस वाक्य का अर्थ मनु के वाक्यों के रूप में—तमोभूतत्वात्. अप्रज्ञातत्वात्, अलक्षणत्वात्, अप्रतर्क्यत्वात्, अविज्ञेयत्वात्, प्रसुप्तमिव विद्यमानत्वात्—बनेंगे। उस समय असद् और सद् आदि का व्यवहार

इसलिये एकान्ततः नहीं किया जासकता था क्योंकि इस के व्यवहार की विद्यमानता नहीं थी—ये प्रयोग व्यवहार अवस्था में किये जासकते हैं। व्यवहार की वर्तमानता न होने से पूर्वोक्त कथन का तात्पर्य है। ऋषि के इसी अर्थ को मनु के वाक्यों में भी पाया जाता है। तमोभूत एवं अन्धकार से आच्छादित यह जगत् का कारण प्रकृति आदि के रूप में था। इस समय चिन्ह आदि का सामान्य और विशेषभाव का व्यवहार न होने से यह अप्रज्ञात और लक्षण में न आने योग्य था। लक्षण सदा द्रव्यगत विशेषता का द्योतक है जो कि उस समय ज्ञात नहीं होती थी। तर्क भी कार्यकारण सम्बन्ध के स्पष्टीकरण आदि के बिना नहीं होता—इसलिये यह अप्रतर्क्य था। कोई स्पष्ट चिन्ह जो असकीर्ण रूप मे हों नहीं थे जिनसे वह अविज्ञेय था। वस्तुत यह सब बातें क्यों थी? इस लिये कि तमोभूत था और स्वप्नावस्था में सोये हुए रूप के समान था। सोने की अवस्था में जिस प्रकार सब बाह्य ज्ञानों का अभाव होता है उसी प्रकार प्रलयावस्था मे भी समस्त बाह्य व्यवहारों का अभाव सा था। वस्तुतः ईश्वर, जीव और प्रकृति रूपी तीनों तत्त्व विद्यमान थे। प्रकृति सत्व, रजस और तमस् की साम्यावस्था में थी। उसी में अनेकों जीव भी अपने रूप में विद्यमान थे और परमात्मा भी अन्तरात्मा की भांति उसमें व्यापक हो विद्यमान था। परन्तु इनका पृथक् वर्णन करना कठिन था। परमात्मा के प्रयत्न जिसे मैं पूर्व स्वधा अवस्तात् प्रयतिः परस्तात् मे 'प्रयतिः' कह आया हूं सृष्टि रचना के लिए चल रहा था। इस प्रयत्नमयी, एवं कारण द्रव्य को कार्य में लगाने की ज्ञान पूर्ण क्रिया एवं ईक्षण ने उस साम्यावस्था मे विद्यमान प्रकृति पर कार्य किया। उस की यह अवस्था भंग होने लगी। प्रकृति मे सत्व रजस् और तमस् तीन गुणयुक्त तत्त्व हैं। सत्व प्रकाशात्मक, रज प्राकृतिक-क्रिया प्रधान और तम जड़ता प्रधान है। रजस् केवल क्रिया का हेतु बनता है। परमात्मा के ईक्षण को यह ग्रहण करते ही हलचल मे आजाता है। यद्यपि प्रत्येक अवस्था मे तीनों गुण किसी एक से पृथक् नहीं होते—केवल प्रभाव में आधिक्य और न्यून भाव ही होता है फिर भी सृष्टि अवस्था मे सत्व के साथ रजस् आधिक्य में रहता है और प्रलय में 'तमस' का प्रभाव रहता है। प्रकाश प्रधान और जाड्य प्रधान प्रकृति परमाणुओं में क्षेत्र होने पर जो अवस्था प्रकृति की होगी वह इतनी सूक्ष्म होगी कि उसका भी वर्णन होना कठिन होगा। सृष्टि के विकास की प्रथम इस अवस्था का भी वर्णन कठिन ही है। परमेश्वर की निमित्तता से प्रकृति मे तीनों प्रकार के तत्व विषमावस्था मे आने लगते है। प्रकृति मे सृष्टि के आधारभूत समस्त देव सन्निहित हैं। ३३ देवों को वेद में सृष्टि का तत्त्व माना गया है। यही पिण्ड मे तत्वभूत हैं और यही ब्रह्माण्ड में भी। परन्तु प्रागवस्था से लेकर इन देवों के प्रकृति मे स्पष्ट होने की अवस्था तक आने में प्रचुर समय लगता है। परमेश्वर को अपने अभीद्ध तप से प्रकृति को प्रचुर गति, शक्ति, और चौंकन देनी पड़ती है। सारी सृष्टि की मूलभूत देव शक्ति मे जो अग्नि और सोम एव ऋण और धन, विद्युत् तथा शक्ति के रूप में हैं प्रकृति मे विद्यमान हैं। परमेश्वर, अपने तप से प्रकृति पर पर्याप्त ताप देता है। इससे गति, ताप, शक्ति का सचार होता है। ताप, गति और प्रकाश तीनों सयुक्त हैं। इन सबका समन्वय अभीद्ध तप और 'ईक्षण' में है। प्रकृति में जो गति इस प्रेरणा से पैदा होती है—वह सयोगात्मक अथवा वियोगात्मक रूप की होती है। किसी तत्व का संयोग किया जाता है किसी का वियोग। इस गति के सचार से प्रकृति में

बीज अंकुरित होकर प्रकृति परमाणु इस रूप मे आजाते हैं कि उनको जिस रूप मे चाहे ढाला जा सके। उनमें यह स्थिति आजाती है कि वे रूपान्तरित किये जा सकें अर्थात् उस समय की अवस्था में प्रकृति तत्व (Moulding nature) का होजाता है। कुम्हार की चाक पर चढ़ी मिट्टी केवल मिट्टी ही नहीं होती बल्कि वह कुम्हार की हस्तकला स इस रूप में आयी हुई मिट्टी होती है कि वह किसी रूप में परिवर्त्तित की जा सके। यही अवस्था परमेश्वर के अविज्ञात अप्रतर्क्य अभीद्ध तप पर चढ़ी प्रकृति की होती है। यद्यपि उस समय प्रकृति की व्यापकता के कारण सर्वत्र प्रकृति परमाणुओं का एक व्यापन शील विस्तृत अग्निषोमीय समुद्र सा बन जाता है। फिर भी प्रकृति की सूक्ष्मता का अत्यन्त स्थूल पन अभी तक नहीं हो पाता। प्रकाश, विद्युत्, जाड्यतत्व, क्रिया और जाड्यतत्वों पर ताप के पड़ने से तारल्य आदि भावों से प्रकृति परमाणु युक्त हो जाते हैं। इसे वेद में "आप." तत्व कहा गया है। यह 'आप.' नाम बाला इस लिये है कि सर्वत्र फैला है, रूपान्तरित होने योग्य है और इसी से सृष्टि की रचना का साधन उपस्थित होता है। प्रागवस्था मे जिस "कुहकस्य' शर्मन्नंभः किमासीद् गहनं गभीरम्" का अव्यवहार बतलाया गया है—वह इस प्रकृति की अवस्था में दृष्टिगोचर होता है। यजुर्वेद २७।२५. और २६—आपोहयद्बृहतीर्विश्वमायन् गर्भं दधाना जनयन्तीरग्निम् . ततो देवानां समवर्ततासुरेकः तथा यश्चिदापो महिना पर्यपश्यद्॥ में यही भाव भरा है। प्रकृति की इस अवस्था में सृष्टि के तत्व देव सभी मिले रहते हैं और उनका प्राणभूत एक परमात्मतत्व इनके प्रकटी करण से वर्णन की अवस्थामें आने लगता है। किं स्विद्गर्भं प्रथमं दध्र आपः॥ तमिद्गर्भं प्रथमं दध्र आप। यत्र देवा· समगच्छन्त विश्वे। यजुर्वेद १७।१९।३० के मंत्रों की यह स्थिति ऐसे भाव की सूचयिन्त्री है। ये 'आपः' रूप प्रकृति तत्व पुनः जगत् उत्पादन में प्रधान साधनभूत गर्भ को धारण कर अग्नि को उत्पन्न करते हैं। अग्नि संयोग और वियोग दोनों का साधन है अत परमात्मा की निमित्तता से ये "आपः परमाणु विविध रूपों में संयोग वियोग कार्यों से परिवर्त्तित होने को सन्नद्ध हो जाते हैं। सृष्टि की तत्त्व रूपी देवतायें अपने स्वरूप को इसमें स्पष्टीभूत सी करने लगती हैं। गतिशील होने से ऋषि और दिव्य होने से देवता नाम एक ही पदार्थों के वेद में देखे जाते हैं। जगत् की रचना के तत्त्व जिन्हें ऋषि कहा गया है या जो ही पूर्व कथित देव हैं प्रकट होने लगते हैं। यजु० १७ २८ में त आयजन्त द्रविणं समस्मा ऋषय· पूर्वे जरितारो न भूना। असूर्ते सूर्ते रजसि निषत्ते ये भूतानि समकृण्वन्निमानि। में ये ही तत्त्व वर्णित हैं। ब्राह्मणों में 'आपः' की निरुक्ति इस प्रकार की गई है—सेद सर्वमाप्नोद्यदिदं किं च यदाप्नोत् तस्मादाप ।श०।६।१।१।९, तद्यदब्रवीत् आभिर्वा अहमिदं सर्वमाप्स्यामि यदिदंकिंचेति तस्मादापोऽभवंस्तदपामप्त्वम्॥ गोपथ पू० १।२ अर्थात् सब कुछ को इसी ने व्याप्त किया था अथवा इसी के द्वारा सब जगत् को प्राप्त करने की प्रजापति ने इच्छा की अतः इन का नाम 'आप' पड़ा। चूंकि प्रकृति के ये तत्व जगत् की रचना के साधन हैं और इनमें सब कुछ संनिविष्ट है अत. "आपः" शब्द इन में प्रयुक्त करना ठीक ही है। प्रकृति के इस अवस्था में आजाने पर पूर्व 'तम.' था, उसका नोदन हो चुकता है और स्वयंभू परमेश्वर. प्रकृति और जीव का भिन्न भिन्न रूप में ज्ञान होने लगता है। ये तीनों शक्तियाँ स्पष्ट रूप से अपने स्वरूप का भान कराने लगती हैं। जो गूढ़ प्रलयतम में नहीं ज्ञात होती थीं ज्ञात होने लगती हैं। इस परमात्म

शक्ति ने इन: "आपः" प्रकृति परमाणुओं में अपनी सिसृक्षागति कोसंचालित रखा,इससे प्रकृति प्रकाशाप्रकाश लोकों के समष्टिभूत 'हैमाण्ड' एवं विराट् के रूप में आगयी। विराट् के रूप में आते ही जगत् की रचना का मूल स्पष्ट होने लगा। मनुस्मृति १।६।६ का यही भाव है। इस अवस्था में प्रकृति के आजाने से जगत् के कर्त्ता के वास्तविक स्वरूप में परमात्मा का भान होने लगा। पहले जहां तम का, प्रकृति जीव और ईश्वर के स्वरूप का ज्ञान नहीं होता था वहां अब यह अवस्था आगयी कि कर्त्ता परमात्मा और जगत् के समष्टि कारण आदि अपने गुणों के साथ भान में आ गये। ये तर्क्य, विज्ञेय और सुज्ञात होगये। जगत् के कारण भूत प्रधान तत्व के साथ इस प्रकार सिसृक्षा के, पूर्ण रूप में ज्ञात होने वाले परमेश्वर को 'ब्रह्मा' कहा जाता है। पूर्व कथित "आपः" तत्व में व्यापक प्रभु जहाँ नारायण था वहां अब यह 'ब्रह्मा' के व्यवहार में आ गया। 'आपः' को ही 'नाराः' भी नाम दिया जाता है। मनु ने १।११ में 'ब्रह्मा' का अर्थ जो भी व्यक्त किया है वह इस मेरी प्रक्रिया से पूरा समन्वय खाता है। संपूर्णजगत् के उपादान, अव्यक्त, नित्य, सत् और असत् वस्तुओं के प्रकृतिभूत प्रधान के साथ मूल में ही विद्यमान सिसृक्षावशात् प्रकृति की इस विराट् दशा में उससे सपन्न परमात्मा को ही "ब्रह्मा" कहा जाता है। यहां मनु ने नासदीय सूक्त में आये सत् असत् आदि शब्दों का ही प्रयोग तदर्थ भावभावित हो किया है। परमेश्वर को प्रकृति की यह अवस्था करने में पर्याप्त काल लगा जो सृष्टिकाल का वस्तुतः शतांश कहा जा सकता है। इसे परिवत्सर कहा जाता है। इस हैमाण्ड से पुनः परमेश्वर ने प्रकाशाप्रकाश लोकों की रचना की। पुनः यह सृष्टि विकास हुआ। इसे निरिन्द्रिय सृष्टि कह सकते हैं। सेन्द्रिय सृष्टि का विकास इस प्रभु ने साथ ही साथ उस प्रकृति से किया। जिसका क्रम प्रकृति से मनसः रेतः, प्रतिमा एवं पूर्वचित्तिः। उससे महत्तत्व और उससे पुनः अहंकार आदि क्रमसे पंचतन्मात्रा मन और इन्द्रियाँ आदि उत्पन्न किये गये। इनमें अहंकार से पूर्व अवस्था अप्रतर्क्य अवस्था की अनन्तरभावी है। अहंकार से इन्द्रियाँ आदि की अवस्था 'आपः' अवस्था के बाद की मालूम पड़ती है। इस प्रकार वेद में कथित सृष्टि क्रम का दार्शनिक विश्लेषण करने पर 'आपः का अर्थ प्रकृति की वह अवस्था विशेष मालूम पड़ती है, जिसमें प्रकृति परमाणु साम्यावस्था से आकर जगत् रचने योग्य, हर कार्य रूप में परिवर्त्तित किये जाने की क्षमता वाले हो जाते हैं। यह विचार दार्शनिक दृष्टि से बहुत ही मूल्यवान है। ब्राह्मण ग्रन्थों में इसका विशेष वर्णन मिलता है। इस की छाप ही इजिप्ट के लोगों के सृष्टि विषयक वर्णनों में पायी जाती है। स्यात् वह वेद की आन्तरिक भावना को न समझकर केवल ऊपरी रूप से वहां पल्लवित हुई हो। आपो ह अग्रे सलिल मवास। ता अकामयंत ....अतप्यन्त, तासु हिरण्यमाण्डं संबभूव छा० ६ २।४ सो ऽपोऽसृजत वाच एव लोकाद्वागेवास्य सासृज्यत (श० ६।१।१।६) सोऽकामयत आभ्यो अद्भ्योऽधि प्रजायेयेति सो ऽनया त्रय्या विद्यया सहापः प्राविशत्ततः आण्डयं समवतत— श० ६।१।१।१० । ऊपर कहे गये आपः तत्व का यह वर्णन है। इसी का रूप इजिप्ट के लोगों में जिस रूप में पाया जाता है उसका वर्णन इस प्रकार है—

According to the writings of the Egyptians, there was a time when neither heaven nor Earth existed, an when nothing had being except the boundless primeval water which was, however, shrouded with thick

darkness At length, the spirit of the primeval water felt the desire for creative activity, and having uttered the word, the world sprang straigtway into being in the form which had already been depicted, in the mind of the spirit before he spoke the word which resulted in the creation The next act of creation was the formation of a germ or egg from which sprang Ra, the Sun God within whose shining form was embodied the almighty power of the divine Spirit (Egyptian Ideas of the future life by E A Wallis Budge pages 22 & 23) इस प्रकार ब्राह्मण ग्रन्थों और इजिप्ट लोगों के विचार लगभग मिलते हैं। इनके सभी क्रम पूर्वोक्त आप क्रम के बाद के क्रम से मिलते हैं। मैंने एक वस्तु लिखना छोड़ दी जो यदि लिखदू तो पूरा समन्वय हो जावेगा। 'आप' के साथ ब्राह्मणों में 'त्रयी' वेद विद्या के साथ जल में परमेश्वर का प्रवेश करना लिखा है। और 'हो' 'हो' पुन हो'—ऐसा बोलने पर सृष्टि हुई तथा त्रयी विद्या भी हुई। यह ठीक ही है वेद ज्ञान का विकास भी साथ ही साथ सृष्टि विकास में चला आ रहा है। ब्रह्मा जहा रचयिता है वहा वेद ज्ञान का भी प्रदाता है। उसमें दोनों ही भाव निहित हैं। वेद शब्दों के साथ सृष्टि का सम्बन्ध भी है। यही भाव पूर्वोक्त इजिप्ट लोगों के मन्दर्भो में भी हैं। 'कुन' फैकुना की भावना भी शायद इसी विकल रूप हो।

विदेश के लिये आर्योपदेशक की आवश्यकता

आर्य्य दिवाकर सभा पारामारीबो (डच गायना) को एक ऐसे योग्य, अनुभवी सन्यासी महानुभाव वा वानप्रस्थ उपदेशक की आवश्यकता है जो अग्रेजी व सस्कृत के पडित होने के साथ २ अग्रेजी और हिन्दी में व्याख्यान देने की अच्छी योग्यता रखते हों, आर्य सिद्धान्तों और तुलनात्मक धर्म का जिनका अच्छा अनुशीलन और अध्ययन हो, जिनमें प्रचार व सगठन कार्य की योग्यता भी हो, वहा जाने आने तथा रहने का व्यय उक्त सभा के जिम्मे होगा। गृहस्थ आर्योपदेशक भी भेजे जा सकते हैं, परन्तु उनकी आयु कम से कम ८० वर्ष की हो और सपत्नीक पहली बार कम से कम ५ वर्ष के लिये जाने के लिये उद्यत हों। उपदेशक महानुभाव को कम से कम ५ वर्ष के लिये जाना होगा। रहने के लिये मकान व गृहस्थ का आवश्यक सामान दिवाकर सभा की ओर से मिलेगा। दक्षिणा का निर्णय अनुभव व योग्यता के अनुसार किया जायगा। प्रार्थना पत्र ३०.९.५२ तक सार्वदेशिक सभा के कार्यालय में पहुच जाना चाहिए। उपर्युक्त योग्यताओं वाले महानुभाव ही प्रार्थना पत्र भेजने का कष्ट करें।

मन्त्री
सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा,
देहली।

अनुकरणीय कार्य

श्रीमान् मंत्री जी,

सार्वदेशिक सभा, देहली

मान्यवर नमस्ते।

आपको इस वर्ष के कार्य-क्रम विषयक विज्ञप्ति मिली हुए है कि सभा ठोस और रचनात्मक कार्य की ओर अग्रसर हो रही है।

इस समय अमरोहा नगर मे ३ रात्रि के प्रौढ़ शिक्षा के केन्द्र सुचारु रूप से चल रहा है। जिसमें नगर के सभी जाति के लगभग ८० निर्धन विद्यार्थी निशुल्क शिक्षा पा रहे हैं। आर्य समाज को किसी भी प्रकार की भी सहायता राज्य द्वारा अभी तक प्राप्त नहीं हुई है अतः व्यय भार स्वयं ही वहन करना पड़ता है इस प्रौढ़ शिक्षा के कार्य के ऊपर लगभग ६० मासिक व्यय भी किया जा रहा है।

यह कार्य १ जनवरी ५० से सुचारु रूप से चल रहा है अब तक इस पाठशाला का निरीक्षण नगर के गण्यमान्य व्यक्तियों के अतिरिक्त उत्तर प्रदेशीय कांग्रेस के प्रधान श्री अलगूराम जी, शास्त्री हाकिम परगना अमरोहा तथा अन्यान्य लोग कर चुके हैं।

भवदीय

मन्त्री

आर्य समाज अमरोहा

उत्तरप्रदेश

दान-सूची

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, देहली

(२१-६-५२ से २०-७-५२ तक)

दान आर्यसमाज स्थापना दिवस

५०) आर्यसमाज सीसामऊ कानपुर

४२) ,, लश्कर (ग्वालियर)

१२) ,, चिटगोपा, बीदर (हैद्राबाद स्टेट)

१०४) योग

९१३।=) गत योग

१०१७।=) सब योग

दान दाताओं को धन्यवाद—

जिन समाजों ने इस सभा की आर्य समाज स्थापना दिवस की अपील पर धन संग्रह न किया हो वे अब धन संग्रह करके अथवा अपने कोष से एक पुष्कल राशी शीघ्र ही इस सभा के कार्यालय में भिजवा देवें। अभी तक जिन समाजों से सभा में इस निधि का धन अप्राप्त है, उन्हें अपने कर्त्तव्य का पालन करते हुए सभा के आदेशानुसार धन शीघ्र भिजवाना चाहिए।

कविराज हरनामदास बी० ए०
मन्त्री, सार्वदेशिक सभा

विविध दान

२५) गुप्त दान

२५) योग

६९४)।।। गत योग

७१९)।।। सर्व योग

हिसार (पंजाब) पशु पीड़ित सहायता

६०) आर्यसमाज खोघी रोड नई देहली

६०) योग

मद्रास प्रान्त दुर्भिक्ष सहायता

६) श्री ओमप्रकाश जी कोल्हापुर हाउस, सब्जी मण्डी, देहली

६) योग

दान सार्वदेशिक वेद प्रचार

१०) श्री माया सिंह जी A.S.C. नसीराबाद

५) ,, सोहन लाल जी साहू भिवानी (हिसार)

५) ,, गन्डाराम जी आर्य पूरनपुर (पीलीभीत)

२५) ,, कविराज हरनामदास जी बी० ए० देहली

५१) ,, इन्द्र सेन जी अपर इण्डिया ट्रेडिंग कम्पनी, मद्रास

१००) ,, सेठ ईश्वरी प्रसाद जी मालिक 'बम्बई आनन्द भवन' बंगलौर नगर

१९६) योग

४२७।।=) गत योग

६२३।।=) सर्व योग

दान दाताओं को धन्यवाद। खेद है कि देश देशान्तरों में वैदिक धर्म के प्रचार की व्यवस्था के उद्देश्य से आयोजित इस सार्वदेशिक वेद प्रचार निधि के लिये अभी इतनी थोड़ी सी राशि प्राप्त हुई है। प्रत्येक आर्य नरनारी को जिसे वैदिक धर्म से प्रेम है इस निधि के लिये उदार दान देकर अपने कर्तव्य का पालन करना चाहिये जिससे सभा प्रचार क्षेत्र का विस्तार कर सके। आर्य समाजों के अधिकारियों को भी अपने सदस्यों और सहायकों का ध्यान इस ओर आकृष्ट करना चाहिये।

धर्मदेव वि० वा०
स० मन्त्री सभा

सार्वदेशिक पत्र के ग्राहकों से आवश्यक निवेदन

निम्नलिखित ग्राहकों का सार्वदेशिक पत्र का चन्दा अगस्त मास के साथ समाप्त होता है। कृपया वे अपना वार्षिक चन्दा शीघ्र मनी आर्डर द्वारा कार्यालय में पहुँचाने की कृपा करें। अन्यथा आगामी अङ्क उनकी सेवा में वी० पी० द्वारा भेजा जावेगा। धन प्रत्येक दशा में ११-८-५१ तक कार्यालय में पहुँच जाना चाहिए। मनीआर्डर कूपन पर अपना पूरा पता व ग्राहक नम्बर लिखना न भूलें अन्यथा पत्र न मिलने वा देर से मिलने का उत्तरदायित्व कार्यालय पर न होगा।

६ श्री चुन्नी भाई आर्य संतोली
४६ ,, रामावतार प्रसाद जी लहेरिया सराय
२१७ ,, आर्यसमाज कांठ (मुरादाबाद)
२१८ ,, दर्शनलाल जी लखनऊ
२२१ ,, आ० समाज चित्रगुप्त गंज लशकर
२२४ ,, आदित्यराम कालीदास पालेज (भरौंच)
२२६ ,, वालेश्वर प्रसाद जी नर्सीरावाद
३४८ ,, भँवर पाल जी आर्य कटरा पेड़ान दिल्ली
३५० ,, मन्त्री आर्य समाज लोदी रोड नई दिल्ली
३५१ , जयलाल प्रसाद जी आर्य मुशकी पुर मुंगेर
३५२ ,, आ० समाज औरय्या इटावा)
३५३ ,, आचार्य जी महर्षि दयानन्द विद्यालय चौकी (सौराष्ट्र)
३५६ आ० समाज यवतमाल
३५७ ,, ,, विहार शरीफ
३५८ ,, ,, वाढ़ (पटना)
४४० ,, ,, शिवपुरी (ग्वालियर)
४५३ ,, बा० शालिग्राम जी जवाहर नगर दिल्ली
४६० ,, आ० स० उज्जैन
४७२ ,, प्रिंसिपल बिरला आर्य्य कन्या महाविद्यालय बिरला लाइन्ज देहली
४८६ ,, सुखदेव वैद्य कृष्ण वैदिक पुस्तकालय सादाबाद
४८७ ,, मन्त्री जी वैदिक पुस्तकालय मेन रोड वरंगल
४६१ ,, रामलाल जी शास्त्री पाठशाला टिटोनिया (झालावाड़)
४६२ ,, मन्त्री आ० स० शमशाबाद (आगरा)
४६४ आर्यसमाज फतेहाबाद
४६५ ,, ,, ,, फिरावली (आगरा)
४६८ ,, योग नारायण जी ठाकुर भच्छी (दरभंगा)
५८५ ,, वी० देसप्पा शैनाई मंगलूर (दक्षिण)
५८६ ,, राजेन्द्र जी आर्य भतरौली
५६० आ० स० धागधा
५६१ ,, अमरनाथ शर्मा गोविन्द गढ़
५६३ आ० स० फतहपुर
५६५ ,, ,, दक्षिण कलकत्ता
७८६ श्री बा० दयास्वरूप जी इलाहाबाद
७६६ आर्य स० नीलोखेड़ी (करनाल)
८०० ,, वी० यल सेठ इम्पीरि० बैंक अहमदनगर
८०३ ,। आ० स० बोयन पल्ली हैद्राबाद
८०६ ,, जोखीराम जी आर्य करसियाग
८०७ ,, आ० स० सफली गुड़ा (हैद्राबाद)
८०८ आ० स० निलगा (हैदराबाद)
८०६ ,, चिटगोपा ,,
८१० ,, सिकन्दराबाद (हैद्राबाद)
८११ ,, औरादशाही ,,
८१२ ,, उस्मानाबाद ,,
८१३ ,, लोहारा ,,
८१४ ,, डुबल गुंडी ,,
८१५ ,, हलीखेड़ ,,
८१६ ,, करड़खेड़ ,,
८१६ ,, हलगरा ,,
८४० श्री प्रयाग जी स्वरूप नगर कानपुर
६६० ,, प्रेमसुख जी तोष्णीवाल कलकत्ता १

व्यवस्थापक

स्वाध्याय योग्य साहित्य

(१) श्री स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी की पूर्वी अफ्रीका तथा मौरीशस यात्रा २।)
(२) वेद की इयत्ता (ले० श्री स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी) १।।)
(३) महर्षि दयानन्द और महात्मा गांधी (पं० धर्मदेव जी वि० वा) २)
(४) बौद्ध मत और वैदिक धर्म ,, १।।)
(५) मनोविज्ञान व शिव संकल्प (स्वा० आत्मानन्द जी) २।।)
(६) धर्म का आदि स्रोत (पं० गंगाप्रसाद जी एम. ए.) २)
(७) वेद रहस्य (श्री नारायण स्वामी जी) १।।)
(८) ईश्वर की सर्वज्ञता (ले० देवराम जी सि० शास्त्री) १)
(९) सुभाषित रत्न माला (ले० पं० कृष्णचन्द्र जी वि० अ०) ।।≈)
(१०) संस्कार महत्व (पं० मदनमोहन विद्यासागर जी) ।।।)
(११) जनकल्याण का मूल मन्त्र ,, ।।)
(१२ वेदों की अन्तः साक्षी ,, का महत्व ।≈)
(१३) आर्य घोष ,, ।।)
(१४) आर्य स्तोत्र ,, ।।)
(१५) वैदिक कर्त्तव्य शास्त्र ,, १।।)

English Publications of Sarvadeshik Sabha.

1. Agnihotra (Bound) (Dr. Satya Prakash D. Sc.) 2/8/-
2. Kenopanishat (Translation by Pt. Ganga Prasad ji, M. A.) -/4/-
3. The Principles & Bye-laws of the Aryasamaj -/1/6
4. Aryasamaj & International Aryan League (By Pt. Ganga Prasad ji Upadhyaya M. A.)-/1/-
5. Voice of Arya Varta (T. L. Vasvani) -/2/-
6. Truth & Vedas (Rai Sahib Thakur Datt Dhawan) -/6/-
7. Truth Bed Rocks of Aryan Culture (Rai Sahib Thakur Datt Dhawan) -/8/-
8. Vedic Teachings & Ideals (Dhareshwar B. A. Atma) 1/4/-
9. Vedic Culture (Pt. Ganga Prasad Upadhyaya M. A.) 3/8/-
10. Aryasamaj & Theosophical Society (B. Shyam Sundarlal B. A. LL. B.) -/3/-
11. Glimpses of Dayanand (by Chamupati M. A.) 1/8/-
12. A Case of Satyarth Prakash in Sind (S. Chandra) 1/8/-
13. In Defence of Satyarth Prakash (Prof Sudhakar M A.) -/2/-
14. We and our Critics -/1/6
15. Universality of Satyarth Prakash -/1/-
16. Rishi Dayanand & Satyarth Prakash (Pt. Dharma Deva ji Vidyavachaspati) -/8/-
17. Landmarks of Swami Dayanand (Pt. Ganga Prasadji Upadhyaya M. A.) 1/-/-
18. Scope & Mission of Aryasamaj (Pt. Ganga Prasad ji Upadhyaya M. A.) 1/4/-
24. Political Science Royal Edition 2/8/- Ordinary Edition -/8/-
25. The Light of Truth 6/-/-
26. Life After Death(Pt. Ganga Prasad Upadhyaya M. A.) I/4/-
27. Elementary Teachings of Hindusim ,, -/8/-
28. Kathopanishad (By Pt. Ganga Parshad Rtd. Chief Judge) 1/4/-

Can be had from :—SARVADESHIK ARYA PRATINIDHI SABHA, DELHI.

Regd. No. D 51

मुद्रक-चतुरसेन गुप्त द्वारा सार्वदेशिक प्रेस पटौदी हाउस दिल्ली ७ में छपकर
श्रीरघुनाथ प्रसाद जी पाठक पब्लिशर द्वारा सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा देहली ६ से प्रकाशित

भाद्रपद २००९ वि० सितम्बर १९५२	सम्पादक श्री प० धर्मदेव सिद्धान्तालङ्कार विद्यावाचस्पति	मूल्य स्वदेश ५) विदेश १० शि० एक प्रति ।।)

विषयानुक्रमणिका

ओ३म्

सार्वदेशिक आर्य-प्रतिनिधि सभा देहली का मासिक मुख-पत्र

वर्ष २६ } सितम्बर १९५२, भाद्रपद २००९ वि० दयानन्दाब्द १२८ } अङ्क ७

ओ३म्

वैदिक प्रार्थना

आ३म् आनो गहि सख्येभिः शिवेभिर्महान् महीभिरूतिभिः सरण्यन्,
अस्मे रयिं बहुलं सन्तरुत्रं सुवाचं भागं यशसं कृधी नः ॥ ऋ० ३।१।१९

शब्दार्थः—हे परमेश्वर ! (महान्) सब से बड़ा तू (महीभिः ऊतिभिः) बड़ी रक्षण शक्तियों और ज्ञानादि से (सरण्यन्) हमें ज्ञान सम्पन्न करता हुआ (शिवेभिः सख्येभिः) शान्ति दायक मित्रता के साथ (नः आ गहि) हमें प्राप्त हो। (अस्मे) हमारे लिये (बहुलम्) बहुत (संतरुत्रम्) सब दुःखों से तराने वाले (रयिम्) विद्यादि ऐश्वर्य को (सुवाचम्) उत्तम वाणी को (भागं यशसम्) भजनीय श्रेष्ठ यश को (कृधी) प्रदान कर।

विनय—हे सच्चिदानन्द स्वरूप जगदीश्वर ! तुम सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी और सर्वज्ञ होने के कारण सब से महान् हो। हम तुम्हारी शरण में आते हैं। तुम्हारी शान्ति दायिनी मित्रता और रक्षा हमें सदा प्राप्त हो। तुम्हारी कृपा और अपने पुरुषार्थ से हमें सब प्रकार के उत्तम ऐश्वर्य, कल्याण कारिणी वाणी और श्रेष्ठ यश की प्राप्ति हो यही हमारी प्रार्थना है॥

सम्पादकीय

आर्यसमाज विषयक एक भ्रामक लेख:—

'सार्वदेशिक' के अगस्त अङ्क में हमने नई देहली से प्रकाशित होने वाली 'सरिता' नाम्नी मासिक पत्रिका के 'नारियों की स्थिति' विषयक लेख पर सम्पादकीय टिप्पणी दी थी। 'अगस्त' के अङ्क मे उस पत्रिका ने किसी इन्दु-शेखर नामक सज्जन का (जिनका नाम हमने पहले कभी नहीं सुना) आर्य समाज—उत्थान और पतन' इस शीर्षक का लेख प्रकाशित किया है जिसमे लेखक ने यह स्वीकार करते हुए कि 'जिस समय हिन्दू धर्म पतनोन्मुख हो रहा था, आर्यसमाज ने उसे दोनो हाथों से उठाकर खड़ा किया' यह दिखाने का यत्न किया है कि "आज आर्य समाज स्वयम् पतन की ओर बढ़ रहा है" और उस पतन के कारणों को भी अपने विचारानुसार दिखाने का उस लेख में प्रयत्न किया गया है। कोई भी मानवीय संस्था पूर्ण नहीं। आर्यसमाज क सन्मुख 'कृण्वन्तो विश्वमार्यम्' का जो महदुद्देश्य है उससे अभी वह पर्याप्त दूर है तथा अनेक त्रुटियों को दूर करने की आवश्यकता है इस विषय में किसी का मतभेद नहीं हो सकता। हम स्वयम् इन स्तम्भों मे इन विषयों पर विचार प्रकट करते रहे हैं तथा किसी भी समाजहितैषी द्वारा शुद्ध भाव से निष्पक्षपात होकर दिये गये निर्देशों का हमें स्वागत करना चाहिये किन्तु सम्पूर्ण लेख को आद्योपान्त ध्यान पूर्वक पढ़ने पर हमें स्पष्ट ज्ञात होता है कि लेखक का आर्यसमाज तथा गुरुकुलादि विषयक ज्ञान अत्यन्त सीमित है तथा उसने बहुत अतिशयोक्ति से अपने लेख में काम लिया है। लेखक का आर्यसमाज के विषय में यह कहना कि "समस्त ब्राह्मण, पुराण, सूत्र तथा अन्य ग्रन्थों को अप्रामाणिक बताते हुए 'सत्यार्थप्रकाश' को एकमात्र ईश्वरीय ज्ञान का भण्डार घोषित करने में भी वही (सकीर्णता की) प्रवृत्ति थी।" कितना अशुद्ध तथा अज्ञान सूचक है! आर्यसमाज वेदों को निर्भ्रान्त ईश्वरीय ज्ञान और स्वतः प्रमाण तथा ब्राह्मण ग्रन्थ, सूत्र ग्रन्थ स्मृत्यादि को परतः प्रमाण मानता है हां पुराणों के अधिक भाग को वेद विरुद्ध होने के कारण वह अप्रमाण मानता है किन्तु "सत्यार्थ प्रकाश" को ही एक मात्र ईश्वरीय ज्ञान का भंडार उसने कभी घोषित नहीं किया न उस महत्त्वपूर्ण ग्रन्थरत्न के स्वनामधन्य लेखक ने कभी ऐसा दावा किया था। लेखक का यह कथन भी कि "समाज के कर्णधार थे वे उपदेशक, भजनीक, जिनकी शिक्षा नहीं के बराबर थी, जिनके विचार संकुचित थे और जिनमें शिष्ट भाषण का अभाव था।" यथार्थ नहीं है। आर्यसमाज म उच्चकोटि के अनेक विद्वान् प्रचारक के रूप मे काय करते रहे हैं और अब भी कर रहे हैं। कुछ सामान्य शिक्षित किन्तु उत्साही त्यागी लोगों ने भी अशिक्षित ग्रामीण जनता में यदि भजनीक आदि के रूप में प्रचार कार्य करके समाज की सेवा की तो उसका भी अपना स्थान था किन्तु उन्हें समाज का कर्णधार वा नेता बनाना आर्यसमाज के साथ अन्याय करना है। अब यही निरन्तर यत्न है कि सुशिक्षित महानुभावों को ही प्रचारक रूप में नियुक्त किया जाए और इसके अनुसार प्रांतीय प्रतिनिधि सभाओं तथा सार्वदेशिक सभा में कार्य हो रहा है। लेखक ने गुरुकुल के विषय में अत्यधिक अज्ञान वा पक्षपात का परिचय दिया है। उनका यह कथन कि कि 'आज गुरुकुलों को स्थापित हुए कितने ही वर्ष हो गये किन्तु वहां के स्नातकों में से एक भी सामाजिक, सांस्कृतिक, साहित्यिक अथवा राजनीतिक क्षेत्र में इतना आगे नहीं बढ़ पाया कि जनता कह सके कि

अमुक व्यक्ति गुरुकुल का स्नातक है।"

ये शब्द लेखक की अज्ञान अथवा पक्षपात पूर्ण मनोवृत्ति के परिचायक हैं। जिस गुरुकुल से श्री पं० इन्द्र जी विद्यावाचस्पति जैसे सुप्रसिद्ध पत्रकार तथा साहित्य मर्मज्ञ, उस्मानिया विश्व-विद्यालय के प्रो० बंशीधर जी विद्यालंकार जैसे कवि, हैदराबाद राज्य के खाद्य मंत्री पं० विनायक राव जी विद्यालंकार जैसे कुशल शासक, प० विश्वनाथ जी विद्यालंकार, पं० बुद्धदेव जी विद्यालंकार, आचार्य अभयदेव जी विद्यालंकार, जैसे प्रख्यात वैदिक विद्वान् उत्पन्न किये है तथा पं० सत्यदेव विद्यालंकार, पं० रामगोपाल विद्यालंकार, पं० दीनदयालु सिद्धान्तलंकार, पं० अमरनाथ विद्यालंकार, पं० अवनीन्द्र कुमार विद्यालंकार जैसे राजनीतिज्ञ निकाले हैं उसके विषय में लेखक के उपर्युक्त शब्द कितने अशुद्ध हैं। धार्मिक, सामाजिक, राजनैतिक और साहित्यिक क्षेत्रों मे सैंकड़ों स्नातकों ने अद्भुत कार्य करके बड़ी अच्छी ख्याति प्राप्त की है किन्तु 'नैव स्थाणोरपराधः यदेनमन्धो न पश्यति" वाली उक्ति ऐसे अवसरों पर चरितार्थ होती है। हिन्दी संस्कृत की उन्नति, शिक्षा प्रणाली तथा रचनात्मक कार्य क्रम विषयक लेखक के कुछ निर्देश अच्छे हैं पर उनको देते हुए फिर उन्होंने 'बरसों से जिन गुरुकुलों में हिन्दी माध्यम द्वारा शिक्षा दी जा रही है उन्होंने एक भी चोटी का साहित्यिक पैदा नहीं किया। क्या गुरुकुलों से आज तक कोई महत्वपूर्ण ग्रन्थ प्रकाशित हुआ है? ऐसे अज्ञान-सूचक शब्दों का प्रयोग कर दिया है। लेखक का यह कथन सर्वथा अशुद्ध है कि 'इस स्वतन्त्रता के युग में वैदिक धर्म के उद्धार व प्रचार की न तो कोई महत्ता है और नहीं आवश्यकता' 'लेखक ने अपने नये क्षेत्र विषयक निर्देशों में (वस्तुतः ये कोई नये क्षेत्र हैं किन्तु आर्यसमाज इन में वर्षों से कार्य करता रहा है) जो यह लिखा है कि यदि आर्यसमाज ऐसे व्यक्तियों और मन्दिरों मठों अखाड़ों के खिलाफ एक जिहाद खड़ा कर सके तो वह महत्वपूर्ण कार्य होगा।" वह कार्य वैदिक धर्म के उद्धार और प्रचार द्वारा ही संभव है अन्यथा नहीं। लेखक की एक चेतावनी हमें विशेष रूप से विचारणीय प्रतीत हुई जो शुद्ध हुए व्यक्तियों के सम्बन्ध में उन्होंने लिखी है कि 'वेद मन्त्र पढ़ कर उन्हें शुद्ध भले ही कर लिया गया हो किन्तु इस से पूर्व कि उनके जनेऊ का पीला रंग भी छुटा हो, वे मजबूर हो कर फिर उसी समाज मे वापस चले गये जहां से आये थे और उसका कारण था आर्य समाज की उपेक्षा वृत्ति। किन्तु वापस जाते समय अपने साथ वे लेते गये वह असन्तोष और क्षोभ जिससे हिन्दुओं के प्रति उनके मन में वैर भावना बढ़ती ही गई।"

यद्यपि यहां भी अति शयोक्ति से कार्य लिया गया है तथापि यह लज्जा के साथ स्वीकार करना पड़ेगा कि अनेक आर्यों के भी जातपांत की दल दल में फँसे होने के कारण कई इस प्रकार की दुर्घटनाएं हो गईं। अतः इस विषय में आर्योंको अब पूर्णतः निर्भय होकर दलितोद्धार शुद्धि इत्यादि का कार्य करना चाहिये तथा इन निर्बलताओं का अन्त कर देना चाहिये। अन्त में हम इस लेख के अज्ञात लेखक श्री इन्दुशेखर तथा 'सरिता' के सम्पादक महोदय से यह अनुरोध करना चाहते हैं कि वे ऐसे अतिशयोक्ति

पूर्ण एकपक्षीय लेखों को प्रकाशित करके जनता में भ्रम न फैलाएं किन्तु आर्यसमाज जैसी प्रगतिशील संस्थाओं के साथ क्रियात्मक सहयोग दिखाते हुए समाज सुधारादि कार्यों में प्रवृत्त हों।

प्राचीन विज्ञान विज्ञानादि विषयक महत्त्वपूर्ण अनुसन्धानः—

जब महर्षिदयानन्द ने ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका में वेदों के आधार पर विमानविद्या का प्रति पादन किया था तो लोग इसे उनकी कल्पना मानते थे। बाल्मीकीय रामायण में पुष्पक विमान का स्पष्ट वर्णन होते हुए भी उसे आज कल के शिक्षित लोग कल्पित ही समझते रहते थे। अब मैसूर का समाचार, पत्रों में प्रेसट्रस्ट द्वारा प्रकाशित हुआ है कि "संस्कृत साहित्य सम्बन्धी खोज की इन्टर नैशनल एकाडमी (अन्तर्राष्ट्रीय संस्था) के डायरेक्टर ने महर्षि भरद्वाज द्वारा रचित 'वैमानिक शास्त्र' की देवनागरी लिपि में लिखी पाण्डुलिपि खोज निकाली है। इस के साथ सुन्दर, शाकुन तथा रुक्म नामक तीन विमानों के खाके भी पाये गये हैं। इस पुस्तक में ८ अध्याय तथा ५०० सूत्र हैं। इन ८ अध्यायों में विभिन्न प्रकार के विमान बनाने की विधि वर्णित है। ऐसे विमानों के बनाने की विधि भी इसमें लिखी हुई है जो न तो टूट कर गिरेंगे और न जिनमें आग लगेगी। इस ग्रन्थ के अनुसार एक विमान में ३१ भाग होते हैं। प्रकाश तथा गर्मी को सहन कर सकने वाली विमान निर्माणोपयुक्त धातुओं का भी इसमें वर्णन है जो १६ प्रकार की बताई गई हैं। यह भी ज्ञात हुआ है कि इस विमान शास्त्र के अतिरिक्त उस अनुसंधान संस्था को कृत्रिम हीरे बनाने की विधि बताने वाला ग्रन्थ 'रत्न प्रदीपिका' तथा अन्य प्राचीन ग्रन्थ भी मिले हैं जिन में विभिन्न यन्त्र (मशीनें) बनाने तथा उनके चलाने की विधि वर्णित है। महर्षि भरद्वाज ने अपने ग्रन्थ 'यन्त्र शास्त्र' में कृत्रिम वर्षा कराने की विधि का भी वर्णन किया है।"

जब ये महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ जनता के सम्मुख विविध भाषाओं में अनुवाद सहित आएंगे तो प्राचीन विज्ञान का बहुत कुछ पता लग सकेगा और तब महर्षि दयानन्द जैसे आप्तों के एतद्विषयक निर्देशों को कल्पित मानने की प्रवृत्ति बन्द हो जायगी। यहां इतना निर्देश कर देना आवश्यक प्रतीत होता है कि आर्य जगत् के सुप्रसिद्ध अनुसन्धान विद्वान् प० प्रिय रत्न जी आर्य (वर्तमान नाम स्वामी ब्रह्ममुनि जी परिव्राजक) ने सन् १९४३ में बड़ौदा के राजकीय संस्कृत पुस्तकालय में महर्षि भरद्वाज कृत 'यन्त्र सर्वस्व' के अन्तर्गत 'वैमानिक प्रकरण' का कुछ भाग बोधानन्द वृत्ति सहित प्राप्त किया था जिसे उनकी भूमिका और अनुवाद सहित सार्वदेशिक सभा की ओर से उसी वर्ष महर्षि-भरद्वाज कृत 'विमान शास्त्र' इस नाम से प्रकाशित किया गया था। प्रतीत होता है कि अब वह ग्रन्थ सम्पूर्ण रूप में उपलब्ध हुआ है। हम सब उत्सुकता पूर्वक उसकी प्रतीक्षा कर रहे हैं। यह निश्चय है कि इससे प्राचीन विमान विद्यादि का ज्ञान होगा और कृत्रिम वर्षा के साधनादि का ज्ञान होने से (जिनका यज्ञ द्वारा ब्राह्मण ग्रंथों तथा तैत्तिरीय संहितादि मे भी प्रतिपादन है) उससे विशेष लाभ उठाया जा सकेगा॥

अश्लील विज्ञापन विषयक म० प्र० सरकार का प्रशंसनीय आदेशः—

१२ अगस्त को नागपुर से प्रसारित निम्न-समाचार, पत्रों में प्रकाशित हुआ है जिसे पढ़ कर हमें प्रसन्नता हुई।

"मध्यप्रदेश सरकार ने सभी जिलाधिकारियों को आदेश दिया है कि फिल्मों के अश्लील पोस्टरों के चिपकाने के विरुद्ध कड़ी कार्यवाही की जाए। अश्लील पोस्टर लगाने वालों पर दण्ड विधान की धारा २९२ के अधीन मुकद्दमा चलाने का निर्देश दिया गया है। बताया जाता है कि राज्य में फिल्म पोस्टरों, विज्ञापनों आदि का स्तर इतना अशिष्ट होता जा रहा है कि विवश होकर सरकार को यह आदेश देना पड़ा है। कहा जाता है कि कई बार तो फिल्मों के ऐसे आपत्ति जनक विज्ञापन जनता के सामने प्रदर्शित होते हैं जिनका फिल्म के साथ कोई सम्बन्ध भी नहीं होता है।"

हम मध्य प्रदेश सरकार के इस आदेश को प्रशंसनीय और अनुकरणीय समझते हैं। अन्य प्रादेशिक सरकारों तथा केन्द्रीय सरकार से भी हम अनुरोध करते हैं कि वे इस प्रकार के आदेश अधिकारियों को दे कर अधिकारियों को कठोर दण्ड दिलाएँ।

मान्य श्री पं० सातवलेकर जी का श्रीकृष्ण चरित्र विषयक लेख—

श्री पं० दामोदर सातवलेकर जी वेदों के सुप्रसिद्ध विद्वान् हैं। उन्होंने वेदादि के शुद्ध मुद्रण तथा उनके प्रचारार्थ जो प्रयत्न किया है वह भी नितान्त प्रशंसनीय है किन्तु हमें यह देखकर दुःख होता है कि कुछ समय से उनके ऐसे लेख प्रकाशित हो रहे हैं जो पौराणिक भावनाओं का समर्थन करने वाले और ऋषि-दयानन्द के मन्तव्य को अशुद्ध बताने वाले हैं। उदाहरणार्थ आर्यमित्र तथा अन्य कुछ पत्रों में उनका 'कृष्ण का चरित्र' इस शीर्षक का लेख प्रकाशित हुआ है जिसमें उन्होंने अनेक ऐसी बातें लिखी हैं जो अयथार्थ हैं और जिनका पाठकों पर यह प्रभाव पड़ना स्वाभाविक है कि ऋषिदयानन्द ने सत्यार्थ प्रकाश में भागवतादि पुराणों की जो आलोचना की थी वह निराधार तथा अशुद्ध थी। श्री पं० सातवलेकर जी भागवत के कृष्णचरित्र का उल्लेख करते हुए लिखते हैं कि रासक्रीड़ा तथा गोपियों के साथ श्री कृष्ण के खेल कूद ८ वें वर्ष से पूर्व के हैं। इस आयु में ७ या ८ वर्ष के बाल से जो हो सकता है वह कृष्ण से होने की संभावना है। यदि विद्वान् लेखक ये वर्णन कृष्ण की आयु के साथ मिलाकर देखेंगे तो कृष्ण के मन मे काम का उदय ही नहीं हुआ था यह स्पष्ट होगा। श्रीमद्भवत देखने से ७-८ वर्ष के बालक ने गोपियों के मन आकर्षित किये थे इसमें सन्देह नहीं। इनमें कई गोपियां प्रौढ़ भी थीं। मनोविज्ञान शास्त्र के नियम जानने वाले यह जान सकते हैं कि सुन्दर बालक स्त्रियों में; सुन्दरी बाला पुरुषों में काम की ज्वाला भड़का सकती हैं।···इस तरह कृष्ण के मन मे काम की उत्पत्ति न होने की अवस्था मे यदि गोपियों के मन उसने अत्यन्त आकर्षित किये हों तो गोपियों के स्वप्न मे सम्पूर्ण अनुभव होना असंभव नहीं।···श्री कृष्ण अपने ८ वर्ष के बाल भाव मे ही था और उसको गोपियों के मनोभावों का पता भी नहीं था। पता होना सम्भव नहीं था।"···इस दृष्टि से इतिहास को सम्मुख रखकर हम कृष्ण चरित्र को देखते हैं तो कृष्ण ने गोपियों के साथ कोई कुकर्म किया नहीं यह सिद्ध होता है।"···कृष्ण ने असुरों द्वारा अपहृत १६००० कन्याओं में से सबसे विवाह किया और बताया कि निर्वासित स्त्रियों का प्रश्न इसी तरह हल करना चाहिये।···राधा के विषय में हमारे पास कोई विशेष प्रमाण नहीं है। गीत गोविन्द को प्रमाण मानना असंभव है। हरिवंशादि में जहां भी उल्लेख है वहां इनका भक्ति का सम्बन्ध है न कि लैंगिक सम्बन्ध। उत्कृष्ट भक्ति के सम्बन्ध का ऐसा वर्णन हो

सकता है। हमने जीवित स्त्री पुरुषों में लैंगिक न होने पर भी सम्बन्ध बिल्कुल केवल भक्ति का ही सम्बन्ध होने से ऐसा प्रेम हो सकता है ऐसा देखा है। भक्ति, ज्ञान आदि से भी प्रेम सम्बन्ध उत्पन्न हो सकता है और वह श्रेष्ठ सम्बन्ध है। इस समय तक राधा कृष्ण में यही हम ने देखा है। यदि कोई स्पष्ट प्रमाण देगा तो अधिक विचार किया जा सकेगा।" (आर्य मित्र २६ जून १६५२)

हमने मान्य प० सातवलेकर जी के लेख से यह विस्तृत उद्धरण इसलिये दिया है ताकि उनका अभिप्राय समझने मे भूल न हो। हमने इसलेख को प्रकाशित होने के बाद भागवत १० म स्कन्ध की रास पंचाध्यायी को संस्कृत तथा भाषा टीका सहित आद्योपान्त पढ़ा तथा ब्रह्मवैवर्त पुराणादि को भी फिर पढ़ा किन्तु श्रीमान्य पण्डित स तवलेकर जी के लिये अत्यन्त आदर का भाव रखते हुए भी हमें यह लिखने में अब अणुमात्र भी भी सन्देह नहीं कि उनकी उपर्युक्त बातें कल्पित तथा अयथार्थ हैं। विस्तार भय से हम भागवत दशम स्कन्ध से कुछ अत्यन्त स्पष्ट श्लोकों को पंडित पुस्तकालय रेशम कटरा बनारस द्वारा प्रकाशित, पण्डित रामतेज पाण्डेय साहित्य शास्त्री द्वारा अनूदित और पं० युगल किशोर द्विवेदी तथा पं० गौरी शंकर वाजपेयी व्याकरणाचार्य द्वारा सम्पादित 'भागवत दशमस्कन्ध सामयिक की भाषा टीका सहित' नामक पुस्तक से उद्धृत करना पर्याप्त समझते हैं जिससे श्री पं० सातवलेकर जो की उपर उद्धृत स्थापनाओं का कि कृष्ण केवल ८ वर्ष के बालक थे और उनको गोपियों की कामवासना का ज्ञान भी न था—आदि स्पष्ट खंडन होता है। अप्रिय होने पर भी सत्य प्रकाशनार्थ इन श्लोकों को उद्धृत करने को हम विवश हैं। आवश्यकता हुई तो श्रीधरी, वल्लभाचार्य कृत सुबोधिनी तथा अन्य संस्कृत टीकाओं और गोविन्ददास कृत भागवत के भाषानुवाद को भी (जिनके उद्धरण हमने इन दिनों संगृहीत किये हैं) हम उद्धृत करेंगे जिनसे महर्षि दयानन्द की समालोचना की यथार्थता में अणुमात्र भी संदेह का कारण नहीं रहता और श्री पं० सातवलेकर जी की इस लीपापोती की निस्सारता स्पष्ट दिखाई देने लगती है। रासलीला प्रकरण में गोपियों की श्री कृष्ण के प्रति निम्न उक्ति भागवत १०।२६।३५ में पाई जाती है:—

> "सिञ्चयांग नस्त्वदधरामृतपूरकेण, प्राप्ता विसृज्य वसतीस्त्वदुपासनाशाः। त्वत्सुन्दर स्मित निरीक्षणतीव्र काम-तप्ताना पुरुष भूषण देहि दास्यम्॥ (भागवत १० म स्कन्ध २६।३५

पं० राम तेज पाण्डेय साहित्य शास्त्री कृत टीका—हे प्यारे! आपकी मन्द मुसकान भरी चितवन और आपके मनोहर गीत से हमारे हृदय में प्रबल कामानल प्रज्वलित हो रहा है, उसे अपने अधरामृत के प्रवाह से शान्त करिये। नहीं तो आपके विरह से उत्पन्न अग्नि से हमारे शरीर भस्म ही हो जाएंगे।" (पृ०५८) गोपियों के इस प्रबलकामानल को बढ़ाने के लिये भागवत पुराण कार के अनुसार श्रीकृष्ण ने (जिसे श्री पं० सातवलेकर जी ८ वर्ष का बालक बता रहे हैं) क्या २ कार्य किया उसे पाठक देखें। दशमस्कन्ध अ० २६ श्लो० ४६ में भागवत कार कहते हैं:—

> "बाहु प्रसार परिरम्भ करालकोरु—नीवीस्तनालभन नर्म नखाग्र पातैः। क्ष्वेल्यावलोकहसितैर्व्रज सुन्दरीणाम्, उत्तम्भयन् रतिपतिं रमयाञ्चकार॥"

इसका अनुवाद पण्डित पुस्तकालय बनारस द्वारा प्रकाशित पुस्तक में निम्न प्रकार है:—

हाथ फैलाना, आलिंगन करना, कर, अलक (बाल) जंघा, कटिवस्त्र के बन्धन और स्तन

आदि का स्पर्श करना, मजाक करना. विनोद पूर्ण चितवन से ताकना और मन्द मन्द मुस्काना आदि उपायों से व्रजबालाओं का कामरस उद्दीप्त करते हुए भगवान् कृष्ण उन व्रज वनिताओं के साथ खेलने लगे।" (पृ० ५६)

श्रीधरी टीका में परिरम्भ—बाहुप्रसारण आलिंगनम् आदि शब्द हैं।

उसके पश्चात् १० ३३।१७ में भागवतकार कहते हैं:—

'एवं परिष्वंग कराभिमर्श—स्निग्धेक्षणोद्दाम-विलासहासैः। रेमे रमेशो व्रज सुन्दरीभिः, यथा-र्भकः स्वप्रतिबिम्ब विभ्रम.॥

पं० रामतेज पाण्डेय कृत अनुवाद–रमारमण भगवान् कृष्ण ने आलिंगन, अंग स्पर्श, प्रणय कटाक्ष और मनोहर मुसकान करते हुए उन व्रज सुन्दरियों के साथ रमण किया।' (पृ० ६४)

१०।३३।२३-२४ में भागवतकार कहते हैं:—

ताभिर्युतः श्रममपोहितुमंग संग घृष्ट स्रजः सकुच कुंकुम रंजितायाः। गन्धर्व पालिभिरनुद्रुत आविशद् वाः, श्रान्तो गजीभिरिभराडिव भिन्न-सेतुः॥ एवं शशांकांशु विराजिता निशाः, स सत्यकामोऽनुरताबलागणः। सिषेव आत्मन्यव-रुद्ध सौरतः, सर्वाः शरत्काव्य कथारसाश्रयाः॥

प० रामतेज पाण्डेय कृत अनुवाद:—

"जैसे थका हुआ गजराज अपनी प्रियतमा हथिनियों के साथ जल में घुस कर जल विहार करता है उसी प्रकार लोक और वेद की मर्यादा तोड़ कर भगवान अपनी थकान दूर करने के लिये यमुना के जल में उतरे। (पृ० ६४)

"हे राजन्! चन्द्रमा की चन्द्रिका से चर्चित और काव्य वर्णित शरत्कालीन तथा सब रस सामग्रियों से सम्पन्न उन रात्रियों में सत्य संकल्प और अस्खलित वीर्य श्री हरि ने अपनी अनुरागी ललनाओं के साथ विहार किया।" (पण्डित पुस्तकालय बनारस द्वारा प्रकाशित भागवत दशम स्कन्ध पृ० ६५)

पं० गोविन्ददास कृत भाषानुवाद.—

इस प्रकार उन सत्यनिष्ठ भगवान् ने चन्द्रमा की किरणों से शोभायमान रात्रियों में शरद् सम्बन्धी वे सब लीलाएँ स्नेहमयी स्त्रियों के साथ अपने वीर्य को खण्डित न करते हुए कीं कि जिनका वर्णन ग्रन्थों में किया गया है॥ (भागवत भाषानुवाद मथुरा पृ० २७४)

इस प्रकार श्री प० सातवलेकर जी की कल्पनाओं की अयथार्थता और महर्षि दयानन्द कृत समालोचना की वास्तविकता दिखाने के लिये इतने श्लोक भी पर्याप्त हैं। हमें आश्चर्य है कि श्री प० सातवलेकर जी जैसे मान्य वैदिक विद्वान् ने पुराणोक्त अश्लील श्री कृष्णचरित्र पर ऐसी लीपा पोती करने में क्या लाभ समझा और क्यों उनकी दृष्टि इन स्पष्ट श्लोकों पर नहीं गई?

राधा के साथ श्री कृष्ण के सम्बन्ध का भागवत में तो कहीं वर्णन नहीं पाया जाता किन्तु ब्रह्मवैवर्तपुराण में अत्यधिक विस्तृत वर्णन है। अश्लील होने के कारण उस का उल्लेख भी हमें अत्यन्त अप्रिय प्रतीत होता है किन्तु सत्यप्रकाशनार्थ ब्रह्मवैवर्त पुराण उत्तरार्द्ध अ० १५ से केवल निम्न श्लोक २, ३ श्लोक उद्धृत करने को हम विवश हैं जिनसे प० सातवलेकर जी द्वारा अभिमत—आध्यात्मिक नहीं किन्तु लौकिक सम्बन्ध सूर्य प्रकाशवत् स्पष्ट सिद्ध होता है।

राधा के विषय में ब्रह्मवैवर्त पुराण अ. १५। १३८ में लिखा है

'पुलकाङ्कित सर्वांगी, कामबाण प्रपीड़िता।
प्रणम्य श्री हरिं भक्त्या, जगाम शयनं हरेः॥

श्री कृष्ण के विषय में पुराणकार उसी अध्याय में स्पष्ट लिखते हैं—

करे धृत्वाथ तां कृष्णः, स्थापयामास वक्षसि।
चकार शिथिलं वस्त्रं, चुम्बनं च चतुर्विधम्॥

प्रत्यंगेनैव प्रत्यंगम्, अंगेनांगं समाश्लिषत्।
शृंगाराष्टविधं कृष्णः, चकार काम शास्त्रवित्॥

नित्यं नक्तं रतिं तत्र, चकार हरिणा सह॥

अश्लील होने के कारण हम इनका अर्थ लिखना भी यहां उचित नहीं समझते। परन्तु यहां सम्भोगादि का वर्णन करते हुए कोक शास्त्र को भी मात कर दिया गया है। आशा है मान्य श्री प० सातवलेकर जी इन श्लोकों को देखकर अपने राधाकृष्ण विषयक विचार को अवश्य बदल लेंगे। १६ हजार नरकासुर द्वारा अपहृता महिलाओं के साथ श्री कृष्ण ने इस अपहृत समस्या को हल करने के लिये स्वयं विवाह कर लिया यह भी श्री पं० सातवलेकर जी की कल्पना अमान्य है। इसकी आलोचना करते हुए सुप्रसिद्ध आर्य विद्वान् श्री पं० बुद्धदेव जी विद्यालंकार ने ठीक ही लिखा है कि:—

'बलिहारी है इस उपाय की, यह कन्याओं का उद्धार तो क्या हुआ श्री कृष्ण के निर्मल-चरित्र की हत्या अवश्य हो गई। भला इससे उनकी रक्षा किस प्रकार हुई? यदि उनकी भूख निवारण का प्रश्न था तब तो कृष्णचन्द्र जी उन्हें अपनी बेटियां बना लेते और यदि उनकी स्वाभाविक कामेच्छा की तृप्ति का प्रश्न था तो क्या श्री कृष्णचन्द्र जी १६ हजार को काम तृप्ति किया करते थे।' इत्यादि

इस विषय में अधिक लिखना हम अनावश्यक समझते हैं किन्तु मान्य पण्डित जी से इतना सविनय निवेदन करना चाहते हैं कि वे ऐसी अयथार्थ कल्पनाएं करके पौराणिकता को प्रोत्साहित करने का प्रयत्न न करें। कहां तो बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय जैसे पुराण प्रिय विचार शील सज्जन भी अपने 'श्रीकृष्ण चरित्र' पृ० २३१ सप्तम परिच्छेद मनगन्त में श्रीकृष्ण की १६ हजार स्त्रियों वाली बात को समझें और स्व० स्वामी दयानन्द प्रधान सनातन धर्म महामण्डल बनारस जैसे पौराणिक विद्वान् श्रीकृष्ण को योगी होने के कारण १६ हजार नाड़ियों (नारियों नहीं) के पति वा स्वामी होने की कल्पना करें और कहां श्री पं० सातवलेकर जी जैसे सुप्रसिद्ध वैदिक विद्वान् ऐसी श्रीकृष्ण पर कलंक रूप कल्पनाएं करके जनता में भ्रम फैलाएं यह देख कर हमें दुःख हुआ इसलिये यह टिप्पणी लिखनी पड़ी। हमें विश्वास है कि सत्यग्राही मान्य पण्डित जी हमारे इस निवेदन पर अवश्य ध्यान देने की कृपा करेंगे॥

जर्मन और अमेरिकन राजदूतावास अधिकारियों से भेंट

सार्वदेशिक सभा के स० मन्त्री प० धर्मदेव जी विद्या वाचस्पति ने गत जुलाई मास में अमेरिका के प्रो० गील्सन और नीदर लैन्ड के डा० जान गुलिक नामक पाश्चात्य विद्वानों से भेंट के पश्चात् १ अगस्त को जर्मन राजदूतावास के मन्त्री डा० पोयरनिंग और अमेरिकन राजदूतावास के सांस्कृतिक अधिकारी (Cultural officer) मि० क्लिफर्ड मैन्शार्ड से भेंट करके उन्हें वैदिक धर्म और संस्कृति के मुख्य २ तत्वों से परिचित कराया और उन्हें Vedic culture, Catechism on Vadic Dharma आदि आर्य साहित्य सभा की ओर से भेंट किया जिस पर उन्होंने बड़ी प्रसन्नता प्रकट की। भारत में जर्मन राजदूत के यात्रा से लौटने पर डा० पोयरनिंग (जर्मन राजदूतावास मन्त्री) ने उनसे भेंट कराने का वचन दिया। १६ अगस्त को प० धर्मदेव जी ने पुनः अमेरिकन राजदूतावास के कल्चरल आफिसर मि० क्लिफोर्ड मैन्शार्ड से भेंट की और उनसे Vedic culture आदि पुस्तकों के विषय में सम्मति पूछी। मि० मैन्शार्ड ने बताया कि उन्होंने उन पुस्तकों को बहुत ही पसन्द किया है। अमरीका में धर्मशिक्षादि विषयों में भी उनसे वार्तालाप हुआ। मि० मैन्शार्ड ने बड़ी शिष्टता से व्यवहार किया और इस प्रकार के सम्पर्क पर बड़ा हर्ष प्रकट किया। अन्य राजदूतावासों के अधिकारियों से भी इस प्रकार के सांस्कृतिक सम्पर्क स्थापित करने का यत्न हो रहा है॥ ध० दे०

महिला जगत्

वैदिक संस्कृति

ही विश्व का कल्याण कर सकती है।

[लेखिका—श्री सावित्री देवी जी "साहित्यरत्न" श्री महिला विद्यापीठ भुसावर, राजस्थान]

(गतांक से आगे)

देश-काल की परिधि से दूर, व्यक्तित्व की छाप से रहित, किसी एक समाज के चिन्तन से परे, असंस्कृत आत्माओं की छाया से अस्पृष्ट यदि कोई संस्कृति है तो वैदिक ही है।

अन्य आधुनिक संस्कृतियां किसी न किसी देश से सम्बद्ध हैं या काल से, व्यक्तिवाद से अछूती नहीं, संस्कृतियां अपने २ नामों से प्रचलित की गई है। वे किसी विशिष्ट समाज का नेतृत्व करती हैं, मानव मात्र की नहीं। इसलिये मैं सगर्व आपके समक्ष कहती हूँ कि "वैदिक संस्कृति ही विश्व का कल्याण कर सकती है।"

माताओ !

आप अपनी शक्ति को भूल गई हैं। वैदिक संस्कृति मातृशक्ति का पुनरुत्थान चाहती है।

"कुमारं माता युवतिः समुब्धं गुहा बिभर्त्ति न ददाति पित्रे।"

युवति माता कुमार का निर्माण करती है। बिना पूरा निर्माण किये पिता को नहीं सौंपती।

'मातृमान् पितृमान् आचार्य्यवान् पुरुषो वेद। प्रशस्ता धार्मिकी माता विद्यते यस्य स मातृमान्।

जिसकी माता प्रशंसनीय गुणों से युक्त धार्मिकी है वही माता सच्ची माता है।

हां तो, मैं कह रही थी कि मातृशक्ति का वैदिक संस्कृति में विशेष महत्व है। भाषा हो तो मातृभाषा. संस्कृति हो तो मातृसंस्कृति, भूमि हो तो मातृभूमि।

माता, आचार्य और पिता से विशिष्ट गौरव शालिनी है।

वेद में तो वेद के लिये भी माता शब्द ही प्रयुक्त हुआ है।

'स्तुता मया वरदा वेदमाता'

सच्चा आनन्द ये ही तीन देवियां दे सकती हैं।

वैदिक संस्कृत को माताएं अपनी भाषा बनाएं तभी वह सन्तति की मातृभाषा बन सकती है, इसी प्रकार वैदिक संस्कृति को माताएं अपनी संस्कृति बनाएं तभी वह सन्तति की मातृ-संस्कृति बन सकती है, और माताएं जब तक भारत को अपनी भूमि स्वीकार नहीं करेंगी, तब तक यह भारत सन्तान की मातृभूमि कैसे बन सकेगा ?

माताओं को शिक्षित होने की तथा संस्कृति सस्कृत को अपनाने की परमावश्यकता है।

अब आपने समझ लिया होगा कि विश्व के कल्याण की व्यापक भावना वाली वैदिक संस्कृति ही है।

मातृशक्ति का निर्माण करने के लिये ही गुरुकुलों एवं विद्यापीठों की स्थापना हुई है। यद्यपि ये संस्थाएं भी अपने सच्चे ध्येय से अभी दूर हैं।

भगवान् वह दिन दिखावे जब कि हमारी वैदिक संस्कृति की मूलभित्ति गुरुकुल प्रणाली आगरूक हो तथा नारी जाति सच्ची माता बन कर विश्व मानव का कल्याण कर सके।

अब रही सभ्यता की बात, सभ्यता गुण है सभ्य का, सभ्य 'सभायां साधुः' सभा में बैठने उठने के प्रकारढङ्ग को कहते हैं। सभा प्रज्ञायुक्त को कहते हैं। नीतिकार ने सभा की व्याख्या कितने सुन्दर शब्दों में की है :—

न सा सभा यत्र न सन्ति वृद्धाः,
न ते वृद्धा ये न वदन्ति धर्मम्।
न स धर्मो यत्र न सत्यमस्ति,
न तत्सत्यं यच्छलेनाभ्युपेतम्॥

इसकी व्याख्या करने की विशेष आवश्यकता नहीं।

सभा बिना वृद्धों के शोभायमान नहीं होती, वृद्ध पांच प्रकार के होते हैं :—

(१) वयोवृद्ध—जो आयु में अधिक होते हैं।

(२) विद्यावृद्ध—जो विद्या में बढ़े-चढ़े होते हैं

(३) धर्मवृद्ध—जो धर्म में अग्रगण्य होते हैं।

(४) ज्ञानवृद्ध—जो ज्ञान में अग्रेसर होते हैं।

पांचवां वृद्ध इन्हीं चारों में यदि एक शक्ति और बढ़ा दी जाय तो बन जाता है। वेद के ही शब्दों में :—

ये अग्ने नेरयन्ति ते वृद्धा उग्रस्य शवसः,
अपद्वेषो अपह्वरो अन्यव्रतस्य सश्चिरे।

जो किसी अन्यायी-अत्याचारी से-चाहे वह कितना ही बलवान् क्यों न हो ?—नहीं दबता होता, वह वयोवृद्ध, विद्यावृद्ध, धर्मवृद्ध, ज्ञानवृद्ध में से ही होता है ऐसी सभा में बैठने-उठने बोलने-चालने, रहने-सहने, खाने-पीने, आदि बाह्य ढङ्ग के ज्ञाता को सभ्य कहते हैं।

संस्कृति अन्तर्जगत् की वस्तु है तो सभ्यता बहिर्जगत् की। संस्कृति यदि आत्मा है तो सभ्यता शरीर।

आन्तरिक चिन्तन बिना बाह्याचरण के ज्ञात नहीं हो सकता।

"संस्कृति का प्रतिबिम्ब सभ्यता है।"

आपके इतिहास में इस प्रकार के इने-गिने उदाहरण मिलेंगे, जो अन्यायी-अत्याचारी से नहीं दबे, नहीं झुके।

सत्ययुग में पौराणिक दन्तकथाओं के अनुसार हिरण्यकशिपु से मोर्चा लेने वाले प्रह्लाद थे, जो अन्यायी पिता के सामने भी अडिग रहे, पिता के समक्ष मोर्चा लेने वाले दो ही व्यक्ति हुये, प्रह्लाद और दयानन्द। प्रह्लाद ने सत्याग्रह किया पिता से सत्ययुग में और दयानन्द ने अपने पिता से असहयोग किया कलियुग में।

मेरी समझ में तो सत्ययुग की हिरण्यकशिपु और प्रह्लाद की कथा अथर्ववेद के मन्त्रों का व्याख्यात्मक अलङ्कार है।

त्रेता में राम ने सङ्घर्ष किया रावण से। पर इस सङ्घर्ष से भी भयङ्कर सङ्घर्ष द्वापर में हुआ महात्मा श्री कृष्णचन्द्र द्वारा।

मामा कंस से संघर्ष, मामा के साले जरासन्ध से संघर्ष, फूफा के लड़के बेटे शिशुपाल से संघर्ष। इस संघर्ष में श्रीकृष्ण का व्यक्तित्व कहीं नहीं दबा।

त्रेता में राम का साथ जंगली जातियों ने दिया, हनुमान जैसा बाल ब्रह्मचारी सेवक,

सुग्रीव जैसा किष्किन्ध राज मित्र, नल-नील जैसा वैज्ञानिक युगल जिसके सहयोगी, लक्ष्मण जैसा प्राणों को बलिवेदी पर हंसते २ चढ़ा देने वाला भाई—ये सहायक थे राम के, और था शुभाशीर्वाद अयोध्यावासी नर और नारियों का, सीता का हृदय तथा जनक का स्नेह भी राम के साथ था, तब राम ने विजय किया रावण को।

कृष्णचन्द्र ने भी देवकी और वसुदेव को तो छोड़ा पर यशोदा और नन्द का तो पलड़ा पकड़े ही रहे और जब यशोदा और नन्द को छोड़ा तब देवकी और वसुदेव को आ पकड़ा, ब्रह्मचारी शक्ति भीष्म विरोध में, भाई भाई का शत्रु, द्रोणाचार्य जैसा वैज्ञानिक विरोध मे, पर पांचों पांण्डवों का सहयोग, आन्तरिक आशीर्वाद भी भीष्म और द्रोण का प्राप्त था इतने पर विजयी हुए समस्त यादवों की शक्ति के साथ रहते हुए।

त्रेता और द्वापर के उद्धरणों से स्पष्ट प्रतीत हो गया होगा कि त्रेता में ब्रह्मचारी हनुमान दास है सुग्रीव का और अनुचर है राम का।

द्वापर में भीष्म द्विविधा में हैं सेवक हैं राम के जबकि उसके पितामह हैं और मन है पाण्डवो के साथ । यह महात्माओं का लक्षण नहीं कि मन कहीं और तन कहीं ?

सत्ययुग के प्रह्लाद का पुत्र विरोचन, त्रेता के राम के पुत्र लव-कुश, द्वापर के कृष्ण का पुत्र प्रद्युम्न।

पर कलियुग के सत्याग्रही, मर्यादाशील, महात्मा दयानन्द ने संन्यासी होते हुए भी मूर्ख जनता के समक्ष सत्याग्रह किया, गृहस्थ न होते हुए भी वर्णाश्रम-धर्म की मर्यादा पर बल दिया, महात्मा और योगी तो वे जीवन के प्रत्येक क्षण से ही थे।

किसी का सहयोग प्राप्त नहीं, सकलजगत् विरोध मे, अट्ठारह विष-चषकों को चसक से पिया, पर मन में कसक पैदा न हुई।

मृत्यु-बेला में भी जिसके मुख पर मुसकराहट अठखेलियां करती रही, वह दयानन्द भी अपने विरोधियों से न दबा, पाखण्डियों से न दबा । वह देव दयानन्द जिसने विष दाता के बन्धन यह कह कर ढीले कर दिये "मैं संसार को बधन से मुक्त कराने आया हूँ बन्धन में डालने नहीं।

जगन्नाथ पाचक से पञ्चत्वदायक विष पान कर सच्चे शिव की खोज में स्वयं नीलकण्ठ शिव बनकर शवों को शक्ति प्रदान की और विषदाता को २००) की राशि देकर 'नयपाल देश' भाग जाने की सम्मति प्रदान की । वह देव दयानन्द उस दिन संसार को छोडकर गये जिस दिन विजय की मस्ती में मस्त राम की वाहिनी पुष्पक द्वारा अयोध्या मे प्रवेश कर रही थी। ठीक उसी दिन राम ने राज्य को स्वर्गधाम बनाने का दृढ़ संकल्प किया होगा । दयानन्द गये तो सही पर विश्व को वैदिक सन्देश देकर मुक्ति का मार्ग बतला कर, 'कृण्वन्तो विश्व-मार्यम्' का मृदु गान गाकर, उनकी विलुप्त वैदिक गवेषणा को चिरंजीव करने के लिये आर्य समाज आज भी सतर्क है।

ऋषि ने ही सर्व प्रथम मातृ संस्कृति वेद, मातृभाषा संस्कृत, मातृभूमि भारत की घोषणा की।

विश्ववन्द्य बापू जिनको अपना गुरुदेव कहते थे, वे थे कवीन्द्र रवीन्द्र, रवीन्द्र के शब्दों में :—

"महर्षि दयानन्द भारत के ही नहीं जगत्

के गुरु थे, ऐसे परमपूज्य, महान् गुरुदेव को मेरा बार २ प्रणाम है।"

आओ, आज हम सब भी मिलकर विश्व वन्द्य बापू के गुरुदेव कवीन्द्र रवीन्द्र के प्रणाम में सम्मिलित होकर "एक मात्र विश्व-कल्याणकर्त्री वैदिक संस्कृति के प्रबल प्रचारक, मातृभूमि के अखण्ड उपासक, संस्कृत भाषा के एकमात्र उद्धारक, देवोपम, बालब्रह्मचारी, देवों द्वारा नहीं, विरोधियों द्वारा, एक बार नहीं, अनेकों बार हलाहल पीकर शिव से भी शिवतर शिव के सच्चे चिन्तक "वैदिक संस्कृति ही विश्व का कल्याण कर सकती है।" के उद्घोषक श्री महर्षि देव दयानन्द को श्रद्धाञ्जलि समर्पित करें। मैं अपने लेख की समाप्ति के साथ २ चिन्तन का क्षेत्र चिन्तकों के लिये उपस्थित कर सकी हूँ। सत्यासत्य का निर्णय विवेकशीलों का विषय है। वे अवश्य निर्णय करेंगे और सत्य-मार्ग का अवश्य अनुसरण करेंगे।

अन्ततो गत्वा मैं उस शिव को शंकर को नमः करती हूँ संध्या के अन्तिम मन्त्र में :—

नमः शम्भवाय च, मयोभवाय च,
नमः शङ्कराय च, मयस्कराय च,
नमः शिवाय च, शिवतराय च।

ओं शम्।

क्रोध आदि वृत्तिया पर

विजय कैसे प्राप्त की जाय ?

[मूल लेखक—सुप्रसिद्ध योगी श्री अरविन्द जी]
[संकलयिता और अनुवादक—श्री डा० इन्द्रसेन जी, एम० ए० पी० एच० डी०,
श्री अरविन्दाश्रम पाण्डीचेरी]

क्रोध की घटना पर विचार करो और देखो कि कितनी छोटी सी बात पर तुम्हे क्रोध आ गया और तुम उबल पडे। यूं तो आगे चलकर तुम्हे बिना बात के भी क्रोध आने लगेगा। विचार करो कि ऐसी चेष्टाएं कितनी मूर्खतापूर्ण होती हैं। जब क्रोध आये, तुम उसे इस प्रकार शान्तिपूर्वक देखो, मानो तुम्हारी सत्ता के अन्दर किसी और को क्रोध आया हो। ऐसा करने से उसे दूर करने में सचमुच ही कोई कठिनाई नहीं होगी। यह पूर्णतया सम्भव है कि जब क्रोध बाहर फूट आये तब भी हम अपनी सत्ता के एक भाग में पीछे हटकर स्थित हो जायें और निर्लिप्त समचित्तता के साथ क्रोध का निरीक्षण करें। कठिनाई यह है कि तुम डर और घबरा जाते हो। इस कारण क्रोध तुम्हारे मन को अधिक आसानी से वश में कर लेता है जो इसे नहीं करना चाहिये।

अगर हमारी प्रकृति में क्रोध प्रबल तत्त्व है, तो हम उसे थोड़े समय के लिये कोरे बल प्रयोग से दबा सकते हैं और इसे आत्म नियन्त्रण कह सकते हैं, परन्तु अन्त में, अतएव प्रकृति हमे हरा देगी और वह विकार आश्चर्यजनक शक्ति को लिये हुए अप्रत्याशित रूप में हम पर लौट आवेगा। केवल दो तरीके हैं जिनसे हम विकार को जो हमें गुलाम बनाने की चेष्टा करता है, निश्चित-रूपेण जीत सकते हैं। एक तो है अन्य भाव के स्थापन की शैली, अर्थात् जब कभी विकार उठे तब उसके स्थान पर विरोधी गुण को ला बैठाना,—क्रोध के स्थान पर क्षमा, प्रेम या सहिष्णुता के विचारों को, काम के स्थान पर पवित्रता के ध्यान-मनन को, अभिमान के स्थान पर नम्रता और अपने अवगुणों या अपनी तुच्छता के विचारों को, यह राजयोग की विधि है परन्तु यह कठिन, धीमी और अनिश्चित है, क्योंकि प्राचीन परम्पराएं और योग का आधुनिक अनुभव दोनों यह दिखाते हैं कि वे लोग जिन्होंने कितने ही बरसों से उच्चतम आत्म प्रभुत्व प्राप्त किया हुआ था उस चीज की उग्रतापूर्ण वापसी से सहसा आश्चर्यचकित रह गये जिसे उन्होंने मृत या सदा के लिये वशवर्ती समझ लिया था। परन्तु यह स्थापन-शैली यद्यपि धीमी है तथापि यह प्रकृति की साधारणतम विधियों में से एक है और अधिकतर इस उपाय से ही जिसे बहुधा अनजान में या जान-अनजान में प्रयुक्त किया जाता है, मनुष्य का चरित्र एक जीवन से दूसरे जीवन में या एक जीवन की अवधि में भी बदलता और विकसित होता है। यह शैली चीजों को उनके बीज तक नष्ट नहीं करती, और वह बीज जिसे योग से जलाकर राख नहीं कर दिया जाता; फिर फूट निकलने

और पूर्ण तथा शक्तिशाली वृक्ष के रूप में पनप उठने में सदा समर्थ रहता है। दूसरा तरीका है विकार को भोग (enjoyment) भोगने देना ताकि उससे जल्दी छुटकारा हो जाय। जब वह अति भोग से तृप्त तथा शान्त कर दिया जाता है तो वह दुर्बल और जर्जरित शक्ति वाला हो जाता है और उसके बाद एक प्रति क्रिया उत्पन्न होती है जो कुछ समय के लिये विरोधी शक्ति, प्रवृत्ति या गुण को स्थापित कर देती है। अगर योगी उस अवसर को निग्रह के लिये ग्रहण कर लेता है तो प्रत्येक उपयुक्त अवसर पर उस प्रकार दुहराया हुआ निग्रह अत्यधिक प्रभावजनक हो जाता है, यहां तक कि वह उस वृत्ति के बल और जीवन शक्ति को इतनी पर्याप्त मात्रा मे न्यून कर देता है कि फिर अन्तिम प्रक्रियारूप संयम का प्रयोग किया जा सकता है। भोग और प्रति-क्रिया की यह विधि भी प्रकृति की एक प्रिय और सार्वभौम विधि है, परन्तु यह अपने आप में कदापि पूर्ण नहीं है और अगर इसे स्थिर शक्तियों या गुणों पर प्रयुक्त किया जाय तो यह विरोधी प्रवृत्तियों के उतार-चढ़ाव के ऐसे खेल को जारी कर देती है जो प्रकृति की क्रियाओं के लिये अत्यधिक उपयोगी है परन्तु आत्म प्रभुत्व की दृष्टि से व्यर्थ और अनिर्णायक है। यह विधि तभी प्रभावजनक हो पाती है जब इसके बाद संयम का प्रयोग किया जाता है। योगी वृत्ति को केवल प्रकृति के एक खेल के रूप में देखता है जिससे उसका कुछ सम्बन्ध नहीं है, जिसका वह केवल द्रष्टा है; क्रोध, काम या मद उसका नहीं है, वह विश्व जननी का है जो अपने प्रयोजनों के लिये उसे पैदा करती और शांत करती है। तो भी जब वृत्ति प्रबल, प्रभुत्व जमाने वाली और अक्षीण शक्ति वाली होती है तब यह मनोभाव सच्चे हृदय से धारण नहीं किया जा सकता और सच्चाई से इसे अनुभव किये बिना बौद्धिक तौर पर इसे धारण करने का प्रयत्न करना मिथ्या-चार, झूठा आचरण या मक्कारी है। जब वृत्ति बार बार किये गये भोग और निग्रह से कुछ कुछ निःसत्व हो चुकी हो तभी प्रकृति, आत्मा या पुरुष की आज्ञा से, अपनी ही पैदा की हुई उस वस्तु के साथ वस्तुतः बर्ताव कर सकती है। वह सर्व प्रथम वैराग्य द्वारा—अपने स्थूलतम रूप में घृणा-भाव से प्रकट हुए वैराग्य द्वारा—उसके साथ पेश आती है परन्तु यह भाव इतना उग्र है कि स्थायी नहीं रह सकता; तो भी वह उस वृत्ति के मूलकारण से मुक्त होने की गहरी इच्छा के रूप में अपना एक संस्कार पीछे छोड़ जाता है, जो विकार की प्रत्यावृत्ति और अल्पकालिक राज्य के बाद भी जीवित बचा रहता है। तदनंतर उस की प्रत्यावृत्ति को अधीरतापूर्वक किन्तु असहि-ष्णुता की किसी तीव्र भावना के बिना देखा जाता है। अन्त में परम उदासीनता प्राप्त हो जाती है और प्रकृति की साधारण प्रक्रिया से प्रवृत्ति के अन्तिम निष्क्रमण का उस संयमी की सच्ची भावना से निरीक्षण किया जाता है जिसे यह ज्ञान है कि वह साक्षी आत्मा है और उसे किसी वृत्ति के निरोध के लिये उससे केवल संबंध विच्छेद कर लेना है। उच्चतम अवस्था वृत्ति से मुक्ति को प्राप्त कराती है या तो लय के रूप में जब वृत्ति सर्वथा और सदा के लिये नष्ट हो जाती है, या फिर अन्य प्रकार के छुटकारे के रूप मे जब आत्मा जानती है कि वृत्ति ईश्वर की लीला है और वह इस बात को उस पर छोड़ देती है कि वह (ईश्वर) वृत्ति को बाहर निकाल फेंके या उसे अपने उद्देश्यों के लिये इस्तेमाल करे। यह कर्मयोगी की मनोवृत्ति है, उस कर्म-योगी की जो अपने को परमेश्वर के हाथों में सौंप देता है और केवल उसके लिये काम करता

है, यह जानते हुए कि जो शक्ति उसमें काम करती है वह ईश्वर की ही शक्ति है। आत्म-समर्पण की इस वृत्ति का परिणाम यह होता है कि सर्वभूत-महेश्वर निज भक्त का सब भार स्वयं संभाल लेते हैं और गीता की प्रतिज्ञा के अनुसार अपने सेवक और प्रेमी को सब पाप और बुराई से मुक्त कर देते हैं। उस अवस्था में वृत्तियां आत्मा पर प्रभाव डाले बिना शरीर की मशीन में काम करती रहती हैं और केवल तब काम करती हैं जब महेश्वर अपने प्रयोजन के लिये उन्हें उभारते हैं। यह है निर्लिप्तता, लीला के अन्दर पूर्ण स्वतन्त्रता की स्थिति।

साधारण जीवन में लोग काम, क्रोध, लोभ, वासना आदि को स्वाभाविक, क्षंतव्य एवं उचित चीजे समझते हैं और इन्हें मानव प्रकृति का अंग मानते हैं। जहां तक समाज इन्हें अनुत्साहित करता है अथवा इन्हें निश्चित सीमाओं के भीतर या उचित संयम या मर्यादा के अधीन रखने का आग्रह करता है वहीं तक लोग इन्हें सदाचार के सामाजिक मान या व्यवहार के नियम के अनुसार वश में रखने का यत्न करते हैं। इसके विपरीत, यहां तथा सब प्रकार के आध्यात्मिक जीवन में इन चीजों पर विजय तथा पूर्ण प्रभुत्व की मांग की जाती है। यही कारण है कि यहां संघर्ष अति तीव्र अनुभूत होता है, इसलिये नहीं कि ये चीजें साधारण मनुष्यों की अपेक्षा साधकों में अधिक प्रबल रूप में उठती हैं वरन् इसलिये कि आध्यात्मिक मन तथा प्राणिक चेष्टाओं में उत्कट संघर्ष चलता है—आध्यात्मिक मन संयम की मांग करता है और प्राणिक चेष्टाएं विद्रोह करती हैं तथा नये जीवन में भी पुनः उसी तरह बने रहना चाहती हैं जिस तरह वे पुराने जीवन में थीं। यह जो धारणा है कि साधना इस प्रकार की चीजें उभाड़ती है इसमें सत्य इतना ही है कि एक तो साधारण मनुष्य में ऐसी बहुत सी चीजें हैं जिनसे वह सचेतन नहीं है क्योंकि प्राण उन्हें मन से छिपाये रखकर तृप्त करता रहता है जबकि मन समझ ही नहीं पाता कि वह कौन सी शक्ति है जो इस कार्य को प्रेरित कर रही है। इस प्रकार, जो चीजें परार्थ, परोपकार एवं सेवा के निमित्त की जाती हैं वे अधिकतर अहंकार से परिचालित होती हैं। इन बहानों के पीछे अहंकार छिपा ही रहता है। योग में गुप्त प्रेरक को पर्दे के पीछे से बाहर प्रकाश में लाना तथा उससे छुटकारा पाना होता है। दूसरे साधारण जीवन में कुछ चीजें दबा दी जाती हैं, वे प्रकृति में ही दबी पड़ी रहती हैं पर नष्ट नहीं हुई होतीं। वे किसी भी दिन उभर सकती हैं अथवा वे अपने को मन या प्राण या शरीर के नाना स्नायवीय रूपों या अन्य गड़बड़ियों में प्रकट कर सकती हैं जब कि इस बात का स्पष्ट पता नहीं चलता कि उनका असली कारण क्या है। यह तथ्य यूरोपीय मनोवैज्ञानिकों ने अभी हाल में ढूंढ़ निकाला है और मनो विश्लेषण नामक नये विज्ञान में इस पर बहुत बल दिया है, यहां तक कि इसका अत्यधिक बढ़ा चढ़ा कर वर्णन किया है। यहां भी, साधना में मनुष्य को इन दबी प्रवृत्तियों से सचेतन होकर इन्हे निकाल फेंकना होता है। इसे उभाड़ना कह सकते हैं, परन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि इन्हें कार्य रूप में उभाड़ना है बल्कि केवल चेतना के सामने ला खड़ा करना है ताकि अपनी सत्ता में से इनकी सफाई की जा सके।

यह जो बात है कि कुछ लोग अपने को वश में करने में समर्थ होते हैं और दूसरे वश किये जाते हैं इसका कारण है स्वभाव स्वभाव में भेद। कुछ लोग सात्त्विक स्वभाव के होते हैं और उनके लिये कम से कम कुछ हद तक, संयम करना सुगम होता है। दूसरे अधिक

राजसिक होते हैं और संयम को कठिन तथा प्रायः असंभव अनुभव करते हैं। कइयों का मन एवं संकल्प सबल होता है और दूसरे प्राण प्रधान मनुष्य होते हैं जिनमें प्राणिक आवेग अधिक प्रबल होते हैं तथा अधिक ऊपर आये होते हैं। कुछ लोग संयम को आवश्यक नहीं समझते और अपने आपको खुला छोड़ देते हैं। साधन में मानसिक या नैतिक संयम के स्थान पर आध्यात्मिक प्रभुत्व स्थापित करना होता है। कारण, मानसिक संयम केवल आंशिक होता है, वह हमें नियंत्रित ही करता है न कि स्वतंत्र एवं मुक्त, ऐसा तो केवल आन्तरात्मिक एवं आध्यात्मिक संयम हो सकता है। इस विषय में साधारण तथा आध्यात्मिक जीवन में मुख्य भेद यही है।

यौगिक, मनो भौतिक आदि आदि दृष्टियों से आमाशय, हृदय और आंतों मे स्थूल चेतना का नहीं वरन् प्राणिक चेष्टाओं का निवास है। यहीं पर प्राणी के क्रोध, भय, प्रेम, घृणा तथा उसकी अन्य सब मनोवैज्ञानिक विशिष्टताएं उछलकूद मचाती हैं तथा शरीर और मन की पाचनशक्ति में गड़बड़ी पैदा कर देती हैं।

क्रोध के कारण आत्मा तमसाच्छन्न हो जाती है, बुद्धि और इच्छाशक्ति शांत साक्षी आत्मा को देखना तथा उसमे स्थित होना भूल जाती हैं। मनुष्य अपने सच्चे स्वरूप की स्मृति से भ्रष्ट हो जाता है। इस पतन से इच्छा शक्ति भी विमूढ़, यहां तक कि नष्ट हो जाती है। कारण, कुछ समय के लिये, हमारी निज स्मृति में इसका कोई अस्तित्व नहीं रहता। यह क्रोध के बादल से ढक जाती है। हम क्रोध, आवेश एवं शोकमय ही बन जाते हैं और आत्मा, बुद्धि तथा इच्छा शक्ति नहीं रहते।

बस, करने की एक बात यही है कि इन प्रवृत्तियों से अपने को अलग कर लिया जाय, अपने आन्तर आत्मा को खोज निकाला जाय, उसी में निवास किया जाय, फिर ऐसा कभी नहीं मालूम होगा कि ये सब वृत्तियां अपनी हैं; बल्कि ऐसा मालूम होगा कि बाहरी प्रकृति ने आंतर आत्मा या पुरुष के ऊपर उन्हे ऊपर ही ऊपर से आरोपित कर दिया है। उस समय बड़ी आसानी से उनका त्याग किया जा सकता है या उन्हें नष्ट किया जा सकता है।

अगर तुम अपनी प्राणगत वृत्तियों पर सच्चा प्रभुत्व प्राप्त करना चाहते हो और उन्हें रूपांतरित करना चाहते हो तो यह केवल तभी हो सकता है, यदि तुम्हारा हृत्पुरुष, तुम्हारी आन्तरात्मा पूर्ण रूप से जाग जाय, अपना राज्य स्थापित करले और तुम्हारी सारी सत्ता को शक्ति के स्थायी स्पर्श की ओर खोलकर अपनी स्वाभाविक विशुद्ध भक्ति, अनन्य अभीप्सा और सभी भागवत वस्तुओं के प्रति होने वाले अपने अखण्ड एक निष्ठ आवेग को तुम्हारे मन, हृदय और प्राण प्रकृति पर स्थापित करदो इसके अतिरिक्त दूसरा कोई पथ नहीं है और किसी अधिक सुगम मार्ग के लिये छट पटाने से कोई लाभ नहीं। नान्यः पन्था विद्यते ऽयनाय।

(अदिति कार्यालय के सौजन्य सेप्राप्त)

वेद के विषय में

भारतीय इतिहास वेत्ता का भ्रम

लेखक—वैदिक गवेषक, श्री शिव पूजन सिंह जी सिद्धान्त वाचस्पति, विशारद, साहित्यालङ्कार कानपुर

—०—०—

श्री गङ्गाप्रसाद मेहता, एम० ए०, प्रोफेसर, इतिहास विभाग, काशी-विश्व विद्यालय ने "प्राचीन भारत" नामक एक ग्रन्थ लिखा है जो "हिन्दी प्रकाशन मण्डल, काशी-हिन्दू विश्व विद्यालय से प्रकाशित हुआ है।" मेरे सामने सन् १६४८ में मुद्रित, द्वितीयावृत्ति है। यह ग्रन्थ अनेक विश्व विद्यालयों व हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग की मध्यमा (विशारद) परीक्षा में भी सम्मिलित है। हिन्दू विश्व विद्यालय जैसी आदरणीय, मालवीय जी द्वारा स्थापित संस्था से जब इस प्रकार का ग्रन्थ प्रकाशित होता है तो महा खेद होता है और भविष्य अन्धकारमय प्रतीत होता है। मेहता जी की वेदों के विषय में वही अनुचित धारणाएँ है जो प्राय: पाश्चात्य विद्वानों की हैं। हम प्रस्तुत लेख में इनकी धारणाओं की परीक्षा करना चाहते हैं। उनका ग्रन्थ ३३१ पृष्ठ में समाप्त हुआ है।

मेहता—पृष्ठ १४ में "आर्य जाति का आदिम स्थान" का वर्णन करते हुए आप लिखते हैं··· ······आर्यों के मूलस्थान के विषय मे जो २ कल्पनाएँ अब तक की गई हैं वे आर्यों के सब से प्राचीन वेद मंत्रों के साहित्य से बिल्कुल प्रमाणित नहीं होतीं। उनसे तो सिर्फ यही पता चलता है कि प्राचीन आर्य पहले पहल अफगानिस्तान और पंजाब में बसे थे और फिर वहां से हिमालय और विन्ध्याचल के बीच के प्रदेशों में फैल गए।"······

समीक्षा- -आपने कोई वेद मंत्र प्रस्तुत नहीं किया कि प्राचीन आर्य अफगानिस्तान और पंजाब में बसे थे···जब तक कोई वेद मंत्र नहीं तब तक आपकी बात कोई भी विद्वान् नहीं मान सकता।

श्री मेहता—पृष्ठ २६ में—"ऋग्वेद के सूक्त सप्त सिन्धु के प्रदेश अर्थात् पंजाब में रचे गए थे।"···

समीक्षा—यह भी आपकी कपोल कल्पना है। ऋग्वेद के सूक्त सप्त सिन्धु के प्रदेश में नहीं रचे गए थे। वेद तो ईश्वरीय ज्ञान है। यह मानव की देन नहीं हैं। जिन पाश्चात्य विद्वानों पर आपको अधिक आस्था है वे भी इसका समर्थन करते हैं। यथा—श्री मेटरलिङ्क (Mr. Materlink) महोदय नामक सुप्रसिद्ध दार्शनिक लिखते हैं:—

"Only the glare of the clairvoyant, directed upon the mysteries of the past may reveal unrivalled wisdom which lies hidden behind those writings (Vedas.)'

अर्थात्—"वेद एक मात्र ज्ञान के भण्डार है, जिनकी तुलना ही नहीं हो सकती। वेदों में गुप्त रूप अर्थात् मंत्र रूप से समस्त विद्याओं का उपदेश निहित है।"

' "The Glory of the Vedas" P.16, & साप्ताहिक पत्र "दिवाकर" आगरा का "वेदाङ्क" भाग १, दिनाङ्क २६-१०-१६३४, अङ्क २८-२६ पृष्ठ १८४ कॉलम १.

प्रो० ब्लूमफील्ड अपने "रेलीजन ऑफ दी वेदाज" (Religion of the Vedas) मे लिखते हैं:—"वेद प्राचीनतम है······इतनी शताब्दियों के पश्चात् हमारे भाव, भाषा और धर्म में परिवर्तन होने के बाद भी आज वेदों में हमारे लिए बहुत कुछ मौजूद है। सदैव स्मरण रखना चाहिए।" २

मेहता—पृष्ठ २६ —"ऋग्वेद में सब १०२८ सूक्त हैं। ये दस मण्डलों मे विभक्त है। इन सूक्तों में कुछ प्राचीन और कुछ नवीन हैं। दशम मण्डल के सूक्त दूसरे मण्डलों के सूक्तों की अपेक्षा नवीन प्रतीत होते है।" ····

समीक्षा—आपने ऋग्वेद के सूक्तों मे कुछ प्राचीन व कुछ नवीन बतलाये हैं और दशम मण्डल के सूक्त दूसरे मण्डलों के सूक्तों की अपेक्षा नवीन आपको प्रतीत होते हैं, ऐसा क्यों होता है ? आपने कोई प्रमाण, तर्क आदि कुछ भी नहीं दिया। ऋग्वेद का कोई भी मण्डल एक दूसरे से अपेक्षा कृत न नवीन है और न दशम मण्डल ही। आपने ऋग्वेद को भली भांति अध्ययन नहीं किया, नहीं तो ऐसी अनर्गल बात नहीं लिखते। ३

मेहता—अथर्ववेद में बहुत से भूतों और पिशाचों का उल्लेख है जिनसे बचने के लिए बहुत से मंत्र तंत्र इसमे पाए जाते हैं··· ··।"

समीक्षा—आपने अथर्ववेद को समझने में भयङ्कर भूल की है। किसी स्थल से भूत और पिशाचों का ही उल्लेख प्रदर्शित करते। वास्तव मे अथर्ववेद में ऐसी ऊट पटांग बाते नहीं है वरन् औषधियो व विज्ञान की बाते हैं। ४

मेहता—पृष्ठ ३१—"आय लोग भारत मे कहां से और कैसे आए, इसका ऋग्वेद से कुछ पता नहीं चलता····· ।"

समीक्षा—ऋग्वेद मे स्पष्ट लिखा हुआ है कि आदि सृष्टि 'त्रिविष्टप' (तिब्बत) मे हुई यथा--

"इमानि त्रीणि विष्टपा तानीन्द्र विरोहय।
शिरस्ततस्योर्वरामादिद म उपोदरे।"
(ऋग्वेद ८, सूक्त ९१. मंत्र ५)

अर्थ—"हे राजन्! तू उस त्रिविष्टप स्थान को प्राप्त कर जो सारी पृथ्वी से ऊंचा है और मनुष्यों के लिए सुखकारी है और माता के उदर के समान उत्पन्न करने का स्थान है।" ५

---

२ "महान् भारत" प्रथम संस्करण, पृष्ठ २४२

३ देखिए, मेरी पुस्तक "ऋग्वेद के १०म मण्डल पर पाश्चात्य विद्वानों का कुठाराघात" [दयानन्द वैदिक शोध संस्थान, साहित्य रत्नालय, श्रद्धानन्द पार्क कानपुर, से प्रकाशित]

४ देखिए-वैदिक रिसर्च स्कालर पं० प्रियरत्न जी आर्ष (स्वामी ब्रह्ममुनि जी) कृत "अथर्ववेदीय चिकित्सा पद्धति" ग्रन्थ [सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, देहली से प्राप्य], तथा मेरी लिखी हुई पुस्तक—अथर्ववेद की प्राचीनता" [दयानन्द वैदिक शोध संस्थान, साहित्य रत्नालय, श्रद्धानन्द पार्क, कानपुर से प्रकाशित],

५ पढ़िए—"पौराणिक पोल-प्रकाश द्वितीय भाग, प्रथम संस्करण, पृष्ठ ११५६, मासिक पत्रिका "वेदवाणी" काशी १ अप्रैल, सन् १९४६ ई०, अङ्क ८, पृष्ठ १६-२० मे प्रकाशित आचार्य पं० वीरेन्द्र जी शास्त्री काव्यतीर्थ, एम० ए० का लेख "आर्य शब्द अधिक व्यापक है।"

'त्रयः सुपर्णा उपरस्य मायू,
नाकस्य पृष्ठे अधिविष्टपिश्रिताः।
स्वर्गा लोका अमृतेन विष्टा
इषमूर्जं यजमानाय दुह्राम् ॥"

(अथर्ववेद काण्ड १८, सू० ४, मं० ४)

इसका अर्थ वैदिक अनुसन्धान विद्वान् पं० प्रियरत्न जी आर्ष करते हैं :—

"(त्रयः सुपर्णा विष्टप्यधिश्रिताः) तीनों अग्नियां जीवों के प्रवेश स्थान रूप भुवन मे वर्तमान है। उनमे से (नाकस्य पृष्ठे उपरस्य मायू) दो विद्युत् और सूर्य तो मेघ मण्डल में मेघ बनाने वाली है। जहां (स्वर्गलोका अमृतेन विष्ठाः) उत्पन्न होने वाले जीवात्मा मेघ मंडल में अमर धम से स्थित हैं।

(यजमानायेषमूर्जं दुह्राम्) उन जीवात्माओं मे से जो जीवात्मा पुर्नजन्म प्राप्ति के लिए अपने आत्मा की आहुति को बीज भाव से त्यागने को तैयार होता है, उसके लिए ये अग्नियां शुक्र शोणित का दोहन करती हैं।

तात्पर्य—भुवन रूप विष्टप के अन्दर पार्थिव वैद्युत तथा सौर भेद से तीन अग्नियां काम करती है, अतः यह भुवन (त्रयाणां विष्टपः त्रिविष्टपः) है। मेघ मण्डल रूप नाकपृष्ठ में विद्युत् और सूर्य मेघ को बनाने वाले हैं। वहां मेघ मण्डल में जीवात्मा जन्म धारण करने की शक्ति प्राप्त करते हैं। जो जीव जन्मार्थ अपने आपको बीज भाव के रूप में समर्पित करता है, उसके लिए उक्त तीनों अग्नियां 'शुक्र शोणित' का सम्पादन करती हैं। ६

पुनः आप लिखते हैं :—"···पृथ्वी का सर्व प्रथम भूभाग पर्वतीय भाग ही ऊपर उभरा या बाहिर आया और वहीं पर वनस्पति प्राणी मनुष्य की प्रथम सृष्टि हुई। हम देखते हैं कि जल मे डूबी हुई भूमि का जो भाग जल सूखते रहने आदि से बाहर आता है उसी पर घास, मच्छर, कृमिकीट आदि की सृष्टि होती है अतः प्रथम सृष्टि कहीं ऊंचे स्थान पर ही हो सकती है, वह स्थान "त्रिविष्टप" कहलाता है और कहलाया करता है। सूर्य,विद्युत्-अग्नि तीनों देवोंका प्रवेश स्थान समागम स्थान होने से त्रिविष्टप कहलाता है।" ७

पं० तुलसीराम स्वामी ८, पं० यज्ञेश्वर भट्ट चिमणा जी शास्त्री ९, पं० रुद्रदेव शास्त्री १०, आचार्य चतुरसेन शास्त्री ११, पं० जे०पी० चौधरी काव्यतीर्थ १२, डा० धीरेन्द्र वर्मा एम-ए०, डी०

६ "वैदिक ज्योतिष शास्त्र" पुस्तक, प्रथम संस्करण पृष्ठ २१२-२१३

७ मासिक पत्र "सार्वदेशिक" देहली, वर्ष ३९ मार्च १९४९ ई० अङ्क १, पृष्ठ ६१९ में "सृष्टि की उत्पत्ति" शीर्षक लेख।

८ "भास्कर-प्रकाश चतुर्थ संस्करण, पृष्ठ २४८-२४९

९ "आर्य विद्या-सुधारक" प्रथम संस्करण, पृष्ठ ४-५

१० मासिक पत्रिका "गङ्गा का वेदांक" पृष्ठ १६७-१६८ तथा काशी विद्यापीठ काशी को त्रैमासिक पत्रिका "विद्यापीठ" वर्ष २, चैत्र १९९८ वि० अंक ४, पृष्ठ ४१२

११ "वेद और उनका साहित्य" प्रथमावृत्ति पृष्ठ ३८

१२ मासिक पत्रिका "पाखण्ड-खण्डिनी-पताका" काशी, वर्ष ७, फरवरी १५, सन् १९४१ ई० अंक ७, पृष्ठ ३३१-३३२

लिट् १३, भी आदि सृष्टि 'त्रिविष्टप' ही मानते हैं।

उसी 'त्रिविष्टप' से आर्य लोग 'आर्यावर्त्त' में आए। १४

मेहता—पृष्ठ ३१—"पंजाब की पांच नदियों और गङ्गा-यमुना का उल्लेख ऋग्वेद मे मिलता है।" .....

समीक्षा—वेद में कोई इतिहास नहीं है, वेद के शब्द यौगिक है १५, आप रूढ़ि मानकर यह भूल कर रहे है।

आपने अपनी पुस्तक की पाद-टिप्पणी मे "इमं मे गंगे यमुने सरस्वती"...(ऋग्वेद १०।७४।५) मंत्र को गङ्गा-यमुना के समर्थन मे दिया है। इस मंत्र का जो आपने अर्थ नदी परक समझा है यह आपकी भूल है।

इस मंत्र मे गङ्गा, यमुना, आदि नाम इड़ा, पिंगला, सुषुम्णा, कूर्म और जाठराग्नि की नाड़ियों के है, उनमे योगाभ्यास से परमेश्वर की उपासना करने से मनुष्य लोग सब दुःखों से तर जाते है, क्योंकि उपासना नाड़ियों के द्वारा की जाती है।

इस हेतु से इस मंत्र में उनकी गणना की है।..... १६

यही मंत्र 'निरुक्त' दैवतकाण्ड ६ अ० ३ पा० २४ ख० २० श० मे भी आया है।

इसका अर्थ भी प० चन्द्रमणि 'विद्यालंकार' 'पालीरत्न' वेदोपाध्याय ने ऐसा ही किया है जैसा महर्षि दयानन्द जी ने। १७

ऐसा ही अर्थ साहित्याचार्य, विद्याभूषण पं० सुरेन्द्र शर्मा, वेद-काव्यतीर्थ ने भी किया है। १८

वैदिक अनुसन्धान विद्वान् पं० प्रियरत्न जी आर्ष भी लिखते है—"वेदो मे गङ्गा, यमुना, आदि नामो का आ जाना किसी ऐतिहासिक घटना को सिद्ध नहीं करता है, क्योंकि ये नाम यौगिक है, अतएव लोक प्रसिद्ध रूढ़ व्यक्तियो के नाम नहीं है। शरीर गत नाड़ियां के नाम भी गङ्गा आदि है और वसिष्ठ अमृत प्राण को कहते है, ऐसा कथन श्री बाबू भगवान दास जी काशी और पं० चन्द्रमणि जी विद्यालंकार आदि कई विद्वानों का है।" १९

पं० रघुनन्दन शर्मा साहित्य भूषण २०, पं० शिव शर्मा जी महोपदेशक २१, राज्यरत्न मा० आत्माराम जी २२, प्रो० बालकृष्ण एम-ए,

१३ "हिन्दी भाषा और लिपि" सप्तम संस्करण, पृष्ठ २० की पाद टिप्पणी।
१४ महर्षि दयानन्द जी कृत "सत्यार्थ प्रकाश" अष्टम समुल्लास।
१५ मेरी पुस्तक "महर्षि दयानन्द जी कृत वेद भाष्यानुशीलन" [जयदेव ब्रादर्स, बड़ौदा से प्राप्य]
१६ देखो महर्षि दयानन्दजी कृत "ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका" ग्रन्थ प्रामाण्याप्रामाण्य विषयः।
१७ "निरुक्तभाष्य" उत्तरार्ध, प्रथमावृत्ति, पृष्ठ ५८७
१८ "जीवन का आनन्द" प्रथम भाग, तृतीय संस्करण, पृष्ठ ३१-३२
१९ "वेदों में इतिहास नहीं" प्रथम संस्करण, पृष्ठ ११३
२० "वैदिक सम्पत्ति" द्वितीय संस्करण, पृष्ठ ७६ से ८१ तक
२१ "सत्यार्थ-निर्णय" प्रथम खण्ड प्रथम संस्करण, ४२९
२२ मासिक पत्र "साहित्य विज्ञापन" बड़ौदा वर्ष १४ फरवरी मार्च सन् १९३८ ई० संख्या १३

पी-एच. डी. २३, पं० शिवशंकर काव्यतीर्थ २४, प्रभृति भी इसी मत के पोषक हैं।

मेहता—पृष्ठ ३२—'भरत, मत्स्य, यदु, पुरु, द्रुह्यु, अनु, कुरु, आदि जातियों में ऋग्वेद के आर्य लोग विभक्त थे।.....

समीक्षा—वेदों में किसी व्यक्ति विशेष का नाम नहीं है।

आपने इन शब्दों को समझने में भूल की है। देखिए—'भरत' के विषय में यास्काचार्य कहते हैं—'भरत आदित्यस्तस्य भाः' (निरुक्त ८।१४) अर्थात्-भरत का अर्थ है आदित्य।

मत्स्य, यदु, पुरु, द्रुह्यु, अनु, कुरु, प्रभृति का अर्थ मनुष्य आदि है, निघण्टु २।३ देखिए, ज्ञात हो जायगा। ये ऐतिहासिक व्यक्ति नहीं हैं। २५

मेहता—पृष्ठ ३३-३४ "विदुषी स्त्रियों ने वेद मंत्र रचे थे। ऋग्वेद के ऋषियों की नामावली में विश्ववारा, अपाला, घोषा आदि सूक्त रचने वाली स्त्रियों के नाम भी मिलते हैं।"

समीक्षा—विदुषी स्त्रियों ने वेद मंत्रों को रचा नहीं था, वरन् वे प्रचारिकाएं थीं। वेद तो ईश्वरीय ज्ञान है। बृहद्देवता (११।४) में गोधा, घोषा विश्ववारा, प्रभृति स्त्रियों को ब्रह्मवादिनी कहा है।

इसी प्रकार पं० शिव शर्मा जी २६, पं० शिव शंकर शर्मा काव्यतीर्थ २७, पं० यशःपाल जी सिद्धान्तालंकार २८, पं० महाराणी शंकर शर्मा २६, पं० मनसाराम 'वैदिक तोप' ३०, पं० राजाराम शास्त्री ३१, आचार्य रामदेव जी ३२, प्रभृति विद्वान् इन ब्रह्मवादिनी स्त्रियों को वेद मंत्र प्रचारिकाए लिखते हैं, रचयित्री नहीं।

मेहता—पृष्ठ ३५—'यज्ञ और अतिथि सत्कार के समय वे कदाचित् पशु हिंसा करते थे, किन्तु गौ को वे पवित्र और 'अघ्न्या'—हत्या के अयोग्य मानते थे।"

समीक्षा—मुझे यह देख कर प्रसन्नता है कि आप गो हत्या का पाप आर्यों के सिर नहीं मढ़ते हैं, पर यज्ञादि में पशुहिंसा मानते हैं जो भ्रम मात्र है।

देखिए प्रसिद्ध पौराणिक पण्डित रामगोविंद त्रिवेदी, वेदांत शास्त्री भूतपूर्व सम्पादक "गङ्गा" का विचार है कि—".... कुछ लोगों का विचार है कि 'यज्ञ में गौ आदि पशुओं का बध होता था।' परन्तु वेदों में एक भी ऐसा मंत्र वा मन्त्रांश नहीं है, जिससे इस विचार का अनुमोदन होता हो। गोमेध, अश्वमेध आदि में जो मेध शब्द है उसका अर्थ पवित्र'है। यज्ञको अध्वर कहा जाता है,

२३ "ईश्वरी ज्ञान वेद" प्रथमा वृत्ति, पृष्ठ ८१-८२-८३
२४ "वैदिक इतिहासार्थ निर्णय" प्रथम संस्करण, पृष्ठ ५०
२५ "वैदिक सम्पत्ति" द्वितीय संस्करण, पृष्ठ ६४
२६ "धर्म शिक्षा" तृतीय भाग, द्वितीय संस्करण पृष्ठ ५०
२७ "वैदिक इतिहासार्थ निर्णय" पृष्ठ ३५८
२८ "वैदिक सिद्धान्त दर्पण" प्रथम संस्करण, पृष्ठ ६७
२६ "कन्योपनयन विधि" प्रथमावृत्ति, पृष्ठ ३४-३५
३० "पौराणिक पोल प्रकाश" प्रथम भाग, प्रथम संस्करण, पृष्ठ ४७१
३१ "शास्त्र रहस्य" प्रथम भाग, पृष्ठ ८६ ८७
३२ 'भारत वर्ष का इतिहास" (वैदिक तथा आर्ष पर्व) तृतीयावृत्ति, पृष्ठ १४१

जिसका अर्थ 'निर्मल' है। यज्ञ शब्द का अर्थ भी पूजन है। पशु-बध की बात कहां से आयी ?' ३३

मेहता—पृष्ठ ३८—"विष्णु-समस्त विश्व में व्यापक विष्णु कहलाते हैं। वे तीन डगों में आकाश को पार कर डालते हैं। उनका धाम मधुरता, सुख और तेज से भरपूर है।"

समीक्षा—जैसा आपने विष्णु के रूप को समझा है ठीक नहीं। विष्णु का अर्थ परमात्मा आदि है। आप मेरी लिखी हुई "वामनावतार की कल्पना" पुस्तक पढ़िए, उसमें विष्णु का वास्तविक स्वरूप मिल जायगा। ३४

मेहता—पृष्ठ ४२—"—हिन्दू अनुश्रुति के अनुसार महाभारत युद्ध के समय महर्षि व्यास ने वेदों की संहिताएं रची थीं जिसके बहुत पहले छन्दों की रचना हो चुकी थी...।"

समीक्षा—यह भी आपका भ्रम है। इसी प्रकार का अशुद्ध सिद्धान्त पं० जयचन्द्र विद्यालङ्कार ने अपनी पुस्तक "भारतीय इतिहास की रूपरेखा" प्रथम जिल्द में लिखा है जिसका युक्ति युक्त और प्रबल पुष्ट प्रमाणों से मैंने खण्डन अपनी पुस्तिका 'भारतीय इतिहास की रूपरेखा पर एक समीक्षात्मक दृष्टि" ३५ में किया है।

डा० बाल कृष्ण जी एम. ए., पी. एच. डी., एफ. आर. ए. एस.; एफ. आर. ई. एस.; एफ. आर. पी. एस. भू० पू० महोपाध्याय, गुरुकुल विश्व विद्यालय हरिद्वार अपनी पुस्तक ३६ में इसका खण्डन करते हुए लिखते हैं कि—

(i) उक्त कथन सर्वथा असत्य है क्योंकि चारों वेदों के नित्य होने के हम प्रमाण और युक्तियां दे चुके हैं।

(ii) प्रत्येक वेद में चार वेदों का प्रमाण है और उन्हें ईश्वरोक्त हम सिद्ध कर चुके हैं।

(iii) दर्शनों, उपनिषदों, स्मृतियों आदि के सैकड़ों प्रमाणों से चार वेदों की नित्यता सिद्ध की गई थी—कहीं वेद व्यास से सङ्कलित किए वेद नहीं कहे गए। जब वेद व्यास जी को उत्पन्न हुए ३००० या ५००० वर्ष हुए हों तो वेद फिर नित्य कैसे हो सकते हैं ?

(iv सृष्टि के आदि से वेदों का क्रम यहीं चला आता है। मन्त्र क्रम में भेद नहीं आया। एक वेद दूसरे वेद से नहीं बना और उनमें पुनरुक्ति दोष नहीं। वेद व्यास से सङ्कलित वेदों में ये बातें कभी नहीं मानी जा सकतीं अर्थात् वेद ईश्वरीय ज्ञान ही नहीं हो सकते यदि उन्हें व्यास जी के सङ्कलित माना जावे।

(v) आश्चर्य है कि एक ओर तो कई पुराणों में लिखा है कि चतुर्मुख ब्रह्मा के प्रत्येक मुख से एक २ वेद उत्पन्न हुआ और दूसरी ओर हमारे पौराणिक पण्डित बिना विचारे यह कह देते हैं कि व्यास जी ने वेद के चार भाग किए। क्या ब्रह्मा जी और व्यास जी में कोई भेद न था ? क्या ब्रह्मा जी ३००० पूर्व उत्पन्न हुए थे ? क्या सृष्टि का आरम्भ महाभारत युद्ध के पश्चात् हुआ था ? बस सिद्ध है कि यह पुराणों की महा गप्प है।

(vi) किन्तु पुराणों के परस्पर विरोध को फिर देखिए। पुराण अध्याय में हम पुराणों की साक्षियों वेदों के अनादि होने में दे चुके हैं, अनादि वेद सादि और वह भी ३००० वर्षों के

३३ "वैदिक साहित्य" प्रथम संस्करण, पृष्ठ ३६०

३४ दयानन्द वैदिक शोध संस्थान, साहित्य रत्नालय, श्रद्धानन्द पार्क, कानपुर से प्राप्त

३५ जयदेव ब्रादर्स, बड़ौदा से प्राप्त।

३६ "ईश्वरीय ज्ञान वेद" प्रथमावृत्ति, पृष्ठ २२६—२२७

बने कैसे हो सकते है ?

(vii) पुराणों मे परस्पर इस विषय पर भेद है। देखिए मार्कण्डेय पुराण ने तो चारों वेदों को ब्रह्मा जी से उत्पन्न कहा है और भागवत पुराण ६।१२ पुरुरवा जो उर्वशी का पति था, को वेदों का विभाग कर्त्ता बतलाता है। किसका कथन सत्य माना जावे ? किसी का भी नहीं—व्यास या पुरुरवस् किसी ने एक वेद के चार वेद नहीं किए—चारों वेद सृष्टि को आदि से एतद् रूप विद्यमान रहे है।"

मेहता – पृष्ठ ४२- "...ऋग्वेद (१०।६०।४) मे इक्ष्वाकु राजा का उल्लेख है।..."

समीक्षा—वेदो मे किसी भी राजा का उल्लेख नहीं है। ३७

यहा 'इक्ष्वाकु' ओषधि का नाम है। यथा—
'यं त्वा वेद पूर्व इक्ष्वाकोर्य वा त्वा कुष्ठकाम्यः।
यं वायसो यं मात्स्यम्तेनासि विश्वभेषज.॥
(अथर्व० १९।३९।९)

अर्थात्—जिसको लोग इक्ष्वाकु जानते हैं कुष्ट काम्य मानते है और खाद्य जानते है ऐसी तू सर्वौषधि है।

'इक्ष्वाकु कुसुमचूर्णं वा पूर्ववदेव क्षीरेण। कासश्वासच्छर्दिकफरोगेषु उपयोग: (सुश्रुत: ४४।६)

अमरकोष में भी 'इक्ष्वाकुः कटुतुम्बी स्यात्' लिखा हुआ है। सुश्रुत ४४।७ मे 'इक्ष्वाकु कटुतुम्बिका' अर्थात् इक्ष्वाकु कटुतुम्बी है।

मेहता—पृष्ठ ४४—"सामवेद मे ऋग्वेद की ही ऋचाएँ है, जिनको गाने वाला 'उद्गाता' कहलाता था।..."

समीक्षा—यह भी आपका भ्रम है। वास्तव में सामवेद की भी स्वतंत्र सत्ता है, यह भी ईश्वरीय ज्ञान है। ३८

सामवेद के १८७५ मन्त्र पाए जाते है उनकी स्वतन्त्र सत्ता है यह आर्ष सिद्धान्त है। ऋग्वेद के समकाल में ही सामवेद की स्वतन्त्र सत्ता वर्त्तमान है। यथा—

"तस्माद्यज्ञात्सर्वहुत ऋचः सामानि जज्ञिरे।"
(ऋ० १०।९०।९ तथा यजु० ३१।७)

"यो जागार तमृसामानि यन्ति" (ऋ० ५।४४।१४)

"अर्चन्त एके महिसाममन्वत" (ऋ० १० ३६।५)

इन उदाहरणों में सामानि, साम आदि शब्द सामवेद की सत्ता के साधन सिद्ध हो रहे है।

पं० रामगोविन्द त्रिवेदी वेदान्त शास्त्री भी लिखते हैं—

"...वैदिक साहित्य के कई ग्रन्थों में ऋक और यजु: के बाद साम का नाम आया है, परन्तु ऋग्वेद के एक मंत्र (१।५।८) मे ऋग्वेद से भी पहले सामवेद का नाम आया है; इसलिए यह कल्पना व्यर्थ है कि ऋक् और यजुः के बाद साम का आविर्भाव वा ऐतिहासिकों के मत से निर्माण हुआ। वस्तुत. सब वेद स्वतन्त्र हैं, उत्पत्ति वा किसी विषय में किसी की अपेक्षा नहीं।"...३९

इस प्रकार मेहता जी ने अपने ग्रन्थ मे वेदों के विषय मे जो भ्रान्तियां फैलाई हैं उनका समुचित निराकरण कर दिया गया।

मुझे पूर्ण आशा तथा विश्वास है कि मेहता जी अपने हठ व पक्षपात को त्याग कर निष्पक्ष भाव से मेरे लेख को पढ़कर अपने ग्रन्थ का संशोधन कर देंगे। इत्यलम्।

३७ देखिए—मासिक पत्रिका "वेदवाणी" काशी, वर्ष २ कार्तिक २००६ वि०, अङ्क २ पृष्ठ ३१ से ३४ तक प्रकाशित मेरा "वेदों मे कथित राजाओं के नामों का रहस्य" शीर्षक लेख।

३८ मासिक पत्रिका "वेदवाणी" काशी, वर्ष २ पौष २००६ वि० अङ्क ४, पृष्ठ ९३ से ९६ तक प्रकाशित मेरा "सामवेद का स्वरूप" शीर्षक लेख पढ़िए।

३९ "वैदिक साहित्य" प्रथम संस्करण, पृष्ठ १०१

॥ ओ३म् ॥

अध्यात्मसुधा

ध्यान का आनन्द

←०→

१. मिला आनन्द जो है ध्यान मे वर्णन करूं कैसे ?
कहो क्या स्वाद है गुड का, बताऊ यह भला कैसे ?

२. मिटा सन्ताप सारा पाप चिन्ता मिट गई सारी।
मिली सच्छान्ति मुदिता कान्ति, हरली भ्रान्ति हर भारी ॥

३. हुए दर्शन दयामय देव के पल पल सरल दिल में।
खिला दिल का कमल जिससे, भरा आनन्द अब दिल मे ॥

४. नहीं अब दुःख दुनिया के, मुझे कुछ भी हिला सकते।
पडे जो टूट पर्वत आपदा के नहिं हिला सकते ॥

५. दिखाई कर मुझे दे अब, दयाकर का सभी जग मे।
अमगल हो नहीं सकता, यही विश्वास रग रग मे ॥

६. सुमगल मोद है चारों तरफ करुणा का सागर है।
सदा आनन्द ही आनन्द रक्षक प्रेम का घर है ॥

७ उसी के हाथ मे चप्पू, दिया मैंने स्वनौका का।
चतुर मल्लाह कर देगा, मुझे वह पार डर किसका ? ॥

८. परम निश्चिन्तता पाई, जगाई ज्योति है भीतर।
नहीं अब काम रिपुओं का, नहीं मद शोक अरि का डर ॥

९. यही अब कामना का तेरा बनूं प्रिय पुत्र हे माता।
तुही है तात मेरा मित्र तू ही बन्धु तू भ्राता ॥

१०. सदा तेरे करू दर्शन, तुझी मे मग्न होवे मन।
निरन्तर तेरा हो सुमिरन, इसी से शांति मैं पाता ॥

'ध्रुव"

नैतिक धर्म्म जीवन

(१)

[लेखक—श्री रघुनाथप्रसाद जी पाठक]

नैतिक जीवन का आधार आस्तिकता और धर्म परायणता है। धर्म आचरण का विषय है जिसका सम्बन्ध जीवन के प्रतिदिन के व्यवहार से होता और जिसका परिचय मनुष्य के जीवन और हृदय से मिलता है। जिस प्रक्रिया वा आचरण से मनुष्य की आत्मा में निहित सत्य, न्याय, निष्पक्षता, निष्कपटता, करुणा, दया, क्षमा, पर हितकातरता आदि देवत्व का विकास होकर मनुष्य को परमात्मा के साथ बांधने वाली डोरी दृढ़ बने, मनुष्य का पशुत्व काबू में रहे और लोक परलोक सुधर जाय उसे धर्माचरण कहते हैं।

धर्म ईमान और विश्वास का विषय नहीं है। शरीर की अनुचित साधना, होठों की अनवरत गति, घुटनों का टेकना, जप, व्रत, तीर्थ, तिलक, छाप, देवी देवताओं का पूजन अर्चन, और अनुष्ठान आदि कर्म कांड व चिन्ह भी धर्म के परिचायक नहीं है। मनुष्य कितना ही बड़ा कर्मकांडी और मजहबी क्यों न हो, यदि उसके जीवन से दूसरों के हृदय पर प्रभाव न पड़ता हो तो वह धर्म की प्रतिष्ठा को खोने वाला ही समझा जा सकता है इसी प्रकार कोई मनुष्य कितना ही बड़ा विद्वान् और पंडित क्यों न हो, यदि उसका आचार व्यवहार पडितों और विद्वानों जैसा न हो तो उसे पडित नहीं कह सकते। यदि उसकी प्रखर बुद्धि के विकास के साथ २ उसके हृदय का रस सूख गया हो उसकी बुद्धि, ज्ञान और उसके पांडित्य का दुरुपयोग विनाश और पर.पीड़न में होता हो तो उसे सभ्य बर्बर और उसकी विद्वत्ता को सभ्य बर्बरता ही कह सकते हैं। ऐसे विद्वानों और ज्ञान सम्पन्न व्यक्तियों की अपेक्षा तो वह अनपढ़ या कम पढ़ा लिखा हुआ व्यक्ति उत्तम है जो बुराई से डरता हो और परमात्मा का भय मानता हो। बुराई से डरना परमात्मा से डरने के समान होता है। ऐसे व्यक्तियों में धर्म अधिक पाया जाता है और संसार का प्रत्यक्ष अनुभव भी इसकी पुष्टि करता है।

यदि किसी व्यक्ति मे धार्मिक प्रवृत्ति पाई जाय तो समझो वह धार्मिक है। इस प्रवृत्ति का विकास सद्भ्यास और सत्याचरण से होता है। इसका स्वरूप पवित्र और शुद्ध होता है। महान् विकसित आत्माओं में यह पवित्रता परमात्मा की आज्ञा का पालन करना मनुष्य का अन्तिम लक्ष्य निर्धारित कर देती है। इसके विकास से मनुष्य के हृदय में प्रायः शुभ प्रेरणाएं उठती, हृदय प्रफुल्ल और शान्त रहता पारस्परिक व्यवहार की त्रुटियां दूर हो जाती और मनुष्य समाज का उपयोगी अंग बन जाता है। जो व्यक्ति रात दिन निष्काम भाव से परोपकार और जनसेवा में संलग्न रहते, जिनका जीवन और व्यवहार पवित्र और लोगों की निष्पक्ष आलोचना से ऊपर रहता, जो अपनी अन्तरात्मा और परमात्मा की दृष्टि में निर्दोष रहते और जिनका

प्रत्येक काम परमात्मा की भेंट स्वरूप होता है उनमें तो इस प्रवृत्ति का अलौकिक स्वरूप और प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। ऐसे धर्म-परायण व्यक्ति ईश्वर के परम प्रिय होते और संसार के लिये देन होते हैं। परमात्मा की आज्ञा पालन करने का अभिप्राय है कि मनुष्य अपने को अच्छा और सुखी बनाए साथ हो दूसरों को भी सुखी और उत्तम बनाए। मनुष्य परमात्मा की सर्वोत्तम कृति होता है क्योंकि उसी में अपना आत्मिक विकास करते २ परमात्मा का दर्शन करने की सामर्थ्य होती है।

संसार से अत्यधिक घृणा करना और उसमें अत्यधिक आसक्त होना ये दोनों ही मनुष्य के विकास में बाधक होते हैं। संसार से घृणा करके वा निरपेक्ष रह कर मुक्ति की साधना की भावना ने मनुष्य समाज का बड़ा अकल्याण किया है। इससे सबसे बड़ी हानि समष्टि गत जीवन को पहुँची है। प्रारब्ध के भरोसे बैठकर और समाज की उन्नति व दोषों के प्रति निरपेक्ष भाव रखकर मनुष्य ने अपने सांसारिक कर्त्तव्यों को बुरी तरह ठुकराया है। जिसके कुफल भावी सन्तति को पूरी तरह भोगने पड़े हैं। अत्यधिक सांसारिकता मनुष्य को स्वार्थ, अहंकार, क्रोध, ईर्ष्या, छल, कपट, महत्वाकांक्षा, शक्ति और इन्द्रियासक्ति से विमूढ़ करके और पतित बना कर मनुष्य के अध्यात्मिक विकास को कुंठित करती और समाज में अशान्ति और क्लेश को बढाती है। ये दोनों किनारे की बातें मनुष्य के धार्मिक और लौकिक विकास में बाधक होती हैं। परमात्मा ने मनुष्य को एक देन के रूप में जीवन प्रदान किया है। वह जीवन अपने वा दूसरों के लिये अभिशाप बने यह सृष्टि कर्त्ता का अभिप्राय नहीं है। उसका अभिप्राय यह है कि मनुष्य अपनी उन्नति करे संसार का सुख भोगे परन्तु दूसरों की उन्नति और सुख में न केवल बाधक ही न बने अपितु दूसरों को यत्न करके उन्नत और सुखी बनाए। इस प्रकार मनुष्य का जीवन सफल व आदर्श होता है। संसार का कोई आनन्द और भोग वर्जित नहीं है उसे भोगने की मनुष्य को स्वतन्त्रता है परन्तु शर्त यह है कि ये भोग और आनन्द शुद्ध, पवित्र और निर्दोष बना कर भोगे जायं उनमें आसक्ति उत्पन्न न होने दी जाय। इसका साधन धर्म है। आज भोगवाद के कुहरे में मनुष्य का आध्यात्मिक लक्ष्य छुप गया है और उसने भोगवाद को ही जीवन का अन्तिम लक्ष्य समझ लिया है। इसीलिए भोगवाद के भंवर में फंसी हुई जीवन-नौका की रक्षा दूभर हो गई है। इसीलिये समाज में त्राहि २ मची हुई है। इसीलिये मनुष्य की आसुरी वृत्ति संसार की शान्ति के साथ खिलवाड़ कर रही है। इसीलिये संसार पतन और विनाश की ओर अग्रसर हो रहा है। इसीलिये वह ज्वालामुखी के मुख पर खड़ा कर दिया गया है। इसीलिए मनुष्य शक्ति और वैभव के मद में भूला हुआ अणु और उद्जन बमों के सहारे अपने को सुरक्षित और अजेय समझ रहा है। वह भूल गया है कि वह अल्पज्ञ है। उससे कहीं महान् एक और सत्ता है जो उससे कहीं अधिक शक्तिशाली है और जिसके हाथ में संसार का भाग्य-सूत्र है।

प्रत्येक व्यक्ति की यह स्वाभाविक इच्छा होती है कि दूसरे व्यक्ति उसके साथ न्याय दया, प्रेम और सहानुभूति का व्यवहार करें और उसे किसी से दुःख और कष्ट न हो, परन्तु ऐसा तभी संभव हो सकता है जब वह स्वयं दूसरों के साथ ऐसा ही व्यवहार करे। व्यवहार का यह आदर्श उच्चतम माना जाता है। दूसरे शब्दों में इसे धर्म मय व्यवहार कह सकते हैं। इस आचरण में सफल होने के लिये मनुष्य को बुद्धि की अपेक्षा हृदय की प्रेरणा पर अधिक ध्यान देना होता है। इस आदर्श की रक्षा करने में पुरुषों की

अपेक्षा स्त्रियां प्राय. अधिक सफल होती हैं क्योंकि वे मस्तिष्क की अपेक्षा हृदय से अधिक सोचती है। इस प्रकार के आचरण से मनुष्य का अपना विकास होने के साथ २ उसके सामाजिक सम्बन्ध भी मधुर बन जाते हैं। मनुष्य का व्यक्तिगत आचरण ऐसा होना चाहिए जिसमें उसका अपना आत्मिक हित होता हो और सामाजिक आचरण ऐसा हो कि समाज का हित सिद्ध होता हो। इसके लिये समाज व व्यक्ति को प्रेम सहानुभूति,न्याय और सत्य का आचरण अपनाना अनिवार्य होता है। दूसरों के हित को लक्ष्य में रखने वाले आचरण में परतन्त्र होना पड़ता है अवश्य अपने लिये लाभदायक आचरण में यह स्वतन्त्र होता है। इस प्रकार के आचरण की योग्यता मनुष्य में तब आती है जब वह सब प्राणियों को अपने समान जानता और सबको परमात्मा की सन्तान अनुभव करता हुआ अपने को एक विशाल परिवार का अग समझता है। उस समय वह प्रत्येक अच्छे वा बुरे काम के लिये परमात्मा के प्रति अपने को उत्तरदाता समझने लगता है। धर्म और अधर्म का निश्चय परमात्मा के ज्ञान और सत्पुरुषों के आचार से होता है। धर्म अधर्म की पहचान विकसित हुई अन्तरात्मा की प्रेरणाओं से होती है जो स्वत: परमात्मा की मूक वाणी होती है जो सदैव मनुष्य को धर्म की प्रेरणा करती और अधर्म से सावधान करती है। अपने समान सब प्राणियों को समझने की आध्यात्मिक समानता के मार्ग में छोटे बड़े. उच्च, नीच, धनी, निर्धन काले गोरे, श्वेत अश्वेत स्पृश्य, अस्पृश्य, के कृत्रिम भेद बाधक नहीं बनते। उस समय मनुष्य की दृष्टि में केवल एक समता रहती है और वह यह कि मनुष्य उत्पन्न होते मरते और भलाई बुराई का अवश्यम्भावी कष्ट भोगते हैं। इस समता के अतिरिक्त उनमें रुचि, योग्यता, धन सम्पत्ति बुद्धि, कार्य. क्षमता, आदि की असमानता रहती है और उसे कोई मिटा नहीं सकता। जो लोग भौतिक पदार्थों, खाने, पीने, पहनने, घर, गृहस्थ के सामान आदि के सब लोगों में समान वितरण के द्वारा सबको भौतिक दृष्टि से समान बनाने की चेष्टा करते हैं उनकी भावना भले ही उत्तम हो, परन्तु वह बड़ी भ्रम पूर्ण और अव्यावहारिक है। अपने उद्देश्य की सफलता के लिये वे जिन साधनों का सहारा लेते हैं जिनमें सशस्त्र क्रान्ति अराजकता लूट मार, मारकाट और बह्वोदाह आदि सम्मिलित हैं वे एक दम अमानवीय त्याज्य और भयंकर हैं। उद्देश्य की पवित्रता तभी स्थिर रहती है जब उसकी पूर्ति के साधन भी पवित्र हों। भौतिक उन्नति साधन है साध्य नहीं। यह तो मनुष्य के आत्मिक विकास का साधन है। इसकी मर्यादा तभी कायम रहती वा रह सकती है जब यह धर्म पूर्वक की जाय और धर्म पूर्वक ही इसका उपयोग किया जाय। अपने परिश्रम से और न्याय युक्त उपायों से उपार्जित किया हुआ धन ही ठीक माना जाता है जिसके उपार्जन में अपनी आत्मा का हनन और दूसरों का स्वत्वापहरण न हो। इस धन के उपयोग की मर्यादा यह है कि उसका उतना ही अंश उत्तम प्रकार से उपयोग में लाया जाय जितना अपनी जीवन यात्रा के लिये अनिवार्य हो और शेष भाग समाज की धरोहर समझा जाय। दूसरों के स्वत्वों को मार कर गर्हित ढंग से सम्पत्ति का उपार्जन करना और अमर्यादित रूप से उसका दुरुपयोग करना बड़ा भारी सामाजिक अपराध होता है जिसका दंड समूची जाति या समाज को भोगना पड़ता है। अधर्म युक्त अर्थ के साथ काम की मर्यादा और पवित्रता भी दूषित हो आया करती है और ऐसा होने पर भोगवाद ही जीवन का लक्ष्य बन जाता है। दूसरे के स्वत्वों का अपहरण करना और दूसरों के धन का लूटना वा बलात छीनना

ये दोनों प्रायः एक समान माने जाते हैं। इनकी जीती जागती मिसाल वर्तमान कालीन पूंजीवाद और साम्यवाद हैं। पूंजीवाद ने एक ओर बड़े २ अमीरों और बड़े २ गरीबों की सृष्टि करके संसार में ईर्ष्या, द्वेष, फूट और अशान्ति फैलाई हुई है और साम्यवाद ने सबको आर्थिक दृष्टि से समान बनाने के जनून में क्रान्ति और हिंसा का आश्रय लेकर तबाही मचाई हुई है। व्यक्ति का उत्थान और समाज का कल्याण दोनों से ही संभव नहीं है क्योंकि दोनों का लक्ष्य भौतिक और इन्द्रिया-सक्ति है। यदि इन्द्रियों का सुख और आनन्द ही वास्तविक सुख और आनन्द होता तो पशु अधिक सुखी होता परन्तु बात यह नहीं है। वास्तविक सुख वा आनन्द तो मनुष्य की आत्मा के सुख वा आनन्द में निहित होता है और इसकी प्राप्ति जीवन का वास्तविक लक्ष्य होता है। केवल भोगवाद का आश्रय लेकर किसी जाति ने ससार का नेतृत्व किया हो इतिहास इसका साक्षी नहीं है। नेतृत्व तो मर्यादित रूप से भौतिक सुखों का आनन्द लेने वाली धर्म-परायण, आस्तिक और आत्मिक विकास को लक्ष्य में रखने वाली जातियों का रहा है और रहेगा। जिन व्यक्तियों और जातियों ने भोग-वाद हत्या, लूटपाट और युद्ध को जीवन का चरम लक्ष्य समझा और उनसे आगे बढ़ने की चेष्टा नहीं की उनके अस्तित्व का लोप होते देर न लगी। तभी तो कहा जाता है कि कांचन और कामिनी के चक्र में फंसे हुए इन्द्रिय लोलुप व्यक्ति धर्म का मर्म नहीं जान पाते।

परिवार समाज की इकाई होती है। परिवारों के अच्छा होने पर व्यक्ति अच्छे बनते और व्यक्तियों के अच्छा होने पर समाज अच्छा बनता है। जिसने अपने पारिवारिक कर्तव्यों का उचित रीति से पालन कर लिया और अपने परि-वार के लोगों को सुखी और बच्चों को हर प्रकार से सुयोग्य बना लिया तो समझो उसने धर्म्म और ईश्वराज्ञा का यथेष्ट रीति से पालन किया। यदि उस व्यक्ति को धार्मिक कर्मकाण्ड के लिये अव-काश न मिलता हो और मन्दिर, मस्जिद वा गिरजे मे जाना न मिलता हो तो वह व्यक्ति उस व्यक्ति से अच्छा है जो नित्य मन्दिर मस्जिद व गिरजे में जाता हो, पूजा पाठ में निरत रहता हो परन्तु जिस से पारिवारिक कर्तव्यों की घोर उपेक्षा होती हो। वस्तुतः परिवार पवित्र देव स्थान होता है, और परिवार की वेदि मन्दिर, मस्जिद और गिरजेकी वेदिसे कम पवित्र नहीं होती। इसी भांति पारिवारिक कर्तव्यों के बलिदान पर सामाजिक कर्तव्यों का अनुष्ठान और सामाजिक हित का व्यक्तिगत वा पारिवारिक हित पर बलिदान ये दोनों ही सुख और उन्नति का कारण नहीं होते। व्यक्ति की अपनी महत्ता और पवित्रता होती है, जिसका ज्ञान और अनुभव मनुष्य को धर्म के द्वारा होता है समाज की अपनी महत्ता और उप-देयता होती है जिसके बिना मनुष्य का काम नहीं चल सकता। मनुष्य के लिए समाज और समाज के लिए मनुष्य देन सिद्ध हों इसके लिये आवश्यक है कि व्यक्ति का पूरा २ विकास हो और वह समाज का हर प्रकार से मूल्यवान् और उपयोगी अंग बने। यह तभी सम्भव होता है जब मनुष्य को विकास की पूरी २ सुविधाएं प्राप्त हों और उसका व्यक्तित्व कुचला न जाय, और व्यक्ति समाज की अशान्ति और दोहन शोषण का कारण न बने। साम्यवाद की आर्थिक प्रणाली में व्यक्ति का व्यक्तित्व इतना कुचल दिया गया है कि उसका प्रायः लोप सा हो गया है। पूंजीवाद से व्यक्ति को इतना अधिक महत्व मिला और वह इतना निरंकुश और उच्छृंखल बना कि उसने समाज की कोई पर्वा न की और समाज में मनमानी चलाई। आज की विश्व व्यापी अशान्ति के मूल में यह बात भी प्रबल रूप से

काम कर रही है। व्यक्ति और समाज के मध्य राज-मार्ग का काम धर्म्म करता है जो मनुष्य को परमात्मा के सन्निकट ले जाने वाला होता है। तभी तो लाप्लास जैसा अनीश्वरवादी दार्शनिक जो धर्म्म और ईश्वर को व्यक्ति और समाज के कल्याण के लिये अनावश्यक माना करता था अपने लम्बे अनुभव के आधार पर यह कहने के लिये बाध्य हो गया था कि धर्म्म भाव के बिना न तो समाज सुखी बन सकता है और न सम्मानित। वस्तुतः धर्म्म ही सदाचार की दृढ़तम आधार शिला होता है जिस पर खड़ा समाज का भवन और राज्य सुखी समृद्ध और स्थिर रहते हैं।

राज्य-व्यवस्था का ध्येय व्यक्ति और समाज का विकास और उनकी रक्षा करना होता है। राज्य व्यवस्था को उत्तमता और रक्षा धर्म्म एवं सदाचार से सुरक्षित रहती है। धर्म्म से ही शासन को शक्ति प्राप्त होती, कानून में बल आता और दोनों का सम्यक् संचालन होता है। यदि दुराचार भ्रष्टाचार, अन्याय और अत्याचार के कारण राज्य के प्रति घृणा उत्पन्न हो जाय तो राज्य का भवन बहुत दिन नहीं टिकता। प्रजा को खिला पिला कर मोटा ताजा करने वा उसके शरीर को सजा देने से तो काम नहीं चलता जिस प्रकार बलिष्ठ शरीर की बिना आत्मिक और सांस्कृतिक विकास के कोई उपयोगिता नहीं होती अपितु वह पर पीड़न का कारण भी बन जाता है उसी प्रकार प्रजा के शरीरों को बनाने और उनका भौतिक स्टैन्डर्ड ऊंचा कर देने मात्र से काम नहीं चलता काम तब चलता है जब शरीर हृष्ट पुष्ट और शोभायुक्त होने के साथ २ आत्मिक बल और शोभा से भी युक्त हो। असाम्प्रदायिक राज्य का परीक्षण करने वाली राज्य सत्ताओं को इस बात को पल्ले में बांध लेना चाहिए।

संगठित धर्म्म से जिससे साम्प्रदायिकता को प्रश्रय मिले राजतन्त्र को अछूता रखा जाय यह बात बिल्कुल ठीक है परन्तु साम्प्रदायिकता के दूरीकरण के अन्धे जोश में आस्तिकता और नैतिकता का राजतन्त्र से बहिष्कार कर देना भयंकर भूल होती है। निस्सन्देह धर्म्म भावना को राजनैतिक कुचक्र का हथियार बनाना और समाज में तबाही उत्पन्न कर देना बड़ा जघन्य और अधार्मिक कार्य होता है और जब यह कार्य धर्म्म के नाम पर धर्म्म रक्षा की दुहाई देकर अपने को धर्म ध्वजी कहने वाले व्यक्तियों के द्वारा किया जाय तब तो यह मानव को दानव के रूप में प्रस्तुत कर देने वाला होता है। वर्तमान युग में भारत आदि देशों में राजनीति का दामन इस प्रकार के राजनीतिज्ञों के द्वारा जितना कलुषित हुआ है उतना शायद कभी न हुआ हो। यही कारण है 'धर्म्म' शब्द से ही लोगों को घोर घृणा हो गई है और वह बदनाम हो गया है।

नैतिकता को ईश्वर विश्वास से पृथक् कर देने वा मान लेने से भी काम नहीं चलता, क्योंकि वह निष्क्रिय और प्रेरणा विहीन होती है। आस्तिकता और धर्म्म ही मनुष्य के मानसिक क्षितिज को विस्तृत करते और मनुष्य के हृदय को अत्युच्च जनोपकारी भावों से परिपूर्ण करते हैं। धर्म्म से आत्मा को जो आनन्द और उष्णता मिलती है वह कोरी नैतिकता के आचरण से नहीं मिलती। आस्तिकता के कारण ही मनुष्य में अल्पज्ञता का भाव उत्पन्न होकर विनय भाव आता, वह बुराई से डरता और भलाई से प्रोत्साहित होता है। बिना ईश्वर विश्वास और उसके निर्भ्रान्त ज्ञान के नैतिकता और अनैतिकता का निर्णय भी असंभव होता है इसी लिये वह निर्जीव और आत्मा को बहुत कम अपील करने वाली होती है। इस सम्बन्ध में अमेरिका के प्रसिद्ध राष्ट्रपति वाशिंगटन की अनुभव पूर्ण चेतावनी पर विशेष ध्यान देना चाहिए। विशेषतः उन राजनीतिज्ञों को जो कोरी नैतिकता के आधार पर

धर्म्म और ईश्वर का बहिष्कार करके सदाचार के प्रसार और राज्य की सुख समृद्धि का मीठा स्वप्न लेते हैं :—जिन मानवीय तत्वों से राजनैतिक समृद्धि प्राप्त होती है उनमें धर्म्म और नैतिकता ये दो मुख्य स्तम्भ होते है। उस व्यक्ति की देश भक्ति की कीर्ति व्यर्थ है जो नागरिकता के कर्तव्यों और सुखों के इन दृढ़ स्तम्भों की उपेक्षा करता हो। धर्म्म के बिना सदाचार की रक्षा हो सकती है यह क्लिष्ट कल्पना है। किसी शिक्षा पद्धति का मस्तिष्क पर भले ही अच्छा प्रभाव पड़ता हो बुद्धि और अनुभव दोनों यह मानने के लिये तैयार नहीं कि आस्तिकता और धार्मिक सिद्धान्तों के बिना राष्ट्रीय चरित्र की रक्षा हो सकती है। जो राष्ट्र जन साधारण में उत्तम धार्मिक ग्रन्थों के व्यापक प्रचार पर ध्यान न देकर उनको धार्मिक नहीं बनाते उनका भविष्य अन्धकार में रहता है।" बौद्ध धर्म्म ने ईश्वर की उपेक्षा करके लोगों की नैतिकता और मनुष्य के सामाजिक व्यवहार व सम्बन्ध पर बल दिया। राजाश्रय में उसकी शिक्षाओं का बड़ा व्यापक प्रचार हुआ परन्तु वह प्रचार गहरा सिद्ध न हो सका। केवल नैतिकता की फिलासफी से लोगो को उच्च प्रेरणाएं उपलब्ध न हुई और ईश्वर का भय न होने के कारण बुराई पर कोई प्रतिबन्ध न रहा और उसे खुली छुट्टी मिल गई। इस उच्छृंखलता का एक भयकर रूप हमें वाम मार्ग में देख पड़ा।

विज्ञान के इस युग में जहां प्रत्येक बात बुद्धि व तर्क की कसौटी पर परखी जाती है बुद्धि की कसौटी पर खरे न उतरने वाले मत किस प्रकार स्थिर रह सकते वा प्रेरणा दे सकते हैं? विज्ञान की ऊहापोह ने मनुष्य को बुद्धि जीवी बनाया, बड़े २ अद्भुत चमत्कार दिखाए परन्तु मनुष्य के हृदय के रस को सुखा दिया। इससे मनुष्य नास्तिक और क्रूर बना तथा इन्द्रियासक्ति चरम सीमा को पहुची। विज्ञान विहीन धर्म्म और धर्म विहीन विज्ञान ये दोनों ही अहितकारी होते हैं। जो धर्म्म बुद्धि की उपेक्षा पूर्वक विकसित होते हैं वे अन्ध विश्वास, अत्याचार, अनाचार, और बर्बरता का दृश्य उपस्थित करते हैं और जो विज्ञान आस्तिकता की उपेक्षा पूर्वक विकसित होता है उससे नास्तिकता अपवित्रता और इन्द्रियासक्ति बढ़ती है। इन दोनों के समन्वय से ही धर्म्म का महत्त्व स्थापित होता और स्थिर रहता है,और ये दोनों कल्याण कारी बनकर संसार को सुख धाम बनाते है। (क्रमशः)

ऋग्वेद का सूर्यसूक्त

[लेखक—श्री पं० इन्द्र जी विद्या वाचस्पति सदस्य राज्यपरिषत् देहली]

प्रतिदिन देखने के कारण चाहे हम उसकी सुन्दरता का अनुभव करना छोड़दें परन्तु इसमें कोई सन्देह नहीं कि प्रभात काल में पूर्व दिशा से सूर्य के उदय का दृश्य संसार के अन्य सब दृश्यों से अधिक शोभा युक्त और गौरवशाली होता है। रातभर जो अन्धकार आकाश में छाया रहा, वह पीठ दिखाकर भाग रहा होता है। सोए हुए पक्षी उठ जागते और वृक्षों की डालियों पर बैठकर मधुर गान करने लगते हैं, और मनुष्य विश्राम की मुद्रा छोड़कर दिन के कारोबार में लग जाते हैं। पूर्व दिशा में पहले हल्का सा प्रकाश झलकता है फिर अरुणाई छाती है, और उसके पश्चात् प्रकाश की किरणें पृथ्वी और आकाश की सन्धि को चीरकर आकाश में फैल जाती हैं। ये किरणें मानों सूर्य के रथ की वाहन हैं। जिनके पीछे २ भुवन भास्कर का रथ उदयाचल पर अपने दिव्य रूप में प्रकट होता है। कैसा सुन्दर और दिव्य दृश्य होता है वह। जिसमें कल्पना का अणुमात्र भी विद्यमान है, सूर्योदय के अद्भुत दृश्य को देखकर उसका मस्तक झुक जाता है। मस्तक झुकने में न लज्जित होने की बात है और न ऊहापोह करने की। क्योंकि वह तो दृश्य की उस भावना का परिणाम है जिसके वात्सल्य, प्रेम, श्रद्धा और भक्ति आदि अनेक नाम हैं।

यदि हम सूर्योदय के समय की अपनी भावना को वहीं छोड़दें, जो दृश्य का उद्गार या उसे हृदय में ही रहने दें, तो बात अधूरी रह जायगी, मनुष्य को हृदय भी मिला है, तो मस्तिष्क भी वह अनुभव करता है तो सोचता भी है। मानव को पशु से ऊंचा उठानेवाली वस्तु उसका मस्तिष्क ही है। विवेक शक्ति के कारण ही वह पशुसमाज में सबसे उत्कृष्ट प्राणी माना जाता है।

विचारशील मनुष्य जब प्रतिदिन सूर्योदय के दिव्य नाटक को देखता है, तब उसके मन में विचार उत्पन्न होता है, कि ऐसा दृश्य नियम से प्रतिदिन क्यों होता है। इस बंधे हुए समय विभाग का बनानेवाला कौन है? यदि सूर्य स्वयं ही इसका संचालक है तो उसकी अन्य प्राकृतिक शक्तियों से टक्कर क्यों नहीं होजाती? मन में यह भी प्रश्न उठता है कि यदि सूर्य स्वयं अपना संचालक नहीं, पृथ्वी स्वयं अपनी संचालिका नहीं, और वायु भी स्वयं अपना संचालक नहीं तो वह कौन वस्तु है जो इनका संचालक है। इन प्रश्नों के सूत्रों को पकड़ कर जब मनुष्य आगे बढ़ने लगता है और विवेक से काम लेता है, तब वह इस सचाई पर पहुँचता है कि न केवल सूर्योदय के दिव्य नाटक का संचालन बल्कि सारे विश्व नाटक का संचालन करने वाली एक महती शक्ति है, जिसे 'देवानांदेव' और परब्रह्म आदि नामों से पुकारा जाता है। इस प्रकार मनुष्य ज्ञेय से अज्ञेय की ओर, स्थूल से सूक्ष्म की ओर, सृष्टि से स्रष्टा की ओर जाता है। जैसे मनुष्य किसी कारीगर की रचना से कारीगर के गौरव को पहचानता है, इसी प्रकार विवेकी मनुष्य सूर्योदय जैसी सुन्दर और शानदार घटनाओं से उनके रचयिता और संचालक विधाता के

सत्, चित् आनन्दरूप का अनुभव करने लगता है।

ऋग्वेद के सूर्य सूक्त का यही विषय है। ऋग्वेद के प्रथम मडल के ५० वें सूक्त को सूर्य सूक्त के नाम से निदिष्ट किया जाता है। उस सक्त का देवता अर्थात् प्रतिपाद्य विषय सूर्य है।

सूर्य सूक्त का पहला मन्त्र यह है —

उदुत्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतव.।
दृशे विश्वाय सूर्यम् ॥

विश्व के देखने के लिए प्रकाश की वाहक किरणें ज्ञान के उत्पादक तथा तेज के पुंज उस सूर्य को मनुष्यों तक पहुँचाती हैं। सूर्य का प्रकाश संसार को जगाता है, छाये हुए अन्धकार को दूर करके प्रकाश को फैलाता है जिससे सारा विश्व देखता है, और कार्य करता है। वह सूर्य, प्रकाश का पुंज होने के कारण सब प्रकार के वेदस् अर्थात् ज्ञान का साधन है। वह देव है, अर्थात् तेज का भंडार है।

दूसरा मंत्र विश्व के लिए सूर्य की दूसरी उपयोगिता का वर्णन करता है—

"अप त्ये तायवो यथा नक्षत्रा यन्त्यक्तुभिः।
सूराय विश्व चक्षसे ॥

संसार के नेत्र रूपी सूर्य के आने पर जैसे रात के साथ ही तारागण लुप्त होजाते हैं, वैसे ही अन्धकार में पाप करने वाले आततायी भी लुप्त हो जाते हैं।

तीसरा मंत्र है—

"अदृश्रमस्य केतवः विरश्मयोजनां अनु।
भ्राजन्तो अग्नयो यथा ॥"

सूर्य की अग्नि के समान चमकती हुई चेतना उत्पन्न करने वाली किरणें मानो मनुष्यों की गति विधि को देखती और उसका नियन्त्रण करती हैं।

इस प्रकार सूर्य के तेजो रूप का वर्णन करके आगे चलकर वेदमन्त्र उसके पावक अर्थात् शोधकरूप का निर्देश करता है।

"येना पावक चक्षासा भुरण्यन्ते जनां अनु
त्वं वरुण पश्यसि ॥"

वियामेषि रजस्पृथु अहा मिमानो अक्तुभिः
पश्यन् जन्मानि सूर्य ॥

हे मलों का नाश करके वस्तुओं को पवित्र करने वाले अत्यन्त उपादेय सूर्य, तुम जगत् का धारण करने वाली अपनी प्रकाशमयी शक्ति से दिन और रात की सीमाओं को बाधते और मनुष्यों के जीवन मरण की व्यवस्था करते हुए अन्तरिक्ष में देदीप्यमान होते हो।

इन वेद मन्त्रों में बीज रूप से उन उपकारों का कथन किया गया है, जो चराचर विश्व को सूर्य से प्राप्त होते हैं। सूर्य अन्धकार को नष्ट करता है, प्रकाश फैलाकर ज्ञान का प्रसार करता है। भातिभांति की मलिनताओं का नाश करके पवित्रता और नीरोगता को उत्पन्न करता है और अपने किरण रूपी दूतों द्वारा प्राणिमात्र का नियन्त्रण करता है। दिन और रात के विभाजन द्वारा समय को बनाता है, अतएव त्वष्टा कहलाता है।

हमारे देश में बहुत प्राचीन काल से सूर्य नमस्कार की पद्धति प्रचलित है। उसका वर्तमान रूप यह बन गया है कि सन्ध्या के समय तथा सूर्योदय के समय हाथ जोड़ कर सूर्य को नमस्कार करें। सूर्य नमस्कार का वास्तविक रूप तो यह है कि मनुष्य सूर्य के प्रकाश, ताप, शोधन आदि गुणों से पूरा लाभ उठाकर अपनी जीवन और ज्ञान की शक्ति को बढ़ाएँ।

यह तो हुआ सूर्य सूक्त का एक पहलू। सूक्त के मन्त्र हमें केवल सूर्य के भौतिक रूप तक ही नहीं छोड़ देते। सारे वेद की यही पद्धति है। वह हमें स्थूल से सूक्ष्म की ओर ले जाता है। वह संसार के मनुष्य और प्रकृति से सम्बन्ध रखने वाली वस्तुओं और गुणों का वर्णन करने के साथ २ उनके आदि कारण और नियन्त्रण कर्त्ता का भी निर्देश करता जाता है। अब हम इस सूक्त के दसवे मन्त्र पर आते हैं। मन्त्र यह है—

उद्वयं तमसस्परि ज्योतिष्पश्यन्त उत्तरम्।
देवं देवत्रा सूर्यमगन्म ज्योतिरुत्तमम्॥

हम अंधकार को नष्ट करनेवाली, उत्तर अर्थात् उच्चतर ज्योति प्राकृतिक सूर्य को विवेकपूर्वक देखते हुए, सब देवों अर्थात् ज्योतिष्मान् पदार्थों को प्रकाश देने वाले उत्तम अर्थात् उच्चतम सूर्य परमात्मा को जान लेते हैं और उसतक पहुँच सकते हैं। जैसे घर को देखकर घर को बनाने वाले का बोध हो जाता है, वैसे ही उत्तर ज्योति सूर्य को देखकर और उसके कारणों पर विचार करके उत्तम ज्योति परब्रह्म का ज्ञान होजाता है। मनुष्य अनुभव करने लगता है कि जब उसकी रचना इतनी सुन्दर, इतनी उज्ज्वल और इतनी पावक है तो वह कैसा सुन्दर कितना उज्ज्वल और पवित्र होगा।

यह सर्व सम्मत सत्य है कि ऋग्वेद संसार का सबसे पहला वेद है अर्थात् ज्ञानभंडार है। जो लोग वेद को अपौरुषेय मानते हैं, उन्हे अलग छोड़दें तो भी हम यह बात कह सकते हैं कि पूर्व और पश्चिम के विद्वान् ऋग्वेद को इस पृथ्वी का सबसे पहला ग्रन्थ मानते हैं। १६ वीं सदी में योरप के वैज्ञानिक, विकास वाद को मानते थे, उनका यह विचार था कि प्रारम्भ काल मे मनुष्य निपट गंवार था, वह बिल्कुल बच्चों जैसा नासमझ था, धीरे २ वह उन्नति करता गया। यहां तक कि १६ वीं सदी मे बहुत उत्कृष्ट प्राणी बन गया। जब उन लोगों ने ऋग्वेद पढ़ा और सूर्य, वायु, समुद्र आदि प्राकृतिक शक्तियों का कविता पूर्ण स्वाभाविक वर्णन पढ़ा तो वे एक दम इस परिणाम पर पहुंचे कि बस अब हम मनुष्य जाति के बचपन पर पहुँच गए हैं। क्योंकि हमे मनुष्य के मानसिक और धार्मिक विकास की सबसे पहली सीढ़ी मिलगई है। उन्होंने यह निचोड़ निकाला कि ऋग्वेद मे सूर्य वायु बादल आदि प्राकृतिक वस्तुओं की पूजा का वर्णन है, इसलिए उसे संसार का आदि ग्रन्थ मानने में कोई हर्ज नहीं।

यह थी ऋग्वेद के सम्बन्ध मे पहली सम्मति, परन्तु जब उन्होंने ऋग्वेद का पूरा अध्ययन किया तो वे आश्चर्य में पड़ गए। उन्होंने वेद मे उस निष्कलंक एकेश्वरवाद को विद्यमान पाया, जिसे वे युगों लम्बे मानसिक विकास की उपज मानते थे। जब उन्होंने वेद में पढ़ा।

दिव्यो गन्धर्वो भुवनस्य यस्पतिरेक एव नमस्यो विक्ष्वीड्यः।

वह सब लोकों का धारण करने वाला, विश्व का एक ही स्वामी है, जो स्तुति और नमस्कार करने के योग्य है।

न द्वितीयो न तृतीयश्चतुर्थ नाप्युच्यते।

वह केवल एक है, उसमें द्वितीय, तृतीय चतुर्थ शब्द का प्रयोग नहीं होता।

और फिर ऋग्वेद के इस मन्त्र का अध्ययन किया।

इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुरथो दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान् ॥
एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः ॥

वह परब्रह्म एक ही है। ज्ञानी लोग अनेक गुणों के कारण उस गुणों के भंडार को इन्द्र मित्र आदि अनेक नामों से पुकारते हैं।

तब वे चकित होगए। और अन्त में उन्हें मानना पड़ा कि ऋग्वेद में तथा अन्य वेदों में अद्वितीय परब्रह्म की स्तुति और उपासना का आदेश है।

वेद की यही पद्धति है। उसमें मनुष्य को ज्ञेय से अज्ञेय, और स्थूल से सूक्ष्म की ओर लेजाकर परब्रह्म तक पहुँचाया गया है। सूक्त का भी यही तत्व है कि भगवान् भास्कर तेजोमय है, जीवनदाता है, और मलों का नाश करनेवाला होने से उत्तर अर्थात् उत्कृष्ट है, तो परमात्मा भास्कर का भी कारण होने के कारण उत्तम अर्थात् सबसे उत्कृष्ट महतो महीयान् है, आओ हम सब मिलकर उसीकी स्तुति और उसीको नमस्कार करें।

(१७-८-५२ को अखिल भारतीय रेडियो द्वारा प्रसारित)

वैदिक धर्म और विज्ञान

(४)

आत्म-नित्यता और पुनर्जन्म

[लेखक—श्री पं० धर्मदेव जी विद्यावाचस्पति]

सार्वदेशिक के जून १९५२ के अङ्क में मैंने नित्य अमर आत्मा की सत्ता के विषय में जगद्विख्यात वैज्ञानिक सर आलिवर लॉज तथा फ्रांस के सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक कैमिल फ्लैमेरियां आदि के उद्धरण दिये थे जिन से एतद्विषयक वैदिक सिद्धान्त का स्पष्ट समर्थन होता है। इस प्रसंग में कैम्ब्रिज युनिवर्सिटी में पैथोलोजी के प्रोफ़ेसर सिम्स वुड हेड् M. A. LL. D F. R. C. P. F. R. S. E. नामक सुप्रसिद्ध अंग्रेज वैज्ञानिक के लण्डन के ऑनिंग हाल में नवम्बर १९१४ में "Origin of life" अथवा जीवन का मूल विषयक भाषण से निम्न उद्धरण देना आवश्यक प्रतीत होता है। उन्होंने स्पष्ट शब्दों में वैज्ञानिकों की सभा में कहा:—

'I am free to admit that we know very little about the origin of life.'

("The Science & Religion by Seven men of Science" P. 98)

अर्थात् मैं यह स्वीकार करने में स्वतन्त्र हूं कि हम (वैज्ञानिक) जीवन के मूल वा उद्भव के विषय में बहुत कम जानते हैं।

इसके पश्चात् अधिक स्पष्ट शब्दों में उन्हों ने यह घोषणा की कि:—

"It is in fact, so far as one can see at the present time, impossible to adduce any single proof that living matter is produced from non-living matter."

("The Science & Religion" by Seven men of Science P. 101)

"The more we know, the more we realise the enormous problems that have to be solved before we are an appreciable distance along the way of settling any thing definite about the origin of life." ("The Science and Religion' by Seven men of Science P. 104)

अर्थात् वस्तुतः जहां तक वर्तमान समय में हम देख सकते हैं यह असम्भव है कि जड़ से चेतन की उत्पत्ति का एक भी प्रमाण प्रस्तुत किया जा सके।......जितना ही अधिक ज्ञान हम प्राप्त करते हैं उतना ही हम अनुभव करते हैं कि जीवन के मूल वा उद्भव के विषय में कुछ भी निश्चय पूर्वक कहने के मार्ग में कितनी बड़ी समस्याएं विद्यमान हैं।

प्रो० सिम्सन वुड हैड जैसे सुप्रसिद्ध अंग्रेज वैज्ञानिक की यह स्पष्टोक्ति अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है तथापि संभवतः यह कह दिया जाए कि ये १९१४ के भाषण से उद्धृत वाक्य हैं। इस बीच में विज्ञान ने अत्यन्त विस्मय जनक प्रगति कर ली है अतः यह आवश्यक है कि वर्तमान वैज्ञानिकों के विचार इस के सम्बन्ध में ज्ञात किये

जाएं।

सन् १९३८ में पेलिकन् पुस्तकमाला में सुलिवान् नामक वैज्ञानिक द्वारा लिखित "Limitations of Science" by J. W. N. Sullivan Published by Penguin Books Limited Harmondsworth England. का तृतीय संस्करण प्रकाशित हुआ। उस में "Scientific account of origins" और "The nature of mind" ये दो अध्याय विशेष रूप से द्रष्टव्य हैं। इन में वैज्ञानिकों का दो प्रकार का मत दिखाते हुए लिखा है कि Most scientific men prefer to believe that life arose, in some way not yet Understood, from inorganic matter in accordance with the laws of physics and Chemistry. There is also the hypothesis, held by a few distinguished scientific men. that life is as old as matter and in that sense, has had no origin."

("The Limitations of Science" P. 123)

अर्थात् बहुत से वैज्ञानिक यह विश्वास करना पसन्द करते हैं कि जीवन की उत्पत्ति कुछ अज्ञात कारणों से अचेतन प्रकृति से भौतिकी और रसायन के नियमों के अनुसार हुई। किन्तु इसके साथ ही कई सुप्रसिद्ध वैज्ञानिकों का यह विश्वास है कि जीवन भी इतना ही पुराना है जितनी प्रकृति और इस अर्थ में इस की उत्पत्ति का प्रश्न ही नहीं पैदा होता।

इस से यह तो स्पष्टतया ज्ञात होता है कि जीव की नित्यता को मानने वाले उस समय भी अनेक सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक थे। अब मैं सन् १९४५ में न्यूयार्क (अमेरिका) के वि‌किंग प्रेस से प्रकाशित और Waldemar Kaempffert नामक वैज्ञानिक द्वारा लिखित "Science To-day & To-morrow" नामक पुस्तक से कुछ उद्धरण इसके सम्बन्ध में देना चाहता हूँ। इसमें Can the laboratory create life ? अर्थात् क्या रसायन विज्ञान शाला जीवन का निर्माण कर सकती है ? इस शीर्षक का बड़ा मनोरंजक लेख है। इस के लेखक ने कई वैज्ञानिकों का यह विश्वास दिखाते हुए कि वे कभी जीवन का निर्माण करने में समर्थ हो सकेंगे लिखा है कि:—

"Before a living cell can be created in the laboratory, the chemist must know much more. As yet he can no more define protoplasm than he can define life."

"The mystery of life will alway remain comments prof. Donnan." P 179

अर्थात् पूर्व इस के कि विज्ञान शाला में जीवित तत्त्व का निर्माण किया जा सके, रसायनशास्त्रवेत्ता को बहुत अधिक ज्ञान प्राप्त करना चाहिये। अभी तक तो न वह जीवन का लक्षण कर सकता है और न प्रोटोप्लाज्म का। प्रो. डोनन नामक सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक ने यह टिप्पणी की है कि जीवन का रहस्य सदैव बना रहेगा।

प्रो. हेनरी फेयर फ़ील्ड ओसबोर्न नामक वैज्ञानिक का अनुमान है कि 'Some unknown chemical element to which the hypothetical term bion might be given may lie waiting discovery within Complex of known elements. Or an Unknown source of energy may be active here."

("Science To-day and To-morrow." P. 171

अर्थात् कोई अज्ञात रासायनिक तत्त्व जिस को Bion (बौयन्) का कल्पित नाम दिया जा सकता है ज्ञात तत्त्वों के वैषम्य के पीछे खोज किये जाने की प्रतीक्षा कर रहा है अथवा कोई एक अज्ञात शक्ति का केन्द्र यहां क्रियाशील है। यह स्पष्ट है कि अभी इन कुछ आधुनिक वैज्ञानिकों को जो नित्य आत्मा की सत्ता को नहीं स्वीकार करना चाहते अनेक प्रकार की अटकलपच्चू बातें कहनी पड़ रही हैं जबकि सर आलिवरलौज जैसे उच्च कोटि के अनेक वैज्ञानिकों ने आत्मा की सत्ता को स्पष्ट स्वीकार करना ही सर्वथा युक्तियुक्त और समुचित माना है जैसे कि पहले दिखाया जा चुका है।

प्रो. ह्वाइट् (Whyte) नामक वैज्ञानिक जीवन निर्माण के विषय में बड़े उत्साही तथा आशावादी प्रतीत होते हैं किन्तु उन के अनुसार भी वैज्ञानिकों द्वारा जीवित मनुष्य के बनाने में अभी कम से कम १० लाख वर्ष का समय लगेगा और यह तब संभव होगा जब कि विकास विषयक अनुसन्धान की संस्था स्थायी राष्ट्र संघ की अधीनता में इस के लिये निरन्तर प्रयत्न करती रहे। इस लिये The Science To-day and To-morrow के लेखक श्री वेल्डमार (Waldemar Kaempffert) ने स्पष्ट ही लिख दिया है कि:—

'A laboratory made man is unthinkable" 'If man is ever evolved under laboratory glass in this fashion, hundreds of thousands of years must elapse." (The Science To-day and To-morrow P. 180)

अर्थात् विज्ञान शाला में तय्यार किये गये मनुष्य की कल्पना भी नहीं की जा सकती। यदि कभी विज्ञानशाला में मनुष्य को विकासप्रक्रिया से तय्यार किया जा सके तो भी उसमें लाखों वर्ष लगेंगे।

इस प्रकार हम देखते हैं कि वर्तमान वैज्ञानिकों में आत्मा की नित्यता के विषय में यद्यपि मतैक्य नहीं और कुछ अभी तक रासायनिक प्रक्रिया द्वारा जीवन निर्माण की आशा लगाये बैठे हैं तथापि आत्मा को नित्य मानने का वैदिक सिद्धान्त युक्तियुक्त होने के अतिरिक्त सर आलिवर लाज कैमिलप्लैमेरियां जैसे वैज्ञानिक शिरोमणियों द्वारा समर्थित भी है और यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि अन्य आधुनिक वैज्ञानिकों को भी जीवन निर्माण में अपनी असमर्थता मान कर इसी वैदिक सिद्धान्त को अन्ततः मानना पड़ेगा।

इसी प्रसंग में Johann Wolfgang Goethe नामक वैज्ञानिक कवि के मत का भी उल्लेख करना उचित प्रतीत होता है जो Recent experiments revive interest in Theory of Reincarnation" शीर्षक Sunday Standard देहली के २४ फर्वरी १९५२ के अङ्क में प्रकाशित लेख के सुयोग्य वैज्ञानिक लेखक श्री फ्रैंक फ़ेल्डमैन (K. Frank Feldman) ने इन शब्दों में बताया है:—

"Johann Wolfgang Goethe, the dramatist and poet who was also a student of Science, was convinced that the soul was not an "inanimate thing." It embraced those bodies best fitted to its inherent nature."

अर्थात् जॉन वौल्फ़गैंग गोथे नामक विज्ञान वेत्ता कवि का यह दृढ़ विश्वास था कि आत्मा कोई जड़ वस्तु नहीं। यह उन योनियों में जाती व उन शरीरों को ग्रहण कर लेती है जो इस की आन्तरिक प्रकृति के सब से अधिक अनुकूल हों।

आगे उसने बताया है कि —

'Goethe was a great believer in re-incarnation He made no secret of this contention, once writing to Charlothe Var Stein "I am sure that in some previous life you were either my sister or wife."

अर्थात् गोथे पुनर्जन्म मे दृढ विश्वास रखने वाला था। उसने एक बार शार्लेट फौन स्टाइट को पत्र लिखते हुए यह प्रकट किया था कि मुझे निश्चय है कि किसी पूर्वजन्म में तुम मेरी भगिनी या पत्नी रही होगी।

पूर्वजन्म की स्मृति का एक नया उदाहरण:—
आत्मा की नित्यता के इस सिद्धान्त का पुनर्जन्म के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध है। इस के सम्बन्ध में वर्तमान वैज्ञानिकों ने जो विलक्षण परीक्षण किये है और जिनका मि० फ्रैन्क फैल्डमैन ने अपने ऊपर निर्दिष्ट Theory of Re-incarnation वाले लेख मे विस्तार से प्रतिपादन किया है उन का निर्देश हम अगले लेख मे करेगे किन्तु पूर्व जन्म की स्मृति का जो नया उदाहरण पिछले दिनों समाचार पत्रों में प्रकाशित हुआ है और जिसके विषय में हमने स्वय श्रीमती कृष्णाकुमारी जी एम० ए० डी० टी० भू० पू० आचार्या आर्य कन्या महाविद्यालय इटावा से जो अब देहरादून मे हैं जाच की है हम 'सार्वदेशिक' के पाठकों की सूचनार्थ यहा प्रस्तुत करते हैं जिससे आत्मा की नित्यता और पुनर्जन्म सिद्धान्त का स्पष्ट समर्थन होता है। वह वृत्तान्त हिन्दुस्तान (नई देहली) के ३० जुलाई सन् १९५२ के अक में यों प्रकाशित हुआ है :—

देहरादून में पूर्वजन्म की बातें बताने वाली कन्या:—

देहरादून—पूर्वजन्म की बाते बताने वाली एक कन्या सेठ राम किशोर जी के घर में है। इस कन्या का जन्म सन् १९४९ में अनन्त चौदस के दिन हुआ था और अब उसकी आयु पौने तीन साल के लगभग है। इसकी माता का नाम श्री श्यामादेवी है, जो महिलाश्रम मे अध्यापन का कार्य करती हैं। ये कन्या गुरुकुल में भी पढ़ चुकी हैं। एक दिन बालिका ने माता से कोई चीज मागी। माता ने कहा कि वह मेरे पास नहीं है। कन्या ने तुरन्त उत्तर दिया कि वह मेरी कोठी मे है। यहा से पूर्व जन्म की बातों का प्रारम्भ होता है। लीची की फसल में माता ने कन्या को लीची खाने को दी तो कन्या ने यह कह कर वापिस कर दी कि यह लीची खराब है। मेरे बाग की लीची अच्छी है। वहा लीची के पेड़ बहुत हैं पर आम के थोडे। मा उसकी बातों को नहीं समझ सकी और उसने हंस कर टाल दिया। महिलाश्रम की प्रधाना श्रीमती सत्यवती सेठानी हैं। एक दिन वे आश्रम पहुँची तो लड़की ने कहा कि यह मेरी माता है। सेठानी जी ने कोई ध्यान नहीं दिया किन्तु आश्रम की लड़कियों ने चर्चा की कि मेधा (सेठानी जी की लड़की) ने तो जन्म नहीं लिया? मेधा सेठानी जी की बड़ी लड़की थी। बडी धार्मिक वृत्ति की थी। सामाजिक सेवा कार्य में बड़ी लगन थी। अचानक असाध्य बीमारी से रुग्ण हो गई और फिर अच्छी न हो सकी। ३१ मार्च १९४५ को उसका स्वर्गवास हो गया। मेधा की छोटी बहिन को जब इस कन्या का समाचार मिला तो उसने इस सस्कारी बालिका को अपने घर लाने की इच्छा प्रकट की। फलत वह आश्रम गई और कन्या को घर ले आई। बालिका ने तुरन्त छोटी बहन को पहचान लिया और कहा कि यह मेरी बहन है। वह घर पहुँची, मेधा वाले

कमरे में जाकर कहा कि यह मेरा कमरा है। घर की अन्य चीजों के बारे में पूछा जो मेधा के जीवित रहते समय इस कमरे में थी। नाम पूछने पर बालिका ने कहा कि मेरा नाम "मुन्नू" है। मेधा का प्यार का नाम 'मुन्नू' था।

आंखों और मुखाकृति को देखने से ज्ञात होता है कि यह एक समझदार लड़की है। एक दिन एक पण्डित जी के सन्मुख उसने पद्मासन लगा कर गुनगुनाते हुए वेदमन्त्रों का पाठ किया। मन्त्रोच्चारण स्पष्ट था। कहीं २ आवाज तुतला जाती थी। प्रार्थनामन्त्रों का उच्चारण करके प्रभु को नमस्कार किया और अन्त में कहा कि 'झंडा ऊंचा रहे हमारा।' ये सब कार्य मेधा किया करती थी।

घर में बहुत से मेधा के समय के फोटो थे जिन्हें इस कन्या ने पहचान लिया और सब के नाम बताए। उससे पूछा गया कि तू कहां गई थी? तो उत्तर दिया भगवान् के पास। क्यों गई थी? पूछने पर हाथ लगा कर कहा यहां से यहां तक दर्द बहुत रहता था (गले से लेकर छाती तक) वस्तुतः मेधा को यही बीमारी थी और उसी के कारण उस की मृत्यु हुई थी।

ज्यों २ इस कन्या का समाचार शहर में फैलता जा रहा है त्यों २ लोग इसे देखने को सेठ जी की कोठी पर आ रहे हैं। पुनर्जन्म भारतीय दर्शन का सत्य सिद्धान्त है। इसकी घटनाएं भी पहले हो चुकी हैं जिनमें संस्कारी आत्माओं ने अपने पूर्व जन्म का हाल बताया था।"

(हिन्दुस्तान ३० जुलाई १९५२)

इस विषय का शेष विवेचन अगले लेख में किया जाएगा।

— —

राज्य व्यवस्था सम्बन्धी कुछ एक विचार

[श्री चतुरसेन गुप्त, आजीवन सदस्य सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा देहली]

परमात्मा की कृपा तथा राष्ट्र के असंख्य नर-नारियों के त्याग और बलिदान के कारण कई सौ वर्षों की विदेशियों की गुलामी से बहुत कुछ खोकर अब हम स्वतन्त्र हुए हैं। अतः भारतीय स्वतन्त्रता की रक्षा, वृद्धि और उन्नति के लिए विचार करना प्रत्येक नागरिक का कर्तव्य है। एक नागरिक के नाते अपने विचार आपकी सेवा में प्रस्तुत हैं कृपया विचार करें।

(१) यह सर्वमान्य सिद्धान्त है कि जनता की सुरक्षा के लिए ही राज्य की स्थापना होती है, अतः मेरा विचार है कि:—

"चोरी आदि का पता न लगने की अवस्था में, सरकार का कर्तव्य है कि वह सरकारी कोष से क्षति पूर्ति करें।"

प्राचीनकाल में गौतम आदि ऋषियों ने इसी सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है तथा कतिपय आर्य नरेश इस सिद्धान्त का पालन करते रहे हैं। मुसलिम काल में शेरशाह सूरी तथा अलाउद्दीन ने भी इसी प्रकार के नियम बनाये थे। अतः क्षतिपूर्ति का सिद्धान्त मानना चाहिए।

(२) विदेशों से अनावश्यक वस्तुएँ मंगानी बन्द की जाय। यथा—शराब, सिगरेट, शृंगार के सामान, अनावश्यक कपड़ा आदि।

(३) मजदूर को शराब, सिगरेट, सीनेमा आदि से बचाने के उपाय किये जायें।

(४) ग्रामपंचयतों और जिला बोर्डों के समान उद्देश्य होने के कारण अब जिला बोर्ड तोड़ दिये जायें। क्योंकि इन दोनों संस्थाओं का भार किसान पर पड़ता है।

(५) कर्ज लेकर घी पीने में मेरा विश्वास नहीं है अतः कोई भी योजना ऐसी चालू नहीं करनी चाहिए जिसके लिए हमें विदेशों का कर्जदार होना पड़े।

(६) उन ५७१ भारतीय नरेशों से जीवन में १० वर्ष तक अवैतनिक सधन्यवाद उच्च राजसेवा ली जाय जिन्हें पेन्शनें दी गई हैं। राष्ट्रीय एकता, परस्पर सद्भावना तथा आर्थिक लाभ के लिए ऐसा करना अत्यन्त आवश्यक है।

(७) अवकाश प्राप्त ऐसे राजकर्मचारियों से ५ वर्ष तक अवैतनिक सधन्यवाद राजसेवा ली जाया करे जिन्हें १००) मासिक से अधिक पेन्शन मिलती हो।

(८) विधान सभाओं तथा भारतीय संसद् के लिए चुने हुए व्यक्ति केवल सदस्य ही रहे उनमें से मन्त्री आदि न बनाये जायें। वे सलाहकार हों, शासक नहीं।

(९) राज्यमन्त्री बनने का आधार चुनाव न होकर योग्यता होनी चाहिए। आश्चर्य है कि हाईस्कूल के हैडमास्टर के लिए तो B. A. B. T. होना आवश्यक है परन्तु इनके सर्वोपरि शिक्षा-मन्त्री के लिए योग्यता का कोई आधार नहीं। सिपाही की लम्बाई तो आवश्यक है परन्तु पुलिस मन्त्री की नहीं। डाक्टर के लिए डाक्टरी पढ़ना आवश्यक है। किन्तु स्वास्थ्य मन्त्री के लिए नहीं। अतः मन्त्रीपद उन्हें ही दिया जाये जो अपने २ विषय में सर्वोत्तम योग्य हैं। किसी उच्चकोटि के वकील को न्याय विभाग दिया जाय, न कि डाक तार और हवाई विभाग। सारांश यह है कि गुण कर्मयोग्यतानुसार ही मन्त्री आदि बनाये जायें।

(१०) आज कर का भार पूर्णरूप से केवल किसान पर तथा व्यापारी पर है। अन्य किसी पर नहीं। अतः हमारा विचार है कि मतदाता को करदाता भी होना चाहिए। परन्तु कर की दर अत्यन्त न्यून होनी चाहिए।

(११) यदि कोई प्रार्थी अपील करने पर उच्च न्यायालय से छूट जाय तो उसकी क्षति पूर्ति होनी चाहिए।

(१२) वेश्यावृत्ति राष्ट्र के लिए कलंक है, नारी जाति का घोर अपमान है अतः सर्वथा बन्द की जानी चाहिए।

(१३) सहशिक्षा भारतीय विचारों के विरुद्ध है, इससे हजारों कन्याओं का जीवन नष्ट हो रहा है अतः सर्वथा बन्द की जानी चाहिए।

(१४) गन्दी फिल्में, अश्लील गाने और पुस्तकें तथा दुराचार फैलाने वाले क्लब आदि सर्वथा बन्द किये जायें।

(१५) नारी बलात्कार और बालक व्यभिचार को भयंकर अपराध घोषित किया जाय।

(१६) रिश्वतखोरी और व्यापारिक बेईमानी के सिद्ध होने पर समस्त सम्पत्ति जब्त करने का नियम बनाया जाय।

(१७) अन्न की पैदावार बढ़ाने के लिए, गन्ने की पैदावार कम की जाय तथा तमाखू की उत्पत्ति को अत्यन्त कम किया जाय।

(१८) खुराक के नाम पर मछली, अण्डे और मांसखोरी को बन्द कराया जाय तथा इस पर सरकारी धन नष्ट न किया जाय। हमारा यह भी सुझाव है कि:—

(१) यदि सरकार समझती है कि मछली, मांस और अण्डे खाद्य समस्या में सहायक होते हैं तो मांस खोरों के लिए अन्न का राशन कम किया जाए।

(२) यदि मछली मांस और अंडों से पौष्टिक तत्व प्राप्त होते हैं तो फिर मछली मांस अण्डे खाने वालों को दूध और घी से वंचित किया जाय दूध और घी तो उन बेचारों के लिए रहने दिया जाय जो मछली, मांस और अण्डों से पौष्टिक तत्व प्राप्त करना नहीं चाहते। यह तो सरासर अन्याय है कि मांस, मछली अण्डे खाने वाले दूध, घी और अन्न भी खा जायें।

(१९) दूध देने और खेती में काम करने वाले पशुओं का वैसा ही मौरूसी हक माना जाय जैसे किसी दूसरे के खेत में हल चलाने वाले किसान का। यह सरासर अन्याय है कि जिस गाय का दूध बरसों पीते रहें, बूढ़ी होने पर उसे घर से बाहर कर देना। तथा बैल से जवानी भर खेत में काम लेते रहें बूढ़ा होने पर कसाई के हाथ कटवा देना। अतः हम चाहते हैं कि जिस प्रकार माता का दूध पीने के पश्चात् बुढ़ापे में उसे घर से बाहर नहीं किया जाता और ऐसे ही बूढ़े बाप को। तब फिर इन बेचारे पशुओं के साथ ही यह अन्याय क्यों ?

(२०) किसी भी प्रकार से देश में दूध देने वाले पशु-धन की तेजी के साथ वृद्धि होनी चाहिए। याद रहे देश में दूध, घी की वृद्धि करना खाद्य समस्या को सुलझाना है। मैं चाहता हूँ कि हमारी सरकार मछली मांस और मुर्गी अंडों की वृद्धि करने तथा बन्दर, मोर, हिरन और चूहे मारने में जो धन व्यय करती है उसे पांच वर्ष तक दूध घी की वृद्धि में लगा कर तुलना करके हानि लाभ देख लें।

(२१) भारत में से ईस्वी सन् को समाप्त कर दिया जाय और इसके स्थान पर आर्यसम्वत् युधिष्ठिर सम्वत्, विक्रम सम्वत्, अशोक सम्वत् जो भी सरकार को भारतीय सम्वत् पसंद हो

प्रारम्भ कर दें।

(२२) महात्मा गांधी की भांति अन्य भारतीय इ -पुरुषों यथा राम, कृष्ण, चाणक्य, नानक, प्रताप, शिवा जी, लक्ष्मीबाई एवं दयानन्द दिवस भी सरकारी ढंग पर मनाए जावें। इसी प्रकार होली, दीपावली, श्रावणी और विजय दशमी राष्ट्रीय पर्व मान कर राजकीय ढंग पर मनाए जायें। इन अवसरों पर देश-विदेश के उच्च पुरुषों को प्रीति भोज दिये जायें, तोपें दागी जायें आदि। यह कार्य क्रम राष्ट्रपति भवन से लेकर ग्राम पंचायतों तक में होनी चाहिए।

(२३) संस्कृत के प्रचार को इस प्रकार प्रोत्साहन दिया जाये:—

(१) विदेशों से हस्त-लिखित साहित्य को वापिस मंगाया जाय।

(२) सरकार की ओर से उनका मुद्रण किया जाय।

(३) आज के युग का इतिहास, विज्ञान, कला-कौशल, चरित्र आदि के संस्कृत में अनुवाद कराये जावें।

(४) संस्कृत के विद्वानों को प्रोत्साहित किया जावे। संस्कृत शिक्षण को विद्यालयों में अनिवार्य कर दिया जाए।

(२४) किसी भी भारतीय को अछूत तथा आदि निवासी इत्यादि न माना जाय।

(२५) आर्य बाहर से आये—इस कल्पित विचार को पढ़ाना बन्द किया जाय।

(२६) प्रारम्भ में मानव का भोजन कच्चा मांस था—इस मन घड़न्त विचार का पढ़ाना बन्द किया जाय।

(२७) गौ आदि पशु वध बन्द किया जाय।

(२८) राष्ट्रपति द्वारा प्रति वर्ष राष्ट्र की समस्त धार्मिक, राजनैतिक जातिय सामाजिक एवं साहित्यक संस्थाओं के प्रतिनिधियों का एक सम्मेलन बुलाया जाया करे जिससे सभी विचारों के नेताओं में राष्ट्रीय एकता की भावना उत्पन्न हो सके। इसी प्रकार राज्य पालों द्वारा अपने २ प्रान्तों में प्रति वर्ष ऐसे सम्मेलन बुलाये जायें।

(२९) धारा सभाओं, ससद् तथा म्यूनिसिपल के लिए चुने जाने वाले व्यक्तियों की योग्यता का मापदण्ड निश्चित किया जाय।

उपर्युक्त कुछ एक विचार विज्ञ पाठकों की सेवा में प्रस्तुत हैं आशा है वे इन पर विचार करने का कष्ट करेंगे।

दान-सूची

सार्वदेशिक आर्य प्रति निधि सभा, देहली।

(२१-७-५२ से २०-८-५२ तक)

दान आर्यसमाज स्थापना दिवस

१००) श्री मन्त्री जी आर्यसमाज पो० बा० ७७
दारेस्लाम (बृटिश ईस्ट अफ्रीका)
७) ,, आर्यसमाज बुरहानपुर
१२) ,, ,, अकोला

११९) योग
१०१७=) गत योग

११३६।=) सब योग

विविध दान

५) श्री राजाराम जी उग्गोकी वाले लुधियाना
४) ,, ललित मोहन राय जीवानपुर नदीया

९) योग
७१९)।।। गत योग

७२८)।।। सर्व योग

दान दक्षिण प्रचारार्थ

२००) श्री सेठ जुगल किशोर जी बिड़ला
द्वारा अ० भा० आर्य धर्म सेवा संघ
सहायता मास जुलाई ५२

२००) योग
८००) गत योग

१०००, सर्व योग

दान दाताओं को धन्यवाद !

कविराज हरनामदास
मन्त्री
सार्वदेशिक सभा, देहली

दान सार्वदेशिक वेद प्रचार निधि

१२) श्री पं० रामनारायण जी मिश्र काल भैरव
बनारस
१०) ,, नारायणराव जी बंगलौर सिटी
१०) ,, मन्त्री आर्यसमाज दार्जिलिंग (आसाम)
९) विविध सज्जनों से

४१) योग
६२३॥=) गतयोग

६६४॥=) सर्वयोग—

दान दाताओं को धन्यवाद ! खेद है कि अनेक आर्य नर नारियों ने देश देशान्तरों में वैदिक धर्म और संस्कृति के प्रचार की व्यवस्था
व्रत सार्वदेशिक वेद प्रचार निधि के लिये दान देकर अपने धर्म प्रेम का परिचय नहीं दिया। इतनी थोड़ी से राशि से इस प्रकार के बड़े उद्देश्य की पूर्ति कैसे हो सकती है ? राजदूतों तथा अनेक प्रतिष्ठित विदेशी विद्वानों को साहित्य वितरण भी इस निधि का अंग है जिस के लिये २०) का दान भेजकर उत्साही आर्य अपना क्रियात्मक सहयोग दिखाएं।

धर्मदेव विद्यावाचस्पति स० मन्त्री सभा

सार्वदेशिक पत्र के ग्राहकों से आवश्यक निवेदन

निम्नलिखित ग्राहकों का सार्वदेशिक पत्र का चन्दा सितम्बर मास के साथ समाप्त होता है। यथा वे अपना वार्षिक चन्दा शीघ्र मनीआर्डर द्वारा कार्यालय में पहुंचाने की कृपा करें। अन्यथा आगामी अंक उनकी सेवा में वी० पी० द्वारा भेजा जायगा। धन प्रत्येक दशा में ११-६-५२ तक कार्यालय में पहुंच जाना चाहिए। मनीआर्डर कूपन पर अपना पूरा पता व ग्राहक नम्बर लिखना न भूलें अन्यथा पत्र न मिलने वा देर से मिलने का उत्तरदायित्व कार्यालय पर न होगा।

१३ श्री मंत्री जी आर्यसमाज जौनपुर, यू० पी०
७५ ,, देवीदास धनीलाल जी बजाज, पो० स्यान, जहांगीराबाद, जि० बुलन्दशहर
२६ ,, मंत्री जी आर्यसमाज पुस्तकालय, लोहड़ बाजार, भिवानी
२७ ,, ,, ,, बारिकपुर २० नम्बर बजाजमुहल्ला, २४ परगना
२८ ,, पन्नालाल रामनारायण जी नेत्र वैद्य हिंगोली दक्षिण
३० ,, राना शिवरत्नसिंह जी रि० कानूनगो मु० पनी फतेहपुर शहर
३१ ,, नरेन्द्रसिंह जी यादव,ओममंडार,मैनपुरी
४६ ,, मंत्री जी आर्य समाज मन्सूरगंज, भागलपुर, बिहार
५८ ,, मंत्री जी आर्यसमाज सोनाफलिया, सूरत सिटी
६१ ,, रामस्वरूपसिंह जी पेन्शनर सूबेदार मैनपुर जिला गाजीपुर
८५ ,, रंगाधर जी यादव, ग्राम बड़मूलबसन्त पो० गोगुआ जिला कटक
१२४ ,, मंत्री जी आर्य समाज नीमच छावनी
३५५ ,, त्रिभुवनदास जी वर्मा मु० पीपराला पो० सान्तलपुर वाया पाटण ता० बनासकाठा नार्थ गुजरात
३५६ ,, हरजीभाई मकन जी आर्य भवन, पालडी, अहमदाबाद
३६२ ,, मंत्री जी आर्य समाज गोनपुरा पो० मुबारिकपुर जिला पटना
३६६ ,, मंत्री जी आर्यसमाज मुजफ्फरपुर, बिहार
३६६ ,, मंत्री जी आर्य समाज, ग्वालियर सिटी
३७१ ,, सगप्पा जी ‍ली पटेल आबुरकर मु० जगतगुल्बर्गा हैदराबाद दक्षिण
४८३ ,, मंत्री जी आर्य समाज शिकोहाबाद जिला मैनपुरी
४८४ ,, ,, ,, देवास इन्दौर
५०२ ,, ,, ,, बाह जिला आगरा
५०३ ,, ,, ,, सिरसागज जिला मैनपुरी
५०४ ,, ,, ,, मिढाखुरा जिला आगरा
५०७ ,, ,, ,, कोटला जिला आगरा
५०८ ,, वासुदेव जी मकान नं० १६ ए० न्यू कोलोनी गुड़गांव
५१७ ,, रामस्वरूप लाल जी आर्य घाटगोला पो० खगड़िया जिला मुंगेर बिहार
५१८ ,, मंत्री जी आर्यसमाज,जगनेर जिला आगरा
५२० ,, नारायण जी बी० ए० मु० पो० पाई
५२२ ,, मंत्री जी आर्यसमाज खड़गपुर पो० खीड़ाकी जिला, फर्रुखाबाद
५२४ ,, आर्य कोवरु सीवैश जी उस्मानगंज, हैदराबाद
५२६ ,, मंत्री जी आर्यसमाज करहल जि० मैनपुरी
५२८ ,, बलभद्र प्रसाद जी वलीदार प्रधान आर्य समाज बालगिर वाया टीटलागढ़ उड़ीसा
५६२ ,, त्रिवेदी पं० नर्मदाशंकर जी जिज्ञासु गुरुकुल सूपा वाया नवसारी जिला सूरत
६०२ ,, मंत्रीजी आर्यसमाज केराकत जि० जौनपुर
८०१ ,, गोपीचन्द जी आर्य मु० शेरपुर बिहार-शरीफ जिला पटना

८०४ ,, मंत्री जी आर्यसमाज रेल्वे रोड अम्बाला शहर
८०५ ,, ,, ,, कोटा राज०
८१७ ,, ज्ञानपालसिंह जी ड्राफ्ट क्लर्क, ए० सी० रिकार्ड अहमदनगर
८२० ,, फतेहसिंह जी भारती, फतेहपुर रोशनाई, पो० सचेन्डी जिला कानपुर
८२१ ,, मंत्री जी आर्य समाज, कलम जिला उस्मानाबाद
८२२ ,, ,, ,, गु ञोटी जिला उस्मानाबाद
८२३ ,, ,, ,, किल्लारी जि० उस्मानाबाद
८२४ ,, ,, ,, नगरसोगा पो० औसा जिला उस्मानाबाद
८२५ ,, ,, ,, बशीराबाद जिला तान्डूर हैदराबाद
८२७ ,, ,, ,, नानदेड़, हैदराबाद द०
८२८ ,, ,, , हिंगोली दक्षिण
८२९ ,, ,, ,, तान्डूर, हैदराबाद दक्षिण
८३० ,, ,, ,, घनासूर जिला परभणी दक्षिण
८३१ ,, , ,, मार्डी पो० लोहारा जिला उस्मानाबाद
८३२ ,, ,, , गोगी जिला हुमनाबाद
८३५ ,, ,, , चिचकुन्डा जिला नान्देड हैदराबाद
८३६ ,, ,, ,, महबूबनगर, हैदराबाद दक्षिण
८३७ ,, ,, , अलन्द जिला गुलबर्गा, हैदराबाद दक्षिण
८३८ ,, ,, ,, मुधोल जिला तान्डूर हैदराबाद दक्षिण
८४० ,, ,, ,, गोन्दी जिला जालना, हैदराबाद दक्षिण
८४१ ,, ,, ,, रेणापुर जिला लातुर
८४४ ,, ,, ,, दामरगिद्दा जि० यादगीर
८४५ ,, ,, , बीड़ जिला मुरशदपुर, हैदराबाद
८४६ ,, ,, ,, नरसम्मपेठ, हैदराबाद दक्षिण
८४७ ,, ,, ,, थारेबन पो० भोकर जि० नान्देड़
८४८ ,, ,, ,, करीमाबाद, हैदराबाद दक्षिण
८४९ ,, ,, ,, महलगांव तुकाराम, पो० करीमाबाद जि० हिंगोली
८५३ ,, ,, ,, सूर्यपेठ, हैदराबाद द०
८६१ ,, ,, ,, निवघा पो० कन्धापुर जिला नान्देड़
३६३ ,, ,, ,, सकरैचा पो० पुनपुन जिला पटना
५१६ ,, ,, मोंथरा जिला मैनपुरी

* *

Regd. No. D 51

स्वाध्याय योग्य उत्तम साहित्य

स्व० श्री महात्मा नारायण स्वामी जी कृत कतिपय ग्रन्थ

(१) मृत्यु और परलोक

शरीर, अन्तःकरण तथा जीव का स्वरूप और भेद, जीव और सृष्टि की उत्पत्ति का प्रकार, मृत्यु का स्वरूप तथा बाद की गति, मुक्ति और स्वर्ग, नरकादि का स्वरूप मैस्मरइज्म और रूहों के बुलाने आदि पर रोचक विचार और मुक्ति के साधन आदि विषयों पर नए ढंग पर एक अद्भुत पुस्तक।

बीसवां संस्करण मूल्य १।)

(२) योग रहस्य

इस पुस्तक में अनेक रहस्यों को उद्घाटित करते हुए उन विधियों को भी बतलाया गया है जिनसे कोई आदमी जिसे रुचि हो—योग के अभ्यासों को कर सकता है।

पंचम संस्करण मूल्य १।)

(३) विद्यार्थी जीवन रहस्य

विद्यार्थियों के लिए उनके मार्ग का सच्चा पथप्रदर्शक उनके जीवन के प्रत्येक पहलू पर शृङ्खलाबद्ध प्रकाश डालने वाले उपदेश

पञ्चम संस्करण मूल्य ॥≈)

(४) आत्म कथा

श्री महात्मा नारायण स्वामी जी का स्वलिखित जीवन चरित्र मूल्य २।)

(५) उपनिषद् रहस्य

ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक, माण्डूक्य, ऐतरेय, तैत्तिरीय, बृहदारण्यकोपनिषद् की बहुत सुन्दर खोज-पूर्ण और वैज्ञानिक व्याख्याएँ। मूल्य क्रमशः—

।≡), ॥), ॥), ।≈), ।≡), ।), ।), १), ४),

(६) प्राणायाम विधि

इस लघु पुस्तक में ऐसी मोटी और स्थूल बातें अंकित हैं जिनके समझने और जिनके अनुकूल कार्य करने से प्राणायाम की विधियों से अनभिज्ञ किसी भी पुरुष को कठिनता न हो और उन में इन क्रियाओं के करने की रुचि भी पैदा हो जाए।

चतुर्थ संस्करण मूल्य ≡)

मिलने का पता:—

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा

श्रद्धानन्द बलिदान भवन

देहली ६

मुद्रक—चतुरसेन गुप्त द्वारा सार्वदेशिक प्रेस पटौदी हाउस दिल्ली ७ मे छपकर
श्रीरघुनाथ प्रसाद जी पाठक पब्लिशर द्वारा सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा देहली ६ से प्रकाशित

श्रद्धानन्द बलिदानाङ्क ओ३म्

सार्वदेशिक

वर्ष २७ } पौष २००९ वि० दिसम्बर १९५२ ई० { अङ्क १०
सम्पादक—श्री प० धर्मदेव सिद्धान्तालङ्कार विद्यावाचस्पति

अमर धर्मवीर

श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज

विषयानुक्रमणिका

ओ३म्

सार्वदेशिक आर्य-प्रतिनिधि सभा देहली का मासिक मुख-पत्र

वर्ष २७ } दिसम्बर १९५२, पौष २००९ वि० दयानन्दाब्द १२८ { अङ्क १०

ओ३म्

वैदिक प्रार्थना

ओ३म् त्वं नः सोम विश्वतो वयोधास्त्वं स्वर्विदा विशा नृचक्षाः ।
त्वं न इन्द ऊतिभिः सजोषाः पाहि पश्चातादुत वा पुरस्तात् ॥ ऋ० ८।४८।१५

शब्दार्थ—(सोम) हे शान्त स्वरूप परमेश्वर (त्वम्) तू (नः) हमारे लिये (विश्वतः) सब ओर से (वयोधाः) ज्ञान और जीवन का धारण कराने वाला है (स्वर्वित्) सुख को प्राप्त कराने वाला (नृचक्षाः) सब मनुष्यों का द्रष्टा, सर्वज्ञ तू हमे (आ विश) अच्छी प्रकार से प्राप्त हो। (इन्दो) ज्ञानामृत से सिञ्चित करने वाले अथवा चन्द्रमा के समान आह्लादक हे परमेश्वर! (त्वम्) तू (सजोषाः) प्रेमयुक्त होकर (नः) हमें ऊतिभिः) अपने रक्षा साधनों, ज्ञान, दान और आनन्द से (न) हमारी (पश्चात्) पीछे से (उतवा) अथवा आगे से (पाहि) रक्षा कर।

विनय—हे शान्ति के मूल जगदीश्वर! आप सर्वव्यापक, सर्वज्ञ और ज्ञान प्रदाता हैं। आप हमारे सच्चे प्रेमी और हमें आनन्द प्रद हैं। आपसे हमारी प्रार्थना है कि ज्ञान, शान्ति, शक्ति, प्रीति और आनन्दादि का दान करते हुए आप हमारी सदा, सब ओर से रक्षा करें। हमें सदा आपका ही आश्रय है॥

सम्पादकीय

अमर धर्मवीर का दिव्य सन्देशः—

२३ दिस० को परमश्रद्धेय अमर धर्मवीर स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज का २७ वां बलिदान दिवस समस्त आर्य जगत् में बड़े उत्साह और श्रद्धा से मनाया जायगा। हम अपने परमश्रद्धेय आचार्य और आदर्श कर्मयोगी नेता के प्रति श्रद्धाञ्जलि अर्पित करते हुए उनके निम्नलिखित महत्त्वपूर्ण सन्देश की ओर पुनः आर्य मात्र का ध्यान आकृष्ट करना अपना कर्तव्य समझते हैं। उन्होंने यह स्फूर्तिदायक सन्देश मेरे द्वारा ११ मई सन् १९२४ को दक्षिण भारत के आर्यों के नाम मंगलौर आर्यसमाज के वार्षिकोत्सव के अवसर पर भेजा था। अत्यन्त महत्त्वपूर्ण और स्फूर्तिदायक होने के कारण हम प्रतिवर्ष पाठकों के मार्ग प्रदर्शनार्थ उस दिव्य सन्देश को उद्धृत करना उपयोगी समझते हैं। अमर हुतात्मा ने उस सन्देशमें कहाथा कि"इसपवित्र अवसरपर तुम यह मत भूलो कि वैदिक धर्म कोई सम्प्रदाय या पन्थ नहीं है। वह अनादि धर्म है जिस के बिना संसार की सामाजिक व्यवस्था एक पल के लिये भी नहीं रह सकती। प्राचीन काल में अगणित आध्यात्मिक कोषों को खोलने वाली चाबी तुम्हारे ही हाथों में दी गई थी और अब भी अशान्त संसार को शान्ति देना तुम्हारा ही काम है। किन्तु पहले तुम को अपनी ही अपवित्रताओं को धोना होगा। आज गम्भीर भाव से यह प्रतिज्ञा करो कि तुम दैनिक पञ्च महायज्ञों के अनुष्ठान में प्रमाद नहीं करोगे। तुम अस्वाभाविक जातिभेद के बन्धन तोड़ कर वर्णाश्रम व्यवस्था को अपने जीवन में परिणत करोगे, तुम अपनी मातृ भूमि के देह पर लगे हुए अस्पृश्यता के कलङ्क को धो डालोगे और तुम आर्य समाज के सार्वभौम-मन्दिर का द्वार मत-संप्रदाय जाति भेद, रंग आदि के भेदभाव का कुछ भी विचार न कर, मनुष्य मात्र के लिये खोल दोगे। परम पुरुष परमात्मा इस गम्भीर प्रतिज्ञा के पालन करने में तुम्हारे सहायक हों जिससे जब कभी फिर इस संन्यासी को तुम्हारे बीच में आने का अवसर मिले, तो उसको निश्चित उद्देश्य की ओर तुम्हारे अग्रसर होने के चिन्ह अथवा दृश्य स्पष्ट दीख पड़ें।"

इस सन्देश से पूज्य स्वामी जी के हृदय की विशालता तथा उदारता का परिचय मिलता है और साथ ही यह भी पता लगता है कि आर्य जीवन के लिए आचरण की पवित्रता पर वे कितना अधिक बल देते थे। अमर धर्मवीर का यह दिव्य सन्देश आज भी उतना ही-प्रत्युत स्वतन्त्र भारत में उससे भी अधिक—महत्त्वपूर्ण है जितना वह उन दिनों था जब वह दिया गया था। हमारा यह दृढ़ विश्वास है कि आर्यसमाज की वास्तविक उन्नति और वैदिक धर्म का यथार्थ प्रचार इस दिव्य सन्देश के क्रियात्मक रूप देने पर अधिकतर निर्भर है। हमें यह देख कर दुःख होता है कि अब भी आर्यों में बहुत बड़ी संख्या है जो पञ्च महायज्ञों का अनुष्ठान करने में प्रमाद करती है, जो जातिभेद की दलदल में फंसी हुई है और जिस ने वर्णाश्रम व्यवस्था को अपने जीवन में क्रियात्मक रूप नहीं दिया। यदि आर्य नर नारी अमर धर्मवीर स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज के इस दिव्य सन्देश के अनुसार आचरण करने लगें तो आर्यसमाज दिनदूनी रात चौगुनी उन्नति करने लगे और स्वतन्त्र भारत में अपने उत्तरदायित्व को निभाने में वह अधिक समर्थ हो सके। चारों ओर फैलते भ्रष्टाचार और दुराचार को मिटाने की शक्ति आर्यसमाज में विद्यमान है किन्तु पहले उसे अपने आप को सर्वथा निष्कलङ्क और पवित्र

बनाना होगा । जातिभेद की श्रृङ्खलाओं (जंजीरों) से अपने को छुड़ाए बिना शुद्धि दलितोद्धारादि के आन्दोलन कभी सफल और प्रबल नहीं हो सकते। भगवान् कृपा करें कि अमर धर्मवीर के बलिदान का स्मरण आर्यों में नवजीवन का संचार कर के उन में नई स्फूर्ति भर दे।

दक्षिण अफ्रीका में सत्याग्रह :—

दक्षिण अफ्रीकाकी सरकार डा.मलानके प्रधान मन्त्रित्व में रंगभेद पर आश्रित जिस घृणामूलक नीति का अवलम्बन कर रही है उसके विरोध में २६ जून से प्रारम्भ किया गया सत्याग्रह निरन्तर बल पकड़ रहा है। लण्डन टाइम्स जैसे अंग्रेज पक्षपाती पत्र ने भी इस बात को स्पष्ट स्वीकार किया है और यह भी माना है कि अभी तक यह सत्याग्रह अहिंसात्मक रूप में ही चल रहा है। ६००० के लगभग सत्याग्रही इस समय तक जेलों में बन्दी बनकर अनेक विध यातनाओं को सहन कर रहे हैं। अनेक अमानुषिक अत्याचारों के समाचार प्राप्त हुए हैं। देश देशान्तरों के सभी निष्पक्षपात पत्रों ने इस सत्याग्रह का अभिनन्दन और डा० मलान की संकीर्णतापूर्ण मनोवृत्ति की निन्दा की है किन्तु यह दुःख की बात है कि वे अपने अन्याय पूर्ण मार्ग पर चलते जा रहे हैं। संयुक्त राष्ट्र संघ के साधारण अधिवेशन की विचारणीय विषय सूची में यह विषय केवल ६ के विरोध से सम्मिलित कर लिया गया। दक्षिण अफ्रीका के प्रतिनिधि ने इसे घरेलू विषय बताकर संयुक्त राष्ट्रीय संघ में विचारार्थ प्रस्तुत किये जाने का घोर विरोध किया और ब्रिटेन आस्ट्रेलिया और न्यूजीलैण्ड ने उसका समर्थन किया जिसे हम नितान्त निन्दनीय समझते हैं। हम आशा करते हैं कि संयुक्त राष्ट्र संघ इस विषय को विश्वशान्ति में बाधक समझ कर अत्यन्त गम्भीरता से विचार करेगा और दक्षिण अफ्रीका के सरकार के विरुद्ध उग्र कार्यवाही करेगा। संयुक्त राष्ट्र सघ के मन्त्री श्री लाई ने अपनी असफलता की रिपोर्ट प्रस्तुत कर दी है किन्तु इतने से ही निराश न होकर इस अन्याय के प्रतिकार के लिये संयुक्त राष्ट्र सघ ने उचित कार्यवाही न की तो उस पर लोगों की आस्था सर्वथा जाती रहेगी जैसे कि, काश्मीर की समस्या के हल न होने से हो रहा है। इस प्रकार वर्षों तक मामले को लटकाते जाने से कोई लाभ नहीं हो सकता। डा० ग्राहम ने अपनी असफलता को स्वीकार किया है जिससे हमें दुःख तो हुआ पर आश्चर्य नहीं क्योंकि हम प्रारम्भ से ही यह समझते रहे हैं कि इस प्रश्न का संयुक्त राष्ट्र-संघ में भेजना ही प्रारम्भिक भूल थी॥

एक कुप्रथा के विरुद्ध पत्नी द्वारा सत्याग्रहः—

विवाह सम्बध निश्चयार्थ दहेज की मांग की घृणित प्रथा के विरुद्ध इन स्तम्भों में हम कई बार लिख चुके हैं। यह खेद की बात है कि आज कल के अनेक अंग्रेजी शिक्षित युवक भी इस विषय में बड़ी निर्लज्जता का प्रदर्शन करते हैं और दूसरे सम्बन्धियों के द्वारा ऐसी मांग प्रस्तुत करने वालों की संख्या तो बहुत अधिक है। आर्यसमाजों, आर्यकुमार सभाओं तथा अन्य सब समाज हितैषिणी संस्थाओं को इस कुप्रथा के विरुद्ध जिसकी वेदी पर स्नेहलता जैसी सैंकड़ों निपराध कन्याओं का बलिदान हो चुका है' प्रबल आन्दोलन करके इसे निर्मूल कर देना चाहिये। ऐसे व्यक्तियों का सामाजिक बहिष्कार करना भी सर्वथा उचित होगा। महिलाएं इस आन्दोलन को अधिक सफलता के साथ चला सकती हैं। इस प्रसंग में २२ अगस्त के नवभारत टाइम्स आदि में प्रकाशित निम्न समाचार उल्लेखनीय है—बूंदी के एक दलाल की पत्नी ने समाज की कुरीतियों एवं समाजविरोधी कृत्यों के विरुद्ध सत्याग्रह एवम् अनशन कर के

एक अनुपम उदाहरण उपस्थित किया है। यहां पर कई जातियों में लड़कियों को बेच देने का रिवाज है। उक्त दलाल ने भी सुना है अपनी पुत्री को कुछ सौ रु० लेकर तीर्थ गांव के एक व्यक्ति के हाथ सौदा किया है। यह समाचार जब उसकी स्त्री को प्राप्त हुआ तब उसने इस अमानवीय कार्य के लिये अपना विरोध प्रकट किया। सफलता न मिलने पर उसने सत्याग्रह शुरू कर दिया है। उसके एक सम्बन्धी से ज्ञात हुआ है कि उसने गत ४ दिनों से कुछ नहीं खाया है।"

अन्य सब यत्नों के असफल होने पर यदि दृढ़ व्रती आर्य नरनारी सत्याग्रह का भी ऐसी कुप्रथाओं के अन्त के लिये अवलम्बन करें तो उसे अनुचित नहीं समझा जा सकता॥

विश्वसंस्कृत परिषत् और संस्कृत प्रसार:—

यह प्रसन्नता की बात है कि ११ मई १६५१ को सोमनाथ (सौराष्ट्र) में जिस विश्वसंस्कृत परिषत् की संस्कृत भाषा के विस्तृत प्रसार के उद्देश्य से स्थापना की गई थी उसका द्वितीय अधिवेशन संस्कृत विद्या के सुप्रसिद्ध केन्द्र काशी में १५-१६ नव० को आर्यावर्त के परम-मान्य राष्ट्रपति, देशरत्न श्री डा० राजेन्द्र प्रसाद जी की अध्यक्षता में बड़े समारोह से सम्पन्न हुआ। स्वागत कारिणी के अध्यक्ष उत्तर प्रदेशीय सरकार के गृह मन्त्री श्री सम्पूर्णानन्द जी थे जिन्होंने सरल संस्कृत में लिखा अपना अभिभाषण स्वयं पढ़ा। मान्य राष्ट्रपति अध्यक्ष जी का भाषण जो हिन्दी और संस्कृत दोनों में छपवाया और पढ़ा गया था बड़ा महत्त्व पूर्ण था जिसमें उन्होंने संस्कृत भाषा के अध्ययन की आवश्यकता पर प्रकाश डालते हुए ठीक ही कहा था कि हमारी संस्कृति, साहित्य, प्रादेशिक भाषाएं, कला, इतिहास तथा सम्पूर्ण जीवन संस्कृत ज्ञान के बिना एक पहेली बन जाएंगे। जब तक हमारे विद्वान्, विचारक, नेता और शिक्षा-शास्त्री संस्कृत से सर्वथा अपरिचित हैं तब तक हम अपने स्वरूप को पहचान ही नहीं सकते और तब तक हम अपने राष्ट्र अथवा अपने जातीय व्यक्तित्व के रहस्यों को जान ही नहीं सकते।" किन्तु इस के साथ ही स्वतन्त्र भारत में भी संस्कृत के अध्ययन, अध्यापन के प्रति उपेक्षा तथा उसकी दयनीय दशा का जो चित्र उन्होंने खींचा वह सर्वथा यथार्थ और सचमुच लज्जाजनक था जैसे कि उन्होंने स्वयं ही इन सरल और सीधे शब्दों में स्वीकार किया:—

"अंग्रेजी राज्यकाल में शिक्षा की कुछ ऐसी व्यवस्था हुई कि हमारे देश में यह भावना घर करने लगी कि हमारी अपनी ऐतिहासिक परम्पराएं, सत्कार, रीति रिवाज, सब व्यर्थ और हानिकर हैं और इस लिये उनको छोड़ कर विदेशी सभ्यता को अपनाने में ही हमारा कल्याण है किन्तु इस उपेक्षा के बाद भी संस्कृत बची रही क्योंकि संस्कृत पण्डितों को यह विश्वास था कि कभी न कभी जमाना करवट बदलेगा और पण्डितों तथा आचार्यों के भाग्य फिर जागेंगे। मैं नहीं कह सकता कि स्वतन्त्र भारत में उन्होंने अपने इस विश्वास, स्वप्न और इन आशाओं की पूर्ति की झलक देखी है या नहीं किन्तु मुझे कभी कभी यह भय होने लगता है कि संभवतः स्वतन्त्र भारत में संस्कृत अध्ययन की यह परम्परा कहीं समाप्त न हो जाए। अभी राज्य ने संस्कृत अध्ययन को प्रश्रय देने का भार अपने सिर पर नहीं लिया है। यह ठीक है कि विद्यालयों में संस्कृत अध्ययन के लिये कुछ प्रबन्ध है किन्तु वह ऐसा नहीं है जिसे गिनती में सम्मिलित किया जा सके। संस्कृत की जो पाठशालाएं और विद्यालय आजतक चल रहे हैं उनकी अवस्था शोचनीय होती जा रही है।

वहां से निकले विद्यार्थियों का हमारे आधुनिक जीवन में कुछ स्थान नहीं। अतः इन परिस्थितियों में यदि संस्कृत अध्ययन की परम्परा खतम हो गई तो चाहे वह आश्चर्य की बात न हो किन्तु वह स्वतन्त्र भारत के लिये लज्जा की बात अवश्य होगी। विदेशों में संस्कृत अध्ययन का विकास हो और स्वयं भारत में वह समाप्त हो जाए यह घटना यद्यपि अकल्पनीय अवश्य है किन्तु मुझे ऐसा लगता है कि हम उसके निकट पहुंचते जा रहे हैं।" इस शोचनीय अवस्था को दूर करके संस्कृत प्रसार के उपायों का निर्देश करते हुए माननीय राष्ट्रपति जी ने कहा कि 'सच बात तो यह है कि आज राज्य ने इतनी अधिक मात्रा में सामाजिक सूत्र अपने हाथ में ले लिये हैं कि यदि उसने संस्कृत अध्ययन के विस्तभार को अपने कन्धे पर न लिया तो संभवतः वह आगे न चल सकेगा। अब समय आ गया है कि सरकारें संस्कृत अध्ययन के लिये आवश्यक वैत्तिक प्रबन्ध करें। जब समाज के सब सम्पत्ति साधनों को वे अपने हाथों में ले रही हैं तो कोई कारण नहीं है कि वे समाज के उत्तरदायित्वों को अपने सिर पर क्यों न लें? राज्य का यह धर्म है कि वह इन उत्तरदायित्वों को भी अपने हाथ में ले और संस्कृत अध्ययन के लिये पर्याप्त सहायता प्रारम्भ करे। उद्योगपतियों को भी विश्वविद्यालयों में संस्कृत अध्ययन के लिये विशिष्ट पीठों या गद्दियों की स्थापना के लिये उदार दान देना चाहिये।" इत्यादि

उत्तर प्रदेश के मुख्यमन्त्री श्री गोविन्दवल्लभ पन्त तथा राज्यपाल श्री कन्हैयालाल जी मनीषी (जिनका इस परिषत् के आयोजन में प्रमुख भाग था) के भाषण भी महत्त्वपूर्ण थे। प्रतिनिधियों की संख्या, उपस्थिति, प्रबन्ध तथा भाषण इत्यादि सब दृष्टियों से इस सम्मेलन को सफल कहा जा सकता है। इस बात पर खेद प्रकट करते हुए कि संस्कृत के अध्ययन अध्यापन की स्वतन्त्र भारत में भी उपेक्षा हो रही है प्रथम मुख्य प्रस्ताव में सब विद्यालयों के माध्यमिक विभाग में संस्कृत भाषा की अनिवार्यरूप में शिक्षा, सब विश्वविद्यालयों में अनुसन्धान और अध्यापन के लिये संस्कृत विभाग की स्थापना, भारतीय संस्कृति और इतिहास के अध्ययन को प्रधानता देना. संस्कृत के प्रचार के लिये विश्वसंस्कृत परिषत् की ओर से अनेक अध्यापकों अथवा उपाध्यायों की नियुक्ति, अखिल भारतीय संस्कृत विश्वविद्यालय की स्थापना, भारतीय सर्व भाषाओं के लिये देवनागरी लिपि का प्रयोग इत्यादि बातों का निर्देश किया गया था जिसमें किसी निष्पक्ष विद्वान् का कोई मत-भेद नहीं हो सकता। हम ने इस प्रस्ताव में यह संशोधन प्रस्तुत किया और उस पर १५ नव. को मध्यान्ह विषय निर्धारिणी सभा में संस्कृत में भाषण दिया था कि शीघ्र ही संस्कृत भाषा व्यावहारिक भाषा बन सके इस उद्देश्य को मन में रख कर सब संस्कृतज्ञों को परस्पर संस्कृत में ही बात चीत और पत्र व्यवहार करना चाहिये। उप समिति ने उस संशोधन को स्वीकृत करने का आश्वासन दिया। एक और संशोधन श्री राजेश्वर जी शास्त्री ने प्रस्तुत किया जिसके शब्द तो सुनाये नहीं गये और वे शास्त्रीय या प्राचीन परम्परा का अनुसरण करते हुए संस्कृत प्रसार का यत्न किया जाए कुछ ऐसे गोल माल थे पर जिनका वास्तविक उद्देश्य (जैसे कि श्री राजेश्वर शास्त्री जी और पं० देवनायकाचार्य जी के भाषणों से ध्वनित होता था) यह प्रतीत होता था कि स्त्रियों और शूद्रकुलोत्पन्नों को संस्कृत न पढ़ाई जाए। स्वाभाविकतया सब आर्य विद्वानों को ही नहीं

(जो पर्याप्त संख्या में वहां पहुंचे थे) अन्य उदार विचारों वाले सब पण्डितों को भी इस संशोधन में घोर विप्रतिपत्ति थी। हमने खुले अधिवेशन में इसके स्पष्ट विरोध का निश्चय किया और मद्रास विश्वविद्यालय के संस्कृत विभागाध्यक्ष डा० राघवन्, श्री शंकरन् तथा अन्य विद्वानों को भी सहयोग देने की प्रेरणा की। प्रथम प्रस्ताव पर भाषणों के पश्चात् जब अध्यक्ष श्री कन्हैया लाला जी मनीषी ने यह घोषणा करनी चाही कि प्रस्ताव को सर्व सम्मति से स्वीकृत समझा जाए तो हम ने खड़े होकर संस्कृत में उनका ध्यान उस प्रस्तुत संशोधन की ओर आकृष्ट करते हुए पूछा कि क्या उपसमिति ने उसे भी स्वीकृत कर लिया है। यदि ऐसा है तो हममें से बहुतों को उस पर घोर विप्रतिपत्ति है और हम उससे सर्वथा असहमत हैं। चारों ओर से सब की दृष्टि हमारे ऊपर पड़ने लगी क्योंकि बहुत से विद्वान् यद्यपि हमारे विचार से सहमत थे तथापि भरी सभा में निर्भयता से अपने भाव को प्रकट करने अथवा प्रस्तुत अनुदारता सूचक उपर्युक्त संशोधन का विरोध करने के लिए बड़े साहस की आवश्यकता थी। अध्यक्ष श्री मनीषी जी ने बुद्धिमत्ता से सारी स्थिति को समझ लिया और परिषत् के मंत्री जी द्वारा घोषणा करवाई कि उपसमिति ने श्री राजेश्वर शास्त्री जी के संशोधन को स्वीकृत नहीं किया क्योंकि इस पर बहुतों की विप्रतिपत्ति थी। हमें तथा अन्य सब उदारविचारों वाले व्यक्तियों को इस घोषणा से सन्तोष हुआ। अधिवेशन के पश्चात् काशी पण्डित सभा के पूर्व प्रधान पं० गोपालदत्त जी शास्त्री दर्शन-केसरी तथा अन्य विद्वानों ने मेरे भाषण पर बड़ा हर्ष प्रकट किया। अब हम सब से अनुरोध करते हैं कि संस्कृत प्रचार के कार्य को बड़ी तीव्रता से किया जाए। केन्द्रीय तथा समस्त प्रादेशिक सरकारों को चाहिये (जैसे कि माननीय राष्ट्रपति जी ने अपने भाषण में कहा) कि इस को विशेष रूप से प्रोत्साहित करने के लिये उदार सहायता दें जिससे समस्त भाषाओं की जननी संस्कृत भाषा प्राचीन गौरव को प्राप्त कर सके। महर्षि दयानन्द का स्थान संस्कृत भाषा के प्रचारकों की प्रथम कोटि में है। अतः आर्य नर-नारियों को इस विषय में पूर्ण उत्साह दिखाना ही चाहिये। आर्य विद्वानों तथा समस्त संस्कृतज्ञों से हमारा अनुरोध है कि वे परस्पर संस्कृत में वार्तालाप और पत्र व्यवहार द्वारा सारे देश में संस्कृतमय वातावरण उत्पन्न करदें और हम तो चाहते हैं जैसे कि महर्षि दयानन्द ने 'संस्कृत वाक्य प्रबोध' की भूमिका में प्रकट किया है कि बालक बालिकाएं भी संस्कृत में वार्तालाप करने लग जाएं। समस्त आर्य समाजों में सरल रूप में संस्कृत की पढ़ाई की ऐसी व्यवस्था रहे कि दो वर्ष के अन्दर एक भी आर्य नर-नारी ऐसा न रहे जो संस्कृत के सामान्य ज्ञान से वञ्चित हो। आर्य समाज को इस उत्तम आन्दोलन में पूर्ण सक्रिय सहयोग अवश्य देना चाहिये।

मुसलमान नेता द्वारा गोवध निषेध समर्थन

गत ११ नवम्बर को लाहौर जिला कांग्रेस कमेटी के भूतपूर्व अध्यक्ष खलीफा फजलदीन ने बम्बई से एक वक्तव्य निकालते हुए कहा है कि भारत के मुसलमानों को सरकार द्वारा गोवध पर पाबन्दी लगाने का विरोध नहीं करना चाहिए क्योंकि मुसलमानों का धर्म गोवध के लिये उन्हें मजबूर नहीं करता। उन्होंने यह भी कहा कि इस मसले पर काफी गौर करने के बाद मैं इस नतीजे (परिणाम) पर पहुँचा हूँ कि मुसलमानों को यह घोषित कर देना चाहिये कि गोवध बन्दी पर हमें कोई आपत्ति नहीं। इससे हिन्दू भाइयों की सद्भावना भी हमें मिल जाएगी। और विचार शील लोगों की नजर में हमारा मान बढ़ जाएगा,

क्योंकि दुर्भाग्य से हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच विरोध का यह एक मुख्य कारण है। इसके दूर होने से आपस के द्वेष और नफरत का जमाना खतम हो जायगा और दोनों की मित्रता पर भारत की समृद्धिकी पक्की नींव रखी जाएगी।"

यद्यपि इस वक्तव्य में स्वार्थ भावना की भी स्पष्ट झलक है तथापि हम इसका अभिनन्दन करते हैं। यदि अन्य मुस्लिम नेता भी इस प्रकार करदें तो भारत सरकार घोषणा के लिये जनता की इच्छाका आदर करतेहुए गोवधको विधान द्वारा बन्द करना सुगम हो जाएगा। किसी भी अवस्था में अब अविलम्ब भारत सराकार को ऐसा कानून अवश्य बना देना चाहिये अन्यथा वह लोकप्रियता भी प्राप्त न कर सकेगी।

सच्चरित्र निर्माण और धार्मिक शिक्षा

गत १५ नव. को काशी हिन्दू विश्व विद्यालय के सेन्ट्रल हिन्दू कालेज की स्वर्ण जयन्ती के अवसर पर अपने भाषणमें राष्ट्रपति परम माननीय डा० राजेन्द्रप्रसाद जी ने कहा कि सच्चरित्र निर्माण के लिये यह आवश्यक है कि धार्मिक शिक्षा छात्रों की शिक्षा का एक आवश्यक अङ्ग हो। उन्होंने यह भी कहा क्योंकि भारत में लोग विविधमतों के अनुयायी हैं अत किसी एक धर्म की शिक्षा देना सम्भव न होगा तो भी सब मतों के आधार भूत सिद्धान्तों की शिक्षा देना तो सच्चरित्र निर्माण के लिये अत्यावश्यक है। भारत के मान्य उपराष्ट्रपति, सुप्रसिद्ध विचारक डा० राधाकृष्णजी ने भी पिछले दिनों विश्वशांतिके लिये धार्मिक अनुशीलन पर बल दिया है। हम इस विचार से सर्वथा सहमत हैं कि छात्रों को धार्मिक शिक्षा अवश्य दी जानी चाहिये अन्यथा वे केवल भौतिकवाद के प्रवाह में बहकर दुराचार में प्रवृत्त हो जाएंगे यह निश्चित बात है। धर्म शिक्षा के अभाव में विद्यालयों और महाविद्यालयों के छात्र सदाचारसे विमुख होकर स्वेच्छाचारी बनते जारहे हैं जिससे देश अनैतिकता के गर्त में पतित होरहा है। इस शोचनीय अवस्था को दूर करने का राष्ट्र के कर्णधारों और विशेषतः शिक्षा विभाग के अधिकारियों को अवश्य ही उपाय करना चाहिये। हमारा तो दृढ़ विश्वास है कि सत्य सनातन वैदिक धर्म की शिक्षाएं इतनी सार्वभौम और असाम्प्रदायिक हैं कि उनको बिना किसी सङ्कोच और आशङ्का के विद्यालयों और महाविद्यालयों में दिया जा सकता है। इस पर भी असाम्प्रदायिक राष्ट्र के स्वरूप की रक्षा के लिये यदि आवश्यक समझा जाए तो ऐसे सग्रह सुगमता से तय्यार किये जा सकते हैं जिनमें वैदिक शिक्षाओं के साथ २ अन्य मतों के ग्रन्थों से भी सत्य अहिंसा, दया परोपकार,पवित्रतादि विषयों में उत्तम वाक्य सकलित हों। मान्य राष्ट्रपति जी से भी हमारा सविनय अनुरोध है कि वे शिक्षाधिकारियों का ध्यान धर्म शिक्षा के इस आवश्यक विषय की ओर आकृष्ट करते हुए उचित व्यवस्था अवश्य करवाने की कृपा करें। उनके आदेश और निर्देश की अवहेलना का दुस्साहस कोई अधिकारी न करेगा यह हमें निश्चय है।

क्या यही पाश्चात्य सभ्यता का नमूना है:—

पिछले दिनों समाचार प्रकाशित हुआ है कि सुप्रसिद्ध लेखक और विचारक श्री बर्ट्रान्ड रसल ने जो नोबल पुरस्कार विजेता है ८० वर्ष की आयु में चतुर्थ विवाह की घोषणा की है। यह ज्ञात नहीं हुआ कि वधू की आयु क्या है किन्तु कुछ भी हो ८० वर्ष की आयु मे जो सन्यासग्रहण कीआयु है श्री बर्ट्रान्ड रसल जैसे सुप्रसिद्ध व्यक्ति भोगमय जीवन का विचार रखें यह पाश्चात्य सभ्यता के लिये कलङ्क की बात है। क्या इसे

ही पाश्चात्य सभ्यता का नमूना समझा जाए ? यदि ऐसा है तो इस भोग प्रधान सभ्यता को दूर से नमस्कार करना ही उचित प्रतीत होता है। कुछ वर्ष पूर्व इङ्गलैंड के मृत पूर्व प्रधान मन्त्री लायड जार्ज ने भी मृत्यु से एकाध वर्ष पूर्व लगभग ८० वर्ष की आयु में विवाह किया था ऐसे ही अन्य भी अनेक प्रसिद्ध पाश्चात्य व्यक्तियों के उदाहरण हैं जिन्हें हम निन्दनीय समझते हैं।

दक्षिण अफ्रीका के उच्चतम न्यायालय का एक महत्त्व पूर्ण निर्णयः—

१३ नव० को दक्षिण अफ्रीका के उच्चतम न्यायालय (सुप्रीम कोर्ट) ने एक अत्यन्त महत्त्व पूर्ण निर्णय सर्व सम्मति से दिया है जिसके अनुसार उसने मलान सरकार द्वारा स्वीकृत हाईकोर्ट आफ पार्लियामेंट ऐक्ट को अवैध घोषित कर दिया है। यह मलान सरकार की करारी हार है इसमें सन्देह नहीं किन्तु प्रतीत होता है कि इतने पर भी डा० मलान और उनके सहयोगियों ने शिक्षा ग्रहण नहीं की। इस निर्णय को स्वीकार करते हुए भी अब उन्होंने जनता से अपने समर्थन की अभ्यर्थना (अपील) की है। हम द० अफ्रीका के उच्चतम न्यायालय के इस महत्त्व पूर्ण निर्णय का अभिनन्दन करते हुए डा० मलान और उनके साथियों से अनुरोध करते हैं कि वे अपनी मलिन और रंग तथा जातिभेद पर आश्रित अनुदार नीति का परित्याग कर के प्रतिदिन बल पकड़ते हुए सत्याग्रह से उत्पन्न विषम परिस्थिति से अपने को बचालें अन्यथा निकट भविष्य में उनका पतन अवश्यम्भावी और सुनिश्चित है।

सब विचार शील निष्पक्ष लोगों का प्रबल जनमत उनकी संकुचित नीति के विरुद्ध है, इस बात को यदि वे अब भी अनुभव न करें तो उससे बढ़ कर मूर्खता और क्या हो सकती है ? संयुक्त राष्ट्रसङ्घ की राजनैतिक समिति में भी बहुत बड़े बहुमत से (६ के विरुद्ध ४५) से दक्षिण अफ्रीका के इस दावे को अस्वीकृत कर दिया कि संयुक्त राष्ट्रसंघ को उसकी रंग भेद पर आश्रित नीति पर विचार करने का अधिकार नहीं और एक कमीशन की नियुक्ति जांच के लिये की किन्तु समाचार है कि द० अफ्रीका की सरकार उस कमीशन से असहयोग करेगी। ऐसा करना सर्वथा निन्दनीय होगा। संयुक्त राष्ट्र संघ को ऐसी उग्र कार्यवाही करनी चाहिये जिससे द० अफ्रीका सरकार को अवश्य ही झुकना पड़े।

विकासवाद की अशुद्धताः—

२१ नव० के देहली एक्सप्रेस तथा अन्य पत्रों में पी० टी० आई० रूटर द्वारा प्रसारित यह समाचार प्रकाशित हुआ है कि सोवियट ऐकेडेमी आफ ऐग्रिकल्चर (रूसी कृषि संस्था) के प्रधान और प्राणिविज्ञान पर अनेक पुस्तकों के लेखक सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक टौफिम लाइसेन् को (Trofim Lysenko) ने सिद्ध करके दिखाया है कि डार्विन द्वारा आविष्कृत विकासवाद अशुद्ध है जिसके लिये उसने वनस्पतियों के सम्बन्ध में किये अनेक परीक्षणों का उल्लेख किया है। जहां तक सामाजिक विकासवाद का प्रश्न है स्वयं भौतिक विकासवाद के डार्विन के साथ ही प्रवर्तक डा० अल्फ्रेड रसेल वैलेस ने अपनी Social Envirionment and Moral Progress नामक सुप्रसिद्ध पुस्तक में वेदादि की उच्च शिक्षाओं के आधार पर स्वयं ही उसका खण्डन कर दिया था और अन्य लेखकों ने भी (जैसे कि हम ने अपने भारतीय समाज' नामक पुस्तक के अष्टम अध्याय में जो आर्य साहित्य मण्डल अजमेर द्वारा प्रकाशित हुआ दिखाया है) उसके निराकरण में बहुत कुछ लिखा है किन्तु प्रायः यह समझा जाता रहा है कि भौतिक विकासवाद को सब वैज्ञानिक स्वीकार करते आये और अब भी करते हैं यद्यपि यह सत्य नहीं है।

(इस विषय में शेष अंश अगले मास दिया जाएगा)

ध० दे०

ब्रह्म पारायण यज्ञ की शास्त्रीयता

(लेखक—आचार्य वैद्यनाथ जी शास्त्री पोरबन्दर)

(गताङ्क से आगे)

क्या अन्त्येष्टि में पढ़े गये मन्त्रों से भी यज्ञ हो सकता है ?

श्री पंडित सातवलेकर जी का एक बड़ा भारी प्रश्न यह है कि क्या अन्त्येष्टि प्रेतदाह के लिए ही जो मंत्र हैं वे मंगल कामना की सिद्धि के लिए किये जा सकते हैं? लेखक के विचार मे किये जा सकते हैं और किये गये भी हैं। मृत-दाह के लिये ही कोई मंत्र निश्चित नहीं, उनसे और कर्म भी हो सकते हैं। ऊपर के वर्णन से यह भली प्रकार सिद्ध है। अमुक मन्त्र केवल अन्त्येष्टि के लिये ही है ऐसा कहीं पर निश्चित लिखा नहीं मालूम पड़ता। बल्कि उल्टे उन मन्त्रों का अन्य कर्मों में विनियोग मिलता है। अन्त्येष्टि संस्कार गृह्य कर्म है और गृह्य सूत्रों का विषय है। इसमें प्रयुक्त मंत्र श्रौत सूत्रों में श्रौत कर्म में और अन्य कार्यों में प्रयुक्त हैं। यदि वे अन्त्येष्टि के लिए ही निश्चित थे तो सूत्रकारों ने ही इनका अन्य कर्मों में प्रयोग क्यों किया? यह कल्पना लोगों के हृदय में इस लिए उठती है कि वे मृत शरीर को लक्ष्यीकृत्य करके ही मंत्रों का अर्थ निकालते हैं। 'मज्जभ्यः स्वाहा' से और 'सूर्यम् चक्षुषा गच्छतु...' सूतकके मज्जा और नेत्रको ही समझते हैं। वस्तुतः यह साधारण उपदेश है और सब पर घटित है। स्वाहा शब्द का अर्थ जलना समझ लेना भी बुरा है। 'प्राणाय स्वाहा' 'अस्थभ्यः स्वाहा' से जब जलना अर्थ निकाला जावे तभी ऐसा भ्रम होता है अन्यथा नहीं। अन्त्येष्टि में यजुर्वेद के ३९ वें अध्याय के मंत्र बोले जाते हैं अतः उसे भद्र कार्यों में नहीं पढ़ा जाना चाहिए ऐसा उक्त पंडित जी का संकेत मालूम पड़ता है। उन्होंने आचार्य दयानंद का हवाला भी दे दिया है। परन्तु आचार्य ने वहां पर गृह्य विषयकी दृष्टि से अर्थ किया है। उनका अभिप्राय यह नहीं जो लेने का प्रयत्न किया गया है। ३९ वें अध्याय में सब १३ मंत्र हैं। जिनमें केवल १० वें से लेकर १३ वें मत्रका अन्त्येष्टि कर्म में संस्कारविधि में प्रयोग है। शेष मंत्रों का नहीं। पंडित जी कहते है कि यजुर्वेद का ३९ वां अध्याय अन्त्येष्टि कर्म में विनियुक्त है। परन्तु कात्यायन श्रौत सूत्र २६ ७।४९ के अनुसार प्रथम से लेकर ४ थे मंत्र का विनियोग प्रवर्ग्य के भेदन में प्रायश्चित्त मे विनियुक्त है। और यह ४ था मंत्र पूर्णाहुति है। ५ वां मन्त्र कात्यायन २६ ७।५० के अनुसार महावीर संज्ञक यज्ञ पात्र के संभारण के लिये प्रायश्चित्त आहुति में विनि-युक्त है। ६ ठा मत्र भी इसी विषय मे विनियुक्त है। ७ वां मन्त्र चयन प्रकरण में अरण्य में छः मारुत पुरोडाशों को हवन करे, ऐसा विनियोग है। ८ वें से अध्याय समाप्ति पर्यन्त सारे मंत्र अश्वमेधिक हैं। यदि इनका अन्त्येष्टि में ही होना निश्चित था तो फिर ये मंत्र श्रौत सूत्र में इस प्रकार क्यों दूसरे अर्थ में विनियुक्त किये गये। अथर्ववेदीय अन्त्येष्टि सूत्र का उद्धरण देते हुए अपने लेखमें श्री पंडित जी कहते हैं कि अथर्व-वेद का १८ वां अध्याय सबका सब अन्त्येष्टि,

मृतक दाह तथा पितृयज्ञका वर्णन करने वाला है। क्या ये मन्त्र गृहशांति आदि में बोले जाने के योग्य हैं? इत्यादि। परन्तु इसी १८ वें काण्ड के जिसको पूराकापूरा पंडित जी अन्त्येष्टि आदि में ही मानते हैं, मन्त्रों को शुभ कार्यों में लगाया गया है। अथर्ववेद १८ ३ अनु ०।६१ वां मन्त्र से जात कर्म में जो उत्पन्न बालक का संस्कार है आशीवाद देना लिख गया है। आचार्य दयानन्द ने भी इसका ऐसा ही विनियोग किया है। आप अथर्व १८।३।१ के "इयं नारी पतिलोकं वृणाना" मन्त्र को अन्त्येष्टि में देते हैं इसी को स्वामी जी ने ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका में नियोग विषय में लगाया है। "उदीर्ष्वनार्यामजीवलोकम्" यह मन्त्र ऋ. १०।१८८ में भी है। इसका विनियोग ऋग्विधान नामक ग्रन्थ में नियोग में किया गया है। अथर्व १८ सूक्त २ का मन्त्र "स्योना पृथिवि" यजुर्वेद ३५।२१ में आया है जिसका विनियोग पारस्कर गृ. ३।२ में प्रस्तरारोहण में किया गया है। यही ३६ वें अध्याय में शांतिपाठ एवं प्रवर्ग्य में पठित है। अथर्व काण्ड १८ सूक्त २ का "अपागूहन्नमृताम्।" मन्त्र अन्त्येष्टिमें पढ़ा गया हैं संस्कार विधि में। परन्तु वही ऋग्वेद १०।१७।२ में आया है। और वहां अन्य ही तात्पर्य है। ऋ. १० सू० २०।१३ 'अपेतवीत' मंत्र संस्कार विधि में अन्त्येष्टि में पढ़ा गया है परन्तु यजुः १२।४५ में वही मंत्र आया है और वह पलाशकी शाखा से गार्हपत्याग्नि के व्यूहन में विनियुक्त है। यह ११ वां अध्याय अग्निचयन का है। इस विज्ञप्ति में आपने जो 'ये निखाता' आदि मन्त्रों को पितृमेध में विनियुक्त समझकर लगाया है वह भी आर्य समाज के सिद्धान्तों से संगति नहीं खाता क्योंकि आप मुर्दों को पितर मानते हैं। ऋषि दयानन्द जीवितों को पितर मानते हैं। जीवितों को पितर स्वीकार कर लेने पर आपकी सारी पितृमेध की प्रक्रिया ही उल्टी हो जाती है। फिर अन्त्येष्टि और मुर्दे पितरों के कर्म की कोई बात ही नहीं रह जाती। और ये मंत्र मंगल कार्यों में न बोले जावें यह असंगतता तो तब आपकी दृष्टि में है जब कि इनका विनोयोग मृत पितरों के कर्म में माना जावे। स्वामी जी महाराजने सारे यजुर्वेद के पितृ विषयक मन्त्रों को जीवित पितरों की सेवा आदि कार्यों में लगाया है। इसके अतिरिक्त स्वस्ति और शांति मन्त्रों का पाठ मंगल कार्यों की पूर्ति में किया जाता है। ऐसा ही विनियोग भी है परन्तु स्वामी जी ने अन्त्येष्टि के पश्चात् गृह शुद्धि के समय स्वस्ति और शांति के मन्त्रों के अन्त में 'स्वाहा' शब्द लगा कर आहुति देने को लिखा है! श्री पंडित जी का कहना है कि सब मंत्रों में 'स्वाहा' कहकर आहुति देना कहां तक संगत है। परन्तु ऋषि दयानन्द स्वयं ही बतला रहे हैं कि 'स्वाहा' शब्द स्वस्ति शांति के मन्त्रों में अन्त में लगाकर आहुति दी जावे। फिर दूसरे मन्त्रों में बिना देवता का उच्चारण किये आर्य समाजी विद्वान् यदि आहुति मन्त्रों में स्वाहा लगाकर देते हैं तो क्या बुरी बात हो गयी? श्रौत में विनियुक्त मन्त्रों का गृह्य कर्म में विनियोग होता है और मंत्रों के अन्त में हवन में 'स्वाहा' लगाना चाहिए इसको स्वयं सूत्र ग्रन्थ प्रतिपादित करते हैं। गृ. १।१।१६ में यह स्पष्ट ही लिखा है "स्वाहान्ता मंत्रा होमेषु"। इन पूर्वोक्त प्रमाणों से यह सिद्ध है कि अन्त्येष्टिके मन्त्र कोई ऐसे मन्त्र नहीं हैं कि वे सदा अन्त्येष्टि में ही विनियुक्त हों। उनका अन्य कार्यों में विनियोग भी होता है और वेदों के मंत्रों से यज्ञ करते समय बिना किसी भय और संदेह के बोले जा सकते हैं।

यज्ञ में देवता की समस्या

देवता विषयपर मैं एक निबंध लिख चुका हूँ

जो 'स्वाध्याय' में विस्तार से श्री स्वामी वेदानन्द जी महाराज द्वारा दिल्ली से छापा गया है। पाठक उसमें इस विषय को देख सकते हैं। यहां पर केवल संक्षेप में विचार किया जाता है। देवता भी विनियोग से बदल जाते हैं। यज्ञ में देवताके विषय में तो 'यथेच्छा' का प्रयोग किया गया है। अथवा प्रजापति ही यज्ञ मन्त्रों का देवता हो जाता है। निरुक्त में इस धारणा को पल्लवित किया गया है। दैवतकाण्ड में लोग देख सकते हैं। ऋषि दयानन्द ने ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका पृ. ३३५ (दयानन्दग्रन्थमाला) पर लिखा है कि "यज्ञ में तो वेदों के मन्त्र और ईश्वर को ही देवता माना है। अर्थात्—परन्तु मन्त्रेश्वरावेला याज्ञ दैवते भवत इति निश्चय.। इस प्रकार जब मंत्र और ईश्वर ही यज्ञ में देवता हैं तो चारों वेदों के यज्ञ में कोई आपत्ति नहीं रहती। सारे मन्त्रों से होने वाले यज्ञ के देवता वे मन्त्र और ईश्वर होंगे और उसी उद्देश्यमें यह यज्ञभी होगा। मीमांसक भी शब्द मात्र के देवता मानते हैं। आत्मविद् परमेश्वर को देवता मानते हैं। अतः ब्रह्म परायण यज्ञ का देवता स्वयं वेद मन्त्र और एक महान् देव परमेश्वर है। मैं पहले दिखला चुका हूं कि 'इषत्वोर्जे' का देवता किस प्रकार भिन्न भिन्न है। इस मंत्र का देवता शाखा है ऐसा सर्वानुक्रमणी ने माना है परन्तु जब यह मंत्र स्वस्ति प्रकरण में बोला जाता है तो 'शाखा' से क्या तात्पर्य निकल सकता है। वहां पर परमेश्वर ही देवता होना चाहिए। ऋषि दयानन्द ने तो यजुर्वेद के अध्यायों तक के मंत्रों का देवता सर्वानुक्रमणी के विरुद्ध लिखा है। क्या इसे कोई गलत कह सकता है ? नहीं तो फिर मानना पड़ेगा की देवता बदल सकते हैं।

ऋषि दयानन्द से पूर्व के आचार्यों ने भी ऐसा ही किया है। कभी कभी तो ऐसा हुआ है कि इस देवता वाले मन्त्र के यज्ञ में पर्याप्त न मिलने से दूसरे देवता वाले मन्त्रों को उसमें सम्मिलित कर लिया गया। निरुक्त १२।४० इसका प्रमाण है। ऋग्वेदीय 'ओमासश्चर्षणी धृतः' इस ऋग्वेदीय १।३।७ मन्त्र की व्याख्या पूर्वोक्त निरुक्त के स्थल पर की गई है। वहां पर यह मन्त्र 'विश्वेदेव' लोगों के सम्बन्ध में विनियुक्त है। इस विनियोग विषयक चर्चाका प्रारम्भ करते हुए यास्क लिखते हैं कि दाशतयी (ऋग्वेद में) सारी शाखाओं में एक गायत्री छन्द से युक्त ऋचा मिलती है, परन्तु यज्ञ में गायत्री छन्द से युक्त कई ऋचाओं की आवश्यकता है ऐसी अवस्था में क्या करना चाहिए ? इसका समाधान करते हैं कि जो भी बहु देवताओं से युक्त गायत्री छन्द से युक्त मन्त्र समूह है वह विश्वदेवके स्थान में प्रयुक्त हो सकता है। शाकपूणि आचार्य कहते हैं कि उचित यह है कि विश्वदेव शब्दोपेत मन्त्र समूह या सूक्त विश्वदेवों के स्थान पर प्रयुक्त किये जा सकते हैं न कि बहु देवताओं वाले मन्त्र मात्र। इस पर यास्क कहते हैं कि यह शाकपूणिका मत अनैकान्तिक है। क्योंकि क्रियार्थ गायत्री छन्द वाला विश्वदेव देवता वाला ही मन्त्र प्रयुक्त हो सकता है। उसी प्रकार के मन्त्रों से यज्ञ का प्रयोजन है परंन्तु ऐसे मन्त्र पाये थोड़े जाते हैं। कर्म का परित्याग करना उचित नहीं अतः बहु देवता वाले गायत्री मन्त्रों से विश्वदेव सम्बन्धी कार्यों को चला लेना चाहिये। भूतांश काश्यप ऋषिने अश्विनियों के लिंग से युक्त अनेक ऋचाओं वाले सूक्त (ऋ १०।१०६) का साक्षात् किया। जिनमें यह लिंग नहीं है उन ऋचाओं का भी अश्विनी देवताकत्व ही उसने माना है। अभितष्टीय सूक्त (ऋ ३।३८) में भी एक ही ऋक इन्द्र देवता के चिन्हवाली है परन्तु सारा सूक्त तदर्थ में ही विनियुक्त किया जाता है। इसी प्रकार की योजना पूर्वोक्त ढग से वैश्वदेव कर्म में भी करनी चाहिये। जब इस

प्रकार मन्त्रों का विनियोग अन्य देवता वाले यज्ञ में उसके स्थान में किया जा सकता है और सारे मन्त्रों का परमात्मा एवं वे मन्त्र स्वयं देवता हैं तो फिर ब्रह्म परायण अथवा वेदों के मन्त्रों से अन्य उपयोगी यज्ञ करने में क्या दोष? लोग कहते हैं कि इसका विधान कहीं लिखा नहीं परंतु उन्हें समझना चाहिए कि 'विश्वदेव' के स्थान में बहु देवता वाले मन्त्र लेकर यज्ञ कर दिया जावे इसका विधान किस जगह पर है जिसे देखकर यास्कने ऐसा कर दिया? इसी प्रकार युक्तियुक्त, संगत और सत्यभूत कल्याणकारी बातों को विचार कर करने में कहीं न लिखा रहते भी कोई आपत्ति नहीं। देवता की प्रक्रिया इस भाग में बाधक नहीं। चूंकि मन्त्र अनेक देवताओं और अर्थों वाले हैं यज्ञ में ईश्वर या मन्त्र को देवता माना जाता है, साथ ही श्रौत मन्त्रों का विनियोग उनसे अतिरिक्त कर्मों में भी किया जाता है। अतः राजसूय, विश्वजिति आदि के मन्त्रों को भी बोल कर वेद परायण यज्ञ करने में कोई हानि नहीं दीखती। प्रतिज्ञा भंग भी नहीं होता।

यजुर्वेद के ४० वें अध्याय के मन्त्रों का विनियोग यज्ञ में नहीं किया जा सकता यह भी कोई सिद्धान्त भूत बात नहीं। आचार्य दयानन्द ने दैनिक अग्निहोत्र में "अग्ने नय सुपथा राये" इस मन्त्र से आहुति देने को लिखा है। उन्होंने इस मन्त्र का हवाला भी यजुः ४०।१६ दिया है। फिर यह कैसे कहा जा सकता है कि उन मन्त्रों का विनियोग कर्मकाण्ड में करना उचित नहीं।

एक विचित्र समस्या

श्रीमान् पं० जी ने एक सूचना शीर्षक से अपने लेख में सुझाव उपस्थित किये हैं। उसमें वे यह कहते हैं "चारों वेदों के कुल २०,६०० मन्त्र हैं। इनमें से पुनरुक्त मन्त्र पृथक् किये जावें तो १६००० मन्त्र रहेंगे। इन मन्त्रों को विषय वार छांटा जावे। धन प्राप्ति, गृहसौख्य, पुत्र लाभ, राज्यलाभ, वैभव संवर्धन, यशः प्राप्ति, वर्चः साधन, राज्यवर्धन, विश्वशांति, समाज-शांति, दुष्टों के उपद्रव का शमन, स्त्री सौख्य, व्यापार संवर्धन, राष्ट्र वैभव वृद्धि, आदि अनेक विषयों के शीर्षकों के नीचे ये मन्त्र अर्थानुसार रखे जायं। इस तरह विषयवार वर्गीकृत मन्त्रों की पुस्तक शीघ्र प्रकाशित की जाय जो जिसकी इच्छा हो वह अपने योग्य प्रकरण के मन्त्र चुने और उनसे हवन करे और लाभ उठावें।"

प० जी के ये सुझाव उनके पूर्वोक्त वक्तव्य की बातों के अनुकूल नहीं पड़ते। यद्यपि इनकी विषय की दृष्टि से उपयोगिता ठीक ही है। प्रथम बात यह है कि पण्डित जी वेद मन्त्रों में पुनरुक्ति मानते हैं। ऐसा न पूर्वकालिक सिद्धांत ग्रन्थों में ही कोई प्रमाण मिलता है और न इस बात को कोई आर्य विद्वान मानता ही है। जब आर्यसमाज के विद्वान् वेदमन्त्रों की पुनरुक्ति स्वीकार ही नहीं करते तो फिर पंडितजी का उनके साथ समन्वय कैसे बैठेगा? दूसरी आपत्ति पं० जी की योजना के मानने में यह पड़ेगी कि वह उनकी ही प्रक्रिया के प्रतिकूल बात है। एक ओर तो वे यह कहते हैं कि चारों वेदों के मन्त्रों से यज्ञ किया जावे इस विषय में श्रौतसूत्रों, ब्राह्मण ग्रन्थों और मीमांसा आदि का कोई प्रमाण नहीं मिलता। बिना प्रमाण के ऐसा कैसे किया जावे? और दूसरी ओर नये शीर्षकों से मंत्र रखकर नये यज्ञों की रचना भी करने का विचार उपस्थित करते हैं। दोनों की संगति किस प्रकार है? यदि ब्रह्म पारायण इस लिये अमान्य है और अकरणीय है कि उसका किसी श्रौतसूत्र और ब्राह्मण में करने का विधान नहीं तो फिर आप के ये मंत्र छांट कर बनाये गये यज्ञ कैसे प्रामाणिक और करने योग्य होंगे? यह भी बहुत ही विचारणीय है।

यदि इनकी प्रमाणिकता है तो ब्रह्म पारायणने क्या अपराध किया है ?

चारों वेदों के मन्त्रों से यज्ञ के विषय में प्रमाण

ऊपर जैसा बतलाया गया उस के अनुसार चारों वेदों के मन्त्रों से यज्ञ हो सकता है। अब थोड़े से इस विषय में प्रमाण दिये जाते हैं श्री प० धर्मदेव जी विद्यावाचस्पति ने भी बहुत से प्रमाण इस विषय में एकत्र किये हैं। ऋग्वेद ४।५८३ का मन्त्र "चत्वारि शृ गा।" निरुक्त १३।७ में और गोपथ ब्राह्मण में यज्ञ परक लगाया गया है। वहा चारों वेदों को यज्ञ का सींग कहा गया है। ऋग्वेद ८।१९।५ य समिधा य आहुती यो वेदेन ददाश मर्तोमर्तो अग्नये। यो नमसा स्वध्वर "मन्त्र में 'वेदेन" पद पढा है। जिससे यह अर्थ समूचे मन्त्र का होता है कि जो मनुष्य समिधाओं, आहुति और वेद मन्त्रों से अग्नि का परिचरण करता है इसे ऋग ८।१९।६ मे कथित शीघ्रगामी अश्व आदि प्रकाशमान कीर्ति, अपने द्वारा किये जाने वाले अथवा अन्य के कुसर्गों से प्राप्त होने वाले दोष नहीं छूते। मन्त्र इस प्रकार है। तस्येदर्वन्तो रंहयन्त आशवस्तस्य द्युम्नितम यशः। न तम हो देवकृत कुतश्चन न मर्त्यकृतं नशत्। इसपर ऋग्वेदीय कल्पद्रुम कत्ताने ऐसा भाव व्यक्त किया है। अत पापक्षय कामेनापि सहिता होमो विधेय इति यावत् सांख्यायन गृह्यसूत्र ४।५।६५ मे दर्शाया गया है कि अक्षत सक्तूना धानाना च दधिघृतमिश्राणा प्रत्यृच वेदेन जुहुयात्।। अर्थात् वेदकी प्रत्येक ऋचा से सूक्त धान आदि की आहुति देवे। ऐसे अनेक प्रमाण भी मिलते हैं। ग्रन्थों को देखने से और भी प्रमाण इस विषय में मिल सकते। विद्वानों को इसपर अवश्य विचार करना चाहिये। श्री प० सातवलेकर जीने लोगों के ध्यान को जो इस ओर आकृष्ट किया है यह बहुत अच्छा कार्य किया है। यदि विद्वान् विचार करेंगे तो इससे अच्छा ही परिणाम निकलेगा। मैंने सक्षेप में ये विचार रखे हैं। समयाभाव के कारण अधिक लिखना सभव नहीं।

सौर पञ्चांग में भूल और उसका संशोधन

(लेखक—श्री प० गगाप्रसाद जी एम० ए० कार्य-निवृत्त मुख्य न्य धीश-जयपुर)

सब लोग जानते हैं कि भारतवर्ष में प्राचीन काल से दो पचाग चालू हैं एक सौर दूसरा चान्द्र द में विक्रम संवत् माना जाता है, और दोनों में १२ मास होते हैं जिनके नाम भी समान हैं। सौर पंचांग में ३६५ दिन होते हैं पर हर चौथे वर्ष एक दिन बढ़कर ३६६ दिन हो जाते हैं, जैसा कि यौरपीय कलडर में फरवरी में २८ के स्थान में २९ दिन होते हैं। इस प्रकार सौर वर्ष ३६५¼ दिन का होता है।

(२) चान्द्र वर्ष में ३५५ दिन हैं, क्योंकि चन्द्रमा २९½ दिन में पृथ्वी की परिक्रमा करता है। १२ मास के ३५५ दिन हुए। दोनों वर्षों में

इस प्रकार १० दिन का अन्तर है। इसको दूर करने के लिये, हर तीसरे वर्ष एक चान्द्र मास बढ़ा दिया जाता है जिसको अधिमास कहते हैं। इससे ३ वर्ष की कमी पूरी हो जाती है, और ऋतुओं के क्रम में कुछ बाधा नहीं पड़ती। मुसलमान भी चान्द्र वर्ष को मानते हैं। पर वे कोई अधिमास नहीं मानते। इसलिये उनके ऋतुओं के काल मे महीनों का परिवर्तन होता रहता है, जैसे मुहर्रम का महीना कभी गर्मी के ऋतु में होता है कभी सर्दी ऋतु में, या वर्षा ऋतु में।

(३) ज्योतिष के अनुसार सौर वर्ष पूरे ३६५ दिन का नहीं, किन्तु ३६५ दिन ५ घंटे व ४८ मिनट का होता है। यह १२ मिनट का फर्क करीब १५५ वर्ष में १ दिन का हो जाता है। हमारे सौर पचांग में इस समय २१ दिन की भूल है। विषुवत् संक्रान्त १३ अप्रैल को होती है, जो २३ मार्च को आनी चाहिये क्योंकि विषुव उस समय होता है जब दिन व रात समान हों जैसा अमरकोष मे कहा है—"यत्र रात्रिन्दिवा साम्यं विषुवं विषुवत् तत्" अर्थात् जब रात व दिन समान हों उसको विषुव या विषुवत् कहते हैं। इसको अंगरेजी मे Equinox कहते हैं। यह २३ मार्च को होता है। इससे स्पष्ट है कि हमारे सौर 'चांग का २ या २॥ हजार वर्ष से शोधन नहीं हुआ जिस कारण २१ दिन का अन्तर होगया।

(४) यौरप के पंचांग में भी सोलवीं शताब्दी में १० दिन का अन्तर था। उस समय पोप ग्रेगरी Gregory ने जो स्वयं ज्योतिष का विद्वान था अक्तूबर मास मे १० दिन कम कर दिये अर्थात् ५ अक्तूबर के बाद १५ अक्तूबर माना गया।

हमारे पंचांग में भी चैत्र के मास में इसी प्रकार २१ दिन छोड़ देने से संशोधन हो सकता है। मैंने इस विषय को एक लेख के साथ सन् १९३३ में निर्वाण-अर्ध शताब्दी के अवसर पर सार्वदेशिक सभा में रक्खा था। धर्मार्य सभा ने देश के प्रमुख ज्योतिषियों के पास यह प्रस्ताव भेजा पर कुछ सफलता न हुई। इसके बाद मैंने एक लेख स्वराज्य हो जाने पर आर्य मित्र में भेजा जो ११।६।५० के अंक में प्रकाशित हुआ। उस लेख की एक प्रति श्री प्रधान आर्य प्रतिनिधि सभा उ० प्र० के द्वारा माननीय श्री सम्पूर्णानन्द जी की सेवा में भेजी गई जो प्रान्तीय सरकार में शिक्षा सदस्य हैं और जो स्वयं संस्कृत के तथा ज्योतिष के भी विद्वान् हैं। उक्त श्रीमान् ने अपने उत्तर में पूर्वोक्त संशोधन की उपयोगिता स्वीकार करते हुए अपनी सहानुभूति प्रकट की। श्रीमान् का पत्र आर्य मित्र के १६।१०।५० अंक में प्रकाशित हुआ है। गत १८।५।५२ को मैंने प्रधान जी को स्मरण पत्र भेज कर निवेदन किया है कि श्रीमान् शिक्षा सदस्य का ध्यान पूर्वोक्त विषय की ओर आकर्षित करें।

(५) भारतवर्ष में दोनों ही पंचांगों के चा रहने की आवश्यकता है। चान्द्र वर्ष साधारण जनता के लिये उपयोगी है क्योंकि चन्द्रमा के घटने बढ़ने से तिथि का ज्ञान हो जाता है। हमारे त्यौहार व पर्व भी बहुत से चान्द्र वर्ष की तिथियों के अनुसार होते हैं। परन्तु सरकारी व सार्वजनिक कार्यों के लिये सौर वर्ष अधिक उपयोगी है। उसका यौरुपीय कलंडर से मेल रहता है। हमारे हर मास का आरंभ अंगरेजी मास की १३ वा १४ ता० को होता है।

(६) गतवर्ष बम्बई आर्यसमाज के प्राचीन और सुप्रसिद्ध नेता स्वर्गीय श्री शूर जी वल्लभदास जी ने एक उत्तम दैनन्दिनी Diary प्रकाशित की। उसमें अनेक प्रकार की अन्य सर्वोपयोगी बातों के सिवाय एक विशेष प्रस्तावना दी गई है जिस में वैदिक सिद्धान्त व ज्योतिष के अनुसार सृष्टि के आरम्भ का समय देकर सृष्टि

संवत् की व्यवस्था की गई है, और चान्द्र मासों व तिथियों के साथ सौर मास व उनकी तिथियें भी दी गई हैं। हमारे सौर पंचांग में जो अशुद्धि है वह भी दिखलाई गई थी; और यह लिखा था—"श्रीयुत पं० गंगाप्रसाद जी ने यह विषय सार्वदेशिक सभा में रक्खा था, पर फल कुछ नहीं निकला। सन् १६३५ में स्व० पूज्य मालवीय जी की अध्यक्षता में जयपुर में ज्योतिष सम्मेलन हुआ था वह भी निष्फल रहा।" उक्त सम्मेलन जयपुर में नहीं किन्तु इन्दौर में हुआ था, और पूर्वोक्त भूल के संशोधन का प्रस्ताव मैंने ही पूज्य मालवीय जी के प्रोत्साहन से भेजा था। परन्तु लगभग सब उपस्थित ज्योतिषी पौराणिक विचारों के थे। प्रस्ताव गिर गया। स्व० श्री शूरजी वल्लभदास जी से मेरा पुराना परिचय था। उन्होंने कृपा पूर्वक अपनी दैनन्दिनी की एक प्रति मेरे पास भी भेजी थी। मेरे सम्बन्ध में जो ऊपर लिखा वाक्य है उसको देख कर मैंने पूरा वृत्तान्त जो इस लेख में आया है लिख कर भेजा है और ६।५।५१ के आर्यमित्र में भी प्रकाशित हुआ। आशा थी कि उनको मिल गया होगा। उसके थोड़े समय पीछे श्रीमान् शूर जी का स्वर्गवास हो गया। उक्त दैनन्दिनी का नया संस्करण अभी छपा और उसकी एक प्रति मेरे पास भी आई जो गत १६ ता० को मिली। मुझको यह देखकर आश्चर्य हुआ कि उस में भी प्रस्तावना में ऊपर लिखे शब्द छपे हुए है। इसलिये मैंने इस लेख को लिखना उचित समझा। मेरा श्री सम्पादक जी से निवेदन है कि जिस अंक में यह लेख प्रकाशित हो उसकी एक प्रति स्व० शूर जी के सुपुत्र श्री प्रतापसिंह जी शूर वल्लभदास जी के पास बम्बई अवश्य भेज देवें। मैं पत्र द्वारा भी उनको इसकी सूचना दूंगा।

(७) स्वराज्य हो जाने से हिन्दी (वा आर्य-भाषा) हमारी राष्ट्र भाषा हो गई, और उसका प्रचार भी धीरे धीरे बढ़ रहा है। काल गणना का भी उससे घनिष्ठ सम्बन्ध है। सरकार को चाहिये कि अंगरेजी कलंडर का व्यवहार छोड़कर सौर पंचांग के साथ विक्रम संवत् का सब सरकारी विभागों में उपयोग करें। सरकार से इस विषय मे अनुरोध करने से पहले यह भी आवश्यक है कि भारतीय लोग अपने सब कार्यों में विक्रम संवत् व सौर वा चान्द्र पंचांग का प्रयोग करे, अभी तक हमारे देश के बहुत से लोग ईसवी सन् व अंगरेजी तारीखों का ही बहुधा प्रयोग करते है

जयपुर
गंगा प्रसाद
(पूर्व प्रधान सार्वदेशिक आर्य प्र० सभा)

दार्शनिक चर्चा

मायावादियों की माया

(लेखक—श्री शिव स्वामी जी सरस्वती, संभल, जिला मुरादाबाद)

इन मायावादियों ने ब्रह्म को एक प्रकार का मन गढ़न्त खिलौना बना रक्खा है—जैसी इच्छा हुई वैसा गढ़ लिया! एक स्थल पर कहते हैं कि—"१—शब्दश्चोभयमपि ब्रह्मणः प्रतिपादयति कृत्स्न प्रसक्ति निरवयवत्वंच"। अर्थात् श्रुति समस्त ब्रह्म का कार्य रूप में (२।२।२७। पृ० १०७०। शंकर। परिणाम और निरवयवत्व दोनों का प्रतिपादन करती है। पृ० १०७०।

इसके विरुद्ध

२—न तावत् कृत्स्नप्रसक्तिः। कुतः? श्रुतेः। यथैव ब्रह्मणो जगदुत्पत्तिः श्रूयते, एवं विकार-व्यतिरेकेणाऽपि ब्रह्मणोऽवस्थानं श्रूयते॥

अर्थात् क्योंकि हमारे पक्ष मे सम्पूर्ण ब्रह्म की (२।१।२८। पृ० १०७६) कार्य रूप में परिणत होने की नौबत नहीं आती। किससे? श्रुति से। जिस प्रकार जगत् की उत्पत्ति श्रुति में कही गई है, उसी प्रकार से भिन्न रूप से ब्रह्म की उपस्थिति श्रुति में कही है। पृ० १०७६॥

दोनों प्रकार से सिद्धांत-हानि है—यदि ब्रह्म का एक अंश परिणत होता है तो ब्रह्म का निरवयवत्व कैसे मानोगे? और यदि सम्पूर्ण ब्रह्म जगद् रूप में परिणत हो गया तो ब्रह्म से हाथ धो बैठिये?

इस पर टीकाकार पृष्ठ १०७३। पर 'कृत्स्नप्रसक्ति निरवयवत्वं शब्दकोपेवा।२।१।२६। सूत्र के सिद्धांत में लिखते हैं—'इस परिणाम के वास्तविक न होने से ब्रह्म सम्पूर्ण रूप से परिणत होता है या एक देश से इत्यादि विकल्प का अवसर ही नहीं है।' 'इन्द्रो मायाभिः पुरुरूप ईयते'। माया द्वारा ब्रह्म का बहुरूप में परिणत हो जाना बताया गया है। प्रश्न यह है कि मायावादी माया को जगद् रूप में परिणत मानते हैं, अथवा माया के प्रभाव—बल से ब्रह्म में परिणाम मानते हैं?

यदि माया—प्रकृति का परिणाम जगत् है तो माया तो उनके मत में अवस्तु है। देखो—'अवस्तुत्वात्'।२।१।६। पर शंकर। पृ० ६७५। क्योंकि माया जब अवस्तु है अवस्तु से वस्तुरूप जगत् किस प्रकार उत्पन्न हो सकता है? शंकर जी स्वयं कहते हैं—'नहि दध्यर्थिभिर्मृत्तिकोपादीयते' न घटार्थिभिः क्षीरम्।' अथात्—दधि की इच्छा वाले मृत्तिकाग्रहण नहीं करते, (२।१।१८। पृ० १०३५) और घट की इच्छा वाले दूध ग्रहण नहीं करते।

और भी—'यच्च यदात्मना न वर्तते न च तत्तत उत्पद्यते। यथा सिकताभ्यस्तैलम्'। २।१।१६। पृ० १०३०।

अर्थात्—जो वस्तु जहां नहीं होगी वह वहां नहीं मिल सकती, जैसे बालु से तेल नहीं प्राप्त हो सकता' इसके विरुद्ध मायावादी कहते हैं—

माया ह्येषा मया सृष्टा, यन्मां पश्यसि नारद !
सर्वभूत गुणैर्युक्तं, नैवं ज्ञातुमर्हसि ॥

अर्थात्—हे नारद ? मैंने यह माया रची है, जो तुम मुझे सर्वभूत गुणों से युक्त देखते हो। इसको वास्तविक रूप समझना तुम्हारे लिये उचित नहीं है। शंकर। पृ० १५७२।

फिर तो सांख्यकार ठीक ही कहते हैं कि— 'नावस्तुनोवस्तुसिद्धिः'। अवस्तु से वस्तु नहीं प्राप्त हो सकती।

विचित्र गोरखधन्धा है ? एक स्थल पर शंकर जी कहते हैं—

'प्रसिद्धोऽपि हि सन्नात्मा विशेषेण विकारात्मना परिणमयामासाऽऽत्मानमिति'। १।४।२७ पृ० ६१२। शंकर।

अर्थात्—आत्मा यद्यपि पूर्व सिद्ध है, तो भी उसने अपने को विशेष विकार रूप से परिणत किया। इसके विरुद्ध भी देखिए—

'अविकार्यः अयम्। यथा क्षीरं दध्यातं च नादिना विकारी न तथा अयमात्मा ॥—गीता— २।२५। पृ० ५० शंकर।'

अर्थात्—यह आत्मा अविकारी है, जिस प्रकार दूध जामन लगने से विकारी हो जाता है दही बन जाता है, वैसे ब्रह्म विकारी नहीं होता।

ब्रह्म कारण और कार्यरूप

१—भिद्यते हृदयग्रन्थिः ··· ··· क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन्दृष्टे परावरे। मुण्डक। २।२।८ वे० सू० ८।१।१३। पर शंकर जी पृ० २३६६ ॥

अर्थात्—'पर' ब्रह्म का कारण स्वरूप, 'अवर' ब्रह्म का कार्य स्वरूप प्रश्नः—कि तु ब्रह्मणी ? उत्तरम्—कारणम् तु। एतद् वै सत्यकाम परं चापरं ब्रह्म यदोंकारः। प्रश्न ५— ५ २।। किंपुनः परं ब्रह्म किमपरमिति ? उच्यते यत्राविद्याकृतनामरूपादि विशेष प्रतिषेधादस्थूलादि शब्दैर्ब्रह्मोपदिश्यते तत् परम्। तदेव तत्र नामरूपादि विशेषेण केनचिद् विशिष्टमुपासनायोपदिश्यते मनोमयः प्राणशरीरो भारूपः ॥ (छा० ५०) ३।१४।२। इत्यादि शब्दैस्तदपरम् ॥ ८।३।१४। पृ० २५०२ ॥ पर शंकर जी ॥

आशय यह है कि—जहां पर नाम रूप से रहित—प्रकट ब्रह्म का उपदेश होगा, वह 'पर' ब्रह्म होगा और जहां नामरूप सहित—उपासना ब्रह्म का उपदेश होगा वह 'अपर' ब्रह्म कहावेगा। इस कथन से स्पष्ट हो गया कि ब्रह्म ही विकारी होकर जगदाकार बना। माया का कोई सम्बन्ध ब्रह्म से न रहा।

अन्यत्र भी—'तस्मादपि प्राणानां ब्रह्म विकारत्व सिद्धिः' २।४।४। पृ० (१५५५)

अर्थात्—इससे भी प्राण ब्रह्म के विकार हैं, ऐसा सिद्ध होता है।

'तेजोबन्नानां ब्रह्म विकारत्वात्' रत्नप्रभा-व्याख्या, पृ० १५५५ ॥

अर्थात्—तेज, जल और अन्न ब्रह्म के विकार हैं ॥

दो प्रकार का ब्रह्म लिख कर, आगे इसके विरुद्ध लिखते हैं—

(१) नाप्युभयलक्षणमेव

ब्रह्मेति शक्यं वक्तुम् ॥ पृ० १७८१ ॥

(२) न, एकस्यानेकस्वभावकत्वानुपपत्तेः। पृ० १७२१ ॥

अर्थात्—ब्रह्म को दो लक्षण—विरुद्ध लक्षण वाला नहीं कह सकते। क्योंकि जो एक है वह अनेक स्वभाव वाला नहीं हो सकता ॥

न स्थानतोऽपि परस्योभयलिंगं सर्वत्र हि ॥

वे० सू० ३ । २ । ११ । पृ० १७५६ ॥

अर्थ:—परस्य—ब्रह्मणः उभयलिंगम्—सविशेषं निर्विशेषं रूपोभयस्वभावकत्वं न ।

यतो नेदं शास्त्रं प्रतिपाद्यत्वेन ब्रह्मणो रूपद्वयं निर्दर्शयति, लोकप्रसिद्धं त्विदं रूपद्वयं ब्रह्मणि कल्पितं परामृशति ॥ ३ । २ । २२ । पृ० १८०५ ॥

अर्थात्—क्योंकि यह शास्त्र ब्रह्म के रूपों का प्रतिपाद्य रूप से निर्देश नहीं करता किंतु लोक प्रसिद्ध जो यह दो रूप ब्रह्म में कल्पित हैं, उनका प्रतिषेध (खण्डन) है। ऐसा दिखलाने के लिए और शुद्ध ब्रह्म स्वरूप का प्रतिपादन करने के लिए परामर्श करता है। पृ० १८०५।

(३) न च ब्रह्मणोऽनेकाकारयोगोऽस्ति एकलिंगत्वावधारणात् । ३ । ८ । ५२ । पर पृ० २२१६

अर्थात्—ब्रह्म के अनेक आकार नहीं हो सकते। क्योंकि उसका एक ही स्वरूप निश्चय किया गया है।

(४) प्रतिषिद्धं हि ब्रह्मणेऽनेकाकारत्वम् । ४ । ४ । ६ । पर पृ० २५२४॥

अर्थात्—ब्रह्म के अनेक आकार होने का निषेध किया है।

(५) न अनेकात्मकब्रह्मकल्पनावकाशोऽस्ति । २ । १ । १४ । पर पृ० १०१७

अर्थात्—अतः अनेक स्वरूप वाले ब्रह्म की कल्पना के लिए अवकाश नहीं है।

ब्रह्म असत् है—

१—'असत्'—अव्याकृतमेव न शून्यमित्यादि ॥ रत्नप्रभा व्याख्या २ ।१।१७ पर पृ०

अर्थात्—'असत्' अव्याकृत को कहते हैं शून्य को नहीं।

२—नाम्रममत्यन्ता भिप्रायेण प्रागुत्पत्तेः कार्यस्याऽसद् व्यपदेशः । किंतर्हि ? अतएव कार्यस्य कारणरूपेणाऽनन्यस्य । पृ० १०३३। पर शंकर जी । सूत्र २।१।१७।

अर्थात्—नहीं, क्योंकि उत्पत्ति के पूर्व में कार्य का जो असद्रूप से अभिधान है, वह अत्यन्त असत्त्व—अत्यन्ताभाव के अभिप्राय से नहीं है। तब किस अभिप्राय से है ? व्याकृत नामत्व रूप धर्म से अव्याकृत नाम रूपत्व धर्म भिन्न है, उस भिन्न धर्म से उत्पत्ति के पूर्व कारण रूप से अभिन्न सत् कार्य असत् कहा गया है।

ब्रह्म को असत् नहीं जानना

१—असन्नेव स भवति असद् ब्रह्मेति वेद चेत्। अस्ति ब्रह्मेति चेत् वेद सन्तमेनं ततो विदुः। तै० २।६। (यहां 'असत्' का तात्पर्य अभाव का है)

कारण से कार्य भिन्न नहीं—

श्री शङ्कर जी ने कारण और कार्य एक ही हैं—कारण से कार्य भिन्न नहीं है, इसको अपने भाष्य में बहुत बार दुहराया है। यथा—

१—नामधेयं विकारोऽयं वाचा केवलमुच्यते। वस्तुतः कारणाद् भिन्नो नास्ति तस्मान्मृषैव सः ॥ कारणं कार्याद् भिन्न सत्ताकं नकार्याद् न कार्यं कारणाद् भिन्नम् ॥ रत्न प्रभाव्याख्या, पृ० २६०।पर॥

अर्थात्—कारण और कार्य कथन मात्र भिन्न भिन्न हैं वस्तुतः एक ही हैं। कारण कार्य से भिन्न सत्ताक है,—कार्य से कारण भिन्न है, परन्तु कार्य कारण से भिन्न नहीं है।

आशय यह है कि मृत्तिका और घट एक ही है,—कहने मात्र से दो हैं। इसी प्रकार सुवर्ण और आभूषण भी एक ही हैं। परन्तु इतनी विशेषता है कि—उपादान कारण जो ब्रह्म है, वह और

कार्य जगत् एक ही हैं, परन्तु फिर भी जगत् रूपकार्य से कारण रूप ब्रह्म भिन्न है! कार्यरूप जगत् के दर्शन से ब्रह्म का दर्शन नहीं माना जा सकता-ब्रह्म के दर्शन से ही मोक्ष प्राप्ति हो सकती है, जगत् के दर्शन से नहीं।

२—अन्यनन्यत्वेऽपि कार्यकारणयोः कार्यस्य कारणात्मत्व नतु कारणस्य कार्यात्मत्वम्।

पृ ६७४ पर शंकर।

अर्थात्—कार्यकारण अनन्य होने पर भी कार्य कारणात्मक है परन्तु कारण कार्यात्मक नहीं। वे० सू०--आरम्भण शब्दादिभ्यः।२।१ १४। पर शङ्कर जी।

(ब्रह्म जगद् रूप है, जगद् ब्रह्म रूप नहीं)

जब कि यह लोक में देखा जाता है कि जो रूप गन्धादि गुण मृत्तिका के हैं वही रूप गन्धादि घट मे भी पाये जाते हैं। इसी प्रकार जो वर्ण और रूपादि सुवर्ण में पाये जाते हैं, वही वर्ण और रूपादि गुण उससे बने रुचक आभूषणादि मे देखे जाते हैं। इसी प्रकार ब्रह्म-कारण के गुण-चेतनादि जगत् में भी पाये जाने चाहियें। परन्तु ऐसा नहीं देखा जाता। हाँ प्रकृति के जड़त्वादि गुण अवश्य जगत् मे पाये जाते हैं, अत. यह निश्चय होता है कि जगत् का उपादान कारण जड़ प्रकृति है न कि चेतना ब्रह्म। "कारणगुणपूर्वकः कार्ये गुणो दृष्टः।" सिद्धान्त नितान्त सत्य है, ब्रह्म से वैलक्षण्ययुक्त जगत् उत्पन्न होता है, इस विषय की पूर्ण आलोचना, 'माया' की आलोचना करते समय की जायगी।

माया वस्तु है, अथवा अवस्तु या दोनों से पृथक्, इसकी आलोचना आगे होगी, एक यह भी प्रश्न है कि अपने में क्रिया हो सकती है? अर्थात् यथा ब्रह्म अपने आप में क्रिया—परिवर्तन कर सकता है?

इस प्रश्न का उत्तर श्री शंकर जी स्वयं देते हैं—

१—स्वात्मनि क्रिया विरोधादेव।३।३।५४ पर पृ० २११४॥

अर्थात्—अपने में क्रिया का विरोध होने से ही।

२—आत्माहि ब्रह्म स्वात्मनि च क्रिया विरोधात्।

अर्थात्—आत्मा ही स्वयं ब्रह्म है, और अपने आप में क्रिया का विरोध है।

३—स्वात्मनि क्रिया विरोधादेव।पृ०१२६४॥

४—स्वस्यैव गुणत्वं गुणित्वं च विरुद्धम्।

२।२।८५। पृ० १३५६॥

अर्थात् स्वयं ही गुण हो और स्वयं गुणी, यह विरोध है।

५—शुद्ध ब्रह्मणोऽकारणत्वमिष्टमेव विशिष्टस्य ईश्वरस्य तुमावैव सहाय इति भावेनाह॥ २।२।२८। पर रत्नप्रभा व्याख्या। पृ० १०६६॥

अर्थात्—अविद्या की शक्तियां ही कार्यकारण की—कार्यक्रम की व्यवस्थापिका है, शुद्ध ब्रह्म नहीं।

इस प्रमाण पञ्चक से तो यही सिद्ध होता है कि ब्रह्म उपादान कारण नहीं है। फिर मृत्तिका और सुवर्ण घट और रुचक के उपादान कारण के समान ब्रह्म भी जगत् का उपादान कारण है, इसका बाध हुआ वा नहीं? यह नियम है कि कार्य अपने कारण ही में लय होता है। अतः यह जड़ जगत् जड़ प्रकृति में ही लीन होता है। श्री शंकर जी स्वयं कहते हैं—

"यस्य हि यत उत्पत्तिस्तस्यतत्र प्रलयो न्यायो मृदीवशरावस्य।" ८२।१। पर। पृ० २३६५॥

अर्थात्—जिसकी जिससे उत्पत्ति होती है, वह उसी में मिल जाता है, जैसे मिट्टी में शरावो।

जगत्प्रतिष्ठा देवर्षे!, पृथिव्यस्तु प्रलीयते,

ज्योतिष्यापः प्रलीयन्ते, ज्योतिर्वायौ प्रलीयते।
वायुः प्रलीयतेऽव्योम्नि तच्चाऽव्यक्ते प्रलीयते ॥
पृ० १४७४ ॥

अर्थात् - जगत् के पदार्थ पृथिवी में लय होते हैं, पृथिवी जल में लय होती है, अग्नि में जल लय को प्राप्त होते हैं, अग्नि वायु में विलीन होती है, वायु आकाश में और आकाश अव्यक्त में विलीन हो जाता है।

अव्यक्त किसको कहते हैं ?

प्रश्न—तद्धेदं तर्ह्यव्याकृतमासीत् !
व० उ० ।१।८ ७ ॥

उत्तर—इति इदमेव व्याकृत नामरूप विभिन्नं जगत् प्रागवस्थायां परित्यक्तव्याकृतनामरूपं बीजशक्त्यवस्थमव्यक्तशब्दयोग्यं दर्शयति ॥ १।१।३। पर शंकर जी। पृ० ७८८।

अविद्यात्मिका हि बीज शक्तिरव्यक्त शब्द निर्देश्या परमेश्वराश्रया मायामयी महासुषुप्ति यस्यां स्वरूप प्रतिबोध रहिताः शेरते संसारिणो जीवाः तदेतदव्यक्तं क्वचिदाकाशशब्द निर्दिष्टम्।
पृ० ७९०।

अर्थात्—अविद्यारूप यह बीज शक्ति अव्यक्त रूप से कही जाती है। परमेश्वर के आश्रित रहती है। मायामयी एवं महासुषुप्ति है, जिसमें स्वरूप के ज्ञान से रहित संसारी जीव सोते हैं। यह अव्यक्त कही जाती है, इसको 'आकाश' शब्द से पुकारा जाता है। पृ० ७९०।

इस उपर्युक्त कथन से अनेक परिणाम व्यक्त होते हैं—

(१)—इसका नाम अविद्या भी है। (२) यह ब्रह्म से भिन्न है। (३) मूल कारण है, (४) ईश्वर से भिन्न है। (५) जड़ है। (६) संसारीजीव महाप्रलय में भी बने रहते हैं, एवं ब्रह्म से भिन्न है। (७) इसको जड़ आकाश भी कहते हैं।

इस उपर्युक्त कथन से इस सिद्धान्त का भान होता है—

"ब्रह्माश्रितस्य जगतः पुनः स्वात्मन्येवोपसंहार कथनम्। यथाद्भिरिव चतुर्विधस्य भूतग्रामस्य।"
२।१।१। पृ० ३९३।

अर्थात्—यह सारा फैला हुआ जगत् पुन. ब्रह्म मे ही लय हो जाता है—ब्रह्म में ही उपसंहार होता है, जिस प्रकार चारों प्रकार के तत्त्व पृथिवी में लय हो जाते हैं—पृथिवी रूप हो जाते हैं।

प्रश्न—कथ पुनः पूर्वं सिद्धस्य सतः कर्तृत्वेन व्यवस्थितस्य क्रियमाणत्वं शक्यं संपादयितुम् ?
।१।४।२६। पृ० ३११ ॥ पर

अर्थात्—पूर्वसिद्ध—नित्य एवं कर्तारूप से व्यवस्थित पदार्थ क्रिया का विषय कैसे बनाया जा सकता है ?

उत्तर—परिणाम से, हम ऐसा कहते हैं।

इन वचनों से सिद्ध हुआ कि ब्रह्म का परिणाम ही यह जगत् है। अव्याकृत होने से पूर्व संसारी जीव ब्रह्म से पृथक् कैसे सो रहे थे ? क्या दोनों और ब्रह्म का आधार आधेय सम्बन्ध था ? फिर—"प्रजापतिर्वा इदमग्र आसीत्। स आत्मानमैक्षत।" का ताल मेल कैसे मिलेगा ? जब प्रलय अवस्था मे केवल ब्रह्म ही था, तो संसारी जीव ब्रह्म मे कहां से सोते रहे ? इससे द्वैत सिद्ध है। यदि मायोपाधि से जीव थे, तत्वतः नहीं ? तो दोष दुर्निवार्य है—यह माया थी, जो ब्रह्माश्रित रहती है। यदि कहो कि माया भी अवस्तु है—तो अवस्तु ने ब्रह्म को जीव क्यों बना रक्खा है। नाऽवस्तुनोवस्तु सिद्धिः। के अनुसार अवस्तु से किसी वस्तु की सिद्धि नहीं हो सकती। विशेष आलोचना 'माया' शब्द की व्याख्या के समय की जायगी। शेष आगे ॥

शिवस्वामी आचार्य

संस्कृत-विद्याया उन्नतेः

प्रसारस्य चोपायाः

लेखकः देहलीनगरस्थ-मिर्मैला-महाविद्यालय-संस्कृताध्यक्षो देहली-विश्वविद्यालयोपाध्याय·
श्री-साधुरामः, एम० ए०

भूमिका

परिष्कृता निर्दोषा च भाषा संस्कृतमुच्यते। "संस्कृतं नाम दैवी वागन्वाख्याता महर्षिभिः।" संस्कृते परिष्करणं नैर्दोष्यं च कथं जातम्? इत्येष प्रश्नो रुचिकरस्तदर्थं निरुक्त-व्याकरणादीनामध्ययनं चानिवार्यम्। शब्दार्थयोः कः संबन्धो, ध्वनिभावयोश्च किं सामञ्जस्यं, शब्द-निर्माणे वस्तूनां बाह्याभ्यन्तर-गुणानां समावेशश्च कथं स्याद्—इति सर्वमेतत् संस्कृतस्य गहनाध्ययनेनैव ज्ञातुं शक्यते।

पुरा किल पाश्चात्यैः संस्कृतज्ञैः संस्कृतं सर्वेषां हिन्द-यूरोपीय-भाषाणां जननीति निर्धारितम्। कालानन्तरं भाषाणां तुलनात्मकाध्ययनेन भाषा-विज्ञानिभिर् 'न संस्कृतमासां भाषाणां जननी, अपितु ज्येष्ठा भगिनीति प्रस्तुतम्। संस्कृतस्य चान्य-हिन्द-यूरोपीय-भाषाणां च काचिद् अन-वशिष्ट-चिह्ना जरठा जननी चिरात्लोपं गतेति' मतं च कल्पितम्। मतमिदं न केषांचिद् भारत-विदुषामभिमतम्। तैस्तु मतस्यास्य निरसने भाषा-विज्ञान-मर्मैः प्रबलैः प्रमाणैः प्रयतितव्यम्।

संस्कृतं [illegible] जननीति तु निर्विवादं सत्यं, परमनेन [illegible] [illegible] विशेषेण भाषास्वपि [illegible] पर्याप्तः प्रसार इत्यत्रापि न संदेहः। तेलुगु-मलया-लम-कन्नडी-प्रभृतीनां दाक्षिणात्यभाषाणां संस्कृत-मेवाधारभूतम्। इण्डोनेशीय-भाषायां संस्कृत-शब्दानां परिभाषाणां च चत्वारिंशत्-प्रतिशतं समावेशः। मलाया-स्याम-यव-बालि-प्रभृति-द्वीपोप-द्वीपानां भाषास्वपि संस्कृत-संस्कृतोद्भव-शब्दानां प्राचुर्यमिति विदुषां नागोचरम्। पुरा प्रचलिता संस्कृत-लेखोपकरणी ब्राह्मी-लिपिर् लोके भूयि-ष्ठानामद्यतनीनां लिपीनां जन्मदात्री।

संस्कृतं विश्वस्याऽखिल-भाषाणां प्राचीन-तमम्। इदं भारतीय-धर्मस्य संस्कृतेश्च मधुरबन्दि वचः। संस्कृत-वाङ्मयमपि सर्वेषां वाङ्मयानां प्राचीनतमं भूयिष्ठं च। भारत-संस्कृति-साहित्यं चातीव विशालं सम्पन्नं च, वैविध्य-पूर्णं मौलिकं च। यथा हि—

१. साक्षात्कृत-धर्मभिर् वैदिकर्षिभिरेव ब्रह्माण्डे मर्त्येषु चानुवर्तमान 'ऋतस्य' पन्थाः प्रथमं दृष्टः।

२. सर्वतः प्रथममत्रत्यैर् ऋषिभिरेव सुख-दुःख-रागद्वेषादि-द्वन्द्वानां मौलिकमैक्यमनुभूतम्।

३. अत्रत्यैर् योगिभिरेव 'योग-समाधि-विद्या' शास्त्ररूपेणोपनिबद्धा, पिण्डब्रह्माण्डस्यैक्यं चानुभूतम्।

४. निरुक्त, व्याकरण, शिक्षाऽलङ्कार शास्त्राद्या वाङ्मयस्याधारभूताः सर्वा विद्याः संस्कृत एवोप-लभ्यन्ते।

५. वेदानध्युद्गातृभिरेव सर्वतः प्राक् साम-गानं स्वर-लिपि-रूपेणोपनिबद्धम्।

६. गण-तन्त्र-श्रीप्रभृतस्य राज-हीन-धर्मराज्यस्य, सर्वस्व-दक्षिणा-विश्वजिद्-यागस्य, अहिंसा-व्रतादीनामनेकेषां मौलिक-भावानां च जननी संस्कृत-संस्कृतिरेव।

७. भारतीयेषु जैन-दर्शनेष्वेवानीश्वरवादस्याध्यात्मिकवादस्य (अर्थात् नास्तिकास्तिक-वादयोः) सम्यक् सामञ्जस्यं प्रतिपादितम्।

८. आख्यानाऽऽख्यायिका-पशुपक्षिकथा-कथान्तर्गतकथानां मूलस्रोतः संस्कृतमेव।

९. संस्कृत-संस्कृतेरेतावद् विशेषो यदनयाऽनुप्राणिता भारतीया विदेशेषु सांस्कृतिकमेव विजयं चक्रुर्न तु रुधिर स्राविभिर्घोर-युद्धैः.पर-दमन-लुण्ठनात्मकं राजनीतिकं विजयम्।

१०. संस्कृत-वाङ्मयस्य वैचित्र्यं वैविध्य च संसारस्य प्राचीन-वाङ्मयान्तरेषु क्वापि नोपलभ्यते। धर्मशास्त्राणि, नीति-शास्त्राण्यर्थ-शास्त्राणि, कामशास्त्राणि, स्मृतयो, दर्शनानि, शिक्षा-कल्प निरुक्तादि षडङ्गम्, आयुर्वेदो, धनुर्वेद-.स्तन्त्राणि, संगीत-वास्तु-हस्त्यश्व-विद्याः, पाथः-पाक-वणिक्-शास्त्राणि, चतुःषष्टि-कला.—इत्यादीनां ज्ञान-विज्ञान-पराणां विधाना कोषः संस्कृत एवोपलभ्यते नान्यत्र।

११. कर्मवाद-पुनर्जन्मवादादय आध्यात्मिकाः सिद्धान्ता अत्रत्यैर् ऋषिभिरेव प्रतिपादिताः।

अहो ! महदस्मद्देशस्य दौर्भाग्यं यदीदृशी परिष्कृततमोन्नततमा भावाभिव्यक्तौ च प्रगल्भतमा भाषा स्व-गौरव-पदात् प्रच्यावितेदानीं तैरेव अमापसदैर् मृतभाषा-नाम्नाऽभिधीयते येषां श्वास-निःश्वासा अद्यापि अस्या आमोदेन सुरभिताः सन्ति। अज्ञानोपहता वराकास्ते न जानन्ति यत् संस्कृतं विना तेषां जन्म, नामकरणं, पाणिग्रहणम् अन्त्येष्टि-कर्मादि किमपि कर्तुं न शक्यते। आजन्म मरण-पर्यन्तं सर्वमेव संस्कारजातं संस्कृत-मन्त्रैरेव संपन्नं भवति। सन्ध्योपासनाऽपि तेषां संस्कृत-भाषायामेवाऽस्ति। अबोध-विकलास्ते स्वयमेव मृत-प्रायाः, न तु संस्कृतं यद्यापि विद्युद्वाह इव प्रच्छन्नं तेषां जीवन-स्रोतः संचालयति। आततायिनामत्याचाराः करालकालस्य निर्घृणा आघाता अप्येतद् हन्तुं नाऽलं-बभूवुः। अद्याऽप्येतत् संसारस्याऽखिलोत्कृष्टतमाना भाषाणां पुर आत्म-गौरवेण समुन्नतशिराः स्थातुं शक्नोति। केवलमस्माभिर् विदेशीयच्छद्मापोह्य स्वात्मबोधः कर्तव्यः। अस्माभी राजनीतिक-स्वतन्त्रता नाम लब्धा किन्तु भावना-चिन्तनादिषु वयमद्याऽपि पाश्चात्यानां दासा एव। पुनरुत्थानाय, पुरोगमनाय, शान्ति-पथे च संसारस्य नेतृत्वप्रापणायाऽस्माभिः स्वान्तरात्मा जिज्ञासयितव्यः सम्यग्बोद्धव्यश्च।

कथमस्माकं शिक्षा-पद्धतिर्नाशं गता ?

पुरा किल विद्याऽध्ययनं वर्णानां धर्मस्याङ्गमासीत्। श्री-'की'-महोदयेन 'एंशेंट् इण्डियन् एजुकेशन्' नाम्नि स्व-ग्रन्थे लिख्यते, "ब्राह्मणानां शिक्षा-पद्धति. प्राचीनतमात् कालादेव परम्पराऽविच्छिन्नाऽऽसीत्। वेदानां व्यास-कालात् प्रागेवेयं पद्धतिर्न केवलं चिरन्तनीमपि तु सुव्यवस्थितां दशां प्राप्ताऽभूत्। उपलभ्यमान-धर्मसूत्राणां समये त्वियं पूर्ण-वेगेन प्रवहमानाऽऽसीत्। ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य-ब्रह्मचारिण उपनयन-संस्कारानन्तरं द्वादश वर्षाणि गुरुकुले एवोषित्वा विद्याध्ययनम् अकुर्वन्।"

शिक्षा केवलं धर्मपरैव नासीत्। शास्त्राध्ययनेन समं वर्णानां स्वव्यवसायोपयोगिनी व्यावहारिकी शिक्षाऽपि दीयते स्म। ब्राह्मण-विद्यार्थिनः प्राधान्येन वेद-शास्त्राध्ययने दत्तावधाना बभूवुः क्षत्रिय-वैश्यच्छात्रास्तु स्व-स्वव्यवसायोपयोगिनीं विशिष्टां शिक्षां लेभिरे। अतो धार्मिक-शिक्षया समं लोक-व्यवहार-पाठशाला अपि समुद्भवन्।

इयं शिक्षा-पद्धतिः परम्परया युगाद् युगान्तरमवतरन्ती सर्वस्मिन् देशे प्रसृताऽऽभूत्। पुस्तकालयानां दाहका विश्वविद्यालयानां विद्या-केन्द्राणां च विध्वंसका केचन मोहम्मदीया आततायिनो ऽप्येनां नाशयितुं नाऽलं-बभूवुः। किन्त्वन्त आङ्गल-शासन-प्रसारादूर्ध्वं च आघातो ऽनया सोढस्तेनास्या मूलं शिथिलप्रायं संजातम्। तत्तु ब्रिटिश-नीतिज्ञानां कूटनीतेरेव फलम्।

श्री-'की'-महोदयेन, पुनर्लिख्यते, "ब्राह्मणानां शिक्षा 'विद्या-पुनरुद्धार'(Revival of Learning)-युगात्प्राक्तन्या यूरोपीय-शाखायाः केनापि प्रकारेण नाऽहीयत। ब्राह्मणाचार्यैर्न केवलमीदृशी शिक्षा-पद्धतिराविष्कृता या नाना राज्यविध्वंसान् समाज-विप्लवांश्चात्यजीवत् किन्तु तैर् वर्ष-सहस्राणि यावद् उच्चविद्याप्रदीपो ऽपि निर्वाणाम् निरन्तरं रक्षित, ईदृशो महामनीषिणश्चोत्पादिता येषां विचार-गाम्भीर्येण न केवलं स्वदेशीयं वाङ्मयं किन्तु विश्वस्य दर्शनमपिप्रभावितमभूत्।"

ब्रिटिश-शासनात् पूर्वं भारते महान् विद्याप्रसार आसीत्। न केवलं हिन्द्वेषु प्रान्तेषु अपितु सर्वस्मिन्नेव देशे ऽभून्न्यूनाधिकः शिक्षाविस्तारः। १८३५-तमे खिस्ताब्दे बङ्गेष्वेव केवलं लक्ष-कल्पा आसन् पाठ-शालाश्चतुष्पाठ्यश्चेत्यासीच्छ्रीमद्-आदम (Adam)-महोदयानामनुमानम्। अथ च सर-टामसमुन्रोमहोदयानामनुसन्धानानुसारं१८२२-तमे खिस्ताब्दे मद्रास-संस्थाने १२४९८ पाठशाला आसन् यासु १८८६५० छात्राः शिक्षां लभन्ते स्म।

अनेन स्पष्टमेव ज्ञायते यदाङ्गलानाम् आगमनात्पूर्वं कियानासीद् विद्या-विस्तारः! तक्षशिला-नालन्दा-विद्यालययोर्विदेशेभ्यश्छात्रा विद्यालाभार्थं विद्वांसश्च ज्ञानावाप्त्यर्थं समागच्छन्। नालन्दा-विश्वविद्यालये तु दश-सहस्राण्यासन् अन्तेवासिनो ऽप्येतारः।

राजनीतिक-स्वार्थपरैर् ब्रिटिश-शासकैः प्राचीना शिक्षा-पद्धतिस्तत्प्रवर्तिकाः पाठशालाश्च स्वकूटनीत्या विनाशिता इत्यत्रानेकानि प्रमाणानीतिहास-लेख्येषूपलभ्यन्ते। भारतस्य प्राचीन-शिक्षापद्धतिर् ब्रिटिश-राज्य-स्थैर्याय न हितकरी-त्यासीत् सर-चार्लस-ट्रेविलियनस्य मतम्। तदनन्तरं 'लार्ड मेकाले'-इति-नाम्ना तस्यैव प्रथित-यशसा बन्धुनोक्तं यद् "भारते शासक-शासितयोराशयम् अन्योन्यं प्रति विशदीकर्तुं द्वैभाषिकानामस्त्यत्यन्तम् आवश्यकता।...अस्माभिरेक ईदृशः पठित वर्ग उत्पादयितव्यो यो रुधिरेण वर्णेन च भारतीयः सन्नपि आचार-व्यवहारे, मन्तव्याभिरुचौ, विचारविवेके च सर्वथाऽऽङ्गलः स्यात्।" नास्त्यत्र लेशमात्रमपि संदेहो यद् भूत-पूर्वाणामाङ्गलप्रभूणां कृपया तादृशो 'बाबू'-वर्गः समुदपद्यत, यः स्वतन्त्रतावाप्त्यनन्तरमप्यधिकारारूढो विराजते। असावेव वर्गः साम्प्रतं

६ संस्कृत-विद्वांसो लेखकाश्च वेतन-वृत्ति-पारितोषिकादिभिः प्रोत्साहयितव्याः ।

७ अखिले ऽपि देशे स्थाने-स्थाने गुरुकुलानि स्थापयितव्यानि येषु केवलमन्तेवासिनो ब्रह्मचारिणः प्रवेशयितव्या, नेतरे । तेषु प्राक्तनीं पद्धतिमनुसृत्य शिक्षा प्रदातव्या, परं तस्यां पद्धतौ आधुनिक-मनोवैज्ञानिकानुसन्धानं सामयिकीमावश्यकतां चोद्दिश्य यथोचितानि परिवर्तनानि कर्तव्यानि ।

८ बालोपदेशोपयोगीनि प्राथमिक-पाठ्य-पुस्तकानि, गद्य-पद्य-संग्रहा, अन्यच्च नवीनं नवीकृतं च प्राचीनं साहित्यमुत्पाद्यम् । तत्तु सरलं, वाग्व्यवहारानुरूपं, मनोहरैश्चित्रैश्चालंकृत स्यात् ।

६ आकाश-वाणी-द्वारा प्रचारकैश्च संस्कृत-पठन-पाठन-क्रमः प्रसारयितव्यः । पञ्चशतानि संस्कृत-विद्वांसः संस्कृत-प्रचारार्थं बद्ध-परिकरा भूत्वा सर्वमिम देशं विद्याऽमृतेनाप्लावयेयुर्, देशवासिनं च प्रत्येकं संस्कृतं पाठयेयुः। संस्कृत-सप्ताहाः, संस्कृत-पर्वाणि, संस्कृत-शिविराणि च काले-काले सर्वत्रायोजयितव्यानि । तेषु विंशतिः, पञ्चाशत्, शतं वा जनाः संभूय संस्कृत-भाषयैव सर्वं व्यापारं संपादयेयुः । सर्व-साधारण-हितार्थं चल पुस्तकालया अपि प्रवर्तयितव्याः

१० संस्कृत-परिषदो ऽन्याश्च संस्कृतोद्धार-संस्थाः स्व-कार्यजात संस्कृतेनैव संपादयेयुः ।

११ दैनिक-समाचारपत्रेषु संस्कृत-समाचारा निबन्धा वा न्यूनतया स्तम्भैकमात्रम् अवश्यं निवेशयितव्याः ।

१२ संस्कृत-नाटकाभिनय-चलचित्र-प्रदर्शनादिभिर्विनोद-साधनैः संस्कृते जनरुचिरुत्पादनीया प्रवर्धनीया च । महाविद्यालयेषु छात्राः संस्कृत-वाद-विवाद-शास्त्रार्थ - प्रतियोगिता - पारितोषिकादिभिः प्रोत्साहनीयाः ।

१३ राष्ट्रस्य, विशेषतया शिक्षाविभागस्य, मन्त्रिमहोदयाः संस्कृतज्ञाः स्युरथवा संस्कृतमजानन्तस्तत्पठेयुर्येन ते ऽस्मिन् निहिताज् ज्ञानात् प्रेरणां लब्ध्वा संस्कृत-वाङ्मयस्याभिवृद्धये प्रसाराय चौत्सुक्येन प्रयत्नशीला भवेयुः ।

इत्येत् संस्कृताभ्युदयार्थमुपायजातं मयोपन्यस्तम् । एतदाक्षेप्य सम्मार्ग-प्रदर्शनाय विद्वद्वर्या एव प्रमाणम् । इति शम् ।

विदुषामनुचरः
साधुरामः

तमाकू और जन-स्वास्थ्य

(आयुर्वेदाचार्य श्री निशिकान्त शौनक वैद्यवाचस्पति, बटला)

नाम करण और प्रचार

आज से कई सौ वर्ष पूर्व मध्य अमरीका के लोग एक पौधे के पत्तों को प्याले मे जलाकर, उसके धूम्र को एक इस आकार के यंत्र की दो नालिकाओं को अपने नासारन्ध्रों मे लेकर, दूसरे चौड़े सिरे को प्याले में से निकलते हुए धूए पर रख कर, नाक द्वारा धूम्रपान किया करते थे।

इस यंत्र को वे लोग तमाकू कहा करते थे। धीरे-धीरे इस यंत्र का प्रचार कम हो गया, परन्तु इस यंत्र का नाम अब उस वनस्पति को दे दिया गया, जिसका ठीक प्रयोग धूम्रपान मे किया जाता था, तब से वह वनस्पति तमाकू कहलाया जाने लगा। वनस्पति शास्त्र वेत्ताओं ने भी इसे निकोटियाना टेबैकम ऐसा ही नाम दे दिया। भारत के भिन्न-भिन्न प्रांतों में इसे तमाकू, तम्बाकू, तमाक, धुरापान आदि नाम से पुकारते हैं।

मध्य अमेरिका से इस वनस्पति का प्रचार धीरे-धीरे विश्व में चारों ओर हुआ। मुसलमानों के शासनकाल में इसका भारत मे आगमन हुआ। भारत में इसका प्रचार उत्तरोत्तर बढ़ता गया और आज यह पंजाब, उत्तर भारत, बंगाल, मद्रास और ट्रावनकोर मे पर्याप्त मात्रा में पैदा होता है।

प्रयाग विधि

भारत के भिन्न भिन्न प्रांतों में, भिन्न २ परिस्थितियों में इसका प्रयोग, बीड़ी, सिगरेट, सिगार, हुक्का और चिलम के रूप मे धूम्रपान, के लिए, चूने के साथ मिलाकर, अकेला अथवा पान के साथ खाने के लिए तथा सूक्ष्म चूर्ण रूप में नस्य के लिए किया जाता है। कहीं कहीं इसके साथ चरस, गांजा आदि तीव्र मादक द्रव्यों को भी मिलाकर धूम्र रूप मे पिया जाता है।

भारत में इसका बढ़ता हुआ प्रचार

बहुत दुख की बात है, कि भारत मे इसका प्रचार उत्तरोत्तर बड़ी तेजीसे बढ़रहा है। आजसे कुछ ही वर्ष पूर्व इसका प्रचार केवल कुछ एक युवक और बूढ़ों तक ही सीमित था, परन्तु आज तथाकथित सभ्य स्त्री समाज तथा बच्चों मे भी इसका प्रचार बढ़ता जा रहा है।

शरीर पर दुष्प्रभाव

हमारे शरीर पर यह कितना हानिकारक प्रभाव रखता है, इसकी ओर जनता का बहुत कम ध्यान जाता है। निःसंदेह इसके प्रयोग के पश्चात् शीघ्र ही शरीर में कुछ उत्साह और स्फूर्ति का संचार सा प्रतीत होता है परन्तु इस क्षणिक स्फूर्ति और उत्साह के पश्चात् शरीर मे आलस्य और अवसाद प्रकट होने लगते हैं। इस अवसाद और आलस्य को दूर करने के लिए पुरुष को फिर से इसके प्रयोग को लालसा होती है। इस प्रकार का एक दूषित चक्रसा चल पड़ता है, और धीरे-धीरे मनुष्य इस तमाकू का दास बन जाता है। एक बार इसके आधीन हो जाने पर, फिर इससे छुटकारा पाना कठिन ही नहीं अपितु असम्भव सा ही हो जाता है। ऐसे मनुष्य को इसके प्रयोग से तुरन्त शान्ति और संतोष

मिल जाने से, इसके अवगुणों की ओर उसका ध्यान ही नहीं जाता और न ही उसे किसी प्रकार से इन अवगुणों में विश्वास ही होता है।

हजारों चिकित्सा शास्त्रियों और विज्ञान वेत्ताओं ने तमाकू को स्वास्थ्य के लिए बड़ा हानिकारक सिद्ध किया है। उन लोगों ने इसमे कम से कम १६ विषैले या मादक द्रव्यों को पृथक् किया है, जिनमें से निकोटीन प्रधान है। इसके अतिरिक्त परूसिक एसिड, कार्बन मोनोक्साईड, पिरिडीन, फरफ्यूरल आदि अन्य भी कई घातक द्रव्य कुछ न कुछ पाये जाते हैं।

तमाकू विष की रक्त में विद्यमानता

यह सब विष तमाकू प्रयोग करने वाले के रक्त में संचित होते रहते हैं और निरन्तर अधिक प्रयोग से इनकी इतनी मात्रा रक्त में सचित हो जाती है कि यदि ऐसे मनुष्य के शरीर पर स्वस्थ जोंक लगायी जावे तो रक्त पान करने के पश्चात् उस के शरीर में ऐंठन आरम्भ हो जाती है, और वह गिर कर मर जाती है। यदि आप चाहे तो इस परीक्षण को प्रत्यक्ष तमाकू पीने वालों को दिखा सकते हैं

शरीर के भिन्न भिन्न अंगों पर प्रभाव

मस्तिष्क और वात संस्थानः— तमाकू के चिर प्रयोग से वातसंस्थान को पर्याप्त हानि पहुँचती है, जिससे मनुष्य के हाथ पांव तथा अन्य शारीरिक अवयवों में कम्पन, ऐंठन आदि प्रारम्भ हो जाते हैं। मुझे मद्रास के एक विख्यात सर्जन का पता है, जिसके हाथों में अत्यधिक सिगरेट पीने से कम्प प्रारम्भ हो गया था, और जिसे केवल इसीलिये अपना कार्य कुछ मास के लिए बन्द करना पड़ा था।

रोग का कारण जानते हुए इसने सिगरेट का प्रयोग सर्वथा बन्द कर दिया। चाहे उसे दो तीन मास बहुत ही मानसिक वा शारीरिक व्यथा भी रह , परन्तु उसके हाथों का कम्प तीन चार मास में सर्वथा बन्द हो गया।

मानसिक एकाग्रता और चिन्तन शक्ति पर भी इससे बहुत बुरा प्रभाव पड़ता है। एक लेखक की विचार शक्ति और भाव अभिव्यक्ति तब तक ठीक नहीं हो पाती जब तक वह अपने वात तन्तुओं को सिगरेट के धूम्र से उत्तेजित न करे। यहा तक कि कई लेखक तो सिगरेट के बिना एक पंक्ति भी नहीं लिख सकते।

हृदय और रक्तवाहक संस्थान पर प्रभाव

इस संस्थान पर भी तमाकू का बड़ा बुरा प्रभाव होता है। इसके निरन्तर प्रयोग से, हृदय की शक्ति का ह्रास और गति में विषमता दीखने लगती है। रक्तवाहनिया सकुचित हो जाती हैं जिससे शरीर के भिन्न भिन्न अवयवों के रक्त संचार में न्यूनता आ जाती है। नाड़ी की गति तीव्र हो जाती है और धड़कन तथा हृद्ग्रह सा प्रतीत हो ने लगता है। रक्तभार तथा रक्त शर्करा की मात्रा बढ़ जाती है। चिकित्सक लोग इस प्रकार के हृद्रोग को तमाकू प्रयोग करने वालों में विशेषतया देखकर इसे तमाकू (विदग्ध) हृदय कहते हैं।

दृष्टि पर प्रभाव

तमाकू का चिर प्रयोग दृष्टि नाड़ी को हानि पहुंचाता है जिससे मनुष्य को दृष्टि मन्दता हो जाती है।

श्रवणेन्द्रिय पर प्रभावः— दृष्टिनाड़ी की भांति कर्ण नाड़ी की क्रिया मे न्यूनता जाने से बाधर्य सा हो जाता है

गले और मुखा का प्रदाह

सिगरेट तथा तमाकू का प्रयोग गले तथा श्वास मार्ग की श्लैष्मिक कला में प्रदाहया

उत्पन्नकर देता है। जिससे कास (खांसी)श्वास तथा अन्य श्वास सम्बन्धी रोग पैदा हो जाते हैं।

जहां तमाकू का खाना अथवा मुंह में रखना, मुंह में कैन्सर उत्पन्न कर देता है, वहां अत्यधिक सिगरेट आदि से फेफड़े का कैन्सर भी उत्पन्न हो सकता है

स्त्रियों को तमाकू से हानि

तमाकू का अधिक प्रयोग करने वाली स्त्रियों में प्रायः गर्भाशय सम्बन्धी रोग उत्पन्न हो जाते हैं, जिससे उनमें गर्भस्राव, वन्ध्यात्व आदि विशेष देखने में आते हैं। इनकी सन्तान प्रायः मानसिक और शारीरिक दृष्टि से कुछ दुर्बल होती है।

बच्चों को हानि

तमाकू का प्रयोग बच्चे के मानसिक वा शारीरिक विकास में बाधा डालता है और मानसक और शारीरिक विकास को पूर्णता प्राप्त न होने से बड़े होकर ऐसे बच्चे प्रायः आचार-विचार से हीन और समाज में पिछड़े से रह जाते हैं।

जन-स्वास्थ्य पर दुष्प्रभाव

तमाकू का प्रयोग करने वाले लोग प्रायः जन-स्वास्थ्य की ओर सर्वथा ध्यान नहीं देते। एक तमाकू खाने वाला मनुष्य स्थान स्थान पर थूकता रहता है। नस्य प्रयोग करने वाला मनुष्य जहां कहीं छींकने लग जाता है, जिससे वह कीटाणु प्रसार में एक बहुत बड़ा कारण बनता है।

सिगरेट का प्रयोग करने वाले लोग प्रायः इस बात का कम ही ध्यान देते हैं कि उनके इस धूम्र से वे पास बैठे हुए किसी अन्य व्यक्ति को कष्ट तो नहीं पहुँचा रहे। सिनेमा में, रेल में, बस में जहां भी देखिये, ये लोग अपने सिगरेट के धूएं से सारे वातावरण को दूषित कर देते हैं, यहां तक कि एक सिगरेट न पीने वाला तंग आ जाता है और उसे वहां बैठना कठिन हो जाता है।

देहात में, सबके साथ इकट्ठे बैठकर, एक ही हुक्के से तमाकू पीना तो रोग प्रसार का एक महान् कारण हो सकता है।

हमारा कर्तव्य

यह सब जानते हुए भी, हम दूसरों को इससे रोक नहीं सकते, क्योंकि प्रायः सभी बड़े बड़े अधिकारी, वकील डाक्टर वैद्य, प्रचारक, उपदेशक इस व्यसन में फंसे हुए हैं। जब तक हम स्वयं इस घृणित वस्तु को न छोड़ें हम किसी को इससे कैसे रोक सकते हैं ? अतः सर्वप्रथम यदि हमें यह व्यसन है, तो इसे छोड़ना चाहिए, फिर दूसरों को भी इससे यथासम्भव बचाने का यत्न करना चाहिए। राज्य की ओर से अथवा जनता की ओर से इस ओर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिये। कम से कम छोटी आयु के बच्चों को तो इस व्यसन से बचाना हमारा परम कर्तव्य है। तमाकू मुंह में घुसा हुआ एक महान् शत्रु है, अतः इसे छोड़ने मे ही हमारा श्रेय है।

तमाकू छोड़ने के कुछ उपाय

१. सबसे पहला उपाय है कि इसे एक बार छोड़ दो, फिर इच्छा होने पर भी इसकी ओर प्रवृत्त न हो, चाहे हमारे मन और शरीर पर कुछ ही प्रभाव हो।

२ दूसरा उपाय अपने आपको सिगरेट तमाकू पीने वालों की संगति से बचाना और जहां तक हो सके इसके धूएं से बचना है।

३. तीसरा उपाय रोटी खाने के पश्चात्, दोनों समय मुंह द्वारा ३-४ प्रतिशत सिल्वर नाइट्रेट के विलयन से गरारे करना है। इससे

मुह में कुछ बुरा सा स्वाद बन जायेगा और फिर धूम्र पान की इच्छा कम होगी।

४. अपने पास थोड़ा सा चिरायता या कटुकी रखें जब धूम्रपान की इच्छा हो इसे अपने मुंह में रखें। इससे मुंह कड़वा हो जायेगा और तमाकू की ओर प्रवृत्ति जाती रहेगी। यह चौथा उपाय है।

५. पांचवां उपाय, अपने को सदा कार्य व्यस्त रखे और अपना खान-पान सुधारें।

(आयुर्वेद म० स० पत्रिका से)

[हमारा सब पाठक महानुभावों से अनुरोध है कि वे स्वयं यदि दुर्भाग्यवश इस व्यसन के शिकार हों तो इसे अवश्य छोड़ दे और सब आर्य इस बढते हुए दुर्व्यसन के निवारण मे सहायक हों —सम्पादक सा० दे०]

अध्यात्मसुधा

भक्ति मय जीवन

(प्रवक्ता—श्री पूज्यपाद महात्मा प्रभु आश्रित जी वैदिक भक्ति साधन आश्रम, रोहतक)

ओ३म् अग्निमिन्धानो मनसा धियं सचेत मर्त्यः। अग्निमिन्धे विवस्वभिः॥

(साम प्र० १ द० २ म० ०६ ऋ० ८।१०२ २२)

आदरणीय महानुभावो और पूज्य माताओ। यह सामवेद जिस का पवित्र यज्ञ हो रहा है, यह भक्ति का वेद है इसमें परमेश्वर की भक्ति है और भक्तों की भक्ति भी है। विद्वान् लोग जो भक्ति का मार्ग दिखाने वाले और परमेश्वर का राह सुझाने वाले हैं उनकी भी भक्ति बताई है। हवन मे नित्य प्रति 'विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव। यद्भद्रं तन्न आसुव॥" यह मंत्र पढ़ते है। इसमें बुराइयों के, बुरे कारणों के, बुरे सस्कारों के दूर करने की प्रार्थना है। शरीर के विकारों के लिये मनुष्य बहुत यत्न करता और दवाई करता है,परन्तु मानसिक रोगोंके लिये लोग उपाय नहीं करते। केवल प्रार्थना कर देते हैं। कल मैंने कहा था कि सफलता प्राप्त करने के नियम और नियन्त्रण की बाढ़ आवश्यक है। कृषक खेती को पशुओं से सुरक्षित रखने के लिये बाढ़ लगाता है, इसी प्रकार जो मनुष्य अपनी सफलता चाहता है उसे नियम का पालन करना और नियन्त्रण में रहना पड़ेगा।

मानव जीवन की तीन मंजिलें

मानव जीवन का प्रारम्भ मानव जीवन की गति और मानव जीवन की सफलता कब समझनी चाहिये, इस के चिन्ह हैं। ये मानव जीवन की तीन मंजिलें हैं।

मंत्र के अर्थ—श्री प० जयदेव जी भाष्य कार ने इस मंत्र के भावार्थ में कहा है—

अग्नि (प्रकाश स्वरूप ईश्वर) को हृदय से प्रकाशित करता हुआ मनुष्य श्रद्धारूपी बुद्धि या कर्म को प्राप्त हो। सूर्य के समान ज्ञान प्रकाशक विद्वानों द्वारा मैं प्रकाश स्वरूप ईश्वर को हृदय मे प्रज्वलित या प्रकाशित करता हूँ। ईश्वरके मानस ध्यान से मनुष्य बुद्धि और कर्म को सुधारें,

उत्तम विद्वानों के संग से ईश्वर का ज्ञान लाभ करें।

विद्वानों के संग से लाभ—जैसे कुंड की अग्नि यजमान पुरोहित द्वारा जलाता है हृदय की अग्नि ईश्वर पुरोहित द्वारा जलाई जाती है। ईश्वर के मानसिक ध्यान से मनुष्य बुद्धि और कर्म को सुधारे। मानसिक रोगों का प्रतिकार है मानसिक ध्यान, विद्वान् ध्यान की विधि बताते हैं परन्तु वे हमारे कर्मों को. मन के दोषों को नहीं सुधार सकते। सुधारेगा तो वह जो परम वैद्य है जो परम औषध है, वह परमेश्वर है।

दो प्रकार के बोर्ड

हमारे दो प्रकार के बोर्ड हैं एक गुणों का बोर्ड है जो हमारे सामने रहता है। इसे हमने आगे लटकाया हुआ है। दूसरा बोर्ड बुराइयों का है जो हम ने पीछे लटकाया हुआ है जिस के कारण अपने दोषों को नहीं देख सकते। देखने वाले हमें पीछे से देखते हैं. वे ही हमारी बुराइयों को देखते हैं। शरीर के दुःख से दुःखी होकर जहां कहीं भी जाना पड़े, जायेंगे, सहस्रों खर्च करेंगे। आंखों के अपरेशन के लिये आश्रय ढूढंगे, स्विटजरलैंड जाना पड़े तो भी निःसंकोच जायेंगे। यदि रोग अति व्याकुल कर दे तो घर के आभूषण बेच देंगे, गृह धरोहर कर देंगे। रोग की औषध अवश्य करेंगे, परन्तु मानसिक रोग के लिये किंचित् मात्र भी चिन्ता न करेंगे।

ध्यान की पहली सीढ़ी—ध्यान बतलाने वाला विद्वान् बतलाता है कि सब से पहली सीढ़ी इस ध्यान सीखने की है। "उपत्वा अग्ने दिवे दिवे, दोषावस्तर्धिया वयम् नमो भरन्त एमसि ऋ० १-१-७॥ अर्थात् हे मानव ! यदि तू उन्नति चाहता है तो नमस्कार रूपी गुण को धारण कर।" यह पहली सीढ़ी है। एक संत महात्मा के पास एक सज्जन गया और जाकर पूछा कि स्वतंत्रता क्या है और परतंत्रता क्या है ? संत ने कहा, अपना एक पग उठाओ। उस सज्जन ने पग उठाया अब कहा कि दूसरा पग उठाओ परन्तु पहले पग को न टिकाना। सज्जन ने कहा, महाराज यह कैसे हो सकता है ? तो संत ने कहा बस तुम्हारे मन के अन्दर की इच्छा तुम्हारी स्वतन्त्रता है, जब इच्छा हो गई फिर परतन्त्र हो गए। एक बार जब चाह या इच्छा करली तो परतन्त्र होना पड़ेगा। बनने के लिये ठोकर लगेगी। कस्सी से, कुल्हाड़ी से, चाकू से, हथोड़े से कांट छांट होगी। बन गया अपने आप पशु। उत्पत्तिकाल से ही उसे पशुता प्राप्त है. उसे किसी ठोकर की आवश्यकता नहीं। थोड़ी सी भी हिन्दी पढ़े जानते हैं कि 'पशु' शब्द में 'श' अक्षर एक आंख वाला है और 'मानुष' शब्द में 'ष' दो आंखों वाला है। एक आंख वाले अथवा केवल भोग में ही लीन रहने वाले का पतन ही होगा। 'पशु' शब्द में 'श' पतन को प्रकट करता है और 'मानुष' में 'ष' दो आंखों वाला होना प्रकट करता है अर्थात् वह जो भोग के ही रोग में सोग मनाने वाला न हो अपितु भोग प्राप्ति के लिए कर्म और ज्ञान दोनों का प्रयोग करने वाला और अपवर्ग की सिद्धि के लिये यत्नशील होने वाला होता है। यदि पशु से ऊपर दो आंखों वाला बनना है तो मनुष्य को किसी अधीन होना पड़ेगा। उसे नियम और नियन्त्रण के अन्दर रहना होगा। नमस्कार करो प्रातः और सायं, सोते और जागते।

चार प्रकार के मनुष्यों को नमस्कार करो।

(१) उन को जो "नमः" आकार हैं, जो "नमः" आकार हो गए हैं। "नमः" के अर्थ है अन्न और जल। नमस्कार करो उसको जो आप का अन्न दाता है। जो नमः आकार हो गया है वह स्वयं अन्न हो गया है। अन्न अद् धातु से बना है जिस का अर्थ है खाना। अर्थात् अन्न वह है जो खाया जाय। जिसका जीवन दूसरे के

खाने के लिये है अर्थात् दूसरे के उपकार के लिये है। खाने वाली सब वस्तु जड़ है अर्थात् वह जिस के अन्दर अहकार और भय नहीं। फल अन्न है, फल के अन्दर अहम् और मम नहीं। इसी प्रकार जिस पुरुष के अन्दर अहम् और मम नहीं, अहम और मम के चले जाने से नम्रता आती है नम्रता से प्रेम बढ़ता है अत वह नमस्करणीय है।

(२) दूसरा अर्थ "नम" का है विद्युत्। जो अपना प्रकाश आप दे। वह ज्ञानी जिसके अन्दर से ज्ञान उपजता है, उस को नमस्कार करना चाहिये।

(३) तीसरा अर्थ नम का है वज्र, जो हमे वज्र से, भय से अन्याय, पाप और पापियों से दूर रखने वाला है, उस को भी नमस्कार करना चाहिये।

(४) चौथा नमस्करणीय वह है जिसने अपने आप को भगवान् के अर्पण कर दिया है। हमें ऋषियों को भ प हृदय की भावनाओं से नमस्कार करना चाहिये। गायत्री मत्र का ऋषि विश्वामित्र है, विश्व मित्र ऋषि को नमस्कार करें, इससे हम को प्रकाश मिले। विश्वामित्र हमारी दक्षिण चक्षु मे रहता है। जिस शक्ति से मानव ससार के प्राणियों से प्रेम करता है उस का नाम है विश्वामित्र। विश्वामित्र को हृदय से न मस्कार करें।

भक्ति क्या है।

भक्ति भावना की वस्तु है। भक्त कहता है

त्वमेव माता च पिता त्वमेव
त्वमेव बधुश्च सखा त्वमेव
त्वमेव विद्या द्रविण त्वमेव
त्वमेव सर्व मम देव देव॥

भक्त के लिये भगवान् माता पिता है, माता पिता और उनके स्नेह और उपकार को मनुष्य ने देखा है अत इस प्रकार से विशाल हृदय से परमेश्वर की भक्ति करें।

नमस्कार सभी करते हैं परन्तु श्रद्धा से नमस्कार वही करता है जिसके स्वभाव मे नम्रता आजाए। जिसके स्वभाव मे नम्रता नहीं आई, वह नमस्कार नहीं कर सकता। मनुष्य का बच्चा उत्पत्ति काल से ही नमस्कार करता आता है। अपने साथ न वह धन लाया न दौलत, न मान प्रतिष्ठा जो नमस्कार करता है, समझिये वह भक्ति का प्रारम्भ करता है। जितनी भक्ति अधिक होगा उतनी भक्त की भावना अधिक होगी। भक्ति शक्ति है जो अपने भक्त को उड़ा कर उस प्रभु के दरबार मे ले जाती है।

भक्ति के दो पर—इस भक्ति के दो सुपर्ण हैं, एक जितेन्द्रियता और दूसरा शिवसङ्कल्प। श्येन पक्षी रात्रि को इतने वेग से चलता है कि वह दिखाई नहीं देता परन्तु उसकी ध्वनि सुनाई देव है। भक्ति श्येन पक्षी है जिसके दो पर (पक्ष) हैं। न यह शक्ति कम में है न ज्ञान में। ज्ञान ऐसी भक्ति से पैदा होगा। भक्ति ज्ञान को तब पैदा करती है जब हम अहम् को अर्पण कर देते हैं। आत्मा का ज्ञान कभी प्राप्त नहीं हो सकता जब तक अहम् अन्दर उपजता है। बुराई के अवगुण जब तक उसका त्याग नहीं किया जाता, मालूम नहीं होते। जब तक विषयों को ग्रहण करते रहेंगे प्रकृति का ज्ञान नहीं हो सकता। वह विषयो के त्याग से होगा। परमेश्वर का ज्ञान अहकार के त्याग से होगा।

विधि—वह कल्याण जो स्वार्थ से रहित हो, उसका नाम है शिव। शिव सङ्कल्प रहेगा मन में। परमेश्वर सब का कल्याण करता है। सर्व प्रथम इन्द्रियों को जीतें। बाड़ लगाए।

कर्म और ज्ञानेन्द्रियां क्या हैं—

कर्म और ज्ञानेन्द्रिया गाय बैल गधे और

बोते हैं। खेती यही बोते हैं और चर भी यही जाते हैं। कृषिकार जिन पशुओं से बोता है उनसे खेती की सुरक्षा के लिये बाड़ लगा देता है। हम ने इन्द्रियों द्वारा जप किया, तप किया, भगवान् की स्तुति की, प्रार्थना की, ध्यान किया स्वाध्याय किया। यह सब हम ने बीज बीजा। बीज इनके सुख के लिये था, परन्तु जब इन्होंने चर लिया तो खेती की क्षति हो गई। दृष्टांत रूप में आहुति देते समय आंख अग्नि को देख रही है, आहुति हाथ से डाल रहा है। अग्नि निर्विकार थी परन्तु आंख में मैल आ गई। खेती को चर लिया। कानों ने पवित्र वेद मंत्रों को सुना, निन्दा आदि करने और सुनने लग गए। हमने खेती को चर लिया। हमारा वेद सुना सुनाया चट हो गया। वाणी से कटु शब्द बोल दिया। इस लिये कहा कि इनके आगे बाड़ लगाओ, इसका नाम है जितेन्द्रियता। यह खेती सुरक्षित हो जाए और इन्हीं के काम आए। अगले जन्म में शुभ फल मिलेगा। आंखने पुत्र को देखा, खुश हो रही है। अन्धा भी पुत्र उत्पत्तिपर मानसिक खुशी मनायेगा। मन के अन्दर यदि पवित्रता और शिव संकल्प नहीं है, वह सदा चञ्चल रहेगा। दूसरों का बुरा चिन्तन करने वाला दुःखी होगा,इन्द्रियोंसे बढ़कर पाप करेगा।

भक्ति का आरम्भ नमस्कार से है और भक्ति के दो पर जितेन्द्रियता और शिव सङ्कल्प हैं

हम प्रायः "सर्वेभवन्तु सुखिनः" कहते हैं परन्तु जब किसी प्राणी से दुःख मिला तो हमारे अन्दर द्वेष का भाव उत्पन्न हो जाता है। उसे संसार से बाहर कर दिया और हमें भी बाहर होना पड़ा। संसार से बाहर वह है जिसको अपने भोग का ज्ञान नहीं। घोड़े गधे अपने चारा को लीद और पेशाब से खराब कर देते हैं, उनको अपने भोग का ज्ञान नहीं।

जितेन्द्रियता क्या है? यम नियम पालन करना। १ दिन के अभ्यास से भी हमारे अन्दर अपूर्व परिवर्तन आ जायगा। जितेन्द्रियता के अभ्यास में मानव को जिस से दुःख की प्रतीति होती है, वह उसे दूर फेंक देता है अथवा उसके पास नहीं आता। आंखों की बुराई को हम नहीं जान सकते और न ही कान से हमें ज्ञान हो सकता है। एक इन्द्रिय के दोष का दूसरी इन्द्रिय को ज्ञान नहीं हो सकता। परन्तु जिस इन्द्रिय के दोष का दूसरे को ज्ञान होता है वह इन्द्रिय हमारी वाणी है। वाणी के अन्दर क्रोध है, क्रोधी अपशब्द बोलता है अशुभ बोलता है। सज्जन पुरुष को भी घटिया करके कहेगा, कान सुनेंगे भी। तो आवश्यकता है वाणी को सुधारें। यह अशुभ असत्य अनृत और कटु आदि बोलती है, इसके लिये वाणी से किसी का अपमान न करें। अपमान बदनीति से किया जाता है। पिता बच्चे की ताड़ना करता है, बुरे भाव से नहीं। माता पिता को बाल का मान ही नहीं। माता पिता ने अपना मान बालकके आधीन कर दिया है। उनका मान एक ही है। इस मान को सुरक्षित रखने के लिये अपना अंग मान कर बालक की ताड़ना करते हैं।

परन्तु जो अन्य व्यक्ति ताड़ना करे तो उसको अधिकार हो। बिना अधिकार के जो शासन करता है वह दुःखी होगा।

उदाहरणः—एक समय की बात है। शोर कोट स्टेशन पर गाड़ी ठहर गई। सब लोग जंक्शन स्टेशन था उतर गए। एक डब्बे में एक यात्री आया, पंखा उसके हाथ में था। डब्बे में दाखिल हुआ, तो देखा एक रूपवती देवी सो रही है, पसीना पसीना हो रही है। परोपकार के

भाव से यात्री ने उसे पंखा करना शुरू कर दिया। इतने में उसका पति आ गया। वह यात्री को पंखा करते देख जोश में आ गया और आते ही उसे थप्पड़ लगा दिया। अनधिकार से किया परोपकार भी दुःखी करता है। अधिकार के साथ शक्ति है। पहलवान (मल्ल) चोर को बांध सकता है परन्तु अधिकार नहीं तो उस पर अभियोग चल सकता है और यदि शक्ति नहीं तो दूसरा आदमी मार कर भाग जाए। इस लिये मनुष्य अधिकार के साथ बढ़े और शक्ति नहीं तो उबले नहीं।

शिव सङ्कल्प और जितेन्द्रियता का फल—

शिव सकल्प से अधिकार और जितेन्द्रियता से शक्ति आयगी। संसार में जिसका खेल और पसारा है, उसको प्राप्त करें। हम वह अधिकार प्राप्त करें जो परमेश्वर का है।

परमेश्वर की अद्भुत लीला—

परमेश्वर ऐसा है जो हुकुम सुनाता नहीं, फल सामने आजाता है। किसी की टांगतोड़ता है, चलते २ उसका पग फिसला और टांग टूट गई। वह है सर्व शक्तिमान्। प्यारे उसके ढंग और अद्भुत उसके रंग। खरबूजा का छिलका पड़ा था। आज्ञा की छिलके को, फिसलो। दूसरी आज्ञा की टांगों को कि ऐसे चलो कि खरबूजे पर पड़ते ही फिसल जाएँ और टांग टूट गई।

हम पाप की पोषणा करते हैं—

ऐसे अधिकार को हम प्राप्त करें जिससे हम पाप को भी दण्ड दें। वह तब हमारे पास नहीं आयगा। हम पाप की पोषणा करते हैं परन्तु जो वासना की पोषणा नहीं करते, उनके पास पाप कब आयगा।

नमस्कार क्या है !

नमस्कार वही है जिसके करने की इच्छा बनी रहती है और करते समय प्रसन्नता होती है। जो देख करके करते हैं उनका मार्ग रुक जाता है। यह नमस्कार स्वप्न में भी संस्कारों को जगाता है। अगर कोई वृद्ध पितर आदि स्वप्नों में आएं और हम नमस्कार नहीं करते तो हमारा स्वभाव नमस्कार का नहीं है। मैंने स्वप्न में देखा माता जी आई हैं नमस्कार करने को बढ़ा मार्ग में विसन्दा राम का घर पड़ता था, उसकी स्त्री रुग्ण थी, मैंने सोचा विसन्दाराम की स्त्री को देखता जाऊँ, फिर माता जी को नमस्कार कर लूंगा। आगे चला तो पता चला कि विसन्दाराम इस मकान को छोड़ गया है। वापिस आया तो माता जी भी चली गई थीं। बड़ा दुःख हुआ। नमस्कार का स्वभाव बनाए और जब भी अवसर आए करने से न चूकें। यह है भक्ति का प्रारम्भ।

संकलन कर्ता—
आचार्य सत्य भूषण
बी० ए०, एल० एल० बी०
वानप्रस्थ रोहतक।

(पृष्ठ ४२६ का शेष)

९३५ ,, ,, आर्य समाज सादपुर डा० जलकौरा

९४९ ,, स्वामी ब्रह्मानन्द जी दंडी आर्य गुरुकुल यज्ञतीर्थ एटा।

९५१ ,, रामदेव जी भिक्षु दयानन्द ओल्ड रेलवे रोड जालन्धर सिटी

९५८ ,, शुकदेव नारायण जी पो० स्थान मुरली पार बलिया

९७५ श्रीमती मंत्राणी जी स्त्री आर्यसमाज c/o शिवनारायण जी स्थान पो० हसनपुर जिला मुरादाबाद

१०५० श्री प्रतापसिंह शूर जी वल्लभदास कच्छ कैराल बम्बई ४

५८२ पं० रामरूप जी अवस्थी रायचूर C. P.

आर्य्य जनता सावधान रहे !

दयानन्द और श्रद्धानन्द आदि के पवित्र नामों को कलङ्कित करने वाले अनाथालयों और नारी-रक्षक आश्रमों से सावधान !

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के मंत्री का वक्तव्य

पिछले कुछ समय मे सभा का ध्यान इस बात की ओर विशेष रूप से आकृष्ट किया जा रहा है कि महर्षि दयानन्द, श्री स्वामी श्रद्धानन्द आदि के नाम पर नाम धारी आर्यों ने कतिपय व्यक्तिगत अनाथालय, विधवाश्रम, नारी रक्षण भवन आदि स्थापित किए हुए हैं जिनका एक मात्र लक्ष्य पैसा बटोरना होता है जिनके काले कारनामों के कारण इन महापुरुषों के पवित्र नाम कलंकित होते और आर्य समाज का अपयश होता है, क्योंकि सर्व साधारण जनता के लिये यह भेद करना कठिन होता है कि ये संस्थाएं आर्यसमाज की हैं या नहीं; वे प्रायः उन्हे आर्यसमाज की संस्था समझते हैं। यह मांग भी जोर पकड़ती जा रही है कि यह सभा शीघ्र ही घोषणा करके सर्व साधारण जनता को सचेत करदें और आर्यसमाज के सुयश तथा सर्व साधारण के हितों की रक्षा की जाय।

हमारे नोटिस में ऐसी कई निकृष्ट संस्थाओं की घृणित कार्यवाहियां लाई गई है और कई के काले कारनामे, हम समाचार पत्रों में पढ़ चुके हैं, इस घोषणा के द्वारा हम यह स्पष्ट कर देना चाहते हैं कि आर्य समाज के संगठन का इन दुकानों के साथ किसी प्रकार का कोई सम्बन्ध नहीं है और न हो सकता है। अत. सर्व साधारण जनता को इन्हें आर्य समाज की संस्था समझने की भूल न करनी चाहिए और धोखे से बचना चाहिए। इस प्रकार की संस्थाओं में प्रायः बच्चों का जीवन बर्बाद होता, देवियों पर अत्याचार होता और उनकी दुर्गति होती है। स्थानीय आर्य-समाजों को ऐसी संस्थाओं के विरुद्ध आन्दोलन करके उन्हें बन्द कराना चाहिए, अथवा यदि उनमें से कोई उपयोगी हो तो उसे अपने संगठन के अन्तर्गत लेना चाहिए। इस कार्य में आवश्यकतानुसार सरकारी सहायता से भी लाभ उठाया जा सकता है। ऋषि दयानन्द और स्वामी श्रद्धानन्द आदि के पवित्र नामों और आर्य समाज के यश की आड़ में कुत्सित व्यापार और स्वार्थ साधन को सहन नहीं किया जा सकता।

स्थानीय आर्य समाजों से निवेदन है कि उनके यहां यदि उपर्युक्त प्रकार की कोई स्वतन्त्र संस्था हो तो उसका पूरा पता उसकी गति विधि

का संक्षिप्त विवरण अपनी सम्मति सहित इस सभा में भेजे और उसकी एक प्रति अपनी प्रदेशीय प्रतिनिधि सभा में भेजें।

इस प्रसंग में आर्य्यसमाज के सगठन के अन्तर्गत काम करने वाली उपर्युक्त अथवा अन्य नामों के अनाथालयों और विधवाश्रमों आदि संस्थाओं के मार्ग प्रदर्शन के लिये भी एक दो शब्द कह देना आवश्यक प्रतीत होता है। इन सस्थाओं के सचालन में बहुत सावधानता से काम लेने की आवश्यकता है।

इनकी गतिविधि और कार्यों पर सम्बद्ध स्वामिनी सभा और आर्य समाज को कड़ी दृष्टि रखनी चाहिए, जिससे सस्था का किसी प्रकार का अपयश न हो। सावधानता बर्तने की इसलिये भी आवश्यकता है क्योंकि इन सस्थाओं का कार्य और उत्तरदायित्व बड़ा नाजुक होता है इन्हें सहज ही बदनाम किया जा सकता है और वर्त-मान दुकानों के कटु अनुभव के आधार पर सर्व साधारण जनता सहज ही सन्देह वा भ्रम का शिकार बनाई जा सकती है।

इन संस्थाओं के मार्ग प्रदर्शनार्थ विस्तृत निर्देश के निर्माण का विषय इस सभा के विचारा-धीन है, जिसकी यथा समय घोषणा की जायगी, परन्तु इस बीच में इन सस्थाओं के संचालन में निम्नलिखित बातों पर विशेष ध्यान दियाजाना चाहिए —

१. आर्य समाज के संगठन के अन्तर्गत काम करने वाली इन संस्थाओं का स्थानीय प्रतिष्ठित व्यक्तियों के द्वारा समय २ पर निरीक्षण कराया जाना चाहिए।

२, व्यय की पूर्ति सार्वजनिक दान और सरकारी सहायता से होनी चाहिए। विवाह आदि पर मिलने वाला दान संस्था के समस्त व्यय पूर्ति का साधन कदापि नहीं बनने देना चाहिए।

३. आश्रमवासियों की गति विधि किसी अवस्था में भी सन्देह उत्पन्न करने वाले छुपाव की अवस्था तक न पहुँचने देनी चाहिए। सुरक्षा और शिष्टता की दृष्टि से जितना छुपाव अनिवार्य हो उतना ही रखा जाना चाहिए।

४ जो संस्था अनुपयोगी और अनावश्यक प्रतीत हो उसको बन्द करके उस पर व्यय होने वाली शक्ति और धन अन्य उपयोगी कामो में खर्च करना चाहिए।

५ सदिग्ध अवस्था म आई हुई किसी भी विधवा, सधवा अथवा कन्या का उसके पितृ गृह तथा श्वसुर गृह से पता करना चाहिए। यह बड़े पुण्य का काय है कि यथा सभव उनके बीच में पड़कर पुन सम्मान पूर्वक स्त्रियों को अपने निज गृह में पुन. बसाया जाय।

६. अनाथालय वा आश्रम में पक्के रूप से किसी अनाथ लड़की, लड़का, सधवा, विधवा को आश्रय देने से पूर्व आगत व्यक्ति का पूरा बयान लिखकर उसके हस्ताक्षर या अगूठे का चिन्ह प्राप्त कर लेना चाहिए। जो २ विवरण प्राप्त हो तदनुसार उसके ग्राम आदि से सम्पुष्टि करा लेनी चाहिए। बहुत बार इस प्रकार आए हुए व्यक्ति झूठ भी लिखा देते हैं। यथा विवाहित होते हुए भी कोई स्त्री अपने को विधवा कह देती है, इसलिए बहुत सतर्क रहना चाहिए। सदिग्ध अवस्था मे आई हुई स्त्री-की सूचना शीघ्र प्राप्त सज्जन, पुलीस अफसर को दे देनी चाहिए। इससे सस्थाओं के बहुत से संकट कट जाते हैं।

७. इस प्रकार की जिन संस्थाओं में युवती

स्त्रियां अथवा लेडी सुपरिन्टेन्डेन्ट रहती हों उनमे बिना घटी आदि द्वारा सूचितकिए कोई पुरुष अधिकारी प्रवेश न करे। कोई पुरुष अधिकारी किसी स्त्री से एकान्त में बात न करे। चपरासी, चौकीदार, क्लार्क आदि कोई दूसरा व्यक्ति सदा साथ रहे।

किसी विधवा के पुनर्विवाह अथवा कुमारी कन्या के विवाह का संस्था की अन्तरंग वा प्रबन्धकर्तृ सभा द्वारा निश्चय हो जाने पर प्रार्थी पुरुषों की आयु, शिक्षा, आचार धार्मिक विचार, आय, मकान, दुकान, भूमि, जेवर आदि के ब्यौरे की पुष्टि संस्था के किसी मान्य व्यक्ति द्वारा प्रार्थी के ग्राम मुहल्ला आदि से करा लेनी चाहिए। बिना स्त्री धन के शरणागत विधवा अथवा विवाह योग्य कन्या नहीं ब्याही जानी चाहिए। स्त्री धन अवस्थानुसार २०० रु० से १००० रु० तक हो सकता है, कम से कम १ वर्ष और अधिक से अधिक ३ वर्ष के पश्चात यह धन सूद सहित विवाहिता विधवा अथवा कन्या के हाथ पर धर देना चाहिए।

आर्यसमाज में अर्थ शुद्धि का स्थान अत्यन्त महान् रहा है। कार्यालय के समय मे प्राप्त हुए नकद व वस्त्र आदि दान की पक्की रसीद दाता को तुरन्त मिलनी चाहिए। अन्यथा कच्ची रसीद हस्तलिखित अथवा छपी हुई दे देनी चाहिए जिसके नीचे ये शब्द बढ़ा दिये जायें कि पक्की रसीद अमुक समय बाद दानी को मिल जायगी, यदि न मिले तो संस्था के कार्यालय से रसीद का तकाजा करे।

१०. आर्य समाज द्वारा संचालित, रक्षित तथा प्रबन्धित अनाथालय के किसी लड़के को भिक्षा के लिये बाहर न भेजना चाहिए। भिक्षा मांगना आर्य समाज के अधिकारियों और कर्मचारियों का कार्य है। भिक्षा मांगने से बालकों के बहुत से सद्गुणों का विनाश हो जाता है।

११. ऐसी संस्थाओं के लड़के, लड़कियों, विधवाओं आदि को दानी महानुभाव यज्ञ, उत्सव तथा संस्कार आदि पर निमन्त्रित भी करते हैं। कभी ऐसे समय का निमन्त्रण स्वीकार न करना चाहिए जबकि उनके लिखने पढ़ने और सीखने आदि का समय हो। दानी महानुभाव निश्चय ही आतिथ्य का दूसरा समय स्वीकार कर लिया करते हैं।

श्री स्व० ला० लाजपतराय द्वारा स्थापित आर्य समाज अनाथालय फीरोजपुर छावनी का मेरा निजी अनुभव है। उसमें लड़के, लड़कियां और विधवाएं बड़ी संख्या मे रहती हैं। वहां लड़कों को बसरे रोजगार बनाने के लिये कई शिल्प सिखाए जाते हैं, कन्याओं को अच्छी गृहणी बनाने का भरसक यत्न किया जाता है। विवाह के योग्य कन्याओं और विधवाओं के विवाह में बहुत सावधानी की जाती है। वहां पाठशाला में धर्म शिक्षा का बहुत अच्छा प्रबन्ध है। मैं उसके सुप्रबन्ध और सुव्यवस्था को मान देता हूं। ऐसी संस्थाओं को बहुत कुछ पथ प्रदर्शन उस संस्था के मन्त्री से प्राप्त हो सकता है। ऐसी अन्य भी संस्थाएं अवश्य होंगी जैसे आर्य अनाथालय पाटौदी हाउस, देहली। उसके अनुभवों से भी लाभ उठा कर आर्य महानुभाव अपने २ प्रदेश की ऐसी संस्थाओं को इतना उत्तम बना सकते हैं, और जनता की इतनी अच्छी सेवा कर सकते हैं कि आर्यसमाज का यश चहुँ

कविराज हरनामदास बी० ए०

मन्त्री,

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, देहली

उपर्युक्त विज्ञप्ति की १ प्रति इन्दौर के श्री मनुदेव जी "अभय" को उनकी प्रेरणानुसार भेजी गई थी। उनको यह विज्ञप्ति कितनी लाभ दायक प्रतीत हुई है इसके सम्बन्ध में उनसे प्राप्त हुआ पत्र नीचे प्रकाशित किया जाता है। उनके व्यय पर २५०० अतिरिक्त प्रतियां छपवाई गई हैं। जो उनको भेजी जा रही हैं अन्य भी जिन समाजों सार्वजनिक कार्य्य कर्ताओं वा आर्य सज्जनों को प्रचारार्थ इसकी जितनी प्रतियों की आवश्यकता हो वे सार्वदेशिक प्रकाशन लिमिटेड पाटौदी हाउस दरियागंज देहली को लिखकर मंगा सकते हैं। कुल १॥) सैकड़ा इस का खर्च है।

"आपके द्वारा प्रेषित विज्ञप्ति मुझे प्रकाशनार्थ प्राप्त हुई। मैंने उक्त विज्ञप्ति को आद्योपान्त पढ़ा है। निस्सन्देह उक्त विज्ञप्ति समाज मे ही नहीं अपितु नारी रक्षक मण्डलों, आर्य समाजों द्वारा नियन्त्रित समस्त अनाथालयों के लिये नियन्त्रण, अनुशासन एवं व्यवस्था के लिये अत्यन्त लाभदायक है। यहां मैं एक महत्वपूर्ण बात कहना चाहता हूँ। सभा की विज्ञप्ति को केवल आर्यसमाज के ही पत्र प्रकाशित कर सकते हैं परन्तु वे दैनिक पत्र जो कि जन साधारण तक पहुंचते हैं वे इसे अत्यन्त संक्षेप में ही प्रकाशित करेंगे। इससे यथार्थ मन्तव्य सिद्ध नहीं हो सकता है। ऐसी परिस्थिति में उचित तो यह हो सकता है कि उक्त विज्ञप्ति को ट्रैक्ट के रूप में भारतवर्ष की समस्त आर्य प्रतिनिधि सभाओं को और वे प्रतिनिधि सभायें अपने प्रान्त की समस्त समाजों को अनिवार्य रूप से भेज कर तदनुसार कार्य करें। अत क्या आपने उक्त विज्ञप्ति मुद्रित करवाई है? यदि हां तो कृपया २५०० ढाई हजार प्रतियों का मूल्य लिख भेजें। धन भेजकर हम अपने प्रान्त की जनता में वितरित करने की व्यवस्था करेंगे··· ।"

मन्त्री सभा

---

* सच्चा ज्ञानी *

मैं सच्चा ज्ञानी बन जाऊँ॥ ध्रुव

१ सर्वव्यापक परमेश्वर को, लाख उसके गुण गाऊं।
शुद्ध हृदय से निशिदिन हरि को, श्रद्धापूर्वक ध्याऊं॥

२ काम कोप अभिमान दम्भ अरु हिंसा दूर भगाऊं।
सत्य सरलता समता शुचिता, के मैं साज सजाऊं॥

३ स्थिरता संयम क्षमा अहिंसा, से भूषित हो जाऊं।
सच्चे गुण गण की सेवा कर, दुर्गुण परे हटाऊं॥

४ अनासक्ति वैराग्य युक्त हो, मन अभिमान न लाऊं।
इष्ट अनिष्ट प्रिया प्रिय में मैं, समता त्याग न जाऊं॥

५ नित्या नित्य विवेकी बनकर, शाश्वत सुख को पाऊं।
नहीं अनित्य पदार्थों में, भ्रमो कभी फंस जाऊं॥

६ आत्मा अजर अमर यह जाने, आत्माराम कहाऊं।
ईश्वर भक्ति परायण बनकर, अमृत नदी में न्हाऊं॥ "ध्रुव"

नैतिक जीवन

मानव जीवन (३)

लेखक—श्री रघुनाथप्रसाद जी पाठक

मनुष्य जन्म लेता है। किशोरावस्था, युवावस्था, प्रौढ़ावस्था वृद्धावस्था में से गुजर कर अन्त में मर जाता है। जीवन के इस प्रकार के प्रत्येक परिवर्तन की नई २ आशाएं, नई २ अनुभूतियां, नए २ सम्बन्ध और नए २ उत्तरदायित्व होते हैं। मनुष्य को पता नहीं लगता कि उसने भूतकाल में क्या किया, उस पर क्या बीती, भविष्य में उसका क्या होगा, कैसे बीतेगी। मनुष्य की अल्पज्ञता, संसार की प्रत्येक वस्तु की परिवर्तन शीलता, एक अवस्था और एक स्थिति का सदैव न रहना, जीवन के ताने बाने का सुख और दुःख के धागों से बुना जाना, अपने कर्मों के अनुसार फल भोगने के लिये विवश रहना यह सब बातें इस बात की द्योतक हैं कि हमारे जीवन का सूत्र किसी अलौकिक, सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान् महत्तम सत्ता के हाथ में होता है। मनुष्य की यह परवशता उसे जीवन में विनम्रता धारण करने के लिये बाध्य करती और उसे मनुष्य बनने की प्रेरणा करती है।

मनुष्य का जीवन वस्तुतः आत्मा का बन्दीगृह होता है। मनुष्य को वास्तविक आनन्द और सुख जन्म मरण के चक्र से छूटकर परमात्मा में विलीन होने पर मिलता है। जीवन मृत्यु की यात्रा होती और मृत्यु जीवन का पासपोर्ट होता है। मनुष्य का परम पुरुषार्थ परमानन्द की प्राप्ति अथवा परमात्माके समान बनना पवित्र होता है। परमात्मा की ओर उठनेसे मनुष्य का जीवन उसी प्रकार शुद्ध और पवित्र बनता है जिसप्रकार समुद्र का खारा जल ऊपर को उठने पर शुद्ध होता है।

जीवन व्यतीत करने की सर्वोत्तम शैली वह होती है जिससे हर प्रकार की परतन्त्रता से मुक्ति मिलती हो और जिससे मृत्यु का भय कम और निःशेष हो जाय। जिनके सामने जीवन का कोई निश्चित लक्ष्य नहीं होता वे संसार के प्रवाह में बहते और लुढ़कते हुए जीवन यात्रा पूरी करते हैं। जो प्रायः संसार को कोसते और जीवन से तंग रहते हुए भी मरने से बहुत डरते हैं। ऐसे व्यक्ति जीते हुए भी मरे हुए के समान होते और संसार पर भार होते हैं। जीवन के भोगों और आनन्दों में अमयर्यादित रूप से लिप्त होने वा उसमे वृद्धि करने से मृत्यु के भय और कष्टों में वृद्धि होती है। जो व्यक्ति जीवन का अर्थ नियन्त्रण और परोपकार मानते, प्रकृति की देन को जीवित रहने और धर्म्म की देन को अच्छी तरह जीवित रहने का साधन मानते हैं उनमें यह भावना घर कर जाती है कि जीवन-प्रवाह अनंत है और वह केवल आनन्द करने के लिये नहीं अपितु कुछ सीखने के लिये मिला है। जीवन का वास्तविक आनन्द उन्हीं व्यक्तियों को प्राप्त होता है जो इस संसार को प्रतिक्षण छोड़ने के लिये तैयार रहते हैं। जिनकी कीर्ति मरने के बाद संसारमें कायम रहती है। वे व्यक्ति मर जाने पर

भी जीवित रहते हैं और जिनकी संसार में निन्दा होती है वे जीते हुए भी मरों के समान होते हैं। मनुष्य को अपना जीवन इस प्रकार व्यतीत करना चाहिए कि संसार से विदा हो जाने पर भी उसका अभाव खटके।

लोग जीवन में सफल होने के लिये दौड़ धूप, करते, संघर्ष करते, धन सम्पत्ति बटोरते और एक एक पाई और एक २ इंच भूमि के लिये मरने मारने को उतारू रहते हैं। वे बड़े २ महल और भवन बनाकर छोड़ जाते और बैंकों इत्यादि मे सैकड़ों, हजारों, लाखों, और करोड़ों रुपया जमा करके रख देने में जीवन की सफलता समझते हैं परन्तु जब उनके जीवन के खाते की जांच पड़ताल होती हैं तो आध्यात्मिक संपदा से शून्य पाए जाते और दिवालिया देख पड़ते हैं। ऐसे व्यक्ति मृत्यु की कल्पना से ही कॉपने लग जाते हैं और जब मरने का समय आता है तब वे मृत्यु के भय से किंकर्तव्य विमूढ़ हो जाते हैं। बहुतों को तो जीवन के वास्तविक ध्येय की अनुभूति अंत समय में होती है परन्तु उस समय सिवा पछताने के और कुछ नहीं होता।

जीवन का अर्थ है कर्मण्यता। शरीर और आत्मा का सम्यक् विकास। साधारणतः शरीर का हृष्ट पुष्ट और सुन्दर बनना शरीर का विकास माना जाता है। परन्तु शरीर के अवयव जब तक विकसित होकर यशस्वी नहीं बनते तब तक सही अर्थों में वे विकसित नहीं माने जाते। मनुष्य की मानसिक और आत्मिक क्षमताओं का विकसित होजाना आत्मा का विकास माना जाता है। शरीर और आत्मा का विकास तब संभव और कायम रहता है जब इन्द्रियां आत्मा के शासन में रहतीं और आत्मा शरीर और इन्द्रियों के शासन में नहीं रहता। इस रीति से स्वस्थ शरीर में स्वस्थ आत्मा निवास करता, स्वस्थ और विकसित आत्मा शरीर को वास्तविक पुरुषार्थ में निरत रखता और मनुष्य उत्तम जीवन व्यतीत करता हुआ चिरकाल तक जीवित रहता है।

मनुष्य प्रायः अधिक समय तक जीवित रहने की इच्छा करता है परन्तु उस व्यक्ति का चिरकाल पर्यन्त जीवित रहना स्वागत योग्य होता है जिसका जीवन उपयोगी होता है। यदि मनुष्य को उसकी इच्छाओं के पैमाने से नापा जाय तो उसके लिये अधिक से अधिक लम्बा जीवन भी अपर्याप्त होता है। यदि उसके शुभ-कर्मों के पैमाने से नापा जाय तो समाज के लिए उसका लम्बा जीवन बहुत अपर्याप्त होता है यदि उसके दुष्कर्मों के पैमाने से नापा जाय तो उसका थोड़े से थोड़ा जीवन भी आवश्यकता से अधिक पर्याप्त होता है। जो व्यक्ति बहुत अधिक सोचते उच्च भावनाओं से प्रभावित रहते और श्रेष्ठ कर्मों के अनुष्ठान मे लगे रहते हैं वे ही अधिक काल तक जीने के अधिकारी होते हैं।

मानव जीवन उन फूलों के समान होना चाहिए, जो सदैव अपने सुगन्ध और पराग से वनप्रदेश को सुगन्धित और शोभा युक्त रखते और वृक्ष से गिर जाने पर भी सम्मानित स्थान पाते हैं। अपने जीवन को अच्छा, बुरा, सुगंध वा दुर्गन्ध मय बनाना हमारे अपने हाथ में है जिस अनुपात मे जीवन श्रेष्ठ कर्मों के अनुष्ठान में लगा होगा उसी अनुपातमें यह अच्छा तथा अपने और परायों के लिये उपयोगी होगा। मनुष्य का जीवन इस प्रकार नियमित होना चाहिए जिसमे वह समस्त संसार के सामने खुला हुआ हो। किसी वस्तु को अपने पड़ोसी से छुपाने का क्या अर्थ है जबकि घटघट वासी प्रभु हमारी गुप्त से गुप्त बात को जानता है!

(क्रमशः)

दान-सूची

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, देहली
(१७-१०-५२ से २०-११-५२ तक)

विविध-दान

४३≈) श्री सेठ प्रतापसिंह शूरजीवल्लभदासजी बम्बई श्री राजगुरु पं० धुरेन्द्र जी शास्त्री सभा प्रधान द्वारा

१०५१।≈)।।। श्री राजगुरु पं० धुरेन्द्र जी शास्त्री को आर्य प्रतिनिधि सभा बिजनौर गढ़वाल प्रान्त से भेंट रूप में निम्न आर्यसमाजों व संस्थाओं द्वारा प्राप्त।

५१) आर्यसमाज शिवहरा (बिजनौर)
५१) „ शेरकोट „
५१) „ धामपुर „
५१) „ पुरैनी „
५१) „ बढ़ापुर „
५१) „ नगीना „
५१) „ दौलताबाद „
५१) „ नजीबाबाद „
५१) „ साहनपुर „
५१) „ झालू „
१०१) „ कीरतपुर „
१०१) „ बिजनौर „
१०१) „ हल्दौर
१०१) „ ईस्माईलपुर „
१०१) „ चांदपुर
१०१५)

११) आर्य कन्या पाठशाला नजीबाबाद (बिजनौर)
१२।।।) आर्य स्त्री समाज शेरकोट „
१२।।≈)।।। जिला आर्य कुमार परिषद् बिजनौर
१०५१।≈)।।
१०९४।।)।।। योग
१२१४)।। गत योग
२३०८।।–)।। सर्व योग

दान आर्य समाज स्थापना दिवस

१०) आर्य समाज रायबरेली
१०) योग
१०४१।≈) गत योग
१०५१।≈) सर्व योग

सुन्दरबन अकाल पीड़ित सहायता निधि

७।।) आर्यसमाज मसेवी पो० कुनरखी (मुरादाबाद)
७।।) योग
६३२।।) गत योग
६४०) सर्व योग

दान दाताओं को धन्यवाद।

कविराज हरनामदास, बी०ए०
मन्त्री
सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा,
देहली।

ग्राहकों से निवेदन

निम्नलिखित ग्राहकों का सार्वदेशिक पत्र का चन्दा दिसम्बर ५२ मास के साथ समाप्त होता है, कृपया वे अपना वार्षिक चन्दा शीघ्र मनीआर्डर द्वारा कार्यालय में पहुँचाने की कृपा करें। अन्यथा आगामी अङ्क उनकी सेवा में वी० पी० द्वारा भेजा जावेगा। धन प्रत्येक दशा में ३१-१२-५२ तक कार्यालय में पहुँच जाना चाहिए। मनीआर्डर कूपन पर अपना पूरा पता व ग्राहक नम्बर लिखना न भूलें अन्यथा पत्र न मिलने वा देर से मिलने का उत्तरदायित्व कार्यालय पर न होगा।

८ श्री मंत्री जी आर्य समाज रानी का तालाब, फिरोजपुर शहर
११ ,, मंत्री जी आर्य युवक पुस्तकालय लल्लापुर, काशी
१४ श्रीमती अधिष्ठात्री जी कन्या गुरुकुल, सासनी
१८ श्री मंत्री आर्य समाज आबूरोड (राजस्थान)
२१ ,, डा० रामनारायण सिंह जी आर्य होम्यो हाल, आरा
१३ ,, कृष्ण जी प्रधान आर्य समाज चांदमारी लेन दार्जिलिंग
३३ ,, बा० राधाकृष्ण जी तारबाबू काजीगुन्ड, काश्मीर
३५ ,, जगनन्दनलाल जी एडवोकेट बंगला नं० २२ इलाहाबाद
३६ ,, रामचन्द्र सहाय जी शर्मा एडवोकेट नगीना
३७ ,, मदन जित जी आर्य महाशय दी हट्टी फिरोजपुर
३८ ,, कुंवर जोरावर सिंह जी आर्य प्रचारक बरसाना, मथुरा
४७ ,, मंत्री जी आर्यसमाज हांसीपुर, पो सीखड़
७२ ,, , वैदिक वाचनालय गुलबर्गा हैद्राबाद
७५ ,, नानक चन्द जी कन्ट्रेक्टर P. W. D. अलवर
७७ ,, गोपालदास जी सेकसरिया जीवनी मंडी आगरा
९४ ,, मंत्री जी आर्य समाज वैदिक वाचनालय लातूर
९५ ,, ,, ग्रामोपकारिणी सभा कार्यालय कुंवर भवन आमला जिला बैतूल
९७ ,, ,, आर्य समाज नगर उटारी जिला पलामू
१०१ श्री आर० डी० शास्त्री गार्ड इ० आई० आर माधोपुर
११३ ,, मंत्री जी आर्य समाज सिरोही, राजस्थान
२२७ ,, मंत्री जी आर्य समाज हापुड़
२३५ ,, मंत्री जी आर्य समाज शिवगंज पो० एरनपुरा सिरोही स्टेट
२३८ ,, मंत्री जी आर्यसमाज पुसद यवतमाल
२३९ ,, मंत्री जी आर्यसमाज शेरकोट जि० बिजनौर
२४० ,, पुस्तकाध्यक्ष जी आर्य समाज दाल बाजार, लुध्याना
२४६ ,, रामदत्त जी शास्त्री प्रधान आर्य कुमार सभा बुरहानपुर
२४९ ,, पं० वेदव्रत जी शास्त्री आर्य समाज पुलसरा जि० गंजाम
२५० ,, मंत्री आर्यसमाज हलद्वानी जिला नैनीताल
२५१ ,, ,, जी आर्य समाज खरगोन जिला निमाड
२५२ ,, ,, ,, महावीर हिन्दी पुस्तकालय आजमगढ़
३२३ ,, हरनन्द प्रसाद जी मुख्तार गोला आरा विहार

३७४ ,, सोहनलाल जी साहू c/o श्री परमानन्द जी वैद्य पतराम गेट, भिवानी
४२२ ,, मन्त्री जी आर्यसमाज रहालकी दयाल पुर पो० भगवानपुर (सहारनपुर)
५५५ ,, कविराज कुन्दन लाल जी वैद्य वाचस्पति राजकीय औषधालय नवाबगंज, उन्नाव
५६१ ,, मनी राम जी आर्य बोरी अरब, यवतमाल
५६७ ,, मंत्री आर्यसमाज फर्रुखाबाद
५७२ ,, हरजीलाल जी आर्य लोकोरनिंग शेड आबूरोड राजस्थान
५७५ ,, मंत्री जी आर्य समाज जुही, कानपुर
५७६ ,, आचार्य जी गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ-दिल्ली
५९८ श्रीमती मंत्राणी जी श्री आर्यसमाज पीली भीत
६०३ ,, मत्री आर्यसमाज मोंठ जि० झांसी
६३९ ,, गोपाल चन्द्र जी आर्य पो० सुभाष नगर देहरादून
६४२ ,, ए० के० मुर्ती कालुर (प्रदातुर)
६५३ ,, ए० गोपाल चैनाई जनरल मर्चेन्ट मंगलौर
६५५ ,, गिरधारी लाल जी हलवाई इच्छावर, भोपाल
६५७ ,, शंकरानन्द जी वाचनालय—वैदिक पुस्तकालय वेद मंदिर सायला सौराष्ट्र
६५८ ,, रघुनन्दन प्रसाद जी गर्ग १३१ ए, नेशमल हाई स्कूल रोड विश्वेश्वरपुरम बगलौर
६६० ,, मैनेजर बापू वाचनालय उस्मान गंज (हैद्राबाद)
६६३ ,, मंत्री जी आर्य समाज गंगापुर सिटी जयपुर
६६४ ,, ,, आर्यसमाज शाहा फतेहपुर
६६६ ,, ,, आर्य समाज केशोपुर पो० अमाल पुर (मुंगेर)
६६७ ,, रंगलाल गोवरधन जी गांधीगंज निजामाबाद
६६८ ,, मंत्री जी आर्य समाज गुलरिहा पो० दिबियापुर जि० इटावा
६९० ,, ,, आर्य समाज अलीपुर भादरा पो० गौनी जि० फतेहपुर
८७२ ,, ,, आर्य समाज गगागज पोस्ट गजनेर जिला कानपुर
६८६ ,, श्रद्धानन्द जी वेदाचार्य वैदिक सेवाश्रम सुनामुडी P. O. भइसा जि० बलंगीर
८७५ ,, मत्री जी आर्य समाज जीतपुर P. O. दौराला जिला मेरठ
८८१ ,, मानसिंह जी भदौरिया नं० २ बटालियन पी० ए० सी० मुरादाबाद
८९० ,, श्रीमसिंह जी क्लर्क सिगनल ग्रुप ए/५ रेजीडेंट अहमदनगर
८९५ ,, बद्रीप्रसाद जी गुप्त मैसर्स भानामल एण्ड कम्पनी किशनगढ़
९०९ ,, मत्री जी आर्यसमाज ठाकुरद्वारा
९१४ ,, ,, आर्यसमाज जयनगर (दरभगा)
९१६ ,, ,, रामचरनलाल जी आर्योपदेशक पो० तिजारा अलवर)
९१८ ,, ,, आर्य समाज अलीसराय पो० चन्दनपट्टी मुजफ्फरपुर
९२० ,, ,, आर्य समाज चन्दौरी
९२१ ,, ,, आर्य समाज उमरी, पो० पकरी लालपुर कानपुर
९२४ श्री मती कौशिल्या देवी जी प्रधान स्त्री समाज मकान नं० ८ गांधी चौक कालका
९२५ ,, मत्री जी आर्यसमाज कठोली जि० सूरत
९२६ ,, ,, आर्यसमाज अस्थुआ जिला दरभगा
९२९ ,, ,, आर्य समाज बोरी पो० राजापुर भागलपुर

(शेष पृष्ठ ४२४ पर)

* यदि आप चाहते हैं, वैदिक धर्म का प्रचार हो !
* यदि आप चाहते हैं, नवयुवकों का चरित्र स्तर ऊँचा हो !
* यदि आप चाहते हैं, स्वाध्याय की भावना का प्रचार हो !

तो आज ही,

भारतवर्षीय आर्य-कुमार परिषद्

की धार्मिक परीक्षाओं में छात्रों को बैठने के लिए प्रोत्साहित कीजिए

क्या आपने सोचा ?

आज भारत का नैतिक स्तर क्यों गिरता जा रहा है ?
आज भी रूढ़िवादियों का बोल-बाला क्यों नहीं घट रहा है ?
आज भी राष्ट्रभाषा हिन्दी का समुचित प्रचार क्यों नहीं हो रहा है ?
आज भी भारतीय विदेशियों का मानस-पुत्र क्यों बनता जा रहा है ?

यदि आप सोचेंगे तो पायेंगे,

शिक्षा का विषैला दृष्टिकोण

शिक्षा में से इस विष को दूर करने के लिए आज ही आप प्रण लीजिए और रचनात्मक काय आरम्भ कीजिए। रचनात्मक कार्य का सब से बड़ा स्वरूप है :—

भारतवर्षीय आर्य कुमार परिषद् द्वारा संचालित,

धार्मिक परीक्षाओं का प्रचार

अपने नगर में केन्द्र खोलने के लिए तथा अन्य जानकारी के लिए आज ही पत्र डालिए।

प्रिंसिपल जगदीश प्रसाद,
एम.ए., एल.टी., एफ.आई.सी.ए, हिन्दी विशेषज्ञ
परीक्षा मन्त्री,
भारतवर्षीय आर्य कुमार परिषद्
मु रा दा बा द

Regd No D 51

मुद्रक-चतुरसेन गुप्त द्वारा सार्वदेशिक प्रेस पटौदी हाउस दिल्ली ७ में छपकर
श्री रघुनाथ प्रसाद जी पाठक पब्लिशर द्वारा सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा देहली ६ से प्रकाशित

कृण्वन्तोविश्वमार्यम्
सामवेद
अथर्ववेद
यजुर्वेद
ऋग्वेद
सार्वदेशिक
अगहन २००६ वि०
नवम्बर १६५२
सम्पादक
श्री पं० धर्मदेव सिद्धान्तालङ्कार विद्यावाचस्पति
मूल्य स्वदेश ५)
विदेश १० शि०
एक प्रति ॥)

विषयानुक्रमणिका

ओ३म्

सार्वदेशिक आर्य-प्रतिनिधि सभा देहली का मासिक मुख-पत्र

वर्ष २६ } नवम्बर १६५२, अगहन २००६ वि० दयानन्दाब्द १२८ } अङ्क ६

ओ३म्

वैदिक प्रार्थना

ओ३म् पवस्व वृत्रहन्तमोक्थेभिरनुमाद्यः ।
शुचिः पावको अद्भुतः ॥ ऋग्वेद ६।२४।६

शब्दार्थः—हे (वृत्रहन्तम) अज्ञानान्धकार और पाप का विनाश करने वालों में श्रेष्ठ परमेश्वर ! तू (उक्थेभिः अनुमाद्यः) वेदमन्त्रों द्वारा स्तुति करने योग्य, (शुचिः) स्वयं पवित्र,(पावकः) भक्तों को पवित्र करने वाला और (अद्भुतः) अत्यन्त आश्चर्यमय गुणकर्म स्वभाव वाला है ऐसा तू (पवस्व) हमें पवित्र कर

विनय—हे सच्चिदानन्द स्वरूप परमेश्वर ! आप स्वयं सर्वथा पवित्र होते हुए सबको पवित्र करने वाले हैं। आप सर्वव्यापक, सर्वज्ञ और सर्व शक्तिमान होने के कारण अद्भुत अर्थात् आश्चर्य कर गुणकर्म स्वभाव वाले अनुपम जगदाधार हैं। आप के समान अज्ञानान्धकार और पाप का सम्पूर्णतया विनाश करने वाला अन्य कोई नहीं हो सकता। अतः हम सब की आप से यही प्रार्थना है कि आप हमारी सारी अपवित्रता को दूर करके हमें सर्वथा पवित्र और सच्चे आर्य बना दें ॥

सम्पादकीय

दलित वर्ग से निन्दनीय घृणा और उस पर अत्याचार:—

यह आशा की जानी स्वाभाविक थी कि भारतीय सविधान में अस्पृश्यता को निषिद्ध घोषित किये जाने के परिणाम स्वरूप अस्पृश्यता के घोर अभिशाप का अन्त हो जायगा किन्तु इन दिनों जो समाचार अनेक प्रदेशों से प्राप्त हुए हैं उन से यह जान कर हमे अत्यन्त दुःख हुआ है कि सवर्ण कहे जाने वाले हिन्दुओं मे से अनेकों में दलित वर्ग से घृणा करने की यह निन्दनीय मनोवृत्ति अभी तक विद्यमान है और अनेक स्थानों पर उस से प्रेरित होकर उनकी ओर से ऐसे बर्बर अत्याचार किये गये हैं जिनका वर्णन करते हुए भी हमें लज्जा आती है। केन्द्रीय हरिजन सेवक संघ की कार्य कारिणी के ४ अक्तूबर के अधिवेशन में मध्यभारत हरिजन सेवक संघ के मन्त्री श्री दाते ने बताया कि वहां सवर्ण हिन्दुओं के अत्याचार से २०-२५ हरिजन मारे गये और आवेध, बलात्कार से ५० हजार के लगभग रु० हरिजनों से एकत्रित किया गया तथा उनकी सम्पत्ति का अपहरण किया गया। जोधपुर से जो समाचार हरिजन दिवस के सम्बन्ध में प्राप्त हुए हैं वे भी अत्यन्त लज्जा जनक है। यह ज्ञात हुआ है कि जवाहरखाना के पास सार्वजनिक नल से पानी भरने का प्रयत्न करने पर एक हरिजन स्त्री को सवर्ण हिन्दुओं ने घेर लिया और उस के साथ मारपीट की गई। माहेश्वरी जाति के लोगों ने श्री रणछोड़ दास ऐडवोकेट और श्री तुलसीदास राठी नामक सज्जनों को इस लिये जाति बहिष्कृत कर दिया कि उन्होंने हरिजन बस्ती की सफाई में भाग लिया था। एक मेहतर को उसकी जाति वालों ने एक धोबी के हाथ से पानी लेने पर जाति बहिष्कृत कर दिया और एक धोबी का मेहतर के हाथ से चाय लेने पर जाति से अलग कर दिया गया। श्री रणछोड़ दास ऐडवोकेट ने बताया कि उन्हें हरिजन बस्ती से अपने घर तक लोगों ने पत्थर मारे जिससे उनकी आंख के समीप चोट लगी। इस हीन मनोवृत्ति की जो संक्रामक रोग की तरह फैलने वाली है जैसे कि ऊपर के उदाहरण से स्पष्ट है जितनी भी निन्दा की जाए थोड़ी है।

जो लोग अपने को उन महात्मा गान्धी जी का अनुयायी कहते हैं जो अस्पृश्यता को 'हिन्दू धर्म' पर घोर कलङ्क और अभिशाप कहते हुए नहीं थकते थे और जिन्होंने अस्पृश्यता निवारणार्थ अनेकवार अपने जीवन को घोर संकट में डाला था उनके अनुयायीयों के विषय में जब ऐसे समाचार प्राप्त होते है जैसे कि 'सरदार शहर' (जोधपुर) से आये हैं तो लज्जा के मारे हमारा सिर झुक जाता है और मन्यु से आंखें लाल हो जाती हैं। ११ अक्तूबर के नवभारत टाइम्स (देहली) में उसके संवाददाता ने 'बापू के अनुयायीयों द्वारा हरिजनों की दुर्दशा' इस शीर्षक से निम्न समाचार भेजा है "सरदार शहर में हरिजन दिवस मनाने का कार्यक्रम बिल्कुल शिथिल रहा। यहां के नागरिकों ने जो कि बापू के सिद्धान्तों की प्रतिक्षण रट लगाते रहते है जिस अकर्मण्यता का परिचय दिया है हरिजन समाज हमेशा उनके नाम को धिक्कारेगा। अन्त में इन लोगों ने यह कह कर अपने सिर से बला टाली कि "हरिजन जब तक स्वयं उठने की चेष्टा नहीं करेंगे दूसरे उनको कभी नहीं उठा सकेंगे।" बापू के ये अनुयायी जब हरिजन मोहल्ले में आये तो पीछे से पता लगा कि शहर में महान्तों ने अपने अपने मन्दिरों के दरवाजों पर पहले से ही लठैत खड़े कर लिये हैं और मरने मारने

को तय्यार हो चुके हैं। बस फिर क्या था ये देश भक्त वहां से दुम दबा कर भाग खड़े हुए।"

इस समाचार का कोई प्रतिवाद प्रकाशित नहीं हुआ अत इसकी सत्यता में सन्देह का कारण नहीं प्रतीत होता। ऐसी अवस्था में पूज्य बापू जी के इन तथा कथित अनुयायियों की इस हीन मनोवृत्ति और निबलता को हम नितान्त निन्दनीय समझते हैं। साथ ही समस्त सुधारकों और विशेषतः आर्यों का ध्यान इस शोचनीय अवस्था की ओर आकृष्ट करते हुए उन से अनुरोध करते हैं कि वे अस्पृश्यता और उसके मूल जातिभेद के समूलोन्मूलनार्थ कटि-बद्ध हो कर कार्य करें। प्रेम पूर्वक समझा बुझा कर जनता की मनोवृत्ति में परिवर्तन लाने का प्रयत्न करें और यदि तब भी सफलता न हो तो ऐसे अन्याय तथा अत्याचार करने वाले व्यक्तियों को सरकार से कठोर दण्ड दिलवाएं जिससे इस प्रकार की दुर्घटनाओं की पुनरावृत्ति न होने पाए। सरकार को भी ऐसे व्यक्तियों को कठोर दण्ड देने मे अणुमात्र भी संकोच न करना चाहिये॥

श्री स्वा० ब्रह्मानन्द जी के अत्यन्त अनुदार विचारः—

श्री स्वामी ब्रह्मानन्द जी जो अपने को ज्योतिर्मठ का जगद्गुरु शङ्कराचार्य कहते हैं अत्यन्त अनुदार विचारों के व्यक्ति हैं। जहां तक इनके ज्योतिर्मठाधिपतित्व का प्रश्न है वह भी सर्वथा सन्दिग्ध है। श्री पं० गंगाप्रसाद जी एम० ए० ने जो अनेक वर्षों तक टिहरी गढ़वाल में न्याय मन्त्री रहे और जिनकी अधीनता में मन्दिरों के प्रबन्ध का विभाग भी था अपने लेख में जो आर्य-मित्र के २४-४-१६५२ के अङ्क में प्रकाशित हुआ यह बताया था कि ज्योतिर्मठ में गत अनेक शताब्दियों से मालाबार के नम्बूदरी वंश का एक रावल ही पुजारी नियुक्त किया जाता है और यह नियुक्त कोचिन और ट्रावन्कोर के महाराजाओं के परामर्श से टिहरी राज्य के महाराज द्वारा की जाती थी ऐसी कोई नियुक्त इन की नहीं हुई। यदि अन्य किसी संस्था ने इन को गद्दी पर बैठा दिया हो तो उस की वैधानिक स्थिति नगण्य है। तथापि हमें इस से कुछ विशेष सम्बन्ध नहीं। वे नियमित रूप से ज्योतिर्मठ के अधिपति हों वा न हों उनके अनुदार विचारों का प्रतिवाद करना हम अपना कर्तव्य समझते हैं। साथ ही उन के १७ अक्तूबर को देहली में आगमन और उनके स्वागत मे एक "शङ्कराचार्य स्वागत समिति" के निर्माण का समाचार सुन कर हमने इस समिति के प्रधानमन्त्री श्री पं० रामनाथ जी कालिया को जो पत्र ४-१०-१६५२ को लिखा और जिसका स्मरण पत्र भिजवाने पर भी कोई उत्तर आज (२ अक्तूबर) तक प्राप्त नहीं हुआ उसको उद्धृत करके उक्त समिति के सदस्यों और विचार शील जनता को सावधान करना हमें उचित प्रतीत होता है। हमारे पत्र की प्रतिलिपि निम्न है:—

श्रीयुत महोदय जी! नमस्ते

आपका १०६-५२ का पत्र मिला। तदर्थ धन्यवाद किंतु इसके सम्बन्ध मे कुछ बातों की ओर आपका तथा आपकी समिति के अन्य सद-स्यों का ध्यान आकृष्ट करना चाहता हूं। आशा है आप उन पर गम्भीरता से विचार करेंगे। इस पत्र के साथ मैं आपकी सूचनार्थ श्री प० गंगा प्रसाद जी रिटायर्ड चीफ़जस्टिस टिहरी का एक लेख भिजवा रहा हूं जो २४-४-५२ के 'आर्यमित्र' में छपा था और जिसका शीर्षक "क्या स्वा० ब्रह्मानन्द जगद्गुरु ज्योतिर्मठाधीश्वर शंकराचा-र्य हैं।" यह है इससे आपको स्वामी ब्रह्मानन्दजी की स्थिति ज्योतिर्मठाधीश्वर के रूप में ज्ञात हो जायगी।

(२) इससे बढ़ कर आवश्यक चीज़ है श्री

स्वामी ब्रह्मानन्द जी के निम्न प्रकार के अत्यन्त अनुदार विचार जिनको वे लखनऊ तथा अन्य स्थानों में प्रकट करते रहे हैं। उन में से कुछ ये हैं।

(क) गृहस्थों को 'ओ३म्' का जाप नहीं करना चाहिए। ओ३म् के जाप से उनको धन, दौलत, स्त्री पुत्रादि सभी से हाथ धोना पड़ेगा।

(ख) गायत्री मन्त्र के जप तथा वेदाऽध्ययन का स्त्रियों को अधिकार नहीं है।

(ग) स्त्री की योनि से मुक्ति नहीं हो सकती।

(घ) वैश्यादि कुलोत्पन्न गुरु नहीं हो सकते।

कृपया सूचित कीजिये कि क्या आप स्वामी ब्रह्मानन्द जी के इन विचारों से परिचित और सहमत हैं ? यदि देहली में उन्होंने इस प्रकार के अनुदार विचारों का प्रचार किया तो हमें खुले तौर पर उनका विरोध करना पड़ेगा तथा उन्हें शास्त्रार्थ के लिए चुनौती देनी होगी।

आशा है आपकी समिति इन सब बातों पर गम्भीरता से विचार करेगी और कोई अप्रिय वा विषम परिस्थिति न उत्पन्न होने देगी। श्री स्वामी ब्रह्मानन्द जी के वर्तमान पते से भी कृपया सूचित करें। मैं इस पत्र के उत्तर की प्रतीक्षा में रहूँगा

भवदीय

धर्मदेव वि० वा०

स० मन्त्री सार्वदेशिक सभा

जैसे कि ऊपर लिखा जा चुका है इस पत्र का कोई उत्तर हमें अब तक प्राप्त नहीं हुआ। इस बीच में समाचार प्रकाशित हुआ है कि स्वा० ब्रह्मानन्द जी की देहली यात्रा १२ नवम्बर तक के लिए स्थगित हो गई है। हमने जनता की सूचनार्थ इस पत्र को प्रकाशित करना उचित समझा है ताकि इन विचारों से परिचित होते हुए ही विचारशील व्यक्ति उनके स्वागत समारोहादि में भाग लें। हम जानते हैं कि अनेक उदार 'सनातनधर्मावलम्बी' इन उपरिलिखित विचारों से नितान्त असहमत हैं। श्री पं० गंगा प्रसाद जी शास्त्री, प्रधान सनातन धर्ममण्डल देहली तथा श्री पं० चूड़ामणि जी शास्त्री कार्य-निवृत्त आचार्य सनातन धर्म संस्कृत महाविद्यालय मुलतान आदि महानुभावों ने अपने 'अछूतोद्धार निर्णय' तथा 'भारतीय धर्मशास्त्र' नामक ग्रन्थों में शूद्रों तथा स्त्रियों के वेदाधिकारका सप्रमाण प्रतिपादन किया है। हमने अपनी स्त्रियों का वेदाध्ययन और वैदिक कर्मकाण्ड में अधिकार' नामक [सार्वदेशिक सभा देहली द्वारा प्रकाशित] पुस्तक में वेद श्रौत और गृह्यसूत्रों, ब्राह्मणों, उपनिषदों तथा रामायण महाभारतादि के आधार पर स्त्रियों तथा शूद्रकुलोत्पन्न बुद्धिमान् पुरुषों के वेदाधिकार का सविस्तर निरूपण किया है जिसे सत्य जिज्ञासु पढ़कर लाभ उठा सकते हैं। वेदों में 'ओ३म् क्रतोस्मर' इत्यादि मन्त्रों द्वारा परमेश्वर को 'ओ३म्' द्वारा स्मरण करने का विधान है। उपनिषदों में "सर्वे वेदा

यत्पदमामनन्ति तपांसि सर्वाणि च यद्वदन्ति।
यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति, तत्ते पदं संग्रहेण ब्रवीम्योमित्येतत्" ॥

एतद् ध्येवाक्षरं ब्रह्म, एतद् ध्येवाक्षरं परम्
एतद् ध्येवाक्षरं ज्ञात्वा, योयदिच्छति तस्य तत्

कठोपनिषत् (१।२।१५—१६ इत्यादि वचनों द्वारा ओ३म् को परमेश्वर का सर्वोत्तम नाम बताते हुए उसके अवलम्बन द्वारा सब शुभ इच्छाओं की पूर्ति हो सकती है यहां तक कह दिया गया है। इसी प्रकार योग दर्शन में 'तस्य वाचकः प्रणवः' तज्जपस्तदर्थ भावनम्' इत्यादि सूत्रों में ओ३म् को परमेश्वर का अपना सर्वोत्तम नाम बता कर चित्त की एकाग्रता के लिये उसके भावना सहित जप का विधान किया गया है। किंतु स्वामी ब्रह्मानन्द जी इन सब शास्त्रीय आदेशों के विरुद्ध अपनी कपोल कल्पना से गृहस्थों के लिए ओ३म् के जप

को नाशकारक बताते हैं। गायत्री मन्त्र में बुद्धि की पवित्रता की प्रार्थना है उसकी आवश्यकता जैसे पुरुषों को है वैसे स्त्रियों को भी है अतः उससे उनको वञ्चित करना सर्वथा अनुचित और 'ब्रह्मचर्येण कन्या युवानं विन्दते पतिम्' इत्यादि वैदिक आदेशों के विरुद्ध होने के कारण अमान्य है। स्त्री योनि से मुक्ति नहीं हो सकती यह भी उनका विचार स्त्रियों के प्रति हीन भावना का सूचक है अन्यथा ज्ञान, कर्म, उपासना, के द्वारा जैसे पुरुषों को मुक्ति प्राप्त हो सकती है वैसे ही इनके द्वारा स्त्रियों को क्यों नहीं प्राप्त हो सकती ? जन्म से वर्ण-व्यवस्था मानने के कारण ही आपने यह कल्पना की है कि वैश्यकुलोत्पन्न व्यक्ति कितने भी विद्वान्, ज्ञानी, त्यागी और सदाचारी क्यों न हों वे गुरू नहीं बन सकते। यह तो काशी तथा अन्य स्थानों के सुप्रसिद्ध सनातन धर्मावलम्बी विद्वानों की उस व्यवस्था के भी विरुद्ध है (जो भारतीय संस्कृति सम्मेलन काशी द्वारा प्रकाशित हो चुकी है) कि परम्परागत जन्ममूलक वर्ण-व्यवस्था के समान 'कर्मणा वर्णः' का सिद्धान्त भी भारतीय आर्य (हिंदू) धर्म को मान्य है अतः हमारा स्वामी ब्रह्मानन्द जी से निवेदन है कि वे वेदादि सत्यशास्त्रों का मनन करके अपने इन अवैदिक और अनुदार विचारों का परित्याग कर दें अन्यथा यदि देहली आदि में उन्होंने ऐसे विचारों का प्रचार किया तो विचारशील उदार विद्वन्मण्डली की ओर से उनका स्पष्ट रूप से विरोध किया जायगा।

गोवध निषेधक आन्दोलन :—

इस युग में गोवधनिषेधक आन्दोलन के प्रवर्तक स्वनामधन्य महर्षि दयानन्द थे जिन्होंने न केवल अपने भाषणों और सत्यार्थ प्रकाश, गोकरुणानिधि आदि ग्रन्थों द्वारा जनता और शासकों का ध्यान इस आवश्यक विषय की ओर आकृष्ट किया प्रत्युत अपने पत्रों द्वारा लोगों को प्रेरित करके यह यत्न किया कि २ करोड़ व्यक्तियों के हस्ताक्षरों से एक आवेदन पत्र महारानी विक्टोरिया के पास (जो उस समय भारत की सम्राज्ञी थी) भेजा जाए। निम्न लिखित २, पत्र उन की आयोजना पर पूर्ण प्रकाश डालते हैं। १२ मार्च सन् १८८२ को उन्होंने मन्त्री आर्यसमाज दानापुर को निम्न पत्र भेजा :—

"मै आप परोपकार-प्रिय धार्मिक जनों को सब जगत् के उपकारार्थ गाय बैल और भैंस की हत्या के निवारणार्थ दो पत्र एक तो सही करने का और दूसरा जिस के अनुसार सही करनी करानी है भेजता हूँ। इसको आप प्रीति और उत्साहपूर्वक स्वीकार कीजिये जिससे आप महाशय लोगों की कीर्ति इस संसार में सदा विराजमान रहे। इस काम को सिद्ध करने का विचार इस प्रकार किया गया है कि दो करोड़ से अधिक राजे महाराजे और प्रधान आदि महाशय पुरुषों की सही कराके आर्यावर्तीय श्रीमान् गवर्नर जनरल साहेब बहादुर से इस विषय की अर्जी करके ऊपरिलखित गाय आदि पशुओं की हत्या को छुड़वा देना। मुझको दृढ़ निश्चय है कि प्रसन्नतापूर्वक आप लोग इस महोपकारक कार्य को शीघ्र करेंगे। अधिक प्रति भेजने का प्रयोजन यह है कि जहां २ उचित समझें वहां २ भेजकर सही करा लीजिये। दयानन्द सरस्वती, मुम्बई

इसके साथ जो आवेदन पत्र महर्षि दयानन्द ने हस्ताक्षरार्थ लोगों के पास भिजवाया था उसमें लिखा गया था कि 'विश्व में दो ही जीवन के मूल हैं एक अन्न और दूसरा पान। इसी अभिप्राय से आर्यवर शिरोमणि राजे महाराजे और प्रजाजन महोपकारक गाय आदि पशुओं को न आप मारते और न किसी को मारने देते थे। अब भी इन गाय, बैल और भैंस को मारने और मरवाने देना नहीं चाहते हैं

क्योंकि अन्न और पान की बहुताई इन्हीं से होती है। इससे सबका जीवन सुख से हो सकता है। जितना राजा और प्रजा का नुक्सान इनके मारने और मरवाने से होता है उतना अन्य किसी कर्म से नहीं।........... इस लिये हम सब लोग स्वप्रजा की हितैषणी श्रीमती राज राजेश्वरी क्वीन विक्टोरिया की न्यायप्रणाली में जो यह अन्याय रूप बड़े २ उपकारक गाय आदि पशुओं की हत्या होती है इसको इनके राज्य में से प्रार्थना से छुड़वा के अति प्रसन्न होना चाहते हैं। यह हमको पूरा निश्चय है कि विद्या, धर्म, प्रजाहित-प्रिय श्रीमती राज-राजेश्वरी क्वीन् महाराणी विक्टोरिया पार्लियामेन्ट सभा और सर्वोपरि प्रधान आर्यावर्तस्थ श्रीमान् गवर्नर जनरल साहिब बहादुर सम्प्रति इस बड़ी हानिकारक गाय बैल तथा भैंस की हत्या को उत्साह और प्रसन्नता-पूर्वक शीघ्र बन्द कर के हम सब को परम आनन्दित करें। देखिये कि उक्त गाय आदि पशुओं को मारने और मरवाने से दूध घी और किसानों की कितनी हानि होकर राजा और प्रजा की बड़ी हानि होगई और नित्यप्रति अधिक २ होती जाती है।...... परमदयालु न्यायकारी सर्वान्तर्यामी सर्वशक्तिमान् परमात्मा इस समस्त जगदुपकारक काम करने में ऐकमत्य करें।'

यह बड़े दुर्भाग्य की बात है कि महर्षि दयानन्द का प्रयत्न उनके जीवन काल में सफल न हो सका किन्तु आर्यसमाज इस विषय में सदा प्रयत्नशील रहा कि इस आन्दोलन को प्रबल बनाया जाए। गोरक्षा-सम्मेलन, आर्य महासम्मेलनादि द्वारा इस दिशा मे सदा प्रयत्न किया जाता रहा। देश के स्वतन्त्र होने पर भी सार्वदेशिक सभा ने गोवध निषेध विषयक प्रस्ताव भेजने के लिये सब आर्यसमाजों को आदेश दिया था और ऐसा ही आदेश भारतवर्षीय आर्यकुमार परिषत् के प्रधानरूप में मैंने सब आर्यकुमार सभाओं को दिया था जिसके अनुसार कार्य किया गया। उसके पश्चात् देश की कुछ अन्य संस्थाओं ने जिनमें रामराज्य परिषत् का नाम उल्लेखनीय है इस प्रश्न को लेकर विशेष आन्दोलन और सत्याग्रह भी किया जिसके साथ हिन्दू कोड बिल आदि विषय मिले होने के कारण उसे प्रायः राजनैतिक चाल समझा गया। अब राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ ने इस आन्दोलन को उठाने का निश्चय किया है। इसमें कोई नवीनता वा मौलिकता न होते हुए भी हम उसके इस निश्चय का अभिनन्दन करते हैं। आर्य समाज तो महर्षि के आदेशानुसार प्रारम्भ से ही इस कार्य का नेतृत्व करता रहा है अतः उसका सहयोग ऐसे पुण्य कार्य में होगा ही किन्तु यह आवश्यक है कि इसे राजनैतिक उद्देश्य की पूर्ति का साधन बनाने का प्रयत्न न किया जाए प्रत्युत जैसे कि महर्षि द्वारा प्रस्तुत आवेदन पत्र मे निर्दिष्ट किया गया है इसे सवप्राणिहित की उदार दृष्टि से ही उत्साहपूर्वक चला कर और सब विचारशील नर नारियों का सहयोग प्राप्त कर पूर्णतया सफल बनाने का प्रयत्न किया जाए। आर्यावर्त के स्वतन्त्र होने पर भी गोवध का बन्द न होना उस पर महान् कलङ्क है जिसको दूर किये बिना आर्यों को विश्राम न करना चाहिये चाहे उसके लिये कितने ही कष्ट सहन करने पड़ें। केवल हस्ताक्षर कराने अथवा सड़कों पर गोहत्या बन्द हो, ऐसा लिख देने से ही इस उद्देश्य की पूर्ति नहीं हो सकती। हमारा केन्द्रीय तथा प्रादेशिक सरकारों से भी सानुरोध निवेदन है कि वे अत्यन्त महत्वपूर्ण इस गोहत्या निषेध की युक्तियुक्त न्यायसंगत मांग को अविलम्ब स्वीकृत करके पुण्य, और यश की भागिनी बनें। भारतीय संविधान के निर्देशक सिद्धान्तों में तो गोवध निषेध को स्वीकार किया ही जा चुका है अब इसे अति शीघ्र कानून का रूप मिलना चाहिये तभी सरकार लोकप्रिय हो सकेगी

अन्यथा नहीं ॥

कुछ ईसाई प्रचारकों की धूर्तता:—

हमारे देश में इस समय असाम्प्रदायिक शासन है अत: मत-मतान्तरों के प्रचारकों को भी अपने मन्तव्यों के प्रचार की पूर्ण स्वतन्त्रता है किंतु हमें यह देख कर दु:ख होता है कि कई ईसाई प्रचारक इस स्वतन्त्रता का दुरुपयोग कर रहे हैं। भोली भाली, प्राय: अल्पशिक्षित निर्धन जनता में प्रचार करके अनेक प्रकार के प्रलोभन उन्हें देकर फुसलाने के लिए वे पहले भी अपख्याति प्राप्त कर चुके हैं किंतु अब उनकी धूर्तता का जो उदाहरण हमारे सन्मुख आया है वह नितान्त निंदनीय है। वस्तुत: उनके लिए यह कोई नई बात नहीं। ३, ४ शताब्दी पूर्व भी इन्होंने यजुर्वेद के नाम से ब्राह्मणों में ईसाई मत के प्रचार का कुत्सित प्रयत्न किया था उसी की पुनरावृत्ति की जा रही है जिस की ओर जनताका ध्यान आकृष्ट करना उसे सावधान करने के लिए उचित प्रतीत होता है। इस टिप्पणी को लिखते हुए हमारे हाथ में स्वामी सत्यपाल एब्राहम एम० ए० संचालक व अध्यक्ष स्वतन्त्र आर्य समाज ३ एवे काटेज सिविल लाइन्स झांसी (उत्तरप्रदेश) द्वारा प्रकाशित "स्वतन्त्र आर्य समाज के नियम" नामक ८ पृष्ठों की पुस्तिका है जिसके पढ़ने से ज्ञात होता है कि भोली भाली जनता को बहकाने के लिए इन्होंने ईसाई मत का प्रचार करने के उद्देश्य से "स्वतन्त्र आर्य समाज" नामक संस्था झांसी में चला रखी है जिसके १० नियम लगभग उसी प्रकार के हैं जैसे आर्य समाज के हैं पर जिनके शब्दों को अपनी इच्छानुसार मरोड़ तरोड़ कर कपोलकल्पित व्याख्या ईसाई मन्तव्यों की पुष्टि में की गई है। उदाहरणार्थ प्रथम नियम इन शब्दों में रखा गया है:—"ज्ञाता व ज्ञेय सहित समस्त सृष्टि का कर्ता व नियामक परमेश्वर है।" उसकी टिप्पणी में आप लिखते हैं :—स्वयं परमेश्वर ही अनादि है, शेष सृष्टि है जो जड़ता, पाप, अज्ञान आदि के कारण भी परमेश्वर से बिल्कुल पृथक् और भिन्न है और शून्य से बनाई गई। ....परमेश्वर ही जिज्ञासु हीन खोजी मनुष्य पर मनुष्य रूप में स्वयं व चेतन वैयक्तिक रूप में अपने सत्य को प्रकट करता है। परमेश्वर ने मनुष्य को अपने स्वरूप में रचा।

द्वितीय नियम आपने इन शब्दों में रखा है:—'परमेश्वर अनादि' ऱ्येक व्यक्ति, सर्वज्ञ. पवित्र, न्यायी, सर्व शक्तिमान्, दयामय प्रेमी और मनुष्य की सारी खोजों का एक मात्र उचित व अन्तिम लक्ष्य है। वही जिज्ञासु व खोजी के लिए प्रकट होने वाला, उद्धार करने वाला, पवित्र करने वाला व न्याय पूर्वक पाप क्षमा करने वाला है। उसे प्रत्यक्ष जान कर उसी की संगति, आधीनता व उपासना करनी योग्य है। उसके गुण उसे जान कर सत्य वेद वा तर्क से जाने जाते हैं।" इस पर टिप्पणी देते हुए ईसाईयों के त्रित्व वा Tinity के मन्तव्य के समर्थन का ऊट पटांग युक्तियों और उदाहरणों द्वारा यत्न किया गया है जिसका सम्पूर्ण उल्लेख यहां अनावश्यक है। तृतीय नियम इस प्रकार है:—

"परमेश्वर का सार्वभौम कल्याणकारी उद्धारक सत्य वचन अर्थात् सारे ईश्वरीय वचनों का लिखित समुच्चय ही वेद है उसे पढ़ना, पढ़ाना, सुनना, सुनाना, प्रचार करना, कराना, सब आर्यों, वरन् मनुष्य मात्र का परम धर्म है। उसी के आधार पर सच्ची प्रार्थना, उपासना संगति व सेवा होती है।" इस प्रकार आर्य समाज के वेद विषयक नियम में कल्पित परिवर्तन करके उस पर ऐसी टिप्पणी दी गई है जिससे बाइबल ही सच्चा वेद सिद्ध हो और फिर लिखा है कि 'इस वेद के विरोधियों के मन बुद्धि भ्रष्ट हो जाते हैं।"

चतुर्थ नियम आर्य समाज के नियमके ही शब्दों

में 'सत्य के ग्रहण करने और असत्यके छोड़ने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिये,' यह है पर उसकी टिप्पणी में लिखा है कि 'जो तर्क की कसौटी पर ठीक उतरे वही सत्य है। यदि तर्क से स्वामी दयानन्द, राजा राम मोहन राय, गांधी जी आदि भी भारत को ईश्वरीय प्रेम व सत्य से दूर ले जाने वाले ठहरें और उनके लेख, टीका, व्याख्यान, विचार व कर्म अज्ञान पूर्ण हों तो खेद के के साथ सत्य को मान लेना चाहिये। यदि तर्क से प्रभु यीशु मसीह ही एक मात्र अवतार व बाईबल ही एक मात्र सत्यवेद सिद्ध होता है तो उन्हें ग्रहण करने में संकोच न करना चाहिये।

पञ्चम नियम है 'सब कार्य परमेश्वर या उसे जानने वालों या उसके सत्य वेद की आधीनता व संगति में रह कर करना चाहिये'।

षष्ठ नियम में कहा है: —

'पड़ोसी से अपने समान प्रेम करना चाहिये'।

सप्तम नियम में लिखा है:— 'सबसे ईश्वरीय न्याय, सत्य व प्रेम के साथ यथायोग्य बरतना चाहिये'। इस पर टिप्पणी करते हुए आप लिखते हैं कि 'पाश्चात्य शासकों तथा ईसाईयों व ईसाई मिशनरियों ने भारत व हिंदू समाज को सारे क्षेत्रों में जीवित आदर्श दिये व अनुपम सेवाएं कीं। उस उपकार व इस कृतघ्नता का इतिहास में शायद ही कोई उदाहरण हो"।

अष्टम नियम 'असत्य व अज्ञान का नाश व सत्य व ज्ञान की वृद्धि करनी चाहिये।' इस पर टिप्पणी करते हुए आप लिखते हैं कि सत्यज्ञान व जो कुछ उनके आधार पर है उसका स्वीकार प्रचार व आदर करना कराना व जो कुछ इस के विरुद्ध है उस का त्याग व खण्डन व सुधार करना कराना उचित है। इसी आधार पर स्वामी दयानन्द, उनकी मानी पुस्तकें, उन के भाष्य तथा स्वतन्त्र लेख या रचनाएं, उनके सिद्धान्तों, उनके प्रचारित यज्ञों व सोलह संस्कारों व ग्रन्थों, आलोचनाओं आदि का भी विचार व न्याय करना चाहिये। नवम नियम 'पड़ोसी की भी उन्नति की चिन्ता करनी चाहिये' और दसवां नियम वैयक्तिक स्वतन्त्रता के साथ सामाजिक संगठन, सहकारिता व एकता को भी स्थिर रखना चाहिये' इसकी विचित्र व्याख्या करते हुए श्री ब्रह्म सत्यपाल लिखते हैं ' 'एक परमेश्वर का ज्ञाता व सेवक स्वतन्त्र आर्यसमाज का संचालक व अध्यक्ष है। उसकी परमेश्वर की आत्मिक बौद्धिक बाइबल—क्रीष्टियान मण्डली व अन्य आने वाली प्रत्येक संस्था सत्य व तर्क पर आश्रित है व होगी। प्रत्येक सदस्य को कितनी स्वतन्त्रता उचित है इस का अन्तिम निर्णय वही करता है।"

'स्वतंत्र आर्य समाज दयानन्दी सोलह संस्कारों पंच महायज्ञों, वर्णाश्रमों आदि के ढोंगों, अपव्ययों व पाखण्डों को रद्द करता है। शिखा सूत्र आदि को ऐक्य व व्यक्तिगत सुविधा व स्वतंत्रताके विरुद्ध अत्यावश्यक चिन्ह व बंधन मानता है।" इत्यादि।

पाठक देखेंगे कि लोगों को ईसाई मत में दीक्षित करने के लिये कैसे आर्यसमाज के नाम और उस के नियमों का दुरुपयोग करके उसके साथ 'स्वतन्त्र' शब्द जोड़ कर मनमाने परिवर्तन कर दिये गये हैं। हम ईसाइयों की इस चेष्टा को सर्वथा अनुचित और धूर्ततापूर्ण समझते हुए इस का घोर प्रतिवाद करते हैं। विधि (कानून) की दृष्टि से इस प्रकार का भ्रान्ति जनक कार्य करने का उन्हें अधिकार है या नहीं इस बात को अभी छोड़ भी दिया जाए तो भी सर्वसाधारण विशेषतः भोली भाली जनता को बहकाने के लिये आर्यसमाज और उस के नियमों के साथ खिलवाड़ करते हुए ईसाई मत का प्रचार नितान्त निन्दनीय है। हम ईसाई प्रचारकों के इन हथकण्डों से जनता को सावधान करते हुए आशा करते है कि कोई उनके जाल में न फंसेगा क्योंकि उनके अनेक मन्तव्य सर्वथा बुद्धिविरुद्ध तथा अन्धविश्वास पूर्ण हैं जैसा कि सत्यार्थ प्रकाशादि में भली प्रकार सिद्ध किया गया है।

———

आर्यसमाज में लेख का काम

[श्री चतुरसेन गुप्त, आजीवन सदस्य, आर्य सार्वदेशिक सभा देहली]

महर्षि दयानन्द ने अपने जीवन के प्रचार काल में जहां स्थान २ पर हजारों व्याख्यान दिये, शास्त्रार्थ किए, आर्य समाजें स्थापित की, संस्कृत पाठशालायें खुलवाईं, गो रक्षा के लिए आन्दोलन किया, वहां लेख द्वारा भी आर्य जाति और साहित्य की महती सेवा की। महर्षि ने वेद भाष्य तथा सत्यार्थ प्रकाश आदि अनेक पुस्तके ऐसी लिखीं जो महर्षि की अमर कृति है जो आज ही नहीं - युग-युगों तक आर्य जाति किंवा मानव मात्र को सत्य मार्ग, नव चेतना, एवं स्फूर्ति देती रहेगी। आर्य जाति का यह दुर्भाग्य था कि महर्षि असमय में ही आर्यजाति से विदा होकर निर्वाण पद में लीन हो गए, यदि महर्षि कुछ वर्ष और जीवित रहते तो निश्चय था कि सम्पूर्ण वेद भाष्य करने के साथ अन्यान्य ग्रन्थ भी आर्य जाति को दे जाते। परन्तु 'ईश्वर तेरी इच्छा पूर्ण हो' के अतिरिक्त और कोई चारा नहीं। अत सिद्ध है कि महर्षि, संस्थाऐ स्थापित करने तथा नानाप्रकार के आन्दोलन, शास्त्रार्थ और व्याख्यान के साथ २ लेख के काय को भी महत्त्व पूर्ण एवं सर्वोपरि समझते थे।

महर्षि के पश्चात् धर्मवीर पं० लेखराम जी आर्य मुसाफिर भी महर्षि के पथ पर चले, शास्त्रार्थ किए, व्याख्यान दिये, आर्य समाजों की स्थापना की परन्तु साथ ही लेख का कार्य बराबर करते रहे। और अन्त मे आर्य समाज को यह आदेश दे गए कि "आर्य समाज में लेख का कार्य बन्द न हो।"

धर्म वीर के पश्चात् वैसे तो अनेक आर्य विद्वान् ऐसे हुए जिन्होंने व्याख्यानों और शास्त्रार्थों के साथ - लेख का भारी कार्य किया, पुस्तकें लिखीं, वेद, दर्शन, उपनिषद् स्मृति नीति आदि पर भाष्य लिखे, ऐसे विद्वानों में प० तुलसीराम जी स्वामी, प० राजारामजी शास्त्री, महामहोपाध्याय प० आर्यमुनि जी, महात्मा मुन्शीराम जी आदि का नाम प्रशंसनीय है परन्तु श्री स्वामी दर्शनानन्द जी के लेख का कार्य तो आर्यसमाज के लिए भारी देन थी। पूज्य स्वामी जी जहा व्याख्यान देते, तथा गुरुकुलों की स्थापना करते, शास्त्रार्थ करते, वहा पुस्तके भी लिखते, दर्शन आदि पर भाष्य करते तथा छोटे छोटे ट्रैक्ट लिखकर वितरण कराते रहते थे। अनुमान है कि श्री स्वामी जी महाराज ने अपने जीवन मे आठ सौ के लगभग छोटे-बड़े ट्रैक्ट लिखे थे। उस समय श्री स्वामी जी महाराज ट्रैक्टों की मशीन कहे जाते थे।

श्री स्वामी जी अनुभव करते थे कि व्याख्यान से तो क्षणिक ज्ञान होता है स्थायी ज्ञान केलिएलेखही आवश्यक है। लेखबद्ध ज्ञान स्थायी सम्पत्ति होता है। कहते हैं कि श्री स्वामी जी महाराज जहाँ जाते, वहा जिस विषय पर व्याख्यान देते, उसी विषय पर ट्रैक्ट लिख कर आर्य समाज के अधिकारियों को दे जाते कि इसे छपवा कर जनता में वितरण करा देना।

महर्षि दयानन्द से लेकर स्वामी दर्शनानन्द तक आर्य समाज में लेख का कार्य बड़े वेग से चला जिससे आर्य जनता का स्वाध्याय बढ़ता गया। परिणाम यह हुआ कि साधारण हिन्दी उर्दू के जानने वाले आर्य बन्धु वैदिक सिद्धान्तों के मर्मज्ञ बन गए। एक एक आर्य सदस्य विरोधियों को युक्ति युक्त उत्तर देने और वैदिक सिद्धान्तों को समझने समझाने की क्षमता रखने लगा था। यह केवल लेख द्वारा कार्य का ही चमत्कार था।

परन्तु आज की दशा शोचनीय है, अनेक आर्य विद्वानों मे लिखने का उत्साह नहीं—लिखें तो निराशा का मुँह देखने को मिलता है। आर्य जनता में स्वाध्याय न्यून हो चला, जिसके कारण वैदिक सिद्धान्तों का ज्ञान अत्यल्प होने से धर्म में भी आस्था घटती जा रही है।

दूसरी ओर आप देखेंगे तो अनुभव होगा कि अन्य मतवादी लोग तीव्र गतिसे लेख के कार्य मे संलग्न है। पुस्तकें, ट्रैक्ट समाचार पत्र आदि में वे भारी प्रगति कर रहे हैं। ऊंचे से ऊंचा सस्ते से सस्ता और सुन्दर से सुन्दरतम साहित्य प्रकाशित किया जा रहा है। दो चार उदाहरण से आप अनुभव करेंगे कि हम कहां खड़े हैं:—

(१) संस्कृत साहित्य के प्रसिद्ध नीति ग्रन्थ पंच तन्त्र को अमेरिका के एक बुकसेलर ने लाखों की सख्या मे छपवाकर के वल १॥) मे विश्व भर में बेचा गया। परन्तु हमारे देश में हमारा ही, यह ग्रन्थ आज ५) में भी अप्राप्य है।

(२) दिल्ली से एक मुसलमान की उर्दू पत्रिका जिसकी एक का मूल्य आठ आना है, एक लाख बीस हजार प्रति मास छपती है जो देश विदेश में खपती है और घाटे में नहीं:—भारी लाभ में चल रही है।

(३) दिल्ली से एक मुसलमान ने 'आर्यावर्त' नामक उर्दू पत्र निकाला हुआ है जो भारी संख्या में छपता है जिसे अनेक आर्य-हिन्दू आर्यावर्त नाम देख कर खरीद तो लेते हैं पर बाद में पछताते हैं।

(४) गीता प्रेस गोरखपुर को कौन नहीं जानता जिसने कल्याण तथा सैंकड़ो पुस्तके प्रकाशित कर बड़ी ख्याति प्राप्त की है।

इसप्रकार के अनेक उदाहरण दिये जा सकते हैं। मैं चाहता हूं कि समाज द्वारा प्रकाशितपत्र चाहे वे साप्ताहिक हों या मासिक, आत्म निरीक्षण करे कि हम कहाँ हैं, किस परिस्थिति में है, और हानि में हैं या लाभ में, यदि हानि मे हैं तो क्यों?

अन्त मे मैं एक सुझाव आपकी सेवा मे उपस्थित करता हुआ प्रार्थना करता हूँ कि आप इस पर विचार करने की कृपा करेंगे :—

(१) आर्य समाज के अधिकारियों में पुस्तकाध्यक्ष का चुनाव तो होता है। परन्तु चुनाव के अवसर पर पुस्तकाध्यक्ष से यह नहीं पूछा जाता कि आपने पुस्तकों द्वारा किस प्रकार से, और कितना प्रचार कार्य किया है। यदि आर्य समाज के पुस्तकाध्यक्ष महोदय यह अनुभव कर लें कि उच्च कोटि के आर्य साहित्य को ग्राम ग्राम और घर घर में पहुँचाना मेरा काम है तो यह निश्चय है कि आप बड़ा भारी प्रचार कार्य कर सकेंगे।

साहित्य द्वारा प्रचार की एक महान् घटना

पूज्य श्री महात्मा नारायण स्वामी जी महाराज कहा करते थे कि एक ग्राम का चौकीदार प्रति रात्रि में :—

"पाँच हजार वर्ष के सोने वालो जागो"

यह आवाज लगाया करता था। एक दिन गांव के समझदार लोगों ने इस चौकी दार से

पूछा कि तू रात्रि में क्या नारा लगाया करता है। इस नारे से तेरा क्या अभिप्राय है।

चौकीदार ने उत्तर दिया कि मेरे इस नारे का अभिप्राय एक पुस्तक में है, उसे मगा कर पढ़ लो, आपको मेरा अभिप्राय विदित हो जावेगा। उस पुस्तक का नाम है सत्यार्थ प्रकाश

ग्राम निवासियों ने सत्यार्थप्रकाश मगाई, घर घर में पढ़ी गई और सारा ग्राम आर्य समाजी हो गया।

इसी प्रकार की अनेक घटनायें हुई हैं जो विस्तार भय से नहीं दी जा सकतीं।

इस एक उदाहरण से ही आप अनुभव कर सकेंगे कि लेख द्वारा कितना ठोस प्रचार हो सकता है। इस लिए प्रत्येक आर्य सदस्य को लेख द्वारा प्रचार कार्य करना ही चाहिए।

कितने खेद की बात है कि ७५ वर्ष के जीवन काल में अंग्रेजी सत्यार्थप्रकाश की पांच हजार प्रतियाँ और महर्षि के जीवन चरित्र की (अंग्रेजी अनुवाद) दो हजार प्रति भी हम विश्व को नहीं दे सके ऐसी दशा में कृण्वन्तो विश्वमार्यम् का नारा कैसे सफल होगा? अतः आर्य सज्जनो!

हम पर ऋषि का महान् उत्तरदायित्व है हम ऋषि के ऋणी हैं। ऋषि ऋण चुकाना हमारे परम कर्तव्यों में से एक है। और उसका एक मुख्य साधन है लेख द्वारा वैदिक धर्म प्रचार।

भारतीय संस्कृति में हमारा नाम

आर्य

[ले० पं० चूड़ामणि श्री शास्त्री, कार्यनिवृत्त आचार्य सनातन धर्म कालिज, मुलतान।]

'वैदिक काल से हमारा नाम 'आर्य' चला आ रहा है' यह संस्कृति भी हमें वेदों से ही मिली है। वेदों के अनेक स्थलों में आर्य्य शब्द की चर्चा है 'आर्य' शब्द योगरूढ़ है-इसका श्रेष्ठ अर्थ भी है और वह आर्य जातिवाचक भी है। इसी 'आर्य्य' संज्ञा के आधार पर मनु आदि ऋषियों ने इनके निवास स्थान का नाम आर्य्यावर्त रक्खा था। ६७१ ई० में भारत में आने वाले ईत्सिंग नामक यात्री ने लिखा है कि—'यह आर्य्य देश के नाम से प्रसिद्ध है। इसमें उत्तम चरित्र वाले लोग बराबर उत्पन्न होते रहे हैं...... उत्तरी जातियां ही इस उत्तम देश को हिन्तु (चीनी में) (हिन्दु)

आ समुद्रात्तु वै पूर्वादा समुद्रात्तु पश्चिमात्। तयोरेवान्तरं गिर्य्योरार्य्यावर्तं विदुर्बुधाः। २।२२ मनुः। यहां विन्ध्याचल भी वा. रा० ६० सर्ग ७ श्लोक के अनुसार समुद्रतटवर्ती लिया जाता है न कि दक्षिण मध्यवर्ती।

कहती हैं लेकिन यह नाम कदापि प्रसिद्ध नहीं, आर्य्यदेश के लोग इस नाम को नहीं जानते। इस देश के लिये सबसे उचित नाम 'आर्य्यदेश' ही है। (हिन्दुस्तान की कहानी २३४ पृ०)

भारतीय और वैदेशिक साक्षियों से हमें अनायत्या (लाचार होकर) कहना पड़ता है कि भारतीय विद्वानों ने दूसरे कुछ विषयों की तरह इस विषय में भी भूल की—ऋषिकृत आर्य्य नाम को भूलकर विदेशियों से रक्खे हुए 'हिन्दु' नाम को अपना बैठे। उनके जातिपरक 'हिन्दु' नाम को जैसे हमने अपना लिया वैसे देश के नाम 'हिन्दुस्तान' को भी अपना बैठे। ऐसा स्वीकार करने मे हमारी पराजित (दास मनोवृत्ति ही कारण मानी जा सकती है जैसे शासक अंग्रेजों ने हमारा नाम इन्डियन और हमारे देश का नाम 'इन्डिया' रक्खा तो हम भी—पढ़े लिखे विद्वान भी–अपने को इन्डियन और अपने देश का नाम 'इंडिया' मानने में गर्व समझने लगे। यही दशा तब भी हुई। पर यह हमसे बड़ी से बड़ी भूल हुई हैं।

हम यह भी मानते हैं कि 'हिन्दु' का मूल तत्त्व सिन्धु और 'इन्डियन' का मूलतत्त्व इन्डस नदी (सिन्धु) होने से मूलतत्त्व में भारतीय है परन्तु यह नाम भारतीय ऋषिकृत नहीं है विदेशियों का रक्खा हुआ है यह तो निर्विवाद सिद्ध है। 'स' को 'ह' कहने का अपभ्रंश तो अवश्य विदेशी है। वे लोग सप्तसिन्धु को हफ्तहिन्दु और 'सप्ताह' को 'हफ्ता' अब भी कहते हैं। अतः सिन्धु के आधार पर 'हिन्दु' नाम अवश्य वैदेशिक है। हम तो अब भी सिन्धु नदी को सिन्ध और उसके पास रहने वालों को सिंधी कहते हैं। दूसरा—हमारे प्राचीन सम्पूर्ण साहित्यमें 'आर्य्य' शब्द ही प्रयुक्त होता चला आया है 'हिन्दु' कहीं भी नहीं मिलता। पीछे के पुस्तकों में 'हिन्दु' शब्द अवश्य आया है जो हमारी दासता का सूचक है। अतः उसका कोई महत्त्व नहीं।

यदि हमारा अपना कोई नाम न होता तब भी कुछ सहारा मिल जाता। पर जब हमारा सर्वोत्तम व्यापक ऐतिहासिक नाम 'आर्य्य' विद्यमान है तो दासतासूचक विदेशी नाम को क्यों अपनावें।

हमारी विधान सभा ने जैसे अपने देश के प्राचीन भारत नाम को सम्मुख रख कर और 'हिन्दुस्तान' को विदेशी जान कर विधान से उसे निकाल कर भारत नाम स्वीकृत किया है वैसे 'हिन्दु' नाम की दासता की जंजीर को भी हम उतारें। समय आने वाला है जब भारतीय विद्वान् यह भी अनुभव करेंगे कि हमारी भाषा का नाम भी 'हिन्दी' न होकर 'भारती' रखा जाय। इसमें भी दासता का बीज विद्यमान है। जब हम आर्य आर्य्यावर्त या भारतवर्ष तथा 'भारती' नामों को अपना लेंगे तब हम अपने को दासतामुक्त समझेंगे। मेरा तो यह निश्चय है कि—जब तक हिन्दु और हिन्दी ये शब्द जीवित हैं तब तक हम जीवित नहीं हैं—मरे हुए हैं—गुलाम हैं। अपना आर्य्य नाम अपना लेने पर ही हम अपने को पुनर्जीवित समझेंगे।

हिन्दु सभा को अपना नाम आर्य्यसभा रखना चाहिये। वह समय गया जब आर्य्य समाजियों को ही 'आर्य्य'कहा जाता था। हमें श्री स्वामी दयानन्द जी का अवश्य कृतज्ञ होना चाहिये कि उन्होंने इस संज्ञा को पुनः चालू किया। जैसे 'समाज' शब्द आज व्यापक रूप धारण कर चुका है वैसे 'आर्य्य' शब्द भी व्यापक हो जाएगा। अतः भारतीय संस्कृति हमें 'आर्य्य' संज्ञा के लिये प्रेरित करती है।

विश्वशान्ति और धर्म

(ले० पं० रामस्वरूप जी शास्त्री काव्यतीर्थ)

प्रश्न होता है कि क्या धर्म से विश्वशान्ति सम्भव है तो उत्तर मे राजनीति के पण्डित यही कहेगे कि बिलकुल उल्टी बात विश्वशान्ति के लिये बतलाई जा रही है। ठीक भी तो है धर्म का जो स्वरूप हमारे सामने रक्खा गया है उसने तो घोर अशान्ति को ही जन्म दिया है। उससे शान्ति की आशा करना मृगतृष्णा के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। वास्तव में आज संसार जिस वस्तु को धर्म समझता है वह तो धर्म नहीं वह तो साम्प्रदायिकता की भभकती हुई भट्टी है। उसमें पड़ कर तो विनाश है उससे ही आज संसार मे अशान्ति है और जब धर्म के नाम पर साम्प्रदायिकता का बोल बाला रहेगा तब तक कैसी शान्ति और कैसा सुख। लोग पूछते हैं कि तुम्हारा धर्म क्या ,है इसके उत्तर मे जैन, बौद्ध, ईसाई मुसलमान,यहूदी, पारसी, सिक्ख आदि सम्प्रायों का धर्म बतलाया जाता है। उपरि लिखित मतों के अनुयायी कहते हैं कि हमारे धर्म ग्रन्थों में जो कुछ लिखा है वही मोक्ष का मार्ग है। वह मोक्ष का मार्ग है या नहीं यह बात तो विचारणीय तथा साध्यकोटिकी है परन्तु यह तो मानना ही पड़ेगा कि इन सब मतों के साथ धर्म का सम्बन्ध जुड़ा हुआ है और वह धर्म आत्मा को उद्बुद्ध कराने वाला धर्म समझा जाता है किन्तु बात जो ऊपर बतलाई गई है अर्थात् यह साम्प्रदायिकता है और अशान्तिके बीज बोने वाली वही मतान्धता है। संसार में धर्म के भी तो अनेक स्वरूप हैं हम प्रतिदिन कहते हैं कि वह राजधर्म है, यह प्रजाधर्म है, इसी प्रकार जाति धर्म, कुल धर्म, स्वामि धर्म, सेवक धर्म इत्यादि नामों के अनेक धर्म हैं, सब एक दूसरे से भिन्न हैं जो राजा का धर्म है वह प्रजा का नहीं जो प्रजा का है वह राजा का नहीं। इससे यह सिद्ध हुआ कि धर्म के यथार्थ स्वरूप को हमने अभी तक नहीं समझा। दूसरे शब्दों में यह कहना चाहिये कि इन स्थानों पर कर्तव्य और अकर्तव्य का नाम ही धर्म और अधर्म समझाया जाता है। इन स्थानों पर एक धर्म दूसरे धर्म से सर्वथा विपरीत है। इन सब बातों को ध्यान में रखने सशय में पड़जायेंगे कि वास्तव में हिन्दू मुसलमान, ईसाई धर्मों को यदि हम धर्म के नाम से पुकारेंगे तो हमें मानना ही पड़ेगा कि किसी ने धर्म के स्वरूप को ठीक ठीक नहीं समझा। उसे ही यदि हम धर्म कहेंगे तो संसार में शान्ति स्थापन का मार्ग कौनसा होगा। मुसलमान ईसाई से चिढ़ता है तो ईसाई यहूदियों को अपने पास न बैठने देना चाहता। यह धर्म क्या, हुआ। इसने तो अधर्म के भी कान काट लिये और संसार में इससे अधिक घृणित और विपाक वस्तु क्या हो सकती है ? तात्पर्य यह निकला कि मजहबों या मत-मतान्तरों का नाम यदि धर्म रक्खा जायगा तो धर्म शब्द के साथ अन्याय किया जायगा। भले ही उन ही मतों के अनुयायी अपने मत को धर्म बना कर संसार को उसे अपनाने के लिये दुराग्रह करे इससे हमारा कुछ भी प्रयोजन सिद्ध नहीं होता,

हमें तो संसार में कर्तव्य और अकर्तव्य को देखना है। क्या धर्म के नाम पर हकीकत का वध करना और गुरु गोविन्दसिंह के बच्चों को दीवार में चुनवा देना मानवोचित कर्म है? यदि यही धर्म है तो संसार में अधर्म, पाप या जघन्य काम और क्या होंगे? इससे निष्कर्ष यह निकला कि मत मतान्तरों को या साम्प्रदायिकता को धर्म बतला कर हम लोगों को जितना गुमराह करेंगे उतना ही अधर्म बढ़ेगा और मानव उन्नति के बजाय अवनति के गहरे गर्त में गिरता चला जायगा। धर्म का अर्थ तो धारण करने वाला है और धर्म के नाम पर सारे काम विपरीत अर्थात् अधर्म के हो रहे हैं। धर्म शब्द संस्कृत का है जो धृ धातुसे बनाहै। इस धातु काअर्थ धारण करना है। जो धारण करने वाला न हो वह धर्म कैसे हो सकता है?

यह देखा गया कि नित्य के व्यवहार में हम जिस धर्म शब्द का उपयोग करते हैं वह "पारलौकिक सुख का मार्ग" है। हम कहते हैं कि धर्म करो वही सुख का देने वाला है। शास्त्र कारों ने भी "अथातो धर्म जिज्ञासा" आदि सूत्रों में जिस धर्म का उल्लेख किया है वह भी पारलौकिक सुखका मार्गहै इस हिसाबसे मुसलमानी धर्म, ईसाई धर्म, जैन धर्म, बुद्ध धर्म की भी हम विवेचना करें तो वह यही कहेंगे कि हमारा भी अभिप्राय यहां अपने धर्म से "पारलौकिक सुख" अभिप्रेत है। यह बात तो ठीक परन्तु लोक में तो दुःख और अशान्ति तथा पर लोक में सुख की प्राप्ति यह दोनों बातें बन नहीं सकती। इस लिये कहना पड़ेगा कि धर्म के यथार्थ स्वरूप को धात्वर्थ के अनुरूप हमने नहीं जाना। तभी तो ससार में, ईर्ष्या, द्वेष, कलह, दम्भ, छप, कपट, मक्कारी इत्यादि सारे कुकर्म धर्म के नाम पर हो रहे हैं और पारलौकिक सुख का मार्ग बतला कर लोगों को मार्ग भ्रष्ट किया जा रहा है। मत वादियों अथवा सम्प्रदाय प्रवर्तकों की परस्पर विरोधी बातों का परित्याग कर हमें साधारण धर्म के तत्त्व को देखना चाहिये। जैसा कि ऊपर बतलाया गया है कि धृ धातु से धारण करने के अर्थ में धर्म शब्द का प्रयोग हुआ है। इसी बात को महाभारत कारने इस रूप में प्रकट किया है कि :—

धारणाद्धर्ममि त्याहुः धर्मो धारयते प्रजाः।
यस्याद्धारणसंयुक्तं, स धर्म इति निश्चयः॥

अर्थात् धारण करने वाला धर्म है, धर्म प्रजाओं को धारण करता है। जिससे समस्त प्रजाओं का धारण हो वही निश्चय से धर्म है। इस कसौटी पर कसने से सारे मतवादियों के धर्म विलीन हो जाते हैं। अब हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि जिस काम के करने से समाज की व्यवस्था मे गड़बड़ी न पड़े वही धर्म है। यदि वह धर्म छूट जाता है तो समाज के सारे बन्धन टूट जाते हैं। समाज के बन्धन टूटने पर सामाजिक व्यक्तियों की ठीक वैसे ही दशा हो जाती है जैसी कि समुद्र में बिना मल्लाह नाव की दशा होती है। इस लिये मानना पड़ेगा कि धर्म मानव का कल्याणकारी कोई तत्त्व है। समाज की धारणा के साथ ही वह सर्व भूत हितकारी सत्य का स्वरूप है। उसी धर्म के लिये महर्षि जैमिनि ने अपने मीमांसा के सूत्र में यह लक्षण है कि "चोदना लक्षणोऽर्थो धर्मः" अर्थात् किसी अधिकारी पुरुष का किसी से यह कहना कि तू यह काम कर और यह न कर। यही प्रेरणा है। जब प्रेरणा करने वाले ही नहीं होंगे तब प्रत्येक को अपने अपने काम की स्वतन्त्रता है। यहां पर यह बात ध्यान में रखने की है कि मनुष्यमात्र की प्रवृत्ति इन्द्रियोंके पीछे चलने की है। इन्द्रियके

अर्थ प्रत्येक इन्द्रिय को बर बस विषयों की ओर खींचते हैं उस समय अधिकारी पुरुष ही अपने उपदेश से या प्रेरणा से उसे कर्तव्य अथवा धर्म का मार्ग दिखलाता है। तभी तो महात्मा मनु ने "आचार-प्रभवो धर्मः" अथवा "आचारः परमो धर्मः" कहा है। अब हमारे सामने तीन स्वरूपों में धर्म दिखाई पड़ा रहा है।

१—धारणा करने वाला धर्म, २ - प्रेरणा लक्षण वाला धर्म और ३—आचार प्रभव धर्म यह तीनों ही एक दूसरे से सम्बद्ध है। मनुष्य इन्द्रियों के वश में होकर कर्तव्य से च्युत होने लगता है तभी उसे प्रेरणा की आवश्यकता होती है। तभी आचार का उपदेश उसके लिये मार्ग दर्शक का काम करता है और प्रजा का धारण भी तभी सम्भव है अन्यथा एक व्यक्ति के पाप कुकर्म अथवा अकर्तव्य से समाज के बन्धन टूटने लगते हैं। समाज धारणा के लिये अर्थात् समस्त प्राणियों के सुख के लिये मनुष्य के स्वच्छन्द आचरणोंका प्रतिबन्ध अथवा रोकना ही तो धर्म है। मनुष्य का मनमाना बर्ताव समाज के लिये कदापि श्रेयस्कर नहीं हो सकता। इन्द्रियोंके स्वाभाविक व्यापार उसे कर्तव्यसे पराङ्मुख करने लगते हैं उसी समय शिष्ट जनानुमोदित मर्यादाएं उसे सन्मार्ग पर लाने में सहायक होती हैं। वह मर्यादाएं अनेक हैं और उनका ही संग्रह धर्मशास्त्र कहलाता है। अब किसी भी मत मतान्तर या सम्प्रदाय की इन सब बातों पर हम ध्यान दें तो पता चलेगा इस प्रकार की मर्यादाएं सर्वत्र मिलेंगी।

अब विचार कर देखिये कि जब हमने किसी से पूछा कि तुम्हारा धर्म क्या है उस समय हमारा तात्पर्य यही तो था कि "पारलौकिक सुख का मार्ग" आप क्या समझते हैं। वह हमें बतलाया है कि मैं ईसाई हूँ अथवा मुसलमान हूं, हिन्दू हूँ या आर्य हूँ। उसके कहने का मतलब यह होता है कि मैं जिसको धर्म मानता हूँ "पारलौकिक सुख का मार्ग" उसी में बतलाया गया है। हमारी उपरिलिखित व्याख्या किसी के भी प्रतिकूल नहीं पड़ती। धर्म का सच्चा स्वरूप हमारी इन्हीं तीनों बातों में निहित है और वह तीनों बातें सब सम्प्रदायों में मिलेंगी, सभी चाहते हैं कि समाज का धारण हो उसकी व्यवस्था भंग न हो। सभी अधिकारी अपने बच्चों को प्रेरणा कर उन्हें सन्मार्ग पर लाना चाहते हैं और "आचार प्रभव" धर्म तो सभी मत मतान्तरों का स्वीकृत सिद्धान्त है।

जिस लक्ष्य को सामने रख कर हमने धर्म के स्वरूप को जानने की चेष्टा की थी वह अब हमारे सामने है। हमारा लक्ष्य था विश्वशान्ति। वह विश्वशान्ति हमारे बतलाये हुए इसी धर्म पर निर्भर है। हमारे धर्म के लक्षण में साम्प्रदायिकता नहीं, वैर विरोध नहीं, छल, कपट और दम्भ से वह परे है, वह युद्ध की शिक्षा नहीं देता उससे प्राणीमात्र का कल्याण ही होगा क्योंकि उसका उद्देश्य प्रजा का धारण करना अथवा सर्वभूत हित की कामना करता है। जिस धर्म की हमने ऊपर विवेचना की है वही विश्वशान्ति का सर्वोत्तम प्रतीक है। उसके बिना विश्वशान्ति सम्भव नहीं। "धर्मो धारयते प्रजाः" का तात्पर्य यही है कि जिससे प्रजाओं का धारण हो वही धर्म है, जिससे विश्वशान्ति में बाधा पड़े वही अधर्म, अकर्तव्य तथा पाप है। अन्त में समस्त बातों का निष्कर्ष यही है कि धर्म का यथार्थ स्वरूप ही मानवजाति का कल्याण कर सकता है वही विश्वशान्ति का सर्वोत्तम साधन है।

नैतिक जीवन

(२)

संसार

लेखक—श्री रघुनाथ प्रसाद जी पाठक]

मानव-जीवन का चरम लक्ष्य जैसा कि पूर्व बताया जा चुका है परमात्म-दर्शन होता है। दूसरे शब्दों में इसे मनुष्य की आत्मा में निहित देवत्व का विकास और पशुत्व का दमन भी कह सकते हैं। मनुष्य को संसार में गुजर कर अपनी जीवन-यात्रा पूरी करनी होती है। लक्ष्य की पूर्ति में संसार का सहायक बनना आवश्यक है। संसार सहायक तब बनता है जब उसका वास्तविक ज्ञान प्राप्त करके तदनुकूल आचरण किया जाय। संसार में से गुजरने पर ही मनुष्य को अपनी कमजोरियों का ठीक २ पता लगता है। कमजोरियों को जानना, उनमें सुधार करना, सृष्टि कर्त्ता के अमित उपकारों के लिए उसका कृतज्ञ बनना, सृष्टि के सौंदर्य का आनन्द लेना, उसको सुरक्षित रखना, अपना उत्थान करते हुए समाज की शांति में अधिक से अधिक योग देना वह उपाय है जिसके द्वारा संसार का सदुपयोग होकर अपने लक्ष्य की सुगमता से पूर्ति हो सकती है।

अधिकांश व्यक्ति संसार को दुःख और अशांति का घर समझते हैं। बहुत थोड़े व्यक्ति संसार को सुख और सौंदर्य का धाम मानते हैं। वस्तुतः संसार में सुख और दुःख दोनों होते हैं परन्तु दुःख की अपेक्षा सुख अधिक होता है। संसार का सुख व दुःख पूर्ण होना मनुष्य की मनः अवस्था पर निर्भर होता है। यदि मनुष्य सुख पर दृष्टि रखता है तो संसार उसे सुखमय देख पड़ता है और यदि दुःख पर दृष्टि रखता है तो दुःखमय जान पड़ता है। संसार आईना होता है जिसमें से मनुष्य का आभ्यन्तर प्रतिबिम्बित और लक्षित होता रहता है। यदि हम संसार को टेढ़ी नजर से देखते हैं तो बदले में वह भी हमें टेढ़ी नजर से देखता है। यदि हम संसार को प्रसन्नमन से मुस्कराते हुए देखते हैं तो बदले में वह हम पर मुस्कराता, और हमारा मित्र बन जाता है। अतः संसार के वास्तविक स्वरूप को भली भांति जान और समझकर अपने को संसार के योग्य और संसार को अपने योग्य बनाना कल्याण प्रद होता है। लम्बे जीवन के साथ २ अच्छे जीवन के लिए यत्न करने वाले और अपने आप को परमात्मा के हाथ में खिलौना बनाकर संसार यात्रा करने वाले जन ही संसार को अपने लिए अधिक से अधिक उपयुक्त और आनन्दप्रद बनाने में सफल होते हैं।

संसार को हम कितना ही बुरा क्यों न कहें बिना संसार के एक क्षण के लिए भी हमारा काम नहीं चल सकता। संसार की विचित्रता और द्वन्द्व—सुख-दुःख, हर्ष विषाद, यश-अपयश, मान-अपमान, हानि-लाभ आदि ही उसे रहने योग्य जगह बनाते हैं। यदि उसमें निरा सुख या निरा दुःख ही होता तो न तो मनुष्य का स्वतन्त्र

कर्तृत्व स्थापित होता और न दुःख के बिना सुख की वास्तविक अनुभूति होती। अच्छे से अच्छे और चतुर से चतुर व्यक्ति के जीवन में संसार से खिन्न और क्रुद्ध होने के अवसर आते हैं परन्तु अपना समय अच्छी तरह व्यतीत और अपने कर्तव्य का उत्तम रीति से पालन करने वाले व्यक्ति को असन्तुष्ट होने का बहुत कम अवसर मिलता है। संसार से चिपटे हुए व्यक्ति दुःख के जरा से झोंके से विचलित होकर संसार को कोसने लग जाते हैं परन्तु वे यह नहीं देखते कि हम स्वयं उस दुःख के लिए कितने जिम्मेवार हैं।

संसार कर्म भूमि है। मनुष्य को अपने पिछले जन्म के सञ्चित कर्मों का फल इसी में भोगना पड़ता है और आगे के लिए सञ्चय करना होता है। संसार में अ स क्त जन सांसारिक वैभव के उपार्जन और उपभोग को अपना परम पुरुषार्थ मानते हैं परन्तु आवश्यकता से अधिक सम्पदा और भोगों से शांति प्राप्त नहीं होती वरन् तृष्णा और अशांति बढ़ती रहती है। शांति तो आत्मा से सम्बद्ध होती है। जो व्यक्ति मन में शांति की खोज करते हैं वे भ्रम में ग्रस्त होते हैं। उनकी दृष्टि में केवल लोक होता है इसीलिए वे परलोक के लिए बहुत कम सम्पत्ति एकत्र कर पाते हैं। परलोक के लिए आध्यात्मिक सम्पत्ति एकत्र होनी चाहिये और यही मनुष्य के साथ परलोक में जाती है। चरित्रशून्य करोड़पतियों की अपेक्षा चरित्रवान् अकिंचन (ग़रीब) प्राणी इस लोक मे अधिक मूल्यवान सम्पत्ति छोड़ते हैं। वे व्यक्ति धन्य हैं जो इस अक्षय सम्पत्ति के उपार्जन में संलग्न रहते हैं। ऐसे व्यक्ति लोक और परलोक दोनों को अपनी दृष्टि में रख कर सावधानता और दृढ़ता के साथ संसार-यात्रा में प्रवृत्त होते हैं। धीरे २ उनकी दृष्टि से लोक ओझल होता और परलोक सामने आता जाता हैं। उनके हृदय परलोक में जाने से पूर्व ही वहां पहुँच जाते हैं। ऐसे व्यक्ति संसार में जल में कमल के समान रहते और परलोक सुधार की संभावनाएं बढ़ाते हुए इस लोक को उपकृत करते हैं। उनका हृदय उस निर्मल जल-धारा के समान होता है जिसमें किनारे के समस्त पदार्थ साफ दिखाई देते हैं परन्तु वह उन पदार्थों की मलिनता से मुक्त रहती है। उन हृदयों पर संसार के पदार्थों का प्रभाव तो देख पड़ता है परन्तु उनकी मलिनता नहीं देख पड़ती। धन सम्पदा का उपार्जन और उपभोग सांसारिकता नहीं है अपितु परमात्मा, आत्मा और सृष्टि को ढकोसला बतलाकर धन वैभव को इष्टदेव मानना और स्वार्थ से अन्धा होकर मानवता को ठुकराना ही सांसारिकता है।

संसार क्या है? यह परमात्मा की सर्वहित कारिणी इच्छा का चमत्कार और उसकी पुनीत लीला की एक झांकी है। उसके जर्रे २ से उसकी सत्ता और महत्ता का आभास मिलता है। संसार की सुघड़ता नियम बद्धता और अलौकिकता इस बात को द्योतक हैं कि परमात्मा को प्राणी मात्र के हित का बड़ा ध्यान रहता है। वह सृष्टि की रचना इसलिए नहीं करता कि मनुष्य उसमें अपने को भुलाकर परमात्मा को भूल जाय। ऐसा करना तो घोर कृतघ्नता है।

लोग संसार की निंदा करते हैं। निंदा करने की अपेक्षा उसका वास्तविक रूप जानना उत्तम है। लोग संसार की उपेक्षा करते हैं। उपेक्षा करने की अपेक्षा उसका अध्ययन करना श्रेयस्कर है। लोग संसार का दुरुपयोग करते हैं दुरुपयोग करने की अपेक्षा उसका सदुपयोग करना कल्याणकारी है। संसार की उन्नति और हर्ष समुदाय में अपना अधिक से अधिक योग देकर उसको अच्छा बनाना प्रत्येक स्त्री और पुरुष का परम कर्तव्य होना चाहिये। (क्रमशः)

क्या वेदपारायण यज्ञ हो सकता है ?

[लेखक—आचार्य वैद्यनाथ जी शास्त्री, पोरबन्दर।]

कुछ मास हुए कि सार्वदेशिक मे इस विषय पर कुछ विचार विमर्श चला था कि ब्रह्मपारायण यज्ञ हो सकता है या नहीं। दोनों पक्षों के विचार संक्षेप में लोगों के समक्ष आये थे। परन्तु कोई निर्णय जनता के समक्ष नहीं आया। इधर अभी हाल मे ही श्रीमान् पं० सातवलेकर जी ने "ब्रह्मपारायण यज्ञ की शास्त्रीयता" शीर्षक से एक वक्तव्य निकालकर विद्वानों की इस विषय में सम्मति जाननी चाही है। मुझे भी दो व्यक्तियों ने यह विज्ञापन भेजा और प्रेरणा की कि मैं इस सम्बन्ध मे कुछ अपने विचार प्रस्तुत करू। उनकी इस प्रेरणाके अनुसार ही मैं अपने विचार को आर्यजनता के समक्ष इन पक्तियों मे उपस्थित करता हूँ।

श्री पं० सातवलेकर जी ने अपने विचार अपने वक्तव्य मे ब्रह्मपारायण यज्ञ के प्रतिकूल प्रकट किये हैं। उन्होंने ब्रह्मपारायणयज्ञ का खण्डन करने की चेष्टा तो की है परन्तु उनकी इस प्रतिज्ञा से इस बात का स्पष्टीकरण नहीं होता कि वे चारों वेदों के मत्रा को बोलकर किये जाने वाले यज्ञ को अशास्त्रीय और असम्मत कहते हैं। ब्रह्मपारायण नाम न रख कर और कोई भी नाम ऐसे यज्ञ का हो सकता है, उसको भी ठीक नहीं समझते—यह उनके वाक्यों में स्पष्ट नहीं होता। वे केवल ब्रह्मपारायण को ही असम्मत बतलाते हैं। वस्तुतः विचारणीय विषय यह नहीं है कि ब्रह्मपारायण यज्ञ हो सकता है या नहीं। अपितु प्रस्तुत विचारणीय विषय यह है कि चारों वेदों के मंत्रों को बोलकर उनसे आहुति देकर कोई यज्ञ किया जा सकता है या नहीं। नाम उसका चाहे भले ही कुछ हो। वह ब्रह्मपारायण हो, वेदपारायण हो अथवा अन्य नाम वाला हो। चारों वेदों के मन्त्रों से यज्ञ किया जा सकता है और इसमे कोई आपत्ति नहीं—ऐसा सनातनधर्मी वैदिक पडित मानते हैं। ऋग्वेद के मन्त्रो से स्वाहाकारान्त होने में तो स्यात् आपत्ति किसी को नहीं। हा यह हो सकता है कि तफसील एव विधि के विशेष विस्तार में उनकी कुछ भिन्नतायें हों। उक्त पण्डित जी ने शातातप स्मृति में लिखे गए कुष्ठ निवारणार्थ चारों वेद से किये जाने वाले यज्ञ का संकेत लोगों के विचारार्थ किया है। इस स्मृति की प्रामाणिकता पर उन्होंने अपना सन्देह भी प्रकट कर दिया है और यह बहुधा सभी को मान्य होगा। परन्तु इस स्मृति को अप्रामाणिक स्वीकार कर लेने पर भी यह प्रश्न उठता ही है कि स्मृतिकार ने चारों वेदों के मन्त्रो का ऐसे कुष्ठ-निवारणार्थ किये जाने वाले यज्ञ में विनियोग क्यों किया? और किया तो यह क्या उन यज्ञों के अतिरिक्त नहीं है जो श्रौत सूत्रों, और ब्राह्मणग्रन्थों आदि मे वर्णित हैं। यदि अतिरिक्त है तो फिर वेद मन्त्रों के कर्म इन ग्रन्थों में निश्चित हो जाने के अनन्तर फिर यह नया विनियोग क्यों किया गया? पाठक कह सकते हैं कि शातातप का यह विनियोग अप्रामाणिक

है। परन्तु यदि ऐसा ही विनियोग प्रामाणिक ग्रन्थों में पाया जावे और विशेषतः श्रौत सूत्रों में ही तो फिर वहाँ पर क्या उत्तर होगा? क्या ऐसी परिस्थिति में यह माननीय नहीं होगा कि मन्त्रों के विनियोग पहले कहे गये विषयों के अतिरिक्त अन्य युक्तियुक्त उपयोगी विषयों में भी किये जा सकते हैं। यदि श्रौतसूत्रों में दिखलाये गये कर्मों के अतिरिक्त भी उपयोगी कर्म हैं और उनमें मन्त्रों का नूतन विनियोग हो सकता है तो फिर चारों वेदों के मन्त्रों के द्वारा किये जाने वाले यज्ञ में क्या अनौचित्य आ गिरेगा?

यज्ञों के आकर ग्रन्थ और यज्ञ विषयक विचार

चारों वेदों से किये जाने वाले यज्ञ के विपक्ष में एक तर्क यह दिया जाता है कि इसका वर्णन किसी श्रौतसूत्र में नहीं पाया जाता। ब्राह्मण ग्रन्थों में भी इसका उल्लेख नहीं मिलता। यज्ञ का वर्णन श्रौत सूत्रों, ब्राह्मण ग्रन्थों तथा पूर्व मीमांसा में मिलता है। उनमें चारों वेदों के मन्त्रों से यज्ञ कराने का विधान नहीं—ऐसा प्रतिपक्षी लोग कहते हैं। परन्तु थोड़ा सा यहां पर विचार करने से इस पक्ष की सारासारता का सहज निर्णय मिल सकता है। यह भी प्रश्न यहां पर उठ सकता है कि क्या आज तक जितने कर्म और यज्ञ आदि होते हैं सबका ही वर्णन इन ग्रन्थों में है? और दूसरा विचार यह कि क्या इनमें वर्णित कर्मों और यज्ञों के अतिरिक्त और की प्रक्रिया बनाकर योजना नहीं की जा सकती है? तीसरी बात यह खड़ी होगी कि इनमें प्रतिपादित यज्ञों या कर्मों में जिन वेद मन्त्रों का विनियोग है उन वेद मन्त्रों से सदा वही कर्म किया जा सकता है या दूसरे उपयोगी कार्य में भी उस मंत्र का विनियोग किया जा सकता है? इन बातों का विचार करना परम आवश्यक है। यदि किये हुए विनियोग नित्य हैं और उनके अतिरिक्त उन मन्त्रों का अत्यन्त उपयोगी कर्म में विनियोग नहीं हो सकता है तो चारों वेदों से किये जाने वाले यज्ञ की चाहे वह ब्रह्मपारायण हो अथवा अन्य कोई, स्थिति अत्यन्त विचारणीय हो जावेगी। यदि अन्यत्र भी उन मंत्रों का विनियोग हो सकता है तो चारों वेदों से होने वाले यज्ञ में भी कोई बाधा नहीं हो सकती। सर्वप्रथम यहां पर यही देख लेना चाहिए कि इन यज्ञ के प्रतिपादक ग्रन्थों में किन यज्ञों का वर्णन है। श्रौतसूत्र हमें कुछ प्राप्त हैं जो चारों वेदों में किसी एक के अथवा किसी एक शाखा के आधार पर यज्ञों का निर्देश करते हैं। यज्ञों में मन्त्रों के विनियोग का विज्ञान इन कल्प सूत्रों में पाया जाता है और कल्प शब्द का अर्थ भी लगभग ऐसा ही है। भिन्न भिन्न शाखाओं को अवलम्बन कर भिन्न भिन्न सूत्र हैं। ऋग्वेद के दो श्रौतसूत्र मिलते हैं—आश्वलायन और शाङ्खायन। इनमें आश्वलायन श्रौतसूत्रके १२ अध्याय हैं। जिनमें प्रथम अध्याय में परिभाषा; दर्शपूर्णमासेष्टि. द्वितीयाध्याय में अग्न्याधेय, अग्निहोत्र होम, उपस्थान, पिण्ड पितृयज्ञ, अन्वारम्भणीय, आग्रयण, काम्य इष्टियें, वैमृधेष्टिः, लोकेष्टि, मित्रविन्दा, पवित्रेष्टि, कारीरीष्टि, वैश्वानरीष्टिः इष्ट्ययन, सांवत्सरिक, तुरायण, दाक्षायणयज्ञ, याज्या—पुरोऽनुवाक्या लक्षण, चातुर्मास्य; तृतीयाध्याय में—पशु, पशुयाज्यापुरोऽनुवाक्या; निरूढपशु, सौत्रामणी, प्रायश्चित्त; चतुर्थाध्याय में—और पंचमाध्याय में अग्निष्टोम, छठे अध्याय में—उकथ्य, षोडशी; अतिरात्र-नैमित्तिक, सोमप्रायश्चित्त, दीक्षित के मरण का प्रायश्चित्त आदि, सोमभागशेष, अनूबन्ध्या, अवभृथ, उदयनीयादि, सप्तम अध्याय में—सत्र के धर्म और न्यूङ्ख आदि, आठवें अध्याय में शस्त्र, प्रतिगर आदि, तथा पृष्ठ्यादि,

नवम अध्याय में—गजसूय, एकाह, वाजपेय, दशवें अध्याय में-अहीन, द्वादशाह, अहीन और सत्र के समान धर्म, अश्वमेध, एकादश अध्याय में—रात्रिसत्र, गवामयन, द्वादश अध्याय में—आदित्यानामयन, अङ्गिरसामयन; दृतिवातवतो-रयनम्, कुण्डपायिनामयन, तापश्चितामयन; प्रजापति का द्वादश सम्वत्सर, सारस्वतसत्र, मित्रावरुणयोरयनम्, सत्रोत्थान सवनीयपशुः सत्रिधर्म प्रत्य, ऋत्विजों का सवनीय पशु विभाग, प्रवर, सत्र, पृष्ठशमनीय-आदि विषयों का वर्णन है। शांख्यायन में १८ अध्याय हैं और उनमें निम्न विषयों का वर्णन है। प्रथमाध्याय में-परिभाषा, दर्श और पूर्णमास, द्वितीयाध्याय में-अग्न्याधेय, अन्वारम्भणीय, पुनराधेय, अग्निहोत्र, उपस्थान, अग्निसमारोप, तृतीयाध्याय में=वैमृधेष्टि, अभ्युदितेष्टि प्रायश्चित्तेष्टियां, मित्रविन्दा, दाक्षायणयज्ञ, सार्वसेनयज्ञ, वसिष्ठयज्ञ, आग्रयण; चातुर्मास्य, अग्निहोत्र-प्राशा, चतुर्थ में—यजमान सम्बन्धी, पिण्ड पितृयज्ञ, ब्रह्मत्व, मधुपर्क आदि, पंचमाध्याय से अष्टमाध्याय तक में—अग्निष्टोम, नवमाध्याय में चयन, दशम में—द्वादशाह, ग्यारहवें और बारहवें में २४ अहीनों के होत्र; १३ वे अध्याय में—सौमिक प्रायश्चित्त, गवामयन, सत्राधिकारी, उत्सर्गिणामयन, आदित्यानामयन, अङ्गिरसामयन, दृतिवानवतोरयनादि १४ अध्याय में—एकाह, चातुर्मास्य, सौत्रामणी, १५ वें अध्याय में—वाजपेय, अप्तोर्याम, सर्वस्वार, राजसूय, सोलहवें अध्याय में—अश्वमेध, पुरुषमेध, सर्वमेध, वाज-पेयशेष, राजसूयशेष, अश्वमेधशेष, अहीन, सप्तदश अध्याय में—महाव्रत, और अष्टादश में—महाव्रतीय कर्म, गवामयनशेष, सारस्वतसत्र, वार्षोद्दत्सत्र ।

इसी प्रकार कृष्ण यजुर्वेद पर—बौधायनीय, आपस्तम्बीय, सत्याषाढीमानवीय, भारद्वाजीय, वैखानसीय सूत्र मिलते हैं। ये बौधायन, आपस्तम्ब हिरण्यकेशी, भारद्वाज और वैखानस तैत्तिरीय शाखा को लेकर चलते हैं ! मानवसूत्र मैत्रायणी शाखा के अनुसार चलता है। आपस्तम्ब में २४ अध्याय है। जिनमें १ से ३ अध्याय तक—दर्श पौर्णमास, वैमृधेष्टि, दाक्षायणयज्ञः ब्रह्मत्व, चतुर्थाध्याय में—यजमान सम्बन्धी और पांचवें अध्याय में—अग्न्याधेय और पुनराधेय, छठे अध्याय में—अग्निहोत्र, उपस्थान, आग्रयण, सातवे में-पशुबन्ध और आठवें में चातुर्मास्य, नवमाध्याय में—प्रायश्चित्त, १० से १३ अध्याय में-सोम, १४ वें अध्याय में सोम-संस्था, क्रतुपशु, एकादशिन्, सोमब्रह्मत्व, सोम-प्रायश्चित्त, पञ्चदश अध्याय में—प्रवर्ग्य और उसका प्रायश्चित्त; १६-१७ में चयन; अष्टादश.—वाजपेय और राजसूय; १९ वें अध्याय में—सौत्रामणी; कौकिल सौत्रामणी, नाचिकेतादि चयनः काम्य पशु; काम्य इष्टियें, २०वें अध्याय में—अश्वमेध, पुरुषमेध, सर्वमेध, दशरात्र २१ वें अध्याय में द्वादशाह, गवामयन, उत्सर्गिणा-मयन, बाईसवें अध्याय मे—एकाह. तेईसवें में—सत्र और २४ वें अध्याय में—यज्ञपरिभाषा आदि विषयों का उल्लेख है।

सामवेद पर लाट्यायन, द्राह्यायण और मशक सूत्र मिलते हैं। परिशिष्ट अनेक मिलते हैं। अथर्ववेदपर कौशिक सूत्र प्राप्त है। इसमें श्रौत विषय का वर्णन पाया जाता है परन्तु गृह्य-विषयों का बहुधा वर्णन मिलता है। वितानसूत्र नाम का भी एक सूत्रग्रन्थ इस पर है। परिशिष्ट २६ हैं परन्तु इनमें श्रौत विषय थोड़े स्मृति विषय अधिक हैं। शुक्ल यजुर्वेद पर कात्यायन श्रौत-सूत्र उपलब्ध है। इसमें भी २६ अध्याय हैं। यह काण्व और माध्यन्दिन दोनो शाखाओं

का अवलम्बन करता है। दोनो शाखाओं में जो क्रम वर्णित है प्रायः वही क्रम इसमें भी है। प्रथम से द्वितीयाऽध्याय के आदि तक यज्ञ परिभाषा का वर्णन है। द्वितीय और तृतीयाध्याय में दर्श पौर्णमास का उल्लेख है। चतुर्थाध्याय में पिण्डपितृयोग, दशशेष, विकृतियों में दर्श पौर्णमास के धर्मों का अतिदेश, दाक्षायणयज्ञ, आग्रयणेष्टि, अन्वारम्भणीयेष्टि अग्न्याधान, पुनराधेय और अग्निहोत्र का निरूपण है। पांचवें अध्याय में—चातुर्मास्य और मित्रविन्देष्टि, तथा छठे अध्याय में अनुष्ठेय, निरूढपशु का वर्णन है। सप्तम से लेकर एकादश अध्याय पर्यन्त सोमयाग है। द्वादशाध्याय में—द्वादशाह, द्वादश सुत्याक, सत्र विशेष और त्रयोदश अध्याय में —गवामयन बतलाये गये हैं। १४ वें अध्याय में—वाजपेय, १५ वें में राजसूय और १६, १७ तथा १८ वें अध्याय में महाग्निचयन को निरूपित किया गया है। १६ वां अध्याय— सौत्रामणी, बीसवां अश्वमेध, और इक्कीसवां अध्याय—पुरुषमेध, सर्वमेध और पितृमेध का है। २२, २३, २४, २५, २६ में अध्यायों में क्रमश. एकाह, अहीन. समान्तर, प्रायश्चित्त और प्रवर्ग्य का वर्णन है। यह श्रौतसूत्रों में प्रतिपादित यज्ञ यागों अथवा उनके अन्य अङ्गों का क्रम है। यजुर्वेद के अध्यायों को निम्न प्रकार से विभाजित किया जाता है। १-२ अध्याय दर्श पौर्णमास, तीसरा-आधान, अग्न्य.स्थापन, चातुर्मास्येष्टि से सम्बद्ध है। ४ से ८ अध्याय में अग्निष्टोम और सोमयाग तथा नवें अध्याय में वाजपेय और राजसूय के मंत्र हैं। १० वां अध्याय—अभिषेक और राजसूय में चरकसौत्रामणी के विषय में विनियुक्त है। ११, १२ क्रमशः अग्निचयन और उखाभरण के विनियोग वाले मन्त्रों से युक्त अध्याय हैं। १३-१५ चितियें, १६—रुद्र और शतरुद्रिय है। १७ वां अध्याय चित्यपरिषेक से, १८ वां वसोर्धारा, राष्ट्रभृत से, और १६-२० वां सौत्रामणी से सम्बन्ध रखते हैं। २१ वें अध्याय में याज्यादि प्रैषण मन्त्र, और २२ से २५ वें पर्यन्त अश्वमेध है। ३० एवं ३१ वें अध्याय पुरुषमेध एव पुरुषसूक्त के हैं। ३२ तथा ३३ में सर्वमेध, ३४ में शिवसंकल्प, ३५ में पितृमेध है। ३६-३८ तक प्रवर्ग्य, शान्तिपाठ, महावीर संभरण और धर्म के विषय हैं। ३६ वां अध्याय प्रायश्चित्त और ४० ज्ञान काण्ड का है। इतना वर्णन यहां श्रौतसूत्रों के आधार पर किया गया। परन्तु यहां एक बात स्मरण रखनी चाहिए। सारे श्रौतसूत्र भी एकान्ततः प्रामाणिक नहीं। इनमें वर्णित कई कर्म पशुहिंसादि भी ऐसे हैं जो वेद संगत और समुचित नहीं।

श्रौत सूत्रों का ही क्रम लगभग ब्राह्मण ग्रन्थों में भी दिखलाई पड़ता है। ये ही यज्ञ योग वहां भी वर्णित मिलते हैं। इन कल्प सूत्रों में तीन प्रस्थान हैं। श्रौत, गृह्य और धर्म। श्रौत सूत्र श्रौतकर्मों का प्रतिपादन करते हैं। गृह्यसूत्र घर में होने वाले गृह्यकर्म अर्थात् संस्कारों आदि का विधान करते हैं। धर्मसूत्र में उन कर्तव्यों का वर्णन है जो वर्णाश्रम से सम्बन्ध रखते हैं। इसी प्रकार श्रौतकर्मों में बोले जाने वाले मत्रों की संज्ञा भी चार प्रकार की है। वह है—करण मंत्र, क्रियमाणानुवादिमंत्र, अनुमंत्रणमंत्र और जपमंत्र। इन मंत्रों को ये संज्ञाएं इनके प्रयोगों के आधार पर मिली हैं। यह सक्षेप में श्रौतसूत्रों के आधार पर वर्णन किया गया।

श्रौतसूत्रों के द्वारा वर्णित यज्ञोंका दिग्दर्शन हो जाने के बाद अब मूल प्रश्नों का जो पूर्व उठाये गये हैं वर्णन होना चाहिए। पहला प्रश्न यह है कि क्या जितने यज्ञ आज किये जाते हैं इन सबका वर्णन इन श्रौत ग्रन्थों में है? विचार करने से उत्तर होगा कि इनमें श्रौत यज्ञों का

वर्णन तो है परन्तु गृह्ययज्ञों अथवा संस्कारों का वर्णन नहीं। फिर इन गृह्यकर्मों को क्यों किया जाता है—इस लिये कि इनका वर्णन गृह्यसूत्रों में है। इस प्रकार यज्ञ विषयक कर्मों के गृह्य और श्रौत दो भेद हो गये। दोनो के प्रतिपादक दोनों के अपने २ विषय के ग्रन्थ हैं। ऐसी परिस्थिति में यह नहीं कहा जा सकता कि जिनका केवल श्रौतसूत्रों में प्रतिपादन है उनके अतिरिक्त यज्ञ न और जो उनमें प्रतिपादित है उसके अतिरिक्त कर्म किये नहीं जाने चाहिये। उदाहरण के लिये 'कर्णवेध' को लिया जा सकता है। इसमें यज्ञ भाग तो सामान्य ही है परन्तु विधि भाग में ऋग्वेद १। सूक्त ८६ का "भद्रं कर्णेभिः" मंत्र और ६। सूक्त ७५ का "वक्ष्यन्ती वेदा गनीगन्ति कर्णं" मत्रों से कर्ण का वेधन करना लिखा है। इन मंत्रों से यह कार्य किया जावे ऐसा किसी श्रौत गृह्यसूत्र में देखा नहीं जाता। परन्तु आयुर्वेदादि ग्रन्थों में कान का बींधना बतलाया गया है अतः आचार्य दयानन्द ने इन मंत्रों से कान वेधने की विधि करने का आदेश दिया है। कुछ लोग कह सकते हैं कि यह आचार्य दयानन्द की बात है हम नहीं मानते। परन्तु वे मानें या न मानें हम आर्य लोग तो इसे मानते हैं। और वैसे ही मानते हैं जैसे अन्य विनियोग कर्त्ताओं की बात को। 'वक्ष्यन्तीवेदा' इस मंत्र तथा 'भद्रं कर्णेभिः' के देवता भी क्रमशः 'ज्या' और यज्ञ हैं। उस दृष्टि से भी कर्ण वेध बनता नहीं परन्तु इनका विनियोग है और वह भी युक्तियुक्त। फिर यह कैसे कहा जा सकता है कि सूत्रों में जिनका वर्णन नहीं वे कर्म नहीं किये जा सकते। वस्तुत; युक्तियुक्त समुचित, सत्कर्म यदि इन सूत्रों में न वर्णित हों तब भी मंत्रों की संगति से किये जा सकते हैं। दूसरा प्रश्न यह है कि क्या इनमें वर्णित कर्मों और यज्ञों के अतिरिक्त की भी प्रक्रिया बनाकर योजना नहीं की जा सकती है। पहले प्रश्न के समाधान से यह भली प्रकार विदित हो जाता है कि ऐसा किया जा सकता है। यदि कर्णवेध का आयोजन किया जा सकता है तो दूसरे मत के विषय में भी कोई आपत्ति नहीं आती। प्रश्न केवल समुचित ढग के आयोजन का रहता है। जैसा कि ऊपर दिखलाया गया है इष्टियां भी श्रौतसूत्रों और ब्राह्मणों से वर्णित हैं परन्तु उनमें भी कुछ अन्तर सबमें हैं। 'पुत्रेष्टि' को ही लीजिए। इसमें यजुर्वेद के किन मत्रों का विनियोग है—यह यजुर्वेद के अध्यायों के अनुसार दी गयी यज्ञ की तालिका से नहीं ज्ञात होता है कभी कभी तो इस पर अधिक विवाद भी चल चुके हैं। परन्तु इसकी विधि अन्ततः इन वेद मन्त्रों के ही आधार पर तो बनानी पड़ेगी। यह इष्टि होती भी रही। न्याय दर्शन में वेद की प्रमाणता में इसी विषय को लेकर पूर्वपक्ष उठाया गया है और समाधान किया गया है। तात्पर्य यह है कि अन्य कर्मकाण्ड के अङ्गों का विनियोग वेदमंत्रों के आधार पर कल्पित किया जा सकता है।

तीसरी बात जिसका विचार आवश्यक है वह यह है कि श्रौत ग्रन्थों और ब्राह्मणों में जिन मंत्रों का जिन कार्यों में विनियोग किया गया है उनके अतिरिक्त कम में उनका विनियोग हो सकता है या वे उसी में सदा के लिए विनियुक्त समझे जावें। ऊहापोह करने पर पता चलता है कि विनियोग नित्य नहीं और जिन मंत्रों का विनियोग जिन कार्यों में हो चुका उनसे अतिरिक्त में भी नवीन विनियोग हो सकता है। स्वयं विनियोग करने वालों ने ही ऐसा किया है। श्रौत सूत्रों में जिन मंत्रों का श्रौतकर्म में विनियोग है उन्हीं मंत्रों का गृह्य सूत्र में गृह्य कर्म में विनियोग है। यदि विनियोग नित्य है

तो श्रौत कर्म में विनियुक्त मत्रों का गृह्यकर्म में विनियोग होना ही नहीं चाहिये । और ऐसा करने पर फिर गृह्यकर्मों के लिये मत्र ही नहीं रह जाते । उदाहरण के लिए यजुर्वेद का 'इषेत्वोर्जेत्वा' मत्र ही ले लीजिए। श्रौतसूत्र के अनुसार यह (कात्यायन श्रौत सूत्र ४।८।१।३) शाखाछेदन में विनियुक्त है और ऋषि दयानन्द ने इसका विनियोग स्वस्तिपाठ में किया है। जब कि सर्वानुक्रमणी के अनुसार इसका शाखा देवता है और पं० सातवलेकर जी भी ऐसा ही मानते हैं ऋषि दयानन्द ने इसका सविता देवता माना है। वस्तुत. शाखाछेदन का मत्र में कोई भाव भी नहीं निकलता। यह मत्र अनादिष्ट देवता वाला होने की स्थिति में इन्द्र अथवा महेन्द्र देवता वाला होगा। क्योंकि हवि के प्रधान देवता इन्द्र अथवा महेन्द्र हैं। "विश्वानि देव सवितः" और "तत्सवितुर्वरेण्यम्" ये दोनों मंत्र कात्यायन ११।७ के अनुसार पुरुषमेध आहवनीय में विनियुक्त हैं परन्तु इनका विनियोग श्री स्वामी दयानन्द जी महाराज ने प्रार्थना और सन्ध्या जैसे उपासन कर्म में किया है। साथ ही इनका इस प्रकार की आहुति देने में विनियोग न होते हुए भी अपने सत्यार्थ प्रकाश, संस्कार विधि आदि ग्रन्थों मे साय प्रात कालिक आहुतियों के साथ इन मत्रों से आहुतिया देने को लिखा है। सत्यार्थ प्रकाश तृतीय समुल्लास में लिखा है कि यदि अधिक आहुतिया देनी हों तो "विश्वानि देव सवितः" और "तत्सवितुर्वरेण्यम्" इस गायत्री मत्र से आहुतिया देवे। "देवसवितः प्रसुव यज्ञम्" यह मंत्र यजुर्वेद में तीन बार आया है। यजु ९।१ में यह मंत्र कात्यायन श्रौतसूत्र के १४।१।११ के अनुसार वाजपेय में विनियुक्त है, पुन यजु ३०।१ में पुरुषमेध में विनयुक्त है, फिर यजु ११।७ में अग्नि स्थापन में विनियुक्त है। यहा पर एक ही मत्र का स्वयं सूत्रकार ने भिन्न भिन्न कर्मों में विनियोग किया । इसके अतिरिक्त ऋषि दयानन्द ने वेदी के चारों ओर जल छिड़कने मे विनियुक्त किया। ऋषि ने अपनी कल्पना से ही ऐसा नहीं किया बल्कि द्राह्मायन गृह्यसूत्र २।२।१८ और बोधायन १।३।२५ तथा अन्य गृह्यसूत्रों मे भी ऐसा ही लिखा है । इस प्रकार जब सूत्रकार स्वय एक ही मत्र का भिन्न भिन्न विनियोग करते हैं और सदा मत्रों का विनियोग भिन्न भिन्न कार्यों मे होता रहा तो फिर यदि चारों वेदों के मंत्रों का विनियोग युक्तियुक्त ढग पर करके कोई ब्रह्मपारायण या अन्य यज्ञ करता है तो क्या आपत्ति हो जावेग ? श्रौतसूत्रों मे मत्रों का श्रोतकम मे विनियोग हो जाने पर पुन गृह्यकर्म मे उन्हीं मत्रों का विनियोग करना ही इस बात का पर्याप्त प्रमाण है कि मंत्रों को अन्यत्र उपयोगी कर्म में प्रयुक्त किया जा सकता है। ऋग्वेदीय १।८४।११, मत्र 'तत्त्वा यामि ब्रह्मणा" आश्वलायन श्रौतसूत्र २।१७ के अनुसार वरुण प्रघासों, चातुर्मास्यों, में वरुण सम्बन्धी 'हविर्याज्य' है। इससे आचार्य दयानन्द नें घृत की आहुति देने का विधान किया है और सामान्य प्रकरण में इसका विनियोग किया है। लगभग भी बडे सस्कारों चूड कर्म विवाह आदि में इसकी विशेष आहु तया लिखी हैं । ऐसे ही "नवो नवो भवति जायमानः" यह ऋग्वेद १०.८१६ का मत्र है। इसका विनियोग दूणाशमें चन्द्रमा सम्बन्धी यज्ञ में है । परन्तु मानव श्रौतसूत्र में यह मत्र राजयक्ष्मागृहीतेष्टि मे विनियुक्त है। मैत्रायणी संहिता २।८।७। तथा ४।१२२ में यह समान हवि में लगाया गया है। शाङ्खायन १४।३२।६ में

भी दूसरा ऋतु में चान्द्रमस चरु में ही इसका विनियोग है। परन्तु पापयक्ष्म गृहीत के लिए अमावस्या में आदित्य चरु के निर्वाप में यह उपयुक्त है। यदि मंत्र का विनियोग निश्चित ही है तो यह भिन्न भिन्न विनियोग क्यों ? प० जी ने शातातप स्मृति के हवाले से लिखा है कि चारों वेदों के मंत्रों से यज्ञ वह कर सकता है जिसके कुष्ठ रोग हो। परन्तु यहा पर एक ही मंत्र द्वारा यक्ष्मगृहीत आदित्य चरु से अमावस्या मे कर्म कर रहा है और दूसरा चान्द्रमस चरु से अन्यत्र तो क्या चारों वेदों के मंत्रों का प्रयोग इसी आधार पर कुष्ठरोगी के अतिरिक्त लोगों के यज्ञोंके लिये नहीं हो सकता ? 'परं मृत्यो अनुपरेहिपंथाम्' यह ऋ० १०। १८।१ मंत्र मानव गृह्यसूत्र २।१८।२ में पुत्रकामेष्टि मे विनियुक्त है। यजुर्वेद ३५।७ में यही मन्त्र कात्यायन २१।४।७ के द्वारा पितृमेध में विनियुक्त है। और पारस्कर गृह्यसूत्र १।५ के अनुसार विवाह सम्बन्धी अभ्यातन होम में विनियुक्त है। यहा कितना अन्तर है कि मृत्युदेवताक मन्त्र विवाह और पुत्रकामेष्टि में विनियुक्त है। इस प्रकार के विनियोगों को देखकर चारों वेदों के मंत्रों से यज्ञ करना दोषपूर्ण नहीं परिज्ञात होता। (क्रमशः)

महिला जगत्

भारतीय नारी को स्वास्थ्य की आवश्यकता

(लेखिका—श्रीमती सरोजा जी बी० ए०)

भारतीय राष्ट्र रूपी सुन्दर चित्रपटी की कलाकार-नारी की ओर दृष्टि पात करते ही हृदय कांप जाता है। आज की भारतीय नारी अपने को प्रत्येक रूप में निर्बल पा रही है। नारी का स्वास्थ्य भयंकर रूप से विकृत हो चुका है। सदियों से दासता के, अज्ञान के, अन्धकार में अन्धविश्वास में जकड़ी नारी के शरीर के अंग अंग जर्जर हो चुके हैं। नारी—भारतीय राष्ट्र की मा—बलहीन और शक्ति से रहित हो चुकी है।

नारी की यह दु खद दशा कारण खोजने को मन आकर्षित करती है। नारी पर्दे के आवरण में घर की चार दीवारी मे बन्द हैं। मुगल कालीन सभ्यता के प्रभाव द्वारा प्रचलित पर्दे की प्रथा, नारी के सुन्दर स्वास्थ्य के लिए एक ऐसा आवरण, एक ऐसी निष्ठुर रुकावट बन गई है जो बड़ी निर्ममता से नारी स्वास्थ्य को कुचल रही है। स्त्रिया हर समय अपने शरीर को दबा ढका कर रखती हैं, कहीं से हवा न लग जाय—पर्दे के कारण। वह शुद्ध वायु वाली खुली जगह में घूमने नहीं जाती क्योंकि वह तो बेपर्दगी हो जावेगी।

जहां कोई बड़ा घर में आ गया सुबह से शाम तक लम्बा सा घूंघट खिच जाता है, जाड़े के दिनों तब भी ठण्डक के कारण कुछ नहीं परन्तु गर्मी के के दिनों में कितना यह दुखदायी होता है नारी हृदय से पूछिए। इस घूंघट और नारी का साथ तो खाना पकाते समय धुयें की तीव्रता में अश्रु की बहती अविरल धार के समय भी नहीं छूटता। वह घूंघट, जो कुछ दिनों तक नव लज्जा शील वधू के लिए, सौंदर्य प्रतीक रहता है वह समाज की रूढ़ियों में बन्ध कर नारी स्वास्थ्य को न पनपने देने के लिए एक कठोर दीवार बन गया है। परन्तु इस रूढ़िमय घूंघट को टूटना होगा, हटना होगा, तभी नारी स्वस्थ सुन्दर और समाज के लिए कल्याण कारिणी सिद्ध हो सकेगी।

समाज के कुछ रीति रिवाज ऐसे हैं जिनसे भी स्वास्थ्य पर बहुत असर पड़ता है। जब तब एक न एक ऐसे त्योहार आते हैं जब कि वे पकवान बना बनाकर खाती हैं या फिर समाज क्या कहेगा इस डर से कमजोर होने पर भी वे व्रत किया करती हैं, व्रत करके पूड़ी आदि भारी खाना खाती हैं या गरीबी के कारण बिना खाए ही सो रहती हैं। गरीबी के कारण फल दूध आदि मगवा नहीं सकती जिससे पुष्टकारी पदार्थ तो शरीर में पहुँच नहीं पाते और कमजोरी बढ़ती जाती है। जिससे वे जब तब बीमार पड़ती हैं और पूर्ण स्वस्थ न होने पर भी घर के काम में लग जाती हैं। यदि कहीं समाज के प्रभाव में न आकर वे अपने स्वास्थ्य को प्रधानता देकर इतने व्रत न करें, त्योहारों को इस तरह से मनाएं जो स्वयं उनके स्वास्थ्य को लाभ दायक सिद्ध हो तो नारी अधिक सुखी रह सकेगी। स्वस्थ नारी, एक अस्वस्थ और रूढ़ि पालन में रत नारी की अपेक्षा समाज का अधिक कल्याण कर सकेगी।

भारतीय नारी स्वभाव से लज्जा शीला, हृदय से वात्सल्यमयी और प्यार भरी होती है। स्वभाव से लज्जाशीला संकोचशीला होने के कारण घर के दूध फल आदि को वह अपने स्वास्थ्य को उत्तम बनाने के लिए स्वयं नहीं खा पाती। वह वह कुटुम्ब के अन्य सदस्यों को बड़े प्यार से वात्सल्य भरे हृदय से खिला सकती है परन्तु स्वयं वह किल्या खाती है यह तो उनका शीघ्र ही जर्जर हो आने वाला स्वास्थ्य ही बताता है। परन्तु यह बात ध्रुव सत्य है कि नारी यदि अपने कुटुम्बियों को अधिक दिनों तक प्यार और ममता से खिलाना चाहती है, सुखी देखना चाहती है तो उसे अपने स्वास्थ्य की भी पूरी जांच रखनी चाहिये।

स्वास्थ्य का ओर ध्यान रख कर उन्हें प्रत्येक कार्य करने चाहिये। परन्तु मेरा यह अर्थ कदापि नहीं है कि नारियां स्वास्थ्य के बहाने अपना पेट भरने लग जाएं और घर के कुटुम्बियों का ध्यान न रखे। वरन् मैं तो उस प्यार भरी माँ से, नारी के लज्जाशील व्यक्तित्व से, इतना ही कहना चाहती हूँ कि गृह कार्य के साथ ही वह अपने स्वास्थ्य का भी ध्यान रखे तो उसका घर अधिक सुखी रह सकेगा।

भारतीय नारी को स्वस्थ न रहने देने का अभियोग भारतीय सामाजिक कुरीतियों और पुरुष समाजके असंयम पर भी है। समाजमें बचपन में लड़की को पराई धरोहर समझ कर माता पिता उसके स्वास्थ्य की ओर ध्यान नहीं देते। विवाह की कठिनाइयों से दुःखी कुछ माता पिता तो यह सोचते हैं कि स्वस्थ होकर इनकी लड़की बड़ी लगने लग जायगी इस लिए उसे कम स्वास्थ्यकर पदार्थ देते हैं और उनकी लड़की कमजोर और छोटी लगती रहती है। जिससे कि उनके मां बाप को ब्याह में अधिक दिन लग जाने पर भी समाज की यह धिक्कार नहीं सुननी पड़ती कि इत-

नी बड़ी लड़की हो गई अभी घर में ही बिठा रखी है।

बचपन में पड़ी हुई स्वास्थ्य की इस अति कमज़ोर नींव को लेकर जब नारी विवाहित जीवन में प्रवेश करती है तब उसका स्वास्थ्य कर्तव्य की कठोरता को सहन करने में असमर्थ हो जाता है। और फिर पुरुष की विलास की सामग्री भी तो है—नारी। छोटी उमर में शादी और शीघ्र बच्चे होने लगना स्वस्थ रहने की तो बात अलग रही—उसको दुःख के भयंकर नरक में डाल देते हैं। बच्चे हो जाने के पश्चात् हो जाने वाली कमजोरी की ओर स्त्रियां, कुछ घर की गरीबी और घर के काम के कारण ध्यान नहीं दे पातीं। कुटुम्बके सदस्य भी इतना ध्यान नहीं रखते और वह कमजोर होती चली जाती है।

सुकोमल सौंदर्य की प्रतीक नारी आज दुर्भाग्य से अज्ञानवश हड्डियों का ढांचा मात्र रह गई है। भारतीय नारियों के अस्वस्थ होने का कारण है, उनके घरेलू धन्धे, जिन्हें वे बड़े गड़बड़ ढंग से करती हैं, लड़ाई झगड़े आदि जो कहने सुनने में तो कुछ दीखते नहीं परन्तु अप्रत्यक्ष रूप से स्वास्थ्य पर अत्यधिक प्रभाव डालते हैं। सफाई करना खाना बनाना कपड़े ठीक रखना इन कामों को ढग से सुन्दर रूप से करने वाली नारी स्वस्थ रह सकती है अन्यथा वह सदा बीमारियों से ही दुःखित रहेगी। सफाई करना घर का ऐसा कार्य है जो स्वास्थ्य पर प्रत्यक्ष रूप से बहुत प्रभाव रखता है। घर में पूर्णरूप से सफाई रहने से मन में शांति तथा प्रसन्नता रहती है जिससे स्वास्थ्य नहीं गिरने पाता। स्वच्छता से गन्दगी नहीं फैलती और कोई बीमारी पास नहीं आ पाती।

खाने का भी स्वास्थ्य से बहुत घनिष्ठ सम्बन्ध है। भोजन स्वादिष्ट होने पर भी स्वास्थ्य के लिए हानि-कर हो सकता है। अतएव भोजन स्वास्थ्य-कर हो इस बात की ओर ध्यान देना अत्यधिक आवश्यक है। परन्तु इस ओर भारत की एक प्रतिशत नारियों का भी ध्यान नहीं जाता। कुछ तो भारत की गरीबी की हालत है ही और कुछ भारतीय नारी अज्ञानवश इस ओर ध्यान नहीं देती जिससे स्वास्थ्य पर हानिकर प्रभाव पड़ता है।

नारी स्वास्थ्य-कर-भोजन जैसे मौसम की सस्ती हरी तरकारी, दाल मक्खन रोटी की आवश्यकता को समझे तो बहुत थोड़े खर्चे में अपने तथा अपने परिवार के स्वास्थ्य को सुन्दर और जीवन को सुखी एवं दीर्घ बना सकती है।

समय पर भोजन न करने की आदत ने भी नारी स्वास्थ्य को बहुत गहरा धक्का पहुँचाया है। कुछ तो समाज ने नारी स्वास्थ्य को कुचल दिया है कुछ नारी अपनी स्वयं की अज्ञानवश भी अपने स्वास्थ्य को बिगाड़ रही है। प्रायः देखा जाता है कि घरों में स्त्रियां अपने आस पास की औरतों से एक दूसरे की बुराई किया करती हैं जिससे आपस मे मन मुटाव बढ़ता है। मन में ईर्ष्या बढ़ती है क्रोध बढ़ता है। और चिड़चिड़ेपन की आदत पड़ जाती है। जिससे स्वास्थ्य को बहुत हानि पहुँचती है।

नारी के स्वस्थ होने से नारीमें तो अपूर्व सौंदर्य, आकर्षण आ ही जाता है पर साथ ही कुटुम्ब सुखी, समाज उन्नत शाली भी बड़ी सरलता से होने लगता है। स्वस्थ होने हर नारी प्रसन्न रहती है। काम अधिक कर सकती है जिससे कि कुटुम्ब में सुख शान्ति की वृद्धि होती है।

नारी-स्वास्थ्य वृद्धि के लिए नारी को उचित शिक्षा और स्वातन्त्र्य की अत्यधिक आवश्यकता है। शिक्षित नारी बहुत कम खर्चे में अपने स्वास्थ्य को ठीक रख सकती है। वह समाज के उन

रीति रिवाजों को जो स्वास्थ्य के लिए हानिकर हैं छोड़ कर स्वास्थ्यप्रद रीति रिवाजों को अपना सकती है। खाना भी स्वास्थ्य-कर बना सकती है। और कुटुम्ब के सब सदस्यों के साथ ही स्वयं भी, समय पर खिला कर और खा कर, स्वास्थ्य को ठीक रख सकती है।

एक शिक्षिता और स्वस्थ नारी बचपन से ही बच्चों का ध्यान रख कर उन्हें सदा के लिये स्वस्थ और सुन्दर बने रहने की आदत डाल कर समाज का बहुत बड़ा कल्याण कर सकती है। बच्चों के स्वस्थ और प्रसन्न रहने से नारी के स्वास्थ्य पर भी अप्रत्यक्ष रूप से बहुत बड़ा प्रभाव पड़ता है।

शिक्षिता नारी ऊपरी दिखावे में घर के पैसे न खर्च कर स्वास्थ्यप्रद वस्तुओं में अधिक धन लगाने की चेष्टा करेगी। वह बढ़िया चमकीली साड़ी एक बार पहनना त्याग सकती है परन्तु घर के स्वास्थ्य प्रद पुष्टि कारी भोजन के खर्च में कमी न आने देगी।

बड़े दुःख भरे हृदय से कहना पड़ता है कि आज के शिक्षित नारीसमाज में भी तो जैसे स्वास्थ्य का नाम लेना उनकी मान हानि का प्रश्न सा बन गया है। शिक्षित नारी अपने को कोमल बनाने की धुन में कमजोर बने रहने में शान समझ रही है। वह अपनी सुन्दरता को—पाउडर की सुगन्ध के, विभिन्न प्रकार के सुगन्धित तेलों से सवारे बालों और बढ़िया साड़ियों के माप दण्ड से माप रही है—यह भारत का दुर्भाग्य है।

भारतीय शिक्षित नारी को अपने संकुचित हानि कारक और बनावटी दृष्टि कोण को त्याग कर सादे उच्च व्यापक और लाभकारी दृष्टिकोण को अपनाना होगा।

एक स्वस्थ हृष्ट पुष्ट नारी के मुख पर सौंदर्य की जो स्वाभाविक आभा होगी परिश्रम का सुन्दर तेज होगा वह इस बनावटी नाजुक नारी के मुख पर कहां ? उस स्थायी सौंदर्य के सम्मुख क्षणिक सौंदर्य का मूल्य कितना और फिर समाज के लिए लाभकारी कितना है यह प्रश्न विचारणीय है। सादगी से संयम से रहने वाली स्वस्थ और प्रसन्न रहने वाली नारी भारत का अधिक कल्याण कर सकेगी। भारत को स्वस्थ नारी से जितनी आशा है। उस नाजुक या अशिक्षित नारी से उतनी ही हानि।

भारतीय नारी को अपने स्वास्थ्य का मूल्य समझना होगा अपने देश समाज और कुटुम्ब के निहित लाभ की ओर व्यापक दृष्टि डाल कर विचारना होगा और देश को उन्नति शील बना कर उसके बोझ को अपने स्वस्थ कन्धे पर ढोना होगा।

स्वतन्त्र भारत में गौवध बन्द होना अनिवार्य

लेखक—श्री पं० अयोध्याप्रसाद जी बी० ए० वैदिक धर्म प्रचारक अनुसन्धान विद्वान् कलकत्ता

[जुलाई अङ्क से आगे (२)]

मुसलमानों की धर्म-पुस्तक कुरान-शरीफ में उपदेश दिया गया है :—

लैंय्य नालर ल्लाहो लोहूमोहा व ला देमायोहा व ला किंय्यनालो हूत्तकव । मिनकुम-कुरान—सूरा—हज्ज ।

अर्थात्:— अल्लाह (भगवान्) के पास कुरबानियों बलिदानों किये पशुओं के मांस तथा उनके रक्त कदापि नहीं पहुंचते, हाँ उसके पास तुम्हारा संयम का जीवन ही स्वीकृत होता है।

इस उक्ति से स्पष्ट है कि इस्लाम की धर्म-पुस्तक कुरान के सिद्धान्तानुसार तो परमात्मा तक बलिदान किये पशुओं के मांस तथा उनके रक्त की स्वीकृति नहीं होती। हाँ संयम का जीवन अर्थात् अपनी वासनाओं को संयत रखने ही से परमात्मा की प्रसन्नता होती है।

कुरान में जो कुर्बानी करने की आज्ञा है उसका तात्पर्य भी पशु-हत्या नहीं प्रतीत होता है, जैसा कि कुरान सूरा कौसर की एक आयत है :—

इन्ना आतैना कऽलकौसर फ़ सल्ले ले रव्बेक वऽनहर ॥

अर्थात्:—निश्चय हमने तुम्हारे लिये कौसर प्रदान किया है अतः तुम अपने परमात्मा की नमाज पढ़ो और कुर्बानी करो। इस आयत में कुर्बानी करने की आज्ञा है। पर कुर्बानी शब्द का अर्थ पशु-हत्या नहीं है। भाष्यकारों का कथन है कि अल्लाह ताला ने नमाज के हुक्म के साथ ही बेयानिया वाव से कुर्बानी को पेश किया जिसका मतलब यह है कि ख्वाहिशात नफसानी और तमाम खुद परस्तियों को कुर्बान करके नमाज पढ़ो। इस वास्ते फरमाया कि परवरदिगार की नमाज पढ़ो और कुर्बानी करो याने ख्वाहिशात नफ्स को कुर्बान करके नमाज पढ़ो।"

कुरान के उपर्युक्त आयतों का आश्रय लेकर ही उर्दू भाषा के एक प्रसिद्ध कवि मोलाना अहमद हुसेन साहब शोकत मेरठी ने 'इसलाम तथा कुर्बानी" शीर्षक एक कविता लिखी है जिसक कई शेर नीचे उद्धृत किये जाते हैं :—

"खुदा कहते हैं जिसको
वह फकत रहमो मोहब्बत है।
वह समझेगा यह नुकता
मार्फत का है जो इर्फानी ॥१॥
गिजाये गोश्त हो सकता है
क्योंकर फितरते आदम।
गिजा मेवा थी इसकी खुल्द में
या लजस्ते कुर्बानी ॥२॥
परिन्दों का नहीं असलूब
हर्गिज जिस्मे इन्सा में।
चबायें हड्डियां वह इसमें
कब है तेज दन्दानी ॥३॥
भला कब लम्बे लम्बे
नोकदार इसको मिले नाखून।
न कचली फाड़ने वाली
मिली अज हुक्म रब्बानी ॥४॥

जिसे हिन्दुस्तां कहते हैं
वह एक खजाने नेमत है।
बकूलात इसमें हैं फल
इसमें हैं कसरत से खासानी ॥५॥
फिर इसमें दूध की भी
नदियां हैं हर तरफ जारी।
अगर वह सूख जायें
हिन्द में बसेगी वीरानी ॥६॥
करो कुर्बानियां ऐसी कि
जीबखशी हो जीवों की।
है सब कुर्बानियों से बढ़ के
मालोजर की कुर्बानी ॥७॥
नहीं मजबूर हमसायों
को तुम आजार देने में।
फसादों के बचो मौके से
यह है हुक्मे रब्बानी ॥८॥
नजर तकवा पे रक्खो बस
नसीहत है यह शौकत की।
अगर हो तुमको शक इसमे
तो देखो हुक्मे कुरआनी ॥९॥"

जब भारतवर्ष पर मुसलमान बादशाहों का शासन रहा तब उन्होंने भी गोरक्षा के महत्व को भली प्रकार समझा था। और वे भी इस परिणाम पर पहुँचे थे कि गौओं की रक्षा करने से प्रजाओं को अधिक से अधिक लाभ होता है। यही कारण था कि गोहत्या करना उन्होंने कानून द्वारा बन्द कर दिया था। भारत के अतिरिक्त अन्यान्य मुसलिम देशों में भी गोहत्या निषेध के लिये कानून बनाया गया। हसन नजामी महोदय ने खलीफा अब्दुल मलिक बिन मरवान के सम्बन्ध में लिखा है कि उनके शासनकाल मे इराक के निवासियों ने हज्जाजबिन यूसूफ से जो उन दिनों इराक का गवर्नर (Governor) रहा अपने देश के आबाद न होने और उजाड़ पड़े रहने की शिकायत की। हज्जाजने गम्भीरतापूर्वक विचार करने के अनन्तर इसके कारण का पता लगाया कि वहां के निवासी गौओं को खा जाया करते हैं और इस पशु की कमी ही देश के उजाड़ होने का कारण है। हुक्म दिया कि आज से गाय की हत्या न होने पावे और कोई मुसलमान उसका गोश्त न खाये। किसकी मजाल थी कि हुक्म की तामील न करता, गौ की हत्या करना उस राज्य में एकदम से बन्द कर दिया गया था।

भारतवर्ष के इतिहास का अवलोकन करने से इस बात का पता चलता है कि मुसलमान बादशाहों ने अपने शासनकाल में गोहत्या का कानून द्वारा निषेध कर दिया था।

मुगल बादशाहों में बाबर, हुमायूं, अकबर तथा जहाँगीर आदि के विषय में प्रायः सबको ज्ञात हो है कि उन बादशाहों ने गोहत्या करना अपने शासनकाल मे सर्वथा निषेध कर दिया था। विस्तारभय से उनकी आज्ञाओं को उद्धृत नहीं किया जाता है, उनके हुक्मनामे इस सम्बन्ध में किस प्रकार के होते थे इनका नमूना मुहम्मद शाह के फर्मान से पता लग जायगा। बादशाह मुहम्मद शाह का फर्मान (आज्ञा) और पीर साहब (गुरु महोदय) का फतवा (धार्मिक विधान) जो कुछ काल पूर्व भिन्न भिन्न पत्रों में भी प्रकाशित हुए थे निम्न प्रकार हैं:—

फतवा—

इलतमास मीदारम अज अहले शरा शरीफ नबवी के दर हदीसे शरीफ दर बाब मादये गाव शीर दार चे सादिर शुदा अस्त। अज जनाब मौलवी कुतुबुद्दीन पीरे बादशाह व अज जानिब मौलवी सा[illegible] रुश साहेब दर हदीस शरीफ ईं चहार [illegible] ममनुआ आमदा अस्त पस

अहले दीन व शारे याने शरीफ मतीन रा बरी अमल बाद् बाद् कर्द व आं ईनस्त:—

अव्वल कातेउश्शजर (याने बुरीदन दरख्ते सब्ज) व सानी बायेउलबशर (याने फरोख्तन फर्जन्दे आद) व सालिस जाबे हुल बकर (याने करदन गावकुशी) बिसयार ममनुआ अस्त हरकसे के खाहद कर्द बेखाशक बदोजख खाहद रफ्त। राबेअ हराम याने हरामकारी अज जने निकाही या मंताई कसे दीगर। हरकस अजबे अमाय खाहद कर्द बेखाशक बदोजख खाहद रफ्त। सरीह अज कुरान मजीद साबित शुदा व दरीं बाब आय कुरान मजीद अस्त ...इत्यदि—

भाषानुवाद :—

जनाब मौलवी कुतुबुद्दीन बाशाह के पीर (गुरु) और मौलवी साबिर बख्श की ओर से दुधार गाय के विषय में क्या आदेश दिया गया और इस्लामी पैगम्बर द्वारा प्रतिपादित शरूप (धर्म-विधान) विद्वानों की सेवा में निवेदन किया जाता है :—

हदीस शरीफ में (इस्लाम धर्म शास्त्रों मे) चार चोजें ममनुआ (निषिद्ध) है। अतः धर्म-तत्त्व विशारद शरीअत के विद्वानों को इनपर अमल करना चाहिये और वे ये हैं :—

पहला :—हरे वृक्षों का काटने वाला।
दूसरा :—मनुष्यों की बिक्री करने वाला।
तीसरा :— गाय की हत्या करने वाला।

ये अत्यन्त ही निषिद्ध हैं जो कोई ऐसा करेगा वह निःसन्देह दोजख (नरक) में जायगा।
चौथा :—व्यभिचार चाहे किसी की विवाहिता स्त्री से हो या माता ही से ही—जो कोई उनसे व्यभिचार करेगा निःसन्देह दोजख में जायगा ···इत्यादि

भिन्न-भिन्न मुसलमानी देशों में गोमांस के विषय में क्या अवस्था है इस सम्बन्ध में ख्वाजा हसन नजामी महोदय ने अपनी उर्दू पुस्तक गौरक्षा के पृ० ३६ ३७ में इस प्रकार लिखा है :-

"अ" एक अफगानी यात्री लिखता है कि मैं नौ साल से अरब देश में निवास कर रहा हूँ और चार वर्षों तक शाम की राजधानी दमिश्कनगर में रहा हूं, इतने समय में मैंने एक दूकान के अतिरिक्त ऐसी कोई दूकान नहीं देखी जिसमें गोमांस की बिक्री होती हो। एक दूकान लूकखील नामक एक बाजार में थी जिसमें ईसाइयों अथवा यहूदियों के अतिरिक्त मैंने कोई शामी या तुर्की मुसलमान को नहीं देखा जो इस दूकान से गौमांस मोल लेता हो। अनातोलिया और इस्तम्बोल में भी रहा हूँ। इन देशों में भी अधिकतर यहूदी और ईसाई गौमांस खाते हैं जिनके मस्तिष्क में योरुप की बू (गन्ध) समाई है। इसके अनन्तर उक्त यात्री लिखता है कि बहुत समय तक मिस्र में रहा परन्तु मिसरूल कहिरा जैसे महान् स्थान में जिसकी आबादी बारह लाख से कम नहीं केवल चार-पांच ऐसी दूकानें निकलेंगी जिनमें गौमांस बेचा जाता हो और उनसे भी केवल ईसाई और यहूदी मांस खरीदते हैं। मैंने इस नौ वर्षों के समय में एक भी ऐसा मुसलमान नहीं देखा जिसने पाव भर भी गौमांस खरीदा हो·····'

इस उद्धरण पर पाठक स्वयं विचार करें कि क्या भारतवर्ष मे जो हिन्दुओं का देश है उसमें कोई बड़े से बड़ा नगर ऐसा देखने में आयेगा जिसमें उपर्युक्त अफगानी यात्री की उक्ति चरितार्थ हो सकती है।

कई वर्ष पूर्व दिल्ली स्थित निजामुद्दीन औलिया की गद्दी पर बैठने वाले महन्त ख्वाजा हसन-निजामी महोदय ने अपने मुसलमान भाइयों से बड़े हृदय विदारक शब्दों में अपील की थी कि

मुसलमान भारत में गाय की कुर्बानी बन्द कर दें, उनकी अपील का अक्षरशः हिन्दी अनुवाद नीचे दिया जाता है :—

"वह गाय जिसने वर्षों मालिक को दूध पिलाया और उसके बच्चों को दूध और मिठाइयां देती रही और खुद खुश्क घास जंगल में चरती रही, जब पानी पिलाया पी लिया और चुप खड़ी रही, आज उसी का दूध शुष्क हो गया है और बूढ़ी हो गयी है अब मालिक को यह दुश्मन नजर आ रही है। अगर कोई मनुष्य इस प्रकार सेवा करते हुए अपना जीवन व्यतीत कर देता है तो उसे पेन्शन अवश्य मिलती है, परन्तु स्वार्थी मालिक ने क्या किया, गाय को कसाइयों के हाथ समर्पण कर दिया और रुपये जेब में डाल लिये, आकाश उसके दु:खित हृदय के विलाप को सुन रहा था, पृथिवी देख रही थी दीवारें पास खड़ी थीं किन्तु किसी ने तरस न खाया, किसी ने उसे न बचाया।

संसार का यह साधारण नियम है जो वस्तु लाभप्रद हो अथवा जिससे लाभ की आशा हो, अथवा जो सजीव प्राणी लाभ पहुचाने वाला हो उसकी रक्षा की जाती है। उसके लाभ पहुँचाने की शक्ति को भविष्य के लिए विस्तृत तथा उन्नत करने की चेष्टा की जाती है और जो पदार्थ या कोई सजीव-प्राणी सर्वसाधारण को दु:ख पहुँचाने के कारण होते हैं, उन्हें कृपापात्र नहीं बनाया जाता है। राजकीय व्यवस्था के अनुसार उन्हें दण्ड दिया जाता है और दु:ख पहुँचाने के लिये उनसे उसका बदला लिया जाता है।

इस अनुसन्धान में जब हम समस्त जीव धारियों की अवस्था और उनके बर्ताव को सोचते तो खुरवाले और सुमदार जानवरों को अत्यन्त गरीब पाते हैं। इनमें गाय, भैंस, बकरी, भेड़ को दूध देने वाली और बैल भैंसे को खेती के द्वारा भोजन के सामान पहुँचाने वाला और बोझ ढोने की क्रिया के द्वारा व्यापार को उन्नत करने वाला पाते हैं। गम्भीर दृष्टि से देखा जाय तो ये जानवर मनुष्य के प्रति लाभ पहुंचाने के कार्य मे स्वयं मनुष्य से भी बढ़कर हैं। इनकी तुलना में जब हिंसक पशुओं की अवस्था पर विचार किया जाता है तो वे अत्यन्त ही हानिकारक, भयङ्कर और हमारे जीवन के शत्रु स्वरूप दृष्टिगोचर होते हैं।

इन दोनों बातों पर दृष्टिपात करके मनुष्य का यह कर्त्तव्य होना चाहिये कि लाभ पहुंचाने वाले पशुओं का संरक्षक बने और उनके पालन-पोषण तथा उनकी देख-रेख में सर्वदा उद्यत रहे तथा हिंसक पशुओं के नाश तथा उनके आक्रमणों से सुरक्षित रहने के उपाय सोचें और उसके अनुसार कार्य करे। परन्तु शोक है कि इस स्वाभाविक कर्त्तव्य-पालन से तो मनुष्य विमुख रहता है। जो पशु उसके लिये भोजन के समान प्रस्तुत करते हैं तथा पैदल चलने के कष्ट से बचाते हैं उनका तो यह मनुष्य खड्ग से सर काट देता है: और जो जानवर उसके खून के प्यासे हैं, उनके विषय में ऐसा कुछ नहीं करता।'

स्वर्गीय हकीम अजमल खां महोदय ने गोवध के विषय में इस्लामी धार्मिक सिद्धान्तों को लक्ष्य में रखते हुए जो अपना मत प्रकट किया था उस का उद्धरण दिया जाता है। मूल लेख उर्दू भाषा में है।

"बकर ईद का समय बहुत निकट है, मुझको निश्चय है कि मुसलमान भाइयों को उस रिजील्यूशन का स्मरण अवश्य होगा जिसको उन्होंने अत्यन्त उत्साह पूर्वक तथा सम्मिलित रूपेण अमृतसर की मुस्लिम लीग की सभा में गौ की कुर्बानी के सम्बन्ध में पास किया था—मुझको यह भी आशा है कि उनको भली प्रकार ज्ञात हो गया

होगा कि यह रिजोल्यूशन किसी प्रकार से इस्लाम के धार्मिक सिद्धान्तों के विरुद्ध नहीं है जिसकी सत्यता का प्रमाण मौलवी अब्दुलबारी साहेब और ११० अफगानिस्तान के विद्वानों की घोषणा से होता है।

इसके अतिरिक्त मुसलमान भाइयों को यह भी ज्ञात होगा कि उनके हिन्दू देशी भाई किस परिमाण में उत्साह पूर्वक उनके शुद्ध धार्मिक विषय युक्त खिलाफत के आंदोलन में साथ दे रहे हैं। इस सम्बन्ध में यह बात आनन्दजनक है कि अमीर अफगानिस्तान और हिज एक्साल्टेड हाइनेस निजाम (His Exalted Highness, the Nizam) ने अपने राज्य में गौ की कुर्बानी का निषेध कर दिया है।

इन दशाओं पर विचार करते हुए मैं अपने मुसलमान भाइयों से अपील करता हूँ कि यदि समस्त नहीं तो जहाँ तक सम्भव हो सके किसी और पशु को बकरईद के अवसर पर वध करें। मैं अपने हिन्दू देशी भाइयों से भी अपील करता हूँ कि गौ की कुर्बानी स्वयं मुसलमान का भी एक जातीय प्रश्न हो गया है और वह उचित उपाय से उसके हल करने को चेष्टा कर रहे हैं। इसलिये हिन्दू और मुसलमान सम्प्रदाय मेरे इस परामर्श पर उसी प्रकार से कार्य करेंगे जैसा कि मैंने इस अपील में लिखा है और वह एक जातीय प्रमाण अपनी पारस्परिक शुभाकांक्षा का एक चिरस्थायी मेल से देंगे जो देश की उन्नति का कारण सिद्ध हो।

जब कोई सहृदय यात्री भारतवर्ष में नया २ पधारता है तो सबसे पहले इसके आत्मा को जिन पशुओं के दुःखों के देखने से दुःख पहुंचता है, वह अकाल पीड़ित और मरियल हिन्दुस्तानी बैलों का दृश्य है, इन गरीब पशुओं की अवस्था जो मानव-जाति के सेवकों में सबसे अधिक कष्ट सहन करने वाला तथा अत्याचार से पीड़ित है अकथनीय है। इनको भरपेट भोजन भी नहीं मिलता। इन पशुओं को अपनी शक्ति से अधिक परिश्रम तथा कठिनाइयां सहन करनी पड़ती है, तपी हुई सड़कों पर जब सूर्य से पृथ्वी पर अग्नि की वृष्टि होती है, उस समय भी ये सैकड़ों मन बोझ लिए हुए गुजरते हैं। यदि शारीरिक बल नहीं काम देता और पाँव नहीं उठते तो प्रत्येक डगपर मार खाते हैं। इनके दुःखों का अन्त इतनी कठिनाई सहनकरने और असह्य यातनाओं पर नहीं हो जाता वरन् जब देखा जाता है कि ये अपने कर्तव्य-पालन करने से उपरत हो गये हैं तो बलिदान के स्थान की रक्तसिञ्चित भूमिपर पहुँचा दिये जाते हैं और कसाई भीतरी छुरी से गला रेत देता है। क्या यही मानवी आचरण है? यही मानवी भद्रता है? जिससे पशुओं तथा अनबोलता जनवरों का वास्ता पड़ता है और कृतघ्न मनुष्य की ओर से भलाई तथा लाभ पहुँचाने का यह बदला दिया जाता है।

इसमें एक अति ही प्रसिद्ध दृष्टान्त यहां उपस्थित करना लाभजनक ही होगा। अरब देश में घोड़े बहुतायत से पाए जाते हैं, परन्तु घोड़ा अरब में अत्यन्त ही लाभप्रद तथा आवश्यक है। इस कारण यद्यपि घोड़े का मांस खाना मुसलमानों के लिए हलाल (विहित) है परन्तु लोग उनकी कुर्बानी (बलिदान) नहीं करते। इस प्रकार हिंदुस्तान में गो वध से अत्यन्त ही हानि हो रही है और इस बात की आवश्यकता है कि उपर्युक्त अर्बी दृष्टान्त का अनुकरण किया जाय।

यदि आप पशुओं के साथ दया तथा सद्व्यवहार और मनुष्यत्व का बर्ताव आवश्यक नहीं समझते तो अपनी मानव-जाति के लिए अवश्य समझते हैं। अतः गो वध इसी विचार से छोड़ दीजिये कि आपके पड़ोसी भाइयों के लिए दिल

दुखाने का कारण है। मैं आपको ईरान (पारस) राज्य की एक घटना सुनाता हूँ जो समाचार पत्रों में प्रकाशित हो चुकी है और आशा है कि घटना से आप सबक लेंगे।

"कुछ दिन व्यतीत हुए कि ईरान के बादशाह ने बूशहर को अपने शुभागमन से सन्मानित किया। बादशाह से पहिले उनके चचा जो एक बड़े ओहदे पर नियुक्त थे, आने वाले थे। स्टेशन मास्टर एक हिंदू बगाली था। लोगों ने बादशाह के शुभागमन के सन्मान रूप ईरान की प्रचलित पद्धति के अनुसार गाय की कुर्बानी (बलिदान) करने की इच्छा की, परन्तु हिंदू बाबू के खातिर यह इच्छा परित्याग करके मेढ़ों की कुर्बानी की गयी बादशाह के चचा ने पूछा कि गाय की कुर्बानी क्यों नहीं की गई ? लोगों ने कहा कि स्टेशन मास्टर हिंदू हैं उनके हृदय पर आघात न हो इस कारण मेढ़ों की कुर्बानी की गयी। गौ की कुर्बानी की अपेक्षा मेढ़ों की कुर्बानी को अच्छा समझा गया। बादशाह के चचा इस बात से बहुत ही प्रसन्न हुए और इस प्रकार से कर्तव्य-परायणता की बड़ी प्रशंसा की। इसी प्रकार जब ईरान के बादशाह सुशोभित हुए तब यहूदी ने हाथ-पाँव बांध कर एक गाय को रास्ते में डाल दिया। ईरान के बादशाह ने मोटर पर सवार होते समय उस गाय को जब इस दशा में देखा तो बहुत ही प्रभावित हुवे और आज्ञा दी कि इस गाय को छोड़ दिया जाय और इसे बध न किया जाय।"

ईरान के बादशाह और उनके चचा के यह विचार हिंदुस्तान के मुसलमानों के लिये विचारणीय हैं। उन्होंने केवल एक हिंदू के ख्याल से और वह भी ऐसा जो सरकारी नौकर था, गाय की कुर्बानी को उचित नहीं समझा। क्या हिंदुस्तान में रहने वाले मुसलमानों के लिए आवश्यक नहीं कि वह बीस-इक्कीस करोड़ हिंदुओं के हृदय पर आघात पहुँचाने के विषय में विचार करें जो हिंदू उनके देशी भाई तथा समानाधिकार रखते हैं।

जब गो रक्षा का माहात्म्य और गो वध का निषेध प्राय. समस्त धर्मावलम्बियों के माननीय ग्रन्थों में पाया जाता है और इसकी हत्या को रोकने के लिये उन धर्मावलम्बियों के नेता अपने सहधर्मियों से अपील तक करते हैं तो पुनः क्या कारण है हमारी भारत सरकार ने अभी तक गो हत्या निषेध विषयक कानून नहीं पास किया ? भारतीय जनता का सम्प्रति प्रधान कर्तव्य होना चाहिये कि गो रक्षा के सम्बन्ध में बृहद् आन्दोलन करके सरकार को गो हत्या का समस्त भारत में निषेध करने के लिए आईन बनवाने के लिए विवश कर दे। अंग्रेजों के शासन काल में तो इस कारण नहीं हो सका कि अंगरेज जाति गोमक्षक जाति रही, गो मांस उसका मुख्य आहार रहा। अतः उन्होंने मुसलमानों के अन्तिम बादशाह बहादुरशाह द्वारा गोहत्या निषेधपरक कानून होते हुए भी १८५७ के पश्चात् पुनरपि भारत में गो हत्या का प्रचलन कर दिया था। अंगरेज देश से विदा हो चुके हैं और समझदार मुसलमान भी इस विषय में अपने अनुकूल हैं तो पुनः गो हत्या को सर्वदा के लिए भारत में बन्द क्यों नहीं कर दिया जाता ? अंगरेजों में समझदार व्यक्ति इस बात को समझते थे कि उन्होंने भारत की पशु सम्पत्ति का ह्रास करके देश की बहुत ही हानि की है जैसा कि सर विलियम वेडबर्न ने लिखा था :—

What country in the world has ever flourished which has neglected its cattle ! We boast ourselves as the "Trustees of India", but what have we done to preserve the cattle

strengh of India? Absolutaly nothing.

I am ashamed to confess that we have rather helped.

EXTINCTION OF INDIA'S CATTLE. I CAN DREAM OF A CATTLE WITHOUT A NATION BUT I CANNOT IMAGINE OF A NATION WITHOUT A CATTLE

Sir Wm, Wederburn.

अर्थात्—संसार का कौन देश है जिसने अपने पशुओंकी रक्षाकी उपेक्षा की है, और उन्नतिशील हो सका, हम लोग तो इस बात का घमंड करते हैं कि हम भारत के ट्रस्टी हैं, परन्तु हम लोगो ने भारत के पशु धन की रक्षा के सम्बन्ध में क्या किया है? सर्वथा कुछ भी नहीं।

मैं इस बात के लिए लज्जित ही हूँ कि हम लोगों ने समस्त भारत के पशुओं के संहार कार्य में सहायता ही प्रदान की है। मैं इस बात का स्वप्न तो देख सकता हूँ कि पशु बिना मनुष्य जाति के लोग रह सकते हैं पर कोई मनुष्य जाति बिना पशुओं के रह सके ऐसी कल्पना नहीं कर सकता।

भारत के भाग्य विधाता स्व० महात्मा गांधी जी ने भी गौ रक्षा के महत्व को भली प्रकार समझा था। स्वराज्य और गो-रक्षा इन दोनों में उन्हों ने गो-रक्षा ही को अधिक महत्व दिया था। गो सम्मेलन बेलगांव के प्रधान पद से व्याख्यान देते हुए निम्न प्रकार की उक्ति उन्होंने की थी। देखो यंग इण्डिया २९ जनवरी १९२५:—

SWARAJ THROUGH COW:—

I hold the question of cow protection to be no less momentous but in certain respects even of far greater moment than that of Swaraj... The term Swaraj would be devoid of all meaning so long as the cow, is not protected for that is the touch stone on which Hinduism must be tested and proved before there can be any real Swaraj in India. To-day I want to bring home to you, if I can, the close relation which exists between the present poverty stricken condition of india and our failure to protect the cow. I offered to share with the Musalmans their suffering to the best of my capacity not merely because I wanted their co-operation for winning Swaraj, but also because I had in mind the object of saving the cow.

Gandhiji's Presidential Speech at the cow Conference at Belgaum—Young India 29th Jany 1925.

अर्थात:—मैं गो-रक्षा के प्रश्न को कम महत्व युक्त नहीं समझता हूं किंतु किसी किसी अवस्था में स्वराज्य के प्रश्न से इसको अधिक महत्वयुक्त समझता हूँ, जब तक कि हम लोग गौ रक्षा का कोई मार्ग न ढूंढ निकालें तब तक स्वराज्य शब्द बिना किसी अर्थ ही के रहेगा, क्योंकि भारत में स्वराज्य स्थापित होने से पहिले गो-रक्षा के प्रश्न की कसोटी पर हिंदु धर्म की परीक्षा होकर उतारना चाहिये। आज मैं आप लोगों को आज कल के भारत की दरिद्रता पूर्ण अवस्था और हम लोगों को गौ-रक्षा के प्रति असफलता का सम्बन्ध भली प्रकार समझा देना चाहता हूँ। मैंने मुसलमानों के साथ अपनी पूर्ण शक्ति के सहित दुःख में भाग लेने का जो सकल्प किया था वह केवल स्वराज्य प्राप्ति में उनके सहयोग प्राप्ति के ही लिये नहीं था प्रत्युत मेरे मस्तिष्क में गौ रक्षा का उद्देश्य भी निहित रहा।

अब जब स्वराज्य की प्राप्ति हो गई है तो अब महात्मा गांधी के अनुयायियों का प्रधान कर्तव्य होना चाहिये कि यथाशीघ्र भारतवर्ष में गौ वध निषेध कारक कानून बना कर गो-रक्षा की समुचित व्यवस्था करके महात्मा जी के उद्देश्य की पूर्ति की जाय। [इन दोनों महत्वपूर्ण लेखों से श्री रतनलाल बंसल की भ्रांतियों का पूर्ण निराकरण हो जायेगा इस विषय पर सम्पादकीय टिप्पणी भी देखिये —सम्पादक सा० दे०]

सार्वदेशिक सभा की आवश्यक सूचनाएं तथा विज्ञप्तियाँ

संसद् के आर्य सदस्यों की बैठक

आज २७-७-५२ को सायकाल ४ बजे से श्री घनश्यामसिंह जी गुप्त उप-प्रधान सार्वदेशिक सभा की अध्यक्षता में पार्लियामेन्ट, राज्य परिषद् और देहली राज्य की असेम्बली के आर्य सदस्यों, सार्वदेशिक सभा के स्थानीय सदस्यों तथा विशिष्ठ आमन्त्रित आर्य जनों की एक अनियमित बैठक हुई। जिसका उद्देश्य पारस्परिक परिचय प्राप्त करना और सम्पर्क स्थापित करना तथा उपयोगी विचार विमर्श करना था।

बैठक में ५ संसद् सदस्य, ३ राज्य परिषद् के सदस्य, ३ दिल्ली राज्य विधान सभा के सदस्य तथा १२ सार्वदेशिक सभा के सदस्य थे। ३ व्यक्ति विशेष निमन्त्रण पर थे।

प्रत्येक सदस्य द्वारा अपना परिचय दिए जाने के उपरान्त श्री० प्रधान जी ने सार्वदेशिक सभा के २८-४-५२ के अधिवेशन में पारित प्रस्ताव के प्रकाश में इस बैठक के बुलाए जाने का उद्देश्य बताया और जलपान के पश्चात् श्री० बलगुराय जी शास्त्री ने सभा की इस योजना का स्वागत करते हुए सभा को धन्यवाद दिया और कहा कि यदि सभा संसद के अपने बन्धुओं को याद कर लिया करे तो वे बहुत प्रेरणा और प्रकाश ग्रहण कर सकते हैं। इससे आर्य समाज और देशोपयोगी बहुत से काम सुचारू रूप से सम्पन्न हो सकते हैं। उन्होंने यह भी कहा कि आर्य समाज को देश की राजनीति को प्रभावित करने के कार्य को मुख्य रूप से हाथ में लेना चाहिए। आज आर्य समाज की आवश्यकता पहिले से भी अधिक बढ़ गई है। देश की नई राजनैतिक व्यवस्था की आत्मा की रक्षा करने की सबसे बड़ी जिम्मेवारी आर्य समाज पर है।

श्री० पं० बनारसीदास जी चतुर्वेदी ने अपने संक्षिप्त भाषण में इस योजना का स्वागत करते हुए सार्वदेशिक सभा द्वारा क्रियान्वित किए जाने के लिये अनेक सुझाव दिए।

श्री० डा० गोकुलचन्द नारंग ने अपने भाषण में सुझाव प्रस्तुत किया कि वेदों के चुने हुए मंत्रों के अर्थ सहित संस्करण तैयार कराके हिन्दी व अंग्रेजी आदि में प्रकाशित किए जांय जिन्हें सर्व साधारण भली भांति समझ सकें, लाभ उठा सकें और वेदों के प्रति उनकी श्रद्धा जागृत होकर बढ़ सके।

श्री० प्रो० इन्द्र जी ने इस आयोजना की पृष्ठ भूमि पर प्रकाश डाला और सुझाव दिया कि सार्वदेशिक सभा एक कमेटी बनाए जिसमें कुछ संसद के सदस्य हों और कुछ सार्वदेशिक सभा के। इसका कार्य यह होगा कि जब संसद् में ऐसे विषय निर्णय के लिये आयेगें जिनमें आर्य समाज का मत और मार्ग प्रदर्शन अनिवार्य होगा तो यह कमेटी संसद के सदस्यों से आवश्यक परामर्श करके अपना निश्चय करेगी और उस निश्चय के क्रियान्वित करने में उनकी सहायता से पूरा २ लाभ उठाने की चेष्टा भी करेगी। किसी आर्य सदस्य को अपना निश्चय मानने के लिये बाध्य करना न ठीक है और न व्यवहारिक।

राजदूतावास अधिकारियों से सांस्कृतिक सम्पर्क

सार्वदेशिक सभा की इस महत्वपूर्ण योजना के अनुसार कि भारत स्थित विदेशी राजदूतों तथा राजदूतावासों के अन्य प्रमुख अधिकारियों से सांस्कृतिक सम्पर्क स्थापित करके उन्हें वैदिक धर्म तथा आर्यसमाज से अवगत कराया जाए सभा के स० मन्त्री पं० धर्मदेव जी विद्यावाचस्पति विशेष रूप से प्रयत्नशील हैं। जुलाई और अगस्त मास में उन्होंने किस प्रकार अमेरिकन विश्वविद्यालय के प्रो० नील्सन, और नीदरलैण्ड के स्थानापन्न राजदूत माननीय बाम मुलिक, जर्मन राजदूतावास के मन्त्री डा० पोमर

लिंग और अमेरिकन राजदूतावास के सांस्कृतिक विभाग के अध्यक्ष मि० क्लिफर्ड मैन्शर्ड से भेंट करके उन्हें वैदिक धर्म के तत्व बताते हुए वैदिक कल्चर आदि साहित्य सभा की ओर से भेंट किया। इसका वर्णन पाठक सार्वदेशिक के गत अङ्कों मे पढ़ चुके है। सितम्बर मास में अमेरिकन राजदूतावास के सांस्कृतिक विभागाध्यक्ष श्री क्लिफर्ड मैन्शर्ड से २ बार भेंट और सार्वदेशिक के विशेषाङ्कार्थ उन का लेख प्राप्त करने के अतिरिक्त २ और १६ सित० को प० धर्मदेव जी ने रूसी राजदूतावास के प्रथम मन्त्री श्री शुन्इन्को और उन के सहायक मंत्री श्री कौम्पन्सेव से लगभग १½ और १ घ० तक ट्रावन्कोर हाऊस नई देहली मे भेंट की और धर्म का स्वरूप और उस की आवश्यकता, ईश्वर वाद, साम्यवाद के मूल तत्व, वैदिक धर्म के तत्वा की सार्वभौमता और युक्तियुक्तता इत्यादि विषयों पर उनके सन्मुख विचार रखते और उनकी शङ्काओं का समाधान करते हुए उन्हें Vedic Culture, Catechism on Vedic Dharma तथा अन्य आर्यसाहित्य भेंट किया। यह दोनों बार का संवाद इतना मनोरंजक था कि इसका कुछ विस्तृत विवरण अगले अंक में दिया जाएगा। यहां अभी इतना ही निर्देश करना पर्याप्त है कि दोनों रूसी महानुभावों ने बड़े ध्यान से पण्डित जी की बातों को सुना, ईश्वर के स्वरूप और अस्तित्वादि विषयक प्रश्न बीच २ में किये तथा धर्म का जो वास्तविक स्वरूप पण्डित जी ने "धृतिःक्षमा दमोऽस्तेयम्... यतोऽभ्युदयनिःश्रेयससिद्धिः स धर्मः इत्यादि के आधार पर मत, सम्प्रदायादि से उसे भिन्न बताते हुए तथा मतों की बुद्धिविरुद्ध, अन्धविश्वास समर्थक बातों का निराकरण करते हुए उनके सामने रक्खा उस को उन्होंने पसन्द किया। रूस में विवाह,तलाक, सीमेंट सह-शिक्षा आदि विषयक जो नियम गत कुछ वर्षों में बने तथा अन्य सुधार हुए हैं उनके विषय मे भी बातचीत हुई। मि० कौम्पन्सेव ने किसी भारतीय विद्वान् द्वारा लिखित हिन्दी स्वयं शिक्षक प्राप्त करने की इच्छा प्रकट की जो उन्हें लाकर दिया गया। अंग्रेजी सत्यार्थप्रकाशादि भेंट करते हुए पण्डित जी ने उन दोनों महानुभावों से अनुरोध किया कि इसे बहुत ध्यान पूर्वक निष्पक्षपात भाव से पढ़ें तब आपको धर्म का वास्तविक स्वरूप ज्ञात हो जाएगा। आप लोग धर्म मात्र के विरोध की अशुद्ध भावना का परित्याग करके जो ईसाईयत,इस्लाम आदि की बुद्धिविरुद्ध वा हानिकारक, अन्धविश्वासपूर्ण बातें हैं उन्हीं का विरोध करें। वर्ण व्यवस्था की वास्तविक भावना भी उनके सामने रखते हुए उन्हें बताया गया कि यह जन्ममूलक जातिभेद से सर्वथा भिन्न है तथा इस में जन्म से ऊंचनीच वा घृणा का कोई भाव नहीं। आशा है इस सम्पर्क और विचार विनिमय से अवश्य लाभ होगा। इस बीच में नीदरलैंड के राजदूतावास के प्रधान परामर्श-दाता संस्कृतज्ञ विद्वान् डा० वान गुलिक का पत्र आया है कि उन्होंने Vedic Culture सत्यार्थप्रकाश (अंग्रेजी) आदि भेंट की गई पुस्तकों को पढ़ लिया है तथा उन में से कई पुस्तकें उन्होंने भारतीय संस्कृति में रुचि रखने वाले अन्य मित्रों को दी हैं। वे अब आर्यसमाज के सिद्धान्त-विषयक विचारों को लेख बद्ध करके प० धर्म देव जी के पास भेजने वाले हैं जिस के बाद फिर उनसे भेंट की जाएगी। अमेरिकन राजदूतावास के श्री क्लिफर्ड मैनशर्ड ने गत मास पुनः भेंट किये जाने पर बताया कि उन्होंने Vedic Culture Catechism on Vedic Dharma आदि पुस्तकों को पढ़ा और बहुत पसन्द किया है। प० धर्मदेव जी की Catechism on Vedic Dharma & Arya Samaj नामक पुस्तक को उन्होंने बहुत अधिक पसन्द करते हुए उसे

अपने सहायक सांस्कृतिक अधिकारी मि० जेम्स को देने के लिये कहा। इस प्रकार यह सांस्कृतिक सम्पर्क बड़ा उपयोगी सिद्ध हो रहा है॥

गो-पूजा देशद्रोह नहीं, गो हत्या को जारी रखना भारतीय आत्मा की हत्या करना है।

नई दिल्ली से प्रकाशित होने वाले मासिक पत्र सरिता के सितम्बर मास के अंक में गो पूजा आज का सबसे बड़ा देश द्रोह" शीर्षक लेख मैंने आद्योपान्त पढ़ा। इस विवादास्पद लेख में जान बूझ कर भारतीय जनता के हृदय को गहरी ठेस लगानेका प्रयत्न किया गया है। इस भ्रम-पूर्ण लेख का सप्रमाण उत्तर सार्वदेशिक सभा की ओर से तय्यार हो रहा है जिसके प्रकाशित होने के अनन्तर लेखक के हृदय की कालिमा अपने नंगे रूप में जनता पर व्यक्त होगी। मुझे आश्चर्य है कि इस घृणास्पद लेख को साधारण जनता में बांटने के लिए किसने पृथक् प्रकाशित करने का दुःसाहस किया है। ऐसा प्रतीत होता है कि योजना पूर्वक इस प्रकार की गो-घातक नीति का व्यापक प्रचार करने के लिए विशेष कार्यक्रम बनाया जा रहा है। शिक्षा मन्त्रालय द्वारा सरिता उत्तर प्रदेश, बिहार, दिल्ली, पञ्जाब, मध्यभारत, के स्कूलों के लिए स्वीकृत है। मैं सरकार से इस प्रकार जनसाधारण की धार्मिक भावनाओं से खिलवाड़ करने वाले व्यक्ति के प्रति वैधानिक कार्यवाही करने की अपील करता हूँ। राम गोपाल उपमन्त्री

सा० आ० प्र० सभा, देहली। २३-९-५२

सभा प्रधान श्री० राजगुरु पं० धुरेन्द्र जी शास्त्री का बंगाल के अकाल पीड़ित क्षेत्रों में आर्यसमाज के सहायता कार्य का निरीक्षण

सभा के प्रधान श्री राजगुरु पं० धुरेन्द्र जी शास्त्री सुन्दरबन बंगाल के अकाल पीड़ित क्षेत्रों में आर्यसमाज के सहायता कार्य का निरीक्षण कर के देहली लौट आए हैं। आर्यसमाज के कुमीरमारी केन्द्र तक पहुँचना बड़ा कष्ट-साध्य है। दस घंटे केवल नाव में सफर करना पड़ता है। मीलों की यात्रा पैदल, और कीचड़ में करनी पड़ती है।

सरकार की ओर से २५ फीसदी पीड़ितों को चावल व आटे की सहायता मिलती है शेष ७५ फीसदी भूखों मरते हैं। लोग घास खाकर जीवन बचा रहे हैं। इन सबको वस्त्र तथा ७५ फीसदी को भोजन की व्यवस्था करना सहायता समितियों का काम है। हमने नवम्बर ५२ तक यह कार्य जारी रखने का निश्चय किया हुआ है। आवश्यकतानुसार अवधि बढ़ाई जा सकती है। इस सब कार्य पर लगभग पच्चीस हजार रुपये के व्यय का मोटा अनुमान है। इसमें लगभग १६ हजार रुपया सभा को देना है शेष धन को बंगाल के आर्य भाई एकत्रित करेंगे। सभा अपने पास से ६ हजार रुपया अब तक भेज चुकी है। बंगाल के आर्य भाईयों ने इससे अधिक एकत्रित करके वहां व्यय कर दिया है। आर्य जनता को इस कार्य में धन से सभा की पूरी २ सहायता करके अपने कर्तव्य का पालन करना चाहिये।

रामगोपाल
उपमन्त्री, सा० आ० प्र० सभा।

ऋषि का फिल्म

महर्षि दयानन्द सरस्वती का फिल्म बने या नहीं इस विषय में आर्य पत्रों में देर से चर्चा छिड़ी हुई है और फिल्म बनाए जाने के पक्ष और विपक्ष में अनेक लेख प्रकाशित हो चुके हैं। आर्य जनता की सूचना के लिए यह लिख देना आवश्यक है कि सभा ने यह विषय व्यवस्था के लिए धर्मार्य सभा के अधीन किया हुआ है। आशा है उसकी व्यवस्था शीघ्र ही आर्य जगत के सामने आ जायगी। धर्मार्य सभा की अन्तरंग ने धर्मार्य सभा की साधारण सभा के विचार के लिए जो निश्चय किया है वह फिल्म के विरोध में है।

आध्यात्मिक चर्चा

भाग्यवान् कौन है ?

(प्रवचन कर्ता—श्री पूज्यपाद महात्मा प्रभु आश्रित जी, वैदिक भक्ति साधन आश्रम, रोहतक)

वह मनुष्य भाग्यवान् है जो शरीर को सदा नीरोग रखना चाहता है और उस के लिये किसी भी व्यय को व्यर्थ नहीं समझता परन्तु उस से भी अधिक भाग्यवान् वह मनुष्य है जो अपने मन को नीरोग रखना चाहता है।

मन में विकार क्यों पैदा होते हैं :---

यदि मन का अर्थ ज्ञान है तो विकार क्यों पैदा होते हैं ? हमारे मन का सम्बन्ध आहार और व्यवहार से इतना नहीं जितना विचार से है ! प्रत्येक विचार मन के अन्दर पैदा होता है। मन अन्न से बनता है। हमारा अन्न पृथ्वी से पैदा होता है इतना ही नहीं अपितु सर्व प्रकार की उपज पृथ्वी से पैदा होती है। हमारा अर्थ भी पृथ्वी से पैदा होता है। पार्थिव पदार्थ शारीरिक रोगों को तो दूर कर सकते हैं परन्तु मानसिक रोगों को नहीं। पार्थिव पदार्थों के अतिरिक्त सौर मंडल भी हमारे मनः विकारों को दूर नहीं कर सकते। अब केवल भगवान् ही शेष रह जाता है और वही हमारे मानसिक विकारों को दूर कर सकता है। अतः मनुष्य भगवान् की शरण में आये। कैसे !

विधि और अनुपान जुदा जुदा है

जैसे शरीर को औषधि देने के लिये नियम है, हरेक रोग की अलग २ दवा है। ऐसे मानसिक रोग निदान के लिये तथा उपचार के लिये अलग २ विधि तथा औषधि है। जिस प्रकार शरीर को औषधि सेवन कराने के नियम है इसी प्रकार मानसिक रोग के निवारणार्थ पृथक् २ नियम है। परन्तु

दुःख तो यह है कि मनुष्य ने मन को समझा नहीं, नहीं तो यह कैसे संभव था कि इस के अन्दर नित्य नये २ रोग पैदा कर लेता। जो लोग जप यज्ञ तो करते हैं परन्तु नियम और नियन्त्रण का पालन नहीं करते, वे कोरे के कोरे रह जाते हैं, जिन बातों से परहेज करना है अथवा बचना है उस का नाम है नियन्त्रण।

बाड़ लगाओ—जिस प्रकार किसान को खेती की रक्षा के लिये बाड़ लगानी पड़ती है क्योंकि वह जानता है कि ये पशु अज्ञान हैं, अपनी भी खेती को स्वयं ही समय कुसमय पर चर लेते हैं। हानि लाभ की इन को कोई चिन्ता नहीं। देखने में आता है कि जो खेत सड़क पर है वहां तो बाड़ अवश्य लगाई जाती है क्योंकि पशु प्रायः सड़क पर चलता है। सड़क से दूर खेती पर बाड़ लगाने की आवश्यकता नहीं होती।

इसी प्रकार हमारी इन्द्रियां भी पशु हैं—ज्ञानेन्द्रियां हैं, इन । [illegible] और कर्मेन्द्रियां पांच,

अश्व समान हैं। विषय उनके चलने की सड़कें हैं। कठोपनिषद् में आया है 'इन्द्रियाणि हयानाहु विषयांस्तेषु गोचरान्' अर्थात् इन्द्रियों को घोड़े और विषयों को इन पर चलने की सड़कें। हमारी सारी खेती तो सड़कों पर है इस खेती की बाढ़ द्वारा रक्षा कीजिये।

खेती

मानव की खेती भी तीन प्रकार की है। वर्षों में पकने वाली, महीनों में पकने वाली और दिनों में। योगियों की खेती पकने के लिये वर्ष चाहिये क्योंकि योगी प्राय कन्द मूल पर रहते हैं। साधारण जन गेहूँ चना, ज्वार चावल आदि पर रहते हैं जिनके पकने में कई महीने लगते हैं और जो खेती दिना में तैयार हो जाती है वह प्राय पशुओं के चारे के काम आती है।

मानव और पशुओं के अन्न में भेद

यह स्थूल शरीर पार्थिव उपज से बनता है पशु का हो चाहे मानव का। जो अन्न हम खाते हैं उसके साथ धातु बनती है पशु खावे चाहे मानव। शूकरी विष्ठा खाती है मनुष्य अन्न खाता है। विष्ठा से भी वही सात धातु रस रक्त अस्थि मज्जा वीर्य आदि बनते हैं और अन्न से भी वही बनते हैं। जिस प्रकार मनुष्य की माता का दूध सफेद होता है वैसे शूकरी का सफेद होता है। मनुष्य का रक्त लाल वर्णन का होता है वैसे ही शूकरी का होता है। ऐसा ही हाल शेष धातुओं का होता है। मनुष्य अपना भोजन बहुमूल्य पदार्थों का बनाता है। हजारों रुपयों मन वाली केसर कस्तूरी मनुष्य के काम आती हैं परन्तु पशु का चारा प्राय दो चार रुपये मन वाला होता है।

(२) दूसरा—मानव में विवेक करने वाली बुद्धि है जो पशु में नहीं होती।

(३) तीसरा—मानव अपना आहार आदर से खाता है परन्तु पशु अपना आदर से नहीं खाता। पशु किसी का आदर नहीं करता। मनुष्य सब का आदर और सब से प्रेम करता है।

पशु और मानव में भेद

१ मनुष्य की माता की गोदी का सौभाग्य प्राप्त है परन्तु पशु को नहीं। मनुष्य परमात्मा की गोदी में बैठ सकता है। भगवान् की गोदी में उसीको बैठनेका अधिकार है जो माताकी गोदी में बैठना है। भगवान् का उससे प्यार है जो गोदी में बैठता है कुत्ते को नहीं। धनी लोग तो कुत्ते से प्यार करते हैं परन्तु भगवान् का प्यार तो अपने अमृत पुत्र से है। पुत्र भी वह जो पिता से प्यार करता है और उस का कृपापात्र बनता है। जो पिता की खेती सूखती देखकर तड़प उठता है और उसे हरा भरा करने के लिये परिश्रम करता है वह पुत्र बन सकता है। अर्थात् पुत्र बनने के लिये तो ३ आचमन किये जाते हैं। ओं अमृतोपस्तरणमसि स्वाहा, ओं अमृता पि धानमसि स्वाहा ओं सत्य यश श्रीर्मयि श्री श्रीयता स्वाहा। जल अमृत है, जन्म दाता है, जीवन दाता है, परमात्मा का प्रतिनिधि है, जल का स्वभाव है नम्रता और बहते रहना। अब ४ बहते २ कोई गढा आ जाये तो उसे भर आगे बढ़ता है। जल का कर्म तो बहते रहना है। आलस्य और प्रमाद को छोड़ कर बहते रहना ही उसका कर्म है। जल पर कोई लकीर नहीं पड़ सकती है। अगर कोई उसे लाठी मारे तो उसे अपने में अवब कर लेता है यह सब उस के नम्रता के स्वभाव दर्शाने वाले हैं। उस का गुण रस दान करना और शीतलता देना है। जल अमृत है स्वभाव नम्र है अमर न मरने वाला

और नम्र भी न मरने वाला दोनों का स्वभाव एक है। मनुष्य नम्र बन जाने से अमर हो जाता है और परमात्मा का पुत्र कहलाता है। अमृत वह है जिस में किसी प्रकार की भिन्नता न आये। एक रस रहने वाला सत्य है। जल से सत्यता का गुण आता है। सत्य से यश, यश से शोभा और सम्पत्ति बढ़ती है जो विपत्ति में काम आवे अर्थात् जो दूसरों की मुसीबत में काम में आवे।

शरीर क्या है।

कहते हैं कि यह मल मूत्र का थैला है इससे क्या प्यार करना। कई कहते हैं कि यह किराये की गाड़ी है हमारा इससे क्या? कई लोग इसे भगवान् का मन्दिर कहते हैं। मन्दिर को अन्दर और बाहिर से स्वच्छ रखते हैं। कोई इसके अन्दर गन्दी और मैली वस्तु नहीं रखते और इसमें कोई बुरा काम नहीं करते। सब प्रकार से से उसे शुद्ध और पवित्र रखते हैं और उसमें अपने इष्टदेव के दर्शन करते हैं। दर्शन तब तक नहीं हो सकते जब तक शरीर को नियम और नियन्त्रण में न रखा जाय। यह शरीर पार्थिव है जो कुछ पृथ्वी के अन्दर है वह शरीरके अन्दर भी मौजूद है। बाहिर की पृथ्वी की मनुष्य तब तक कीमत नहीं जानते जब तक मनुष्य को प्रतीत न हो जाये कि पृथ्वी के इस टुकड़े के अन्दर सोने चांदी की खाने हैं। जब उसे प्रतीत हो जाये तो उस को बाड़ लगा देगा और सब प्रकार से उसकी रक्षा करेगा। इसी प्रकार से मनुष्य को यह ज्ञान हो जाये कि यह कीमती हीरा शरीर है इस में भी खाने और कोष है तब वह नियम और नियन्त्रण की बाड़ लगायेगा। यह शरीर हमें उस चीज की प्राप्ति के लिये मिला है जिसके प्राप्त कर लेने पर कुछ भी अप्राप्त नहीं रहता है। शरीर ही धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की सिद्धि का साधन है। तभी वह इसकी कीमत जानेगा और रक्षा करेगा। परन्तु यह समझ धीरे २ साधना करते आयगी। मैंने १९०६ से यज्ञ करना आरम्भ किया और यज्ञ कराता रहा परन्तु अब समझ आई कि यज्ञ क्या है।

भगवान् करे, इस मर्म का ज्ञान हो जाये और मानव देह को अधिक से अधिक सफल बना सके।

* ईश स्मरण *

(कवयित्री—श्रीमती विद्यावती जी धर्मपत्नी पं० धर्मदेव जी विद्यावाचस्पति)

जब आया संकट मुझ पर
याद आई मुझे भगवन् की॥ ध्रुव॥
१—तू मेरे मन का मोती है
तू नयन की ज्योती है।
लौ लागी तव चरनन की।
याद आई मुझे भगवन् की॥
२—तू ही सङ्कट हर्ता है
तू ही दुख का कर्ता है।
लौ लागी तव सिमरन की
याद आई तव चरनन की॥

दान-सूची

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, देहली

(२१-८-५२ से १६-१०-५२ तक)

सुन्दरवन अकाल पीड़ित सहायतार्थ दान

११६) आर्य समाज मेरठ शहर
३१) ,, ,, शियोनी (छिंदवाड़ा)
१०) श्रीमती जानकीदेवी जी रहालकीदयाल पो० भगवानपुर (सहारनपुर)
७) श्री सुन्दरलाल जी सोहजनी गांव मुजफ्फरनगर
४६) श्री मुरलीधर जी मवानां (मेरठ)
२१) आर्यसमाज जलालाबाद (शाहजहांपुर)'
६) प्रधान आर्यसमाज निगोहां (लखनऊ)
२५) आर्य समाज सीतापुर
१६०) नगर आर्यसमाज जोधपुर
५) श्री ऋषि कुमार जी आर्य कुन्दरखी (मुरादाबाद) द्वारा आर्यसमाज मसेवी
२१) आर्यसमाज सासनी (अलीगढ़)'
१४०) ,, अलीगढ़ श्री राजगुरु पं० धुरेन्द्र जी शास्त्री प्रधान सभा द्वारा
२५) ,, करौल बाग देहली
८) ,, मसेवी (मुरादाबाद)
५॥) विविध सज्जनों से

६३२॥) योग

विविध-दान

४५५) श्री राजगुरु पं० धुरेन्द्र जी शास्त्री सभा प्रधान को भेंट रूप में प्राप्त।

विवरण निम्न प्रकार है :—

१५१) श्री विष्णुदेव नारायण जी एडवोकेट, गोलघर पटना
८१) ,, सिपाही भगतजी आर्य दानापुर पटना
१०१) ,, ला० चानन शाह जी कपूर, कपूर निवास धनबाद
५१) ,, मन्त्री जी आर्यसमाज बैरकपुर, हास्पटिल रोड (२४ परगना)
१०१) ,, मन्त्री जी आर्यसमाज बड़ा बाजार, ६४ लोअर बाजार चितपुर रोड, कलकत्ता

४५५)

३१) श्री ला० प्रभुलाल जी (भय्या जी) कनवरी गंज, अलीगढ़ (श्री राजगुरु पं० धुरेन्द्रजी शास्त्री, सभा प्रधान द्वारा)

४८६) योग
७२८)॥। गत योग
१२१४)॥। सर्व योग

दान आर्यसमाज स्थापना दिवस

५) आर्य समाज कलम (हैदराबाद स्टेट)

५) योग
११३६।=) गतयोग
११४१।=) सर्वयोग

दान दाताओं को धन्यवाद।

कविराज हरनामदास बी० ए०
मन्त्री, सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा,
देहली।

दान सार्वदेशिक वेद प्रचार निधि

७॥) आर्यसमाज डाल्टन गंज (पलामू)
१८) श्री देवी दयाल जी प्रधान देहली प्रान्तीय आर्य कुमार परिषद् देहली (अप्रैल ५२ में प्राप्त)
१०) ,, पृथ्वी चन्द प्रसाद जी आर्य उपप्रधान आर्यसमाज मोगरी जमालपुर (मुंगेर)
१०) ,, आर्यसमाज मोगरी जमालपुर (मुंगेर)
१०) ,, ,, नीमच
१५) ,, ,, शोलापुर
१५) ,, ,, सागर
५) ,, रामजीलाल जी सुपुत्र स्व० हरिराम जी, वकील देहली
५१) ,, रघुनन्दन प्रसाद जी बी० एस० सी० बंगलौर सिटी
४) आर्यसमाज मोलेपुर (फतहगढ़)
६) श्री प० जनार्दन जी शर्मा तथा श्रीमती सरस्वती देवी जी पत्नी प० जनार्दन जी शर्मा गाजियाबाद

१४३॥) योग
६६४॥=) गतयोग
८०८।=) सर्वयोग

समस्त दानियों को धन्यवाद !

किन्तु खेद है कि देश देशान्तरों में वैदिक धर्म प्रचार के उद्देश्य से आयोजित सार्वदेशिक वेद प्रचार निधि के लिये अभी तक यह तुच्छ सी राशि ही इस वर्ष प्राप्त हुई है। इससे कैसे काम चल सकता है ? हमारा समस्त आर्य नर नारियों से अनुरोध है कि इस महत्वपूर्ण निधि के लिये दान देना और दिलाना वे अपना कर्तव्य समझ कर उसका पालन करें तथा करवाएं। इस प्रकार बहुत शीघ्र एक अच्छी राशि इस महत्वपूर्ण कार्य के लिये सुगमता से एकत्रित हो सकती है।

आर्यसमाजों को भी इसमें विशेष उत्साह दिखाकर अपने वैदिक धर्म प्रेम का क्रियात्मक परिचय देना चाहिये।

धर्मदेव विद्यावाचस्पति
स० मन्त्री सार्वदेशिक सभा

ग्राहकों से निवेदन

ग्रा० स०	पता
१२	आर्य समाज दिवड खेड जि० अकोला
१७.	श्री बाबू रामजी दास स्यालकोट वाले तीतडी जि० सहारनपुर
३४	,, रूपलाल जी शर्मा असि० ट्रैफिक सुपरिन्टेंडेंट दिल्ली गेट, उदयपुर
४४.	,, अमरनाथ जी c/o श्री कृष्ण मेटल वर्क्स रतलाम
८६.	,, स्वामी महेश्वरानन्द जी सरस्वती वैदिक आश्रम ऋषीकेश
८७.	,, मोनभासी मोरार जी नायक गणदेवा जि० सूरत
८८	श्री मथुरा प्रसाद जी एडवोकेट आगरा
८९	,, सत्यव्रत जो वेदालंकार अहमदाबाद
२२९	,, मन्त्री जी आर्य समाज रामामंडी पटियाला राज्य
२४१	,, मन्त्री जी आर्य समाज गोंडा यू० पी०
२४४	,, पं० नरेन्द्र जी सुल्तान बाजार हैदराबाद
५४८	,, मन्त्री जी आर्य समाज भोगपुर खेडी जि० बिजनौर
५४९.	,, मन्त्री जी आर्य समाज सहसवान, बदायूं
५५३.	,, मंत्री जी आर्य समाज गोहावर

प्रा० सं० पता

जि० बिजनौर

५५७. श्री मंत्री जी आर्य समाज बिसौली जि० बदायूं

५६२. ,, मंत्री जी आर्य समाज पुवायां जि० शाहजहांपुर

५६३. ,, मंत्री जी आर्य समाज जलालाबाद

५६४. , मंत्री जी आर्य समाज सदरपुर जि० मुरादाबाद

५६५. ,, मंत्री जी आर्य समाज खुदागंज जि० शाहजहांपुर

५७०. ,, रूद्रदत्त जी आर्य गाथा खाल जि० गढ़वाल

६३६. ,, सूरजमल जी गाजियाबाद जि० मेरठ

६३७. ,, पुस्तकाध्यक्ष जी आहरी चौक बटाला जि० गुरुदासपुर

६४०. ,, बाबूराम जी आर्य खुटार जि० बरेली

६४१. ,, मंत्री जी आर्य समाज बारो जि० मुगरे

६४३. ,, बृजलाल जी गगाप्रसाद कुइयाखेड़ जि० फरूखाबाद

६४४. ,, मंत्री जी आर्य समाज नेगदार गंज जि० गया

६४५. ,, मंत्री जी आर्य समाज झरिया जि० मानभूमि

६४७. श्री पशुपति नाथ जी पुरानी मिस्कोट जिला चम्पारन

६४६. ,, विक्रमसाहु आर्य मातवा जि० हजारी बाग

६५१ ,, मंत्री जी आर्य समाज चक्रधरपुर जि० सिंहभूमि

६५२. ,, मंत्री जी आर्य समाज धनवार जिला हजारी बाग

८३४ श्रीमती शान्ता कुमारी जी महिला आर्य समाज सुजान गढ़

८५३. ,, श्रीराम जी सि० शास्त्री अलवर शहर

८६३. ,, बुद्धसिंह जी बजाज शेर कोट

८७२. श्रीमती मुख्याध्यापिका जी तुलाराम आर्य कन्या विद्यालय दुर्ग

८८२. ,, रोशन लाल जी आर्य श्रद्धानन्द बाजार भिवानी

८८३. ,, मंत्री जी आर्य समाज तिर्वा जिला फतह गढ़

८८४. श्रीमती प्रेम सुलभाप्रंत जी वानप्रस्थाश्रम ज्वालापुर

८८६. श्री जीवन मोदी परमेश्वर मोदी हलवाई की दुकान राजधनबाद जि० हजारीबाग

८८७. ,, मंत्री जी आर्यसमाज किंग्सवे कैंप दिल्ली

८८८. ,, ,, ,, केकड़ी।

८८९. ,, पं० भिवानी लाल शर्मा अमरावती।

८९२. ,, केशव लक्ष्मण राव जी होली जिला उस्मानाबाद

८९३. ,, मंत्रीजीआर्यसमाज पहरपुर जि० शाहाबाद

८९४. ,, मंत्री जी आर्यसमाज गढ़रवा जि०सारन

८९६. ,, ,, ,, रक्सौल

८९७ ,, हैडमास्टरसाहब स्टेट हाईस्कूल गोगूकला

८९८. ,, डा०श्री रामB.Sc.बृजकिशोर मार्ग पटना

८९९. ,, मंत्री जी आर्य समाज सीवान—बिहार

९००. ,, ,, ,, नया मुहम्मदपुर

९०१. ,, ,, ,, मैहसी

९०२ ,, ,, ,, चनपटिया।

९०३ ,, ,, ,, मोतीहारी

९०४ ,, ,, ,, बगहा

९०५. ,, ,, ,, केसरिया

९०६ ,, ,, ,, नरकटिया गंज

९०७. ,, ,, ,, बलुआगंज टाड

९०८ ,, मान्य तिलक धारी लाल मैनाचक पो० ईसापुर

९१०. ,, मंत्री जी आर्यसमाज माधोपुर

९११. ,, ,, ,, रामगढ़वा

९१२. श्री मान हरिलाल जी लाल मौजा ठाढ़ी जि० पूर्णियां

९१३. ,, मंत्री जी आर्य समाज रघुनाथ पुर (शाहाबाद)

९६३. श्री डा० गंगाचन्द जी अग्रवाल वैद्यशास्त्री बाजी का अड्डा, मिर्जापुर

बंगाल में पीड़ितों की सहायता का आर्यसमाज का कार्य

विज्ञप्ति न० २

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा की ओर से आर्य प्रतिनिधिसभा बगाल आसाम के प्रबन्ध में २३—७—५२ से सुन्दरबन "बगाल के भयकर दुर्भिक्ष ग्रस्त में कुमीरमारी केन्द्र से पड़ितों की सहायता का कार्य हो रहा है। अनेक सुयोग्य कार्यकर्त्ता स्वयसेवक और चिकित्सक मनोयोग पूर्वक काम में जुटे हुए हैं। २३ जलाई से ३१ जलाई तक ७००० वस्त्रहीन नर नारियें व बच्चों में पहनने के कपड़े वितीर्ण किए हैं। ८०० दरिद्र व्यक्तियों को सरकारी सस्ती दूकान से चावल क्रय करने में आर्थिक सहायता दी गई। सरकार की ओर से वहा इन दिनों सवा छ आने सेर के अत्यन्त सस्ते)भाव पर पीड़ितों को चावल बेचा जाता है। निरन्तर वर्षा, कीचड़ आदि की कठिनाइयों के होते हुए भी हमारे चिकित्सकों द्वारा रोगियों को उनके घर पर औषधि पहुँचाई व चिकित्सा की जाती है। हर्ष का विषय है कि जैन समाज के कई उत्साही नवयुवक आर्य समाज के काम में हाथ बटा रहे हैं और हर प्रकार की सहायता दे रहे हैं। सार्वदेशिक सभा ने,प्रारम्भिक सहायता के रूप में २००० रुपया आय प्रतिनिधि सभा बगाल को भेज दिया है। वर्तमान अनुमान के अनुसार इस कार्य में १०००० रुपया "दस सहस्र" के व्यय की सभावना है।

कुमीरमारी सुन्दरबन का अन्तिम ग्राम है। इसकी जन सख्या लगभग ३०००० है। ६ वर्ष तक वर्षा न होने के कारण यहा भयंकर दुर्भिक्ष पड़ गया है। इस ग्राम के चहुं ओर नदी और नदी के दूसरे पार पर सुन्दरबन गहन का बन है जहा बगाल रोयल टाइगर, हरिण, सूअर सर्प आदि बहुत सख्या में पाए जाते हैं। नदी में बड़े भयकर मगर भरे हुए हैं।

इस समय वहा के लिये धन के साथ २ वस्त्रों की अत्यन्त आवश्यकता है। जो भी सज्जन नए वा पुराने वस्त्र भेजना चाहे, वे स्थानीय समाज मे जमा करा के इस सभा को सूचना देवें। जो सज्जन अपने धन का इस पुण्य कार्य में सदुपयोग करना चाहें वे सावदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा श्रद्धानन्द बाजार देहली के पते पर भेज सकते हैं। जो सज्जन सेवा कार्य के लिये वहां जाने के लिये उत्सुक हों वे भी सभा को लिख सकते हैं।

कविराज हरनामदास बी० ए०
मत्री—
सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा,
बलिदान भवन देहली।

स्वाध्याय योग्य साहित्य

(१) श्री स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी की पूर्वी अफ्रीका तथा मौरीशस यात्रा २।)
(२) वेद की इयत्ता (ले० श्री स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी) १॥)
(३) महर्षि दयानन्द और महात्मा गांधी (पं० धर्मदेव जी वि० वा) २)
(४) बौद्ध मत और वैदिक धर्म ,, ,, १॥)
(५) वैदिक गीता (स्वा० आत्मानन्द जी) २॥)
(६) धर्म का आदि स्रोत (पं० गंगाप्रसाद जी एम. ए.) २)
(७) वेद रहस्य (श्री नारायण स्वामी जी) १॥।)
(८) ईश्वर की सर्वज्ञता (ले० देवराम जी सि० शास्त्री) १)
(९) सुभाषित रत्न माला (ले० पं० कृष्णचन्द्र जी वि० अ०) ॥=)
(१०) संस्कार महत्व (पं० मदनमोहन विद्यासागर जी) ॥।)
(११) जनकल्याण का मूल मन्त्र ,, ॥)
(१२ वेदों की अन्तः साक्षी का महत्व ,, ।=)
(१३) आर्य घोष ,, ॥)
(१४) आर्य स्तोत्र ,, ॥)
(१५) वैदिक कर्त्तव्य शास्त्र (पं धर्मदेव जी) १॥)

English Publications of Sarvadeshik Sabha.

1. Agnihotra (Bound) (Dr. Satya Prakash D. Sc.) 2/8/-
2. Kenopanishat (Translation by Pt. Ganga Prasad ji, M. A.) -/4/-
3. The Principles & Bye-laws of the Aryasamaj -/1/6
4. Aryasamaj & International Aryan League (By Pt. Ganga Prasad ji Upadhyaya M. A.) /1/-
5. Voice of Arya Varta (T. L. Vasvani) -/2/-
6. Truth & Vedas (Rai Sahib Thakur Datt Dhawan) -/6/-
7. Truth Bed Rocks of Aryan Culture (Rai Sahib Thakur Datt Dhawan) -/8/-
8. Vedic Teachings & Ideals (Dhareshwar B. A. Atma) 1/4/-
9. Vedic Culture (Pt. Ganga Prasad Upadhyaya M. A) 3/8/-
10. Aryasamaj & Theosophical Society (B. Shyam Sundarlal B. A. LL B.) -/3/-
11. Glimpses of Dayanand (by Chamupati M A.) 1/8/-
12. A Case of Satyarth Prakash n Sind (S Chandra) 1/8/-
13. In Defence of Satyarth Prakash (Prof Sudhakar M A) -/2/-
14. We and our Critics -/1/6
15. Universality of Satyarth Prakash -/1/-
16. Rishi Dayanand & Satyarth Prakash (Pt. Dharma Deva ji Vidyavachaspati) -/8/-
17. Landmarks of Swami Dayanand (Pt. Ganga Prasadji Upadhyaya M. A.) 1/-/-
18. Scope & Mission of Aryasamaj (Pt. Ganga Prasad ji Upadhyaya M. A.) 1/4/-
24. Political Science
    Royal Edition 2/8/-
    Ordinary Edition -/8/-
25. The Light of Truth 6/-/-
26. Life After Death (Pt. Ganga Prasad Upadhyaya M. A.) 1/4/-
27. Elementary Teachings of Hindusim ,, -/8/-
28. Kathopanishad (By Pt Ganga Parshad Rtd. Chief Judge) 1/4/-

*Can be had from :—*SARVADESHIK ARYA PRATINIDHI SABHA, DELHI.

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा की अन्तरंग की बैठक २३-११-५२ क

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा की अन्तरंग की बैठक ९-११-५२ के स्थान में २३-११-५२ को देहली में होगी। इस बैठक के साथ ही संसद और राज्य परिषद् के आर्य सदस्यों की बैठक भी रखे जाने की आयोजना है। सम्बद्ध महानुभाव अङ्कित कर लें।

कविराज हरनामदास,
मन्त्री, सार्वदेशिक आर्यप्रतिनिधि सभा,
बलिदान भवन देहली ६।